ज्योति से ज्योति जले

अनुक्रम

1. मौन सेतु है सत्संग का.......................................................................2
2. गंता ही गंतव्य है............................................................................27
3. साधु आठौ जाम बैठो............................................................................47
4. त्याग अर्थात् अपना ही स्वाद..........................................................72
5. है दिल में दिलदार............................................................................95
6. मनुष्य-जाति को संदेश....................................................................118
7. मारग जोवै बिरहनी...........................................................................139
8. प्रेम अर्थात धर्म.........................................................................162
9. दीया राखै जतन सौं..........................................................................186 10..................................................................................संन्यास यानी अभय
....................................................................................................... 210
11.................................................................................मन ही बड़ौ कपूत है
....................................................................................................... 235
12.......................................................................................प्रेम जादू है
....................................................................................................... 258
13...................................................................................संत समागम कीजिए
....................................................................................................... 280
14.......................................................................................एकांत मधुर है
....................................................................................................... 307
15.....................................................................................हारो और पुकारो
....................................................................................................... 333
16...........................................................................आत्मा ही परमात्मा है
....................................................................................................... 358
17..................................................................................मिटी न दरस पियास
....................................................................................................... 383
18...........................................................................क्रांति मेरा नारा है
....................................................................................................... 408
19........................................................................हमारै गुरु दीनी एक जरी
....................................................................................................... 432
20..........................................................................रीते घर पाहुन पग धारे
....................................................................................................... 453
21.......................................................................तुमही ठाकुर तुमही दासा
....................................................................................................... 479

ज्योति से ज्योति जले
पहला प्रवचन

मौन सेतु है सत्संग का

देह तौ प्रकट महिं ज्यौं कौ त्यौंहीं जानियत, नैन के झरौखे मांहि झांकत न देखिए।
नाक के झरौखे मांहि नैकु न सुबास लेत,
कान के झरौखे मांहि सुनत न लेखिए।।
मुख के झरौखे मैं बचन न उचार होत,
जीभ हूं कौ शटरस स्वाद न विशेखिए।
सुंदर कहत कोऊ कौन विधि जानै ताहि,
कारौ पीरौ काहू द्वार जातौ हू न पेखिए।।

बोलिए तौ तब जब बोलिबे की सुधि होइ,
न तौ मुख मौन करि चुप होइ रहिए।
जोरिएऊ तब जब जोरिबौऊ जानि परै,
तुक छंद अरथ अनूप जामैं लहिए।।
गाइएऊ तब जब गाइबै कौ कंठ होइ,
श्रवण कै सुनत ही मन जाइ गहिए।
तुकभंग छंदभंग अरथ मिलै न कछु,
सुंदर कहत ऐसी बानी नहिं कहिए।।

एकनि के वचन सुनत अति सुख होइ,
फूल से झरत हैं अधिक मनभावने।
एकनि के वचन अशन मानौ बरषत,
श्रवण के सुनत लगत अलखावने।।
एकनि के वचन कंटक कटु विषरूप,
करत मरम छेद दुख उपजावने।
सुंदर कहत, घट घट में वचन भेद,
उत्तम मध्यम अरु अधम सुनावने।।

जल कौ सनेही मीन बिछुरत तजै प्राण,
मणि बिन अहि जैसे जीवित न लहिए।
स्वाति बूंद के सनेही प्रकट जगत मांहिं,
एक सीप दूसरौ सु चातकऊ कहिए।।
रवि को सनही पुनि कंवल सरोबर मैं,
ससि कौ सनेहीऊ चकोर जैसैं रहिए।
तैसें ही सुंदर एक प्रभु सौं सनेह जोरि,
और कछु देखि काहू बोर नहिं बहिए।।

कलैव ब्रह्म! --कला ही ब्रह्म है। ऐसा उपनिषद के ऋषियों का वचन है। पर कौन सी कला? उपनिषद के ऋषि मूर्तिकला की बात तो न करेंगे, न ही चित्रकला की न नाट्यकला की। किस कला को ब्रह्म कहा होगा?
एक कला है जो पत्थर में छिपी मूर्ति को निखारती, उघाड़ती है। एक कला है
जो शब्द में पड़े छंद को मुक्त करती है। एक कला है जो वीणा में सोए संगीत को जगाती है। और एक कला है जो मनुष्य में सोए ब्रह्म को उठाती है। उस कला की ही बात है।
मनुष्य की मिट्टी में अमृत छिपा है। मनुष्य की कीचड़ में कमल छिपा है।
उस कला को जिसने सीखा, उसने धर्म जाना। हिंदू या मुसलमान या जैन होने से कोई धार्मिक नहीं होता। मंदिर-मस्जिदों में पूजा और प्रार्थना करने से कोई धार्मिक नहीं होता। जब तक अपनी मृण्मय देह में चिंमय का आविष्कार न हो जाए, तब तक कोई धार्मिक नहीं होता। जब तक स्वयं की देह मंदिर न बन जाए उस

देवता का; जब तक अपने ही भीतर खोज न लिया जाए खजाना और साम्राज्य--तब तक कोई धार्मिक नहीं होता।
धर्म सबसे बड़ी कला है, क्योंकि इस जगत में सबसे बड़ी खोज ब्रह्म की खोज है। जो ब्रह्म को खोज लेते हैं वे ही जीते हैं। शेष सब भ्रम में होते हैं-- जीने के भ्रम में। दौड़-धूप बहुत है, आपा-धापी बहुत है, लेकिन जीवन कहां? जीवन उन थोड़े से लोगों को ही मिलता है, जीवन का रस उन थोड़े ही लोगों में बहता है--जो खोज लेते हैं उसे, जो भीतर छिपा है; जो जान लेते हैं कि मैं कौन हूं।
उपनिषद परिभाषा भी करते हैं कला कीः "कलयति" निर्माययति स्वरूपं इति कला।" जो स्वरूप का निर्माण करती है वह कला है।... तब फिर ठीक ही कहा हैः कलैव ब्रह्म। तो कला ब्रह्म है। तो कला धर्म है। तो कला जीवन का सार-सूत्र है।
सुंदरदास उन थोड़े से कलाकारों में एक हैं जिन्होंने इस ब्रह्म को जाना। फिर ब्रह्म को जान लेना एक बात है, ब्रह्म को जनाना और बात है। सभी जानने वाले जना नहीं पाते। करोड़ों में कोई एकाध जानता है और सैकड़ों जानने वालों में कोई एक जना पाता है। सुंदरदास उन थोड़े से ज्ञानियों में एक हैं, जिन्होंने निःशब्द को शब्द में उतारा; जिन्होंने अपरिभाष्य की परिभाषा की; जिन्होंने अगोचर को गोचर बनाया, अरूप को रूप दिया। सुंदरदास थोड़े से सदगुरुओं में एक हैं। उनके एक-एक शब्द को साधारण शब्द मत समझना। उनके एक-एक शब्द में अंगारे छिपे हैं। और जरा सी चिंगारी तुम्हारे जीवन में पड़ जाए तो तुम भी भभक उठ सकते हो परमात्मा से। तो तुम्हारे भीतर भी विराट का आविर्भाव हो सकता है। पड़ा तो है ही विराट, कोई जगाने वाली चिंगारी चाहिए। चकमक पत्थरों में आग दबी होती है, फिर दो पत्थरों को टकरा देते हैं, आग प्रकट हो जाती है। ऐसी ही टकराहट गुरु और शिष्य के बीच होती है। उसी टकराहट में से ज्योति का जन्म होता है। और जिसकी ज्योति जली है वही उसको ज्योति दे सकता है, जिसकी ज्योति अभी जली नहीं है। जले दीये के पास हम बुझे दीये को लाते हैं। बुझे दीये की सामर्थ्य भी दीया बनने की है, लेकिन लपट चाहिए। जले दीये से लपट मिल जाती है। जले दिए का कुछ भी खोता नहीं है; बुझे दीये को सब मिल जाता है, सर्वस्व मिल जाता है।
यही राज है गुरु और शिष्य के बीच। गुरु का कुछ खोता नहीं है और शिष्य
को सर्वस्व मिल जाता है। गुरु के राज्य में.जरा भी कमी नहीं होती। सच पूछो तो, राज्य और बढ़ जाता है। रोशनी और बढ़ जाती है। जितने शिष्यों के दीये जगमगाने लगते हैं उतनी गुरु की रोशनी बढ़ने लगती है।
यहां जीवन के साधारण अर्थशास्त्र के नियम काम नहीं करते। साधारण अर्थशास्त्र कहता हैः जो तुम्हारे पास है, अगर दोगे तो कम हो जाएगा।
रोकना, बचाना। साधारण अर्थशास्त्र कंजूसी सिखाता है, कृपणता सिखाता है।
अध्यात्म के जगत में जिसने बचाया उसका नष्ट हुआ; जिसने लुटाया उसका बढ़ा।
वहां दान बढ़ाने का उपाय है। वहां देना और बांटना--विस्तार है। वहां रोकना, संगृहीत कर लेना, कृपण हो जाना--मृत्यु है।
इसलिए जिनके जीवन में रोशनी जन्मती है, वे बांटते हैं, लुटाते हैं। कबीर ने कहा हैः दोनों हाथ उलीचिए। लुटाओ! अनंत स्रोत पर आ गए हो, लुटाने से कुछ चुकेगा नहीं। और नई धाराएं, और नये झरने फूटते आएंगे। ऐसे एक की ज्योति जल जाए तो अनेक ज्योति जलती हैं। सुंदरदास के सत्संग में बहुमतों के दीये जले। ज्योति से ज्योति जले!
इन अपूर्व वचनों को ऐसे ही मत सुन लेना जैसे और बातें सुन लेते हो। और बातों की तरह सुन लिया तो सुना भी--और सुना भी नहीं। इन्हें तो गुनना! इन्हें सिर्फ कानों से मत सुनना। कानों के पीछे अपने हृदय को जोड़ देना, तो ही सुन पाओगे। सुनो तो जागना बहुत दूर नहीं है।
अनलिखे अक्षर बहुत
दीखे
बोल अनबोले बहुत
सीखे
भरे घट पाए कई

रीते
पनप भी पाए न हम
बीते!
अधिक लोग ऐसे ही बीत जाते हैं।
पनप भी पाए न हम
बीते!
सभी बीज लेकर आते हैं ब्रह्म होने का, और बीज के जैसे ही मर जाते हैं। फिर बीज और कंकड़ में भेद क्या? अगर बीज वृक्ष बने तो ही भेद है। अगर बीज वृक्ष न बने तो क्या भेद है कंकड़ और बीज में? बीज बन सकता है वृक्ष, बस वही भेद है।
इस जगत में जो व्यक्ति अपने भीतर छिपे परमात्मा को जान ले, वही भरा; शेष सब खाली ही चले जाते हैं। और जो खाली चले जाते हैं, उन्हें वापस लौट आना पड़ता है। आना ही पड़ेगा, क्योंकि परमात्मा खाली घटों को अंगीकार नहीं करता। पूर्ण घट चाहिए, भरे घट चाहिए। उसके द्वार पर जले दीये ही अंगीकार होते हैं। बुझे दीये की तरह, अपशकुन की तरह उसके द्वार पर मत चले जाना। जले दीये की तरह जाना। भरे घट की तरह जाना। छलकते घट की तरह जाना। पूर्ण घट की तरह जाना। कुंभ बन कर जाना, तो ही अंगीकार हो सकोगे, अन्यथा वापस लौटा दिए जाओगे।
जब बीज की तरह जाओगे तो वापिस लौटा दिए जाओगे। ऐसे ही आवागमन चलता है। जिस दिन भी कोई फूल की तरह पहुंचता है, अंगीकार हो जाता है। इसलिए तो मंदिर में हम पूजा के लिए फूल ले जाते हैं। वह तो प्रतीक है। ऐसे ही उस परमात्मा की परम पूजा में तुम फूल बन कर जाना-जलते हुए दीये बन कर।
"फिराक" तू ही मुसाफिर है तू ही मंजिल भी
किधर चला है मोहब्बत की चोट खाए हुए
और ख्याल रखना, तुम ही बीज हो, तुम ही वृक्ष। तुम ही मृत्यु हो, तुम ही अमृत। तुम ही प्रकट हो, तुम ही अप्रकट। तुम ही आकार, तुम ही निराकार। "फिराक" तू ही मुसाफिर है तू ही मंजिल भी। और मंजिल कहीं बाहर नहीं है।
और तुम से कुछ दूर और अन्यथा नहीं है। अपने ही भीतर हृदय में टटोलने
की बात है। लेकिन आदमी और सब जगह खोजता है, एक जगह नहीं खोजता-भीतर नहीं खोजता। इसलिए अधिक लोग भिखमंगों की तरह जीते हैं, भिखमंगों की तरह समाप्त हो जाते हैं।
सम्राट होना तुम्हारी नियति है। सम्राट से कम पर राजी होना भी मत। जो सम्राट हो गया, उसने ही कला जानी--जो कह सके, घोषणा कर सके जगत कोः अहं ब्रह्मास्मि! वही कह सकेगाः कलैव ब्रह्म!
ब्रह्म कला है। आत्यंतिक कला है। जीवन की सबसे बड़ी कला और कुछ हो भी क्या सकती है, कि तुम्हारे भीतर जो अभी बेनिखरा पड़ा है, निखरे। तुम्हारी खदान में जो हीरा अनगढ़ पड़ा है, वह गढ़ा जाए! तुम्हारे भीतर जो ज्योति दबी पड़ी है, वह उमगे। जो गीत तुम गाने को आए हो, गा सको। जो नृत्य तुम्हारे पैरों में छिपा है वह प्रकट हो। जो सुगंध तुम लेकर आए हो वह लुटा सको हवाओं को।
जिस दिन तुम अपने को फूल की भांति हवाओं में लुटाने में समर्थ हो जाते
हो उसी दिन मुक्ति फलित होती है। वही समाधि है।
यह संसार तो ऐसा ही चलता रहता है। जिसने इस भीतर की कला को पहचान लिया, जिसने इस भीतर छिपे ब्रह्म से थोड़े संबंध जोड़ लिए, फिर संसार ऐसा ही चलता रहता है। संसार तुम्हारे बदलने से नहीं बदलता। लेकिन तुम पर इसका फिर कोई परिणाम नहीं होता।
वही रूप
वही रंग
मन की समाधि
नहीं हुई भंग!
कण को भी
मानव मस्तिष्क जब

बेध गया
शून्य के रहस्य का
बिंदु जब
भेद गया
दुर्दम
वातचक्र चले,
ग्रह-उपग्रह
हिले-डुले;
सिंधु का
अगाध उर
चीर कर
शैल शिखर उठा
हुआ जीर्णतर;
बदले इतिहास
नये युग आए
ऋचा छोड़
ऋषि ने
जन-गुण गाए;
पृथ्वी ने करवट ली
फूटी हरियाली,
पूर्व दिशा में छाई
प्रातः की लाली;
तब भी रहा
वही रूप
वही रंग
मन की समाधि
नहीं हुई भंग
एक बार भीतर का फूल खिल जाए, फिर कुछ भंग नहीं होता। फिर तुम शाश्वत में जीते हो। जगत ऐसे ही रूपांतरित होता रहता है। इतिहास करवटें लेता रहता है। पृथ्वियां बनती और बिगड़ती हैं। सृष्टि रची जाती है और विसर्जित होती है। यह वर्तुल घूमता रहता है, यह चाक घूमता रहता है--जिसे हम संसार कहते हैं। लेकिन तुम केंद्र पर अडिग, थिर, अस्पर्शित होते हो। उस समाधि को खोज लेने का नाम ही कला है।
और आदमी और सब करता है, बस उस एक कला को नहीं सीखता। हजार उपक्रम करता है। हजारों यात्राएं करता है, दूर-दिगंत तक खोज करता है; सिर्फ अपने में नहीं खोजता। कारण साफ है। हम यह मान ही लेते हैं कि भीतर क्या रखा है, होगा तो बाहर होगा। क्यों ऐसा मान लेते हैं? क्योंकि आंखें बाहर खुलती हैं, कान बाहर खुलते हैं, हाथ बाहर फैलते हैं। ये पांचों इंद्रियां बाहर की तरफ खुलती हैं, इससे एक भ्रांति खड़ी होती है कि जो भी है बाहर होगा। रोशनी आती है तो बाहर से आती मालूम पड़ती है। सूरज बाहर निकलता है, चांद बाहर उगता है। श्वास आती है तो बाहर से आती मालूम पड़ती है। प्यास लगती है तो पानी बाहर। भूख लगे तो भोजन बाहर। प्रेम उमगे तो प्रेमी बाहर। सब बाहर... । स्वभावतः यह ख्याल गहरा होता चला जाता है कि जो भी है बाहर है, भीतर क्या रखा है? बाहर सब कुछ है, सिर्फ एक को छोड़ कर--परमात्मा को छोड़ कर।
बाहर सब कुछ है, सिर्फ एक को छोड कर--तुम को छोड़ कर, स्वयं को छोड़ कर। स्वयं का होना तो बाहर कैसे हो सकता है? वह तो सारी इंद्रियों के पीछे बैठा है। वह तो इंद्रियातीत है। हाथ से हम सब कुछ पकड़ लेंगे; उसको तो न पकड़ पाएंगे जो हाथ के भीतर छिपा है; जो हाथों से चीजों को पकड़ता है। आंख से हम और सब देख लेंगे; उसको तो न देख पाएंगे, जो आंख के पीछे खड़ा है और आंख के झरोखे से जगत को देखता है। कान से हम और सब सुन लेंगे; सुनने वाले को तो न सुन पाएंगे। नाक से हम और सब सूंघ लेंगे; सूंघने वाला तो अनसूंघा रह जाएगा।

बाहर की यह तलाश इतनी सघन हो गई है कि हम परमात्मा का मंदिर भी बाहर बना लेते हैं। तीर्थयात्रा भी करते हैं तो काबा और कैलाश जाते हैं। आदमी का निखार तो भूल ही गया। अंतर्यात्रा का तो विस्मरण ही हो गया है।
मजहब कोई लौटा ले और उसकी जगह दे दे
तहजीब सलीके की, इनसान करीने के
जो जहरे-हलाहल है अमृत भी वही नादां
मालूम नहीं तुझको अंदाज ही पीने के
ये सारे मजहब अगर कोई लौटा ले तो कुछ हर्ज न हो।
मजहब कोई लौटा ले और उसकी जगह दे दे
तह.जीब सलीके की, इनसान करीने के
कलैव ब्रह्म! जो ब्रह्म होने की कला जानता है, वही है इनसान करीने का।
और जिसने भीतर को जाना है वही सुसंस्कृत है। बाहर से मिलती है सयता, संस्कृति भीतर से उमगती है। सयता की शिक्षा हो सकती है, संस्कृति की साधना होती है। सयता दूसरे से सीखी जाती है--मां-बाप सिखाते, शिक्षक-गुरु सिखाते, स्कूल-पाठशाला सिखाती। सयता बाहर से सीखी जाती है। संस्कृति? संस्कृति का जन्म भीतर होता है--स्वयं के जागरण से, स्वयं की ज्योति के जलने से, स्वयं की ऊर्जा से परिचित होने से, आत्म-अनुभव से। वह भीतर का परिष्कार है। सयता बाहर से आदमी को सुंदर बना देती है। अच्छे वस्त्र पहना देती है, करीने से उठना-बैठना सिखा देती है। शिष्टाचार, बोल-चाल के ढंग, व्यवहार-कुशलता सब सिखा देती है। मगर भीतर चेतना वैसी की वैसी अपरिष्कृत है। भीतर जंगली आदमी वैसा का वैसा जंगली है। इसलिए सयता कभी भी चमड़ी से ज्यादा गहरी नहीं होती। जरा खरोंचो, और भीतर से जंगली आदमी बाहर निकल आता है। हिंदू-मुस्लिम दंगा हो जाए; हिंदू भी बड़े सय थे, मुसलमान भी बड़े सय थे।
एक घड़ी पहले बिल्कुल सय थे। बड़ी प्यारी-प्यारी बातें कर रहे थे... "अल्लाह ईश्वर तेरे नाम" सब को संमति दे भगवान्!" गा रहे थे। फिर दंगा-फसाद हो गया, फिर सारी सयता उतर गई। ऐसे बह जाती है जैसे कच्चा रंग वर्षा में बह जाए। भीतर का जंगली आदमी बाहर आ जाता है, खून की नदियां बह जाती हैं। मृत्यु का तांडव-नृत्य होने लग जाता है। मित्र मित्र को काटने लगते हैं। पड़ोसी पड़ोसी को मारने लगते हैं। मस्जिद-मंदिर धू-धू करके जलने लगते हैं। जरा सी देर नहीं लगती हमारी सयता के गिर जाने में। सयता दो कौड़ी की है, कामचलाऊ है।
सुसंस्कृत आदमी बड़ा और होता है। उसका अर्थ होता है, जो वह बाहर जी रहा
है वह उसके अंतरतम से आ रहा है।
मजहब कोई लौटा ले और उसकी जगह दे दे
तह.जीब सलीके की, इनसान करीने के
जो जहरे-हलाहल है अमृत भी वही नाद
मालूम नहीं तुझको अंदाज ही पीने के
यह जिंदगी परमात्मा से भरी है।... मालूम नहीं तुझको अंदाज ही पीने के! लबालब है परमात्मा से। बाहर-भीतर वही लहरा रहा है। उठते, सोते, जागते हम उसी में हैं। मालूम नहीं तुझको अंदाज ही पीने के!
कबीर ने ठीक ही कहा है कि मुझे बड़ी हंसी आती है जब मैं सागर में मछली
को प्यासा देखता हूं। यह मछली पागल हो गई है?-सागर में और प्यासी!
मालूम नहीं तुझको अंदाज ही पीने के
जो जहरे-हलाहल है, अमृत भी वही नादां
इस जिंदगी में मृत्यु ही नहीं है, अमृत भी छिपा है। इस जीवन में दुख ही दुख नहीं है, परमानंद भी छिपा है। इस जीवन में मिट्टी ही मिट्टी नहीं है, मिट्टी के पार चिंमय का आवास है।
मालूम नहीं तुझको अंदाज ही पीने के।
सुंदरदास से पीने के थोड़े अंदाज सीखना। तुम्हारा जला दीया भी बुझे... ऐसे उपाय तो जिंदगी में बहुत हो रहे हैं, जहां तुम्हारा जला दीया भी बुझ जाए। ऐसे उपाय बहुत कम हैं, कहीं-कहीं हो रहे हैं, जहां तुम्हारा बुझा दीया जले। ऐसे ही उपाय में हम यहां संलग्न हैं। यह सत्संग है। इसका अर्थ इतना ही हैः यहां से तुम ज्योतिर्मय होकर जाओ, ज्योति की शिखाएं बनकर जाओ।

मगर सब तुम पर निर्भर है। यह ज्योति तुम पर ऊपर से जबरदस्ती नहीं थोपी
जा सकती। तुम्हारा सहयोग चाहिए, तुम्हारी श्रद्धा चाहिए, तुम्हारा साथ चाहिए। नहीं तो बुद्ध आते, महावीर आते, कृष्ण आते, मोहम्मद आते, कबीर आते, सुंदर आते, दादू आते... आते, आते रहते हैं! परमात्मा के पैगंबर उतरते रहते हैं और आदमी जैसा है वैसा का वैसा। अंधेरा वैसा ही घना। यह अमावस की रात कटती ही नहीं। सुबह होती ही नहीं।
हजारों खिज्र पैदा कर चुकी है नस्ल आदम की
ये सब तस्लीम लेकिन आदमी अब तक भटकता है।
कितने खिज्र पैदा होते हैं, कितने देवदूत उतरते हैं! कितनी बार कुरान, कितनी बार गीता, कितनी बार धम्मपद उतरता है। कितनी ऋचाएं आविर्भूत होती हैं। कितने वेद जन्म लेते हैं। मगर कुछ खूबी है आदमी की--कुछ ऐसा चिकना घड़ा--कि वर्षा हो भी जाती है और आदमी भीगता भी नहीं!
भीगो! ... रोशनी चारों तरफ तुम्हारे नाच भी जाती है, मगर तुम जल ही नहीं पाते। आदमी वैसा का वैसा बना रहता है। क्यों? क्योंकि कृष्ण क्या करें? बुद्ध ने कहा हैः मैं राह बता सकता हूं, चलना तो तुम्हीं को पड़ेगा। यह मत सोच लेना कि किसी ने राह बता दी तो चलना हो गया। किसी ने रोटी की बात कर दी तो पेट तो नहीं भरता? और न जल की चर्चा से कंठ की प्यास बुझती है। जल की चर्चा इतना ही कर सकती है कि तुम्हें जल की तलाश में ले जाए। भोजन की बात इतना ही कर सकती है कि तुम्हारी भूख को और प्रज्ज्वलित कर दे, प्रचंड कर दे। ऐसा भभका दे कि तुम सब छोड़ कर भोजन की तलाश में लग जाओ। यही सत्संग का प्रयोजन है।
मेरे पास तुम आए हो तो ख्याल रखना, इसीलिए आए हो कि तुम्हारे भीतर परमात्मा को खोजने की ऐसी अपूर्व वासना का जन्म हो, ऐसी प्रकांड वासना का जन्म हो कि और सारी वासनाएं उसी वासना में निमज्जित हो जाएं। और जब सारी वासनाएं परमात्मा को पाने की वासना बन जाती हैं तो उसी का नाम प्रार्थना है।
तुझे पाके खुद को मैं पाऊंगा कि तुझी में खोया हुआ हूं मैं
ये तेरी तलाश है इसीलिए कि मुझे है अपनी ही जुस्तजू।
परमात्मा की खोज को ख्याल रखना, पराए की खोज मत समझ लेना। "परमात्मा" शब्द में वह जो "पर" लगा है उससे भ्रांति में मत पड़ जाना। परमात्मा की खोज पर की खोज नहीं है, परमात्मा की खोज स्व की खोज है। परमात्मा की खोज आत्मा की खोज है। यह खोज आंतरिक है। यहां आंखें भीतर लौटानी हैं, आंखें पलटानी हैं। यहां कान उलटाने हैं। यहां सारी यात्रा अंतर्मुखी करनी है। आंख खोल कर बहुत खोजा, अब आंख बंद करके खोजना है। बहुत सुने बाहर के संगीत, शायद कभी थोड़ा मन को भरमाए भी, थोड़ा मन को लुभाए भी, थोड़ा मनोरंजन भी किए--अब मनोभंजन करना है! अब भीतर का संगीत सुनना है। अब अनाहद नाद सुनना है। सुंदरदास के सूत्रः
देह तौ प्रकट महिं ज्यौं त्यौंहीं जानियत,
नैन के झरोखे मांहि झांकत न देखिए।
बैठा है पूरा का पूरा परमात्मा तुम्हारे भीतर। पूरा का पूरा! जो जानते हैं वे यह नहीं कहते कि तुम परमात्मा का अंश हो; जो जानते हैं वे कहते हैं: तुम पूरे परमात्मा हो। उसके कहीं अंश होते हैं, कहीं खंड होते हैं? रात पूर्णिमा का चांद निकलता है। हजारों झीलों में, तालाबों में, सागरों में, नदियों में, पोखरों में उसका प्रतिबिंब बनता है। सब प्रतिबिंब पूरे चांद के प्रतिबिंब होते हैं। कुछ ऐसा थोड़े ही है कि एक झील में बन गया चांद का प्रतिबिंब तो अब दूसरी झील में कैसे बने? ऐसा थोड़े ही है कि खंड-खंड बनते हैं, कि एक टुकड़ा बन गया इस सागर में, एक टुकड़ा बन गया उस सागर में। सभी प्रतिबिंब पूरे चांद के होते हैं।
ऐसे ही तुम पूरे परमात्मा हो, क्योंकि तुम पूरे परमात्मा के प्रतिबिंब हो।
परमात्मा एक है, अनंत उसके प्रतिबिंब हैं।
देह तौ प्रकट महिं ज्यौं कौ त्यौंहीं जानियत।

प्रकट हुआ है तुम्हारे भीतर पूरा का पूरा, जैसा का तैसा। और चाहो तो जैसा का तैसा जान लो। क्षण भर भी गंवाने की बात नहीं है। लेकिन चूक होती है। चूक इसलिए होती हैः नैन के झरौखे महिं झांकत न देखिए। तुम उसको नैन के झरोखों से देखना चाहते हो। नैन के झरोखों से तो उसे न देख सकोगे। नैन के झरोखे से तो "पर" देखा जाता है, "स्व" नहीं देखा जाता। "स्व" तो नैन के पीछे बैठा है।
क्या तुम सोचते हो अंधे आदमी को आत्मज्ञान नहीं हो सकता? सच तो यह है अंधे आदमी को आंखवाले से जल्दी आत्म-ज्ञान हो जाता है। इस कारण इस देश ने अंधों को सदा सम्मान दिया है। उन्हें हम कहते हैंः सूरदास। उन्हें बड़े आदर से पुकारते हैं। उनकी बाहर की आंख नहीं है। बहुत संभावना है कि जो ऊर्जा बाहर की आंख से बहती थी वह ऊर्जा अब भीतर की तरफ बह रही होगी। क्योंकि बाहर का तो द्वार नहीं है। अंधे को हमने बड़ा सम्मान दिया है! सिर्फ एक ही कारण से प्रतीकवत कि ज्ञानी भी अंधे जैसा हो जाता है। बाहर की आंख तो बंद हो जाती है उसकी। उसे बाहर तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता; उसे भीतर दिखाई पड़ने लगता है।
हमारी चूक यही है कि हम आंख से उसकी तलाश में निकले हैं, जो आंख के पीछे खड़ा है। हम उसकी तलाश में निकले हैं, जो तलाश कर रहा है। यह तलाश कैसे पूरी होगी? जिस घोड़े पर सवार हो उसी को खोजने निकले हो!
कभी-कभी ऐसा हो जाता है लोग उसी चश्मे को लगाए होते हैं और उसी चश्मे
की तलाश कर रहे होते हैं। और चश्मा तुम्हारे कानों पर चढ़ा है। ठीक वैसी ही भूल है।
नैन के झरोखे मांहिं झांकत न देखिए।
जैसे कोई खिड़की पर खड़े होकर आकाश को देखता है, आकाश के तारों को देखता है--ऐसे ही तुम आंख के झरोखे के पीछे खड़े हो सारे संसार को देख रहे हो। लेकिन तुम झरोखे के पीछे खड़े हो, तभी तो देख पा रहे हो। देखने वाला कौन है? दृष्टा को खोजो, और तुम परमात्मा को पा लोगे। दृश्य में उलझे रहो और तुम्हारा संसार का वर्तुल चलता ही रहेगा, चलता ही रहेगा। दृश्य से द्रष्टा में रूपांतरण--यही कला है। यही वह कला है जिसको उपनिषद के ऋषि कहते हैंः कलैव ब्रह्म।
नाक के झरोखे मांहिं नैकु न सुवास लेत।
तुम उसकी सुवास नाक के झरोखे से न ले सकोगे। नाक के झरोखे से तो बाहर
की सुवास मिलती है।
कान के झरौखे मांहि सुनत न लेखिए।
और कान से सुनने चले हो तो नहीं सुन पाओगे उसे। कान से तो जो भी तुम सुनोगे, वह कुछ और होगा। उसे सुनने के लिए तो वाणी काम नहीं आएगी, मौन काम आएगा, चुप्पी काम आएगी।
ज्ञानियों ने सदा कहा हैः उसे कहा नहीं जा सकता। ज्ञानियों ने दूसरी बात भी कही है कि उसे सुना नहीं जा सकता। न कहा जा सकता। न सुना जा सकता है। कहो तो बात झूठ हो जाती है, सुनो तो बात झूठ हो जाती है। कहे-सुने के पार है। कहे में नहीं आता सुने में नहीं आता है क्योंकि वह कहने वाला है, वह सुनने वाला है--इसलिए पार है।
मैं तुमसे कह रहा हूं। जो मैं कह रहा हूं उसमें वह नहीं है; लेकिन जो
कह रहा है, उसमें है। मैं तुमसे कुछ कह रहा हूं। जो तुम सुन रहे हो उसमें वह नहीं है, लेकिन जो सुन रहा है, उसमें वह है। जब कहने वाले और सुनने वाले का मिलन हो जाता है, कही-सुनी बंद हो जाती है और कहने वाले और सुनने वाले का मिलन हो जाता है, तब सत्संग होता है। जब तक कही-सुनी बात ही चलती रहती है, तब तक वार्तालाप, तब तक सत्संग नहीं।
सत्संग चुप्पी का संबंध है, मौन का नाता है। मौन का सेतु जब बनता है,
तो सत्संग होता है।
सद्गुरु के पास जो सर्वाधिक बहुमूल्य क्षण हैं वे शब्दों के नहीं होते, वे निःशब्द के होते हैं। और जो सदगुरु के शब्द शांति से सुनता है, मौन से सुनता है, शब्द तो ऊपर-ऊपर आते हैं और चले जाते हैं, निःशब्द की धार भीतर बहने लगती है। शब्द तो खोल की तरह होते हैं, निःशब्द को तुम तक पहुंचा

देते हैं। शब्द तो निमित्त होते हैं। शब्द के निमित्त पर चढ़ कर निःशब्द तुम्हारे पास पहुंच जाता है।
सुनते समय, जो कहा जाए उसकी बहुत फिकर न करो; जो कह रहा है उसकी फिकर लो। और जो सुन रहे हो, उसकी बहुत फिकर मत करो; जो सुन रहा है, उसके प्रति जागो।
कान के झरौखे मांहिं सुनत न लेखिए।
मुख के झरौखे मैं वचन न उचार होत,
जीभ हू कौ शटरस स्वाद न विशेखिए।
वह रसरूप है। रसो वै सः। लेकिन जीभ से उसका स्वाद नहीं मिलेगा। उसका
रस जीभ से नहीं मिलेगा। वह तो रस लेने वाला है। इस बात को बार-बार सुंदरदास दोहरा रहे हैं, ताकि हर तरफ से यह चोट तुम्हारे भीतर साफ हो जाए कि कहां खोजें? किस दिशा में तलाश करें?
मुख के झरौखे मैं वचन न उचार होत,
जीभ हू कौ शटरस स्वाद न विशेखिए।
सुंदर कहत कोऊ कौन विधि जानै ताहि।
तब सुंदर कहते हैं फिर किस विधि उसे जानें? अगर आंख से दिखाई पड़ता तो देख लेते। कान से सुनाई पड़ता तो सुन लेते। हाथ की पकड़ में आता, पकड़ लेते। पैर की यात्रा के बस में होता तो कितने ही दूर होता, पहाड़ों को, समुद्रों को लांघ जाते। अब इसको हम कैसे पहुंचें? हमारे पास कोई विधि नहीं है। किस विधि इसे जानें?
सब विधियां छोड़ कर वह जाना जाता है। विधि-मात्र के त्याग से जाना जाता है। उसे पाने की कोई विधि नहीं होती। विधि हमेशा पराए पर ले जाती है। निर्विधि, निरुपाय... ।
तुमने शब्द "निरुपाय" सुना है न! उसका तुमने एक अर्थ समझा है सिर्फ-- असहाय। उसका दूसरा अर्थ है: निर्विधि। निरुपाय, अब कोई उपाय नहीं।
जब खोजी जानता है कि उसे पाने का कोई उपाय नहीं, कोई विधि नहीं, ... क्योंकि जितनी विधियां हैं वे मेरी पांचों इंद्रियों से जुड़ी हैं। और ये इंद्रियां तो सिर्फ झरोखे हैं और वह रहा इनके पीछे, पूरा का पूरा बैठा है... देह तौ प्रकट महिं ज्यौं कौ त्यौंहीं जानियत।... मगर है भीतर... । और ये सारी इंद्रियों की दौड़ बाहर की तरफ है। मिलन कैसे होगा? अगर इंद्रियों से चलूंगा तो उस तक नहीं पहुंच पाऊंगा। इंद्रियों से चलूंगा तो उससे दूर होता चला जाऊंगा। अतींद्रिय है वह। फिर किस विधि उसे पाएं?
सुंदर कहत कोऊ कौन विधि जानै ताहि।
अब बड़ी मुश्किल आई, बड़ी पहेली हुई, कि जितनी विधियां थीं उनसे तो कुछ काम होनेवाला नहीं। अब हम करें क्या? योग, तप कुछ काम न आएंगे। व्रत-उपवास कुछ काम न आएंगे। लेकिन यह बोध कि उसे पाने की कोई विधि नहीं हो सकती, इस बोध में सारी विधियां गिर जाती हैं। खोजी असहाय हो जाता है, निरुपाय हो जाता है, ठहर जाता है, ठिठक जाता है। जाना कहां अब? सब जाना गलत जाना है। गए कि चूके। अब जाना नहीं है। इस अवस्था में ही पहला संस्पर्श होता है उसका। इसको ही स्थिति-धीः कहो। जब सारी विधियां छूट गयीं। विधियों का मोह छूट गया। विधियों की संभावना भी नष्ट हो गई।
इसलिए ज्ञानी कहते हैंः वह तो सहज पाया जाता है। सहज का अर्थ होता हैः विधि के बिना। साधो, सहज समाधि भली! इसका नाम है सहज समाधि। सहज समाधि कोई विधि नहीं है--सारी विधियों की व्यर्थता का बोध; सारी इंद्रियों की व्यर्थता का बोध। तो अचानक सब ठहर जाता है। आंखें बंद हो जाती हैं, कान बहरे हो जाते हैं, हाथ जड़ हो जाते हैं, पैर की गति अवरुद्ध हो जाती है। कहां जाना? कहीं कुछ जाने का उपाय न रहा। इस निरुपाय दशा में आदमी अचानक पाता है; अपने भीतर हूं मैं। अचानक पाता है कि आ गया अपने घर। बिना कहीं गए आ गया अपने घर। न की कोई यात्रा, न कोई दिशा में खोज की। यह अपूर्व घटना घटती है चमत्कार की तरह। विधियों में आदमी भटक जाता है। विधियों में आदमी गोरखधंधे में पड़ जाता है। निर्विधि होकर अपने घर आ जाता है। क्योंकि परमात्मा हमारा स्वभाव है। उसे पाने के लिए कुछ भी करने की जरूरत नहीं है।

उसे पाने के लिए यह बोध आना चाहिए कि हमारा सब किया बाधा बन जाता है।
अक्रिया में पाया जाता है परमात्मा।
सुंदर कहत कोऊ कौन विधि जानै ताहि,
कारौ पीरौ काहू द्वार जातौ हू न पेखिए।
न तो किसी ने उसे देखा है कि काला है कि पीला है, न किसी ने कभी उसे निकलते हुए देखा है देह से। मृत्यु होती है तब भी वह जाता हुआ दिखाई नहीं पड़ता। न कभी किसी ने उसे आते देखा है, न कभी किसी ने जाते देखा। वह तो सदा है; न आता है न जाता है। जब तुम मृत्यु से गुजरते हो तब भी वह कहीं आता-जाता नहीं, सिर्फ देह से उसका संबंध छूट जाता है। जैसे बल्ब फूट गया, तो तुम सोचते हो बिजली कहीं चली गई? बिजली जहां के तहां है, सिर्फ बल्ब से संबंध छूट गया। रोशनी नहीं हो रही अब। न वह आता, न वह जाता। उसका कोई आवागमन नहीं है। इसे पाने के लिए आने-जाने की कोई जरूरत नहीं।
ऐ फिराक, उन्हें पाकर हम ये दिल में कहते हैं
सोचिए तो मुश्किल है, देखिए तो आसां है
समझना। यह बात सिर्फ देखने की है। सोचिए तो मुश्किल है। सोच में पड़ गए
तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। देखिए तो आसां है। मैं जो तुमसे कह रहा हूं उसे देखने की कोशिश करो। वह सत्य सोचने का नहीं है, विचारगम्य नहीं है। विचार के लिए अगम्य है, तर्कातीत है। समझ के भीतर नहीं है, बाहर है।
देखो। सिर्फ इस सच्चाई को देखो, कि जो भीतर है उसे पाने के लिए बाहर जाने की कोई जरूरत नहीं हो सकती। जो जन्म से ही मेरे भीतर है उसे पाने के लिए किसी विधि की कोई जरूरत नहीं हो सकती। जो मेरा स्वभाव है उसे खोया भी नहीं जा सकता, उसे पाया भी नहीं जा सकता--वह तो मैं हूं ही। न काशी न काबा... कहीं जाना नहीं। न मंत्र, न तंत्र; न योग, न त्याग; न व्रत, न उपवास। ये सब मन की ईजादें हैं। तो फिर क्या करूं?
करने में ही भूल हो जाती है। करने में ही कर्ता और अहंकार आ जाता है।
और करने में ही यात्रा शुरू हो जाती है। करने का मतलब होता है: यात्रा; चले, कुछ करेंगे।
बैठ रहो! कभी-कभी चौबीस घंटे में घड़ी दो घड़ी को बस बैठ रहो, कुछ न करो-- निरुपाय, निर्विधि, असहाय। आंखों को बंद हो जाने दो, कानों को बंद हो जाने दो--निर्जीव ही रहो। ऐसे रमण को समाधि मिली थी।
रमण की समाधि समझने जैसी है। यह सूत्र तुम्हें समझ में आ सकेगा। ज्यादा उम्र उनकी न थी। ज्यादा होती तो शायद समाधि मिलती भी न। ज्यादा उम्र क्या हो जाती है लोगों की, अनुभव का कचरा खूब इकट्ठा हो जाता है। फिर उस कचरे से छूटना बड़ा मुश्किल होता है। ज्यादा उम्र क्या हो जाती है, लोग ज्ञानी हो जाते हैं बिना ज्ञान के--और बिना ज्ञान के जो ज्ञानी हो गया उसकी हालत अज्ञानी से बहुत बदतर हो जाती है। ज्यादा उम्र क्या हो जाती है लोग, सुन-सुन कर पंडित हो जाते हैं, तोते हो जाते हैं। उपनिषद-वेद दोहराने लगते हैं। और जितने ही वेद-उपनिषद कंठस्थ हो जाते हैं, उतना ही समझ लेना कि परमात्मा से दूरी बढ़ी। अब तुम्हारा वेद नहीं जन्म सकेगा; अब तुम उधार वेद से बंध गए। अब तुम्हारा उपनिषद नहीं जन्मेगा; अब तुमने दूसरों के उपनिषद पकड़ लिए।
सत्रह साल की उम्र थी रमण की। परिवार में किसी की मृत्यु हो गई। रमण
ने मृत्यु को घटते देखा। अभी-अभी था यह आदमी, अभी-अभी नहीं हो गया! कारौ पीरौ काहू द्वार जातौ हू न पेखिए।
और न देखा काला न पीला। न किसी को देखा आते न किसी को देखा जाते। सब वैसा ही का वैसा। नाक, मुंह, आंख, कान सब वैसे, हाथ-पैर सब वैसे। एक क्षण पहले यह था और एक क्षण बाद न रहा। हुआ क्या! कौन चला गया! कहां चला गया! कहां से आया था!
रमण को एक बात सूझी। बच्चों को अकसर बातें सूझ जाती हैं। घर के लोग तो रोने-धोने में लगे थे, वे बगल के कमरे में चले गए और जमीन पर लेट गए, जैसे वह मुर्दा आदमी लेटा था वैसे लेट गए। हाथ-पैर वैसे ही कर लिए ढीले, जैसे मुर्दे ने किए थे। आंखे बंद कर लीं। एक प्रयोग किया मृत्यु का कि मैं देखूं कि मेरे भीतर क्या होता है; अगर मैं ऐसे ही मर जाऊं तो कोई आता-जाता

है या नहीं; कोई बचता है कि नहीं भीतर? शरीर को शिथिल छोड़ दिया। सरल भाव का बच्चा रहा होगा--अति सरल भाव का, कि जल्दी ही लगा कि मौत घट रही है। हाथ-पैर सब सूख गए। थोड़ी देर विचार घूमते रहे, फिर विचार भी समाप्त हो गए। थोड़ी देर बाहर की आवाजें और रोना-धोना सुनाई पड़ता रहा, फिर पता नहीं वे भी सब आवाजें कहीं दूर... निकल गईं। कान जैसे बंद हो गए। थोड़ी देर श्वास चलती मालूम पड़ती रही, फिर उससे भी दूरी हो गई। मृत्यु जैसे घटी। और जब घंटे भर बाद रमण ने आंखें खोलीं तो वे दूसरे ही व्यक्ति थे। चमत्कार हो गया। देख ही लिया उन्होंने भीतर अपने कि "जो है", उसकी कोई मृत्यु नहीं। जाकर घर के लोगों को कहाः व्यर्थ रो रहे हो, धो रहे हो। कोई कहीं गया नहीं, कोई कहीं जाता नहीं। और उसी दिन उन्होंने घर छोड़ दिया, चल पड़े जंगल की तरफ। अब इस संसार में कुछ अर्थ न रहा। सारे अर्थों का अर्थ तो भीतर मिल गया। संपदा तो मिल गई, अब क्या तलाश करनी है? इस संसार में तो हम संपदा की ही तलाश करते रहते हैं। जब मिल गई संपदा, धनी हो गए, तो अब यहां क्या करना है? चल पड़े। और ऐसा रस लगा, यह मरने की कला में ऐसा रस लगा कि लोग कहते हैं कि जहां रमण बैठ जाते थे, दिनों बैठे रहते थे। आंख बंद कर ली, शरीर को मुर्दा कर लिया और बैठ हैं और पी रहे रस!
मालूम नहीं तुझको अंदाज ही पीने के!
दिन बीत जाते। न भोजन की फिकर है, न प्यास का पता है। लेकिन एक आभा प्रकट होने लगी, एक तेजोमंडल आविर्भूत होने लगा। चारों तरफ एक सुगंध फैलने लगी। लोग सेवा करने लगे। लोग भोजन ले आते, हाथ-पैर दबाते कि लौट आओ, भोजन कर लो। कोई पानी ले आता, कोई स्नान करवा देता; नहीं तो वे बैठे रहते बिना ही स्नान के। मक्खियों के झुंड के झुंड उन पर बैठे रहते और वे मस्त हैं, वे मदहोश हैं। और लोग पूछतेः तुम करते क्या हो? तो वे कहते कि मैं कुछ भी नहीं करता हूं। करने की कोई जरूरत ही नहीं। फिर यही उनका जिंदगी भर संदेश रहा जो भी उनके पास जाता, पूछताः हम क्या करें परमात्मा को पाने को? तो वे कहतेः करने की कोई जरूरत नहीं, बस बैठ रहो। खाली बैठे रहो। खाली बैठे, बैठे, बैठे, बैठे एक दिन ऐसा सुर बंध जाएगा कि जो भीतर है उसकी प्रतीति होने लगेगी। बाहर से मन मुड़ जाएगा, भीतर का अनुभव होने लगेगा। सुंदर कहत कोऊ कौन विधि जानै ताहि।
विधि से तो नहीं होता, बिना विधि के होता है। इसलिए छोटे बच्चे चाहें
तो उनको भी हो सकता है। स्वस्थ को हो सकता है, बीमार को हो सकता है। बाजार में जो बैठा है उसको हो सकता है, हिमालय पर जो बैठा है उसको हो सकता है। सुंदर को कुरूप को, गरीब को अमीर को, पढ़े-लिखे को गैर पढ़े-लिखे को, सब को हो सकता है। क्योंकि बात सब छोड़ कर भीतर थोड़ी देर चुपचाप डुबकी मार लेने की है।
और जब ऐसा हो जाए तो सुंदर कहते हैं कुछ बोलना। नहीं तो लोगों के सिर वैसे ही कचरे से भरे हैं, और कचरे से मत भरना।
इस जगत में जो सबसे बड़ा पाप चल रहा है, वह है--उनके द्वारा बोला जाना जिन्हें अनुभव नहीं है। वे लोगों के मस्तिष्क कचरे से भरते रहते हैं। बोलिए तौ तब जब बोलिबे की सुधि होइ।
तब बोलना जब उसकी सुधि आ जाए, जब उसका जागरण हो जाए, जब ज्योति जगे, जब भीतर लपट उठे, जब बोलना अनिवार्य हो जाए, जब पुकारना ही पड़े, जबकि पुकार रोके से भी न रुके, जब कि तुम्हारे बस में न रह जाए! जैसे कि फूल को खिलाना ही पड़े और सुगंध को बिखेरना ही पड़े। और बादलों को बरसना ही पड़े। ऐसा जब हो जाए, जब तुम ऐसे भरे होओ--तब बोलना।
यह अपने शिष्यों को कह रहे होंगे। पहले उनको कहा, कैसे जागना कैसे ज्योतिर्मय हो जाना--और फिर कहा कि जब ज्योतिर्मय हो जाओ तो बोलना, उसके पहले मत बोलना।
बोलने में बड़ा रस है। दूसरे को सलाह देने में अहंकार को बड़ी तृप्ति है। जिन्हें ईश्वर का कुछ पता नहीं वे दूसरों को समझा रहे हैं कि ईश्वर है। जिन्हें आत्मा का कुछ पता नहीं वे दूसरों को तर्क दे रहे हैं कि आत्मा है। दूसरों को समझाने में कभी-कभी भूल ही जाते हैं कि हमें पता ही नहीं है।

और जब तुम्हें पता न होगा, तुम क्या खाक समझाओगे? बुझे दीये बुझे दीयों को जलाने चले हैं! मुर्दा मुर्दों को जीवन का दान दे रहे हैं।
नानक ने और कबीर ने दोनों ने कहा हैः अंधा अंधा ठेलिया, दोनों कूप पड़ंत।
अंधे अंधों को ठेल रहे हैं, कह रहे हैं मार्ग-दर्शन। अंधे नेता हो गए हैं अंधों के। और एक कारण भी है उसमें, क्योंकि अंधों की भाषा बाकी अंधों को भी समझ में आती है। आंखवाले की भाषा तो अंधों को समझ में नहीं आती। आंखवाले की भाषा से तो अंधे नाराज हो जाते हैं। कभी-कभी तो बहुत नाराज हो जाते हैं। बुद्ध पर पत्थर बरसा देते हैं। जीसस को सूली लगा देते हैं। मंसूर की गर्दन काट देते हैं। कभी-कभी तो बड़े नाराज हो जाते हैं। अंधे ही हैं; आंख वाले की भाषा उन्हें नहीं जमती। अंधों की भाषा उन्हें बिल्कुल जमती है, तालमेल पड़ जाता है।
इसलिए तुम मरे, मुर्दा साधुओं के पास लोगों को इकट्ठा होता पाओगे। गोबर-गणेशों की पूजा पाओगे। मिट्टी के लौंदे लोग बैठा लिए हैं और उनकी पूजा कर रहे हैं। अपने ही हाथ से मिट्टी से भगवान बना लेते हैं और उसकी पूजा शुरू कर देते हैं और उसी के सामने झुकने लगते हैं।
सुंदरदास कह रहे हैं: बोलना तब जब सुध आ जाए। "सुध" बड़ा प्यारा शब्द है। इसका अर्थ होता है--जब स्मृति आ जाए, जब स्मरण आ जाए कि मैं कौन हूं, जब सुरति जग।
बोलिए तौ तब जब बोलिबे की सुधि होइ।
अब तो तुम बेहोश हो। अभी तो तुम मूर्च्छित हो। अभी तुम्हें कुछ भी पता नहीं कि तुम कौन हो? अभी तो किरण भी हाथ नहीं लगी, सूर्यों की बातें न करो, नहीं तो अंधेरों में ही भटकते रहोगे; तुम्हारी अमावस फिर कभी टूटेगी नहीं। अभी सुगंधों की चर्चा मत करो, क्योंकि तुमने जो भी जाना है वह दुर्गंध से ज्यादा नहीं है। कहीं ऐसा न हो जाए कि दुर्गंधों को ही सुगंध समझ बैठो। अभी फूलों की बात मत छेड़ो। अभी तुम्हारी पहचान सिर्फ कांटों से हुई है। लेकिन कहीं ऐसा न हो जाए दुर्भाग्य से कि तुम कांटों को ही फूल समझ लो।
यही हुआ है। शास्त्रों को लोग सत्य समझ कर बैठ गए हैं। शब्दों को, सिद्धांतों को लोगों ने अपने प्राण बना लिया है। पत्थरों की पूजा हो रही है। मुर्दों के आस-पास सत्संग चल रहा है। अंधा अंधा ठेलिया... । और फिर स्वाभाविक है, अगर दोनों कुएं में गिर पड़े तो कुछ आश्चर्य नहीं है। फिर एक-दूसरे को सांत्वना दे रहे हैं, एक-दूसरे को समझा रहे हैं।
और आदमी इतना बेईमान है... शायद उसकी मजबूरी भी है, उसे बेईमान होना पड़ता है। जिंदगी में इतनी तकलीफें हैं कि वह अगर अपने को समझा ही न ले तो शायद जीना मुश्किल हो जाए। तो वह कहता हैः यह कुआं नहीं है, यह तो तीर्थ है। कुएं में थोड़े ही गिरे, तीर्थ पहुंच गए। तीर्थ में पहुंचने पर ऐसा गिरना ही होता है।
फिर आदमी अपने को समझा लेता है। तुम मंदिर भी हो आते हो, पूजा भी कर लेते हो, पाठ भी कर लेते हो--कभी उसकी सुधि तो आती नहीं। कब तक इस पूजापाठ को जारी रखोगे? कब तक उनके शब्दों में उलझे रहोगे, जिनके भीतर अभी शून्य का आविर्भाव नहीं हुआ है? कब तक खाली घड़ों के पास बैठे पूजा करते रहोगे? मैंने सुना है, एक सूफी कहानी है। एक आदमी बहुत प्यासा था। इतना प्यासा था और इतना रुग्ण और बीमार, मौत उसकी करीब थी और वह प्यासा चिल्ला रहा था और वहां कोई भी सुनने वाला न था। हालांकि बहुत लोग थे, बाजार भरा था; लेकिन बाजार था, वहां कौन किसकी सुने! अपनी ही लोगों को सुनाई नहीं पड़ रही थी, दूसरों की कौन सुने! वहां खूब शोर-शराबा था। एक खाली सुराही उस कमरे में पड़ी थी। उस आदमी की प्यास की बातें सुन-सुन कर खाली सुराही यह भूल गई कि मैं खाली हूं। प्यास की बातें और सुराही को यह ख्याल कि मैं सुराही हूं... ।
अब सच पूछो तो जब तक सुराही भरी न हो, उसे सुराही कहना नहीं चाहिए। खाली घड़े को क्या घड़ा कहना? लेकिन कामचलाऊ भाषा है। हम तो सुराही खाली हो तो भी उसको सुराही कहते हैं। सुरा उसमें है ही नहीं, फिर भी सुराही। खाली

सुराही थी; आदमी भूल में आ जाता है शब्दों की, तो बेचारी सुराही अगर भूल में आ गई तो कुछ आश्चर्य तो नहीं।
उसके मन में बड़ी दया उपजी। किसी तरह सरक कर सुराही उस आदमी के पास पहुंची और कहाः पी ले, जितना पीना हो पी ले। एक तो आदमी प्यासा और यह मजाक; एक तो आदमी मर रहा है और यह मजाक कि खाली सुराही कहती है पी ले जितना पीना हो। उसने उठाया सुराही को और दीवार से दे मारा। टुकड़े-टुकड़े होकर गिरी। सूफी कहते हैं: .जरा ख्याल रखना, जब तक भर न गए हो तब तक किसी की प्यास बुझाने मत चले जाना। अन्यथा जो गति सुराही की हुई वही तुम्हारी हो जाएगी। बोलिए तौ तब जब बोलिबे की सुधि होइ,
न तो मुख मौन करि चुप होइ रहिए।
नहीं तो चुप रहो। और गहरी चुप्पी साधो क्योंकि चुप्पी से सुधि जागेगी। सुधि से सुगंध उठेगी। सुधि से सरोवर बनेगा। फिर तुम जरूर लोगों की प्यास बुझा सकोगे। और तुम्हें जाना नहीं होगा, जैसे खाली सुराही को जाना पड़ा। जब तुम सरोवर हो जाओगे तो जो प्यासे हैं वे अपने आप तुम्हारे पास आने लगेंगे। दूर-दूर देशों से, दूर-दूर दिशाओं से आने लगेंगे। अपने आप आने लगेंगे। जिन्हें तलाश है वे सरोवर को खोज ही लेंगे। मगर तुम सरोवर तो हो जाओ।
जब कभी कोई होश से भर जाता है तो जिनके जीवन में सच में तलाश है वे फिर परमात्मा की फिकर नहीं करते। वे परमात्मा की बात भी नहीं उठाते। वे होश से, भरे आदमी की तरफ चलने लगते हैं। क्योंकि जहां होश है वहीं कहीं परमात्मा की खबर मिलेगी। जहां जागरण घटा है, जहां थोड़ी सी रोशनी उतरी है आकाश से, उसी रोशनी में हम भी नहाएंगे।
.गर.ज कि होश में आना पड़ा मोहब्बत को
हमीं को देख लें दीवाने तेरे दूर न जाएं
जब कभी कोई जाग जाता है, सुधि से भर जाता है तो इतना ही तो कहता है लोगों से, और क्या कहेगा?
.गर.ज कि होश में आना पड़ा मोहब्बत को
हमीं को देख लें दीवाने तेरे दूर न जाएं
फिर कहीं जाने की जरूरत नहीं है। अगर परमात्मा के एक भी जागे हुए प्रेमी को तुमने देख लिया तो तुमने परमात्मा देख लिया। मगर बड़ी कठिनाई हो गई है उन लोगों की वजह से, जो बिना कुछ जाने समझाए जा रहे हैं, बिना किसी बोध के बोले जा रहे हैं। बिना किसी अंतर-अनुभूति के सिद्धांतों और शास्त्रों का गुणगान किए जा रहे हैं।
यहां सौ वाणियों में निन्यान्नबे झूठी हैं। भटकाव बहुत बढ़ गया है। साधारण आदमी खोजे तो कैसे खोजे? किसको सच माने? कैसे सच मानें? यहां झूठ का बाजार इतना गरम है!
और ख्याल रखना, झूठे सिक्कों की एक खूबी होती है--वे सच्चे सिक्कों को चलन से बाहर कर देते हैं। अगर तुम्हारी जेब में दो सिक्के हैं--एक झूठा और एक सच्चा--तो पहले तुम झूठे को चलाते हो। पानवाले को भी पकड़ा दोगे कि किसी तरह निपट जाए। पहले झूठे को चलाते हो कि पहले झूठा निपट जाए, असली तो कभी भी चल जाएगा। जिन-जिन के पास झूठे सिक्के हैं वे सभी चला रहे हैं झूठों को। तो झूठे सिक्के बाजार में होते हैं तो असली को चलन से बाहर कर देते हैं। इसलिए बुद्धों की गति नहीं चल पाती तुम पर वे असली सिक्के हैं। पंडित-पुरोहित झूठे सिक्के हैं, मगर झूठे सिक्के सदा असली सिक्कों को चलन के बाहर कर देते हैं। असली सिक्के को खोजने तो वही जाता है, जिसने तय ही कर लिया है खोजने का; जिसने निर्णय ही कर लिया है कि बिना परमात्मा को पाए नहीं जाना है इस जगत से।
अनलिखे अक्षर बहुत
दीखे
बोल अनबोले बहुत
सीखे
भरे घट पाए कई
रीते

पनप भी पाए न हम
बीते
... जिसने तय कर लिया है कि ऐसे ही नहीं बीत जाएंगे। इस जीवन को भर कर जाना है। बहुत जीवनों में आए और खाली के खाली गए, इस बार खाली नहीं जाना है। ऐसा संकल्प जिसमें जगा है, ऐसा भाव जिसमें उठा है, वही खोज पाएगा। बोलिए तौ तब जब बोलिबे की सुधि होइ।
और जब सच में उसकी स्मृति उठती है तो अपने आप गीत फूटते हैं। अपने आप! वाणी स्फुरित होती है।
जैन शास्त्र ठीक कहते हैं। जैन शास्त्र ऐसा नहीं कहते कि महावीर बोले। जैन शास्त्र कहते हैंः "महावीर से वाणी झरी।" यह अभिव्यक्ति प्यारी है और सत्य के बहुत करीब है। और लोग बोलते हैं, महावीर थोड़े ही बोलते हैं। महावीर से वाणी झरती है, जैसे दीये से रोशनी झरती है। जैसे अभी देखते हो, आकाश से बादलों से जल झर रहा है। ऐसे ही महावीर से वाणी झरी। भरे से झरेगी। इतने भर गए कि झरना ही पड़ा। बोलने का सवाल नहीं है अब।
तू एक था मेरे अशआर में हजार हुआ
इस एक चिराग से कितने चिराग जल उट्ठे
वह एक उतर आए तुम्हारे भीतर, तो तुम्हारे भीतर हजार गीत पैदा हो जाते हैं।
तू एक था मेरे अशआर में ह.जार हुआ
इस एक चिरा.ग से कितने चिराग जल उट्ठे
और फिर यह रुकती नहींशृंखला। इसीशृंखला से वस्तुतः परंपरा पैदा होती है। सच्ची परंपरा इसीशृंखला का नाम है। एक झूठी परंपरा होती है, जो जन्म से मिलती है। तुम हिंदू-घर में पैदा हुए तो तुम मानते हो मैं हिंदू हूं; यह झूठी परंपरा है। यह कोई परंपरा है? परंपरा कहीं खून से चलती है, हड्डी- मांस-मज्जा से चलती है.जरा अपने खून को निकलवा कर अस्पताल में जाकर जांच करवाना, कोई डाक्टर नहीं बता सकेगा कि हिंदू का है कि मुसलमान का। खून कहीं हिंदू-मुसलमान का होता है? लाख सिर पटकें डाक्टर, पता नहीं लगा सकेंगे कि ईसाई है कि प्रोटेस्टेंट है कि कैथोलिक है कि कौन है।.जरा मरघट चले जाना, किसी की हड्डी उठा लाना और जांच करवा लेना। जन्म से कहीं धर्म का कोई संबंध होता है?
एक जीवंत परंपरा होती है। एक दीये से दूसरा दिया जलता है--एकशृंखला पैदा होती है। जब तुम किसी सदगुरु को खोज कर उसके पास पहुंचते हो और तुम्हारे भीतर समर्पण घटित होता है, जब तुम एक परंपरा के अंग हो जाते हो। यह वास्तविक धर्म का जन्म है।
तू एक था मेरे अशआर में ह.जार हुआ
इस एक चिरा.ग से कितने चिरा.ग जल उट्ठे
जैसे ही उसकी अनुभूति उतरती है, उसकी अनुभूति का रस ऐसा है, उसकी अनुभूति का आनंद ऐसा है कि बंटना चाहता है।
तुमने ख्याल किया? दुख सिकोड़ता है, दुख बंटना नहीं चाहता। जब तुम दुखी होते हो तो तुम चादर ओढ़ कर पड़ रहना चाहते हो। जब तुम बहुत दुखी होते हो, तुम द्वार-दरवाजे बंद कर देते हो। तुम कहते होः मुझे मत छेड़ो। मुझे मुझ पर छोड़ दो, मेरे हाल पर छोड़ दो। तुम अपने प्यारे से प्यारे से भी नहीं मिलना चाहते। तुम कहते हो, अभी मैं दुखी हूं, अभी मुझे छोड़ दो। अभी मुझे पड़ा रहने दो अंधेरे में। लेकिन जब तुम आनंद से भरते हो तो तुम मित्रों की तलाश करते हो। जब तुम आनंदित होते हो, तब तुम अकेले नहीं रहना चाहते, तब तुम संग-साथ खोजते हो।
तुमने ख्याल किया? शास्त्र इस संबंध में बेईमानी करते रहे हैं, क्योंकि गलत लोगों ने लिखे हैं। महावीर संसार छोड़ कर चले गए, यह तो शास्त्रों में लिखा है; लेकिन वे यह बात नहीं कहते कि बारह वर्ष बाद महावीर संसार में वापस लौट आए। बुद्ध संसार छोड़ कर चले गए, इसकी तो बड़ी चर्चा की गई, रत्ती-रत्ती का हिसाब दिया गया--कितने हाथी, कितने घोड़े, कितना बड़ा राज्य; लेकिन जब वे छह वर्ष बाद लौट कर आ गए, इसकी कोई बात नहीं करता। यह अधूरी कहानी है। कहानी पूरी करो। महावीर जब दुखी थे, भाग गए

संसार से। जब आनंद फला, लौट आए। लौटना ही पड़ा। खोजना पड़ा लोगों को, क्योंकि अब आनंद बांटना होगा।
बुद्ध जब दुखी थे, सरक गए चुपचाप एकांत में, निर्जन में। जब दीया जला
तो दीये के जलने के साथ ही यह अपूर्व करुणा भी जन्मती है--कि अब जो बुझे हैं वे भी जल जाएं। अब जो तलाश रहे हैं उनको भी राह दिखा दूं। ऐसा नहीं कि मुझे क्या प्रयोजन? मुझे क्या लेना-देना? ऐसी उपेक्षा नहीं होती। बुद्ध ने तो कहा है: ज्ञान की अनिवार्य छाया करुणा है। और जहां करुणा न हो, समझ लेना, वहां प्रज्ञा नहीं है, झूठ है, पांडित्य होगा। आनंद तो बंटना ही चाहेगा। उमड़ते हैं सागर
तोड़ते हैं बंध;
प्रवहमान कलकल
शब्द स्वच्छंद!
यही जीवन
यही गति--
सफल श्रेष्ठ छंद;
यही साध्य
यही सत्य,
यही परमानंद!
जब परम आनंद उठेगा तो हजार-हजार गीतों में फूटेगा, हजार-हजार झरनों में बहेगा। अनेक-अनेक गंगाओं का जन्म होता है हिमालय से। गंगा निकलती, यमुना निकलती, सिंधु निकलती, ब्रह्मपुत्र निकलती, अनंत-अनंत गंगाओं का जन्म होता है हिमालय से। जब कोई उस चैतन्य के परम शिखर पर पहुंच जाता है तो वहां से भी अनंत-अनंत गंगाओं का जन्म होता है। सब दिशाओं में गंगाएं बह बठती हैं... ।
एक
महक की तरह
बस गया वसंत,
अनगिनत अधरों पर!
रोम-रोम धूप-छांव
फूल मुस्कराए;
तन की डाली पर
मन की कोयल ने--
शीत-तप्त गीत
गुनगुनाए
केशर-पगे, धानी
मत्त, रूप उन्मत्त
थिरक-थिरक नाचे
सरिता लहरों पर
एक
महक की तरह
बस गया बसंत
अनगिनत अधरों पर!
और एक प्राण में बसंत का जन्म हो तो अनंत-अनंत अधरों पर बसंत की केशर फैलने लगती है।
आज चित्र नहीं बनाऊंगा
आज तो...
स्वरों के आरोह-अवरोह के
ध्वज, कलश
चढ़ाऊंगा वाणी के मंदिर पर
गोपुर अलंकृत करूंगा
छंद-मंजरियों से;
गमकेंगे ध्वनि-सौष्ठव के मृदंग! आज तो...

छहराएंगे निकुंज
उत्फल्ल अनुभूतियों के
भावानुभव सरोवर में
लहराएंगे
मानस-बिंबों के
अनस्पर्शित प्रतिबिंब;
उठेंगे झकोरे बासंती बयार के प्राकृत-पाटल पर--
थिरेकेंगे
जीवन सुषमा के अंग-अंग!
आज चित्र नहीं बनाऊंगा
आज तो...
स्वरों के आरोह-अवरोह के
ध्वज, कलश
चढ़ाऊंगा वाणी के मंदिर पर
गोपुर अलंकृत करूंगा
छंद-मंजरियों से
गमकेंगे ध्वनि-सौष्ठव के मृदंग!
जब कभी कोई बुद्ध पैदा होता है, जब कहीं सुधि जागती है, जब कहीं सुधि
का सौष्ठव उमगता है तो वाणी फूटती है, वेद का जन्म होता है, उपनिषद उतरते हैं। लेकिन जब तक ऐसा न हो तब तक चुप ही रह जाना। तब तक मौन ही रहना। मौन में पकने देना उपनिषद को। मौन में जैसे गर्भ है। मौन में जैसे सत्य गर्भ में बढ़ता है। जब नौ महीने पूरे होंगे, जब घड़ी आएगी प्राकट्य की, अभिव्यक्ति की, तब सब अपने से होगा।
इसलिए कहते हैं सुंदरदासः
बोलिए तौ तब जब बोलिबे की सुधि होइ
न तौ मुख मौन करि चुप होइ रहिए।
जोरिएऊ तब जब जोरिबौऊ जानि परै,
तुक छंद अरथ अनूप जामैं लहिए।
तभी बनाना गीत, जब भीतर कुछ बन गया हो! जोरिएऊ तब... तभी जोड़ना शब्द और बनाना गीत... जब जोरिबौऊ जानि परै. . .जब ऐसा लगे कि हां, अब कुछ कहने योग्य है, सब कुछ गाने योग्य है, अब छेडूं वीणा के तार, अब छेडूं मृदंग!
महावीर बारह वर्ष चुप रहे, फिर वाणी झरी। उन बारह वर्षों में वाणी पकी, सत्य बढ़ा। सत्य का शिशु महावीर के गर्भ में बड़ा हुआ।
जोरिएऊ तब जब जोरिबौऊ जानि परै।
जल्दी मत करना। अहंकार बड़ी जल्दी में पड़ जाता है।.जरा-सा कुछ हो जाता
है कि अहंकार बताने चल पड़ता है। सावधान! अहंकार के धोखे से सावधान! .जरा कुछ हो गया, .जरा रोशनी दिखाई पड़ गई कि जरा रीढ़ में कुछ लहर आ गई कि चले बताने--कि कुंडलिनी जाग गई, कि सहस्रार में कमल खिल गया... चले बताने! जल्दी मत करना। अगर बहुत ही कहने को हो जाए तो गुरु को कह देना। अगर कहे बिना बने ही नहीं, कहना ही पड़े तो गुरु को कह देना; मगर इधर-उधर मत कहते फिरना, अन्यथा जो थोड़ी सी पुलक आई वह भी खो जाएगी। गर्भपात हो जाएगा। गर्भ को सम्हालना!
जोरिएई तब जोरिबौई जानि परै,
तुक छंद अरथ अनून जामैं लहिए।
फिर अपने से ही पैदा होता है सब। जब वह अनुपम अनुभव होता है तो "तुक छंद अरथ" सब अपने से पैदा हो जाता है। फिर तुक बांधनी थोड़े ही पड़ती है, फिर छंद संभालना थोड़े ही पड़ता है! संतों ने जो गीत गाए, ये कोई मात्र कविताएं तो नहीं हैं।
कवि और ऋषि का यही भेद है। कवि के पास कहने को कुछ भी नहीं है। शब्द जोड़ता है, तुक-छंद बिठाता है। ऋषि के पास कुछ कहने को है; तुक-छंद अपने से जुड़ते हैं। और जुड़ें तो जुड़ें, न जुड़ें तो न जुड़ें, उसे कुछ फिकर भी नहीं

होती। उसके भीतर कुछ है जो आंदोलित हो रहा है, जो प्रवाहमान होना चाहता है।
गाइएऊ तब जब गाइबै कौ कंठ होइ।
और जब तुम्हारी वाणी में रोशनी उतर आए तो गाना, जरूर गाना! मगर पहले सत्य के अनुभव को आने दो। पंडित मत हो जाना। पंडित यानी पोपट... तोते। तोते मत बन जाना!
गाइएऊ तब जब गाइबे कौ कंठ होइ,
श्रवण कै सुनत ही मन जाइ गहिए।
कहना तब जब कहने-योग्य कुछ सघन हो जाए, कि किसी के कान पर पड़ जाए तो जगाए उसे। किसी की सुधि में प्रवेश कर जाए तो सावधान करे उसे। जिसके हृदय में गूंजने लगे, उसकी वाणी झंकृत हो उठे।
.कस्मत चौंक उठी
तू बोला या जादू बोला!
तब बोलना जब बोलने में जादू आ जाए। जब शब्द-शब्द निःशब्द से भरा हो। शब्द की पोर-पोर निःशब्द के रस से भरी हो। जब शब्द की पोर-पोर से निःशब्द का रस झलक रहा हो।
खिलते हैं फूल
गमकती है महक
धरा से क्षितिज तक...
कितने हाथ
विविध वर्ण
ऊपर को उठते
थरथराते हैं... !
निहारते हैं
सतत गीतशील ज्योति-पुंज
रवि-रथ को
अपलक...
गंधपूत
अनगिनत
भाव-दूत
ऋतुमती
धरित्री के
नभ तक
सरसराते हैं!
देखते हो फूलों को! धरा में छिपी हुई गंध को आकाश तक पहुंचाते हैं। ऐसे ही जब तुम्हारे प्राणों में छिपी हुई गंध प्रकट होने को तैयार हो जाए तो खिलेंगे फूल, उगेंगे गीत, शब्द भी जन्मेंगे। बांसुरी बजेगी, मगर कृष्ण को आ तो जान दो! कृष्ण का कुछ पता ही नहीं है, बांसुरी बजाने बैठ गए हो। स्वर नहीं सधेगा। स्वर तो उसके ही हों तभी सधे हुए होते हैं। तुम गाओगे, तुम्हारी दुर्गंध ही फैलेगी। उसे गाने देना--जब पक्का हो जाए कि अब मैं नहीं, वह है।
तैरती है एक बूंद
सिंदूरी
जल पर...
स्वरारोह टंका
धरती-आकाश के बीच
झीने परदे पर...
वेदों की एक ऋचा अभी-अभी
रूप धर
उतरी है धरती पर!
जब तुम्हें लगे कि उतरा कुछ आकाश से मेरे भीतर... । वेदों की एक ऋचा अभी-अभी
रूपधर

उतरी है धरती पर!
जब तुम्हें लगे अनंत ने मुझे चुना; जब तुम्हें लगे अब मैं परमात्मा का निमित्त हुआ... । मगर उसके पहले मिटो। पूर्ण होने के पहले शून्य हो जाओ। होने के पहले मिटना अनिवार्य शर्त है। पोली बांस की पोंगरी हो जाओ, फिर जरूर ऋचाएं उतरती हैं।
गाइएऊ तब जब गाइबे कौ कंठ होइ,
श्रवण के सुनत ही मन जाइ गहिए।
तुकभंग छंदभंग अरथ मिलै न कछु,
सुंदर कहत ऐसी बानी नहिं कहिए।।
मत कहो वह, जो तुम्हारे मौन से नहीं जन्मा है।
मत कहो वह, जो तुम्हारे मौन का संदेशवाहक नहीं है।
मत कहो वह, जो तुम्हारे ध्यान का स्वर नहीं है; जो तुम्हारी समाधि की भाव-भंगिमा नहीं है।
मत कहो वह, जो तुम कह रहे हो। परमात्मा को बोलने दो!
एकनि के बचन सुनत अति सुख होइ।
और इसलिए तो ऐसा हो जाता है कि एक के वचन सुन कर अपूर्व सुख का आविर्भाव होता है।
फूल से झरत हैं अधिक मनभावने।।
बुद्धों के वचन... जैसे झर गए हरसिंगार के फूल! झर झर झर... और जैसे भर गए सुगंध से प्राणों को!
एकनि के बचन सुनत अति सुख होइ,
फूल से झरत हैं अधिक मन भावने।
एकनि के बचन अशम मानौ बरषत,
श्रवण के सुनत लगत अलखावने।।
और किसी के वचन ऐसे लगते हैं जैसे कोई पत्थर मार रहा हो! बड़े अप्रिय, बड़े कर्ण-कटु, जहरीले! शब्द वही हैं; किसी के ओठों पर बमृत हो जाते हैं, किसी के ओंठों पर जहर हो जाते हैं।
जो जहरे-हलाहल है अमृत भी वही नांदा
मालूम नहीं तुझको अंदाज ही पीने के!
एकनि के वचन कंटक कटु विषरूप।
और किसी के शब्द छेद देते हैं हृदय को, जैसे कांटे छेद गए हों, कि शूल,
कि किसी ने भाला मार दिया हो, कि घाव कर जाते हैं। और एक के वचन घाव भर जाते हैं। एक के वचन रुग्ण करते हैं, एक के स्वास्थ्य दे जाते हैं।
रुको! इसके पहले कि कुछ कहने चलो, इसके पहले कि किसी को सलाह दो--मिटो! नहीं तो तुम्हारी सलाह कोई सुनेगा नहीं, कोई मानेगा भी नहीं।
कहावत है कि दुनिया में जो चीज सबसे ज्यादा दी जाती है वह सलाह है और
जो सबसे कम ली जाती है वह भी सलाह है।
और सच तो यह है कि सलाह देने वाले को कोई कभी क्षमा नहीं कर पाता।
तुम्हें जो भी सलाह देता है, तुमने उसे क्षमा किया? भीतर ही भीतर तुम कष्ट पाते हो। सलाह देने वाले पर तुम्हें क्रोध उमगता है। सलाह देनेवाला ऐसा लगता है कि एक मौके का लाभ ले रहा है; तुम मुसीबत में हो, इन्हें ज्ञान बघारने की पड़ी है। तुम्हारी पत्नी मर गई है और कोई सलाह दे रहा है कि आत्मा अमर है भाई, क्यों रो रहे हो? तबीयत होती है कि इनकी पत्नी भी मरे तो कुछ पता चले। सुन लेते हो, पर यह बात बेहूदी है। और जिसने कही है उसे न आत्मा की अमरता का पता है, न उसे कुछ लेना-देना है। वह यह मौका नहीं छोड़ सका। तुम्हारा दुख था, उसने ज्ञान दिखाने का मौका बना लिया, उसने एक अवसर का लाभ ले लिया। तोते की तरह रटे हुए शब्द उसने दोहरा दिए।
सावधान रहना, ऐसा मत करना। जो तुमने न जाना हो उसे मत कहना। इस दुनिया में लोग अगर उन बातों को कहना बंद कर दें जो उन्होंने नहीं जानी हैं तो बड़ी शांति हो जाए।
एक सूफी कहानी तुमसे कहूं। एक आदमी जंगल गया। शिकारी था। किसी झाड़ के नीचे बैठा था थका-मांदा, पास ही एक खोपड़ी पड़ी थी किसी आदमी की। ऐसे ही, कभी- कभी हो जाता है न, तुम भी अपने स्नान-गृह में अपने से बात करने लगते हो कि

आईने के सामने खड़े होकर मुंह बिचकाने लगते हो। आदमी का बचपन कहीं जाता तो नहीं। खोपड़ी पास पड़ी थी, ऐसे ही बैठे, कुछ काम तो था नहीं, उसने कहाः हलो! क्या कर रहे हैं? मजाक में ही कहा था। अपने से ही मजाक कर रहा था। खाली पड़ा था, कुछ खास काम भी नहीं था, आशा भी नहीं थी कि खोपड़ी बोलेगी।
खोपड़ी बोली कि हलो! घबड़ा गया एकदम! अब कुछ पूछना जरूरी था, क्योंकि जब खोपड़ी बोली अब कुछ न पूछें तो भी भद्दा लगेगा। तो पूछा उसने कि आपकी यह गति कैसे हुई? तो उस खोपड़ी ने कहाः बकवास करने से। भागा शहर की तरफ घबड़ाहट में। भरोसा तो नहीं आता था, मगर बिल्कुल कान से सुना था, आंख से देखा था। सोचा जाकर राजा को कह दूं। कुछ पुरस्कार भी मिलेगा, ऐसी खोपड़ी अनूठी है! राजमहल में होनी चाहिए। राजा को जाकर कहा कि ऐसी खोपड़ी देखी है। राजा ने कहा: फिजूल की बकवास मत कर! उसने कहाः नहीं, बकवास नहीं कर रहा हूं। अपनी आंख से देख कर आ रहा हूं। भागा चला आया हूं आपको खबर देने।
सम्राट ने पहले तो टालने की कोशिश की, लेकिन वह शिकारी जाहिर था, प्रसिद्ध शिकारी था। सम्राट उसे जानता भी था, झूठ बोलेगा भी नहीं। लेकर अपने दरबारियों को पहुंचा। शिकारी आगे-आगे प्रसन्नता से... उसने जाकर उस खोपड़ी से कहा: हलो! खोपड़ी कुछ भी न बोली। अरे, उसने कहाः हलो! खोपड़ी बिल्कुल न बोली। हिलाया खोपड़ी को, कहाः हलो! मगर खोपड़ी एकदम सन्नाटे में हो गई। थोड़ा घबड़ाया। राजा ने कहाः मुझे पहले ही पता था। अपने दरबारियों से कहा: उतारो इसकी गर्दन। उसकी गर्दन कटवा दी।
जब राजा लौट गया गर्दन कटवा कर तो वह खोपड़ी बोलीः हलो! आपकी यह गति कैसे हुई?
उसने कहाः बकवास करने से।
सावधान रहना! जो तुमने न जाना हो, मत कहना। जो तुम्हारा अपना अनुभव न हो, उसे मत कहना। कहने का बहुत मन होता है। कहने की बड़ी आतुरता होती है। कहने का बड़ा मजा है, रस है। अहंकार को बड़ी तृप्ति मिलती है। अहंकार को ज्ञान दिखाने से ज्यादा और किसी बात में तृप्ति नहीं मिलती है। और जिसको ज्ञानी होना हो, जिसे सच में ही ज्ञान पाना हो, उसे इस भ्रांत वासना से बचना चाहिए।
सुंदर कहत, घट घट में बचन भेद
उत्तम मध्यम अरु अधम सुनावने।
सुंदर कहते हैंः तीन तरह के वचन हैं। एक तो अधम वचन--उस आदमी के, जिसने कुछ जाना नहीं, व्यर्थ बोल रहा है। और ध्यान रखना, अकसर ऐसा हो जाता है कि तुम्हें ख्याल भी नहीं होता कि तुम झूठ बोल रहे हो। क्योंकि बात अच्छी होती है, बात सुंदर होती है, इसलिए झूठ मालूम नहीं पड़ती। लेकिन सौंदर्य से कोई बात सच नहीं होती। जब तुम अपने बेटे से कहते हो कि ईश्वर है, तो जरा सोचना, तुमने जाना है तुम्हारा अनुभव है? तुम्हारी प्रतीति है? अगर नहीं है तो तुम झूठ बोल रहे हो। और तुम इस जगत में सबसे बड़ा झूठ बोल रहे हो, क्योंकि परमात्मा के संबंध में भी झूठ बोल रहे हो।
जो आदमी छोटी-मोटी चीजों के संबंध में झूठ बोलता है, दो रुपये को तीन रुपया बताता है, वह कोई खास झूठ नहीं बोल रहा है। मगर तुम तो एक ऐसी बात बोल रहे हो, जो परम झूठ है, परम असत्य है। और साथ ही तुम बेटे को शिक्षा देते हो कि "बेटा, सच बोलना--और परमात्मा है! परमात्मा देख रहा है। सच बोलना, झूठ मत बोलना, नहीं तो परमात्मा दंड देगा, नरक भेजेगा।" और तुम सरासर झूठ बोल रहे हो। न तुम्हें परमात्मा का पता है, न तुम्हें नरक का पता है, न तुम्हें इस बात का पता है कि परमात्मा सदा देख रहा है। अगर परमात्मा सदा देख रहा है तो अभी भी देख रहा है कि बाप बेटे से झूठ बोल रहा है। फंसे तुम! फिर मत कहना पीछे, अगर कोई कहेः हलो! यह हालत कैसे हुई?
"बकवास करने से।" फिर मत कहना।
धर्म के नाम पर इतना झूठ चल रहा है। अच्छी-अच्छी बातें हैं। और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि परमात्मा नहीं है; लेकिन जब तक तुम्हारा अनुभव नहीं है तब तक तुम्हारा वचन झूठ है। सत्य तुम्हारा अनुभव हो तो ही सत्य होता है।
तो अधम वचन तो वह है जिसका तुम्हें कोई अनुभव नहीं और तुम बोल रहे हो।

उत्तम वचन वह हैः तुम ठीक वही बोल रहे हो, जो तुम्हारा अनुभव है। सच तो
यह हैः तुम बोल नहीं रहे, अनुभव ही बोल रहा है, तो उत्तम वचन है। और मध्यम दोनों के बीच में है। कुछ-कुछ तुम्हारा अनुभव है, कुछ-कुछ तुम जोड़ रहे हो। जो तुम जोड़ रहे हो उसको छोड़ दो। उतना ही कहो जितना देखा, जितना जाना; उसमें रत्ती भर मत जोड़ो। उसमें नमक-मिर्च मत मिलाओ। यह हमारी आदत है।
एक अफवाह तुम उड़ा दो। शाम तक तुम खुद ही हैरान होओगे, जब अफवाह सारे गांव में घूम कर तुम्हारे पास वापस आएगी इतनी बड़ी हो जाएगी कि तुम खुद ही चक्कर में पड़ जाओगे! तुम्हें भरोसा ही नहीं आएगा कि यह मेरी ही अफवाह है जो मैंने उड़ाई थी सुबह। चिंदी का सांप हो जाता है!
आदमी हर ची.ज को बढ़ा-चढ़ा कर कहने का आदी होता है। क्यों? क्योंकि आदमी
का अहंकार बड़ी से बड़ी चीज चाहता है। बड़ा मकान न सही, बड़ी दुकान न सही, बड़ा झूठ तो हो सकता है अपना!
मैं गांव में एक घर का मेहमान था। पति बड़े वकील हैं। जाने के पहले, उन्होंने मुझे बुलाया और कहा कि मैं तो कोर्ट जा रहा हूं, लेकिन अब आपको अपने घर छोड़ जा रहा हूं, एक बात आपको बता दूं कि मेरी पत्नी कुछ भी कहे, आप मानना मत। उसकी बढ़ा-चढ़ा कर कहने की आदत है। पुंसी हो जाए तो कैंसर बताती है। और अब आपको मैं छोड़ जा रहा हूं उसी के सहारे। वही घर में है, मैं जा रहा हूं। वह अब बताएगी आपको न मालूम क्या-क्या! और आपको पता नहीं, मैं तीस साल का अनुभवी हूं। इसलिए आपको कह रहा हूं कि उसकी बातों में पड़ना ही मत, जब तक मैं शाम तक लौट न आऊं। तो वह कुछ भी कहती है।
और सच थी बात! लोग बीमारियां भी बड़ी कर-कर के बताते हैं! एक महिला ने डाक्टर से जाकर कहा ऑपरेशन की टेबल पर कि अपेंडिक्स तो निकाल रहे हो, चीरा कितना लंबा लगाओगे? उसने कहा कि दो-तीन इंच का होगा। उसने कहा कि नहीं, छह इंच से कम लगाना ही मत।
"क्यों?"
उसने कहा कि मेरे पति का पांच इंच का है और वह इसी की अकड़ बताए फिरते हैं कि पांच इंच का चीरा लग गया। छह इंच का लगा देना; एक दफा अकड़ खत्म करवा देनी है उनकी।
मैंने तो यह भी सुना है कि एक महिला ने जाकर डाक्टर को कहा कि कुछ भी ऑपरेशन कर दो।
"काहे के लिए?"
उसने कहाः सभी स्त्रियों का... किसी का कोई, किसी ने टांसिल निकलवाया, किसी ने अपेंडिक्स निकलवाई और मेरा कुछ नहीं निकला तो, बात करने का कोई मसाला ही नहीं है। सब हांकती हैं अपना कि मेरा ऐसा हुआ ऑपरेशन, मेरा वैसा हुआ ऑपरेशन, कुछ भी निकाल दो। कुछ बात करने को तो चाहिए।
आदमी के पास कुछ न हो तो बड़े झूठ सही। अहंकार चीजों को बड़ा करने का आदी है; वह राई से, रत्ती से पहाड़ बनाता है। तुम सावधान रहना।
तो अधम, जिसे कुछ भी अनुभव नहीं है। मध्यम, जिसे कुछ-कुछ अनुभव है और उसमें खूब बढ़ा-चढ़ा रहा है। और उत्तम, जो स्वयं नहीं बोलता, जो परमात्मा को बोलने देता है। उत्तम को ध्यान में रखना।
अधिकतर लोग अधम की हालत में हैं। और मध्यम में अटक मत जाना। क्योंकि मध्यम में जो अटका है वह कभी भी अधम में गिर सकता है। थोड़े से लोग मध्यम की हालत में हैं और वहीं अटक जाते हैं। थोड़ा सा कुछ हो जाता है कि बस सब हो गया! रुके वहीं।
अंत को ध्यान में रखना। परम लक्ष्य को ध्यान में रखना। परम लक्ष्य यही है कि तुम ऐसे शून्यवत हो जाओ कि परमात्मा बोले, नाचे, गाए तुम से।
जल को सनेही मीन बिछरत तजै प्राण,
मणि बिन अहि जैसे जीवत न लहिए।
और जैसे मछली तड़प जाती है जल के बाहर और प्राण छोड़ देती है, ऐसे ही तुम परमात्मा को चाहोगे तो पा सकोगे। इससे कम में काम न चलेगा।
मणि बिन अहि जैसे जीवत न लहिए।
और जैसे सांप की मणि खो जाए तो वह जीना नहीं चाहता, ऐसे ही बिना परमात्मा के तुम जीना भी न चाहो--ऐसी जब तुम्हारी आकांक्षा हो, ऐसी बलवती

जब तुम्हारी अभीप्सा हो, तभी तुम मिट पाओगे और परमात्मा तुम्हारे भीतर प्रविष्ट होगा।
स्वाति बूंद के सनेही प्रकट जगत मांहिं,
एक सीप दुसरौ सु चातकऊ कहिए।
चातक बनो! क्योंकि चातक ही जान सकता है कि जल क्या है और स्वाति की बूंद क्या है। एक सीप से दूसरी सीप में भेद चातक ही कर पाता है। चातक की अभीप्सा ऐसी है कि वह सार से असार को भेद कर लेता है।
तुम जब परमात्मा को प्रगाढ़ता से चाहोगे तो असार तुम्हें अपने आप दिखाई पड़ने लगेगा। और जिसने असार को असार की भांति देख लिया, उसने सार की तरफ आधी यात्रा पूरी कर ली।
रवि को सनेही पुनि कंवल सरोवर में।
और जैसे सूरज का प्यारा, कमल, राह देखता है सूरज की कि कब उगे सूरज और मैं खिलूं; प्रतीक्षा करता है सुबह की कि कब आए सूरज और जगाए--ऐसी करो प्रतीक्षा! रात तुम्हारी भी लंबी है और अंधेरी है। और तुम भी वैसे ही कीचड़ में पड़े हो जैसा कमल पड़ा है। सूरज की प्रतीक्षा करो। पुकारो, आह्व करो! आएगा सूरज जरूर। निश्चित आता है। जब कमल की प्रार्थना सुन ली जाती है, तुम्हारी न सुनी जाएगी?
ससि कौ सनेहीऊ चकोर जैसे रहिए।
और जैसे चांद का प्यारा चकोर चांद को ही देखता रहता है, टकटकी लगाए चांद को ही देखता रहता है--ऐसे ही तुम इस सारे संसार में कहीं भी रहो, कैसे भी रहो कहीं उठो, बैठो, सोओ, मगर तुम्हारी टकटकी परमात्मा पर लगी रहे। उस परम प्यारे पर लगी रहे। अपलक तुम्हारी आंख उस पर जुड़ी रहे, तो एक दिन जरूर, मिलन होता है।
यहां कुछ भी अभीप्सा व्यर्थ नहीं जाती।
यहां कोई भी प्यास व्यर्थ नहीं जाती।
यहां प्यास से पहले जल है।
तैसे ही सुंदर एक प्रभु सौं सनेह जोरि,
और कछु देखि काहू बोर नहीं बहिए।।
ऐसे उस एक परमात्मा से अपने स्नेह के धागे को जोड़ लो, प्रेम के धागे को जोड़ लो। और किसी दूसरी तरफ मन को मत जाने दो। मन बहुत दौड़ लिया, बहुत भटक लिया। जन्म-जन्म तक यह भटकाव चल लिया। अब सारी ऊर्जा को उस एक की तरफ प्रवाहित करो। उस एक को पुकारो! श्वास-श्वास में उस एक को समाने दो। हृदय की धड़कन-धड़कन में उस एक को बैठ जाने दो।
मिलन होगा, मिलन निश्चित होगा! मैं उसका गवाह हुं, साक्षी हूं। मिलन होता है--मगर उसी का होता है, जिसकी अभीप्सा पूरी हो!
हुस्न से कब तक परदा करते
इश्क से कब तक परदा होता
प्रेम जगे तो परमात्मा प्रकट होने को राजी है। उसका सौंदर्य बरसने को राजी है मगर तुम झोली तो फैलाओ! तुम मांगो तो!
जीसस के वचन हैंः मांगो और मिलेगा! खटखटाओ--और द्वार खुलेंगे!

आज इतना ही।

ज्योति से ज्योति जले
दूसरा प्रवचन

गंता ही गंतव्य है

पहला प्रश्न: कल आपने सदगुरु और शिष्य को जले दीये और बुझे दीये की उपमा से समझाया और कहा कि जले दीये की आत्मिक निकटता में बुझा दीया अचानक जल उठता है। कृपा करके बताएं कि ज्योति जल उठे, उसके लिए कैसा हो शिष्य, कैसी हो बाती, कैसा हो तेल, कैसी हो निकटता?

चिंमय! शिष्य होना काफी है। शिष्य होने में सब आ गया--बाती भी, तेल भी, निकटता भी। इस छोटे से शब्द "शिष्य" में सारा सार छिपा है। और पूछते हो: कैसा हो शिष्य? तो शिष्य शब्द के सार को नहीं समझे। शिष्य तो बस एक ही जैसा होता है। शिष्य की कोई कोटियां नहीं हैं। शिष्य बहुत प्रकार के नहीं होते, भांति-भांति के नहीं होते।
जैसे प्रेम एक ही होता है, और जैसे शांति एक ही होती है, और जैसे शून्य
एक ही होता है--ऐसी ही शिष्य की दशा है। वहां द्वैत कहां! वहां अनेकता कहां! वहां भेद-भिन्नता कहां!
जैसे समस्त सागरों का स्वाद एक है, कहीं से भी चखो वह खारापन--ऐसे ही शिष्य का भी स्वाद एक है। कहीं से परखो, कैसे भी चखो, कैसे भी पहचानो--शिष्य का स्वाद है समर्पण। शिष्य का स्वाद है, अपने को गुरु में डुबा देना। शिष्य का अर्थ है, अपने को न बचाना। मैं-भाव का विसर्जन।
हम जीते हैं मैं-भाव से। हम मान कर चलते हैं कि मैं ही केंद्र हूं सारे अस्तित्व का; सारा अस्तित्व मेरे ही इर्द-गिर्द घूम रहा है; मेरे ही निमित्त चांद-तारे चलते हैं, सूरज उगता, वृक्ष बढते फलते पूच्च्132 च्च्लते, मेरे ही निमित्त ही सब हो रहा है। ऐसी भ्रांति है अहंकार की। शिष्य इस भ्रांति से मुक्त हो जाता है। शिष्य कहता हैः मैं हूं ही नहीं। शिष्य कहता हैः यह जो विराट का विस्तार है, इसमें मैं ऐसे खो गया हूं जैसे बूंद सागर में खो जाती है। मैं बचा नहीं। मेरी अपनी कोई सीमा न रही।
और जिसने साहस किया अपने को इस भांति मिटाने का, वह सब कुछ पाने का अधिकारी हो जाता है।
शिष्य है विसर्जन।
शिष्य है समर्पण।
शिष्य है आध्यात्मिक अर्थों में परम आत्मघात। अपने को पोंछ देना।
एकदम से यह पोंछ देना संभव नहीं होता, नहीं तो व्यक्ति सीधा परमात्मा में विलीन हो जाए, सद्गुरु की बीच में सीढ़ी आवश्यक न हो। सद्गुरु की सीढ़ी आवश्यक होती है, क्योंकि तुम एकदम विलीन होने को राजी नहीं होते। तुम कहते होः कोई सहारा तो हो! किसके सहारे विलिन हो जाऊं? मिटता हूं, लेकिन किन चरणों में मिटूं, कोई चरण तो हों! छोड़ता हूं, छोड़ना चाहता हूं अपने को, लेकिन किनके हाथों में छोड़ दूं? परमात्मा के हाथ दिखाई नहीं पड़ते। उसके पैर समझ में नहीं आते कहां हैं। उसका हृदय धड़कता भी हो... धड़कता ही होगा, अन्यथा अस्तित्व चलेगा कैसे, जीएगा कैसे? वही तो धड़कता है समस्त हृदयों में। पर कैसे उसकी धड़कन को हम सुनें? हम इतने छोटे, वह इतना बड़ा! हम इतने क्षुद्र, वह इतना विराट! हम इतने सीमित, वह इतना असीम! हमारे और उसके बीच फासला अनंत है। हाथ फैलाएं तो उस तक पहुंचते नहीं। पुकारें तो पुकार उस तक जाती नहीं। आवाज लड़खड़ा कर गिर जाती है। आवाज जाती है थोड़ी दूर तक, मगर इस अनंत विस्तार को कैसे पार सकेगी? सेतु नहीं बनता। व्यक्ति और परमात्मा के बीच सेतु नहीं बनता। सेतु का उपाय नहीं दिखता। अतैव सदगुरु!
सदगुरु पड़ाव है--सीमित से असीम के बीच, क्षुद्र से विराट के बीच पड़ाव है। सद्गुरु मंजिल नहीं है, वहां रुक नहीं जाना है। वहां से छलांग लेनी है। सद्गुरु सीढ़ी है। उपयोग कर लेना है, धन्यवाद दे देना है और आगे बढ़ जाना है।

सदगुरु की सीढ़ी का अर्थ होता हैः कुछ-कुछ सीमित, कुछ-कुछ असीम। एक हाथ सीमित, एक हाथ असीम। दिखाई पड़ता है सीमित और जो नहीं दिखाई पड़ता है वह असीम। हमारी भांति देह में और परमात्मा की भांति देह-हीन। मनुष्य और परमात्मा के बीच एक कड़ी है। चलता है, उठता है, बैठता है, सोता है, खाता है, बस ठीक हम जैसा है। इसलिए उसका हाथ पकड़ा जा सकता है। उसके चरणों में सिर रखा जा सकता है। उसके हृदय के पास कान लाए जा सकते हैं और उसकी धड़कन सुनी जा सकती है। उसका गीत हमारी ही भाषा में गाया जा रहा है।
कभी-कभी कठिन भी हो समझना, फिर भी असंभव तो नहीं। शांत मन से, शून्य मन
से समझा तो कुछ न कुछ बूंद तो पड़ ही जाती है। न भरे घड़ा, पर बूंद भी पड़ जाए जल की, तो भी भरेपन की यात्रा शुरू हो गई। घड़े में एक बूंद भी गिरे तो घड़ा अब उतना खाली नहीं रहा जितना पहले खाली था। और बूंद-बूंद मिल कर तो सागर बन जाते हैं। सागर भर जाते हैं बूंद-बूंद होकर, तो गागर न भर जाएगी?
सद्गुरु हम जैसा है और हम जैसा नहीं भी। दूर से देखोगे तो बिल्कुल हम जैसा और जैसे-जैसे पास आने लगोगे, वैसे-वैसे सदगुरु एक खिड़की बन जाता है और उससे अनंत का आकाश झांकने लगता है। जितने समीप आओगे उतना ही पाओगे कि जो हम जैसा दिखता था, बिल्कुल हम जैसा नहीं है।
इसलिए जो सद्गुरु के करीब आए, उन्होंने गुरु को भगवान कहा। जो दूर रहे, वे सदा हैरान हुए, चौंके, परेशान हुए, तर्क-विचार में पड़े, विवाद उठाया। उनका विवाद उठाना भी संगत है, क्योंकि वे कहते हैंः कैसा यह भगवान्!
बुद्ध के शिष्य बुद्ध को भगवान कहते थे। जो नहीं पास आए बुद्ध के, जिन्होंने, बहुत दूर-दूर से देखा, उन्हें बुद्ध का अंतर्तम कैसे दिखाई पड़े? उन्हें बुद्ध का भीतर कैसे अनुभव में आए? उन्हें बुद्ध के हृदय की धड़कन कैसे सुनाई पड़े? उन्हें बुद्ध के शून्य का स्वाद कैसे लगे? उन्होंने तो दूर से देखी बुद्ध की दशा, तो देह ही दिखाई पड़ी। और तब उन्होंने वे सब बातें देखीं जो आदमी में होती हैं, सब आदमियों में होती हैं। बुद्ध कभी बीमार पड़ते हैं, तो सोचा उन्होंनेः कैसा भगवान! बुद्ध बूढ़े हुए, तो सोचा उन्होंनेः कैसा भगवान! भगवान कभी बूढ़ा होता है? भगवान कभी बीमार पड़ता है? बुद्ध को भूख लगती है, भगवान को कभी भूख लगती है? और फिर एक दिन बुद्ध तिरोहित हो गए इस देह से, जैसे सब तिरोहित हो जाता है, तो बुद्ध की भी मृत्यु घटित हुई। तो जो दूर थे, उन्होंने कहाः देखा! हम पहले ही कहते थे, भगवान कभी मरता है?
और उनकी बातों में संगति है और उनकी बातों में भी सचाई है। मगर उन्होंने बुद्ध का आधा रूप ही देखा। उन्होंने बुद्ध का वर्तुल देखा, लेकिन केंद्र चूक गया। वे बुद्ध के मंदिर के बाहर-बाहर घूमे, मंदिर की दीवाल बाहर से देखी, मंदिर का देवता अपरिचित रह गया। उन्होंने वीणा तो देखी बुद्ध की, लेकिन वीणा से उठता संगीत नहीं देखा। वे इतने पास आए ही नहीं कि संगीत सुन सकते। उन्होंने फूल तो देखा बुद्ध का, लेकिन फूल से उठती सुवास उनके नासापुटों में न भरी। वे इतने दूर-दूर रहे, अपने को ऐसा बचाए रहे, कवच ओढ़े रहे, ढालों में अपने को छिपाए रहे, कि बुद्ध की गंध उनके नासापुटों तक पहुंचे भी तो कैसे? सो वे भी ठीक ही कहते हैं कि क्यों एक मनुष्य को भगवान कहते हो?
मगर जो पास आए, जिन्होंने हिम्मत जुटाई... और पास आना हिम्मत की बात है, बड़ी हिम्मत की बात है! बड़ी-से-बड़ी हिम्मत एक ही है इस जगत में --सद्गुरु के पास आना। क्योंकि उसके पास आने का अर्थ मिटना ही होता है। जैसे कोई नमक की डली सागर में उतर जाए, ऐसा है सद्गुरु में उतरना। नमक की डली गलेगी और खो जाएगी। खोने की जिनमें तत्परता है, जिन्होंने जीवन देखा और जीवन की व्यर्थता देखी, जिन्होंने जीवन पहचाना और जीवन की असारता पहचानी, जिन्होंने जीवन को सब तरफ से टटोला और खाली और रिक्त और खोखा पाया, वे ही तैयार होते हैं कि ठीक है, जीवन में तो कुछ भी नहीं है, अब इस यात्रा पर भी निकल कर देखें! अब यह अभीप्सा और। और सब यात्राएं कर चुके, दसों दिशाओं की यात्रा कर चुके, अब इस ग्यारहवीं दिशा की यात्रा और। यह भी क्यों चूकें? कौन जाने जो कहीं और नहीं मिला यहां मिले!

जो पास गए हैं उन्होंने सदा कहाः मिला है। कौन जाने, ठीक ही कहते हों!
तो जो पास आने की हिम्मत किए हैं, जैसे-जैसे पास आए, देह तिरोहित होती गई।
जैसे-जैसे पास आए, देह के भीतर जो विराजमान चैतन्य था, वह स्पष्ट होने लगा। भगवत्ता आविर्भूत होने लगी। सुगंध आने लगी। संगीत सुनाई पड़ने लगा। और जब संगीत सुनाई पड़ जाए तो वीणा गौण हो जाती है। वीणा का प्रयोजन तो संगीत सुनाई पड़ जाए, बस उतने तक है। निमित्त है।
और जब बुद्ध के भीतर विराट आकाश दिखाई पड़ने लगा... समीपता में ही दिखाई
पड़ सकता है। तुम खिड़की से बहुत दूर रहो तो खिड़की ही दिखाई पड़ती है। तुम खिड़की के पास आओ तो खिड़की के पार जो आकाश है, जिसकी कोई सीमा नहीं और वे जो दूर-दूर चमकते हुए तारे हैं, वह जो अनंत सौंदर्य है और वह जो अनंत सौंदर्य में छिपा रहस्य है, वह सब तुम पर बरस उठता है। जो खिड़की पर आकर खड़े हो गए, खिड़की को भूल ही गए।
तुमने भी नहीं देखा कभी, जब खिड़की पर आकर खड़े हो जाओगे तो खिड़की भूल जाती है, खिड़की का चौखटा भूल जाता है! खिड़की के पार जो दिखाई पड़ता है--ऐसा अगम, ऐसा रहस्यपूर्ण, ऐसा आह्लादकारी! मंत्रमुग्ध हो उठता है जो खिड़की के पास आकर खड़ा हो जाता है। उसकी आंखें आकाश से संबंध जोड़ लेती हैं; खिड़की खो ही जाती है।
तो जो पास आए उन्होंने बुद्ध को भगवान कहा। जो दूर आए उन्होंने कहाः होंगे, बहुत से बहुत महामानव होंगे, मगर भगवान कैसे?
शिष्य का अर्थ होता हैः परमात्मा का तो पता नहीं चलता लेकिन किसी में अगर परमात्मा घटा हो, किसी में अगर परमात्मा की एक किरण भी उतरी हो तो उससे संबंध जोड़ लूं। ऐसे परोक्ष रूप से परमात्मा से संबंध जुड़ जाता है। प्रत्यक्ष तो संबंध नहीं जुड़ता। परोक्ष संबंध जुड़ जाता है। मेरी आंखें तो अंधी हैं, तो किसी आंखवाले का हाथ पकड़ लूं, तो आंख के जगत से संबंध जुड़ जाता है।
शिष्य का अर्थ होता हैः झुक जाना। सीखने की क्षमता--"शिष्य" का शाब्दिक अर्थ है। इसलिए जो जानने से भरे हैं, वे शिष्य नहीं हो पाते। जो ज्ञान से भरपूर हैं, वे शिष्य नहीं हो पाते। वे तो पहले से ही भरपूर हैं। जिन्हें यह दिखाई पड़ने लगा है कि मेरा ज्ञान ज्ञान नहीं... और जरा तलाशना, जरा टटोलना, जरा अपने ज्ञान को परखना, .जरा उलटना-पलटना, जरा कसौटी पर कसना। क्या जानते हो? न ईश्वर का पता है, न आत्मा का पता है, न प्रेम का पता है, न प्रार्थना का पता है, न सत्य का पता है, न निर्वाण का पता है। कहां से आए, पता नहीं। क्यों हो यहां, पता नहीं। कहां जाते हो, पता नहीं। फिर भी ज्ञानी बन बैठे हो! कुछ कूड़ा-करकट इकट्ठा कर लिया शास्त्रों से, बासे-उधार शब्द जुड़ा लिए और उन्हीं बासे शब्दों को जमाए चले जा रहे हो। और जमा-जमा कर अपने भ्रम दिए जा रहे हो कि मैं जानता हूं!
ऐसी दशा को ही मैं पंडित दशा कहता हूं। पंडित परम अज्ञान की दशा है। अमावस की रात समझो। अंधेरा ही अंधेरा है वहां। और अंधेरा भी ऐसा कि बड़ा चालाक। अंधेरा भी ऐसा कि बड़ा चतुर। ऐसा चतुर कि धोखा देता है कि मैं रोशनी हूं।
शब्द जो बैठ गए हैं भीतर, उनसे अहंकार भरता है। अहंकार की अकड़ मजबूत होती है कि मैं जानता हूं।... मैं और झुकूं! मैं तो जानता ही हूं! ... तो जो जानता है, झुक नहीं पाता। जो झुक नहीं पाता, शिष्य नहीं हो पाता। जो जानता है, झोली नहीं फैला पाता। और जो झोली नहीं फैला पाता, शिष्य नहीं हो पाता। झुको तो भरो। झोली फैलाओ तो अमृत बरसे।
अमृत तो बरस ही रहा है लेकिन तुम झोली फैलाने तक की हिम्मत नहीं कर पाते। जिसने अपने हृदय की झोली फैला दी और जिसने कहा मुझे कुछ पता नहीं और जिसने कहा कि मैं ना-कुछ हूं; कहा ही नहीं, ऐसी जिसके अस्तित्व की भावभंगिमा बनी, ऐसी जिसकी भीतर की मुद्रा बनी, ऐसा जिसके अनुभव का सार-निचोड़ हुआ-- वही शिष्य है। और जो शिष्य है, तो फिर सब शेष अपने से हो जाता है।
तुम पूछते होः "कृपा करके बताएं कि ज्योति जल उठे, उसके लिए कैसा हो शिष्य।"

"कैसे" का सवाल ही नहीं, बस शिष्य हो। और ज्योति जल उठेगी।
कैसी हो बाती, कैसा हो तेल, कैसी निकटता हो?
नहीं कोई निकटता और। शिष्य यानी वही जो निकट आ गया। दूरी कौन सी बात रखती है तुम्हें? अकड़ दूरी रखती है। अकड़ा आदमी दूर-दूर होता है, अपने को बचाए-बचाए होता है। अकड़ा आदमी सचेत होता है कि कहीं प्रभावित न हो जाऊं! अकड़ा आदमी भयभीत होता है कि कहीं ऐसा न हो कि कोई बात हृदय को छू जाए, आंखें आंसुओं से भर जाएं! कहीं कोई ऐसी बात न हो जाए कि प्रेम उमग आए! क्योंकि प्रेम उमग आए तो ज्ञान पड़ा धरा रह जाता है। क्योंकि प्रेम जग जाए, तो सारा पांडित्य कचरा होकर एक तरफ हो जाता है।
अहंकारी कहता हैः मैं जानता हूं। यह हो सकता है कि और भी कुछ जानने को
है, तो वह भी जान लूंगा।
तो अहंकारी जब सदगुरु के पास आता है तो सिर्फ और थोड़ा ज्ञान बटोरने को आता है। और ज्ञान है अंधेरा। ऐसे ही तुम्हारे पास काफी है, तुम थोड़ा और कचरा बटोर लेते हो। और बोझिल होकर लौट जाते हो। और जंजीरें बांध लेते हो। और नाव भारी हो जाती है, और डूबने के करीब हो जाती है। ऐसे ही काफी पत्थर तुमने छाती से लटकाए हैं।
शिष्य कहता हैः मेरा ज्ञान मुझसे छीन लो। ज्ञानी कहता हैः थोड़ा ज्ञान मुझे और दो। ज्ञानी कहता हैः और कैसे जानूं, इसका उपाय बताओ। कौन शास्त्र पढूं, कौन सिद्धांत समझूं-- इसका उपाय बताओ।
शिष्य कहता हैः खूब भटका हूं शास्त्रों के जंगल में, राह नहीं पाई, आग लगा दो इस पूरे जंगल में! राख कर दो इन सारे शास्त्रों को! मुझे छुटकारा दिला दो इस ज्ञान से। मुझे फिर वैसा अज्ञान दे दो जैसा बच्चे में होता है-- सरल, विस्मय से परिपूर्ण, सजग, जिज्ञासा से भरा हुआ!
जितना तुम जानते हो, उतना ही जगत और तुम्हारे बीच विस्मय का नाता टूट जाता है। और वही नाता है। वही नाता है, जिसे मैं धार्मिक नाता कहता हूं-- विस्मय का नाता। जितना तुम जानते हो, उतना ही लगता हैः क्या रखा है इस जगत में? हर बात तो तुम्हें मालूम है। जगत में फिर रहस्य दिखाई नहीं पड़ता। और जिस आदमी को जगत में रहस्य नहीं दिखाई पड़ता, उस आदमी को जगत में परमात्मा कभी दिखाई नहीं पड़ सकता।
परमात्मा क्या है? रहस्य की परम अनुभूति कोई व्यक्ति थोड़ी ही है कि दूर आकाश में किसी सिंहासन पर बैठा तुम्हारी राह देख रहा है। परमात्मा है-- विस्मय का विस्तार। परमात्मा है--सारे उत्तरों का विनाश और ऐसे प्रश्न का भीतर जन्मना, जिसका कोई उत्तर नहीं होता। उसे हमने मुमुक्षा कहा है।
जिज्ञासा के उत्तर हो सकते हैं, मुमुक्षा का उत्तर नहीं होता। इसलिए जिज्ञासा दर्शन शास्त्र में ले जाती है; मुमुक्षा, धर्म में। और धर्मशास्त्र मैं न कहूंगा, क्योंकि धर्म का कोई शास्त्र नहीं होता। धर्म के नाम पर जो शास्त्र हैं वे भी मूलतः दर्शन के ही शास्त्र हैं। वे भी दार्शनिक ऊहापोह हैं। धर्म की तो अनुभूति होती है, शास्त्र नहीं होता। हां, धर्म के शास्ता होते हैं, धर्म का शास्त्र नहीं होता। जैसे बुद्ध, कि जैसे कबीर, या जैसे सुंदरता--ये शास्ता हैं। इन्होंने जाना, जीया, अनुभव किया। इनके भीतर ज्योति जली है। इस ज्योति से जो प्रकाश पड़ रहा है तुम्हारे ऊपर, जो करीब आएगा, जो करीब आता ही चला जाएगा, उसकी बुझी ज्योति भी जल जाएगी। लेकिन कुछ हैं जो इस प्रकाश को दूर-दूर से देखेंगे और इस प्रकाश से भी कुछ सिद्धांत निर्मित करेंगे; वे वंचित रह जाएंगे। उनके हाथ में कचरा लगेगा। मूल तो छूट जाएगा, खोल रह जाएगी।
जब भी कोई सद्गुरु पैदा होता है तो उसके आसपास दो तरह के लोग पैदा होते हैं--शिष्य और पंडित। पंडित चूकते हैं। शिष्य भोग लेते हैं परमभोग। शिष्य की आंख खाली होनी चाहिए ज्ञान से। शिष्य का हृदय रिक्त होना चाहिए उत्तरों से--उधार, बासे, पराए। बस समीपता आनी शुरू हो जाती है। कौन तुम्हें दूर किए हैं? वे पहाड़ ज्ञान के, जो तुमने खड़े कर लिए हैं, वे ही तुम्हें दूर किए हुए हैं। जब एक मुसलमान मेरे पास आता है तो कौन उसे दूर किए हुए है? मेरे और उसके बीच कुरान खड़ी हो जाती है। और कुरान का उसे कुछ

पता नहीं है। कुरान का अर्थ भी उसे तब पता हो सकता है जब कुरान मेरे और उसके बीच से हट जाए। मैं कुरान हूं, लेकिन उसकी कुरान बीच में खड़ी है।
हिंदू आता है; उसके वेद, उसके उपनिषद, उसकी गीता सब बीच में खड़ी है। मैं उसे खोजता हूं, लेकिन कभी उसकी गीता पकड़ में आती है, कभी उसका वेद पकड़ में आता है, कभी उपनिषद पकड़ में आता है। उसका हृदय तो बहुत दूर दबा पड़ा है। यह पर्त-पर्त ज्ञान हटाना पड़ेगा। और मजा यह है, विरोधाभास यह है, कि जब
यह सारा ज्ञान--ये वेद, उपनिषद और गीता विदा हो जाएंगे--तो वह पहली दफा जानेगा कि उपनिषद क्या है, वेद क्या है, गीता क्या है? पकड़े रहा तो चूकता रहेगा। छोड़ा तो जानेगा। ऐसा उलटा गणित है। इस उलटे गणित के लिए जो राजी हैं वे शिष्य हैं।
और शिष्य होना काफी है, फिर और कुछ नहीं चाहिए। समीपता अपने से हो जाएगी। फिर न बाती, न तेल... ।
और यह दीया, जिसकी मैं बात कर रहा हूं, यह कोई बाती-तेल का दीया थोड़े ही है। बिन बाती बिन तेल! यह तो शुद्ध ज्योति की बात है; इसके लिए कोई तेल की जरूरत नहीं होती, न किसी बाती की जरूरत होती है। क्योंकि जो दीया तेल और बाती से जलता है वह दीया शाश्वत नहीं हो सकता; थोड़ी देर में तेल चुक जाएगा, फिर? थोड़ी देर में बाती जल जाएगी, फिर? नहीं जी, वह दीया आपको क्या देना, जो थोड़ी देर में चुक जाए! देना तो वह, जो एक बार जले तो फिर बुझे नहीं। बिन बाती बिन तेल हो, तो ही कभी बुझेगा नहीं।

दूसरा प्रश्नः आपकी बहुत-सी किताबों को पढ़ा, लेकिन एक भी संतोषजनक उत्तर नहीं मिला। कृपया कोई ऐसा उत्तर दें जो संतोषजनक हो।

पूछा है डाक्टर महेश ने।
मैं उत्तर देता ही कहां हूं? उत्तर दिया कब? मैं तो उत्तर छीन रहा हूं। मैं तो उत्तर मिटा रहा हूं। मेरी तो कोशिश है कि तुम्हारे चित्त से सारे उत्तर मिट जाएं और तुम्हारी कोशिश है कि संतोषजनक उत्तर मिल जाए। संतोषजनक उत्तर का क्या अर्थ होता है? अर्थ होता है कि जिसको पकड़ ही लें। ऐसा संतोष मिल जाए, कि फिर उसे कभी न छोड़ें। लेकिन वह तो तुम्हारी जीवनयात्रा का अंत हो जाएगा। संतोषजनक उत्तर अगर मुझसे मिल गया, तो तुम अपने परमात्मा को कब खोजोगे? संतोषजनक उत्तर ही मिल गया तो फिर खोज क्या रही? और संतोषजनक उत्तर अगर मुझसे मिल गया तो तुम सदा के लिए मुझसे बंध जाओगे। और तुम भयभीत भी होने लगोगे कि अगर मुझसे छूटे तो कहीं उत्तर न छूट जाए।
मैं तुम्हारे भीतर किसी भय को नहीं जन्माना चाहता। मैं तुम्हें निर्भय करना चाहता हूं। मैं तुम्हें अपने से नहीं बांध लेना चाहता। मैं तुम्हें सर्वांगीण मुक्ति देना चाहता हूं। और उत्तर मेरे से कैसे मिलेगा? असंतोष तुम्हारा है, उत्तर भी तुम्हें ही खोजना पड़ेगा। असंतोष तुम्हारा और उत्तर मेरा, इसका तालमेल कैसे होगा?
असंतोष के कारणों में जाओ। असंतोष की जड़ें काटो। असंतोष को तिरोहित करो, त्यागो। मैं तुमसे धन छोड़ने को नहीं कहता, न पद छोड़ने को कहता हूं, न घर-द्वार छोड़ने को कहता हूं। मैं तुमसे कहता हूंः असंतोष छोड़ो, दुःख छोड़ो, पीड़ा छोड़ो। मत पकड़े रहो असंतोष को। खोजो क्या असंतोष है? सीढ़ी लगाओ, असंतोष की गहराइयों में उतरो। वहीं तुम असंतोष को समाप्त करने वाले समाधान को पाओगे।
समस्या में समाधान छिपा होता है, लेकिन जब तक तुम बाहर समाधान खोजोगे
और समस्या भीतर है तब तक चूकते रहोगे।
मैं तुम्हारी तकलीफ समझा।
तुम कहते होः "आपकी बहुत सी किताबों को पढ़ा... !"
जब मैं तुमसे कहता हूं वेद में उत्तर नहीं है, तो क्या तुम सोचते हो मेरी किताब में उत्तर हो सकता है? अगर मेरी किताब में उत्तर हो सकता है तो वेद में क्यों न होगा? अगर मेरी किताब में हो सकता है तो कृष्ण की किताब

में तो जरूर ही होगा। किसी किताब में उत्तर नहीं है। किताबें पकड़कर लोग भटक गए हैं।
किताबों को पढ़ो, भटको मत! किताबों की सार्थकता यह नहीं है कि तुम्हें उत्तर मिल जाए। किताबों की सार्थकता यही है कि तुम्हारे सामने तुम्हारा प्रश्न स्पष्ट हो जाए, प्रगाढ़ रूप से प्रकट हो जाए। किताबों से जल नहीं मिलेगा। हां, किताबों से प्यास मिल सकती है। तो औरों की किताबों के संबंध में तो मैं क्या कहूं, मेरी किताबों के संबंध में तो निश्चित कह सकता हूं कि मेरी किताबों से असंतोष बढ़ेगा। अगर कोई मुझे आकर कहे कि मुझे आपकी किताबों से संतोष मिल गया तो मैं बहुत चौंकूंगा। कहीं कुछ भूल हो गई। या तो मुझसे भूल हो गई या उससे भूल हो गई।
पूरा प्रयोजन ही यही है कि किताब से उत्तर नहीं मिलना चाहिए। बासा होगा, उधार होगा, पराया होगा। तुम्हारे जीवन में आना चाहिए। तुम्हारे जीवन से आना चाहिए। तुम्हारी ही जीवन-भूमि में लगना चाहिए यह उत्तर। यह फूल तुम्हारे भीतर खिलना चाहिए। मेरे भीतर खिले फूल मैं तुम्हें दे भी दूं, तुम्हारे हाथ तक पहुंचते-पहुंचते कुम्हला जाएंगे। और तुम इन्हें दबाकर रख लेना अपनी गीता और कुरान में। सूख जाएंगे, फिर उनमें गंध भी न रह जाएगी। सूखे फूल, देखे न, लोग रख लेते हैं किताबों में। बस किताबों के सिद्धांत भी उतने ही सूखे हैं।
नहीं; उत्तर खोजो ही मत किताबों में। किताबों में खोजने के कारण तो मनुष्य-जाति बर्बाद हुई। कोई कुरान से बंध गया है, कोई गीता से बंध गया है, कोई धम्मपद से बंध गया। किताबें आदमी की मालिक हो गईं, आदमी किताबों का गुलाम हो गया। और फिर डरने भी लगा कि अगर किताब छूट गई तो फिर मेरा क्या होगा? यह कोई ज्ञान की दशा हुई? मुर्दा किताब मूल्यवान हो गई? कागज पर खींची गई स्याही की लकीरें मूल्यवान हो गईं? कागज पर खींची गई स्याही की लकीरें सत्य हो सकती हैं? फिर तो जब भूख लगे, तब कागज पर "रोटी" लिख लेना। जब भूख लगे तो पाकशास्त्र की किताब को छाती से लगा लेना। और जब भूख न मिटे को कसूर किसका?
तुम्हारे प्रश्न से ऐसा लगता है महेश, कि कसूर मेरा है, कि इतनी किताबें तुमने पढ़ीं, इतना श्रम किया, इतनी कृपा की--और उत्तर तुम्हें मिला नहीं! तुम पाकशास्त्र की किताबों को छाती से लगा कर बैठे हो, पेट इस भाषा को नहीं समझेगा। पेट रोटी मांगता है। और पाकशास्त्र में कितने ही व्यंजन बनाने की कितनी की सुंदर विधियां दी हुई हों, क्या काम की हैं? भाई मेरे, रोटी पकानी पड़ेगी! आटा गूंथो। किताब रखकर बैठे रहने में सुविधा जरूर है--न आटा गूंथना पड़ता, न हाथ आटे से भिड़ते, न आग जलानी पड़ती, न चूल्हा फूंकना पड़ता, न आंखों में आंसू आते, झंझट नहीं। रखे हैं अपनी किताब। लगाए छाती से बैठे हैं। मगर भूख बढ़ती रहेगी। और खतरा यही है कि कहीं यह धोखा मत दे देना कि उत्तर मिल गया। नहीं तो तुम मरोगे--भूखे मरोगे। बिना तृप्त हुए मरोगे। फिर पाकशास्त्र की किताब का अर्थ क्या है, स्वभावतः प्रश्न उठता है। अगर उत्तर नहीं मिल सकता, तो किताब की जरूरत क्या है? किताब की जरूरत उत्तर देने के लिए नहीं है, प्रश्न को प्रगाढ़ करने के लिए है, प्रश्न को स्पष्ट करने के लिए है। सद्गुरु तुम्हारे प्रश्न को स्पष्ट करता है--इतना स्पष्ट करता है कि तुम्हारी आंख के सामने तुम्हारा प्रश्न नग्न होकर खड़ा हो जाता है। इतना स्पष्ट करता है कि प्रश्न के पत्ते ही नहीं दिखाई पड़ते हैं, प्रश्न की जड़ें भी दिखाई पड़ने लगती हैं। और जिसे जड़ें दिखाई पड़नी शुरू हो जाएं, फिर उसके हाथ की बात है। चाहे तो उखाड़ दे जड़ें, प्रश्न तिरोहित हो जाएगा। और अगर उसे मजा आता हो प्रश्न में तो सींचे पानी, तो फिकर करे पौधे की, तो डाले खाद। तो प्रश्न और बड़ा होने लगेगा।
समस्या भीतर है, समाधान भीतर ही उमगाना है। और मजा ऐसा है कि हर समस्या के भीतर उसका समाधान छिपा है। अगर तुम समस्या में ठीक-ठीक उतरो तो समाधान मिल जाए। सद्गुरु तुम्हें समाधान नहीं देता, समाधान पाने की दृष्टि देता है; समाधान खोजने की दिशा देता है।
लेकिन आदमी अंधे हैं। आदमी बड़ा अद्भभुत है। मैं तुम्हें चांद बताता हूं कि देखो चांद, अंगुली उठाता हूं। तुम मेरी अंगुली पकड़ लेते हो। तुम

कहते होः कहां चांद है? हम तो आपकी अंगुली पकड़े बहुत दिन से बैठे हैं। आपकी किताब पढ़ रहे हैं। चांद कहा है?
किताबें अंगुलियां हैं चांद को बताने वाली। किताबें चांद नहीं हैं। अंगुलियों को पकड़ो मत। और कुछ तो ऐसे हैं कि अंगुलियां चूस रहे हैं।... आध्यात्मिक बच्चे! जैसे छोटे-छोटे बच्चे अंगूठा चूस रहे हैं, ऐसे आध्यात्मिक बच्चे अंगुलियां चूस रहे हैं और सोच रहे हैं कि बड़ा स्वाद आ रहा है।
और कभी-कभी ऐसा हो सकता है, जैसा कुत्तों को हो जाता है। कुत्ते सूखी हड्डियां चूसने लगते हैं। अब सूखी हड्डी से कुछ निकलता नहीं। कुछ है ही नहीं उसमें निकलने को। उसमें कोई रस थोड़े ही है। लेकिन कुत्ता चूसता है। और कुत्ते से सूखी हड्डी छीनो, बहुत नाराज हो जाता है। ऐसे ही तुमसे जब कोई वेद छीने, तुम नाराज। कोई कुरान छीने, तुम नाराज।... सूखी हड्डियां! मगर कुत्ता नाराज क्यों हो जाता है सूखी हड्डी छीनो तो? और कुत्ते को सूखी हड्डी में रस क्या मिलता होगा? रस नहीं मिलता, मगर एक जाल है। जब कुत्ता सूखी हड्डी चूसता है तो उसके मसूड़े छिल जाते हैं। उन छिले हुए मसूड़ों से खून बहने लगता है। उसी खून को वह चूसता है। सोचता है खून हड्डी से आ रहा है। आता अपने ही मसूड़ों से है। घाव बन रहे हैं मुंह में। उन्हीं घावों से खून बह रहा है। लेकिन खून का स्वाद जब उसे आता है तो सोचता है: अहा, कैसी रसपूर्ण हड्डी हाथ लगी!
शास्त्रों से भी जब तुम्हें कुछ मिलता है तो शास्त्रों से नहीं मिलता है। शास्त्र तो सूखी हड्डियां हैं। मिलता तो सदा तुम्हें अपने ही भीतर से है। और नाहक बीच में घाव बन जाते हैं-- हिंदू के घाव, जैन के घाव, ईसाई के घाव। ये सब घाव हैं।
मैं तुम्हें घावों से मुक्त करना चाहता हूं और मैं तुम्हें यह समझाना चाहता हूंः ये सूखी हड्डियां छोड़ो। उत्तर की तलाश जब तक तुम बाहर करोगे, सूखी हड्डियां ही मिलेंगी। बाहर सूखी हड्डियों के ढेर लगे हैं, रसधार तो भीतर बहती है। परमात्मा से संबंध तो भीतर होता है।
तुम कहते होः "मैं आपकी बहुत सी किताबों को पढ़ा, लेकिन एक भी संतोषजनक उत्तर नहीं मिला।"
एकदम शुभ हुआ। धन्यभागी हो तुम कि उत्तर नहीं मिला। उत्तर तो समाधि में मिलेगा। समाधान तो समाधि में मिलेगा। वे किताबें तो इशारा हैं कि ध्यान करो। वे किताबें तो कहती हैं कि आटा गूंथो। वे किताबें तो कहती हैं कि यह रहा रास्ता, चल पड़ो तो सरोवर मिलेगा।
किताब पकड़ कर मत बैठ जाओ। किताबें तो मील के पत्थर हैं। नक्शे हैं। उन नक्शों को जीवन में रुपांतरित करो।
अब भी तुम पूछ रहे होः "कृपया कोई ऐसा उत्तर दें जो संतोषजनक हो।"
मैं तुम्हारा दुश्मन नहीं। नहीं तो जरूर ऐसा उत्तर देता जो संतोषजनक होता। मैं तुम्हें संतोष देना ही नहीं चाहता। मैं तो तुम्हारे असंतोष को ऐसा प्रज्वलित करना चाहता हूं कि भभक उठो तुम। आग हो जाओ तुम। तुम्हारे जीवन में असंतोष ऐसा घिर जाए कि कोई चीज संतुष्ट न करे--धन संतुष्ट न करे, पत्नी संतुष्ट न करे, पद संतुष्ट न करे, शास्त्र संतुष्ट न करे, मंदिर-मस्जिद संतुष्ट न करे, सारा जगत असंतोष की लपटों से भर जाए--तभी तुम भीतर मुड़ोगे, नहीं तो तुम भीतर मुड़ने वाले नहीं।
भीतर लोग सस्ते ही नहीं मुड़ते। भीतर तो तभी मुड़ते हैं जब कहीं जाने का कोई उपाय ही नहीं बचता। जब तक थोड़ा भी उपाय बचे, लोग चलते जाते हैं। लोग कहते हैंः इस दिशा में और थोड़ी जांच कर लें, शायद थोड़ा और ज्यादा धन हो तो सब ठीक हो जाए। चलो चुनाव लड़ लें, दिल्ली पहुंच जाएं तो शायद सब ठीक हो जाए। थोड़े और व्रत-उपवास कर लें, थोड़ी और मंदिर-मस्जिदों की पूजा कर लें। जब तक तुम्हें कहीं भी थोड़ी सी आशा बची है, तब तक तुम भटकते ही रहोगे। बुद्ध ने कहाः "धन्य हैं वे जो हताश हो गए।" हताश! सद्गुरुओं की वाणी कभी- कभी बहुत चौंकाती है। धन्य हैं वे जो हताश हो गए, निराश हो गए! क्यों बुद्ध कहते हैं "धन्य उनको? इसलिए धन्य कहते हैं कि केवल वे ही अंतर्यात्रा पर चलते हैं। जिन्होंने सब द्वार खटखटा लिए, और सब द्वार दीवारें पाए और

जिन्होंने बहुत द्वारों पर भीख मांगी और कुछ भी न मिला और खाली के खाली लौट आए, अपमान मिला, दुतकारे गए, जगह-जगह कहा गया आगे बढ़ो--वे ही एक दिन इस सारी जलन और पीड़ा के कारण आंख बंद करते हैं और भीतर के द्वार पर दस्तक देते हैं और वहां जिसने दस्तक दी उसने संतोष पाया।
संतोष भीतर की उस दशा का नाम है, जहां कोई प्रश्न नहीं बचे। संतोष किस प्रश्न का उत्तर नहीं है, वरन सारे प्रश्नों का विसर्जन है। संतोष कोई सिद्धांत नहीं है, वरन सिद्धावस्था है।
तुम.जरा फर्क देखते हो? "सिद्धांत और सिद्धावस्था" एक ही शब्द से बनते हैं। सिद्धांत बाहर होता है, सिद्धावस्था भीतर होती है। समाधान और समाधि एक ही शब्द से बनते हैं; समाधान बाहर होता है, समाधि भीतर होती है। सिद्ध बनो। भीतर का द्वार खटखटाओ। उत्तर तो बहुत खोज चुके; अब कुछ ऐसा खोजो जहां चित्त निष्प्रश्न हो जाए। और क्या तुम्हें एक बात समझ में नहीं आती--एक प्रश्न पूछो, उसका कोई उत्तर दिया जाए, क्या हल होगा? कोई भी उत्तर दिया जाए, क्या हल होगा? उस उत्तर से और दस नए प्रश्न उठ आएंगे बस इतना ही होगा।
एक आदमी पूछता है, संसार को किसने बनाया? कहो, परमात्मा ने बनाया। वह दूसरे दिन आकर खड़ा हो जाता है कि परमात्मा ने संसार क्यों बनाया? कोई उत्तर दो, कि परमात्मा लीला कर रहा है। वह तीसरे दिन आकर खड़ा हो जाता है कि यह कैसी लीला, इतना दुःख क्यों है लीला में? कोई भूखा मर रहा है, बच्चे को कैंसर हो गया है, कोई अंधा पैदा हुआ है, कोई लंगड़ा है--यह कैसी लीला है? कोई उत्तर दो, कि भगवान पाठ पढ़ा रहा है। वह चौथे दिन आकर खड़ा हो जाता है, कि उसको कोई पाठ पढ़ाने का कोई और सुगम और सय रास्ता नहीं आता? और वह तो अंतर्यामी है, और वह तो सर्वज्ञ है, और वह तो सर्वशक्तिमान--पाठ पढ़ाने की जरूरत क्या है? सीधा ही ज्ञान क्यों नहीं दे देता? उसके हाथ में क्या नहीं। सुना नहीं, लंगड़ों को पहाड़ चढ़ा देता है, अंधों को आंखें लगा देता है, तो क्यों सता रहा है? क्यों व्यर्थ परेशान कर रहा है? दे ही दे ज्ञान। तुम सोचते हो कोई प्रश्न हल होता है? एक उत्तर दो, उससे दस प्रश्न खड़े
हो जाते हैं। कोई भी उत्तर हो, और प्रश्न खड़े करेगा। प्रश्न संतति-नियमन में नहीं मानते। उनकी संतान पैदा होती चली जाती है। बिल्कुल हिंदुस्तानी हैं! और जब तक वे एक-आध दर्जन बच्चे खड़ा न कर दें, तब तक उनके चित्त का भार कम नहीं होता। जब तक वह भीड़ न बढ़ा दें, शोरगुल न मचवा दें... !
लेकिन समाधि बांझ है। तुम हैरान होओगे। मैं कहता हूं, समाधि बांझ है।
जो समाधि में पहुंचा, फिर न कोई प्रश्न उठते, न कोई उत्तर उठते। सब गया। गए प्रश्न, गए उत्तर। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, अलग-अलग नहींं हैं। तुम सोचते हो अलग-अलग हैं। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
जब तुम्हें कोई एक उत्तर देता है, तो यह एक पहलू है। उसी सिक्के के नीचे छिपा हुआ दूसरा प्रश्न आ रहा है। तुम उलझते ही चले जाओगे।
नहीं, मैं तो तुम्हें उत्तर देने में उत्सुक नहीं हूं। फिर मैं क्या करता हूं? रोज तो तुम्हें उत्तर देता हूं! ये उत्तर नहीं हैं। इसलिए तुम्हें किताबें पढ़ कर संतोष नहीं मिला। तुम बंधे-बंधाए उत्तर चाहते हो। एक ईसाई मिशनरी मेरे पास आया था। वह कहता था, आपकी किताबें प्यारी लगती हैं। मगर आप एक छोटी सी गुटिका बनवा दो, जिसमें सब सार प्रश्नों के उत्तर आ जाएं, संक्षिप्त में, ताकि कोई भी याद कर ले। जैसे ईसाइयों की गुटिकाएं होती हैं, उसमें सब उत्तर आ जाते हैं। जरा सी गुटिका! ज्यादा पढ़ने-लिखने की जरूरत नहीं। प्रश्न लिखा है, उत्तर लिखा है। मैंने उससे कहा, भाई! जीवन इतना आसान नहीं है। जीवन इतना सस्ता नहीं है। तुम्हारी जो गुटिकाएं हैं, प्रश्न-उत्तरों की, बचकानी हैं। मूढ़ों को शायद थोड़ी-बहुत राहत देती हों, मुर्दों को शायद थोड़ी-बहुत सांत्वना मिलती हो; मगर जिनके भीतर जिज्ञासा है, मुमुक्षा है, उनके लिए तुम्हारी किताबें कचरा हैं। उनसे कुछ हल नहीं होता।
जीवंत आदमी वस्तुतः उत्तर नहीं चाहता--ऐसी चित्त की दशा चाहता है, जहां कोई प्रश्न अब नहीं उठते; जहां सन्नाटा है; जहां अपूर्व शांति है;

जहां सब हल हुआ! इसलिए हमारी खोज समाधान की नहीं है, हमारी खोज समाधि की है।
आह वो मंजिले-मुराद दूर भी है करीब भी।
देर हुई कि काफिले उसकी तरफ रवां नहीं।।
दैरो-हरम हैं गर्दे-राह नक्शे-कदम हैं मेहरो-माह।
इनमें कोई भी इश्क की मंजिले-कारवां नहीं।।
किसने सदा-ए-दर्द दी, किसकी निगाह उठ गई।
अब वे अदम अदम नहीं, अब ये जहां जहां नहीं।।
मंदिर और मस्जिद रास्ते की धूल हैं; ये जीवन का गंतव्य नहीं।
आह वो मंजिले-मुराद दूर भी है.करीब भी!
और वह आकांक्षाओं की आकांक्षा... मंजिले-मुराद! वह सपनों का सपना! अभीप्साओं की अभीप्सा! मंजिले-मुराद!
आह वो मंजिले-मुराद दूर है करीब भी!
क्यों दूर भी है.करीब भी? अगर प्रश्न और उत्तर से चलो तो बहुत दूर, अनंत दूर, कभी कोई पहुंचता नहीं उस राह से। और करीब भी है। अगर आंख बंद करो और अपने में डूबो, तो अभी और यहीं।
आह वो मंजिले-मुराद दूर भी है करीब भी।
देर हुई कि काफिले उसकी तरफ रवां नहीं।।
लेकिन बहुत कम लोग उस तरफ जाते हैं।
देर हुई कि काफिले उसकी तरफ रवां नहीं।
यात्री-दल उस तरफ जा ही नहीं रहे। कोई चला काबा, कोई चला काशी, कोई चला गिरनार।
देह हुई कि काफिले उसकी तरफ रवां नहीं।
भीतर चलो! महेश, भीतर चलो! किताबों में नहीं, शब्दों में नहीं, सिद्धांतों में नहीं-- मौन में उतरो!
दैरो-हरम हैं गर्दे-राह नक्शे-कदम हैं मेहरो-माह।
इनमें कोई भी इश्क की मंजिले-कारवां नहीं।।
वह जो तुम्हारे भीतर तलाश चल रही है, कोई तृप्त न कर सकेंगे--न मंदिर
और मस्जिद और न चांद और तारे। एक ही जगह से तृप्ति का जन्म होगा, एक ही केंद्र से सुवास उठेगी--और वह केंद्र तुम अपने भीतर लिए बैठे हो। खोजी के भीतर छिपी है खोज। गंता में छिपा है गंतव्य। कहीं जाना नहीं है। घर आना है। और एक क्षण में सब बदल जाता है।
किस ने सदा-ए-दर्द दी किसकी निगाह उठ गई।
अब वो अदम अदम नहीं अब ये जहां जहां नहीं।।
समाधि के क्षण में सब बदल जाता है। फिर यह दुनिया दुनिया नहीं। यह आदमी आदमी नहीं। यह मन मन नहीं। ये प्रश्न प्रश्न नहीं। ये उत्तर उत्तर नहीं। एक घड़ी में तुम किसी और ही लोक में रुपांतरित हो जाते हो।
मेरी चेष्टा तुम्हें संतोषजनक उत्तर देने की नहीं है। मेरी चेष्टा तुम्हें समाधि देने की है। संतोष तो समाधि की छाया है।
दुनिया को किसी नौअ से ये राज मिले
दुनिया के किसी साज से ये साज मिले
दुनिया को तो हम देते सुकूने-जावेद
कुछ दिल के धड़कने का भी अंदाज मिले।
असली प्रश्न क्या है? --कुछ दिल के धड़कने का भी अंदाज मिले!
असली प्रश्न क्या है? मैं कौन हूं?
कुछ दिल के धड़कने का भी अंदाज मिले
एक ही राज है, जिसे खोल लेना है। और पर्दा क्या है? बस हम भीतर नहीं देखते, यही पर्दा है। आंखें बाहर ही देखती हैं, यही पर्दा है।
कल देखा नहीं, सुंदरदास ने कितनी बार कहाः आंख से देखोगे बाहर, चूकोगे! कान से सुनोगे बाहर, नहीं सुनाई पड़ेगा वह अनाहद नाद। चखोगे जीभ से, स्वाद नहीं मिलेगा परमात्मा का। लौटो! प्रतिक्रमण करो! प्रत्याहार करो! आंखों को पलटाओ भीतर, कानों को उलटाओ भीतर! सुनो उस नाद को जो भीतर है।
देखो उस दृश्य को जो भीतर है।

राबिया अपने झोंपड़े में बैठी है। फकीर हसन बाहर निकला। सुबह हुई, सूरज निकला। प्यारा सूरज! पक्षियों के गीत! सुबह की शीतल हवा! मस्त हो हसन ने भीतर आवाज दीः राबिया! तू भीतर क्या करती है? बाहर आ, देख परमात्मा ने कैसे सुंदर सुबह को जन्म दिया है!
राबिया खिल-खिला कर हंसने लगी। उसने कहाः पागल हसन! तू भीतर आ, क्योंकि जिसने सुबह को जनमाया उसे मैं भीतर देख रही हूं। सुबह बहुत सुंदर है मगर उसके बनानेवाले के सौंदर्य का क्या कहना!
महेश, भीतर आओ।
वो सोज दर्द मिट गए वो जिंदगी बदल गई
सवाले-इश्.क है अभी ये क्या किया, ये क्या हुआ
लौटोगे भीतर तो चौंकोगे। समझ में ही न आएगा कि यह क्या हुआ, यह क्या किया! सब ऐसे बदल जाता है जैसे बिजली कौंध जाए। जहां पहले सिवाय घृणा के, वैमनस्य के, ईर्ष्या के, शत्रुता के और कुछ भी न था, वहां प्रेम की गंगा बहने लगती है। और जहां प्रश्नों के झंझावात पर झंझावात उठते थे, वहां एक ऐसी शांति छा जाती है, जहां कोई हवा की तरंग भी नहीं होती। और जहां अंधड़ ही अंधड़ थे और तूफान ही तूफान थे, वहां जीवन के दीए की लौ ऐसे ठहर जाती है कि उसमें कंप भी नहीं होता।
सुकूते-शाम मिटाओ, बहुत अंधेरा है
सुखन की शमा जलाओ, बहुत अंधेरा है
चमक उठेंगी सियाह-बख्तियां जमाने की
नवा-ए-दर्द सुनाओ, बहुत अंधेरा है
दियारे-गम में दिले-बेकरार छूट गया
संभल के ढूंढने जाओ, बहुत अंधेरा है
ये रात वो है कि सूझे जहां न हाथ को हाथ
ख्यालो दूर न जाओ, बहुत अंधेरा है
वो खुद नहीं जो सरे-बज्मे-गम तो आज उसके
तबस्सुमों को बुलाओ, बहुत अंधेरा है
पसे-गुनाह जो ठहरे जो ठहरे थे चश्मे-आदम में
उन आंसुओं को बहाओ, बहुत अंधेरा है।
प्रेम में पगो। समाधि में जगो। नाचो, जो नाच कितने जन्मों से रुका पड़ा है! रोओ, आंसू कब से आंखों में सम्हाले बैठे हो! गाओ! गुनगुनाओ! ऐसे समाधि फलेगी। और समाधि जहां है वहां अंधेरा नहीं है। समाधि जहां है, वहां असंतोष नहीं है।
नहीं; उत्तरों से नहीं कुछ हल होगा। अच्छा ही हुआ कि किताबों से तुम्हें उत्तर न मिले। अभागे हैं वे जिन्हें किताबों से उत्तर मिल जाते हैं। वे किताबों को छाती से लगाकर बैठ जाते हैं।
क्या कहते थे इसका तो किसे होश रहा
हां बज्म में तकरीरों का एक जोश रहा
देखा जो ये रंग होश वालों का "फिराक"
दीवाना भी कुछ सोच के खामोश रहा
यहां होश वाले, तथाकथित होश वाले--पंडित-पुरोहित, संत-महात्मा उत्तर देने में लगे हैं। बड़े विवाद चल रहे हैं!
क्या कहते थे इसका तो किसे होश रहा
हां बज्म में तकरीरों का एक जोश रहा
यहां लोग क्या कह रहे हैं, इसका उन्हें पता भी नहीं है। याद करो सुंदरदास ने कल ही कहाः जब तक सुधि न आ जाए, कहना मत कुछ। सुधि न जगे भीतर, तो चुप ही रह जाना। यहां लोग उत्तर दे रहे हैं--पूछो किसी से। शायद ही तुम ऐसा आदमी यहां पाओ जो कहे कि भाई, मुझे मालूम नहीं। पूछो किसी से। कुछ भी पूछो। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो कहेः मुझे मालूम नहीं है। पूछो किसी से, ईश्वर है? कोई कहेगा, हां है। और मरने-मारने को तैयार है, अगर न मानो उसकी बात। और कोई कहेगा नहीं है, वह भी मरने मारने को तैयार है अगर न मानो उसकी बात। कोई कहता है, चतुर्मुखी है और कोई कहता है हजार हाथवाला है। और कोई कहता है निराकार है। और सब झगड़ रहे हैं।

तुम जरा देखो तो, उत्तर देने वाले कैसी झंझट में पड़े हैं और कैसे झगड़ रहे हैं! इनको खुद ही संतोष नहीं मिला, इनके उत्तरों से किसको संतोष मिलेगा? कितनी छोटी बातों पर झगड़े चल रहे हैं! ऐसी छोटी बातों पर झगड़े चलते हैं कि सोच कर विश्वास भी नहीं आता।
मैं एक गांव में मेहमान था। जैन मंदिर के सामने से निकला तो पुलिस खड़ी थी। ताला लगा था। मैंने पूछाः मामला क्या है? तो कहा कि दिगंबरों और श्वेतांबरों में झगड़ा हो गया। अब दिगंबर और श्वेतांबर दोनों ही महावीर को मानते हैं। भेद बड़े छोटे हैं--ऐसे बचकाने कि कहो तो हंसी आए। मगर बड़े-बड़े ज्ञानी, महात्मा, मुनि विवाद में पड़े रहते हैं। बातें बड़ी छोटी-छोटी हैं। तुम चकित होओगे कि झगड़ा क्या था। मैंने पूछा, झगड़ा आखिर था क्या? पुलिसवाले भी... अब पुलिसवालों से बुद्धू और कोई दुनिया में होते हैं! वे भी हंसे। उन्होंने कहा कि झगड़ा क्या था, यह तो हमें भी हंसी आती है। झगड़ा यह है कि इस मंदिर में सदा से ऐसा रहा कि श्वेतांबर-दिगंबर दोनों ही पूजा करते हैं। बारह बजे तक एक संप्रदाय पूजा करता है, बारह बजे के बाद दूसरा संप्रदाय पूजा करता है। श्वेतांबर महावीर की खुले आंख पूजा करते हैं और दिगंबर महावीर की बंद आंख पूजा करते हैं।
सोचना.जरा झगड़ा! तो जब महावीर की पूजा चलती है, तो श्वेतांबर एक नकली आंख चिपका देते हैं, क्योंकि महावीर की मूर्ति... पत्थर की, बंद आंख होती है। उस पर एक नकली आंख चिपका देते हैं ऊपर से खुली आंख! फिर पूजा करते हैं। दिगंबर जब आते हैं, नकली आंख निकाल अलग कर देते हैं, फिर बंद आंख की पूजा करते हैं। कोई श्वेतांबर भक्त... अब भक्त क्या होंगे, उपद्रवी रहे होंगे। ये कोई भक्ति के लक्षण हैं? कुछ ज्यादा भक्ति में आ गए। उनका समय भी निकल गया, मगर वे अपनी भक्ति किए ही चले गए। फिर कोई दिगंबर भक्त भी आ गया। आखिर भक्त तो सभी हैं! कोई नासमझ श्वेतांबरों में ही थोड़े होते हैं, दिगंबरों में भी होते हैं। उन्होंने कहा, हटाओ! समय पूरा हो चुका। अब हम भक्ति करेंगे।
उन्होंने जबर्दस्ती आंख हटा दी। अब कोई किसी के भगवान की आंख हटा दे...
और दोनों के भगवान एक ही हैं! सिर खुल गए। लाठियां चल गईं।
तुम देखते हो ये उत्तर देन वाले! ये मंदिर-मस्जिद, ये सब लड़वाते हैं। इनके उत्तरों से तुम्हें समाधान होगा? इनके खुद के समाधान कहां हैं? क्या कहते थे इसका तो किसे होश रहा
हां बज्म में तकरीरों का एक जोश रहा
हां, भाषण बहुत हो रहे हैं, विवाद बहुत हो रहे हैं, शास्त्रार्थ बहुत
हो रहे हैं।
देखा जो ये रंग होश वालों का "फिराक"
यह तथाकथित होश वाले और बुद्धिमान और पंडित और पुरोहितों का यह रंग
जब देखा...
देखा जो ये रंग होश वालों का "फिराक"
दीवाना भी कुछ सोच के खामोश रहा
दीवाने बनो महेश! खामोशी सीखो। चुप्पी साधो। अब भीतर के शास्त्र में उतरो। वहां शास्त्रों का परम शास्त्र है। वहां वेदों का परम वेद है। जहां सारे विचार खो जाते हैं, वहीं उत्तर है। उत्तर की तरह नहीं--वहीं समाधान है। समाधान की तरह नहीं--समाधि की तरह। फिर कोई प्रश्न नहीं उठता। फिर किसी सिद्धांत पर कोई पकड़ नहीं रह जाती। फिर न केवल तुम्हारे भीतर एक संतोष का फूल खिलता है; जो तुम्हारे पास आते हैं, उनके भीतर भी थोड़ी-थोड़ी आभा, थोड़ा-थोड़ा रंग तुम्हारे संतोष का लगने लगता है।

तीसरा प्रश्नः
अदांए हैं तेरी फानी, करिश्मे हैं लासानी
सच तो यह है कि रोआं-रोआं छलक उठा है मात्र एक भाव से!
वारी वारी, वारी वारी
वारी सद्गुरु तैथों!
जिस अमृत तान सुनाई, धन सतगुरु मेरे

जिस जीवन जोत जलाई
सदके-सदके, सदके सदके
सदके एन्हां चरणां हो।
जिन्हां सच्ची राह दिखलाई
वारी वारी, सदके सदके
सदके सतगुरु तैथों।
धन सतगुरु मेरे, जिस अमृत जोत जलाई!

निष्ठा! इसी के लिए यह आयोजन है। इसी के लिए इतने दीवाने इकट्ठे हुए हैं--इसीलिए कि ज्योति जले। मैं तो तत्पर हूं, बस तुम्हारी तत्परता हुई, कि उसी क्षण घटना घट जाती है। और फिर निश्चित ही गहन अहोभाव उठता है। ऐसा अहोभाव सब में उठे, ऐसी घड़ी सबको आए, ऐसी भाव-दशा सब में बहे--यही आकांक्षा है।
शुभ हुआ। रोआं-रोआं छलक उठता है--निश्चित छलक उठता है! एक ऐसी शराब भीतर बहने लगती है कि जिसमें बेहोशी भी बड़ी है और होश भी बड़ा है। ऐसी अद्भभुत शराब में डूब जाता है शिष्य कि जैसे-जैसे बेहोश होता है वैसे-वैसे और होश बढ़ता है। एक तरफ मस्ती छाती जाती है, एक तरफ नृत्य उठता है, और दूसरी तरफ सब शांत होने लगता है।
तूने कहाः "रोआं-रोआं छलक उठा है मात्र एक भाव से। वारी सदगुरु तैथों!"
इस भाव को खोने मत देना। यह भाव धीरे-धीरे स्थायी भाव बने। ऐसा भाव बहुत बार आता है, फिर खो जाता है। और जब खो जाएगा तो बड़ी पीड़ा होगी। जिन्होंने नहीं जाना है प्रकाश को, जिन्हें झलक भी नहीं मिली, उन्हें झलक भी नहीं मिली, उन्हें अंधेरे में पीड़ा नहीं होती। वे अंधेरे से राजी होते हैं। वे जानते हैं अंधेरा ही है, और तो कुछ है नहीं। जब पहली दफा ज्योति की झलक मिलती है और ज्योति चली जाती है, तो अंधेरा बहुत घना हो जाता है। अंधेरा फिर बहुत काटता है। जिसे स्वाद लगा अमृत का, फिर जिंदगी पूरी जहर मालूम होने लगती है।
इसलिए इस भाव को स्थायी भाव बनाना। इस भाव को संभालना। इसे ऐसे ही संभालना होता है, जैसे गर्भिणी स्त्री अपने गर्भ को संभालती है। चलती है, उठती है, बैठती है, काम भी करती है, पर प्रतिपल ख्याल रखती है। एक नये जीवन का आविर्भाव उसके भीतर हो रहा है। सब उसी के लिए समर्पित होता है। अब दौड़ती नहीं, क्योंकि दौड़ नहीं सकती। अब झगड़ती नहीं, क्योंकि एक नए जीवन का आविर्भाव हो रहा है। कहीं वह प्रथम से ही कुलषित न हो जाए!
निष्ठा, तू गर्भिणी हुई! अब इस भाव को संभालना अपने गर्भ में।
जिस अमृत तान सुनाई, धन सतगुरु मेरे
जिस जीवन जोत जलाई!
अभी तो जो हुआ वह ऐसे हुआ जैसे अंधेरी रात में, अमावस की रात में, बादल घिरे हों और बिजली चमक जाए और एक क्षण को रोशनी हो, और फिर घना अंधेरा। अब इस रोशनी को एक शाश्वत प्रकाश का स्रोत बनाना होगा। अब तेरे पास कुछ खोने को है, अब सम्हल कर चलना।
सुना है मैंने, जापान का एक सम्राट रोज रात जैसे पुराने सम्राटों की आदत थी, घोड़े पर सवार होकर राजधानी में निकलता था। और तो सब सोए रहते, एक फकीर नंगा-धड़ंग, न उसके पास कुछ, एक झाड़ के नीचे बड़ा सावधान बैठा रहता था-- आंखें खोले हुए, चौकन्ना! धीरे-धीरे सम्राट उत्सुक होने लगा। वह अकेला ही आदमी था जो जागा रहता था। और वह अकेला ही आदमी था जिसको सम्राट जागा हुआ पाता अपनी यात्रा में। एक दिन रुका, पूछा फकीर से कि क्या मैं पूछ सकता हूं, कि तुम ऐसे जागे बैठे रहते हो और है तुम्हारे पास कुछ भी नहीं? सोओ मजे से!
वह फकीर हंसने लगा। उसने कहाः पहले बहुत सो चुका। जब कुछ नहीं था, तब चादर तान कर सोता था। अब कुछ है, जिसको बचाना है। अब कैसे सो सकता हूं? चोरी जाने का डर है। हाथ से छूट जाने का भय है। नींद में डूब जाए। सम्राट

ने कहा लेकिन मुझे कुछ दिखायी नहीं पड़ता, एक तुम्हारा भिक्षापात्र है, एक फटी-पुरानी-सी कंबली, और क्या है?
वह फकीर कहने लगाः मेरी आंखों में देखो।
सम्राट ने कभी किसी की आंखों में इस तरह देखा नहीं था। ऐसी आंखें भी नहीं थीं, जिनमें कुछ देखने जैसा कुछ हो। सम्राट ने उन आंखों में देखा और चकित हो गया। और जब घड़ी भर बाद विदा हुआ तो सम्राट भिखमंगा था और भिखमंगा सम्राट हो गया था। क्या हो गया? सम्राट ने देखा, भीतर जरूर संपदा है। एक नया राज्य। और फकीर ठीक कहता है कि अब मेरे पास कुछ खोने को है।
इधर मेरा रोज का अनुभव है, जिन संयासियों के पास कुछ खोने को हो जाता है, उन्हें मैं बहुत सावधान करता हूं। उन्हें बहुत समझाता हूं कि अब.जरा संभल कर रहना, नहीं तो पछताओगे। जैसे-जैसे ऊंचाई बढ़ती है, वैसे-वैसे गिरने की संभावना भी बढ़ती है। और जितनी ऊंचाई पर चलते हो, उतना ही सावचेत चलना होगा। जो नीचे चलते हैं, घाटियों में सरकते हैं, उन्हें क्या सावचेतता की जरूरत है! वे नींद में भी चलें तो चलेगा।
तो निष्ठा, आज से तू गर्भिणी हुई। अब तेरे भीतर जो अहोभाव जगा है, इसे संभालना। यह जो थोड़ी-सी ज्योति की झलक तुझे मिली है, अब यह खोए न, अब सब इस पर वारना। अब सब तरफ से बागुड़ लगा लेना। अब ऐसा कुछ मत करना जिससे इस ज्योति को चोट पहुंचे। और ऐसा सब कुछ करना जिससे इस ज्योति को जल मिले। सदके एन्हां चरणां हो
जिन्हा सच्ची राह दिखलाई
वारी-वारी, सदके-सदके
सदके सत्गुरु तैथों
धन सदगुरु मेरे, जिस अमृत जोत जलाई।
जली है, पहली झलक उठी है। तुझमें ही नहीं, औरों में उठ रही है। बहुतों में उठ रही है। तेरे बहाने उन सब को कह रहा हूं। और जब मैं एक को उत्तर देता हूं तो यह मत ख्याल करना कि उसको ही उत्तर देता हूं। वह तो निमित्त है। उसके बहाने उन सबको उत्तर देता हूं जो उसी दशा में हैं।
जिसके भीतर यह ज्योति जगनी शुरू हो, अब ख्याल रखना क्रोध मत करना। इसलिए नहीं कि क्रोध बुरा है, अब बुरे-भले का सवाल नहीं है। अब क्रोध मूढ़ता है। तुम्हारे हाथ में पत्थर हो, क्रोध आ जाए, मार देना फेंक कर; मगर अब हीरा है तुम्हारे हाथ में, अब क्रोध मत करना, नहीं तो गुस्से में कहीं मार दो फेंककर, तो गया! और अब आसान है क्रोध से मुक्त होना। अब कामवासना को धीरे- धीरे नमस्कार करना, अब विदा देना, क्योंकि यह ज्योति उसी ऊर्जा से जलती है जिससे कामवासना जलती है। अगर कामवासना को जब अप्रज्वलित रहने दिया तो यह ज्योति जितना पोषण चाहिए न पा सकेगी। तो अब कामवासना से धीरे-धीरे धीरे- धीरे अपने को मुक्त कर लेना।
और मैं तुम्हें कोई ब्रह्मचर्य का पाठ नहीं सिखा रहा हूं, यही मेरा भेद है। अब तो मैं तुमसे यह कह रहा हूं, यह सीधा गणित है। अब तुम्हारे पास ऊर्जा को ऊपर ले जाने का द्वार खुला है। अब इतनी ऊर्जा संगृहीत होनी चाहिए कि तुम ऊपर जा सको। मैं कभी भी नहीं कहता, क्षुद्र को छोड़ो। मैं सदा कहता हूं, विराट को पाओ। लेकिन विराट को पाते ही, विराट को पाने की यात्रा शुरू होते ही, क्षुद्र छूटना शुरू हो जाता है। क्षुद्र को छोड़ना ही पड़ता है। समझो, तुम अपनी झोली में कंकड़-पत्थर भरे जाते थे, फिर अचानक हीरे की खदान मिल गई, अब क्या करोगे? कंकड़-पत्थर गिराओगे झोली से कि नहीं? नहीं गिराओगे तो झोली में हीरे कैसे भरोगे? और इसको त्याग मत समझना, यह त्याग क्या है? अगर कंकड़-पत्थर छोड़ दिए और हीरों से झोली भरी, इसमें त्याग क्या है? यह महाभोग है।
इसलिए मैं कहता हूंः सिर्फ मूढ़ त्यागते हैं, ज्ञानी भोगते हैं। ज्ञानी महाभोगी है।
एक आदमी रामकृष्ण के पास आया और बहुत रुपये लाया। और उसने उनके चरणों में रखे। और रामकृष्ण ने कहाः भाई, यह तू क्या करता है? तो उसने कहाः आप इतने बड़े त्यागी, मैं कुछ और नहीं कर सकता मैं--भोगी हूं, भ्रष्ट हूं। --मगर

इतना तो कर सकता हूं कि किसी त्यागी के चरणों में सिर झुकाऊं और जो कुछ मेरे पास है चढ़ाऊं।
रामकृष्ण ने कहाः तू गलत बातें कह रहा है। भोगी मैं हूं, त्यागी तू है।
वह आदमी चौंका। वह आदमी ही नहीं चौंका, रामकृष्ण के शिष्य भी चौंके--
यह क्या कहते हैं रामकृष्ण, कि भोगी मैं हूं, त्यागी तू है।
उस आदमी ने कहाः मैं समझा नहीं। उलटबांसी न करो। उलझाओ न, सीधी-सीधी बात कहो। परमहंसदेव! यह तुम क्या कहते हो? मुझ भोगी को त्यागी? तुम महात्यागी! अपने को भोगी?
रामकृष्ण ने कहाः ऐसा समझ, गणित समझ। जो आदमी कंकड़-पत्थर छोड़ दे और हीरों पर पोटली बांध ले, उसको भोगी कहोगे कि त्यागी?
वह आदमी बोलाः उसको हम भोगी कहेंगे। और रामकृष्ण ने कहा: जो कंकड़-पत्थरों पर पोटली बांध ले और हीरों को छोड़ दे, उसको क्या कहोगे? निश्चित उसको हम त्यागी कहेंगे।
रामकृष्ण ने कहाः ऐसी ही मेरी-तेरी दशा है। तूने व्यर्थ में पोटली बांधी, हम सार्थक पर पोटली बांधे हैं। हमने जो छोड़ा वह दो कौड़ी का है और जो पाया वह अमूल्य है। और तूने जो छोड़ा वह अमूल्य है और जो पाया वह दो कौड़ी का है। तू महात्यागी है। भाई, आदर तो मुझे तेरा करना चाहिए।
मैं तुमसे कहता हूंः यही दशा सच है। जब जीवन में कुछ नई ऊर्जा का आविर्भाव हो, तो बहुत क्रांति घटती है। तुम्हें सब फिर से व्यवस्थित करना होगा। तुम्हें अब सब इस ऊर्जा को ध्यान में रख कर जमाना होगा।
एक घटना घटी। चीन के एक बड़े विचारक ने जर्मनी के एक बहुत बड़े दार्शनिक काउंट कैसरलिन को एक काष्ठ-मंजूषा भेंट की। सुंदर काष्ठ-मंजूषा! कहते हैं बहुत पुरानी। कहते हैं पांच हजार साल पुरानी। और उसके साथ एक शर्त है। वह जितने लोगों के हाथ में रही, सबने शर्त पूरी की। चीन के बाहर वह कभी गई भी नहीं थी। चीनी मित्र ने लिखा कि एक शर्त है और पांच हजार साल तक लोगों ने उसे पूरा किया है। उनके प्रति सम्मान ख्याल में रखकर आप भी पूरा करना। शर्त यह है कि मंजूषा का मुख सदा पूरब की तरफ होना चाहिए, सूरज की तरफ जहां से सूरज उगता है।
काउंट कैसरलिन ने सोचा, इसमें क्या अड़चन है! उसने अपने बैठकखाने में... क्योंकि बहुमूल्य मंजूषा, बड़ी प्यारी खुदाई और बड़ी प्राचीन! लाखों रुपयों की उसकी कीमत। उसने उसे बीच में अपने बैठक घर में सजाया। पूरब की तरफ मुंह किया, लेकिन बड़ी मुश्किल में पड़ गया। मंजूषा का मुख पूरब की तरफ किया, तो पूरा कमरा उसके साथ तालमेल न खाए। तो उसने सारे कमरे का फर्नीचर बदला, ताकि मंजूषा से तालमेल खाए। जब फर्नीचर बदला तो मुश्किल में पड़ा दीवार-दरवाजे फर्नीचर और मंजूषा के साथ मेल न खाएं। मगर काउंट कैसरलिन भी अपनी जिद का आदमी था। उसने कहा, जब बात कही है तो पूरी करनी है। और बड़ा कलात्मक बुद्धि का आदमी था, इसलिए यह अड़चन हुई। कलात्मक बुद्धि न होती तो कहीं भी रख देता कि रहो मजे से। सूरज की तरफ... । लेकिन बड़ा संवेदनशील आदमी था। तो उसने मकान, कमरे के दरवाजे-द्वार बदले। अब कमरा पूरे मकान से बेमेल हो गया। तो उसने पूरा मकान बदला। अब पूरा मकान बगीचे से बेमेल हो गया, तब उसने अपने मित्र को लिखा कि यह अब भाई सीमा के बाहर बात हुई जा रही है। मैं बगीचा भी बदल लूंगा, मगर मेरा घर पूरे गांव से बेमेल हो जाएगा। गांव पर मेरा बस नहीं।
काउंट कैसरलिन की आत्मकथा में जब मैंने यह पढ़ा तो यह उदाहरण मुझे महत्त्वपूर्ण लगा। ऐसी ही घटना जीवन में घटती है। बस एक चीज बदल जाए, .जरा सी चीज, कभी-कभी बड़ी छोटी चीज--और तुम्हारी पूरी जीवन-धारा उसके अनुकूल बदलती है।
लोग मुझसे पूछते हैंः आप क्यों आग्रह करते हैं कि संन्यासी गैरिक वस्त्र पहने, कि माला पहने? इन छोटी-छोटी चीजों से क्या होगा?
याद करो काउंट कैसरलिन को। वह छोटी-सी माला गले में पूरी जिंदगी का रूपांतरण कर सकती है अगर तुममें थोड़ी भी संवदेना हो। क्योंकि फिर मैं तुम्हारे साथ हूं। फिर तुम्हें.जरा मुझे ध्यान में रखकर जीवन चलाना

पड़ेगा। एक गाली मुंह पर आते-आते रुक जाएगी। वह माला से मेल नहीं पड़ेगा। सिनेमा के क्यू में जहां टिकटें खरीदी जा रही हैं, खड़े होते-होते चल पड़ोगे, क्योंकि वह गैरिक वस्त्रों से मेल नहीं खाएगा।
एक मित्र शराब पीते हैं। संन्यास ले लिया। शराबी ही ले सकते हैं संन्यास; और तो लेगा भी कौन! मुझसे कहने लगे, लेकिन एक बात आपको बता दूं, छिपाना नहीं चाहता, मैं शराबी हूं। मैंने कहाः तुम फिकर छोड़ो। मेरा नाता- रिश्ता ही शराबियों से है। तुम संन्यास लो।
वे कहने लगे, लेकिन देखिए मैं आपको बताए देता हूं। मैं संन्यास लेकर
भी छोड़ न पाऊंगा शराब। बहुत मुश्किल है। जिंदगी भर कोशिश कर चुका हूं। यह छूटती ही नहीं।
मैंने कहा, तुम फिकर छोड़ो, तुम संन्यास तो लो, फिर देखेंगे। कोई पांच-सात दिन बाद वे आए। उन्होंने कहा, मुश्किल में डाल दिया मुझको। कल शराब-घर में जा रहा था कि एक आदमी एकदम साष्टांग गिर कर मेरे चरण छू लिया और बोला, महाराज जी! आप कहां जा रहे हैं? यह शराब-घर है! तो मुझे लौटना पड़ा। मैंने कहा, अब इससे क्या कहें! इतने भाव से कह रहा है बेचारा कि महाराज जी, आप कहां जा रहे हैं! सोचा होगा कि महाराज जी भटक गए। ये कहां चले आ रहे हैं! उसने कहा, एक झंझट खड़ी कर दी आपने। अब मैं डरता हूं शराब-घर में जाने से, कि कोई पैर पकड़ ले, कि स्वामी जी, आप यहां! तो क्या उत्तर दूंगा?
मैंने कहा, अब यह तुम समझो। अब तुम्हें संन्यास बचाना हो तो संन्यास बचा लेना और शराब बचानी हो तो शराब बचा लेना, झंझट हमने खड़ी कर दी, अब तुम... अब तुम चुन लेना।
छोटी-छोटी बातें कभी जीवन को आमूल-चूल बदल जाती हैं।
निष्ठा! ठीक हुआ। जब इस ज्योति को संभालना और अब इस ज्योति के अनुसार जीना और अब इस ज्योति के अनुसार सारे जीवन को समायोजित करना। अब ज्योति से मूल्यवान कुछ भी नहीं है। इस ज्योति से जो मेल खाए, ठीक। ज्योति से जो मेल न खाए, ना-ठीक। अब यह ज्योति कसौटी है।

आखिरी प्रश्न: मैं क्रोध से अत्यंत पीड़ित हूं। मेरा पूरा जीवन क्रोध में ही नष्ट हुआ जा रहा है। इस दुष्ट क्रोध का त्याग करना चाहता हूं। आप ऐसा आशीर्वाद दें कि यह क्रोध-रूपी शत्रु सदा के लिए भस्मीभूत हो जाए।

प्रश्न में भी क्रोध है दुष्ट क्रोध... "क्रोध-रूपी शत्रु!" "ऐसा आशीर्वाद दें कि सदा के लिए भस्मीभूत हो जाए"! तुम मुझे भी फंसाओगे? मैं कोशिश कर रहा हूं कि किसी तरह तुमको स्वर्ग ले चलूं, तुम मुझे भी नरक ले चलने का इरादा रखते हो।
और क्रोध इतनी कोई आसान बात नहीं है किसी आशीर्वाद से मुक्त हो जाओगे। क्रोध तुम्हारी जड़ों में छिपा है। क्रोध कुछ ऐसा ऊपर से आरोपित थोड़े ही है। कुछ ऐसा थोड़े ही है कि वस्त्र पहन लिए, उतार दिए। क्रोध ऐसा है, जैसे तुम्हारी चमड़ी छीली जाएगी, पीड़ा होगी, कष्ट होगा, खून बहेगा। और फिर तुम जन्म-भर अगर क्रोध किए हो, जीवन भर अगर क्रोध किए हो, तो तुम्हारे रग-रग में समा गया होगा। तुम्हारे उत्तर से जाहिर है। तुम्हारा प्रश्न जो नहीं कह सकता था, वह तुम्हारे प्रश्न की भाषा ने कह दिया है। मैं समझा तुम्हारी पीड़ा को।
मगर इस क्रोध से छूटने का उपाय इस क्रोध का त्याग नहीं है, त्याग कैसे करोगे? यह कोई चीज थोड़े ही है कि छोड़ दी। यह तो तुम्हीं हो। तुम क्रोध-रूप हो गए हो। यह तुम्हारे रग-रेशे में व्याप्त हो गया है। तुम्हें सजग होना पड़ेगा। तुम क्रोध को अपने जीवन-चिंतन का आधार न बनाओ। तुम ध्यान में उतरो। ध्यान तुम्हें सजग करेगा। ध्यान तुम्हें क्षमता देगा कि क्रोध दिखाई पड़ने लगे। क्रोध चलता है इसीलिए कि हम मूर्च्छित हैं। क्रोध मूर्च्छा का ही अंग है। तुम्हें पता ही तब चलता है जब क्रोध आ भी चुका, जा भी चुका, उपद्रव हो भी चुका। पीट चुके पत्नी को, तोड़ चुके चीजें, मार-पीट हो गई, हाथ में हथकड़ी डल गई, अदालत की तरफ चले--तब तुम्हें ख्याल आता है कि फिर हो गया। जैसे-जैसे होश बढ़ेगा, तो पहले तुम्हें ख्याल आएगा, इतने बाद नहीं --जब

क्रोध मौजूद होगा, जब तुम्हारी मुट्ठियां भिंच रही होंगी और दांत क्रोध से भर रहे होंगे और जबड़े क्रोध से उन्मत्त हो रहे होंगे, तब तुम्हें याद आएगा कि क्रोध है, यह हो रहा है। फिर और गहराई बढ़ेगी बोध की, तो क्रोध आनेवाला है, आकाश में बादल घिरे, अभी बरसे नहीं, और तुम समझ लोगे कि क्रोध आनेवाला है।
जब इतना ध्यान तुम्हारा गहरा हो जाएगा कि क्रोध के आने के पहले तुम्हें दिखाई पड़ जाएगा कि आता है, तब तुम मुक्त हो पाओगे; इसके पहले तुम मुक्त न हो सकोगे। इसके पहले तुम कसमें खाओ, व्रत लो, नियम लो, आशीर्वाद मांगो, ये सब काम नहीं आएगी बातें। ये सब बहाने हैं। तुम जैसे हो वैसे ही रहोगे।
और मैं जानता हूं यह आशीर्वाद भी तुमने पहली दफा नहीं मांगा होगा। पहले भी मांग चुके होओगे। और जब भी आशीर्वाद न फलेगा तो तुम यही सोचोगे कि यह संत भी बेकार निकला, ये महात्मा भी किसी काम के नहीं। आशीर्वाद ही काम नहीं आया! जैसे कि महात्मा की जिम्मेवारी है कि तुम्हारा क्रोध दूर होना चाहिए! यह जुम्मेवारी तुम्हारी है।
क्रोध को त्यागा नहीं जाता। क्रोध को जाना जाए तो क्रोध धीरे-धीरे धीरे शमित होता है। क्रोध का दमन नहीं करना होता, शमन होता है।
क्रोध तुम्हारे चित्त की एक विक्षिप्त अवस्था है। क्रोध में तुम क्षण
भर के लिए पागल हो जाते हो। वह अस्थायी पागलपन है। इस पागलपन का कैसे त्याग करोगे? यह तुम्हारे भीतर से उठता है। और जब उठता है तब तुम होते कहां हो!
एक आदमी अपने मकान पर चढ़ा खड़ा था। अकबर की सवारी निकलती थी। ऊल-जलूल गालियां बकने लगा अकबर को। अकबर बहुत हैरान हुआ। आदमी पकड़वा लिया गया, जेल में डाल दिया गया। दूसरे दिन सुबह उसे बुलाया अदालत में और कहा कि तू होश में है, क्या बक रहा था? क्यों गालियां दीं तूने? तुझे पता नहीं कि सम्राट के साथ कैसा व्यवहार करना है?
उस आदमी ने कहाः मैंने कभी गालियां दी ही नहीं।
अकबर ने कहाः यह भी हद हो गई! मैं खुद ही मौजूद था, अब कोई गवाह की जरूरत है?
उस आदमी ने कहाः यह मैं कह नहीं रहा कि आप मौजूद नहीं थे। आप रहे होंगे मौजूद, मैं मौजूद नहीं था। मैं शराब पीए था। मुझे होश ही नहीं है कि मैंने क्या किया।
क्रोध में भी तुम ऐसी ही बेहोश अवस्था में होते हो। तुम जाकर रसायनविद से पूछो, चिकित्सक से पूछोः होता है क्या क्रोध में? तुम्हारे खून में, तुम्हारे भीतर जो विष ग्रंथियां हैं, वे विष को छोड़ देती हैं। तुम्हारा सारा खून विषाक्त हो जाता है। उस विषाक्त अवस्था में तुमने शराब बाहर से पी कि भीतर से आई, इससे क्या फर्क पड़ता है? फिर तुम जो करते हो, तुम अपने होश में नहीं हो। ऐसा बहुत बार हुआ है कि लोगों ने हत्याएं कर दी हैं और उन्होंने होश में नहीं की हैं, विक्षिप्त अवस्था में हो गई हैं।
तुम यह छोटी सी कहानी सुनो--
भोज में आए लोगों की सेवा-टहल करते हुए गांव के नाई छकौड़ी ने ज ब सुना
कि इस बार तीर्थयात्रा में ठाकुर बारिस्टर सिंह क्रोध का त्याग कर आए हैं तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। मित्रों-मुसाहिबों से घिरे बैठे गर्वोन्नत ठाकुर साहब के पास पहुंचकर छकौड़ी ने अत्यंत विनम्रतापूर्वक कहाः मालिक, इस बार की तीर्थयात्रा में आप क्या त्याग कर आए हैं?
क्रोध। छकौड़ी, हमने अब जीवनभर के लिए क्रोध त्याग दिया है। --सहजशांत वाणी में ठाकुर साहब ने कहा।
धन्य हो! चारों धाम की यात्रा, चार गांव का भोज और क्रोध का त्यागी! बड़े महात्मा हैं मालिक आप! --कहता हुआ छकौड़ी अपने काम में जा लगा।
थोड़ी देर बाद वह फिर लौटा और ठाकुर साहब को भोज की सुव्यवस्था की जानकारी दी और निहायत मुलायमियत से बोलाः इस बार तीर्थों में हुजूर क्या छोड़ आए?

ठाकुर साहब ने छकौड़ी की तरफ सीधी आंख देखते हुए सधी आवाज में जवाब दियाः क्रोध। हमने क्रोध छोड़ दिया है।"
"वाह" वाह मालिक! कितना बड़ा त्याग किया है आपने! धन्य हैं आप।" और वह फिर भोज-स्थल की तरफ चल दिया। कुछ क्षणों में छकौड़ी फिर लौटा और इधर-उधर की बातें करता हुआ ठाकुर साहब से बोला धीरे सेः माई-बाप, तीर्थों में इस बार क्या त्याग कर आए?
नाई को घूरते हुए ठाकुर साहब बोलेः अभी तुझे बताया है कि हम क्रोध छोड़
आए हैं।
"हओ मालिक। धन्य हो धन्य हो!"
थोड़ी देर बाद फिर छकौड़ी आया और चुपचाप ठाकुर साहब के पांव दबाने लगा। फिर उठा और उनके पांव छूता हुआ बोलाः हुजूर, अब की तीर्थयात्रा में आपने कौन-सा त्याग किया है?
इस बार ठाकुर साहब ने जैसे ही नाई का प्रश्न सुना कि उनकी आंखें लाल
हो गईं, भौएं तिरछी हो गईं। कड़कदार आवाज में बोलेः अबे नइए, दस बार तुझसे कहा है, हम क्रोध का त्याग कर आए हैं। तू बहरा है क्या?
"जी सरकार, क्रोध त्याग कर आपने बड़े भारी पुण्य का काम किया है। धन्य हैं आप!"
ओंठों-ओंठों में मुस्कुराता हुआ छकौड़ी चला गया। अब की बार थोड़े अधिक विलंब से वह लौटा। ठाकुर साहब यार-दोस्तों के साथ बातों में मशगूल थे। चांदी के गिलास में ठाकुर साहब को पानी पेश करते हुए छकौड़ी ने कहाः हुजूर... ।"
छकौड़ी का स्वर सुनते ही ठाकुर साहब की आंखें कपाल से जा लगीं। भौंचक छकौड़ी थोड़ा पीछे खिसका। ठाकुर साहब ने अपना जूता उठाया और छकौड़ी भागा। आगे-आगे पानी का गिलास लिए छकौड़ी नाई और पीछे-पीछे हाथ में जूता लिए ठाकुर बारिस्टर सिंह... " नइयटा, साला छत्तीसा... कमीन... हमने पचास बार हरामी के पिल्ले से कहा कि हमने क्रोध छोड़ दिया है, फिर भी साला... ।"
क्रोध छोड़ा नहीं जाता। क्रोध समझा जाता है। छोड़े कि ऐसे ही झंझट में पड़ोगे। क्रोध समझो। क्रोध के प्रति जागो। क्रोध को पहचानो। उसकी फैली हुई जड़ों को खोदो। और पहले से ही निर्णय मत लो कि क्रोध बुरा है। अगर निर्णय ले लिया तो जान न सकोगे। जब निर्णय ही ले लिया तो फिर जानोगे कैसे? जानने के लिए निर्णय-मुक्त मन चाहिए।
भूल जाओ यह कि शास्त्रों ने कहा है कि क्रोध शत्रु है। तुमने कभी नहीं जाना। और जब तक तुमने नहीं जाना, शास्त्र दो कौड़ी के हैं। भूल जाओ यह कि क्रोध जहर है। यह तुमने कभी नहीं पहचाना। और तुम्हारी पहचान हो तो ही इस बात में कुछ अर्थ है, अन्यथा यह सब बकवास है। छोड़ ही दो सारे निर्णय और निष्कर्ष कि क्रोध क्या है।
निर्णय-शून्य, निष्कर्ष-रहित तुम्हारे भीतर जब क्रोध उठे तो उसे देखो, जैसे आकाश में उठते बादल को कोई देखता है। न अच्छा, न बुरा। न पक्ष, न विपक्ष। सिर्फ पहचानो, क्या है? क्रोध क्या है? धीरे-धीरे क्रोध जब होगा तभी तुम्हारी आंख खुलेगी। और धीरे-धीरे क्रोध के आने के पहले उसकी हलकी सरसराहट मालूम होगी और तुम्हारी आंख खुलेगी। और अंततः सरसराहट भी न होगी, कोई दूसरा आदमी स्थिति पैदा करेगा, गाली देगा, अपमान करेगा; उसके गाली और अपमान देते ही तुम जानोगे कि स्थिति मौजूद है। अगर मैं मूर्च्छित हो जाऊं तो क्रोध होगा। अगर मैं सजग रहूं, होशपूर्ण रहूं, अगर यह दीया होश का जलता रहे, तो क्रोध नहीं होगा।
होश में क्रोध विसर्जित हो जाता है, जैसे प्रकाश में अंधेरा नहीं होता है।

आज इतना ही।

ज्योति से ज्योति जले
तीसरा प्रवचन

साधु आठौ जाम बैठो

सुनत नगारै चोट विगसै कंवलमुख
अधिक उछाह फूल्यौ माइहू न तन मैं।
फिरै जब सांगि तब कोऊ नहिं धीर धरै,
काइर कंपायमान होत देखि मन मैं।।
टूटिकै पतंग जैसे परत पावक मांहिं,
ऐसै टूटि परै बहु सावंत के गन मैं।
मारि घमसांण करि सुंदर जुहारै स्याम,
सोई सूरबीर रुपि रहै जाइ रन मैं।।

सूरबीर रिपु कौ निमूनौ देखि चोट करै,
मारै तब ताकि करि तरवारि तीर सौ।
साधु आठौ जाम बैठौ मन ही सौं युद्ध करै,
जाकै मुंह माथौ नहि देखिए शरीर सौं।।
सूरबीर भूमि परै दौर करै दूलिलगैं,
साधु शून्य कौं पकरि राखै धरि धीर सौं।
सुंदर कहत, तहां काहू के न पांव टिकैं,
साधु कौ संग्राम है अधिक सूरबीर सौं।।

धूलि जैसो धन जाकैं सूलि से संसार-सुख,
भूलि जैसो भाग देखै अंत की सी यारी है।
पाप जैसी प्रभुताइ सांप जैसो सनमान,
बड़ाई हू बीछनी सी नागिनी सी नारी है।।
अग्नि जैसो इंद्रलोक विघ्न जैसो विधि लोक,
कीरति कलंक जैसी, सिद्धि सींटि डारी है।
वासना न कोऊ बाकी ऐसी मति सदा जाकी,
सुंदर कहत ताहि वंदना हमारी है।।

सांचौ उपदेश देत, भली भांति सीख देत,
समता सुबुद्धि देत, कुमति हरत है।
मारग दिखाई देत, भावहू भगति देत,
प्रेम की प्रतीति देत, अभरा भरत है।।
ज्ञान देत, ध्यान देत, आत्म-विचार देत,
ब्रह्म कौं बताइ देत ब्रह्म मैं चरत हैं।
सुंदर कहत जग संत कछु देत नांहिं,
संतजन निसिदिन देबौई करत हैं।।
कुछ लिखके सो कुछ पढ़के सो
तू जिस जगह जागा सबेरे
उस जगह से बढ़के सो!

जैसा उठा वैसा गिरा जाकर बिछौने पर तिफ्ल जैसा प्यार यह जीवन खिलौने पर बिना समझे बिना बूझे खेलते जाना
एक जिद को जकड़ लेकर ठेलते जाना
गलत है बेसूद है कुछ रचके सो कुछ गढ़के सो तू जिस जगह जागा सबेरे उस जगह से बढ़के सो

दिन भर इबारत पेड़-पत्ती और पानी की
बंद घर की खुले-फैले खेत धानी की
हवा की बरसात की हर खुश्क की तर की

गुजरती दिन भर रही जो आपकी पर की
उस इबारत के सुनहरे वर्क से मन मढ़के सो तू जिस जगह जागा सबेरे उस जगह से बढ़ के सो

लिखा सूरज ने किरन की कलम लेकर जो
नाम लेकर जिसे पंछी ने पुकारा सो
हवा जो कुछ गा गई बरसात जो बरसी
जो इबारत लहर बनकर नदी पर दरसी
उस इबारत की अगरचे सीढ़ियां हैं, चढ़के सो
तू जिस जगह जागा सबेरे उस जगह से बढ़के सो
जीवन एक अविरत विकास है--प्रतिपल एक अनवरत धारा है।
जैसे गंगा बहती है सागर की ओर, और जब तक सागर न हो जाए, तब तक चैन नहीं। ऐसी बेचैनी चाहिए। मनुष्य जब तक परमात्मा न पा ले तब तक चैन न हो।
सुना है तुमने, संतोष रखो। वह ठीक है, लेकिन आधा ही ठीक है। और आधे सच कभी-कभी झूठ से भी बदतर, झूठ से भी महंगे पड़ जाते हैं। आधे सच होते हैं, सच जैसे मालूम पड़ते हैं। इसलिए झूठ से भी खतरनाक होते हैं।
दूसरा पहलू भी समझ लो। जो कहा है संतोष रखो, वह कहा है बाहर के संबंध में। उतना ही बड़ा सत्य, उससे भी बड़ा सत्य--भीतर की तरफ निरंतर असंतोष चाहिए। संसार से संतुष्ट, अपने से असंतुष्ट--इन दो पंखों से यात्रा होती है।
लेकिन लोग उलटे हैं। लोग अपने से संतुष्ट हैं, संसार से असंतुष्ट हैं। जितना धन है, उससे थोड़ा ज्यादा हो जाए। जितना पद है, उससे थोड़ा ज्यादा हो जाए। जितनी प्रतिष्ठा है, उससे थोड़ी ज्यादा हो जाए। ऐसा उनका असंतोष है। लेकिन जितनी आत्मा है, थोड़ी और बड़ी हो। यह छोटा आंगन, बड़ा आकाश बने। यह छोटा झरना सागर बने, यह छोटी सी बूंद, महासागर हो जाए। ऐसा उनका असंतोष नहीं है।
आदमी उलटा खड़ा है। बाहर से असंतोष जोड़ दिया, भीतर से संतोष जोड़ दिया। इससे बदलो। इसकी बदलाहट ही तुम्हें धार्मिक बनाएगी।
मंदिर और मस्जिद जाने से तुम धार्मिक नहीं हो जाओगे। वह धोखा तो हजारों लोग, हजारों सालों से खा रहे हैं। धर्म का इतना सस्ता जन्म नहीं होता! जीवन की पूरी इबारत बदलनी पड़ती है। और इबारत को बदलने का पहला सूत्र है कि बाहर से संतुष्ट, भीतर से असंतुष्ट। एक दिव्य असंतोष की आग जलनी चाहिए कि मैं जैसा जन्मा हूं, वैसा ही न मर जाऊं--अंधेरे-अंधेरे में, अमावस-अमावस में। पूर्णिमा होकर मरूं। मृत्यु आए, इसके पहले पूरा चांद उगे। मृत्यु आए, इसके पहले जान लूं कि मैं कौन हूं, पहचान लूं कि मैं कौन हूं?
और मजा यह है कि जो जान लेता है कि मैं कौन हूं, उसकी मृत्यु कभी आती नहीं! देह मरती है, रूप मरता है, रंग मरता है, पर भीतर जो छिपा मालिक है, वह कभी नहीं मरता। जो पहचान लेता है अपने को, उसी पहचान में अमृत हो जाता है। आत्मज्ञान अमृत का द्वार है।
लेकिन जहां असंतोष होता है वहीं संघर्ष होता है। अगर तुम बाहर से असंतुष्ट हो तो तुम्हारा बाहर संघर्ष होगा। लड़ोगे धन के लिए, दौड़ोगे धन के लिए, आपाधापी होगी। अगर बाहर से संतुष्ट हो गए तो बाहर कोई संघर्ष नहीं है। फिर संघर्ष की यात्रा भीतर होती है। फिर काटोगे अंधेरा, उठाओगे तलवार। फिर तोड़ोगे वह सब, जो तुम्हारी मूर्च्छा है। फिर मिटाओगे उस बस को, जिसने तुम्हारे जीवन को कचरे से भर दिया है। लगा दोगे आग उसको, जला दोगे धू-धू करके। फिर जो भी असार है भीतर, उसे घास-पात की तरह उखाड़ फेंकोगे। तभी तो गुलाब के फूल खिलते हैं।
जब तक तुम्हारे भीतर घास-पात भरा है, तब तक तुम कहने के लिए ही आदमी हो, नाममात्र के आदमी हो; अभी तुम्हारे भीतर आत्मा का फूल नहीं खिला है। अभी तो घास-पात ही है। आदमी कम, खेतों में खड़े बिजूके हो!
खेत में बिजूका देखा? खड़ा कर देते हैं। घास-पात भर देते हैं। ऊपर से खादी का कुर्त्ता पहना देते हैं। और अगर सुविधा हुई तो चूड़ीदार पाजामा भी

पहना देते हैं। नेहरू-कट अचकन, गांधी-टोपी... और बिजूका खड़ा है! पक्षियों को भगाने के काम आ जाता है। पक्षियों को डराने के काम आ जाता है। लेकिन बिजूके के भीतर कुछ भी नहीं है; घास-पात भरी है। बिल्कुल नेताजी हैं! खेत-खेत में खड़े बिजूके कपड़े पहने घास के।
आदमकद बाहर से; लेकिन भीतर से अजहद बौने,
निर्भय चरे जा रहे फसलें हिरनों के नन्हें छौने,

पात्र दया के निपट बिजूके या फिर हैं उपहास के।

भय के सभय प्रतीक इरादों से बिल्कुल शाकाहारी,
उतने ही असहाय कि जितनी अपने युग की बेकारी।

चौतरफा के दृश्य अदेखे, देख न पाते पास के।

फसल कटे, पशुओं ने इन पर ही चौकस हमले बोले,
सावधान की मुद्रा में वह, मुंह कैसे अपना खोले?

धरती के जो हो न सके वो क्या होंगे आकाश के?
खेत-खेत में खड़े बिजूके कपड़े पहने घास के।
आदमी बनो, बिजूकों से काम नहीं चलेगा। और जो आदमी अभी भीतर के जगत में असंतुष्ट नहीं, आदमी नहीं है। जिसने अभी भीतर धार धरनी शुरू नहीं की, वह आदमी नहीं है। जिसने अभी भीतर के चैतन्य को निखारना शुरू नहीं किया, संवारना नहीं शुरू किया, वह आदमी नहीं है।
धन कितना ही इकट्ठे करो, कितने ही बड़े पद पर पहुंच जाओ--बिजूके हो, बिजूके रहोगे! धनी बिजूके हो जाओगे, लेकिन बिजूका होना नहीं मिटेगा। इसलिए दुनिया में इतने लोग हैं, मगर आदमी कहां!
मैंने सुना है, डायोजनीज, यूनान का एक बहुत अदभुत दार्शनिक, भरी दोपहरी में भी हाथ में एक जलती लालटेन लिए रहता था और जो भी मिलता, उसका मुंह देखता लालटेन से। लोग पूछते, बात क्या है? दिमाग तो दुरुस्त है आपका? भरी दोपहरी में लालटेन की जरूरत क्या है? और लालटेन उठा-उठा कर हर आदमी का चेहरा क्या देखते हो?
डायोजनीज कहता है कि मैं आदमी की तलाश में हूं। जिंदगी हो गई, अभी मुझे आदमी नहीं मिला--बस, बिजूके, बिजूके!
जब डायोजनीज मर रहा था तो किसी ने पूछा कि डायोजनीज, (लालटेन उसकी बगल में ही रखी थी)तुम्हारी जिंदगी अब समाप्त होने के करीब आ गई, एक बात तो कह जाओ कि जिस आदमी को जिंदगीभर भरी दोपहरी में लालटेन लेकर तलाशते थे, वह मिला कि नहीं?
डायोजनीज ने आंख खोली और कहा, वह आदमी तो नहीं मिला, लेकिन यही क्या कम
है कि मेरी लालटेन बच गई! लालटेन चुरा ले जाने वाले भी बहुत थे, जो इसी तलाश में थे कि कब मौका मिल जाए तो लालटेन ले जाएं। मेरी लालटेन बच गई, यह क्या कम है? आदमी तो मुझे मिला नहीं।
तुम भी जरा तलाशोगे तो आदमी मुश्किल से पाओगे। और बाहर तलाशने मत जाना। बाहर से क्या लेना-देना है! दूसरा आदमी हो कि बिजूका, तुम्हारा क्या प्रयोजन है? जरा भीतर अपने को झांकना, घास-पात ही तो नहीं भरी है? हीरे- जवाहरात होने को आए थे, घास-पात ही रहोगे? घास-पात रह कर ही चले जाओगे? अमृत की पहचान को आना हुआ था, जहर से ही मुलाकात हुई।
जन्म हुआ था कि जीवन को जानेंगे--और जन्म सिर्फ मृत्यु में ले जाता है। जन्म और मृत्यु के बीच बहुत धन्यभागी थोड़े-से हैं, जो जीवन को जान पाते हैं। और जो जीवन को जान लेते हैं, उनका न तो जन्म है और न उनकी मृत्यु है। जो जीवन को जान लेते हैं, वे यह भी जान लेते हैं कि मैं सदा था, और सदा रहूंगा। जन्म के पहले था, मृत्यु के बाद रहूंगा।
और ऐसी बातें शास्त्रों से मत सीख लेना; वही तो बिजूकों की आदत है! उसी
से तो आदमी घास-पात से भरा रह जाता है--शास्त्रीय घास-पात! सुंदर-सुंदर

वचन, मगर तुम्हारा अनुभव नहीं। सुंदर-सुंदर वचन, मगर सुगंध कहां? सुगंध तो अनुभव से आती है।
सत्य को जन्म देना होता है। सत्य को जन्म देने में पीड़ा उठानी पड़ती है। और सत्य को जन्म देने में साहस की जरूरत है!
पहला साहस तो भीतर की यात्रा है। क्योंकि बाहर की यात्रा सुगम है। सारी इंद्रियां बाहर की ओर खुलती हैं। याद करो सुंदरदास को, कहा कि सारी इंद्रियां बाहर की तरफ खुलती हैं, सो बाहर की यात्रा सुगम है। कोई कहे बाहर देखो तो कोई अड़चन नहीं आती; जब कोई कहता है भीतर देखो तो अड़चन शुरू होती है, भीतर कैसे देखें? आंख तो बाहर देखती है। और भीतर आंख देखती है, वह तो हमारी अभी खुली नहीं; वह तो हमारी बंद है। वहां तो हम अभी अंधे हैं। कान बाहर का संगीत सुन लेते हैं। और जब कोई कहता है सुनो भीतर के अनहद-नाद को, तो हम भौंचक्के खड़े रह जाते हैं। कैसा अनहद नाद? भीतर का कान तो अभी सक्रिय नहीं हुआ।
बाहर की यात्रा सुगम है, क्योंकि और सारे लोग भी उसी यात्रा में संलग्न हैं। भीड़ जा रही, हम भी चल पड़ते हैं। भीतर की यात्रा में अकेले चलना होगा। वहां न कोई संगी है न कोई साथी। भय पकड़ता है। एकांत में आदमी कितना डरता है!
अपने ही घर में जिस दिन तुम अकेले होते हो, डर खाने लगता है। लोग-बाग होते हैं, बातचीत होती है, शोरगुल होता, सब ठीक मालूम पड़ता है। सन्नाटा हो जाए कि भय पकड़ता है। और यह सन्नाटा कुछ भी नहीं है। जब तुम भीतर की तरफ मुड़ोगे, तब तुम जानोगे पहली बार कि सन्नाटा क्या है! क्योंकि बाहर तो जो सन्नाटा है वह भी किसी न किसी तरह के शोरगुल से भरा होता है। गहरी से गहरी सन्नाटे से भरी रात में भी आवाजें होती हैं। सन्नाटा भी एक आवाज है, शांति नहीं है। शायद झींगुर ही बोल रहे हों, लेकिन पूरी रात हजारों तरह की आवाजों से भरी होती है।
जब तुम भीतर जाओगे तब तुम पहली दफा पाओगे, शून्य क्या है? मौन क्या है? गलने लगोगे, पिघलने लगोगे, भागने लगोगे। लौटने लगोगे बाहर कि लौट चलो, जल्दी करो, बाहर निकलो। दम घुटने लगेगा। और दम जिसका घुटता है वह तुम नहीं हो, तुम्हारा अहंकार है। जो बाहर जी सकता है, भीतर मरता है। जो बाहर ही जी सकता है--जिसका जीवन बहिर्गमिता में है और जिसकी मृत्यु अंतर्मुखता में है। इस बात को समझना।
लोग पूछते हैं आकर मुझसे--अहंकार कैसे छूटे? जब तक तुम बाहर की यात्रा
पर हो, अहंकार छूट नहीं सकता। फिर चाहे जाओ काशी और चाहे काबा, क्योंकि अहंकार बाहर की यात्रा से निर्मित होता है। वही तो अहंकार की आधारशिला है। अहंकार के लिए दूसरों की जरूरत होती है।
तुमने ख्याल किया, तुम अगर अकेले बैठे हो तो तुम कौन हो? ज्ञानी? -- उसके लिए कुछ अज्ञानी चाहिए। धनी? --उसके लिए कुछ गरीब चाहिए। सुंदर? -- उसके लिए कोई कुरूप चाहिए। अच्छे हो, बुरे हो, कौन हो, क्या हो? सब अता-पता खोने लगता है। कोई कहे कि आप सज्जन हैं। किसी का मंतव्य चाहिए।
दूसरे के मंतव्यों को जोड़ कर ही तो हम अपने अहंकार को निर्मित करते हैं। इसलिए तो अहंकार जरा सा कोई कुछ गलत कह दे, तो चोट खा जाता है। लोग कहते रहे, आप बड़े सुंदर हैं, और किसी ने एक दिन गुस्से में कह दिया कि जरा अपनी शकल तो आईने में देखो! घाव लग गया। यह घाव क्यों लगता है? उसने गिरा दी पूरी की पूरी प्रतिमा। दूसरों ने बनाई थी, दूसरे गिरा सकते हैं, यह याद रखना!
जो दूसरों पर निर्भर है वह दूसरों का गुलाम है। तुम्हारी सारी पद-प्रतिष्ठा दूसरों पर निर्भर है। वे जब चाहें तुम्हारे पैर के नीचे की जमीन खींच लेंगे। जब चाहें तब!
तुम्हारा सारा बोध अपने संबंध में उधार है, इसलिए तुम्हारी आंखें सदा दूसरों पर अटकी रहती हैं--"कौन क्या कह रहा है? मेरे संबंध में कौन क्या सोच रहा है? तुम थरथर कांप रहे हो कि कहीं कोई मेरे पैर के नीचे की जमीन न खींच ले। इस मेरी भव्य-प्रतिमा को कोई गिरा न दे! क्योंकि यह भव्य-प्रतिमा तुम्हारी नहीं है, उन्हीं ने बनाई है। तुम उनके गुलाम हो।

अहंकार दूसरों का गुलाम होता है। अकड़ कितनी ही दिखाए, दूसरों पर निर्भर होता है। दूसरों के ही हाथ के चिह्न होते हैं उस पर, हस्ताक्षर होते हैं। और अहंकार किसी एक आदमी के द्वारा नहीं बनाया जाता; वह हजार आदमियों के हाथों से बनता है। उन हजारों के तुम गुलाम हो जाते हो। स्वभावतः तुम्हें उनकी खुशामद करनी होती है। इस जगत में पारस्परिक खुशामद का दौर-दौरा चलता है। तुम उन्हें अच्छा कहते हो, वे तुम्हें अच्छा कहते हैं। तुम उनकी प्रशंसा करते हो, वे तुम्हारी प्रशंसा करते हैं।
झूठ के हम जाल खड़े करते हैं। और इन झूठों के जालों में हम जी लेते हैं, भरमा लेते हैं मन को, कि यही हो गया जीवन। फिर अगर जीवन में वर्षा नहीं होती आनंद की, तो आश्चर्य क्या है! इस झूठे जीवन में कैसे आनंद की वर्षा हो? आनंद सत्य की लक्षणा है। कैसे फूल खिलें? यह सड़ी घास-पात भरी है तुम्हारे भीतर, कैसे सुगंध उठे? कैसे वीणा बजे? जीवन में कुछ भी बहुमूल्य नहीं हो पाता, बिजूके ही रह जाते हैं लोग!
बाहर की खोज अहंकार को भरती है--"और कितने लोगों के दिल जीत लूं?" जब भीतर जाओगे तो अड़चन आएगी, अहंकार की फांसी लगने लगेगी। वहां कोई दूसरा मिलता नहीं। वहां कोई नहीं कहेगा कि आप सुंदर बहुत, कि आप ज्ञानी बहुत, कि आप साधु बहुत! वहां कोई नहीं कहेगा। वहां कोई मिलता नहीं। वहां रास्ता सन्नाटा है। वहां तुम अकेले हो। वहां तुम निपट अकेले हो।
जैसे ही भीतर जाओगे, उतने अकेले होने लगोगे। संसार छूटेगा, लोग छूटेंगे, विचार छूटेंगे, संस्कार छूटेंगे; अंततः तुम्हारे हाथ में रहेगा जो, वह होगा निपट कोरा आकाश... । उसे हम समाधि कहते हैं। उसे हम सबसे बड़ी संपदा कहते हैं। लेकिन उसमें तुम नहीं रहोगे। तुम, जैसा तुमने अपने को जाना, वैसे नहीं रहोगे। वह अहंकार, तुम्हारी धारणा कि "मैं ऐसा, मैं वैसा" सब चली जाएगी, सब बह जाएगी... । आएगी बाढ़ समाधि की और सब कूड़ा-करकट ले जाएगी। कुछ होगा जो बिल्कुल नया होगा, अपरिचित होगा, अनजाना होगा, जिसका तुमने कभी सपना भी नहीं देखा, जिसकी शास्त्रों में चर्चा भी नहीं हो सकी है। चर्चा हो ही नहीं सकती उसकी। ज्ञानियों ने कहना चाहा है, हार गए कह-कह कर, नहीं कह पाए हैं उसको अनकहा रह गया है। जाना तो जाता है, लेकिन कहा नहीं जाता है--अनभिव्यक्त, अव्याख्य... ।
तो दम घुटने लगता है भीतर जाने में। जल्दी से लौट कर आदमी बाहर आ जाता है। फिर वही पुराने सरंजाम में लग जाता है।
धार्मिक व्यक्ति कौन है? --जो इस महत संघर्ष में उतरता है। जो अपने को बलिदान करता है, जो अपने को कुरबान करता है। जो कहता है, चाहे मिट जाऊं, मगर अब कूड़े-करकट से राजी न रहूंगा।
और...
दूसरा छोर नहीं मिला!
धूप-छांव की जाली
सरकती रही
खो गयी!
तरल अंधकार
दिन के उजले पृष्ठ पर
फैल गया!
रक्त की बूंदों जैसे
दीये जले--
मन
किसी च्च्179 च्चेम में जड़े चित्र सा टंगा रहा
सूनी दीवार पर!
बेजान गुड्डे की तरह
सुबह उठा लिया मुझे सूरज के हाथों ने और मैं चल दिया
पथरायी राहों पर
चलता रहा

चलता रहा
दूसरा छोर नहीं मिला!
बाहर की यात्रा में दूसरा छोर मिलेगा भी नहीं। दूसरा छोर तो भीतर है।
तो तुम चलते रहो गुड्डों की तरह, यंत्रवत! सुबह सूरज उठा लेता है, तुम चल पड़ते हो। सांझ थक जाते, गिर जाते। दिन भर दिवा-स्वप्न देखते, रात फिर स्वप्न देखते, पर बाहर ही बाहर! रात भी बाहर, दिन भी बाहर। तुम अपने भवन में कब आओगे?
पुकार सुनो! लौटो अपने घर की तरफ, क्योंकि वहां मालिकों का मालिक बैठा है, शहंशाहों का शहंशाह! वहां तुम्हारी सबसे बड़ी संपदा छिपी पड़ी है।
तुम निर्धन पैदा नहीं हुए हो। तुम भिखारी पैदा नहीं हुए हो। बादशाहत तुम्हारा स्वभाव है! परमात्मा के तुम अंश हो! भिखमंगे तुम हो कैसे सकते हो?
लेकिन बाहर की यात्रा सभी को भिखमंगा बना देती है। भिक्षा का पात्र लिए लोग मांगते चलते जाते हैं। पात्र कभी भरता भी नहीं, पात्र कभी भर भी नहीं सका। भिखारी का मन ऐसा है कि भरने का उसे कोई उपाय नहीं।
यह परम स्वप्न तुम्हारे भीतर जगे, यह परम अभीप्सा तुम्हें पकड़े, तो ही तुम समझना कि तुम जन्मे और तुम्हारा जन्म सार्थक हुआ।
गीत गाना चाहता हूं
एक सपने तक स्वरों के साथ जाना चाहता हूं
चांद पीला पड़ रहा है चांदनी हल्की हुई है
शुक्र तारे की उजेली क्षितिज पर झलकी हुई है
एक सुख सपना समेटे मैं अभी तक सो रहा था
स्वप्न से दूरी अभी दो-चार-छह पल की हुई है प्राण देकर भी कि यह
दूरी कमाना चाहता हूं
गीत गाना चाहता हूं

मार्ग सपने तक पहुंचने का कठिन है जानता हूं और मैं अयस्त कुछ वैसा नहीं हूं मानता हूं किंतु जी की बेकली पर वश नहीं मेरा तुम्हारा इस तरह की बेबसी को पुण्य मैं पहचानता हूं आज मैं यह पुण्यमय उत्सव मनाना चाहता हूं परम सपने तक
स्वरों के साथ जाना चाहता हूं!
जगाओ ऐसी अभीप्सा!
आज मैं यह पुण्यमय उत्सव मनाना चाहता हूं
परम सपने तक
स्वरों के साथ जाना चाहता हूं!
और वह परम स्वप्न, परम सत्य है। अभी स्वप्न है, क्योंकि अपरिचित है। परिचित होते ही सत्य हो जाएगा। यह बेकली तुम्हें पकड़ ले, यह असंतोष तुम्हें पकड़ ले।
किंतु जी की बेकली पर वश नहीं मेरा तुम्हारा
इस तरह की बेकली को पुण्य मैं पहचानता हूं
आज मैं यह पुण्यमय उत्सव मनाना चाहता हूं
परम सपने तक
स्वरों के साथ जाना चाहता हूं!
जिन्होंने जाना, उन सबने यही कहा हैः धन्यभागी हैं वे, जो अंतस जगत के लिए असंतुष्ट हो जाते हैं; जिनके भीतर आग जलने लगती है; जो कहते हैंः भीतर पहुंचे बिना अब रुकेंगे नहीं। अब भीतर का गंतव्य पाए बिना कोई पड़ाव नहीं है, कोई ठहराव नहीं।
और एक बार यह अभीप्सा तुम्हें पकड़ ले तो क्रांति निश्चित घटती है। क्योंकि बीज तो तुम लेकर आए ही हो, भूमि में डालना है; बसंत की प्रतीक्षा करनी है। गीत उमगेगा। हजार गीत उगेंगे, गीत से गीत उगेंगे।

जीवन आनंद का उत्सव हो सकता है। मगर सब तुम पर निर्भर है। जितनी ऊर्जा
और जितनी शक्ति तुम अपने जीवन को दुखमय बनाने में लगा रहे हो, उतनी ही ऊर्जा और शक्ति के हृदय की वीणा झंकृत हो सकती है। जितनी यात्राएं तुम बाहर जाने की कर रहे हो, उतनी ही ऊर्जा से तुम अपने आत्यंतिक केंद्र पर पहुंच सकते हो। तुम उस शिखर को छू सकते हो, जिसे छू लेने के बाद फिर कहीं आना-जाना नहीं होता; जहां पहुंच कर परम तृप्ति है। लेकिन परम तृप्ति के पहले परम अतृप्ति के मरुस्थल से गुजरना पड़ता है। वह कीमत है, जो साधक को चुकानी पड़ती है!
आज के सूत्रः
सुनत नगारै चोट विगसै कवंलमुख,
अधिक उछाह फूल्यौ माइहू न तन मैं।
मैं कर क्या रहा हूं यहां? एक नगाड़ा बजा रहा हूं। सुंदरदास क्या कर रहे हैं? एक नगाड़ा बजा रहे हैं। यह युद्ध का नगाड़ा है। यह अंतर-युद्ध के लिए आवाहन है। जो कायर हैं उन्हें तो नगाड़े की आवाज कंपा देगी, लेकिन जिनके भीतर थोड़ी भी गरिमा है और जिनके भीतर मनुष्य होने की महिमा का थोड़ा सा बोध है और जिन्हें इस बात की जरा सी भी प्रतीति है कि मनुष्य होना अनंत-अनंत यात्रा के बाद संभव हुआ है, उनके भीतर का कमल खुल जाएगा। उनके भीतर की बंद कली अपनी पखुंड़ियों को खोलने लगेगी।
सुनत नगारै चोट विगसै कंवलमुख।
"कमल" रहस्यवादियों का बड़ा प्यारा प्रतीक है। कई कारणों से। एक तो, कीचड़ में पैदा होता है, गंदी कीचड़ में पैदा होता है। कीचड़ से पैदा होता है, जिसमें संभावना हो भी नहीं सकती थी, मालूम भी नहीं हो सकती थी, कोई सोच भी नहीं सकता था! अगर पता न होता तो कीचड़ देख कर कोई यह सोच भी नहीं सकता सपना भी नहीं देख सकता, कल्पना भी नहीं कर सकता कि इससे कमल पैदा होगा! कीचड़ और कमल! कुछ जोड़ मालूम नहीं होता। कहां कमल, कहां कीचड़! कमल तो कीचड़ से बिल्कुल विपरीत है। कमल तो इस पृथ्वी पर ऐसा है जैसे पार से आया हो, इस पृथ्वी का न हो। जैसे परदेशी है, आकाश से उतरा है। ऐसा अछूता ऐसा कुंवारा, ऐसा सुंदर, ऐसा कोमल, कीचड़ से कैसे पैदा होगा! इतना कंवारापन तो आकाश का होता है!
तो कमल में कुछ है जो आकाश का है और कुछ है जो कीचड़ से आया है। तो इसलिए बड़ा महत्वपूर्ण प्रतीक है कमल।
आदमी भी है तो कीचड़--माटी की मूरत! मगर कमल खिल सकता है। है तो आदमी मिट्टी का हिस्सा, लेकिन आकाश उतर सकता है। है तो आदमी जमीन पर सरकता हुआ कीड़ा-मकोड़ा, लेकिन पंख उग सकते हैं। सूरज की तलाश में आकाश की उड़ान भरी जा सकती है।
जैसा कमल एक विरोधाभास है, ऐसा ही विरोधाभास मनुष्य है। कीचड़ ही मत रह जाना!
इसलिए हमने इस देश के सद्गुरुओं को, बुद्ध को कमल पर बिठाया है, कि विष्णु को कमल पर खड़ा किया है। वह प्रतीक है इस बात का, कि माटी सफल हुई, कि माटी में कमल खिला, कि माटी आकाश से गर्भित हुई, कि दृश्य का अदृश्य से मिलन हुआ, कि रूप-अरूप साथ-साथ-नाचे, कि आकार में निराकार समाया, कि निराकार अतिथि बना आकार का। ऐसा अजूबा घटा! इसलिए कमल पर खड़ा किया बुद्ध को। वह प्रतीक है। इसलिए हमने मनुष्य की जो ऊर्जा की अंतिम अभिव्यक्ति है, उसको सहस्रदल कमल कहा, सहस्रार।
कामवासना तो कीचड़ है। वह तो मिट्टी का आदान-प्रदान है। वह पहला केंद्र है मनुष्य की ऊर्जा का और सहस्रार अंतिम केंद्र है। सात चक्र हैं। पहला कामवासना का चक्र है--मूलाधार। वह तो मिट्टी है। और मूल तो होगा भी मिट्टी में ही। मूल यानी जड़। जड़ को तो मिट्टी में ही फैलना होगा। और जो अंतिम अभिव्यक्ति है, वह है सहस्रदल कमल--हजार पंखुड़ियों वाला कमल! वह आखिरी ऊंचाई है। जड़ें हैं कीचड़ में, कमल है आकाश में।
कीचड़ और कमल के बीच आदमी का पूरा विकास छिपा है। अभागे हैं वे जो कीचड़
की तरह ही मर जाएंगे, क्योंकि कमल के बीज लेकर आए थे और उन्हें कभी फूलने का मौका न दिया! सदगुरु के पास तुम्हारे भीतर जो कमल का बीज है, वह

सुगबुगाने लगता है। उसकी नींद थोड़ी टूटने लगती है। उसका सपना थोड़ा हलका होने लगता है, झीना होने लगता है। उस पर चोट पड़ने लगती है, सतत चोट पड़ने से... सत्संग का यही अर्थ है--सतत चोट... सतत चोट पड़ने से एक दिन हुंकार भर कर तुम्हारे भीतर का बीज टूट पड़ता है। और जब बीज टूटता है तो मिट्टी अमृत हो जाती है। तब मिट्टी में छिपी हुई सारी संभावनाएं प्रकट हो जाती हैं। सारा रंग, सारा रूप, सारी सुगंध बीज के माध्यम से प्रकट होने लगती है। पृथ्वी प्रार्थना में तल्लीन हो जाती है।
कमल पृथ्वी की आकाश के प्रति की गई प्रार्थना है।
कमल पृथ्वी की संभावना है, प्रार्थना है, अभीप्सा है, आकांक्षा है, आत्यंतिक सिद्धि है।
और दूसरी बात कमल के संबंध में, क्यों प्रतीक बन गया कमल? जल में रहता
है और फिर भी अछूता! जल उसे छूता नहीं। यह परम संन्यास की धारणा है। यह परम वीतरागता का अर्थ है। रहो संसार में, संसार छुए न। रहो संसार में, संसार तुममें न रहे। बैठो बाजार में और फिर भी बाजार में नहीं।
संसार से जो भागते हैं, वे संन्यास की परम धारणा नहीं समझे। वह तो ऐसे
ही है जैसे कोई कमल जल को छोड़ कर भागा, डरा, घबड़ाया कि यहां पानी में रहूंगा तो कहीं पानी छू न जाए। इस कमल को अभी अपना स्वरूप-बोध नहीं हुआ है। स्वरूप-बोध होता तो कहां भागना है! होती रहे वर्षा आकाश से बरसते रहें मेघ, कमल को क्या फिकर पड़ी है? जल गिरेगा, बहता रहेगा, कमल अछूता रहेगा। कमल का कुंवारापन नष्ट नहीं होता। उसका कुंवारापन शाश्वत है।
तो एक तो मिट्टी से पैदा होता है, क्षुद्र से विराट जन्मता है--यह चमत्कार! और फिर जल में रह कर जल से अछूता होता है। यह संन्यास की परम धारणा है।
सुंदरदास कहते हैंः सुनत नगारे चोट... ।
सदगुरु का काम है कि बजाए नगाड़ा, पुकारे उनको जिनके भीतर बीज है। दे आवाज, उठाए आवाहन कि "कब तक मिट्टी बने रहोगे? ऐसे भी बहुत देर हो गई, अब जागो! भोर हो गई, अब जागो! बहुत सो लिए, अब जागो!" करे चोट करारी! ऐसी कि पोर-पोर भिद जाए, ऐसी कि आर-पार हो जाए।
सदगुरु सांत्वना नहीं देता, सदगुरु सक्रांति देता है। सांत्वना कूड़ा-कचरा है, लीपा-पोती है। सदगुरु सांत्वना नहीं देता, सदगुरु झकझोरता है, नगाड़े पर चोट देता है। कायर भाग जाते हैं, साहसी जम जाते हैं।
सुनत नगारे चोट विगसै कंवलमुख
अधिक उछाह फूल्यौ माइहू न तन मैं।
और जिनके भीतर थोड़ी भी धार है, उनके भीतर ऐसा उछाह पैदा होता है कि शरीर में समाता नहीं। सद्गुरु को पाकर उनके भीतर ऐसा उछाह, ऐसा उत्साह, ऐसा उत्सव, ऐसी उमंग, ऐसा अहोभाव जन्मता है कि समाता नहीं। नाचने लगता है उनका मन। नाचने लगता है उनका तन। बहने लगती है उनके बाहर रस की धार। अधिक उछाह फूल्यौ... फूल पर फूल खिलते चले जाते हैं।... माइहू न तन मैं। सामने वाली बात नहीं है।
शिष्य सदगुरु को कहां समा पाता है! समाने की चेष्टा में शिष्य भी विस्तीर्ण हो जाता है, अनंत हो जाता है। आकाश को आंगन कैसे समाएगा? लेकिन अगर समाने की कोशिश की तो एक बात पक्की है कि दीवालें टूट जाएंगी आंगन की और आंगन भी आकाश हो जाएगा। आकाश को समाना हो तो आकाश ही होना पड़ता है। इसलिए मैं तुमसे निरंतर कहता हूं, कृष्ण को समझना हो तो कृष्ण होना पड़ता है। बुद्ध को समझना हो तो बुद्ध होना पड़ता है। इससे कम में न चलेगा। नानक को समझना हो तो सिक्ख होने से नहीं चलेगा, नानक होना पड़ेगा।
ये तो हम बहुत होशियार और कुशल लोग हैं। हम कहते हैं, बुद्ध को समझना
है तो चलो बौद्ध हो जाएं। बुद्ध तो बौद्ध नहीं थे। और क्राइस्ट तो क्रिश्चियन नहीं थे। और मोहम्मद तो मुसलमान नहीं थे। और नानक तो सिक्ख नहीं थे। अब जो सिक्ख हो रहा है वह समझ ले, वह नानक नहीं हो पाएगा। नानक ही होना, इससे कम में क्या चलेगा! और जिसका नानक से प्रेम जन्मा है, जिसके मन में नानक के प्रति भाव उठा है, वह इससे कम पर राजी भी नहीं होगा।

प्रेमी सदा अपनी प्रेयसी से एक हो जाना चाहता है। प्रेयसी अपने प्रेमी से एक हो जाना चाहती है, तल्लीन हो जाना चाहती है। शिष्य वही है जो अपने गुरु के साथ एक हो जाना चाहता है, एकात्म हो जाना चाहता है। बड़े साहस की जरूरत है।
सुंदरदास आगे के वचनों में जो साहस की बात कर रहे हैं, वह ख्याल में रखना। कमजोरों का काम नहीं। अपने छोटे-छोटे घरगूले जो बचाने में लगे हैं, उनका यह काम नहीं। यह उनका काम है जो कहते हैं कि ठीक है, सब दीवालें जाएं तो जाएं, लेकिन अब आकाश से दोस्ती जोड़ी है तो छोड़ेंगे नहीं।
अधिक उछाह फूल्यौ माइहू न तन मैं।
फिरै जब सांगि तब कोऊ नहिं धीर धरै,
काइर कंपाइमान होते देखि मन मैं।।
और जब युद्ध में भाले चमकते हैं... और यह भी युद्ध है--अंतर युद्ध। इसके
भी अपने भाले हैं। बाहर के युद्ध तो भीतर के युद्ध की केवल पीली-पीली छायाएं मात्र हैं, और कुछ भी नहीं। एक युद्ध तो था जो बाहर हुआ, महाभारत का "धर्मक्षेत्रे कुरूक्षेत्रे।" तो एक तो कुरूक्षेत्र था, जहां युद्ध हुआ। और एक और युद्ध साथ-साथ बाहर चल रहा था... "धर्मक्षेत्रे" वह भीतर था। एक युद्ध बाहर चल रहा था, एक भीतर चल रहा था। जो बाहर चल रहा है वह भीतर के लिए केवल प्रतीक है। भीतर बहुत बड़ा युद्ध चल रहा है। क्योंकि दूसरे से लड़ना आसान है, अपने से लड़ना कठिन है। दूसरे को काटना आसान है, अपने को काटना कठिन है। दूसरे को मारना आसान है, अपने को मारना कठिन है।
और धर्म का अर्थ ही यही होता है, अपने को काटना। अपने को ऐसा पोंछ डालना और मिटा डालना कि नाम और निशान न रह जाए। जब तुम नहीं बचते तभी परमात्मा तुममें अवतरित होता है। जब तक तुम हो तब तक उससे पहचान न होगी। जब तक "मैं-भाव" है तब तक "वह" नहीं उतर पाएगा। तब तक तुम खूब भरे हो अपने भीतर, जगह कहां? घास-फूस इतना भरा है बिजूकों में कि जगह कहां? अवकाश कहां? परमात्मा आना चाहे तो द्वार कहां? तुम्हें उतरना होगा सिंहासन से। तुम्हें विदा हो जाना होगा।
आध्यात्मिक जीवन की जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है वह यह है कि भक्त
और भगवान का कभी मिलन नहीं होता। सुना हो तुमने तो गलत सुना है। भक्त और भगवान का मिलन कभी नहीं होता, क्योंकि जब तक भक्त होता है, भगवान नहीं होता; और जब भगवान होता है तो भक्त कहां?
कबीर ने कहा हैः हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ। खोजते-खोजते कबीर खो गया और तब मिलन हुआ। मिलन तो होता है, लेकिन तब होता है जब खोजी खो जाता है।
फिर जब सांगि तब कोऊ नहिं धीर धरै,
काइर कंपाइमान होत देखि मन मैं।।
टूटिकैं पतंग जैसे परत पावक मांहि,
ऐसैं टूटि परै बहु सावंत के गन मैं।
लेकिन जो सच में योद्धा हैं वे ऐसे टूट पड़ते हैं युद्ध में, जैसे पतंगा दीवाना हुआ, पागल हुआ, दीप-शिखा पर टूट पड़ता है, या अग्नि में कूद पड़ता है। पतंगा जब दीप-शिखा पर कूदता है, पतंगा जब आग में उतरता है, तो ठीक वैसी ही घटना घट रही है जैसा भक्त जब भगवान में उतरता है। इसलिए सूफियों ने पतंगे और दीप-शिखा के प्रतीक को बहुत मूल्य दिया है। ऐसे ही भगवान को खोजना वस्तुतः मौलिक रूप से अपने को मिटाना है।
टूटिकैं पतंग जैसे परत पावक मांहि,
ऐसैं टूटि परै बहु सावंत के मन मैं।
--जिनके भीतर गरिमा है, गौरव है, जिनके भीतर मनुष्य होने की अर्थवत्ता
का थोड़ा सा बोध है। जिन्हें यह पता है कि न मालूम कितनी कोटियों के बाद, न मालूम पशुओं, पक्षियों, पहाड़ों, वृक्षों की कितनी यात्राओं के बाद, कितनी योनियों के बाद मनुष्य होने की क्षमता मिली है। इसे यूं ही नहीं गंवा देना है। इससे कुछ और आगे का कमा लेना है। यह सीढ़ी ऐसे ही न खो जाए, इससे ऊपर उठ जाना है। यह अवसर मिला है, इसको ठीक-ठीक भंजा लेना है।
मारि घमसांण करि सुंदर जुहारै स्याम,

सोई सूरबीर रुपि रहै जाइ रन मैं।
और जो युद्ध जीत कर शाम को लौटता है और अपने स्वामी को प्रणाम करता है, वही शूरवीर है।
मारि घमसांण करि सुंदर जुहारै स्याम
सोइ सूरबीर रुपि रहै जाइ रन मैं।
समझना कि वही युद्ध में टिका जो सांझ को सफाया करके लौटता है, अपने मालिक को नमस्कार करता है।
सूरबीर रिपु कौ निमूनौ देखि चोट करै,
मारै तब ताकि करि तरवारि तीर सौ।
वह जो योद्धा है वह देखता है कि कैसी चुनौती है, उस चुनौती के योग्य उत्तर देता है। चुनौती को अंगीकार कर लेता है। देखता है किस भांति का शत्रु है? कैसे लड़ना होगा? अवसर के अनुकूल अपनी ऊर्जा को आवाहन देता है। सूरबीर रिपु कौ निमूनौ देखि चोट करै,
मारै तब ताकि करि तरवारि तीर सौ।
और तब एकाग्र हो तलवार से या तीर से निशाना लगाता है। यह तो बाहर के युद्ध की बात हुई, मगर भीतर के लिए प्रतीक है।
साधु आठौ जाम बैठौ मन ही सौं युद्ध करै।
यह तो बाहर के युद्ध की बात हुई, अब भीतर के युद्ध को समझें।
साधु आठौ जाम बैठौ मन ही सौं युद्ध करै।
और यह तो बाहर का युद्ध थोड़ी-बहुत देर चलता है। सुबह से शुरू हुआ है, सांझ समाप्त हो जाता है। लेकिन साधु का युद्ध शुरू हुआ तो समाप्त नहीं होता, जब तक कि साधु ही समाप्त न हो जाए। हेरत-हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराइ! यह युद्ध अनवरत है, अखंड है, प्रतिपल चलता है। इसमें क्षण भर विश्राम नहीं है। इसमें दिन हो कि रात, भेद नहीं है। जागने में भी चलता है, सोने में भी चलता है।
आनंद बुद्ध के पास वर्षों रहा। एक बात देख कर चौंकता था बहुत, कि वे रात जैसा होते थे वैसे ही सोए रहते थे, पूरी रात! जहां पैर रखा वहां पैर, जहां हाथ रखा वहां हाथ, जिस करवट रहे उसी करवट! रात करवट भी न बदलते! हाथ-पैर भी यहां-वहां न करते। आनंद ने पूछा एक दिनः भंते! आप कभी करवट नहीं बदलते! आप जहां हाथ रखते वहीं रखते जहां पैर रखते, वहीं रखते। सुबह भी ठीक वहीं होता है जहां रात रख कर सोते। इसका राज? सोते हैं कि नहीं सोते? बुद्ध ने कहाः अब सोना कैसा? जब जागना ही है तो सोना कैसा? देह सो जाती है, मैं तो जागा ही रहता हूं। दिन भर भी जागना है, रातभर भी जागना है। कृष्ण ने अर्जुन को कहा हैः या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। जब सब सो जाते हैं तब भी साधु जागता है। इसका यह अर्थ नहीं कि साधु बैठा ही रहता है, कि खड़ा ही रहता है। साधु भी सोता है, लेकिन देह ही सोती है। सोते में भी साधु जागता है, जानता है कि मैं सो रहा हूं। उसके चैतन्य का दीया जलता रहता है।
साधु आठौ जाम बैठो मन ही सौं युद्ध करै,
जाकै मुंह माथौ नहिं देखिए शरीर सौं।।
और युद्ध ऐसा है, कठिन है, क्योंकि जिससे हो रहा है, न तो उसका माथा है,
न मुंह है, न उसकी देह है। मन से युद्ध हो रहा है। यह तलवार मन के खिलाफ उठी है और अपने ही मन के खिलाफ उठी है। और मन को काटे बिना कोई उपाय नहीं है। जब तक अमन की दशा न आ जाए, अमनी दशा न आ जाए, तब तक कोई उपाय नहीं।
मन के पार जाना है। मन संसार है। बाजार में नहीं है संसार, न पत्नी में, न पति में, न बच्चों में, न धन में, न मकान में, न दुकान में। मन में संसार है। मन ही संसार है। ये जो सतत मन में चल रहे विचार और वासनाएं और ऊहापोह और स्मृतियां और कल्पनाएं, यह सारा जो जाल है मन का, यही संसार है। इसे काटना है। इसे समाप्त करना है। इसे भस्मीभूत कर देना है। आलमे-हुस्न-ओ-इश्क की कौन वह बात है जिसे
भूले अगर तो याद आए याद करें तो भूल जाए।
कश्ती-ए-दिल बचाइए इतना मगर रहे ख्याल
डूबे अगर तो पार हो, पार लगे तो डूब जाए।

मिटना है! डूबे अगर तो पार हो... । बाहर की दुनिया में डूबे तो डूबे, पार हुए तो पार हुए। भीतर की इबादत और, भीतर का हिसाब ओर, इबारत और। वहां पार हुए तो तो डूबे, वहां डूबे तो पार हुए। वहां मन बचा तो चूके, वहां मन गया तो बचे।
जीसस ने कहा हैः धन्य हैं वे जो गंवा देंगे, क्योंकि वे ही पा लेने के अधिकारी हैं। कौन सी चीज गंवाने की बात हो रही है?
--हेरत-हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
--मन, मैं-भाव, अहंकार। और यहीं सारी अड़चन है।
आदमी का आदमी होना नहीं आसां "फिराक"
इल्मो-फन इख्लाको मजहब जिससे चाहो पूछ लो।
अड़चन क्या है? अड़चन यही है कि मन को मारो कैसे? अपना है। अपना ही नहीं, हमने तो अब तक यही जाना है कि यही मैं हूं। तो धर्म तो ऐसा लगता है जैसे आत्मघात कर रहे हैं। इसलिए कायर तो भाग खड़े होते हैं। उनका कमल नहीं खिलता। उनका तो कमल खिला भी हो तो बंद हो जाता है। कायर तो भाग खड़े होते हैं। कायर सांत्वना चाहते हैं, संक्रांति नहीं चाहते। वे कहते हैंः हमारे आंसू पोंछ दो। वे कहते हैंः हमें कुछ ऐसी बातें बता दो कि संसार सब ठीक-ठीक चलने लगे। उनका हिसाब-किताब ही गलत है।
सुमित्रा ने कल एक प्रश्न पूछा है। पूछा है कि मेरी जिंदगी दुख ही दुख में गई। और मेरे दोनों बेटे भी दुखी हैं।
क्या दुख? यह सुमित्रा को यही फिकर लगी हुई है, पहले भी मुझे कह गई आकर
कि मेरी जिंदगी दुख ही दुख में गई। किसकी जिंदगी सुख में जा रही है? जरा आंख उठा कर देख सुमित्रा, किसकी जिंदगी सुख में जा रही है? अपना दुख दिखाई पड़ता है दूसरे का दिखाई नहीं पड़ता, इससे भ्रांति में मत पड़ना! किनके बेटे सुखी हैं? कौन यहां सुखी है?
मैंने एक बहुत पुरानी कहानी सुनी है। एक आदमी भगवान की प्रार्थना करता ही रहा, करता ही रहा और प्रार्थना में एक ही बात कहता था कि मुझे इतना दुखी क्यों बनाया? सुमित्रा जैसा रहा होगा। सारी दुनिया सुख से जी रही है और मैं दुखी! मैं दुखी! आखिर मेरा कसूर क्या है? मुझसे भूल क्या हुई? भगवान भी थक गया होगा। एक दिन उसने पूछा कि भाई, तू चाहता क्या है? उस आदमी ने कहा कि इतना ही कर दो, मुझे किसी भी दूसरे का दुख दे दो और मेरा दुख किसी और को दे दो। मैं किसी से भी बदलने को राजी हूं। मैं यह भी नहीं कहता कि मुझे दुख न दो, मगर मुझे यह दुख जो दिया है यह मत दो। मैं बदलने को राजी हूं।
सारी दुनिया खुश दिखाई पड़ती है। लोग दिखाई ही पड़ते हैं खुश। बाजार में जाओ, इत्र-फुलेल लगाए लोग चले जा रहे हैं। हंस रहे हैं, बात कर रहे हैं। ऐसा लगता है सारी दुनिया में मजा ही मजा है, एक हम ही दुखी! और यही उन सब को भी है ख्याल कि बाकी सारे लोग मजे में हैं, मैं ही एक दुख भोग रहा हूं। चूंकि सारी दुनिया में लोग हंस रहे हैं, प्रसन्न हो रहे हैं, तो शिष्टाचार कहता हैः मैं भी हंसूं, मैं भी प्रसन्न रहूं। अब यह दुख का राग लेकर बैठ जाना क्या! मगर उसे पता नहीं है कि यही सब की हालत है।
पति-पत्नी घर में झगड़ते रहते हैं और जैसे ही कोई द्वार पर दस्तक दे देता है, एकदम मुस्कुराने लगते हैं। आइए, बैठिए, विराजिए... । और दोनों में ऐसी बातें होने लगती हैं जैसे कि महा प्रेम घट रहा है! और अभी एक दूसरे की गर्दन के पीछे पड़े थे। अभी एक-दूसरे की जान लेने को उतारू हो रहे थे। अब स्वभावतः यह मेहमान यह सोचेगाः अहा, सतयुगी दंपत्ति! और उसे कुछ पता नहीं कि अभी-अभी क्या हो रहा था। उसके घर भी यही होता है, मगर उसे अपनी हालत पता है।
तो भगवान ने कहाः ठीक, ऐसा ही हो जाएगा, आज रात ऐसा ही हो जाएगा। उस रात
वह सोया तो सपना उसे आया कि सारे लोग अपने-अपने दुख पोटलियों में बांध कर गांव के चौरस्ते की तरफ जा रहे हैं। और बड़े जोर से आवाज गूंज रही है कि सब अपने-अपने दुख पोटलियों में बांध कर ले आओ, और जिसको जिससे बदलना हो बदल डालो। सभी दुखी हैं। सब ने अपने-अपने दुख बांधे। सब बांध डाले जिसके जितने दुख थे। बड़ी-बड़ी पोटलियां लिए लोग जा रहे हैं। इसने भी जल्दी से अपने दुख

बांध लिए यह तो जिंदगी भर से यही हिसाब लगाए बैठा था, कब मौका मिले। जब यह रास्ते पर निकला तो बड़ा हैरान हुआ। यह तो सोचता था कि लोग छोटी-मोटी पोटलियां ले जा रहे होंगे, लोग इससे भी बड़ी-बड़ी पोटलियां लिए जा रहे हैं। छाती इसकी बैठ गई। देखने लगा चारों तरफ, किससे बदलना है! अपनी पोटली छोटी मालूम पड़ी। थोड़ा डरने लगा कि अब क्या बदलना ही पड़ेगा?
फिर आज्ञा हुई कि सब अपनी-अपनी पोटलियों को रख दो। पोटलियां रख दी गईं। फिर आज्ञा हुई कि अब जिसको जो पोटली चुननी हो चुन ले। यह आदमी भागा कि इसकी पोटली कोई और न चुन ले, अपनी पोटली चुनने के लिए। लेकिन चकित हुआ यह जान कर कि सब अपनी-अपनी पोटलियों की तरफ भागे। किसी ने किसी और की न चुनी, सब ने अपनी-अपनी चुन ली और बड़े निश्चिंत हुए और बड़े अनुगृहीत और परमात्मा का बड़ा धन्यवाद किया। पूछने लगे एक-दूसरे से, भाई! सब ने अपनी-अपनी क्यों चुनी! तो सभी ने कहा कि कम से कम अपने दुख परिचित तो हैं, पहचाने हुए हैं। दूसरे की पोटली में पता नहीं कौन सांप-बिच्छू, कौन सी झंझट... !
सुमित्रा, मैं तुझसे कहता हूं कि तेरे दुख कम से कम जाने-पहचाने तो हैं! किसी से बदलना है? अगर बदलना हो तो आज रात बदलवा देंगे। अपनी पोटली बांध कर ले आना। मगर ख्याल रहे कि पछताएगी बहुत बदल कर! क्योंकि फिर से अ ब स सीखना पड़ेगा। दूसरे के दुख... ।
अपने-अपने दुःख से आदमी धीरे-धीरे राजी हो जाता है, परिचित हो जाता है, जाने-पहचाने, मित्रता बन जाती है। सच तो यह है कि जब दुख एकदम से, अचानक तुम्हें छोड़ जाएगा तो बड़ा खालीपन लगेगा। जैसे कोई सगा-संगी चला गया।
दुख क्या है? सुमित्रा कहती है कि मेरे बेटे-बेटी भी सुखी नहीं हैं। कौन सुखी है यहां? यहां कोई सुखी हो ही नहीं सकता। बहिर्यात्रा में सुख होता ही नहीं। बहिर्यात्रा यानी दुख। बहिर्यात्रा पर्यायवाची है दुख का। थोड़े-थोड़े भिन्न होंगे, थोड़े-थोड़े अलग होंगे, ढंग अलग होंगे, रंग अलग होंगे--मगर बाहर की यात्रा में सुख नहीं होता। क्या सुमित्रा तू सोचती है सुमित्रा नेपाल से आती है। बुद्ध भी नेपाल में ही पैदा हुए थे। तू सोचती है बुद्ध की हालत तुझसे बेहतर रही होगी? नहीं तो घर छोड़ कर भागे होते? बुद्ध की हालत भी तेरे जैसी रही होगी, तुझसे बदतर रही होगी। कम से कम तू अब तक घर छोड़ कर नहीं भागी है।
बुद्ध का स्मरण करो। सुंदर पत्नी थी, सुंदर बेटा पैदा हुआ था, राजमहल था, सब था, मगर सुख नहीं था। क्यों छोड़ दिया होगा? सुख बाहर होता ही नहीं। सुख तो भीतर है। और भीतर सुख तभी जन्मता है जब मन से हम मुक्त हो जाते हैं।
मन का अभाव सुख है, मन का भाव दुःख है। मन की सघनता नरक है, मन से मुक्ति स्वर्ग है।
साधु आठौ जाम बैठौ मन ही सौं युद्ध करै,
जाके मुंह माथौ नहिं देखिए शरीर सौं।।
उसका युद्ध कठिन है, क्योंकि मन न तो दिखाई पड़ता है, न उसका मुंह है, न माथा है; लेकिन फिर भी युद्ध करता है और एक दिन इस अदृश्य शत्रु को भी काट डालता है, छिन्न-भिन्न कर देता है।
सूरबीर भूमि परै, दौर करै, दूरि लगैं,
साधु शून्य कौं पकरि राखै धरि धीर सौं।
बड़ा प्यारा वचन है! युद्ध के मैदान में तो सुविधा है। सूरबीर भूमि परै, दौर करै दूरि लगैं। सुविधा है, दुश्मन का पीछा कर सकते हो। भागो, पकड़ो, मारो, उपाय है। साधु के भीतर तो जगह भी नहीं भाग-दौड़ की, बैठना पड़ता है। साधु का उपक्रम एक ही है, साधना एक ही है--बैठ जाने की कहां भागे? कहां दौड़े? कहां जाए? वहां तो कोई दिशा भी नहीं है भीतर। वहां स्थान भी नहीं है भीतर। वहां तो रत्ती भर चलने की सुविधा नहीं है। साधु तो बैठ रहता है। उस बैठ जाने का नाम ही ध्यान है। बिल्कुल बैठ रहता है, हिलता ही नहीं, डुलता ही नहीं।
और मैं जब कह रहा हूं, हिलता ही नहीं, डुलता ही नहीं, तो मेरा मतलब तुम्हारे शरीर से नहीं है। नहीं तो लोग अजीब झंझटों में पड़ जाते हैं। अब ध्यान में बैठे हैं, अब शरीर नहीं हिलना चाहिए। अब एक चींटी काट रही है, अब शरीर नहीं हिलना चाहिए। अब फंसे चक्कर में वे! अब वह चींटी काटती ही जा रही

है। और चींटियां भी खूब हैं! ध्यानियों की बिल्कुल दुश्मन हैं। ध्यान न करो तो उनसे मिलन नहीं होता। मच्छर हैं, वे पुराने दुश्मन हैं ध्यान के। वैसे तुम्हारे पास न आएं, मगर ध्यान करने बैठो तो सब आ जाते हैं। सब अपना साज-संगीत छेड़ देते हैं। संगीत तो वे सदा ही छेड़े रहते हैं, लेकिन तुम इतने उलझे रहते हो विचारों में कि सुनाई नहीं पड़ता। जब शांत होकर बैठते हो, सुनाई पड़ता है चींटियां तो चढ़ती ही रहती हैं, उतरती ही रहती हैं, कोई चींटियों को तुम्हारे ध्यान का पता नहीं है। चींटियों को ध्यान का पता हो जाए तो तुमसे ऊपर की योनि हो जाए उनकी।
लेकिन तुम जब शांत बैठते हो तब छोटी-छोटी चीज का पता चलता है। जरा सी चींटी सरक गई, पैर सुन्न हो गया। इन सबकी चिंता में मत पड़ना। शरीर के हिलने-डुलने का सवाल नहीं है। शरीर तो नाचता भी रह सकता है तो भी ध्यान हो जाता है। भीतर हिलन-डुलन नहीं होना चाहिए। भीतर कोई वासना न कंपे। भीतर कोई विचार का कंपन न हो। भीतर कोई हवा न बहे कामना की। बस, बैठने का वही अर्थ है। वही वस्तुतः सिद्धासन है।
सूरबीर भूमि परै दौर करै दूरि लगैं,
साधु शून्य कौं पकरि राखै धरि धीर सौं।
और साधु की सारी साधना यही है कि शून्य को पकड़ ले और पकड़ कर शून्य को बैठा रहे। शून्य को खंडित न होने दे। शून्य को.जरा भी भरने न दे--किसी विचार से, किसी कामना से, किसी स्मृति से, किसी कल्पना से। कोरा मन हो, कोरे कागज जैसा... । कुछ भी उस पर लिखावट न हो। ऐसा शून्य जैसे-जैसे सधता जाता है वैसे-वैसे ही साधक मिटता जाता है। जिस दिन शून्य सच में पूर्ण हो जाता है, उसी दिन साधक सिद्ध हो जाता है। उसी दिन भक्त भगवान हो जाता है। ख्वाहिशों को तेरी मोहब्बत में
ख्वाहिशों से बुलंद होना है
वासना को इतना ऊंचाई पर ले जाना है कि वासना न बचे।
ख्वाहिशों को तेरी मोहब्बत में
ख्वाहिशों से बुलंद होना है
वासना बड़ी क्षुद्र है। उसे निर्वासना का रंग देना है।
हजार बार तेरा हुस्न, हुस्न होके रहा
वो हम थे इश्क को जो कर सके न इश्क कभी
परमात्मा का सौंदर्य तो प्रतिपल मौजूद है। उसने तो हमें सब तरफ से घेरा है। लेकिन हम ही हैं जो उसके सौंदर्य को आंख खोल कर देख नहीं पाते। हम ही हैं, अपने से इतने भरे कि उसके सौंदर्य की हमें झलक भी नहीं मिल पाती। वह तो बजाए जाता है वीणा को। उसकी बांसुरी तो बजती ही रहती है, पर हम बड़े उपद्रव से भरे हैं।
हजार बार तेरा हुस्न हुस्न होके रहा
वो हम थे इश्क को जो कर सके न इश्क कभी
हमारे ही प्रेम में कमी हो रही है। हमारा प्रेम शून्य नहीं है, अहेतुक नहीं है, वासना-मुक्त नहीं है। जिस दिन प्रेम वासना-मुक्त हो जाता है उसी दिन प्रार्थना हो जाता है।
तुम तो प्रार्थना भी करते हो तो उसमें भी वासना लगाए रखते हो। गए मंदिर, की प्रार्थना। प्रार्थना तो बहाना है, कुछ मांगने चले गए--कि लड़के की नौकरी लग जाए, कि बेटी की शादी हो जाए।
एक युवती जरा ढंग-ढौल की नहीं थी। शकल-सूरत जरा घबड़ाने वाली थी। थोड़ी डरावनी थी। स्वभावतः मंदिर न जाए तो और कहां जाए? तो मंदिर में वह रोज प्रार्थना करे। अब प्रार्थना वह और क्या करे? यही कि विवाह करवा दो। एक साधु भी मंदिर में आता-जाता था, उसकी प्रार्थना रोज सुनता था। उस साधु ने कहाः सुन, प्रार्थना में अपने लिए कुछ नहीं मांगना चाहिए। अगर मांगना ही हो तो दूसरों के लिए मांगना चाहिए। कोई गरीब है, कोई भूखा है, कोई प्यासा है, कोई लूला है, लंगड़ा है। अपने लिए तो मांगना ही नहीं चाहिए, दूसरों के लिए।

तो उसने दूसरे दिन से दूसरों के लिए मांगना शुरू कर दिया। पता है उसने क्या मांगा? उसने कहा कि हे परमात्मा! मेरी मां को एक अच्छा, सुंदर सा दामाद दो।
आदमी प्रार्थना भी करेगा तो भी वासना ही होने वाली है।
सूरबीर भूमि परै दौर करै दूरि लगैं,
साधु शून्य कौं पकरि राखै धरि धीर सौं।
बस शून्य ही लक्ष्य है। ऐसा एक क्षण आ जाए हमारे भीतर जब कोई विचार न हो--निर्विचार, निर्विकल्प! बस उसी क्षण में जोड़ हो जाता है, सेतु बन जाता है। वही शून्य द्वार है पूर्ण का।
सुंदर कहत, तहां काहू के न पाव टिकैं,
साधु कौ संग्राम है अधिक सूरबीर सौं।।
उस शून्य में पांव टिकाना बड़ा कठिन मामला है। खिसक-खिसक जाता है। विचार आए ही चले जाते हैं। वासना उमगे ही चली जाती है। इधर से हटाओ, उधर से प्रवेश हो जाता है विचार का। और जितना छोड़ना चाहो उतना कठिन मालूम होता है।
एक आदमी एक साधु के पीछे बहुत दिन से पड़ा था कि कुछ मंत्र दे दो। कुछ ऐसा मंत्र दे दो कि सिद्धि हो जाए। कुछ ऐसा मंत्र दे दो कि इस बार प्रधानमंत्री हो जाऊं। साधु थक गया, परेशान हो गया, तो उसने कहा कि तू एक काम कर। यह मंत्र ले। छोटा सा मंत्र है, पांच मिनट में पूरा होता है। बस एक ही शर्त है इसकी कि जब मंत्र का पाठ करे तो बंदर की याद न आए!
अब राजनेता--और बंदर की याद न आए! सजातीय हैं। बंदर की याद न आए? लेकिन राजनेता ने कहा: कोई फिकर न करो, मुझे कहां बंदर की याद! मुझे सिवाय दिल्ली के और किसी चीज की याद ही नहीं। कहां बंदर-वंदर लगा रखा है!
भागा घर। स्नान-ध्यान करने की कोशिश की, मगर बड़ा हैरान हुआ। स्नान कर रहा है और बंदर... । मामला क्या है? यह क्यों पीछे पड़ गया? और जैसे ही बैठा पालथी लगा कर कि एक नहीं कई बंदर... ! आंख बंद करे तो बंदर ही बंदर। मंत्र पढ़ना मुश्किल हो गया। पांच मिनट की बात क्या, पांच सेकेंड मुश्किल। बंदर मुंह बिचकाएं, शोरगुल मचाएं। रात बीत गई, मगर बंदरों ने पांच मिनिट भी पीछा न छोड़ा। सुबह थक गया। जा कर साधु पर बहुत नाराज हो गया कि एक तो सालों मुझे भटकाया, दिया नहीं मंत्र, और दिया तो यह उपद्रव लगा दिया। अगर तुमने न कहा होता तो मैं तुम्हें पक्का विश्वास दिला हूं कि बंदर की मुझे कभी याद नहीं आती, क्योंकि कभी मुझे आती ही नहीं थी। और भी दुनिया में हजारों जानवर हैं, गधे हैं, घोड़े हैं, और न मालूम क्या-क्या हैं। किसी की याद नहीं, रातभर सिवाय बंदर के! तुमने कहा ही क्यों? अगर वही शर्त थी तो चुप रह जाते। साधु ने कहा: वह मुश्किल है। वह शर्त बतानी पड़ती है। अब मंत्र तुम्हें दे दिया, अब तुम जानो, अब मेरा पीछा छोड़ो। जिस दिन भी तुम पांच मिनिट बिना बंदर की याद किए मंत्र पढ़ लोगे, उसी दिन सिद्ध हो जाओगे।
सोच सकते हो उस राजनेता की क्या गति हुई होगी? वह बंदर ही हो गया होगा!
अब तक उसकी हालत बड़ी खराब हो गई होगी।
शून्य में पैर जमाना बड़ा कठिन है। जितना तुम जमाने की कोशिश करोगे, उतना ही तुम पाओगे हजार विचारों के प्रवाह आए चले जाते हैं। प्रवाहों पर प्रवाह, झंझावात उठते हैं, आंधियां आती हैं। न मालूम जन्मों-जन्मों के विचारों की पर्तें सारी की सारी हमला बोलती हैं। ऐसे-ऐसे विचार आते हैं जिनको तुमने कभी सोचे भी न थे, बचपन के, किसी न कुछ कह दिया था; बीस साल बीत गए, कोई कारण नहीं है आज आने का। लेकिन जैसे मन पूरा का पूरा संघर्षरत हो जाता है, जिद बांध लेता है कि तुम्हें हरा कर रहेंगे।
धैर्य चाहिए, अनंत धैर्य चाहिए। और चुपचाप प्रयास में लगे रहना चाहिए। होते, होते, होते, होते होता है।
साधु शून्य कौं पकरि रखै धरि धीर सौ।
सुंदर कहत, तहां काहू के पांव टिकैं,
साधु कौ संग्राम है अधिक सूरबीर सौं।।

इसलिए युद्ध जो बाहर के हैं वे कुछ खास युद्ध नहीं। भीतर के युद्ध के सामने बाहर के युद्ध ऐसे ही हैं जैसे कोई शतरंज खेलता है। हाथी, घोड़े... सब नकली। ऐसे बाहर के सारे युद्ध भीतर के युद्ध के सामने नकली हो जाते हैं। अगर जीवन में थोड़ी भी गरिमा हो तो भीतर के युद्ध की चुनौती लो। चलो भीतर। जीतना है तो वहां जीतना है। इसलिए तो हमने महावीर को "महावीर" कहा। बाहर के लोग बहुत से बहुत वीर हो सकते हैं, महावीर नहीं। महावीर उनका नाम नहीं है, नाम तो उनका वर्धमान था। लेकिन जब भीतर जीत हुई, भीतर पताका फहरी शून्य की, तो हमने उन्हें महावीर कहा।
बाहर के सब युद्ध फीके हैं। भीतर को जिसने जीत लिया उसने सब जीत लिया।
जो दूसरों को जीतता है उसकी जीत कुछ खास जीत नहीं है। मौत आएगी और सारी जीत पोंछ जाएगी। जो अपने को जीतता है वही जीतता है, क्योंकि मौत भी फिर उससे कुछ छीन न सकेगी।
जहां को देगी मोहब्बत की तेग आबे-हयात
अभी कुछ और उसे जहर में बुझाए जा
तुम्हारी तलवार अमृत बरसा सकती है, लेकिन अमृत बरसाने के पहले उसे खूब जहर में बुझाना पड़ता है।
जहां को देगी मोहब्बत की तेग आबे-हयात
अभी कुछ और उसे जहर में बुझाए जा
भीतर के गहन संघर्ष से शांति का जन्म होता है। भीतर के गहन तूफान में उतर जाने से एक दिन वैसी शांति आती है जैसी सदा तूफान के बाद ही आ सकती है।
धूलि जैसो धन जाकैं सूलि से संसार सुख।
साधु की प्रक्रिया सुंदरदास कह रहे हैं। धन उसके लिए धूल जैसा है।
धूलि जैसो धन जाकैं सूलि से संसार-सुख।
और संसार के सुख ऐसे हैं जैसे कोई सूली पर चढ़ा दे। जिसने भीतर का सुख जाना, बाहर के सुख सूली जैसे हो ही जाते हैं। जिसने भीतर का सुख जाना, बाहर के सुख दुख जैसे हो जाते हैं। जिसने भीतर का जीवन जाना, बाहर का जीवन मृत्यु से भी बदतर हो जाता है। और जिसने भीतर की रोशनी जानी, उसे बाहर के सूरज सब अंधेरे हो जाते हैं।
धूलि जैसो धन जाकैं सूलि से संसार सुख
भूलि जैसो भाग देखै अंत की सी यारी है।
और उसे कितना ही बड़ा भाग्य का क्षण आ जाए तो भी वह उसको भूल ही जैसा दिखाई पड़ता है। अब बुद्ध को भाग्य का क्षण था--धन था, राज्य था, पद था, प्रतिष्ठा थी, इकलौते बेटे थे, सुंदर से सुंदर स्त्री थी, सब था--लेकिन भाग्य भूल जैसा लगा। छोड़ कर चले गए।
भूलि जैसी भाग देखै अंत की सी यारी है।
और उसे इस संसार के सारे संबंध अब टूटे तब टूटे ऐसे मालूम होते हैं। उनका कोई मूल्य नहीं है। आज हैं कल नहीं होंगे। क्षण भर के हैं, क्षण भर बाद नहीं होंगे। अंत की सी यारी है। जैसे कोई मर ही रहा है और उससे कोई आकर दोस्ती का हाथ बढ़ाता है और कहता है, आओ दोस्ती करें! अब वह मर ही रहा और वह कहता है अब दोस्ती से भी क्या होगा! अब दोस्ती में सार भी क्या? अब ये हाथ उठा कर, और हाथ से हाथ जोड़ने का प्रयोजन भी क्या है? यहां हम प्रतिक्षण ही मर रहे हैं। यहां सारी दोस्ती अंत की सी यारी है। मगर मन है कि धोखे खाए चला जाता है।
किसी का यूं तो हुआ कौन उम्र भर फिर भी
ये हुस्नो-इश्क तो धोखा है सब मगर फिर भी।।
हजार बार जमाना इधर से गुजरा है।
नई-नई सी है कुछ तेरी रहगुजर फिर भी।।
मन धोखा खाए जाता है। मन कहता है--फिर भी ठीक ही कहते होंगे संत कहते हैं तो, मगर अभी नहीं। मन बड़ा चालबाज है। किंतु-परंतुओं में अपने को बचाता
है।
किसी का यूं तो हुआ है कौन उम्र भर फिर भी
ये हुस्नो-इश्क तो धोखा है सब मगर फिर भी।।
हजार बार जमाना इधर से गुजरा है।

नई-नई सी है कुछ तेरी रहगुजर फिर भी।।
मगर मन है कि कहता हैः गुजरो, देखो, कौन जाने, जो दूसरों को नहीं मिला तुम्हें मिले!
मन की सबसे बड़ी चालबाजी क्या है? एक सूत्र में समझाई जा सकती है। मन की सबसे बड़ी चालबाजी है कि वह तुमसे कहता है कि तुम अपवाद हो। किसी को ऐसा नहीं हुआ, लेकिन तुमको होगा। सब मरे हैं, मगर तुम नहीं मरोगे। सबके संबंध टूटे हैं मगर तुम्हारा नहीं टूटेगा। सबने दुख पाया है बाहर, लेकिन तुम नहीं पाओगे। सब हारे हैं बाहर, मगर तुम नहीं हारोगे।
मन की सबसे बड़ी चालबाजी यह है कि वह यह कहता है, तुम अपवाद हो। जो नियम
सब पर लागू होता है।
इस चालबाजी से सावधान रहना। जो नियम सब पर लागू होता है वही तुम पर लागू है। यहां कोई बाहर जीता नहीं, तुम भी नहीं जीतोगे। यहां किसी ने बाहर सुख पाया नहीं, तुम भी नहीं पाओगे। बाहर के जगत में मृत्यु के अतिरिक्त और न कभी कुछ घटा है न घटता है। और वही तुम्हारे लिए भी घटने वाला है। लेकिन मन खेल रचाए चला जाता है।
अपनी ही गर्मी से आया इश्क में इक बांकपन
अपनी ही गरमी से घायल हो गया हुस्ने-बुतां
बस अपना ही सब कल्पना का जाल है। अपने ही मनोभाव हैं। हम ही सौंदर्य निर्मित कर लेते हैं, हम ही प्रेम निर्मित कर लेते हैं, फिर हम ही परेशान होते हैं, फिर हम ही रोते हैं। हम ही अपेक्षाएं बना लेते हैं और फिर विषाद से भर जाते हैं। हम ही आकांक्षाओं की यात्राओं पर निकल जाते हैं, फिर वे पूरी नहीं होतीं, तो रोते हैं, .जार-.जार रोते हैं।
कुछ इशारे थे जिन्हें दुनिया समझ बैठे थे हम।
उस निगाहे-आशना को क्या समझ बैठे थे हम।।
रफ्ता-रफ्ता गैर अपनी ही नजर में हो गए।
वाह री गफलत तुझे अपना समझ बैठे थे हम।।
होश की तौफीक भी कब अहले-दिल को हो सकी।
इश्क में अपने को दीवाना समझ बैठे थे हम।।
बस, सब समझने की बातें हैं, जो चाहो समझ लो। मगर हर समझ दुख में ले जाएगी। समझ छोड़ो, समझना छोड़ो। मन छोड़ो, मनन छोड़ो। शून्य को गहो। और फिर शून्य से एक प्रज्ञा का जन्म होता है। वह प्रज्ञा तुम्हारी नहीं परमात्मा की है। और वही मुक्तिदायी है।
पाप जैसी प्रभुताई सांप जैसो सनमान।
सुंदरदास कहते हैंः यह सारी प्रभुता, यह पद-प्रतिष्ठा... पाप जैसी प्रभुताई सांप जैसो सनमान! यह सांप को दूध पिलाने जैसा है सनमान का जो खेल है, कब काट लेगा पता नहीं।
बड़ाई हू बीछनी सी नागिनी सी नारी है।
और ये सारी प्रशंसाएं बिच्छुओं जैसी हैं। इन्हें हाथ पर रखो, मगर भरोसा मत करना।
बड़ाई हू बीछनी सी नागिनी सी नारी है।
और ख्याल रखना, नारी केवल प्रतीक है, क्योंकि सुंदरदास पुरुषों से बोल रहे होंगे। जैसे नारी नागिनी सी है पुरुष के लिए, वैसा ही पुरुष नाग सा है नारी के लिए। उतना जोड़ लेना। नहीं तो पुरुष सोच लेता है कि हम पुरुष, और नारी नागिनी सी! इस मूढ़ता में मत पड़ना।
संत पुरुष कहते रहे कि नारी नरक का द्वार है। और पुरुष बड़ी अकड़ से इस बात को सम्हाल कर रख लेते हैं।
एक संत मेरे पास आकर ठहरे थे। वे कहने लगे, नारी नरक का द्वार है। तो मैंने कहा, इसमें आप झंझट में पड़ोगे। उन्होंने कहा, कैसी झंझट? मैंने कहाः फिर कोई नारी नरक न जा सकेगी। फिर पुरुष ही पुरुष नरक जाएंगे। नारियों के लिए भी तो कोई नरक का द्वार बनाओ, नहीं तो अकेले पड़ जाओगे नरक में! बड़ा दिल दुखेगा।
नर भी नारी के लिए नरक का द्वार है। असल में नर-नारी का सवाल नहीं है-- कामवासना एक ऐसी भीतरी वासना है जो आंखों को अंधा कर देती है; जो कुछ का

कुछ दिखलाने लगती है; जो नहीं है, दिखाई पड़ने लगता है; जो है, नहीं दिखाई पड़ता। ऐसी मूर्च्छा का नाम है।
अग्नि जैसो इंद्रलोक विघ्न जैसो विधि लोक,
कीरति कलंक जैसी, सिद्धि सींटि डारी है।
और सब तो ठीक ही है। इंद्रलोक में भी सिवाय इंद्रियों की तृप्ति के और कुछ भी नहीं है।... कीरति कलंक जैसी! साधु तो वह है जो सिद्धि को भी ऐसा फेंक देता है, तुच्छ मान कर।
बाहर के जगत में उपद्रव हैं, भीतर के जगत के भी उपद्रव हैं, उनसे भी सावधान रहना जरूरी है। बाहर जैसे शक्तिशाली लोग हो जाते हैं--राजनीति है, धन है, पद-प्रतिष्ठा है--वैसे ही भीतर भी क्षमताएं हैं मन की। मन तुम्हें जल्दी नहीं छोड़ देगा। अगर तुम मन पर मेहनत करते रहोगे तो मन कहेगाः "लो, यह लो एक शक्ति। तुम दूसरों का मन पढ़ सकते हो। किसी के भीतर कोई विचार चल सकता है, उसे देख सकते हो।" उलझे। सार कुछ भी नहीं है, क्योंकि अपने ही विचार देख-देख कर क्या पाया? दूसरे का देख कर क्या खाक पाओगे! वही पोटली दूसरे की। वहां भी क्या रखा है?
एक आदमी को मेरे पास लाया गया था। वह दूसरों के विचार पढ़ने में कुशल है। वह बैठ जाता आंख बंद करके, पांच मिनट शांति से, एकाग्र होकर और बताने लगता है कि आपके भीतर क्या विचार चल रहे हैं। वह मेरे सामने भी बैठ गया। वह आधा घंटा बैठा रहा। मैंने कहाः अब तू कुछ बोल। उसने कहाः क्या खाक बोलें! क्योंकि कुछ चल ही नहीं रहा है। तो मैंने उससे पूछाः तू कब से इस उपद्रव में पड़ा है? उसने कहा, तीस साल हो गए।
"सार क्या है? तू दूसरे का विचार भी पढ़ लेगा, इससे तुझे क्या मिलेगा?"
मगर उसकी बड़ी ख्याति थी! उसके साथ कम से कम पचास तो उसके शिष्य आए थे। उसकी बड़ी ख्याति थी कि वह दूसरों का विचार पढ़ लेता है। टेलीपैथी, मैंने कहा: मिलेगा तुझे क्या? वह दूसरे के जो विचार हैं उसको ही अपने विचारों से कुछ नहीं मिल रहा, तू पढ़ेगा, तुझे क्या मिलेगा? तू क्यों इस पागलपन में पड़ा है? क्यों तीस साल गंवाए? इतनी ऊर्जा से तो आदमी निर्विचार हो जाए।
लेकिन ऐसी घटनाएं मन की घटनी शुरू होती हैं। तुम्हें थोड़ा सा भविष्य
का दर्शन होने लगे, उलझे! भूल गए सब, कि शून्य में जाना था। चले बताने दूसरों को कि तुम्हारी मृत्यु होने वाली है दस साल में, कि तुम्हारा पांच साल में धंधा खराब हो जाएगा। मगर सार क्या है? साधु सिद्धि को भी डाल देता है, कचरे की तरह फेंक देता है।
वासना न कोऊ बाकी ऐसी मति सदा जाकी,
सुंदर कहत ताहि वंदना हमारी है।
और ऐसा ही व्यक्ति वंदनीय है।
सांचौ उपदेश देत, भली भली सीख देत,
समता सुबुद्धि देत, कुमति हरत है।
सांचो उपदेश देत! किस उपदेश को "सांचा उपदेश" कहते हैं? जैसा जाना वैसा कहता है। जैसा जिया वैसा कहता है। जैसा स्वयं का अनुभव है वैसा ही जतलाता है। न शास्त्रों की चिंता है, न सिद्धांतों की चिंता है, न संप्रदायों की चिंता है। अपने अनुभव के अतिरिक्त तुम जो भी कहोगे वह झूठ होगा।
सांचो उपदेश देत! और उपदेश ही देता है, आदेश नहीं देता। साधु आज्ञा नहीं देता कि ऐसा करो। आज्ञा देने वाला कौन! उपदेश देता है। कहता है, ऐसा मैंने किया, ऐसा मैंने पाया फिर तुम्हारी मर्जी। साधु आदेश नहीं देता। साधु कोई सेनापति नहीं है--बाएं घूम, दाएं घूम... । साधु कोई आदेश नहीं देता। साधु कोई अनुशासन नहीं देता कि इतने बजे उठना, इतने बजे सोना, यह खाना, यह मत खाना, ऐसा पीना, वैसा मत पीना। ये मूढ़ताएं हैं। साधु का इनसे कुछ लेना-देना नहीं है। साधु तो केवल उपदेश देता है। उपदेश का मतलब यह होता है कि ऐसा मुझे हुआ, निवेदन करता हूं। रुच जाए, प्रयोग कर लेना। न रुचे, तुम्हारी मर्जी। मानो तुम्हारी मर्जी, न मानो तुम्हारी मर्जी। तुम्हारे मानने से साधु प्रसन्न नहीं होता, तुम्हारे न मानने से अप्रसन्न नहीं होता।

सांचो उपदेश देत, भली भली सीख देत,
समता सुबुद्धि देत, कुमति हरत है।
मारग दिखाइ देत, भावहू भगति देत।
बड़ा प्यारा वचन है! रास्ता दिखा देता है, इशारा कर देता है--यह रहा। फिर जिसको चलना हो चले। मारग दिखाइ देत, भावहू भगति देत। और तुम्हारे भाव को भक्ति की सूझ देता है--कैसे तुम्हारा भाव भक्ति में परिवर्तित हो जाए; कैसे तुम्हारा प्रेम प्रार्थना बन जाए; कैसे तुम्हारी बहिर्यात्रा अंतर्यात्रा में रूपांतरित हो जाए; कैसे तुम्हारा हृदय गदगद हो। नगाड़ा बजा देता है।
सुनत नगारै चोट विगसै कंवल मुख,
अधिक उछाह फूल्यौ माइहू न तन मैं।
मारग दिखाइ देत, भावहू भगति देत,
प्रेम की प्रतीति देत, अभरा भरत है।
और प्रेम का अनुभव देता है।... प्रेम कोई सिद्धांत नहीं है। जिसके पास बैठ कर प्रेम की पुलक अनुभव हो, जिसके पास बैठ कर प्रेम की झलक अनुभव हो, जिसकी आंख में झांक कर प्रेम की लपट अनुभव हो, जिसके स्पर्श से प्रेम का दरस हो, परस हो... सत्संग का अर्थ यही होता है कि जहां प्रेम लहरा रहा है, वहां तुम भी डोलो, तुम भी नाचो, तुम भी गाओ, तुम भी गुनगुनाओ।
उसे ही मानो बहुत
जो कुछ तुम्हारे पास है मन
मत निरर्थक हवा में मारे फिरो
मत कि अपने लोभ से हारे फिरो
मत निरादर करो अपने फूल का
मत किसी मधुमास के द्वारे फिरो
एक ही दल फूल अपने का अखिल मधुमास है मन
यह कि भीतर है तुम्हारे पास चिंतामणि नगीना यह कि भीतर है तुम्हारे पास
झंकृत एक वीणा
यह नगीना और यह वीणा तुम्हें सब दे सकेंगे। इन्हीं के बल पर कि तुमसे हो सकेगा ठीक जीना और बाहर से मिलेगा जो कि सो आभास है मन
जो तुम्हारे पास है उस खरे को खोटा न करना लाभ का लालच कि पूंजी पर कहीं टोटा न करना
यह कि खींचातान सौदागरी चालाकी बचाना
डालकर बाजार में
इस बड़े को छोटा न करना
यह उठा-पटकी की चल-फिर सब निपट आयास है मन
उसे ही समझो बहुत जो कुछ तुम्हारे पास है मन!
सद्गुरु के सत्संग में, प्रेम के अनुभव में डूबते-डूबते तुम्हें लगना शुरू होता है--सब तुम्हारे पास है।
मत किसी मधुमास के द्वारे फिरो!
अब भिक्षा की कोई जरूरत नहीं। भिक्षा पात्र छोड़ो, तोड़ो।
मत किसी मधुमास के द्वारे फिरो।
एक ही दल फूल अपने का अखिल मधुमास है मन।
एक फूल भीतर तुम्हारे खिल जाए, तो आ गया सारा मधुमास, आ गया सारा बसंत!
यह कि भीतर है तुम्हारे पास चिंतामणि नगीना
यह भीतर है तुम्हारे पास झंकृत एक वीणा
यह नगीना और यह वीणा तुम्हें सब दे सकेंगे
इन्हीं के बल पर कि तुमसे हो सकेगा ठीक जीना
और बाहर से मिलेगा जो कि सो आभास है मन!
प्रेम की प्रतीति, तुम्हारे भीतर सोए प्रेम को झकझोर कर जगा देगी। प्रेम की झनकार, तुम्हारे भीतर भी प्रेम की झनकार होगी। प्रेम की पुकार,

तुम्हारे भीतर भी प्रेम का अनिवार्य रूपेण प्रतिध्वनन करेगी, प्रतिध्वनि पैदा होगी।
मारग दिखाइ देत भावहु भगति देत,
प्रेम की प्रतीति देत, अभरा भरत हैं।
और जो खाली हैं वे भर जाते हैं। अभरा भरत है! जो खाली आए थे वे भर जाते हैं।
क्षमता हो लेने की तो भरो। मेघ घिरे हैं, वर्षा हो रही है। मगर कुछ घड़े ऐसे हैं कि डर के मारे उलटे बैठे हैं! वर्षा होती रहेगी वे खाली के खाली रहेंगे। झेलो आकाश को! उन्मुख होओ, मेघों की तरफ मुंह करो। इस मुंह करने का नाम ही संन्यास है या शिष्यत्व है।
गा रही है आज वर्षा जिस तरह
उस तरह से गा चलो मेरे सजन
छा रहे हैं आज बादल जिस तरह
उस तरह से छा चलो मेरे सजन
आज पीपर-पात हर हर डोलते
दूर के स्वर पास मानो बोलते
बादलों की गोद में हंसती हुई
भा रही है आज बिजली जिस तरह
उस तरह से भा चलो मेरे सजन
गा रही है आज वर्षा जिस तरह
उस तरह से गा चलो मेरे सजन
वर्षा हो रही है। तुम भी गाओ। वृक्ष हरे हो रहे हैं, तुम भी हरे हो जाओ। फूल खिले हैं, तुम भी खिलो। नगाड़ा बजा है, कमल को छिपाए-दबाए न बैठे रहो। साहस करो, दुस्साहस करो! चुनौती अंगीकार करो!
प्रेम की प्रतीति देत, अभरा भरत हैं।
ज्ञान देत, ध्यान देत, आतम-विचार देत,
ब्रह्म कौं बताइ देत, ब्रह्म में चरत हैं।
ब्रह्म कौं बताइ देत! ब्रह्म-ज्ञान नहीं देता है गुरु--ब्रह्म कौं बताइ देत! ज्ञान तो पंडित-पुरोहित लेते देते हैं। गुरु तो ब्रह्म को ही लेता-देता है। अस्तित्व में ही उतार देता है। ज्ञान देत। वह पहली बात-- उनके लिए जो अभी ध्यान न ले सकेंगे।
मैं तुमसे रोज बोलता हूं, वह पहली बात। जिन्होंने पहली बात समझी... ज्ञान देत, ध्यान देत... जिन्होंने पहली बात समझी, उनके लिए दूसरी बात। दूसरी सीढ़ी--ध्यान देत और जिन्होंने दूसरी बात समझी, उनके लिए तीसरी घटना घटती है--आत्म-विचार देत! आत्म-बोध, आत्म-अनुभव, आत्म-साक्षात्कार। और जिन्होंने तीसरी बात समझी, उनको चौथी--ब्रह्म को बताइ देत!
और कैसे ब्रह्म को बताता है? ... ब्रह्म में चरत है! क्योंकि ब्रह्म में जीता है। यही ब्रह्मचर्य का अर्थ है। हमने "ब्रह्मचर्य" शब्द को बहुत छोटा कर लिया। हमने उसे कामवासना का नियंत्रण मान कर बहुत छोटा कर लिया। बड़ा शब्द है--आकाश जैसा शब्द है। उससे बड़ा कोई शब्द नहीं हो सकता। ब्रह्मचर्य का अर्थ होता हैः ब्रह्म में आचरण, ब्रह्म में चरण, ब्रह्म की चर्या, ब्रह्म जैसा जीना, ब्रह्म में जीना।
ब्रह्म कौं बताइ देत, ब्रह्म मैं चरत हैं।
और ऐसे नहीं बता देता, दूर-दूर से। उसका जीवन, उसका उठना, उसका बैठना, उसका बोलना, उसका न बोलना--सब परमात्मपूर्ण है। जिनके पास आंखें हैं, वे देख लेते हैं। और जिनके पास हृदय हैं, वे खाली नहीं जाते।... अभरा भरत हैं! ब्रह्म मैं चरत हैं!
सुंदर कहत जग संत कछु देत नाहिं।
सुंदरदास कहते हैं कि जगत में लोग कहते हैं कि संतों के पास देने को क्या है? कुछ है ही नहीं उनके पास। संत तो खाली हैं, वे क्या देंगे?
सुंदर कहत जग संत कछु देत नाहिं,
संतजन निसिदिन देबौई करत हैं।

और सुंदर कहते हैं कि लेकिन ये अंधों की बातें हैं, संत तो प्रतिपल देता ही रहता है। देना उसके लिए वैसा ही नैसर्गिक है जैसे सूरज से रोशनी का गिरना, जैसे फूल से गंध का उठना, जैसे पृथ्वी से हरियाली का उगना, जैसे आकाश का तारों से भरना।
लेकिन स्वभावतः, संसार की बात में भी अर्थ है। क्योंकि संसार जो मांगने आता है, वह संत नहीं देते। अब जैसे सुमित्रा का प्रश्न है। अब वह चाहती है कि उसके बेटों को मैं सुखी कर दूं; कि बेटे की बहू से नहीं बनती, उसकी बनवा दूं। अब यह मैं न दे सकूंगा! पहले बेटे की बेटे से तो बन जाए। बहू की बहू से बन जाए। वह मैं कर सकता हूं। लेकिन बेटे की बहु से बन जाए यह झंझट की बात है। किस, बेटे की किस बहू से कब बनी? लड़ाई-झगड़े का नाम विवाह है। यह मैं न दे सकूंगा।
तुम कूडा-करकट मांगते हो, नहीं मिलता तो सोचोगे, संत क्या देंगे? आंखें हों तो दिखाई पड़े। संत तो ब्रह्म को ही देते हैं, उससे कम कुछ नहीं देते। उससे कम कुछ देने योग्य है भी नहीं। देना ही तो ब्रह्म देना। लेना ही तो ब्रह्म लेना। दो ब्रह्म, लो ब्रह्म। बस उतना ही लेन-देन संत के पास हो सकता है।
संतजन निसिदिन देबौई करत हैं।

आज इतना ही।

ज्योति से ज्योति जले
चौथा प्रवचन

त्याग अर्थात् अपना ही स्वाद

पहला प्रश्नः त्याग क्या है?

जीवन का परमभोग है त्याग। जीवन के रस में डूबना है त्याग। रस-विमुग्ध होना है त्याग।
"त्याग" शब्द से उलझन में मत पड़ जाना। वह भोग का परम रूप है--भोग की पराकाष्ठा। त्याग इसलिए कहते हैं ताकि जिसे तुमने भोग समझ लिया, उस में उलझे न रह जाओ। तुम्हारे तथाकथित भोग को भिन्न करने की दृष्टि से, भेद करने की दृष्टि से त्याग को त्याग कहते हैं, अन्यथा कहना तो चाहिए परम भोग।
तुमने भोगा क्या है? तुमने सिर्फ दुख भोगा है। तुमने जाना क्या है? -- सिवाय चिंताओं के, सिवाय संतापों के। तुमने पहचाना क्या है? अमावस की रात, दीया भी तो नहीं जला। पूर्णिमा तो बहुत दूर। इसे भोग कहोगे? यह कांटों से छिदा हुआ हृदय, और इन चिंताओं से उलझी हुई तुम्हारी चित्त की दशा। और यह नरक जो तुमने अपने चारों तरफ निर्मित कर लिया है--जिससे तुम घिरे हो, जिससे तुम भरे हो--इसे भोग कहोगे? मगर इसी को तुमने भोग कहा है। इसलिए मजबूरी में ज्ञानियों को इसके विपरीत शब्द चुनना पड़ा--त्याग; ताकि तुम्हें याद दिलाया जा सके कि तुम जो हो यह तुम्हारी नियति नहीं है, तुम्हें कुछ और होना है।
तुम बाहर ही बाहर दौड़ते रहे! और बाहर सिवाय दरिद्रता के और कुछ न कभी मिला है, न मिल सकता है। तुम मांगते ही रहे। पैदा हुए थे सम्राट की भांति और भिखमंगे होकर ही समाप्त हुए जा रहे हो। सिर पर तुम्हारे राजमुकुट है, लेकिन उसकी तुम्हें याद नहीं। उसकी तुम्हें पहचान नहीं। हाथों में तुम्हारे भिक्षापात्र हैं। वही तुम्हें दिखाई पड़ता है। उस भिक्षापात्र की न कभी पूर्ति हुई है, न कभी होगी। तुम मांगते-मांगते ही मर जाओगे। जीवन बहुत पास है मगर तुम परिचित न हो पाओगे। क्योंकि जीवन से परिचित होने की जो प्रक्रिया है उससे तुम विपरीत चल रहे हो।
जीवन से परिचित होने की पहली प्रक्रिया है कि मैं भीतर चलूं। उसे तो पहचान लूं जो मैं हूं। फिर किसी और यात्रा पर निकलूं।
पहली यात्रा तो अंतर्यात्रा ही होनी चाहिए। अपने को बिना जाने जो चल पड़ा, वह पहुंचेगा कहां? उसके पहुंचने का सार भी क्या होगा? और जो अपने को भी नहीं जानता वह कैसे तय करेगा--"किस दिशा में जाऊं? कहां मेरी नियति है? कौनसा मार्ग अनुसरण करूं? कहां होगी मेरी संतुष्टि?" जिसे अपने स्वभाव का पता नहीं वह जो भी करेगा, गलत करेगा।
तो त्याग का पहला तो अर्थ है कि भीतर जाऊं। अपने में उतरूं। भूल ही जाउं कि बाहर कोई जगत है।
भीतर, और भीतर, और भीतर, सीढ़ी-दर-सीढ़ी आदमी भीतर उतर सकता है; क्योंकि आदमी एक गहरा कुआं है, और वहां अमृत के जल-स्रोत हैं। उतरोगे तो पाओगे।
जो व्यक्ति भीतर उतरना शुरू करता है, बाहर दौड़नेवालों को लगता है कि बेचारा! सब छोड़ दिया! जो भीतर उतर रहा है, सब पाने की दशा में चला है। जो बाहर दौड़ रहे हैं, वे कुछ भी न पाएंगे।
... तो त्याग एक विराट सपना है--स्वयं को जानने का। एक अदम्य अभीप्सा है--स्वयं से परिचित होने की। और उस परिचय से सब बदल जाता है, सब रूपांतरित हो जाता है। जीवन के सारे मूल्य नए हो जाते हैं। कल तक जो मूल्यवान था, दो कौड़ी का हो जाता है, क्योंकि स्वभाव से मेल नहीं खाता! कल तक जिस पर ध्यान भी न दिया था, अचानक वही हीरे-जवाहरात हो जाते हैं, क्योंकि स्वभाव से मेल खाते हैं।
एक बार स्वयं से परिचित होने की.जरा-सी भी संभावना बनी, एक किरण भी पैदा हुई, कि तुम्हारा सारा जीवन और हो जाएगा। उसे फिर से नियोजित करना

होगा। सार असार हो जाएगा, असार सार हो जाएगा। इस घटना का नाम संक्रांति है। इस घटना का नाम संन्यास है।
सपनों में विश्वास करो हे!
मन को तरल करो, सपनों की अमर पड़े उनमें परछांई
सत्य उसे कर सको कि भीतर से उठकर जो आई झांईं
यह कि अनाहद भी तारों में कंपन का मृदुहास भरो हे
सपनों में विश्वास करो हे

आते हैं दिन-रात दिशाओं में संदेश-सजीले बादल इनकी रिमझिम इनका गर्जन व्यर्थ न जाने पाए पागल किसी रामगिरी पर रहकर भी इनमें अपनी आस भरो हे

सपनों में विश्वास करो हे
अगम हिमाचल पर दौड़ा दो तुम अपने भीतर की भाषा
सुरसरि के छंदों से मिलकर हो पुनीत हर शापित आशा
और मेघ की तरह स्वयं तुम धरती पर उल्लास भरो हे
सपनों में विश्वास करो हे!
त्याग इस बात के स्वप्न से भर जाना है, कि मैं जान लूं कि मैं कौन हूं?
यह इस जगत का सबसे बड़ा स्वप्न है। क्योंकि यह इस जगत के सबसे बड़े सत्य के करीब ले जाता है। यह ऐसा स्वप्न है कि जिसने नहीं देखा वह सत्य से सदा के लिए वंचित रह जाएगा।
मन को तरल करो, सपनों की अमर पड़े उनमें परछांई
सत्य उसे कर सको कि भीतर से उठकर जो आई झांई
यह कि अनाहद भी तारों में कंपन का मृदुहास भरो हे!
एक वीणा अहर्निश बज रही है भीतर--लेकिन तुम सुनो तब, तुम गुनो तब, तुम रुको तब, तुम जरा ठहरो तब। कभी विश्राम के क्षण में, कभी द्वार-दरवाजे करके, कभी बाहर की आपा-धापी छोड़कर--अपने में डुबकी मारोबंद--तो सुनाई पड़े अनाहद का नाद। और वह नाद तुम्हें नया कर जाए, तुम्हें पुर्नजीवीत करें, तुम्हें नहलाए।
त्यागी सद्यःस्नात मालूम होता है--सदा नहाया हुआ--अभी-अभी-जैसे नहाया हो! ऐसी उसकी ताजगी, ऐसा उसका कुंवारापन होता है। लेकिन बाहर से ऊर्जा को थोड़ा भीतर लेना पड़े। सारी ऊर्जा बाहर ही दौड़ती रहे, तो कौन जाए भीतर! कौन परिचित हो स्वयं से!
दूसरी बातः त्याग इस जगत का सबसे बड़ा चमत्कार है। चमत्कार इसलिए कि
जो सारे जगत को मूल्यवान मालूम पड़ता है, वह संन्यस्त को मूल्यहीन मालूम पड़ने लगता है। जो सारे जगत को संग्रहणीय मालूम होता है वह संन्यस्त को व्यर्थ मालूम होने लगता है।
बुद्ध ने घर छोड़ा। साधारण घर न था--महल था। सब सुख-सुविधा थी। राज्य था, संपत्ति थी, सुरक्षा थी। जब रात उन्होंने अपने राज्य की सीमा पार की, और अपने सारथी को वापिस भेजा, तो सारथी बूढ़ा था, उसने कहाः सुनो! यद्यपि मैं आपका नौकर-चाकर, मुझे कोई हक नहीं कि आपको कुछ कहूं, लेकिन मेरी उम्र उतनी है जितनी तुम्हारे पिता की। उम्र के अधिकार से कहता हूं, यह क्या पागलपन कर रहे हो? दुनिया में हर आदमी महलों की तरफ दौड़ता है, तुम महल छोड़कर जा रहे हो? पछताओगे! मैं बूढ़ा आदमी जीवनभर के अनुभव से कहता हूं। जा कहां रहे हो? वापिस लौट चलो! अभी तुम्हारी उम्र कच्ची है। अभी तुम्हारा अनुभव कच्चा है। पीछे लौटकर देखो, तुम्हारे राजमहल के शिखर अभी भी पूरे चांद में झलक रहे हैं। इनसे सुंदर और कहां, क्या पाओगे? तुम्हारी सुंदर पत्नी अब भी इस आशा में सोई है कि तुम पास ही हो। तुम्हारा नया-नया पैदा हुआ बेटा रोएगा, तड़पेगा, तुम्हारी प्रतीक्षा करेगा। यह धोखा मत दो। तुम्हारा बूढ़ा बाप, जिसने जीवनभर बड़ी आशा से तुम्हें पाला है, तुम उसकी आंख के तारे हो। तुम उसके सब कुछ हो। उसके बुढ़ापे की लकड़ी हो। तुम जा कहां रहे हो?

बुद्ध ने पीछे लौटकर देखा--कहानियां कहती हैं--और उन्होंने कहाः मुझे कोई महल दिखाई नहीं पड़ता, मुझे तो सिर्फ आग की लपटें दिखाई पड़ती हैं। और मुझे, कोई जीवन दिखाई नहीं पड़ता। मुझे तो चारों तरफ धू-धू कर जलते हुए चिंताएं दिखाई पड़ती हैं। मुझे तो सिर्फ मृत्यु दिखाई पड़ती है वहां। मैं जीवन की खोज में जा रहा हूं।
ये दोनों भाषाएं कहीं ताल-मेल नहीं खातीं। जिसे तुम जीवन कहते हो, ज्ञानी उसे मृत्यु कहता है। तुम जिसे धन कहते हो, ज्ञानी उसे निर्धनता कहता है। तुम जिसे पद कहते हो, ज्ञानी उसे छलावा कहता है। ज्ञानी जिसे धन कहता है, उसका तुम्हें कोई अनुभव नहीं। ज्ञानी जिसे रस कहता है, उसकी एक बूंद तुम्हारे कंठ में उतरी नहीं।
चमत्कार है त्याग।
जब कोई आदमी सहज भाव से
किसी बड़ी चीज को छोड़ देता है
तो वह जैसे अनायास ही
अपने को किसी ऐसी शक्ति से जोड़ लेता है
जो जगह बदल देती है चीजों की
बना देती है जो छोटी चीजों को बड़ा
कठोर को कोमल, कोमल को कड़ा
ऐसा चमत्कार है त्याग! जादू है! जीवन को रूपांतरित करने की कीमिया है। तुम सोचते हो त्यागी जंगल भाग जाता है? वह तो केवल ऊपर का आयोजन है। वह
तो केवल ऊपर की अभिव्यक्ति है। त्यागी अपने भीतर जाता है। अगर असंभव हो जाता है बाजार में बैठ कर भीतर जाना तो जंगल जाता है। मगर जंगल जाना प्रयोजन नहीं है--स्वयं में जाना प्रयोजन है। जहां भी तुम बैठे हो वहीं अगर स्वयं में जा सको तो त्याग फलित हो गया। और मेरे देखे जंगल में जो भागता है शायद उसे अभी ठीक-ठीक स्वयं में उतरने की कला का कुछ पता नहीं है। नहीं तो तुम जहां हो वहीं भीतर जा सकते हो। क्योंकि भीतर तो सदा तुम्हारे भीतर ही मौजूद है। जंगल में मौजूद हो जाएगा, बाजार में खो जाएगा--ऐसा तो नहीं है। अब आंख बंद करोगे, जब श्वास शिथिल होगी, जब मन निर्विचार होगा तभी तुम जब अपने भीतर हो जाओगे। मन के बाजार से जरूर हटना होगा।
मैं तुम्हें अपना बसंत देता हूं
और पतझड़ मांगता हूं
उदारता नहीं है इसमें कोई
एक खोई-खोई सी धुन है मेरा बसंत मेरे लिए
मैं कभी इसके मारे पल भर उदास नहीं रह पाया
उदासी के मौसम में भी हंसता फिरा हूं
पकड़ कर हवा का आंचल
धरती के इस छोर से धरती के उस छोर तक
शाम से भोर तक
सिवाय खिलने के कुछ सोच नहीं पाया
और भोर जब आया,
कर नहीं पाया कुछ और सिवाय खिलने के
सुख से गले मिलने के जितने प्रकार हो सकते हैं मुझे भोगने पड़े हैं
प्रतिपल चुंबन जड़े हैं मैंने अलस-सौंदर्य के भाल पर काल के राजपथ को मैं प्रतिपल फूलों से भरता रहा हूं सुगंध ही झरता रहा हूं रात-दिन वातावरण में चुपचाप किसी चरण में
पड़े रहने का समय ही नहीं मिला
मैं व्याकुल हूं अब वैसे पलों के लिए
अपना बसंत उतार कर रख देना चाहता हूं
बल्कि दे देना चाहता हूं तुम्हें
क्योंकि तुम अपने पतझड़ की शिकायत कर रहे थे मैं तुमसे तुम्हारा पतझड़ मांगता हूं

उदारता नहीं है इसमें क्योंकि
इस तरह मैं फूल-पंखुड़ी देकर रस खींचने वाली जड़ मांगता हूं पतझड़ पाकर शीर्ण होना सीखूंगा
विलास-विकीर्ण अपना जीवन समेट लूंगा जड़ में
और फूल-पात की गरिमा से हीन
विलीन किसी रूप की शोभा समझूंगा
कुहरे से लदी हवा की सांस को
अपने फेंके हुए पत्तों से
थोड़ा और तेज करूंगा
ऊपर-ऊपर से मरूंगा
जिऊंगा भीतर-भीतर सिमट कर अपने प्राण से राशि-राशि फूल और गंध
और गान से छूटकर और खुल कर हलका हो जाऊंगा ठीक सिमटते और सटते बनेगा इस तरह
बहुत अधिक सुख की भीड़-भाड़ से
हटते बनेगा इस तरह
पेड़ की गहरी जड़ के छोर तक
रात से भी अंधेरे और ठंडे पानी की तहें
अब मेरी सांसों में रहें
ऐसा जी हो रहा है और मैं तुम्हें बसंत देता हूं
पतझड़ मांगता हूं
उदारता कुछ नहीं है इसमें
क्योंकि इस तरह मैं पंखुरी देता हूं, जड़ मांगता हूं।
त्याग ऊपर-ऊपर के फूल-पत्तों को छोड़ कर अपनी जड़ों में उतर जाने की प्रक्रिया है, कीमिया है।
उदारता कुछ नहीं है इसमें
क्योंकि इस तरह मैं पंखुरी देता हूं, जड़ मांगता हूं
महावीर ने अपना सब बांट दिया--अपना बसंत बांट दिया। लेकिन ख्याल रखना--उदारता नहीं है इसमें! वे अपनी जड़ों की खोज में चल पड़े।
पतझड़ के दिनों में, तुम्हें पता है क्या हो जाता है! वृक्ष अंतर्मुखी
हो जाता है; बसंत में बहिर्मुखी हो जाता है। बसंत में रस बाहर की तरफ बहने लगता है। पत्ते आते, फूल आते, शाखाएं फैलतीं--दूर आकाश की यात्रा पर वृक्ष निकल पड़ता है। सब दिशाओं में फैलने लगता है। बसंत में वृक्ष संसार हो जाता है। भूल ही जाता है कि जड़ें भी हैं। जब ऐसे रंगीन फूल आएं हों और पत्ते ऐसे हरे हो गए हों, और पक्षियों का ऐसा गुंजन हो रहा हो, और सूरज निकला हो, और हवाएं हों, और चारों तरफ रास-रंग हो--तो वृक्ष भूल न जाएं तो क्या करे! भूल ही जाता है। दुल्हन की तरह सजा, दिन और रात बाहर की मस्ती में डूबा रहता है। भूल ही जाता है कि जड़ें भी हैं; यद्यपि जड़ें ही असली हैं। सब फूल-पत्ते कुम्हला जाएंगे जड़ों के टूटते ही।
सब फूल-पत्ते जड़ों से बंधे हैं। सब फूल-पत्ते जड़ों से रस पा रहे हैं। जड़ों के बिना उनका कोई जीवन नहीं है। एक बात ख्याल रखना, जड़ें हो सकती हैं बिना फूल-पत्तों के--फूल-पत्ते नहीं हो सकते हैं बिना जड़ों के। इसीलिए तो उनको जड़ कहते हैं। और यह भी ख्याल रखना, फूल-पत्ते दिखाई पड़ते हैं, जड़ें दिखाई नहीं पड़तीं। जो भी मूल्यवान है वह अदृश्य में छिपा होता है। जो भी साधारण है वह दृश्य होता है। दृश्य सदा ही गौण है। अदृश्य सदा ही प्रधान है।
इसलिए तो संसार दिखाई पड़ता है, परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। और जो पूछने चले आते हैं कि परमात्मा दिखला दो, वे पागल हैं। उन्हें यह पता ही नहीं है कि परमात्मा जड़ है; दिखलाया नहीं जा सकता। संसार ही दिखलाया जा सकता है। हां, लेकिन संसार असंभव है परमात्मा के बिना।
त्याग में, संन्यास में अंतर्यात्रा शुरू होती है। पतझड़ जैसा है त्याग। वृक्ष भूल जाता है पत्तों को। थक जाता है--पत्तों से, आपा-धापी से, भाग-दौड़ से, हवाओं से, सूरज से, चांद-तारों से--ऊब जाता है सबसे। सिकोड़ लेता

है अपने को--ले लेता है रसधार वापिस। फूल विदा हो जाते हैं, पत्ते झड़ जाते-- नग्न हो जाता वृक्ष--दिगंबर हो जाता। सब वस्त्र-परिधान--सब भूल जाता है।
बाहर की सब सजावट छोड़ देता है। अब जैसे बाहर से कुछ लेना-देना नहीं है। उतर जाता है अपनी जड़ों में। पतझड़ में वृक्ष अपनी जड़ों की खोज करता है।
ध्यानस्थ हो जाता है।
पतझड़ में खड़े वृक्ष का सौंदर्य देखा है! वह ध्यानी का सौंदर्य है। पतझड़ में खड़े वृक्ष की नग्न शाखाएं देखीं। वैसे ही एक दिन महावीर खड़े हो गए थे। वह नग्नता पतझड़ के वृक्ष की नग्नता है। खुले आकाश में पतझड़ में खड़े वृक्ष की शाखाओं का सौंदर्य देखा है। उसका भी अपना एक सौंदर्य है। उसका एक अपना अलग ही सौंदर्य है। क्योंकि उस सौंदर्य में एक पवित्रता है, एक सरलता है, विनम्रता है।
बसंत में वृक्ष खूब सुंदर होता है, पर उसमें एक उलझन है--लदा-फदा होता है, भारी होता है, आवृत होता है, ढका होता है, बड़े प्रसाधन में होता है। पतझड़ में वृक्ष कहां चला जाता है! कहां चले जाते हैं फूल! कहां चले जाते हैं पत्ते! कहां समा जाती है सारी रसधार! --अपने में डूब जाती है। अपने ही मूल-स्रोत में उतर जाती है।
ऐसे ही मनुष्य के जीवन की दो यात्राएं हैं--एक, जिसे हम साधारणतः भोग कहते हैं; एक, जिसे हम त्याग कहते हैं। भोग है बहिर्यात्रा, त्याग है अंतर्यात्रा। भोग में हम फूल बनते हैं, त्याग में हम जड़ों की तलाश करते हैं। भोग में हम जड़ों से दूर जाते हैं--इसलिए सत्य से दूर जाते हैं; इसलिए परमात्मा से दूर जाते हैं। त्याग में हम जड़ों के करीब आते हैं, अपनी भूमि को पाते, अपने प्राणों का मूल रस खोजते--परमात्मा के निकट आते हैं।
लेकिन मैं तुम्हें यह फिर याद दिला दूंः त्याग परमभोग है। पतझड़ में दूसरे रस लेते होंगे वृक्ष का, लेकिन वृक्ष तो केवल बेचैन होता है, परेशान होना है। बसंत में दूसरे रस लेते होंगे वृक्ष का, दूसरे देख कर प्रसन्न होते होंगे। दिखावा है, नाटक है। लेकिन पतझड़ में वृक्ष स्वयं रस लेता है, रस-विमुग्ध होता है, अपने में डुबकी मारता है। अपने अंतस्तल में उतरता है। ऐसा ही त्याग है।
त्याग परमभोग है। त्याग अपना ही स्वाद है। और अपना जिसने स्वाद लिया उसने सब जान लिया। उसे जानने को फिर कुछ बच नहीं रहता।
सुकरात ने कहा हैः जो दूसरों को जानें, वे बुद्धिमान, विद्वान; जो अपने को जानें, वे ज्ञानी, वे प्रज्ञावान।
बसंत में दूसरों की जानकारी होती है, परिचय होते हैं, संबंध होते, मित्रता बनती। पतझड़ में आत्म-परिचय होता है। भोग में हम संबंध बनाते हैं, त्याग में हम असंग हो जाते हैं। त्याग में हम पहली बार अपने आमने-सामने होते हैं।
और ध्यान रखनाः त्याग के बाद, आत्म-परिचय के बाद आदमी उठे, बैठे, चले, बाहर अनंत-अनंत यात्राएं करे, तो भी भीतर से फिर संबंध नहीं छूटता। फिर बाहर होकर भी भीतर बना रहता है। फिर बसंत आते रहें, जाते रहें, अपनी जड़ों से संबंध नहीं टूटता।
कोई बसंत से विरोध नहीं है--कम से कम मेरा तो कतई नहीं है। मैं बसंत का बिल्कुल पक्षपाती हूं। लेकिन तुम्हारा बसंत महाबसंत हो जाएगा--अगर तुम अपनी जड़ों से परिचित हो, अपनी जड़ों से जुड़े हो।
पुराना संन्यास बसंत के विपरीत था, पतझड़ का पक्षपाती था, जिसे मैं नव-संन्यास कह रहा हूं, वह पतझड़ का पक्षपाती था, लेकिन बसंत का विरोधी नहीं। जड़ों से संबंध तुम्हें और महाबसंत लाने की योग्यता देगा, पात्रता देगा। इसलिए मैं तुमसे कहता हूंः त्याग महाभोग का द्वार है।
उपनिषद कहते हैंः तेन त्यक्तेन भुंजिथाः। जिन्होंने छोड़ा उन्होंने
ही भोगा। अदभुत उदघोषणा है! "जिन्होंने छोड़ा उन्होंने ही भोगा!" क्योंकि उन्होंने ही जाना जीवन का सार। तुम तो ऊपर-ऊपर कचरा बीन रहे हो! उन्हें हीरों की खदानें हाथ लग गयीं। तुम मरोगे तो कुछ ठीकरे छोड़ जाओगे। और क्या होगा तुम्हारे पास! फिर ठीकरे पीतल के हों कि सोने के, क्या फर्क पड़ता है! ठीकरे, ठीकरे हैं। तुम मरोगे तो खाली हाथ जाओगे। फिर जिंदगी भर तुम्हारे

हाथ सोने से भरे थे कि पीतल से, इससे क्या फर्क पड़ता है! मरते वक्त खाली हाथ जाओगे।
त्यागी भरा जीता है, भरा मरता है। उसका भरापन। उसका घड़ा कभी खाली नहीं है।
इसलिए मैं तुम्हें संन्यास सिखा रहा हूं। लेकिन एक ऐसा संन्यास जिसमें संसार समाविष्ट है। मैं तुम्हें एक ऐसा त्याग सिखा रहा हूं जो भोग के विपरीत नहीं है, वरन महाभोग है--जिसके समक्ष भोग फीका पड़ जाता है, पीला पड़ जाता है, ना-कुछ हो जाता है।
मेरा सूत्र यही है कि तुम्हें सत्य मिले तो असत्य अपने से छूट जाता है; सार मिले, असार अपने से छूट जाता है।
मैं तुमसे कुछ छोड़ने को नहीं कहता--सिर्फ अपने को जानने को कहता हूं।
उस जानने से क्रांति अपने आप चल पड़ती है, अपने आप होने लगती है।

दूसरा प्रश्नः मैं आपका शिष्य हूं, आप हैं मेरे गुरु--इसे सारे जगत से कहना चाहता हूं पर कह नहीं पाता हूं। क्या करूं?

इसे मौन अनुभव ही रहने दो। इसे कहने की कोई जरूरत भी नहीं है। नहीं तो अहंकार उपजेगा। क्यों कहना चाहते हो? क्या प्रयोजन है? अगर तुम शिष्य हो तो जगत जान ही लेगा।
फूल खिलते हैं, सुगंध पहुंच ही जाती है नासापुटों तक। सूरज निकलता है--बिना किसी दुदुंभि के, बिना किसी घोषणा के, बिना किसी विज्ञापन के-- पक्षी जग जाते हैं। नींद में भी खबर हो जाती है कि सूरज निकल आया। तुम्हारा गीत फूटेगा, बस उसी से खबर होगी। तुम्हारी गंध उड़ेगी, बस उसी
से खबर होगी। और अतिरिक्त खबर देने की कोई जरूरत नहीं है। अहंकार की यात्राओं से सावधान रहो। अहंकार बड़ा कुशल, बड़ा चालबाज है, बड़ा चालाक है। हर तरह से अपने को बड़ा करने की चेष्टाएं खोजने लगता है। धन हो, पद हो, प्रतिष्ठा हो--ठीक, चढ़ बैठता है, सवारी कर लेता है। इतना ही नहीं, ज्ञान हो, ध्यान हो, त्याग हो, संन्यास हो--वहां भी चढ़ बैठता है। वहां भी सवारी करने लगता है। रस को विषाक्त न करो। अहंकार विषाक्त कर देगा। चुप ही रहो। चुप्पी भी कहती है। और चुप्पी खूब जोर से कहती है। कभी-कभी बड़े जोर से कहना भी इतने जोर से नहीं हेता जितना मौन कह जाता है। मौन की क्षमता भी समझो।
तो पहली तो बातः कहने की कोई जरूरत नहीं है। तुम मेरे शिष्य हो, यह मुझसे कह दिया, काफी है। हालांकि मैं तुम्हारे भाव को समझ रहा हूं। तुम्हारा भाव बुरा भी नहीं है। लेकिन अहंकार बड़ा कुशल है, अच्छे भावों पर भी सवारी कर जाता है। इसलिए सावधान करना भी जरूरी है। अहंकार इतना कुशल है कि साधुता के पीछे भी छिप कर खड़ा हो जाता है; सरलता में से भी रास्ता निकाल लेता है; विनम्रता में भी दावेदार बन जाता है।
तुम्हारा भाव मैं समझा हूं। भाव तो सुंदर है। जब भी हमारे जीवन में कुछ आनंद घटता है, हम बांटना चाहते हैं। जिन्हें हम प्रेम करते हैं उन्हें भी खबर पहुंचाना चाहते हैं। जिन्हें हमने चाहा है, जिन्हें हमने पहचाना है, चाहते हैं कि वे भी इस संमार्ग पर चलें, उन्हें भी यह प्रकाश मिले। तुम तृप्त होते हो किसी बात से, तो स्वभावतः तुम चाहते हो तुम्हारी पत्नी भी तृप्त हो, तुम्हारा पति भी तृप्त हो, तुम्हारे बच्चे भी तृप्त हों, तुम्हारे मित्र भी, तुम्हारे प्रियजन भी। तुम कहना चाहते हो।
तुम्हारा भाव बुरा नहीं है। लेकिन अहंकार अगर पीछे छिपा आया तो तुम चाहोगे कुछ, होगा उसके विपरीत। पति पत्नी को संन्यास में लाना चाहे तो मुश्किल पड़ जाती है, फिर पत्नी आती नहीं। जितना पति चेष्टा करता है उतनी ही कठिनाई हो जाती है। पत्नी चाहती है कि पति आए, मुझे सुने, समझे, ध्यान करे--बस मुश्किल हो जाती है। बहुत मुश्किल हो जाती है। क्योंकि जिनसे तुम्हारे संबंध हैं, नाते हैं, वे कोई भी यह मानने को तैयार नहीं होते कि तुम उनसे ज्यादा बुद्धिमान हो। उनके अहंकार को चोट लगती है। वे कोई भी यह मानने को राजी नहीं होते। कोई पत्नी मान सकती है, कि मेरा पति और

बुद्धिमान! ऐसा कभी हुआ है? कोई पति मान सकता है कि मेरी पत्नी और कभी कोई ऐसा काम करे जिसमें बुद्धि का लक्षण हो!
जिनसे हमारे नाते-रिश्ते हैं, उन सबको हम सोचते हैं कि उनमें कुछ समझ नहीं है। ऐसा ही वे भी तुम्हारे संबंध में सोचते हैं। इसलिए तो इतनी कलह होती है, इतने उपद्रव होते रहते हैं। संबंधों में सिवाय कलह के और कुछ होता दिखाई नहीं पड़ता। हर छोटी-छोटी बात पर कलह हो जाती है। छोटी-छोटी बात पर विवाद हो जाता है। व्यर्थ की बातों में से बातें निकल आती हैं।
तो तुम इस भ्रांति में मत रहना कि अपनी पत्नी को कहोगे कि मुझे बड़ा आनंद मिल रहा है, तो वह मानेगी। वह दुनिया में किसी के भी चरण छू सकती है। कोई भी ऐरा-गैरा-नत्थू उसके गांव में आ जाए, तो वह महाराज के चरण छू सकती है, कि बड़े ज्ञानी का आगमन हुआ है। मगर पति! यह तो आखिरी मामला है। अगर पत्नी पति को बुद्धिमान मान ले तो समझो क्रांति हुई। यह बिल्कुल मुश्किल है। यह बहुत कठिन है।
जिनके साथ तुम बचपन से बड़े हुए हो वे तुम्हें ज्ञानी नहीं मान सकते। तुम्हारी तो बात ही छोड़ दो, उन्होंने बड़े-बड़े ज्ञानियों को ज्ञानी नहीं माना। जीसस अपने ही गांव में नहीं पूजे गए। जीसस की प्रसिद्ध उक्ति है कि पैगंबर को उसके ही गांव में नहीं पहचाना जाता। गांव के लोगों ने जीसस को बड़े होते देखा, उसी गांव में बड़े होते देखा, उसी गांव में रास्ते पर खेलते देखा। गांव के लोग जीसस को जानते भी थे, जीसस के बाप को जानते, बाप के बाप को जानते--सबको जानते थे। अचानक यह बेटा ईश्वरीय हो गया! यह असंभव है। यह बात भरोसे की नहीं होती। यह कैसे हो सकता है कि हम सब नहीं हो पाए ईश्वर और यह बेटा ईश्वर हो गया है! और यहीं लकड़ी ढोता था। क्योंकि बढ़ई का बेटा था। यहींं लकड़ी काटता था। इसके हाथ की बनाई हुई टेबल-कुर्सियां लोगों के घरों में हैं। और यह ईश्वर को पा गया! या तो पागल है, विक्षिप्त हो गया है; या धोखेबाज है, झूठे दावे कर रहा है। कौन मानेगा इसे!
बहुत कठिन हो जाता है। अहंकार को भारी चोट लगती है। इसलिए तो मुर्दा गुरुओं की दुनिया में प्रतिष्ठा रहती है। जिंदा गुरु की प्रतिष्ठा नहीं होती। जिंदा गुरु को पत्थर पड़ते हैं, गालियां पड़ती हैं। मुर्दा गुरु पर फूल बरसते हैं। क्यों, मुर्दा गुरु के साथ तुम्हारा इतना प्रेम कैसे हो जाता है एकदम से? मुर्दा गुरु से तुम्हारे अहंकार की कोई टक्कर नहीं होती। अब बुद्ध से तुम्हारी क्या टक्कर है? रहे होंगे बुद्धिमान तो रहे होंगे। कौन झंझट करे! रहे ही होंगे। दो फूल चढ़ाओ और छुटकारा पाओ। जीसस रहे होंगे बुद्धिमान, कृष्ण रहे होंगे ईश्वर के अवतार। लेकिन तुम्हारे सामने कोई बैठा हो, तुम्हारे घर में कोई बैठा हो, तुम्हारे समसामयिक हों तुम्हारा संबंधी हो, तुम्हारा बेटा हो, तुम्हारी बेटी हो, तुम्हारा पति हो, पत्नि हो, तुम्हारा पिता हो, तुम्हारा मित्र हो--बहुत कठिन हो जाती है बात, असंभव हो जाती है बात। बड़ी बोध की क्षमता चाहिए तो कोई सुनेगा, समझेगा।
तुम कहना चाहते हो, ठीक; लेकिन सुनेगा कौन, मानेगा कौन! और फिर एक तीसरी कठिनाई, कुछ बातें हैं जो कही जा सकती नहीं। उन बातों में एक बात यह भी है--प्रेम अनिर्वाच्य है। और शिष्य और गुरु के बीच जो प्रेम घटता है वह सर्वाधिक अनिर्वाच्य है, क्योंकि वह प्रेम की पराकाष्ठा है।
तीन तरह के प्रेम होते हैं। क्योंकि मनुष्य के भीतर जीवन के तीन तल हैं। एक तो शरीर का प्रेम होता है। उसे भी बताना कठिन होता है, लेकिन फिर भी इतना कठिन नहीं होता, क्योंकि स्थूल है; स्थूल स्थूल का नाता है। फिर दूसरा प्रेम मन का प्रेम होता है। उसे बताना और कठिन हो जाता है। क्योंकि मन को देखा किसने है! देखा नहीं, कल सुंदरदास कहते थे--न उसका माथा है, न उसका सिर है, न उसका शरीर है! अशरीरी है। इस मन के प्रेम को कैसे प्रकट करो! और कोई अगर इनकार करे तो सिद्ध न कर पाओगे। शरीर का प्रेम दिखलाने के तो उपाय हैं। किसी को छाती से लगा लो, तो शरीर का प्रेम पता चलता है।
मन के प्रेम को क्या करोगे? कैसे प्रकटाओगे? हां, जिससे प्रेम है उसे शायद समझ में आ जाए। वह शायद तुम्हारी भावभंगिमा में पहचान ले, तुम्हारी मुद्रा में पहचान ले। तुम्हारे शब्दों में छिपा हुआ रस, तुम्हारे उठने- बैठने में, तुम्हारी आतुरता में, तुम्हारी आंखों में--उसे थोड़ी झलक मिल

जाए शायद--वह भी शायद! क्योंकि जिनसे हमारा प्रेम है उनसे भी हमें कहना पड़ता है; कहना पड़ता है, तो शायद उनकी समझ में आता है। अगर तुम न कहो तो उनकी समझ में नहीं आता। कहने का मतलब है कि मन को शरीर तक लाना पड़ता है। जो कही गई है बात, वह तो शरीर की हो जाती है। शब्द तो शरीर से पैदा होते हैं। मन की बात तो मन में रहती है। मन की बात तो मौन में होती है। लेकिन कभी-कभी प्रेमी इस ऊंचाई पर आ जाते हैं कि शब्दों की जरूरत नहीं होती। साथ बैठे होते हैं--चुप। नहीं कुछ कहा जाता। नहीं कुछ बोला जाता। नहीं कुछ लिया-- दिया जाता। मगर एक संवाद चलता है। ऊर्जा से ऊर्जा कहती है। शक्ति की तरंगें एक-दूसरे तक पहुंचती हैं। एक उल्लास होता है। सिर्फ मौजूदगी काफी होती है।
लेकिन, अगर दूसरे को समझाने जाओगे तो मुश्किल हो जाएगी। लेकिन शायद कोई काव्य में कह दे, कोई बांसुरी में बजा दे, कोई वीणा पर तारों में झंकृत कर दे। इसी से काव्य पैदा हुआ, संगीत पैदा हुआ, नृत्य पैदा हुआ। यह जो मन का प्रेम है उसे प्रकट करने के उपाय खोजे गए।
लेकिन फिर एक तीसरा प्रेम है--आत्मा से आत्मा का। वही शिष्य और गुरु
का प्रेम है। उसको कहने के लिए न तो संगीत समर्थ है, न काव्य समर्थ है। उसे कहने का कोई उपाय ही नहीं है। वह तो इतना गूढ़ है कि सब अभिव्यक्तियों के पार हैं। उसे तो गुरु समझता है, शिष्य समझता है। वह तो बिल्कुल चुप-चुप है। कोई निवेदन भी करने का कारण नहीं होता वहां। उसे तुम दूसरों को समझाना चाहोगे, तो बहुत मुश्किल में पड़ोगे। न समझा पाओगे। वह तो एक अंतःसलिला है, एक भीतर की गंगा है।
कुछ भौतिक कुछ मानसिक से तुम
कुछ किरन कुछ कुंकुम
बैठे हो हिले बिना मन में मेरे
जैसे गुलाब कोई खिले बिना
घेरे हो वातावरण अपनी सुगंध से जैसे विचार कोई गीत बने बिना रच जाए भीतर प्राणों में हिना अव्यक्त! ...
कुछ भौतिक कुछ मानसिक से तुम कुछ किरन कुछ कुंकुम
बैठे हो हिले बिना मन में मेरे
जैसे गुलाब कोई खिले बिना
घेरे हो वातावरण अपनी सुगंध से
जैसे विचार कोई गीत बने बिना
रच जाए भीतर प्राणों में हिना।
सब चुपचाप हो जाता है। न फूल खिलता है, और गंध बिखर जाती है। न गीत जगता है, लेकिन काव्य फैल जाता है। व वीणा बजती है, न वीणा के तार छ.ेडे जाते हैं--और संगीत का सागर लहराता है।
कुछ किरन कुछ धूप
कुछ पकड़ में आने लायक रूप
कुछ जड़ कुछ जंगम
यह सरस्वती संगम किसको समझाऊं
जो बह रहा है भीतर-भीतर
ओंठों पर कैसे लाऊं आकृति वह झुटपुटे में पड़ी हुई जाग्रति में जड़ जिसकी
सपने में बड़ी हुई
चकित क्यों करूं अब उसे
खींच कर चकाचौंध में
क्यों पंखुरी दूं सौरभ ही सौरभ को
अतिचेतन को क्यों प्राण दूं अंतःसलिला तुम्हारी स्मृति को क्यों गंगा-जमुनी परिधान दूं!

नहीं, शब्द नहीं काम आएंगे। यह तो निःशब्द की लीला है। यह तो मौन का संगम है। यह तो बड़ी झुटपुटे में हुई बात है। न दिन, न रात--सांझ की घड़ी में घटी बात है।
कुछ किरन कुछ धूप
कुछ पकड़ में जाने लायक रूप
कुछ जड़ कुछ जंगम
यह सरस्वती संगम किसको समझाऊं
तुमने देखा! हमारी प्रतीक-कथा है कि प्रयाग के महातीर्थ पर तीन नदियां आकर मिलती हैं। गंगा है, यमुना है और सरस्वती है। दो तो दिखाई पड़ती हैं, तीसरी दिखाई पड़ती नहीं। वह तीसरी ही प्रेम की अंतिम ऊंचाई है। वही सरस्वती है।
कुछ जड़ कुछ जंगम
यह सरस्वती संगम किसको समझाऊं
तो गंगा भी बताई जा सकती है, यमुना भी बताई जा सकती है, मगर सरस्वती को बताने चलोगे तो मुश्किल में पड़ोगे। कोई बता नहीं सका। उसे अदृश्य ही रखा है। दुनिया में बहुत संगम हैं, लेकिन जैसा महातीर्थ हमने बनाया है--एक अदृश्य नदी के साथ जोड़ कर, वैसा किसी ने कहीं बनाया नहीं है। दो दृश्य हैं, एक अदृश्य है। और जो अदृश्य है वह सारे दृश्यों का आधार है। सब दृश्य उसी से जन्मते और सब दृश्य उसी में एक दिन लीन हो जाते हैं।
जो बह रहा है भीतर-भीतर
ओंठों पर कैसे लाऊं
लाया जा सकता नहीं। लाओगे तो बहुत पछताओगे। क्योंकि जो आएगा वह कुछ
का कुछ होगा। जो कहने चले थे, न कहा जाएगा। कुछ और निकल आएगा।
लाओत्सु का प्रसिद्ध वचन है--सत्य कहा जा सके तो सत्य नहीं। जो सत्य बोला जा सके, असत्य हो जाता है--बोलते ही असत्य हो जाता है। तब तो सारे शास्त्र असत्य हो गए। और लाओत्सु ठीक ही कहता है। सारे शास्त्र चेष्टाएं हैं उसको कहने की, जो नहीं कहा जा सकता। और सब हार गए हैं, और हारते ही रहेंगे।
और यह हमारा सौभाग्य है कि शास्त्र जीते नहीं। अगर शास्त्र जीत जाते, शब्द कूड़ा-कचरे जैसे हैं, सत्य भी कूड़ा-कचरा हो जाता। अच्छा है कि शास्त्र हारते रहे और शास्त्र हारते रहेंगे। अच्छा है कि न कभी सत्य कहा गया और न कभी कहा जाएगा। खोजना पड़ता है। स्वयं ही जानना पड़ता है। अंतःप्रज्ञा होती है उसकी। एक-एक को अपना-अपना सत्य खोजना होता है। एक-एक को अपना-अपना सत्य जानना होता है। उधार सत्य काम नहीं आते। दूसरे के कहे सत्य काम नहीं आते। ओंठों पर कैसे लाऊं आकृति वह झुटपुटे में पड़ी हुई
जागृति में जड़ जिसकी
सपने में बड़ी हुई
जो फैली है सारे जीवन में--जागृति से लेकर स्वप्न तक, स्वप्न से लेकर जाग्रत तक। जब प्रेम तुम्हें सघनता से पकड़ता है तो तुम्हारे जीवन के सब तलों पर फैल जाता है। तुम जाग्रत में भी प्रेमी को याद रखते हो। हजार कामों में लगे रहते हो और प्रेम की धुन बनी रहती है। हजार काम में उलझे रहते हो, मगर भूल नहीं होती। एक अंतःसलिला बहती रहती है। रात सपने में भी प्रेमी की छाया पड़ती है। और जो जानते हैं और जो जागे हैं, उन्होंने पाया है कि गहरी से गहरी निद्रा में भी जब स्वप्न भी शांत हो जाते हैं, तब भी प्रेम की अंतःसलिला बनी रहती है।
प्रेम जगता है तो तुम्हारे चौबीसों घंटों को घेर लेता है। तुम्हारी
हर घड़ी फूल जैसी टंग जाती है माला में। और तुम्हारे सब फूलों के भीतर प्रेम का धागा अनस्यूत होता है।
चकित क्यों करूं अब उसे
खींंच कर चकाचौंध में
क्यों फिक्र करते हो? जो हुआ है, उसे सम्हालो। उसे चकाचौंध में खींच
कर लाभ भी क्या होगा? उसे किसी से कहने जाओगे, कह भी न पाओगे। उलझन में भी पड़ोगे, संकोच भी खाओगे, हाराहारापन भी मालूम होगा। फिर ठीक न कह पाओगे तो

अपराध भी जगेगा, कि कुछ कहने गए, कुछ कह गए। विवाद में जीत भी न सकोगे, सिद्ध भी न कर पाओगे, क्योंकि ये बातें सिद्ध करने की नहीं।
चकित क्यों करूं अब उसे
खींच कर चकाचौंध में
क्यों पंखुरी दूं सौरभ ही सौरभ को
जो सुगंध ही सुगंध है, जो सौरभ ही सौरभ है, उसे क्यों खींच कर पंखुरी बनाओ? जो इत्र ही इत्र है, अब उसे क्यों फिर वापिस फूल बनाओ? उसे क्यों शब्द में लाओ? उसे क्यों प्रकट करो? उसे अप्रकट ही रहने दो। और मैं तुमसे कहता हूंः जितना तुम उसे अप्रकट रहने दोगे, उतना ही गहन होगा, उतना ही सघन होगा, उतना ही प्रगाढ़ होगा। और एक ऐसी घड़ी आती है कि उसकी प्रगाढ़ता ही औरों को चकित करेगी। उसकी प्रगाढ़ता ही दूसरों के तार झनझना जाऐंगी। लोग तुमसे पूछने लगेंगेः "क्या हुआ तुम्हें? कैसे हुआ तुम्हें?" तुम्हारी मौजूदगी एक ठंडक लाएगी। तुम किसी के पास बैठोगे तो उस आदमी के भीतर की तरंगें बदल जाएंगी। मगर इतना इकट्ठा होने दो। इतना इकट्ठा होने दो कि जो भी तुम्हारे पास आए वह आंदोलित हो उठे, संक्रमित हो जाए। ये बातें कहने की नहीं हैं-- संक्रमित होने की हैं।
चकित क्यों करूं अब उसे
खींचकर चकाचौंध में
क्यों पंखुरी दूं सौरभ ही सौरभ को
अतिचेतन को क्यों प्राण दूं
अंतःसलिला तुम्हारी स्मृति को
क्यों गंगा-जमुनी परिधान दूं!
सरस्वती को सरस्वती ही रहने दो। उसे न गंगा बनाओ न जमुना बनाओ। उसे वस्त्र न पहनाओ शब्दों के। उसे निर्वस्त्र, शून्य रहने दो। उसमें बल होगा, तो जो जान सकते हैं, जिनमें जानने की पात्रता है, वे जान लेंगे। और उसमें बड़ा बल है।
तुमने देखा? किसी ने कभी सोचा था कि पदार्थ के सबसे छोटे हिस्से अणु में, जो आंखों से दिखाई नहीं पड़ता, जो इतना छोटा है कि जिसे अभी यंत्रों से भी देखा नहीं गयाः जिसे किसी ने नहीं देखा है, जिसके छोटेपन का अंदाज तुम ऐसा लगा सकते हो कि अगर एक अणु के ऊपर दूसरा अणु, दूसरे के ऊपर तीसरा, ऐसे एक लाख अणु के ऊपर एक रखे जाएं तो आदमी के बाल के बराबर उनकी मोटाई हो--उस एक छोटे से अणु में कितनी शक्ति का आविर्भाव हुआ है! उसका विस्फोट... तो उसकी कथा नागासाकी और हिरोशिमा में लिखी है। उसका विस्फोट--और एक लाख आदमी क्षण में राख हो गए। अगर पदार्थ के एक अणु की इतनी क्षमता है तो चैतन्य के एक अणु की कितनी क्षमता न होगी! अगर पदार्थ के एक अणु का विस्फोट होता है, लाखों लोग मर जाते हैं--तो क्या तुम सोचते हो जब एक बुद्ध का विस्फोट होता होगा तो करोड़ों लोग जीवित न हो जाते होंगे! जिन्होंने जीवन कभी न जाना था, जिनकी शाखाओं पर कभी पत्ते न खिले थे, कभी फूल न लगे थे, उनकी शाखाओं पर पत्ते-फूल न लग जाते होंगे! जिन रेगिस्तानों में कभी धारा न बही थी जल की-- क्या उनमें जल-धाराएं न बह उठती होंगी?
बुद्धत्व चैतन्य का विस्फोट है। चैतन्य का विस्फोट कहो या प्रेम का विस्फोट, एक ही बात को कहने के दो ढंग हैं। एक ज्ञानी का ढंग है एक प्रेमी का ढंग है। एक भक्त का, एक ध्यानी का।
तुम कहते होः "मैं आपका शिष्य हूं, आप हैं मेरे गुरु--इसे सारे जगत से कहना चाहता हूं, पर कह नहीं पाता।"
चुप रहो! यह अपने से कहा जाएगा। तुम साधो इसे। तुम इसे गहराते जाओ। तुम सींचो इसकी जड़ों को। तुम अपने पूरे प्राण से इसे सींचो। तुम फिक्र ही छोड़ शेष सब। जिस दिन होता है, अभिव्यक्ति उस दिन होगी।
कौन है जो मौन है मन में मेरे
और मुस्कराता है
आंख करना चाहता हूं चार
वह आगे न आता है
हर सुबह में जब उघड़ती आंख

लगता है बैठा था सिरहाने
हर निशा में जब झपकती आंख
लगता है कि आया है सुलाने
हर उदय में शक्ति देता
यामिनी में गीत गाता है
किसी क्षण में, अभी यह लगता है
कि जैसे बरजता है, यह न कर
किसी क्षण में धीर देता जान पड़ता है
कि इसको कर, न डर
किसी क्षण में हर द्विधा से हीन करता
प्राण को ऊपर उठाता है
कौन है, जो मौन है मन में मेरे
और मुस्कराता है!
शिष्य होने का अर्थ हैः गुरु को अपने हृदय में बिठा लेना। शिष्य होने
का अर्थ है, अब अपने से नहींं जीएंगे, अब उसकी आवाज से जिएंगे। अब उसकी प्रेरणा ही हमारे जीवन की व्यवस्था, हमारे जीवन का अनुशासन होगी। और तब निश्चित ही तुम्हारे अंतःकरण से उसकी आवाज आने लगती है।
ऐसे मैं तुमसे बाहर से बोल रहा हूं, लेकिन जिन्होंने मुझे भीतर लिया है, उनसे मैंने भीतर से बोलना शुरू कर दिया है।
कौन है जो मौन है मन में मेरे
और मुस्कराता है।
कभी जब मैं तुम्हारे भीतर मुस्कराऊं तो घबड़ाना मत! क्योंकि तब तुम्हें मुस्कराहट पागल जैसी मालूम पड़ेगी, क्योंकि तुम तो नहीं मुस्करा रहे हो। और कभी जब मैं तुम्हारे भीतर रोऊं, चिंतित मत हो जाना, व्यथित मत हो जाना। क्योंकि आंसू तो गिरेंगे और तुम्हें कारण कुछ भी न दिखाई पड़ेगा। कारण तो धीरे-धीरे समझ में आएगा। धीरे-धीरे, बहुत धीरे-धीरे! एक दिन तुम पहचानोगे--कौन हंसा था, कौन रोया था?
आंख करना चाहता हूं चार
वह आगे न आता है
हर सुबह में जब उघड़ती आंख
लगता है कि बैठा था सिरहाने
शिष्य और गुरु का नाता कुछ ऐसा-वैसा नाता नहीं है कि बने और मिट जाए। बनता है तो मिटता ही नहीं। और मिट जाए, तो समझना कि बना ही नहीं था। तुम भ्रांति में पड़े होओगे। तुमने मान लिया होगा।
हर सुबह में जब उघड़ती आंख
लगता है कि बैठा था सिरहाने
हर निशा में जब झपकती आंख
लगता है कि आया है सुलाने
हर उदय में शक्ति देता
यामिनी में गीत गाता है
किसी क्षण में अभी यह लगता है
कि जैसे बरजता है, यह न कर
किसी क्षण में धीर देता जान पड़ता है
कि इसको कर, न डर
किसी क्षण में हर द्विधा से हीन करता
प्राण को ऊपर उठाता है
कौन है जो मौन है मन में मेरे
और मुस्कराता है
इसे धीरे-धीरे भीतर-भीतर साधे जाओ। इसे धीरे-धीरे भीतर-भीतर बांधे जाओ। बड़ा बांध बनाओ। जल्दी न करो इसे कह देने की। यह अपनी ही ऊर्जा से किसी दिन प्रकट होगा। तुम इसे प्रकट न कर पाओगे। जब प्रकट होगा, अपनी ही ऊर्जा से प्रकट होगा, तुम इसे प्रकट न कर पाओगे। जब प्रकट होगा अपनी ही ऊर्जा से

प्रकट होगा। फिर तुम रोक न पाओगे। तुम्हारे किए प्रकट भी नहीं होगा, तुम्हारे किए रोका भी न जा सकेगा।
और तब एक सौंदर्य है, तब एक अनूठा सौंदर्य है! जब तुम नहीं करते और अपने से होता है! जब गीत अपने से फूटता है, नाच अपने से उठता है! तुम सिर्फ दर्शक होते हो, या कि दर्शक भी नहीं होते! तुम साक्षीमात्र होते हो, या कि साक्षी भी नहीं होते! सब मिट गया होता है, तुम होते ही नहीं।
जिस दिन शिष्य बिल्कुल नहीं बचता, उस दिन जो बात फूटनी शुरू होती है वही जगत को खबर ले जा सकती है।

तीसरा प्रश्नः भगवान! बहुत मुद्दत से आपको मिलने की तमन्ना थी। सो मैं रोहतक से दस दिनों के शिविर के लिए आपके आश्रम में आया हूं। कल मां योग लक्ष्मी से मिलकर आपसे मिलने की प्रार्थना की थी। मगर उन्होंने कहा कि कोई गैर-संन्यासी आपसे नहीं मिल सकता; अगर संन्यास लो तो मिल सकते हो। क्या मैं यह जान सकता हूं कि गैर-संन्यासी के जजबात को क्यों ठुकराया जाता है, जबकि वह इतनी दूर से, इतनी उम्मीद और श्रद्धा के साथ भगवान से मिलने आया है?

यश शर्मा! रोहतक और पूना के बीच की दूरी पार करने से कुछ भी न होगा। तुम्हारे और मेरे बीच की दूरी पार करनी पड़ेगी। उस दूरी को पार करने का नाम ही संन्यास है।
संन्यास कोई औपचारिक क्रियाकांड नहीं है--दो अंतरों को जोड़ देने की प्रक्रिया है।
मैं समझा, तुम्हें तकलीफ हुई होगी। तुम इतनी दूर से आए। लेकिन तुम्हें पता है, यहां लोग बहुत-बहुत दूर से आए हैं! रोहतक तो बहुत करीब है। यहां, दुनिया का ऐसा कोई कोना नहीं है, जहां से लोग नहीं आए हैं। रोहतक तो ऐसा समझो कि पूना का गली-कूचा है कोई। कोई बहुत दूर नहीं है। अगर दूरी के हिसाब से मिलना हो, तो तुम कभी मिल ही न पाओगे। अगर दूरी के हिसाब से मिलने का यहां इंतजाम हो, कि जो जितनी दूर से आया है वह पहले मिलेगा, तो तुम्हारा नंबर लगने वाला नहीं। भूलो, बात ही भूल जाओ फिर।
दूरी से आए हो, इस दावे से काम नहीं चलेगा। एक और दूरी है, जो मिटाओ। और
तब तुम रोहतक से न भी आओ तो भी मिलना हो जाएगा। मैं चलकर आ जाऊंगा। मगर दूरी मिटाओ। दूरी मिटनी चाहिए। और दूरी भौतिक नहीं है कि टेन में सवार हुए, चल पड़े और मिट गई। काश, इतना आसान होता! प्रेम से मिटेगी।
सुना, सुंदरदास ने क्या कहा? भाव जब भगति बने, तब मिटेगी।
तुमने पूछाः "बहुत मुद्दत से आपको मिलने की तमन्ना थी।"
सच में तमन्ना थी? तो इतना और करो। तमन्ना थी, तो कुछ कीमत भी चुकाओ। नहीं तो तमन्ना "तमन्ना" नहीं थी--एक ख्याल, एक जिज्ञासा रही होगी, एक कुतूहल रहा होगा, कि चलें देखें। तमन्ना.जरा गहरा शब्द है। तमन्ना का मतलब होता है--अभीप्सा, ऐसी प्रबल आकांक्षा, कि जरूरत पड़े तो कुछ दांव पर भी लगा देंगे। कुतूहल का मतलब यह होता है कि ऐसे ही मिल जाए तो ठीक, मुफ्त हो जाए तो ठीक।
यहां जो मेरे पास आएं, वे ख्याल रख कर आएं, तमाशबीनों के लिए कोई स्थान नहीं है। तमन्ना है तो सबूत दो। रोहतक से आना सबूत नहीं है।
पूछा तुमने कि मां योग लक्ष्मी ने कहा कि कोई गैर-संन्यासी आपसे नहीं मिल सकता।
ऐसा कुछ नहीं है। गैर-संन्यासी मिल सकता है, मगर मिलना हो नहीं पाता। तुम बहुत ही आग्रह करोगे, तो मैं लक्ष्मी को कहूंगाः मिला दो। तुम्हें दुखी जाने देने का कोई कारण नहीं है, मगर मिलना हो नहीं पाएगा। लक्ष्मी सिर्फ तुम्हें साथ दे रही है सहारा दे रही है कि मिलना हो ही जाए; कि ऐसा न हो कि मिलना हो भी और भी न भी हो पाए। ऐसा कुछ भी नहीं है, गैर-संन्यासी भी कभी आ जाते हैं, जिद में पड़ जाते हैं तो मिलता हूं। मगर खाली आते हैं, खाली जाते हैं। किसी को दुख देने का कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन अगर मिलने से ही कुछ होने वाला होता, तब तो बड़ी आसान बात थी।

वर्षों तक मैं देशभर में घूमता रहा। लाखों से मिला हूं। फिर जान कर रुक गया। क्योंकि देखा, उस मिलने से कुछ भी न होगा। अब किसी और तल पर मिलना होगा, तो ही कुछ काम बनेगा। अब गहराई से गहराई मिले, आत्मा से आत्मा मिले। अब मैं तुम्हें कुछ देना ही चाहता हूं, खाली हाथ नहीं लौटाना चाहता। लेकिन देने के लिए तुम्हें लेने को राजी होना पड़े।
संन्यास का उतना ही अर्थ है कि मैं लेने को राजी हूं, कि मेरे द्वार खुले हैं, कि मैंने अपनी अंजुली आपके सामने फैलाई, कि मेरे हृदय को भर दें। संन्यास का इतना ही अर्थ है। यह तो केवल शब्द एक प्रतीक है। इसमें बहुत कुछ छिपा है। इसमें यह छिपा है--कि मैं लेने को राजी हूं, कीमत कोई भी चुकानी पड़े; कि मैं खोज पर निकला हूं; कि मैंने संसार देख लिया बहुत, कुछ भी नहीं पाया। अब कुछ और देखना चाहता हूं, जो संसार नहीं है। अब अदृश्य से रस लगा है। अब परमात्मा की खोज जगी है।
नहीं तो लोग हैं, जो घूमते ही रहते हैं। जहां उनको खबर मिली, वहीं गए। कुछ लोगों का जिंदगी भर यही धंधा रहता है--तीर्थयात्रा करनी, साधु-सत्संग करना, मगर कहीं टिकते नहीं। और टिकते नहीं तो जड़ें नहीं जमतीं। आए दो-चार दिन के लिए, गए।
संन्यास का अर्थ है कि जड़ों को जमा लो, जुड़ ही जाओ, ताकि जो मुझे हुआ है, वह तुम्हें भी हो सके; ताकि यह ऊर्जा तुम्हारे बुझे दीए को जला दे। तुम सस्ते में ही लौट जाना चाहते हो। लक्ष्मी की कोशिश यह है कि तुम भर कर लौटो। मगर तुम समझे नहीं। तुम समझे कि ज.जबात ठुकराए जा रहे हैं। यहां तो ज.जबात जगाए जा रहे हैं, ठुकराएगा कौन?
तुम कह रहे हो कि क्या आप से केवल संन्यासी ही मिल सकते हैं?
संन्यासी ही मिल पाते हैं! और लोग मिलते हैं, मिल नहीं पाते। बैठ भी जाते हैं पास आकर, दो बात भी कर लेते हैं, मगर व्यर्थ होती है वह बात, औपचारिक होती है। कुशल-क्षेम पूछ लेते हैं, पुछवा लेते हैं। विदा हो जाते हैं। जैसे आए, वैसे गए।
यह कोई साधारण धर्म-स्थल नहीं है। यहां हम कुछ करने पर उतारू हैं। यह
एक आध्यात्मिक प्रयोगशाला है। यहां चीर-फाड़ चल रही है। यहां यश शर्मा, अगर हिम्मत है तो टेबल पर लेटना ही पड़ेगा--सर्जरी होगी। संन्यास यानी सर्जरी की शुरुआत।
सर्जरी में देखते हो न, ले जाते हैं, मरीज को, फिर कपड़े बदल दिए, और पहना दिया चोगा इत्यादि और लिटा दिया। और वह कहे हम चोगा नहीं पहनेंगे, हम तो सिर्फ दर्शन के लिए चले आए... हमारे ज.जबात ठुकराए जा रहे हैं।
यह गेरुआ वस्त्र इत्यादि तो बस टेबल पर लिटाने की तैयारी है। ये तो इशारे हैं कि धीरे-धीरे तुम राजी हो रहे हो, अब टेबल पर जाओगे। कुछ काटा जाना है। तुम्हारे भीतर बहुत कुछ व्यर्थ, जो तोड़ा जाना है। तुम्हारे सिर पर हथौड़े गिरने ही चाहिए। तुम्हारे हृदय में बहुत चीर-फाड़ करने की जरूरत है, तो ही तुम नए हो सकोगे। तुम मिटो, मरो, तो ही तुम्हारा पुनरुज्जीवन हो। तुम कहते होः "क्या मैं जान सकता हूं कि गैर-संन्यासी के ज.जबात को क्यों ठुकराया जाता है?"
जजबात ठुकराए नहीं जा रहे हैं, जजबातों को सम्मान दिया जा रहा है। कहा
जा रहा हैः जब जजबात ही हैं, तो अब क्या पीछे लौटना! अब बढ़ो। अब यहां तक आ गए, तो थोड़े और चलो। बाहर की यात्रा कर ली, थोड़ी भीतर की यात्रा भी करो।

पांव मत मोड़े कि पथ पर आ गया है
बरस ही पड़ जब घुमड़ कर छा गया है!
तू नहीं बिजली कि जलकर बुझ रहेगा
देश का सावन है धरती-भर बहेगा
समय अपने बोल तुझ में पा गया है
पांव मत मोड़े कि पथ पर आ गया है!

जान देना सीख जीवन ला सकेगा
खींच शिव सांसों में विष भी खा सकेगा

पुण्य तेरे पास चलकर आ गया है
बरस ही पड़ जब घुमड़ कर छा गया है।
नाच लहरों पर प्रलय की ताल देकर प्राण अपने मरण-स्वर में ढाल देकर तांडव का छंद तेरे पोर-पोर समा गया है पांव मत मोड़े कि पथ पर आ गया है! लीक-लीक न सांस यदि लीका करेगा
काल तेरे भाल पर टीका करेगा
नए युग का गीत यह दिन गा गया है
बरस ही पड़ जब घुमड़ कर छा गया है!
पांव मत मोड़े कि पथ पर आ गया है
बरस ही पड़ जब घुमड़ कर छा गया है।
इतनी दूर चले आए, तो अब बरसो। अब रुको मत। अब कंजूसी मत करो।
कह रहे हो कि जब वह इतनी दूर से, इतनी उम्मीद और श्रद्धा के साथ भगवान
के पास आया, तो क्यों उसके ज.जबात ठुकराए जाते हैं?
तुम शब्दों का ही उपयोग कर रहे हो। शब्दों का तुम्हें अर्थ भी शायद ठीक-ठीक साफ नहीं है। श्रद्धा का मतलब समझते हो? श्रद्धा तो "हां" कहना जानती है। "ना" उसकी भाषा में होता नहीं। इतना ही श्रद्धा का अर्थ है कि श्रद्धा कहती है "हां" तो अब "हां" कहो। सबूत दो कि श्रद्धा है। कहने से तो सबूत नहीं होता। कुछ करो कि सबूत मिले। श्रद्धा के लिए प्रमाण दो। संन्यास श्रद्धा का प्रमाण है। लेकिन फिर भी तुम मिलना चाहो बिना संन्यासी हुए, तो जरूर मिल सकोगे। लेकिन वह सिर्फ मिलने का अभिनय होगा। तुम्हारी जैसी मर्जी।

अंतिम प्रश्नः शास्त्रों और सिद्धांतों से छुटकारा कैसे हो? उन्होंने ऐसा पकड़ा है कि छूटने का कोई उपाय ही नहीं दिखता है।

शास्त्रों और सिद्धांतों से छुटकारा कैसे हो--ऐसे प्रश्न पूछने से लगता है कि उन्होंने तुम्हें पकड़ा है। पकड़ा तुमने उन्हें है। शास्त्र और सिद्धांत तुम्हें कैसे पकड़ सकते हैं? मुर्दा शास्त्र तुम जीवित को कैसे पकड़ सकते हैं। तुमने पकड़ा है।
अब मेरी बातें सुन-सुन कर छोड़ने की वासना भी जग रही है। तो तुम एक द्वंद्व में पड़ गए हो। तुम्हारे भीतर एक दुविधा हो गई है। शास्त्र को पकड़े भी रखना चाहते हो क्योंकि सदा तुम से कहा गया है कि शास्त्र को ही पकड़ कर रखोगे, तो ही पहुंच पाओगे। और मैं तुमसे कहता हूं कि शास्त्र को पकड़ा, तो कभी नहीं पहुंच पाओगे। अब तुम दुविधा में पड़े। अब तुम्हारे मन में बड़ी मुश्किल आई। पहुंचना तुम्हें है। सुना तुमने अब तक यही है, कि शास्त्र को पकड़ो, तो पहुंचोगे। तो एक मन कहता है--पकड़े रहो। और मैं तुमसे कहता हूं, शास्त्र को पकड़ा, तो कभी नहीं पहुंचोगे। मेरी बात भी तुम्हें जंचने लगी है। कम से कम बुद्धि की समझ में आने लगी है--कि स्वानुभव चाहिए, परानुभव से कुछ भी न होगा। और शास्त्र तो दूसरों के अनुभव हैं।
मैं क्या कहता हूं, इसे पकड़ लेने से तुम्हें कुछ भी लाभ नहीं; जब तक कि तुम भी वहां न पहुंच जाओ जहां मैं हूं। जब तक तुम भी वैसे न हो जाओ जैसे कि कृष्ण हैं, गीता को न समझ पाओगे। गीता को पकड़ने से कुछ भी न होगा। कृष्ण-चेतना का जन्म होना चाहिए।
मेरी बात भी तुम्हें समझ में आने लगी है। पुराना लोभ भी पकड़े हुए हैं। तुम दुविधा में पड़ गए। इस कारण अड़चन हो रही है। शास्त्र तुम्हें क्या पकड़ेंगे? शास्त्रों ने तुम्हें पकड़ा नहीं है। और शास्त्रों को छोड़ने के लिए कोई जाकर उनको आग लगाना, या कुएं में फेंक आने की भी जरूरत नहीं है।
क्योंकि बेचारे शास्त्रों का क्या कसूर है? प्यारे हैं, जैसे हैं।
एक युवक मेरे पास आता था। दीवाना था बिल्कुल श्रीमद्भगवद्गीता का। पूजा करे, पाठ करे किताब का, फूल चढ़ाए, घंटों घंटी बजाए, नाचे। पूरी गीता उसे कंठस्थ थी। मेरी बातें सुनते-सुनते सुनते-सुनते... आखिर पत्थर को भी

सुनते-सुनते... रसरी आवत जात है, सिल पर पड़त निशान! वह था तो बिल्कुल पत्थर, नहीं तो काहे को किताब की पूजा करता। मगर रस्सी आती रही, जाती रही... । सुनने तो वह मेरे पास गीता ही आया था। मैं गीता पर बोल रहा था उन दिनों। फिर फंस गया। आया था गीता सुनने, फिर फंस गया। इसलिए तो गीता पर बोलता हूं, कभी बाइबिल पर बोलता हूं--कि पता नहीं कौन फंस जाए, इसी बहाने चलो! फिर सुनते-सुनते उसे बात तो जंच गई। एक दिन गया, बड़े जजबात में आ गया होगा, बांध-बूंध कर गीता की किताबें कुएं में फेंक दीं, फिर घबड़ाहट भी आई, पसीना- पसीना हो गया। हृदय का दौर जैसे पड़ गया हो, ऐसी हालत हो गई। वहीं घाट पर ही गिर पड़ा कुंए के। लोग उसे उठा कर घर लाए। क्योंकि बीस साल से पूजा करता था; अब डरा कि कहीं कृष्ण महाराज नाराज न हो जाएं। यह मैंने क्या किया!
मुझे खबर आई। उसे लेकर लोग मेरे पास आए। वह रो रहा है कि मुझसे बड़ी भूल
हो गई।
"तुमसे कहा किसने?"
कहाः आप ही ने तो कहा था।
"मैंने तो कभी नहीं कहा कि तू कुएं में फेंक आना।
मगर मूढ़ता एक अति से दूसरी अति पर चली जाती है। पहले पूजा करता था, अब कुएं में फेंक आया। हिंदू हैं, मूर्ति की पूजा करते हैं, मुसलमान मूर्ति को तोड़ आते हैं। ये मूढ़ता के दो ढंग हैं। इसमें कुछ भेद नहीं है। दोनों का दिमाग मूर्ति में अटका है। ये विपरीत दिखाई पड़ते हैं ऊपर-ऊपर से, इनमें .जरा भी भेद नहीं।
मैंने उससे कहाः तूने फेंका क्यों? गीता का क्या कसूर है। उसको कुएं में फेंकने की क्या जरूरत है? तू मुझे दे गया होता। मेरे कुछ काम पड़ती। उसने कहाः आप क्या कह रहे हैं। आपने ही समझाया कि शास्त्र में कोई सार नहीं है।
मैंने कहाः निश्चित मैंने समझाया कि शास्त्र में कोई सार नहीं है। और शास्त्र का पूजन करना तो बिल्कुल ही मूढ़तापूर्ण है। लेकिन अगर तू समझ गया था तो गीता की किताब को उठाकर अलमारी में रख देता, जैसी और किताबें रखी हैं। न पूजा की जरूरत है, न कुएं में फेंक आने की जरूरत है।
समझ हमेशा मध्य में होती है; अतियों पर नासमझी होती है।
मेरे एक अध्यापक थे। उनके घर कभी-कभी मैं रुकता था। एक बार उनके घर रुका। सर्दी के दिन थे। उन दिनों मैं कुरान पढ़ रहा था। उनकी बूढ़ी मां आयीं। उन्होंने मुझसे पूछाः बेटा! क्या पढ़ रहे हो? मैंने कहाः यह कुरान-शरीफ पढ़ रहा हूं। वह पक्की हिंदू थीं! उन्होंने किताब छीन कर मेरे हाथ से एकदम बाहर फेंक दी। और कहा कि मेरे घर में और कुरान-शरीफ! और तुम्हें कोई और सदग्रंथ नहीं मिला पढ़ने को? इतने शास्त्र पड़े हैं! मेरे पूजा-घर में ही कितने शास्त्र रखे हैं! जो चाहो पढ़ो! कुरान-शरीफ मिला तुम्हें पढ़ने को? मैंने उनसे कहाः कि आप सोचती हों कि आप हिंदू हैं, मेरे हिसाब से आप मुसलमान हैं। उन्होंने कहाः मतलब तुम्हारा? मैंने कहाः यह काम कोई मुसलमान ही कर सकता है--फेंकने का। यह कोई हिंदू का ढंग है?
और मैंने कहा, तुम्हारी सब पूजा इत्यादि सब झूठी और बकवास है।
मगर अकसर यह हो जाता है, पूजा करने वाला आदमी फेंकने पर उतारू हो सकता है। एक मूढ़ता दूसरी मूढ़ता में जाने में.जरा भी देर नहीं करती। मैंने उन बूढ़ी महिला को कहा, कि तुमने सुनी होगी कहानी कि जब एक मुसलमान खलीफा ने एलेग्जेंडिया को जीता, तो एलेग्जेंडिया में दुनिया की सबसे बड़ी लाइब्रेरी थी। सदियों-सदियों की बड़ी बहुमूल्य संपदा और ग्रंथ वहां संग्रहीत थे। मुसलमान खलीफा जब उस पुस्तकालय में गया, तो एक हाथ में उसने कुरान ली और एक हाथ में मशाल, और उसने पुस्तकालय के अध्यक्ष को पूछा कि इस पुस्तकालय में जो ये लाखों किताबें हैं (वे सब हस्तलिखित ग्रंथ थे) इनमें जो लिखा है, क्या वह वही है जो कुरान में लिखा है? अगर वह वही है, तो इनकी कोई जरूरत नहीं। तो मैं आग लगाने आया हूं। और अगर तुम यह कहो कि इनमें कुछ ऐसा भी है जो कुरान में नहीं है, तब भी मैं आग लगाने आया हूं क्योंकि तब तो इनकी बिल्कुल ही जरूरत नहीं है। ऐसी कोई चीज इनमें अगर है जो कुरान में नहीं है, तो वह गलत ही होगी। क्योंकि जो भी सही है वह तो कुरान में है।

ऐसा कुरान की कसम खाकर उसने पुस्तकालय को आग लगा दी। पुस्तकालय इतना बड़ा था, कि कहते हैं कि छह महीने आग बुझने में लगे। और कहते हैं संसार की सबसे बड़ी संपदा नष्ट हो गई। उसके कारण उसके पहले का सारा इतिहास खो गया। लाखों बातें बहुमूल्य थीं, जो खो गईं, जिनको शायद आदमी अभी भी नहीं खोज पाया है; जिनको शायद और लाखों वर्ष लगेंगे खोजने में। उनमें मनुष्य-जाति का सारा अतीत था। इस एक मूढ़ आदमी ने आग लगा दी। और मजा यह कि कुरान की कसम खाकर आग लगाई।
तो मैंने उस बुढ़िया को कहा कि तू ठीक उसी खलीफा का अवतार मालूम होती है। मुसलमान है तू पक्की, हिंदू तो.जरा भी नहीं। मगर हिंदू और मुसलमान में भेद कहां होता है! वे सब एक ही जैसे हैं। एक एक अति को पकड़ लेता है, दूसरा दूसरी अति को।
इस युवक को मैंने कहा कि तूने फेंका, यह तो ज्यादती हो गई। फेंकने का सवाल नहीं है।
तुम पूछते होः "शास्त्र और सिद्धांतों से छुटकारा कैसे हो?"
समझ स्वतंत्रता है--मात्र समझ। इतनी छोटी सी बात तुम्हारी समझ में आ जाए, कि अगर तुम भूखे हो तो रोटी पकाने से काम चलेगा, पाकशास्त्र की पूजा करने से नहीं... । और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि पाकशास्त्र को आग लगा दो। और अगर तुम प्यासे हो तो पानी से काम चलेगा। कोई वैज्ञानिक तुम्हें कागज पर पानी का फार्मूला लिख कर दे दे कि एच. टू. ओ. इसको तुम घोंट कर पी जाना, प्यास नहीं बुझेगी। और फार्मूला गलत नहीं था। फार्मूला ठीक ही था। लेकिन फार्मूलों से थोड़े ही प्यास बुझती है। एच. टू. ओ. के फार्मूले से न तो प्यास बुझती है, न उसमें नाव चला सकते हो, न पानी सींच कर झाड़ लगा सकते हो--उससे कुछ भी नहीं कर सकते, फिर भी सच है।
शास्त्रों में जो लिखा है वह सच है, लेकिन तुम्हारे स्वांतः अनुभव के बिना उस सत्य की गवाही कौन है? शास्त्र पढ़ने से सत्य नहीं मिलता, सत्य को जान लेने से शास्त्र समझ में आते हैं। सत्य को जान लेने से सारे शास्त्र समझ में आ जाते हैं। जो पढ़े, वे भी समझ में आ जाते हैं, जो नहीं पढ़े, वे भी समझ में आ जाते हैं।
मुझसे लोग पूछते हैं कि आप इतने संतों पर बोलते हैं, क्या आपने इन सबको पढ़ा? कौन झंझट में पड़ता है! मगर जो मुझे समझ में आ गया है, वह इन संतों के सिरों पर बिठा देता हूं। जो मुझे समझ में आ गया है, वही उनको समझ में आया था। अब समझ लो कि सुंदरदास अगर यहां मौजूद हों... कभी-कभी आते हैं देखने कि मेरी क्या हालत की जा रही है... अगर वे जिद भी करें कि मेरा यह मतलब नहीं, तो भी मैं मानने को राजी नहीं हूं। मेरा खुद का अनुभव है। यह अर्थ ऐसा ही होना चाहिए।
तुमने प्रसिद्ध कहानी सुनी है, कि रामदास रामायण लिखते थे? खबर हनुमान को लग गई। खबर आई कि बड़ी मीठी कथा कही जा रही है। तो सुनने आते थे, हनुमान भी छिप कर कंबल-वंबल ओढ़ कर, पूंछ वगैरह को छिपा कर, भीड़ में बैठ जाते होंगे। अगर सुंदरदास भी बैठे हों, तुम थोड़े पहचानोगे कि किस ढंग से छिपे हैं, बैठे सुनते हैं। बड़े मस्त होते, मगन हो जाते। सीधे-सादे। कहानी बड़ी प्यारी चल रही थी। पुरानी याददाश्तें ताजी हो रही थीं। उन्होंने तो उस अनुभव को देखा ही था। उस सारी कथा में वे हिस्सेदार थे। उसको रामदास के मुंह से सुन कर चकित भी होते थे कि यह आदमी वहां था भी नहीं, इसको कुछ पता भी नहीं होना चाहिए, मगर ऐसे कह रहा है जैसे आंखों देखी बात कहता हो!
मगर एक दिन झंझट हो गई। रामदास ने कहा कि हनुमान अशोक-वाटिका में गए
और उन्होंने देखा कि चारों तरफ सफेद ही सफेद फूल खिले हैं। हनुमान ने कहा, यहां गलती कर रहा है यह आदमी। भूल ही गए कि हम यहां छिपे हुए बैठे हैं, पूंछ वगैरह को दबाए। कोई देख-दाख ले और झंझट हो जाए, शोरगुल मच जाए। खड़े हो गए। हनुमान जी ही तो ठहरे! कंबल-वंबल फेंक दिया, कहा कि बंद करो यह बकवास! अब तक तो ठीक चला, मगर फूल वहां लाल थे, सफेद नहीं थे। सुधार कर लो।
लेकिन रामदास जैसे आदमी सुधार इत्यादि करने में मानते हैं? रामदास ने कहा, बैठ जाओ चुपचाप। ओढ़ो कंबल, छिपाओ पूंछ, बैठो अपनी जगह पर। तुमसे पूछ

कौन रहा है? और जो मैंने कह दिया, सो कह दिया। फूल सफेद थे और सफेद ही रहेंगे, और सफेद ही लिखे जाएंगे।
पर हनुमान ने कहाः यह हद हो गई! मैं हनुमान हूं। मैं गया था अशोक-वाटिका। मैंने देखे थे फूल। तुम वहां मौजूद नहीं थे। तुम चश्मदीद गवाह भी नहीं हो। सैकड़ों साल बीत गए कहानी हुए। अब तुम कहानी लिखने बैठो हो। और यह तो हद की बात हो गई कि तुम मुझसे कह रहे हो कि चुपचाप बैठ जाओ! बदलाहट करनी पड़ेगी।
रामदास ने कहाः बदलाहट नहीं होने वाली। फूल सफेद थे और सफेद ही लिखे जाएंगे।
झगड़ा यहां तक बढ़ गया, कि कहानी कहती है कि हनुमान ने कहाः तुम बैठो मेरे कंधे पर, मैं तुम्हें रामचंद्र जी के पास ले चलता हूं। सीता जी भी वहां मौजूद हैं। सीता जी भी बता देंगी कि फूल कैसे थे। और फिर रामचंद्र जी जो कह दें, वह तो मानोगे?
रामदास ने कहाः अगर मेरी बात से मेल खाएगा तो जरूर मानूंगा। सत्य का
जब अनुभव होता है तो उसके साथ स्वभावतः यह बात होती है। स्वतः प्रमाण होता है सत्य। मेरे से बात मेल खाएगी तो मान लूंगा। चला चलता हूं।
हनुमान ने सारा मामला उपस्थित किया। राम ने कहाः हनुमान! एक तो तुम्हें वहां जाना नहीं था। तुम वहां क्या कर रहे थे? तुम्हें और कोई काम नहीं है? फिर गए थे तो चुपचाप बैठे रहते। यह शोभा देता है कि बीच में खड़े हो गए, सत्संग खंडित कर दिया। फिर यह बेचारे रामदास को इतनी दूर तक आना पड़ा। रामदास ठीक कहते हैं, फूल सफेद थे।
हनुमान तो दंग हो गए। हनुमान ने कहाः यह तो हद हो गई! आप भी वहां नहीं थे। अन्याय की एक सीमा होती है! मैं गवाह हूं सिर्फ, और सीता गवाह हैं। सीता ने भी कहा कि हनुमान! तुम चुप ही रहो। और रामदास जो कहते हैं, ठीक
ही कहते हैं। फूल सफेद थे।
हनुमान ने कहाः मुझे इसका पूरा-पूरा ब्यौरा चाहिए कि यह क्यों ऐसी बात कही जा रही है।
राम ने कहाः बात सीधी-साफ है हनुमान, तुम इतने क्रोध में थे, कि तुम्हारी आंखें खून से भरी थीं। इसलिए तुम्हें फूल लाल दिखाई पड़े थे। फूल सफेद ही थे। तुम पागल हो रहे थे। तुम विक्षिप्त थे। तुम होश में कहां थे! तुम्हारे भीतर आग की लपटें उठ रही थीं। तुम मरने-मारने को उतारू थे। तुम्हें फूल देखने की फुर्सत कहां थी। फिर तुम्हारी आंखों में खून झलक रहा था, उस खून की वजह से तुम्हें फूल लाल दिखाई पड़े थे। रामदास ठीक कहते हैं। फूल सफेद ही थे।
एक जीवंत अनुभव हो, फिर सारे शास्त्र उसके साथ हो जाते हैं। फिर राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, मोहम्मद, सब उसके साथ हो जाते हैं। होना ही पड़ेगा। उसके सिवाय कोई उपाय नहीं है।
तो मुझसे जब कोई पूछता है कि क्या आप इन सब संतों को पढ़े हैं... ? पढ़ने
की कोई खास जरूरत नहीं है। एक नजर डाल लेता हूं कि इन्होंने क्या कहा है। फिर जो मुझे हुआ है, उसे कह देता हूं। ऐसा ही चाहता हूं कि एक दिन तुम्हारे जीवन में भी घटे। यह बात छोड़ने की नहीं है, यह बात समझने की भर है। शास्त्र छोड़ने नहीं हैं। मैंने कहां छोड़े? जितना सम्मान मैंने शास्त्रों को दिया है, किसी और ने दिया है? तो मैं कैसे कह सकता हूं तुमसे कि छोड़ दो? कुछ और कह रहा हूं। यह कह रहा हूं कि शास्त्रों से तब तक कोई भी तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध होने वाला नहीं, जब तक तुम्हारी अपनी समाधि न लग जाए। समाधि को मूल्य देने के लिए कह रहा हूं कि शास्त्र छोड़ दो, नहीं तो तुम शास्त्र को ही पकड़े बैठे रहोगे, समाधि से चूकते चले जाओगे।
मैंने सुना है, एक युवक ने अमरीका के बहुत बड़े करोड़पति, मॉर्गन के पास जाकर कहा कि मैंने यह किताब लिखी है। यह किताब ऐसी अदभुत है कि इसकी करोड़ों प्रतियां बिकेंगी और करोड़ों लोग लाभांवित होंगे। आप इसे छपवाएं। मॉर्गन ने पूछाः बिना किताब हाथ में लिए, कि इस किताब का नाम क्या है? तो उस युवक ने कहाः इस किताब का नाम है--"धन कमाने के सौ तरीके।" मॉर्गन ने

नीचे से ऊपर तक युवक को देखा... फटी हालत। पूछा कि आए कैसे? बस से आए, कार से आए। आए कैसे?
उसने कहाः पैदल आया।
"ये कपड़े कब से नहीं धुले? भोजन कब से ठीक से नहीं मिला? "धन कमाने के
सौ तरीके" किताब लिखी है, और यह हालत तुम्हारी! ले जाओ अपनी किताब! तुम्हारी किताब में होगा क्या?"
उदास युवक, अपनी किताब लेकर चला गया। कोई पांच-सात दिन बाद, मॉर्गन घूमने निकला था शाम को, उसने देखा कि राह के किनारे खड़ा वह युवक भीख मांग रहा है। मॉर्गन ने कहाः मेरे भाई! जहां तक मुझे याद पड़ता है, तुम वही सज्जन हो जिन्होंने "धन कमाने के सौ तरीके" किताब लिखी है। क्या हुआ? भीख क्यों मांगने लगे? एकाध तरीका अपनाते क्यों नहीं?
उस युवक ने कहाः यह उसमें सौवां तरीका है। यह आखिरी तरीका है, जब और कोई तरकीब काम में न आए तो मैंने आखिरी तरीका... यही तो सौवां तरीका है उस किताब में। आपने किताब देखी ही नहीं। जब और निन्यानबे तरीके हार जाएं, तो यह सौवां तरीका है।
इस दयनीय अवस्था को देखते हो? यही दयनीय अवस्था है लोगों की। कृष्ण उनके मुंह पर बैठे हैं, वेद की ऋचाएं उन्हें याद हैं, कुरान की आयतें दोहरा सकते हैं, तोतों की भांति। मगर तुम्हारी भीतर की संपदा की कोई खबर तो मिलती नहीं। भीतर घना अंधकार है, दीये की बातें हो रही हैं। लेकिन दीयों की बातों से कहीं अंधेरा मिटता है! काश, दीये की बातों से अंधेरे मिटते होते, तो कितना आसान होता जगत, जीवन कितना सरल होता!
जब मैं तुमसे कहता हूं शास्त्रों से मुक्ति ले लो, तो मेरा इतना ही अर्थ है कि ध्यान की तरफ मुड़ो। ज्ञान में शक्ति को मत नष्ट करो। कितना ही ज्ञान इकट्ठा कर लो, कुछ काम न आएगा। पहाड़ भर ज्ञान रत्ती भर ध्यान के मुकाबले में किसी काम का नहीं है। रत्ती भर ध्यान काफी है क्योंकि रत्ती भर ध्यान आज नहीं कल पहाड़-भर ज्ञान बन जाएगा। और पहाड़ भर ज्ञान दो कौड़ी का है। मरोगे उसके नीचे दब कर। लाश दबेगी उसके नीचे, कब्र बनेगी उसके नीचे, और कुछ भी नहीं होगा।
तुम पूछते होः "शास्त्रों और सिद्धांतों से छुटकारा कैसे हो?"
"छुटकारा कैसे" का सवाल नहीं है। कोई विधि थोड़े ही करनी पड़ेगी, कोई अयास थोड़े ही करना पड़ेगा। इतनी बात देखने की है, सिर्फ देखने की--इतनी दृष्टि, कि जो मेरा नहीं है, वह मुझे मुक्त नहीं कर सकेगा। मेरा अनुभव ही मेरी मुक्ति है। और अनुभव ध्यान से होगा। ज्ञान का कचरा मैं इकट्ठा भरता चला जाऊं, तो ध्यान का होना मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि जितना तुम्हारे मन में विचार होंगे, उतना ही ध्यान मुश्किल हो जाएगा।
ध्यान का अर्थ हैः निर्विचार। तो निर्विचार होने के लिए तो सारे विचार जाने दो--बाजार के भी, मंदिर-मस्जिद के भी, शास्त्र के भी--सब विचार जाने दो। जब चित्त बिल्कुल निर्विकार होगा, जब तुम जागोगे, तब तुम जानोगे, तब ज्ञान की ज्योति जलेगी। और उस ज्योति के प्रकाश में तुम पाओगे--सारे शास्त्र प्रमाणित हो गए।
ज्ञान से मुक्ति कठिन नहीं है, अत्यंत सरल है। शास्त्र से मुक्ति कोई साधना नहीं मांगती--सिर्फ सूझ, थोड़ी सी समझ थोड़ी सी आंख का खुलना। उधार काम नहीं आता, निजता में ही कुछ घटता है तो काम आता है। न तो तुम मेरी आंख से देख सकते हो, और न तुम मेरे पैर से चल सकते हो, न ही मेरा ध्यान तुम्हारा ध्यान बन सकता है न मेरी समाधि तुम्हारी समाधि बन सकती है। फिर मुझे सुनने से लाभ क्या? इतना ही लाभ है, कि जहां से ये शब्द आ रहे हैं, उस स्रोत को जगाने की तुम्हारे भीतर एक प्रबल कामना पैदा हो जाए। कृष्ण के शब्द सुन कर तुम्हारे भीतर एक अदम्य वासना जगे--कि ऐसी चेतना मेरे भीतर भी हो, जहां ऐसे फूल खिलते हैं। बुद्ध के साथ बैठ कर तुम्हारे भीतर यह भाव जगे, उमगे, कि कब मेरे भीतर बुद्धत्व होगा।
मैं अपना इशारा, तुम्हें चांद की तरफ उठा रहा हूं अंगुली, कि देखो चांद। मेरी अंगुली को मत पकड़ लेना। अंगुली शास्त्र है। अंगुली को जाने दो, चांद को देखो। चांद न मेरा है न तुम्हारा। न चांद किन्हीं अंगुलियों से

बंधा है। न सुंदर अंगुलियां न कुरूप अंगुलियां, न ये अंगुलियां, न वे अंगुलियां। चांद सभी अंगुलियों से मुक्त है।
सत्य कुरान, बाइबिल, वेद, धम्मपद--सबसे मुक्त है। और यद्यपि सारी अंगुलियां उसी सत्य की तरफ इशारा कर रही हैं, मगर अंगुलियों को मत पकड़ लेना।
लोग बच्चों जैसे हैं, वे अंगुलियों को चूस रहे हैं। सोचते हैं, अंगुलियां चूसने से पोषण मिलेगा! उठाओ आंखें चांद की तरफ--पोषण बरस रहा है, अमृत बरस रहा है। खोलो आंखें चांद की तरफ। चांद से जुड़ो। चांद को उतरने दो तुम्हारे भीतर, झलकने दो तुम्हारे भीतर। और चांद झलक सके, इसके लिए अपने भीतर निर्विचार करो। अपने भीतर से धूल झाड़ो। दर्पण को साफ करो। मन का दर्पण साफ--अर्थात ध्यान। मन के दर्पण में चांद का प्रतिबिंब बन गया-- अर्थात साक्षात्कार।

आज इतना ही।

ज्योति से ज्योति जले
पांचवां प्रवचन

है दिल में दिलदार

है दिल मैं दिलदार सही अंखियां उलटि करि ताहि चितइए।
आब मैं खाक मैं बाद मैं आतस जान मैं सुंदर जानि जनइए।।
नूर में नूर है तेज में तेज है ज्योति मैं ज्योति मिलें मिलि जइए।
क्या कहिए कहते न बनै कछु जो कहिए कहते ही लजइए।।

जासौं कहूं "सब में वह एक" तौ सो कहै कैसो है, आंखि दिखइए।
जौ कहूं "रूप न रेख तिसै कछु" तौ सब झूछ कैं मानें कहइए।।
जौ कहूं सुंदर "नैननि मांझि" तौ नैनहूं बैंन गए पुनि हइए।
क्या कहिए कहते न बनै कछु जो कहिए कहते ही लजइए।।

प्रीति की रीति नहीं कछु राखत जाति न पांति नहीं कुल गारौ।
प्रेम कै नेम कहूं नहिं दीसत लाज न कानि लग्यौ सब खारौ।।
लीन भयौ हरि सौं अभि अंतर आठहुं जाम रहै मतवारौ।
सुंदर कोऊ न जानि सकै यह "गोकुल गांव कौं पैंडो ही न्यारौ"।।

द्वंद्व बिना बिचरै बसुधा परि जा घट आतम ज्ञान अपारौ।
काम न क्रोध न लोभ न मोह न राग न दोष न म्हारौ न थारौ।।
योग न भोग न त्याग न संग्रह देह दशा न ढक्यौ न उघारौ।
सुंदर कोऊ न जानि सकै यह "गोकुल गांव को पैंडो ही न्यारौ"।।

सुंदर सदगुरु यौं कहया सकल-सिरोमनि नाम।
ताकौं निसदिन सुमरिए, सुखसागर सुखधाम।।
राम नाम बिन लैन कौं और बस्तु कहि कौन।
सुंदर जप तप दान व्रत, लागे खारे लौन।।

राम-नाम-पीयूष तजि, बिष पीवै मतिहीन।
सुंदर डोलै भटकते, जन जन आगे दीन।।
सुंदर सुरति समेटि कैं, सुमिरन सौ लैलीन।
मन बच क्रम करि होत है, हरि ताके आधीन।।
सुमिरन ही मैं शील है, सुमिरन मैं संतोष।
सुमिरन ही तें पाइए सुंदर जीवन-मोष।।

जीवन की कुटिया में हूं मैं बुझा हुआ सा दीपक।
आशा के मंदिर में हूं मैं बुझा हुआ सा दीपक।।
बुझा हुआ सा दीपक हूं मैं, बुझा हुआ सा दीपक।।
कजराए दीवट पर धरा हूं यूं कुटिया में हाए।
जैसे कोयल सीस नवा कर अंबुआ पर सो जाए।।
जैसे श्यामा गाते-गाते कुहरे में खो जाए।
जैसे दीपक आग में अपने-आप भस्म हो जाए।।
विरह में जैसे आंख किसी क्वांरी की पथरा जाए।
बुझा हुआ सा दीपक हूं मैं बुझा हुआ सा दीपक।।
आतम, हिरदय जीवन, मृत्यु, सतयुग, कलियुग, माया।
हर रिश्ते पर मैंने अपने नूर का जाल बिछाया।।
चारों ओर चमक कर अपनी किरनों को दौड़ाया।
जितना ढूंढा उतना खोया खोकर खाक न पाया।।
बीत गए जुग लेकिन "सागर" मुझ तक कोई न आया।
बुझा हुआ सा दीपक हूं मैं, बुझा हुआ सा दीपक।।
आदमी एक अंधेरा है। आदमी है अमावस की रात। और दीवाली तुम बाहर कितनी
ही मनाओ, भीतर का अंधेरा बाहर के दीयों से कटता नहीं, कटेगा नहीं। धोखे तुम

अपने को कितने ही दो, पछताओगे अंततः। देखते हो, दीवाली हम मनाते हैं अमावस की रात! वह हमारे धोखे की कथा है। रात है अमावस की, दीयों की पंक्तियां जला लेते हैं। पर दीये तो होंगे बाहर। दीये तो भीतर नहीं जा सकते। बाहर की कोई प्रकाश की किरण भीतर प्रवेश नहीं कर सकती। भीतर की अमावस तो भीतर अमावस ही रहती है। बाहर की पूर्णिमा कितनी ही बनाओ, तुम तो भीतर जानते ही रहोगे कि बुझे हुए दीपक हो। तुम तो भीतर रोते ही रहोगे। तुम्हारी सब मुस्कुराहटें भी तुम्हारे आंसुओं को छुपाने में असमर्थ हैं। और छुपा भी लें तो सार क्या? मिटाने में निश्चित असमर्थ हैं।
धोखे छोड़ो! इस सीधे सत्य को स्वीकार करो कि तुम बुझे हुए दीपक हो। होने की जरूरत नहीं है। होना तुम्हारी नियति भी नहीं है। ऐसा होना ही चाहिए, ऐसा कोई भाग्य का विधान नहीं है। अपने ही कारण तुम बुझे हुए हो। अपने ही कारण चांद नहीं उगा। अपने ही कारण भीतर प्रकाश नहीं जगा। कहां भूल हो गई है? कहां चूक हो गई है?
हमारी सारी जीवन-ऊर्जा बाहर की तरफ यात्रा कर रही है। इस बहिर्यात्रा में ही हम भीतर अंधेरे में पड़े हैं। यह ऊर्जा भीतर की तरफ लौटे तो यही ऊर्जा प्रकाश बनेगी। यह ऊर्जा ही प्रकाश है।
तुम्हारा सारा प्रकाश बाहर पड़ रहा है--वृक्षों पर, पर्वतों पर, पहाड़ों पर, लोगों पर। लेकिन तुम एक अपने पर अपनी रोशनी नहीं डालते। सबको देख लेते हो अपने प्रति अंधे रह जाते हो। और सबको देखने से क्या होगा? जिसने अपने को न देखा, उसने कुछ भी न देखा।
आज के सूत्र तुम्हारे भीतर का दीया कैसे जले, सच्ची दीवाली कैसे पैदा हो, कैसे तुम भीतर चांद बनो, कैसे तुम्हारे भीतर चांदनी का जन्म हो--उसके सूत्र हैं। बड़े मधु-भरे! सुंदर ने बहुत प्यारे वचन कहे हैं, पर आज के सूत्रों का कोई मुकाबला नहीं है। बहुत रस-भरे हैं, पीओगे तो जी उठोगे। ध्यान धरोगे इन पर, संभल जाओगे। डुबकी मारोगे इनमें, तो तुम जैसे हो वैसे मिट जाओगे; और तुम्हें जैसा होना चाहिए वैसे प्रकट हो जाओगे।
है दिल मैं दिलदार... ।
जिसको तुम खोज रहे हो, तुम्हारे भीतर बैठा है। तुम्हारी खोज के कारण
ही तुम उसे नहीं पा रहे हो। तुम दौड़े चले जाते हो। सारी दिशाओं में खोजते हो, थकते हो, गिरते हो। हर बार जीवन कब्र में समाप्त हो जाता है। जीवन से मिलन नहीं हो पाता। और जिसे तुम खोजने चले हो, जिस मालिक को तुम खोजने चले हो, उस मालिक ने तुम्हारे घर में बसेरा किया हुआ है। तुम जिसे खोजने चले हो, वह अतिथि नहीं है, आतिथेय है। खोजनेवाले में ही छिपा है। वह जो गंतव्य है, कहीं दूर नहीं, कहीं भिन्न नहीं, गंता की आंतरिक अवस्था है।
है दिल मैं दिलदार सही अंखियां उलटि करि ताहि चितइए।
लेकिन अगर उसे देखना हो, अगर उसके प्रति चैतन्य से भरना हो तो आंखें उलटाना सीखना पड़े। आंख उलटाना ही ध्यान है। ध्यान साधारणतया दृश्य से जुड़ा है। ऐसा मत सोचना कि तुम्हारे पास ध्यान नहीं है। तुम्हारे पास ध्यान है--उतना ही जितना बुद्धों के पास। रत्ती भर कम नहीं। परमात्मा किसी को कम और ज्यादा देता नहीं। उसके बादल सब पर बराबर बरसते हैं। उसका सूरज सबके लिए उगता है। उसकी आंखों में न कोई छोटा है न कोई बड़ा है। ऐसा मत सोचना कि कृष्ण को कुछ ज्यादा दिया था, कि बुद्ध को कुछ ज्यादा दिया था, कि सुंदरदास को जरूर कुछ ज्यादा दे दिया होगा--कि ये रोशन हुए, कि ये जगमगाए। न खुद जगमगाए, बल्कि इनकी जगमगाहट से और भी लोग जगमगाए। दीयों से दीये जलते चले गए। ज्योति से ज्योति जले! जरूर इन्हें कुछ ज्यादा दे दिया होगा छिपा कर; हमें दिया नहीं, हम क्या करें? नहीं; ऐसा मत सोचना।
परमात्मा की तरफ से प्रत्येक को बराबर मिला है। रत्ती भर भेद नहीं। फिर हम अंधेरे में क्यों हैं? फिर कोई बुद्ध रोशन हो जाता है और हम बुद्धू के बुद्धू क्यों रह जाते हैं। हमें जो मिला है, हमने उसे गलत से जोड़ा है।
जैसे कोई सरिता मरुस्थल में खो जाए, जल तो लाए बहुत हिमालय से और मरुस्थल में खो जाए--ऐसी हमारी जीवन-ऊर्जा मरुस्थल में खोई जा रही है। बाहर विस्तार है मरुस्थल का।

ध्यान तुम्हारे पास उतना ही है जितना मेरे पास। लेकिन तुमने ध्यान वस्तुओं पर लगाया है। तुमने ध्यान किसी विषय पर लगाया है। तुम्हारा ध्यान हमेशा किसी चीज पर अटका है। चीजों को गिर जाने दो--चीजों को हट जाने दो। विषय वस्तु से मुत्त हो जाओ, मात्र ध्यान को रह जाने दो, निरालंब! और आंख भीतर मुड़ जाती है।
निरालंब ध्यान का नाम समाधि। आलंबन से भरे ध्यान का नाम संसार। जब तक आलंबन है तब तक तुम बाहर जाओगे, क्योंकि आलंबन बाहर है। जब आलंबन नहीं तब तुम भीतर आओगे। कोई उपाय ही न बचा तो तुम्हें भीतर आना ही होगा। ध्यान को कहीं ठहरना ही होगा। बाहर न ठहराओगे तो अपने-आप सहज सरलता से ध्यान लौट आता है।
पुराने दिनों में जब समुद्र की लोग यात्रा करते थे और यंत्र नहीं थे जानने के, पहचानने के लिए नक्शे नहीं थे, कि हम भूमि के करीब पहुंच गए या नहीं। तो वे एक प्रयोग करते थे। हर जहाज पर कबूतर पाल कर रखते थे। कबूतरों को छोड़ देते थे। अगर कबूतर न लौटते तो इसका मतलब, जमीन करीब है। उन्होंने कहीं वृक्ष पा लिए होंगे, भूमि पा ली होगी, कोई आलंबन मिल गया होगा, अब लौटने की कोई जरूरत नहीं है। अगर कबूतर लौट आते तो उसका अर्थ है कि जमीन करीब नहीं है, .जमीन अभी दूर है। कबूतर को कहीं बैठना तो होगा, कहीं बसना तो होगा। अगर बाहर कोई सहारा मिल जाएगा तो वह फिकर छोड़ देगा जहाज की। ऐसे थक गया होगा जहाज पर बैठ-बैठे। पानी और पानी और पानी... ! मिल गई होगी हरियाली, अटक गया होगा। लेकिन अगर कोई भूमि न मिले तो क्या करेगा? लौटना ही होगा, लौट आएगा वापिस।
ऐसा ही हमारा चित्त है। जब तक हम उसे बाहर भूमि दिए जाते हैं, तब तक भीतर नहीं लौटता। किसी का धन में अटका है, किसी का प्रतिष्ठा में अटका है, किसी का वस्तुओं में अटका है, किसी का संबंधों में अटका है--लेकिन मन जब तक बाहर अटका है तब तक भीतर नहीं लौटेगा। इसलिए सारे ज्ञानी कहते हैं: बाहर से तादात्म्य छोड़ो। मन को बाहर मत अटकाओ। बाहर से सारे सेतु काट दो। और तब अचानक एक प्रकांड ऊर्जा घर की तरफ वापिस लौटती है; जैसे गंगा वापिस लौट पड़े गंगोत्री में, ऐसी आंदोलनकारी घटना घटती है। तुम्हारी ही ऊर्जा जब तुम्हारे ऊपर वापिस लौटती है, रोशन हो जाते हो तुम। इसी से दूसरी चीजें रोशन हो रही थीं।
तुमने एक फूल देखा, कितना सुंदर! तुम सोचते हो सौंदर्य फूल में है? नहीं, तुम्हारी आंख में है। तुमने अपनी आंख से जो रोशनी डाली, उसमें है। तुमने सुबह उगते देखा सूरज को, जागते देखा, बड़ी सुंदर सुबह, बड़ा प्यारा प्रभात, पक्षियों की चहचहाहट... ! सौंदर्य सूरज में है? सौंदर्य पक्षियों की चहचहाहट में है? नहीं; तुम जो ऊर्जा दे रहे हो, उसमें है।
कभी ऐसा होता है कि चांद तो निकला होता है आकाश में बड़ा प्यारा, लेकिन तुम्हें सुंदर नहीं मालूम पड़ता, तुम आज ऊर्जा नहीं दे पाते हो। तुम्हारी पत्नी चल बसी। तुम्हारा बेटा बीमार है। तुम्हारा मन कहीं और उलझा है। आज चांद पर तुम अपने मन को नहीं लगा पाते। आज चांद पर तुम अपने मन को नहीं बिछा पाते। आज चांद के आसपास अपने नूर का जाल नहीं बुन पाते। चांद उगा रहता है। चांद चलता रहता है आकाश में, लेकिन आज सुंदर नहीं मालूम होता! अगर तुम उदास हो तो चांद भी उदास मालूम होता है, यह अनुभव किया है न? अगर तुम उदास हो तो पक्षियों के गीत भी उदास मालूम पड़ते हैं, जैसे मातम गाते हों, जैसे मर्सिया गाते हों। अगर तुम प्रफुल्लित हो, सारा जगत प्रफुल्लित हो उठता है। अगर तुम आनंदमग्न हो तो सारा जगत नाचता हुआ मालूम पड़ता है। पत्थर-पहाड़ भी बोलते मालूम पड़ते हैं, जब तुम्हारे भीतर गूंज होती है रस की।
तुम जो बिछाते हो वही पाते हो। तुम जो डालते हो, वही मिलता है। जगत तो दर्पण है। जब तुम सुंदर होते हो, जगत सुंदर मालूम होता है। जब तुम कुरूप होते हो, जगत कुरूप मालूम होता है। इसलिए ठीक कहा है ज्ञानियों ने, कि जो जैसा होता है उसे वैसे ही दूसरे लोग दिखाई पड़ते हैं। इसमें सत्य है। चोर को सब चोर दिखाई पड़ते हैं। साधु को सब साधु दिखाई पड़ते हैं। हमारी दृष्टि

सृष्टि करती है। हमारी दृष्टि बड़ी सृजनात्मक है। हम जो डालते हैं वही लौट आता है।
इसलिए फूल भी सभी को एक जैसे सुंदर थोड़े ही दिखाई पड़ते हैं--जो जितना डालता है... । कोई कवि बहुत उंडेल देता है। कोई चित्रकार अपनी पूरी आत्मा रख देता है, तो फूल में आत्मा आ जाती है। पत्थर भी खिल जाते हैं। तुम्हारे ऊपर निर्भर है।
तुम इस बाहर के जगत को जितना सुंदर पा रहे हो, यह सब तुम्हारा ही सृजन है। जवान आदमी शरीर के सौंदर्य को देख पाता है, बूढ़ा नहीं देख पाता है। जैसे-जैसे बुढ़ापा आने लगता है वैसे-वैसे शरीर का सौंदर्य दिखाई पड़ना बंद होने लगता है। जब भीतर ही मौत की आवाज सुनायी पड़ने लगे तो बाहर भी मौत के कदमों की प्रतिध्वनि होने लगती है। युवा मन अभी भरा होता है--बड़ी वासनाओं से, बड़ी कामनाओं से, बड़े सपने उसमें बसे होते हैं। उन्हीं वासनाओं को, उन्हीं सपनों को, अपने चारों तरफ फैलाता है। पुरुष स्त्रियों में उलझ जाते हैं, स्त्रियां पुरुषों में उलझ जाती हैं। लेकिन एक घड़ी आती है जब तुम्हारे भीतर की जीवन-ऊर्जा सिकुड़ने लगती है; जब तुम्हारे पत्ते झड़ने लगते हैं; जब तुम्हारे चेहरे पर झुर्रियां पड़ने लगती हैं; जब तुम्हारे पैर कंपने लगते हैं; जब मौत दस्तक देने लगती है--तब तुम्हें चारों तरफ जगत में मौत की ही दस्तक सुनायी पड़ती है।
इसे तुम अगर समझ लो तो तुम्हें ध्यान की एक महत्त्वपूर्ण बात समझ में
आ जाए। हम अपने ध्यान से ही अपने चारों तरफ के जगत को निर्मित करते हैं। हमारी आंख सिर्फ देखती ही नहीं, बनाती है, निर्माण करती है। आंख-आंख में भेद है। इसलिए एक ही चीज में किसी को कुछ दिखायी पड़ता है, किसी को कुछ और दिखायी पड़ता है। यही आंख जब बाहर जाती ही नहीं, जब बाहर से सारा रस-संबंध छोड़ देती है तो अंतर्मुखी होती है। जब तुम्हारे भीतर के जगत का जन्म होता है। तब खिलता है कमल आत्मा का।
है दिल मैं दिलदार सही अंखियां उलटि कर ताहि चितइए।
देखना हो इस मालिक को तो कहीं और जाने की जरूरत नहीं है--न काशी न काबा,
न गिरनार न बोधगया। कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं है। मालिक भीतर बैठा है। बुद्ध को बोधगया में थोड़े ही मिला था; संयोग की बात थी कि बोधगया में बैठे थे। मिला तो भीतर था। अब कैसा आदमी पागल है! बुद्ध को भीतर मिला था, बोधगया तो संयोगवशात है। कहीं तो रहते; बोधगया में न होते तो कहीं और होते, कहीं तो होना ही होता! लेकिन आदमी अजीब पागल है! सारी दुनिया से लोग बोधगया जाते हैं। बुद्ध को मिला भीतर, लोग जा रहे हैं बोधगया। यहीं चूक हो जाती है। तुम भी भीतर चलो। वहीं बोधगया है। वहीं काबा है। वहीं गिरनार है। वहीं काशी है।
है दिल मैं दिलदार सही अंखियां उलटि कर ताहि चितइए।
और जैसे ही तुम्हारी आंख बदली, तुम्हारी आंख भीतर देखने लगी, वैसे ही जीवन के सारे मूल्य रूपांतरित हो जाते हैं। कल तक जो मूल्यवान मालूम पड़ता था, आज मूल्यहीन मालूम होने लगता है। कल तक जिस पर कोई ध्यान ही न दिया था, आज अचानक बहुत बहुमूल्य हो जाता है। कल तक सोचते थे धन सब कुछ है; अब लगता है प्रेम सब कुछ है। और ख्याल रखना, धन और प्रेम का जोड़ नहीं बैठता। इसलिए धनी आदमी अक्सर प्रेम-शून्य हो जाता है। हो जाता है, धन इकट्ठा करने में ही हो जाता है। धन इकट्ठा करने की कीमिया ही यही है कि उसे प्रेम-शून्य होना ही पड़ेगा। धन इकट्ठा करना अति कठोरता से ही संभव है। उस कठोरता में ही चूक जाता है।
प्रेमी बांटता है। बांटने से कहीं धन इकट्ठा हुआ है! धन तो इकट्ठा करने से इकट्ठा होता है। धन का गणित और प्रेम का गणित उलटा है। उनके अर्थशास्त्र अलग हैं। धन इकट्ठा करने से इकट्ठा होता है, बांटने से कम हो जाता है। प्रेम बांटने से बढ़ता है, इकट्ठा करने से कम हो जाता है। उनका मेल कैसे होगा? वे यात्रापथ अलग हैं।
ऐश से क्यों खुश हुए, क्यों गम से घबराया किए
जिंदगी क्या जाने क्या थी और क्या समझा किए

जब आंख उलटेगी, जब आंख पलटेगी तो तुम बड़े चौंकोगे... । जिंदगी क्या जाने क्या थी और क्या समझा किए! कुछ का कुछ करते रहे। अपने हाथ से जहर के बीज बोते रहे। अपने हाथ से दुख की फसल काटते रहे। रोते भी रहे, चिल्लाते भी रहे। सारी दुनिया को दोष भी देते रहे और खुद जुम्मेवार थे। खुद ही बीज बोए, खुद ही फसलें काटीं, खुद ही कांटों से छिदे, खुद ही जहर में डूबे। और चिल्लाते रहे, रोते रहे, जैसे सारी दुनिया सता रही हो।
प्रत्येक व्यक्ति अपना नरक स्वयं बनाता है--और स्वर्ग भी! तुम जहां हो अपने कारण हो। तुम जैसे हो अपने कारण हो। भूल कर भी दायित्व किसी और पर मत देना। जिस दिन तुमने उत्तरदायित्व किसी और को दिया, उसी दिन तुम धार्मिक होना बंद हो जाते हो! धार्मिक होने की शुरुआत ही इस सत्य से होती है, कि मैं अपने जीवन का सारा उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता हूं। दुःखी हूं तो मैं जिम्मेवार हूं।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूं कि तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी अकसर धार्मिक नहीं होते। साधु-संन्यासी होते होंगे ऊपर-ऊपर, अकसर धार्मिक नहीं होते। अगर धार्मिक हों तो पति को, पत्नी को छोड़ कर भागने की कोई जरूरत नहीं है। जब पति पत्नी को छोड़कर भागता है तो वह यह कहता है कि इसके कारण मैं बंधन में पड़ा हूं। वह यह नहीं कहता कि मेरी वासना के कारण बंधन में पड़ा हूं। वह कहता है, इस स्त्री के कारण मैं बंधन में पड़ा हूं। यही अधार्मिक आदमी का लक्षण है। वह सदा कहता है, कोई दूसरा जुम्मेवार है। और जब दूसरा जुम्मेवार है तो तुम कर क्या सकोगे? तुम गुलाम रहोगे। तुम कभी मुक्त नहीं हो सकते। क्योंकि दूसरे तो बहुत हैं। तुमने तो अपना मोक्ष असंभव बना दिया। जब ये सब बदलेंगे; जब दुनिया में कोई भी तुम्हें दुख न देगा, जब दुनिया में कोई तुम्हें रुष्ट न करेगा, जब दुनिया में कोई तुम्हें कामवासना से न भरेगा, जब दुनिया में कोई तुम्हें आकर्षित न करेगा, जब यह सारी दुनिया तय ही कर लेगी कि तुम्हें मुक्त करना है--तभी तुम हो सकोगे। मोक्ष असंभव है फिर। तुमने मोक्ष की संभावना की जड़ ही काट दी। यह सारी दुनिया बदलेगी तो शायद तुम्हारा मोक्ष होगा।
यह दुनिया न तो बदलती है, न बदल सकती है, न इस दुनिया को कोई प्रयोजन है तुम्हारे मोक्ष से। तुम्हारा मोक्ष तुम जानो। स्त्रियां तो सज कर निकलती रहेंगी। सिर्फ इस कारण कि एक सज्जन को मोक्ष की सनक सवार हुई है, स्त्रियां सारी सजना बंद नहीं कर देंगी। बाजार तो भरे ही रहेंगे। दुकानों पर सजावटें होती ही रहेंगी। नई-नई चीजें निर्मित होती रहेंगी। आकर्षण के नये-नये द्वार खुलते रहेंगे। सिर्फ इस कारण की एक सज्जन मोक्ष जाने का इरादा कर रहे हैं, सारी दुनिया की व्यवस्था नहीं रुक सकती। कोयल गीत गाएगी। पपीहे टेर लगाएंगे। यह सब चलता रहेगा। यह सब ऐसा ही चलता रहेगा। तुमसे किसको क्या लेना-देना है!
लेकिन तुम कहते होः "स्त्री के कारण मैं बंधन में पड़ा हूं।"
तो तुम कहां भाग कर जाओगे? तुम जहां भी भागकर जाओगे, स्त्री सब जगह मौजूद है। स्त्री तत्त्व सब जगह मौजूद है। तुम कहां भाग कर जाओगे? इस पृथ्वी पर कहीं भी तुम रहोगे तुम तो तुम ही रहोगे? तुम्हारा मन तो उन्हीं वासनाओं के जालों से भरा होगा। धन छोड़ दोगे, एक लंगोटी पकड़ लोगे; लेकिन लंगोटी ही उतने जोर से पकड़ लोगे जितने जोर से लोग साम्राज्य पकड़ते हैं। तुमने जनक की कहानी सुनी न!
एक संन्यासी ने अपने एक शिष्य को जनक के पास भेजा। शिष्य बहुत दिन से जनक की खबरें सुनता था। अपने गुरु के पास था। कुछ उसे हो भी नहीं रहा था। आखिर गुरु ने कहा कि तू ऐसा कर, तू जनक के पास जा, शायद तुझे वहां हो जाए। खबरें उसने बहुत सुनी थीं, सोचा चलो देख ही आएंगे। होने का तो भरोसा नहीं था। क्योंकि ऐसे सदगुरु को पाकर नहीं हुआ, सर्वत्यागी को पाकर नहीं हुआ, तो जनक तो भोगी हैं, उसको पाकर क्या होगा? फिर भी, गुरु ने भी कहा, मन में भी बहुत दिन से खबरें सुनी थीं, जाने का भाव भी था, राजधानी भी देख आएंगे, बहुत दिन से राजधानी भी नहीं गए थे, राजमहल का भी रंग-रूप देख आएंगे--तो चला गया। जब पहुंचा, सांझ होने को थी। जनक का दरबार सजा था, सुंदर नर्तकियां नाचती

थींं। शराब ढाली जा रही थी। वह युवा संन्यासी तो बहुत हैरान हो गया। वह तो उसी क्षण लौट पड़ना चाहा--उलटे पांव!
जनक ने कहा कि अब आ ही गए हो तो रात तो कम से कम विश्राम करो, सुबह चले जाना। उसने कहा कि नहीं, यहां एक क्षण भी रुकना पाप है। मैं तो ब्रहमज्ञान के लिए आया था और यहां जो देख रहा हूं... । मैं तो वैसे ही झंझटों में पड़ा हूं, और यह सब देख कर और झंझटों में न पड़ जाऊं। यह शराब का चलना, यह नर्तकियों का नृत्य... यह सब क्या हो रहा है? और आप स्वर्ण-सिंहासन पर बैठे हैं? आपको ज्ञान हो सकता है?
सम्राट ने कहाः रात रुको, भोजन करो, विश्राम करो, सुबह बात करेंगे।
रात रुका संन्यासी, भोजन भी किया, सोया भी। सुबह जनक उसे लेकर, महल के पीछे बहती नदी में, स्नान करने को ले गए। जब दोनों स्नान कर रहे हैं, तभी महल से भयंकर लपटें उठने लगीं। महल में आग लग गयी। लोग भागे हुए आए। सारा महल धूं-धूं कर जल रहा है। संन्यासी एकदम भागा। जनक ने पूछा, कहां जाते हो? उसने कहा कि मेरी लंगोटी महल में ही रखी है। और आप यहां क्या खड़े कर रहे हैं? महल जल रहा है।
जनक ने कहा: उसमें मैं क्या कर सकता हूं? मेरा क्या लेना-देना है? महल
जल रहा है, मैं देख रहा हूं। लेकिन तेरा तेरी लंगोटी से बहुत मोह है, बहुत तादात्म्य है! लंगोटी क्या जल रही है, जैसे तू जल रहा है! महल जल रहा है, सो क्या हुआ? आज नहीं कल हम भी जल जाएंगे! यह महल सदा तो रहने वाली तो कोई बात नहीं, कभी न कभी गिरेगा, कभी न कभी जलेगा। सो आज जल रहा है। मैं देख रहा हूं। मैं साक्षी हूं। मैं गवाह हूं। लेकिन मेरा इससे कुछ तादात्म्य नहीं है।
संन्यासी को कहाः यही मेरा संदेश है। इतना ही मेरा सूत्र है कि साक्षी रहो।
तो यह भी हो सकता है कि महल में रहकर कोई साक्षी हो और झोंपड़े में रहकर कोई साक्षी न रहे। इसलिए झोंपड़ों और महलों से भेद नहीं पड़ता। चित्त का रूपांतरण... ।
जो आदमी कहता है कि घर को छोड़ूंगा, दुकान को छोड़ूंगा, जंगल जाऊंगा, तभी परमात्मा को पाऊंगा, वह समझा ही नहीं। धर्म की बात अभी उससे बहुत दूर है। वह यह कह रहा है कि दुकान की वजह से मैं उलझा हूं, मकान की वजह से मैं उलझा हूं, इनसे छूट जाऊंगा तो छूट जाऊंगा। यह बात गलत है। दुकान तुम्हारे मन का विस्तार है; मन तुम्हारी दुकान का विस्तार नहीं। यही मन लेकर जंगल में बैठ जाओगे, वहां भी किसी तरह का विस्तार कर लेंगे। यही मन बीज लिए हुए है विस्तार के। यह जहां रहेगा वहीं विस्तार कर लेगा। इससे कुछ भेद नहीं पड़ेगा। रंग-रूप बदल जाएंगे, ऊपर-ऊपर की बदलाहट हो जाएगी, वस्त्र और हो जाएंगे, लेकिन भीतर-भीतर सब वही रहेगा।
मैं किस व्यक्ति को धार्मिक कहता हूं? मैं उस व्यक्ति को धार्मिक कहता हूं जिसने इस कठोर बात को स्वीकार कर लिया कि मेरे अतिरिक्त मेरे जीवन के लिए और कोई जिम्मेवार नहीं है। मेरा उत्तरदायित्व आत्यंतिक है। इसलिए दुखी हूं तो मैंने बोया है दुख, फसल काट रहा हूं। सुखी हूं तो मैंने बोया है सुख, फसल काट रहा हूं।
भागने का प्रश्न नहीं है, जागने का प्रश्न है।
अब कहां मैं ढूंढने जाऊं सुकूं को ऐ खुदा?
इन जमीनों में नहीं, इन आस्मानों में नहीं।
आदमी ने सब तरफ खोज ली है शांति, कहां मिलती है? न जमीन पर मिलती है न आसमान पर मिलती है। अब कहां जाएं? अब कहां खोजें? मगर एक जगह आदमी नहीं खोजताः भीतर नहीं खोजता। सारी जमीन छान लेता है, सारा आकाश भी छान डालेगा। अब कहां मैं ढूंढने जाऊं सुकूं ऐ खुदा?
इन.जमीनों में नहीं, इन आस्मानों में नहीं।
सुंदरदास को सुनो--
है दिल मैं दिलदार सही अंखियां उलटि कर ताहि चितइए
आब मैं खाक मैं बाद मैं आतस जान मैं सुंदर जानि जनइए।।

और ऐसा भी नहीं है कि सिर्फ भीतर ही है। मगर भीतर उसका साक्षात्कार पहले हो जाए तो फिर बाहर सब जगह भी मिलता है। बाहर भी है, मगर बाहर तभी है जब भीतर जान लिया गया हो। भीतर पहचान न हो तो बाहर पहचान नहीं होती। तुम लाख कहो कि वृक्ष में भी परमात्मा है, जब तक तुम्हें अपने भीतर अनुभव नहीं हुआ तुम्हें वृक्ष में परमात्मा का अनुभव नहीं हो सकता। कहना हो तो कहो। अच्छा लगता हो तो दोहराते रहो। मगर जिसे स्वयं में अनुभव नहीं हुआ उसे कहीं और अनुभव नहीं हो सकता। अनुभव की पहली चिंगारी स्वयं के भीतर उठनी चाहिए, क्योंकि वहीं से हम निकटतम हैं परमात्मा के। अगर निकटतम में नहीं मिलता तो दूर में कहां मिलेगा? एक बार भीतर दिख जाए तो फिर सब तरफ दिखने लगता है। जिसने अपने में पाया उसने फिर सब में पाया। फिर ऐसा ही नहीं कि फिर मनुष्यों में ही दिखता है, पशु-पक्षियों में भी दिखने लगता है। ऐसा ही नहीं कि पशु-पक्षियों में दिखता है, वृक्षों में भी दिखने लगता है, पत्थर-पहाड़ों में भी दिखने लगता है। जैसे-जैसे भीतर पकड़ गहरी होती है, भीतर पहुंच गहरी होती है, वैसे-वैसे सारे अस्तित्व में भी तुम्हारी आंख गहरी होने लगती है। एक ऐसी घड़ी आती है कि बाहर और भीतर का भेद मिट जाता है। वही होता है। न कुछ बाहर है, न कुछ भीतर है।
अभी तो भीतर चलना पड़ेगा। पहली यात्रा भीतर की। फिर सब मंदिर सच हो जाते हैं। फिर सब मस्जिदें सच हो जाती हैं। फिर सब गुरुद्वारे सच हो जाते हैं। मगर पहले भीतर का द्वार खुले। नहीं तो पटको सिर मंदिरों में, मस्जिदों में, गुरुद्वारों में, शिवालयों में, सिर भी घिसेगा, पत्थर भी घिसेंगे--और कुछ परिणाम न होगा। एक बार भीतर का द्वार खोलो, वहां मंदिर खुल जाए तो मंदिर की सुवास सारे जगत में व्याप्त हो जाती है।
ये तेरा तसव्वुर है या तेरी तमन्नाएं।
दिल में कोई रह-रह के दीपक से जलाए है।।
जिस सिम्त न दुनिया है, ऐ दोस्त न उकबा है।
उस सिम्त मुझे कोई खींचे लिए जाए है।।
भीतर जाना होगा। वहां न यह दुनिया है न वह दुनिया है। वहां कुछ भी नहीं है। वहां शून्य है। घबड़ाहट भी लगेगी, भय भी होगा, क्योंकि बिल्कुल अकेले रह जाओगे और बिल्कुल एकांत होगा। ऐसा एकांत घने से घने जंगल में नहीं होता। क्योंकि वृक्ष होते हैं, पशु-पक्षी होते हैं, संग-साथ होता है। लेकिन अपने भीतर जब तुम जाओगे तब तुम पहली दफा वीरान में गए। वहां कोई भी नहीं! और मजे की बात तो यह है, जैसे-जैसे उतरोगे सीढ़ियां वैसे-वैसे पाओगे तुम भी कहां हो--एक शून्य है, एक विराट शून्य है!
ये तेरा तसव्वुर है, या तेरी तमन्नाएं?
कौन मुझे खींचे लिए जा रहा है! यह तेरी कल्पना है या तेरी अभीप्सा?
ये तेरा तसव्वुर है या तेरी तमन्नाएं।
दिल में कोई रह-रह के दीपक से जलाए है।।
जिस सिम्त न दुनिया है, ऐ दोस्त न उकबा है।
उस सिम्त मुझे कोई खींचे लिए जाए है।।
वहां न यह लोक न वह लोक, न जमीन न आसमान। वहां तो विराट शून्य है। उस तरफ जब तुम खिंचने लगोगे तब समझना जीवन में धर्म का संस्पर्श हुआ; उस पारस पत्थर का स्पर्श हुआ, जिसके स्पर्श से लोहा भी सोना हो जाता है।
आब मैं खाक मैं बाद मैं आतस जान मैं सुंदर जानि जनइए।
सुंदरदास कहते हैंः मिट्टी में भी वही है, हवा में भी वही है, पानी में
भी वही है, आग में भी वही है। एक बार जानो अपने भीतर, फिर तुम जानोगे सब के भीतर वही है। और ऐसा नहीं है कि तुम ही जानोगे; जिस दिन तुम जानोगे उस दिन तुम दूसरों को भी जनाने लगोगे। तुम्हारी मौजूदगी जनाने लगेगी। तुम एक प्रतीक हो जाओगे। तुम एक इशारे बन जाओगे। तुम एक आकर्षण बन जाओगे लोगों के लिए। तुम्हें देखकर लोग अपने भीतर मुड़ने लगेंगे। तुम्हारे पास बैठकर शांत होने लगेंगे। तुम्हारे पास बैठ कर उनके भीतर भी दीए जगमगाने लगेंगे।
दिल में कोई रह-रह के दीपक से जलाए है।
नूर मैं नूर है, तेज मैं तेज है, ज्योति मैं ज्योति मिलें, मिलि जइए।
क्या कहिए कहते न बनै, कछु जो कहिए कहते ही लजइए।।

बड़ा मधुसिक्त वचन है! नूर में नूर है। परमात्मा प्रकाश में प्रकाश है, तेज में तेज है। ज्योति में ज्योति मिलें, मिलि जइए। और जब तुम्हारे भीतर, तुम्हारे ध्यान की ज्योति उसकी विराट ज्योति में मिलने लगे तो डरना मत, भयभीत मत होना, खोने में संकोच मत कर जाना। जैसे बूंद सागर में गिरती हो तो घबड़ाती तो होगी, भयभीत तो हो जाती होगी। प्राण बड़े संकट में तो पड़ते होंगे, चिंता तो उठती होगी--कि मैं खोयी, कि मैं खोयी, कि शायद अब मैं कभी जैसी थी वैसी न हो सकूंगी, यह मेरा रूप गया यह मेरा रंग गया, यह मेरी परिधि गयी, यह मेरी परिभाषा गयी, यह मेरा नाम गया, यह मेरा धाम गया, यह मैं गयी।
ठीक वैसी ही दशा जब भीतर तुम पहुंचोगे, तुम्हारे ध्यान की छोटी-सी ऊर्जा भीतर जाएगी और उस विराट ऊर्जा का साक्षात्कार होगा, तो घबड़ाहट लगेगी। बहुत घबड़ाकर वापिस लौट आते हैं। यहां तो रोज यह होता है। पहले लोग ध्यान की बड़ी आतुरता से प्रतीक्षा करते हैं, बड़ी आकांक्षा से पूछते हैं तांछते हैं, साधना करते हैं, और जब घटने के करीब बात आती है तो एकदम घबड़ा जाते हैं। एकदम घबड़ा जाते हैं! एकदम भाग खड़े होते हैं। रोज उन्हें मैं कंपते देखता हूं, भयभीत देखता हूं, डरते देखता हूं। कहते हैंः अब क्या करें, कहीं विक्षिप्त तो न हो जाएंगे? यह कहीं मृत्यु तो नहीं हो जाएगी? मृत्यु जैसी ही मालूम होती है, विक्षिप्तता जैसी ही मालूम होती है।
यह रास्ता तो दीवानों का है। यह रास्ता तो मर्दों का है। मरने की जिनकी हिम्मत है केवल वे ही परम जीवन को पाने के अधिकारी हो पाते हैं।
तो जब ज्योति विराट ज्योति के करीब पहुंचे और मिलने को आतुर हो जाएं
तो भाग मत खड़े होना।
नूर मैं नूर है तेज मैं तेज है ज्योति मैं ज्योति मिलें, मिलि जइए।
तो मिल ही जाना--एक झपट्टे में, एक छलांग में! संकोच न करना रत्ती-भर। रवींद्रनाथ की प्रसिद्ध कविता है कि मैं परमात्मा को खोजता था जन्मों-जन्मों से, अनंत-अनंत कालों से। रोता फिरता था, गिड़गिड़ाता था कि प्रभु, तू कहां है? मेरी आंखें आंसुओं से भरी होती थीं और मेरा हृदय प्रार्थनाओं से। और मेरी आंसुओं से भरी आंखों में कभी-कभी किसी दूर तारे के पास उसकी झलक मिल जाती थी, तो मैं दीवाना उस तारे की तरफ चल पड़ता था। लेकिन जब तक मैं पहुंचता तारे तक, तब तक वह दूर निकल गया होता। मिलन नहीं हो पाता था। फिर एक दिन ऐसा हुआ, वह सौभाग्य की घड़ी आ गयी। मैं उस द्वार पर पहुंच गया, जो उसका द्वार है, उसकी तख्ती भी लगी थी। आनंद की सीमा न रही। धन्यभागी था मैं।
... तो आ गया! तो मिल गयी मंजिल! ... तो चढ़ा सीढ़ियां नाचता हुआ! हाथ में सांकल ली। खटखटाने को था कि तभी मन में एक सवाल उठा कि सोच ले, विचार ले, अगर द्वार खुल गया और परमात्मा मिल गया तो तू मिट जाएगा। तो फिर तू नहीं बचेगा। उसकी विराटता में तेरी क्षुद्रता लीन हो जाएगी। उसके सागर में तू एक बूंद की तरह खो जाएगा। उसके सूरज में तेरी एक किरण, कहां पता होगा, कहां ठिकाना होगा? सोच ले, एक बार सोच ले, इसके पहले कि द्वार खटखटा। और फिर यह भी तो सोच कि परमात्मा मिल जाएगा तो फिर तू क्या करेगा? यही तो तेरा उपक्रम था अब तक का। यही तो तेरा बहाना था जीने का, हीला-हवाला था। यही तो तेरी खोज थी। इसी खोज के लिए तो तू जन्मों-जन्मों तक जिया। अगर परमात्मा मिल गया तो फिर क्या करेगा?
ये दो प्रश्न कठिन थे कि रवींद्रनाथ ने कहा है कि मैंने धीरे से, आहिस्ता से सांकल छोड़ दी कि कहीं बज ही न जाए। और जूते भी अपने हाथ में ले लिए कि कहीं उतरते वक्त सीढ़ियों पर छू छरर मरर... आवाज न हो जाए, कहीं पता न चल जाए कि कोई द्वार पर है, मेरे बिना बजाए ही कहीं द्वार न खोल दिया जाए! और फिर जो मैं भागा हूं तो मैंने पीछे लौट कर नहीं देखा। अब फिर खोजता हूं, फिर पूछता हूं मंदिरों में, मस्जिदों में, गुरुद्वारों में--परमात्मा कहां है? अब फिर खोजता हूं द्वार-द्वार, दरवाजे-दरवाजे, भटकता हूं, चांद-तारों पर। और मजा यह है कि भीतर मुझे मालूम है कि कहां है। बस उस जगह को छोड़ कर सब जगह खोजता हूं।
ख्याल रखना, यह कविता ही नहीं, यह रवींद्रनाथ का आंतरिक अनुभव है। यह ध्यानियों को होता है। ऐसी कविता सिर्फ कविता नहीं हो सकती। ऐसी कविता तो

जो समाधि के द्वार पर खड़ा हुआ हो, बूंद जिसकी सागर के किनारे जाकर खड़ी हो गयी हो, उसके ही भीतर उमग सकती है। यह गहरे अनुभव पर आधारित है।
इसलिए रवींद्रनाथ साधारण कवि नहीं हैं। वे उसी कोटि के कवि हैं जिस कोटि के कवियों को हम ऋषि कहते हैं--उपनिषद के ऋषि! उनकी कविताएं कविताएं नहीं हैं, ऋचाएं हैं।
घबड़ाना मत, सुंदरदास कहते हैं। ज्योति से ज्योति मिले! यही तो अभीप्सा है जन्मों-जन्मों की। तो जब यह घड़ी आए ज्योति में ज्योति मिले, मिलि जइए! ... तो मिल ही जाना।
सब तरफ वही है। तुम में भी वही है, बाहर भी वही है, भीतर भी वही है।
इसलिए डरो मत। कौन मिटता है! कौन बनता है! सब बनाव उसका, मिटाव उसका। सब उसकी लहरें हैं। सब उसकी तरंगें हैं।
रात को तारों से दिन को जर्रा-हाए-खाक से।
कौन है, जिससे नहीं सुनते तेरा अफसाना हम?
उसकी ही कहानी है, उसी की दास्तान चल रही है। पक्षी उसी का गीत गा रहे हैं। वृक्षों की हरियाली में वही हरियाली है। नदियों की तरंगों में वही तरंग है। हवाओं के नृत्य में वही नृत्य है। क्षुद्र से क्षुद्र में भी वही है और विराट से विराट में भी वही है।
कौन है जिससे नहीं सुनते तेरा अफसाना हम?
क्या कहिए कहते न बने।
यह अड़चन तब आती है जब ज्योति से ज्योति मिल जाती है। जब तक ज्योति से ज्योति नहीं मिली, तब तक तो लोग परमात्मा के संबंध में बड़ी आसानी से बातें कर लेते हैं। किसी से भी पूछ लो, पान बेचने वाले पंसारी से पूछ लो--ईश्वर है? उत्तर देगा। कहेगाः है। या कहेगा नहीं है। राह चलते राहगीर से पूछ लो, उत्तर सुनिश्चित आएंगे। शायद ही तुम ऐसा आदमी पा सको, जो कहे मुझे मालूम नहीं। शायद ही। और वही एक ईमानदार है, बाकी सब बेईमान हैं। कोई कह रहा है ईश्वर है और पता.जरा भी नहीं है। और कोई कह रहा है ईश्वर नहीं है और पता जरा भी नहीं है।
इसलिए मैं तुम्हारे नास्तिकों और आस्तिकों में बहुत भेद नहीं करता।
वे एक ही जैसे हैं। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों खुद धोखा खा रहे हैं, दूसरों को धोखा दे रहे हैं। धार्मिक व्यक्ति कोई और ही बात है--न आस्तिक न नास्तिक; कोई और ही आयाम है--अनुभव का आयाम है। विश्वास का नहीं, सिद्धांत का नहीं! प्रतीति का, साक्षात का। साक्षात्कार तो तभी होता है जब ज्योति में ज्योति मिल जाती है।
क्या कहिए कहते न बने।
फिर बड़ी मुश्किल होती है।
क्या कहिए कहते न बने, कछु जो कहिए कहते ही लजइए।
फिर बड़ी मुश्किल हो जाती है। कहते भी नहीं बनता; न कहो, ऐसे भी नहीं बनता। कहना भी पड़ता है। रुका भी नहीं जाता। भीतर कोई प्रगाढ़ पुकार उठती है कि कहो। कहो, क्योंकि बहुतों को जरूरत है। पुकारो, क्योंकि बहुत प्यासे हैं। ढालो, क्योंकि बहुत से लोग तड़फ रहे हैं। जगाओ क्योंकि बहुत-से लोग सोए हैं।
स्वाभाविक रूप से आनंद को बांटने की आकांक्षा उठती है। बड़े प्रबल वेग से। तूफान की भांति! जो सम्हाली नहीं जा सकती। नहीं कहते भी नहीं बनता, और कहते भी नहीं बनता। क्योंकि जो भी कहो वह अनुभव के सामने छोटा पड़ता है। ओछा पड़ता है। जो भी कहो, अनुभव के सामने फीका पड़ता है। जो भी कहो, झूठा मालूम पड़ता है। कहां अनुभव और कहां शब्द, कोई तालमेल नहीं मालूम पड़ता। जैसे शिखरों पर घटी घटना को अंधेरी घाटियों में खींच लाए। जैसे कोई कमल को कीचड़ कहे, ऐसे ही सारे शब्द मालूम होते हैं।
क्या कहिए कहते न बने, कछु जो कहिए कहते ही लजइए।
इसलिए जिन्होंने जाना है वे कह-कह कर लजाते रहे। वे कहते हैं और क्षमा मांगते हैं--कि क्षमा कर देना, क्योंकि जो कहना था वह नहीं कहा जा सका, कुछ और कह गए।

तुमने देखा, नदी के किनारे जाकर कभी? एक सीधे डंडे को पानी में डाल कर देखा? पानी में डालते ही तिरछा मालूम पड़ता है। बाहर निकालो, सीधा का सीधा। पानी में डालो, तिरछा। तिरछा हो नहीं जाता, दिखायी पड़ता है। ठीक ऐसे ही सत्य जैसे ही शब्द की दुनिया में प्रवेश करता है, तिरछा हो जाता है। अनुभव की दुनिया में बिल्कुल सीधा-साफ होता है, शब्द की दुनिया में बहुत तिरछा- आड़ा-टेढ़ा ही जाता है। क्या है, कहना मुश्किल है। फिर जो भी कहो वह सिर्फ एक पहलू होता है।
देख शमशीर है ये साज है ये जाम है ये।
तू जो शमशीर उठा ले तो बड़ा काम है ये।।
बहुत मुश्किल है। यह शमशीर भी है। अगर एक तरफ से देखो तो सत्य तलवार है। ऐसी धार किस तलवार में होती है? सूक्ष्म से सूक्ष्म को काट जाता है। देख शमशीर है ये, साज है ये...
और तलवार की धार ही होती तो कह देते, मगर यह ऐसा है जैसे वीणा पर किसी
ने तार छेड़े हों। यह संगीत नाद है, स्वर है--ऐसा स्वर, जो केवल गहन शांति में ही सुना जा सकता है। यह निस्तब्धता का स्वर है।... जाम है ये। स्वर ही होता तो भी चल जाता कि चलो कह देते, कि अनाहद-नाद है, बात खत्म हो गयी। मगर यह एक मदहोशी भी है--कि जिसने पी, फिर कभी वापिस दुनिया के होश में न आया, फिर वापिस कभी उसे दुनिया न दिखायी पड़ी। जिसने एक बार पी ली कि सदा के लिए बेहोश हो गया। और अगर इतनी ही बात होती तो भी काम चल जाता, तो उमरखय्याम ने कह दी थी बात कि शराब है यह। मगर यह शराब भी बड़ी अजीब है। एक तरफ से तो बेहोशी ले आती है और एक तरफ से बड़ा होश ले आती है। यह एक ऐसी बेहोशी है जिसके केंद्र में होश है। मुश्किल पर मुश्किल है। जो कहो वही थोड़ा मालूम पड़ता है।
देख शमशीर है ये, साज है ये, जाम है ये।।
तू जो शमशीर उठा ले तो बड़ा काम है ये।।
मगर कहीं से तो शुरू करना पड़ेगा। तो कहते हैं, उठा, तलवार ही उठा। पहले अपनी गर्दन को ही गिरा। कबीर ने कहा है--जो घर बारे आपनो चले हमारे संग। चल, घर को जला! किस बात को घर कहते हैं?
सूफी फकीर बायजीद ने कहा है: डर है तो घर है। डर छूटा, घर छूटा! बड़ी गहरी बात कही है। तुम घर बसाते किसलिए हो? अगर गौर से खोजोगे तो डर को पाओगे। डर है तो घर है। डर छूटा तो घर छूटा। डर को जला ही देना होगा।
तू जो शमशीर उठा ले तो बड़ा काम है ये।
मगर फिर बहुत और बातें रह गयी हैं बिना कही--देख शमशीर है ये, साज है ये, जाम है ये। और यह भी सब नहीं है, और हजार बातें हैं। सत्य सब कुछ है, क्योंकि सत्य इस सारे जगत का केंद्र है। यह सारा जगत उसी की अभिव्यक्ति है। प्रकाश भी वही, अंधकार भी वही। पास भी वही, दूर भी वही। पुरुष भी वही स्त्री भी वही। सुख भी वही दुख भी वही। स्वर्ग भी वही, नरक भी वही। कैसे कहो उसे?
क्या कहिए कहते न बने, कछु जो कहिए कहते ही लजइए।
तासौं कहूं सब मैं वह एक तौ सो कहै कैसो है, आंखि दिखइए।।
अगर मैं कहूं कि वह सब में छिपा हुआ एक है, उस एक का ही विस्तार है, वह
एक ही सब के भीतर बैठा है--तो लोग पूछते हैं कि.जरा दिखाइए, कहां है? जब सब के ही भीतर बैठा है तो कहीं से भी दिखा दीजिए।
तासौं कहूं सब मैं वह एक तौ सो कहे कैसो है आंखि दिखइए।
लोग कहते हैंः तो फिर तो आंख से दिखा दो। जब सब में वही एक बैठा है तो ऐसी अड़चन क्या है? दिखा ही दो, दर्शन करवा दो।
और दर्शन उसके करवाए नहीं जा सकते!
जौ कहूं रूप न रेख तिसै कछु तो सब झूठ कैं मानें कहइए।
अगर मैं लोगों को कहूं कि भई कैसे दिखाऊं, उसका न कोई रूप है न कोई रेख है, तो लोग कहते हैं कि यह भी खूब झूठी मान्यता फैला रहे हो! पहले कहते हो सब में वही है, सब कुछ वही; वही है, और सब असत्य है--और जब हम पूछते हैं दिखा दो, तो कहते हो कि न तो उसका रूप है, न रंग है, न रेख है, तो तुमको कैसे दिखाई पड़ा? कहते हो सभी आकारों में वही है और जब हम पूछते हैं दिखा दो आकर, तो

कहने लगते हो निराकार है। तो ये सब बातें तो झूठी मालूम पड़ती हैं। लोग कहते हैं, क्यों झूठी बातें फैलाते हो?
जौ कहूं सुंदर नैननि मांझि... और अगर मैं यह कहूं आंख के बाहर नहीं है, आंख के भीतर है। जौ कहूं सुंदर नैननि मांझि तो नैनहूं बैन गए पुनि हइए। तो जिनकी आंखें चली जाती हैं, उनमें भी तो मौजूद होता है। सूरदास में कुछ कम थोड़े ही था कबीरदास से; उतना ही था। आंख के चले जाने पर भी तो वह पाया जाता है। कान के न होने पर भी तो पाया जाता है। हाथ के टूट जाने पर भी तो पाया जाता है। देह के गिर जाने पर भी तो पाया जाता है। तो कहां उसे दिखाएं? कैसे उसे समझाएं? क्या कहिए कहते न बने कछु जो कहिए कहते ही लजइए।
सुंदरदास कहते हैं, इसलिए बड़ी मुसीबत हो गई है। जब से ज्योति से ज्योति मिली है, तब से कहना कठिन हो गया है। जो कहते हैं वही गलत मालूम होता है। उसी में उलझनें उठ आती हैं। और फिर बड़ी लज्जा होती है कि उसकी इतनी कृपा, उसकी अनुकंपा इतनी विराट और हम उसे कहने में भी असमर्थ! तो बड़ी लज्जा होती है।
प्रीति की रीति नहीं कछु राखत जाति न पांति नहीं कुल गारो।
और उससे जो प्रेम की घटना घटती है उसकी कोई रीति नहीं है। लोग कहते हैं, चलो छोड़ो, नहीं बता सकते परमात्मा को तो कम से कम रीति बता दो, कि हम उसे कैसे जान लें? विधि-विधान, कोई तकनीक, कोई उपाय।
प्रीति की रीति नहीं कछु राखत, जाति न पांति नहीं कुल गारो।
और मुश्किल है। प्रेम के पथिक की तो और भी मुश्किल है। क्योंकि प्रेम
की कोई रीति नहीं होती। प्रेम तो सब रीतियों से मुक्त है। और जहां जितनी रीति होती है उतना ही प्रेम मर जाता है। प्रेम तो रीति-मुक्त है। प्रेम की कोई मर्यादा नहीं है, कोई व्यवस्था नहीं। प्रेम तो परम स्वतंत्रता है। प्रीति की रीति नहीं कछु... । इसीलिए तो तुम्हारी सारी प्रार्थनाएं झूठी हो गयी हैं, क्योंकि तुमने उनको रीति बना लिया है। बैठे परमात्मा के सामने, तुम तोतों की भांति, रटे हुए स्वर दोहराते हो। यह कोई प्रेम हुआ? हृदय के भाव उठने दो। जो आज इस क्षण तुम्हारे हृदय में उमगा है, भाव वही चढ़ाओ। कोई बंधी-बंधायी लीक मत पीटो। यह तो तुमने कल भी कहा था। यह तो तुमने परसों भी कहा था। इस कहने में अब कुछ अर्थ नहीं रहा है। तुमने इसे इतना दोहराया है कि तुम इसे नींद में भी दोहरा सकते हो। इसमें कोई अर्थ नहीं रहा है। यह अर्थहीन हो गया है।
ध्यान रखना, जिस चीज को तुम जितनी बार दोहरा लेते हो, उतना ही अर्थहीन
हो जाता है। इसलिए मैं मंत्रों के बहुत पक्ष में नहीं हूं कि लोग बैठे राम-राम-राम- राम-राम-राम जपते रहते हैं। राम व्यर्थ हो गए। राम में कुछ अर्थ ही नहीं बचता। इतनी बकवास तुमने राम-राम राम-राम की कर दी कि उसमें अर्थ कैसे रह सकता है? एक बार भी भाव से कहा जाए तो पर्याप्त है। बिना भाव के दोहरा रहे हो यंत्रवत, इससे कुछ हल नहीं होगा।
प्रीति की रीति नहीं कछु राखत न जाति न पांति नहीं कुल गारौ।
न तो वहां कोई भेद है कि कौन पहुंचेगा, कि ब्राह्मण पहुंच सकता है कि शूद्र नहीं पहुंच सकता है, कि कुलीन पहुंच सकते हैं, अकुलीन नहीं पहुंच सकते हैं। न इस बात का भेद है कि चरित्रवान पहुंच सकते हैं और चरित्रहीन नहीं पहुंच सकते। न इस बात का भेद है कि पुण्यात्मा पहुंच सकते हैं और पापी नहीं पहुंच सकते। पापी भी पहुंच गए हैं। बाल्या भील पहुंच गया। बड़े- बड़े पुण्यात्माओं को पीछे ढकेल कर पहुंच गया। और मरा-मरा जप कर पहुंच गया। राम-राम भूल ही गया। सीधा-सादा आदमी था। बे-पढ़ा-लिखा था। मंत्र उलटा-सुलटा हो गया तो भी पहुंच गया। मंत्र से कोई संबंध ही नहीं है। यही अर्थ है इस कहानी में बाल्या भील की, कि राम-राम की जगह भूल ही गया। मरा-मरा जपने लगा, उलटा कर लिया सब, विधि उल्टी हो गयी, फिर भी पहुंच गया। क्योंकि विधियों की गिनती नहीं की जाती--प्रेम का सवाल है। और न मालूम कितने पंडित उन दिनों में राम-राम जपते रहे होंगे और नहीं पहुंचे। यह बाल्या कैसे पहुंच गया? यह भाव-प्रवण रहा होगा। इसके भीतर एक निर्दोषता रही होगी।
प्रेम कै नेम कहूं नहिं दीसत, लाज न कानि लग्यौ सब खारो।

और प्रेम के कहीं कोई नियम कहीं दिखायी नहीं पड़ते। प्रेम मर्यादा- मुक्त है। प्रेम राम जैसा नहीं है, प्रेम कृष्ण जैसा है। राम व्यवस्था हैं, मर्यादा हैं, नीति-नियम हैं। कृष्ण मर्यादा से मुक्ति हैं--प्रेम हैं, ज्वलंत प्रेम हैं। न कोई नियम है, न कोई व्यवस्था है। इसलिए हमने हिम्मत की, इस देश ने अकेले हिम्मत की इस बात की, कि कृष्ण को पूर्णावतार कहा, राम को अंशावतार कहा। कितना ही सुंदर चरित्र हो, कितना ही पुण्यवान चरित्र हो, अगर तुमने प्रेम की मर्यादाशून्य अवस्था नहीं पायी, तो तुम अंश-रूप में ही पहुंचे हो, पूरे रूप में नहीं पहुंचे। तो तुमने छोटा आंगन, साफ-सुथरा आंगन पा लिया है, लेकिन विराट आकाश नहीं पाया है।
राम सुंदर हैं। उनके शील में क्या भूल निकाल सकोगे? कृष्ण में भूलें
ही भूलें हैं। उनमें ठीक खोजने चलोगे तो.जरा मुश्किल पड़ेगी। लेकिन फिर भी हमने हिम्मत की और कृष्ण को पूर्णावतार कहा--सिर्फ एक कारण से, कि प्रेम ही पूर्णता में ले जाता है। क्योंकि प्रेम ही इतनी हिम्मत देता है कि ज्योति में ज्योति मिले, मिलि जाइए।
राम तो अगर परमात्मा के सामने खड़े होंगे तो भी मर्यादा का ध्यान रखेंगे--कैसे खड़े हों कैसे बैठें, क्या कहें क्या न कहें, क्या उचित है क्या अनुचित है। कृष्ण नाचते हुए डूब जाएंगे और शायद कृष्ण को नाचते हुए डूबना भी न पड़े; कृष्ण नाचते रहें, परमात्मा उनमें डूब जाए, परमात्मा को उनमें डूबना पड़े।
सुंदरदास कहते हैंः लाज न कानि लग्यो सब खारो।
प्रेम के जगत में तो मर्यादा इत्यादि सब खारी बातें हैं, व्यर्थ की बातें हैं, इनमें कुछ मिठास नहीं!
लीन भयो हरि सौं अभिअंतर आठहुं जाम रहो मतवारौ।
लीन भयो हरि सौं अभिअंतर आठहुं जाम रहयो मतवारौ।
आठों पहर जो उसमें डूब गया है, वह मस्त रहता है, मस्ती में रहता है। पियक्कड़ की मस्ती है उसकी। शराबी की मस्ती है उसकी। सूफियों ने इसी कारण परमात्मा की प्रार्थना को शराब कहा है। सूफियों ने इसी कारण उसके असली मंदिरों को मधुशाला कहा है।
सहर तक चांद मेरे सामने रखता है अक्स उनका,
सितारे शब को मेरे साथ उनका नाम लेते हैं।
ये सुनकर हमने मैखाने में अपना नाम लिखवाया,
जो मैकश लड़खड़ाता है वो बाजू थाम लेते हैं।
यह सुनकर हमने मैखाने में अपना नाम लिखवाया... सम्मिलित हो गए मधुशाला में!
यह सुनकर हमने मैखाने में अपना नाम लिखवाया,
जो मैकश लड़खड़ाता है वो बाजू थाम लेते हैं।
उसके प्रेम में जो लड़खड़ाता है, संभाल लिया जाता है। मर्यादा-व्यवस्था
से चलने वाला आदमी लड़खड़ाता ही नहीं, परमात्मा को संभालने का मौका ही नहीं देता।
इसे.जरा ख्याल रखना। पुण्यात्मा का एक अहंकार होता है। नीति से चलने वाले व्यक्ति की एक अस्मिता होती है। चरित्रवान का एक बड़ा सूक्ष्म अहंभाव होता है। वह परमात्मा को संभालने का मौका ही नहीं देता! खुद ही संभल कर चलता है। लेकिन उसके प्यारे, जिन्हें उस पर भरोसा है, लड़खड़ाते हैं। सारी मर्यादा, नीतिनियम छोड़कर प्रेम में डुबकी लगाते हैं।
हदूदे-कूचा-ए-महबूब है वहीं से शुरू।
जहां से पड़ने लगें पांव डगमगाए हुए।।
ध्यान रखना, जब तक पैर डगमगाए न उसके प्रेम में तब तक समझना कि अभी प्रेमी की गली आई नहीं।
हदूदे-कूचा-ए-महबूब है वहीं से शुरू।
प्रेमी की गली वहीं से शुरू होती है--
जहां से पड़ने लगें पांव डगमगाए हुए।।
--जहां तुम अपने बस में न रहो। जहां तुम अवश हो जाओ। जहां वह रुलाए तो रोओ, वह जगाए तो जागो, वह सुलाए तो सो जाओ। जहां वह चलाए तो चलो। वह कराए

कुछ तो करो, न कराए तो न करो। जहां सब उस पर छोड़ दिया जाता है--वहां कैसा नियम, वहां कैसी विधि, वहां कैसी रीति? यह परम रीति है प्रेम की। यह परम विधि है प्रेम की।
जो इस परम विधि का साहस नहीं कर पाते हैं उनके लिए फिर छोटी-छोटी विधियां निकाली गयी हैं--योग इत्यादि, तंत्र-मंत्र इत्यादि, यंत्र... ।
उनके लिए बहुत विधियां निकाली गयी हैं। लेकिन वे वे ही लोग हैं, जो प्रेम की परम विधि, विधिमुक्त विधि से अपने को जोड़ने में समर्थ नहीं हैं।
कौन कौसर मुसा.फत तै करे।
मैकदा फिरदौस से नजदीक है।।
कौन इंतजार करे कि स्वर्ग में शराब के चश्मे बहते हैं और वहां तक की कौन सफर करे, उतना लंबा कौन जाए!
कौन कौसर तक मुसाफत तै करे।
मैकदा फिरदौस से नजदीक है।।
कौन स्वर्ग की बकवास में पड़े! मधुशाला यहीं है, करीब है। मधुशाला तुम्हारे भीतर है। लड़खड़ाओ.जरा। अपने को बहुत संभाले-संभाले जी लिए, अब .जरा उसको संभालने दो। छोड़ो उस पर। समर्पण सूत्र है।
मैं मैकदे की राह से होकर गु.जर गया
वर्ना स.फर हयात का काफी तबील था
और जो उसके प्रेम की मस्ती और उसके प्रेम की शराब को पी लिए, उनके लिए रास्ता बिल्कुल छोटा हो गया, शून्य हो गया, न हो गया, रिक्त हो गया, बचा ही नहीं। एक क्षण में पूरा हो गया। जो उसके प्रेम की मस्ती में न डूबे, उनका रास्ता बड़ा लंबा है। फिर भी वे कभी पहुंचेंगे, यह संदिग्ध है। प्रेमी बिना चले पहुंच जाता है। प्रेम-शून्य व्यक्ति चलता ही रहे, चलता ही रहे, तो भी नहीं पहुंचता है।
मुझे उठाने को आया है वाइजे-जानां
जो उठा सके तो मेरा सागरे-शराब उठा
किधर से बर्क चमकती है देखें ऐ वाइज!
मैं अपना जाम उठाता हूं तू अपनी किताब उठा।
मुझे उठाने को आया है वाइजे-जानां! वह जो समझदार है, पंडित है, उपदेशक है, धर्मगुरु है, वह मुझे उठाने आया है शराब घर से कि उठो यहां से। यहां भी आ जाते हैं पंडित शराबियों को उठाने कि उठो यहां से, यहां कहां आ गए!
जो उठा सके तो मेरा सागरे-शराब उठा
लेकिन प्रेमी कहता हैः मुझे उठाने के पहले अगर कुछ उठाना ही है तो मेरा यह शराब का प्याला उठा। तू भी उठा। तू भी चख थोड़ा। मुझसे कुछ कहे, इसके पहले तू भी कुछ चख थोड़ा। और फिर अगर प्रमाण ही पूछना है तो परमात्मा को प्रमाण देने दे।
किधर से बर्क चमकती है देखें ऐ वाइज!
ऐ धर्मगुरु! तो कहां से रोशनी उठती है और कहां से बिजली चमकती है, यह
हम देख ही लें।
मैं अपना जाम उठाता हूं, तू अपनी किताब उठा।
तू उठा अपना कुरान, तू उठा अपनी गीता। मैं अपना जाम उठाता हूं। मैं अपनी मस्ती से पुकारता हूं। मैं अपने प्रेम से पुकारता हूं। तू दोहरा अपने रटे हुए पाठ और देखें कहां से बर्क चमकती है। देखें किस ओर से परमात्मा की रोशनी आती है। सदा प्रेमीओं की तरफ से आयी है। उन्हीं की तरफ से, जिन्होंने उसकी मस्ती में पीना सीखा है।
ठीक कहते हैं सुंदरदास:
प्रीति की रीति नहीं कछु राखत जाति न पांति नहीं कुल गारौ।
प्रेम कै नेम कहूं नहिं दीसत लाज न कानि लग्यो सब खारौ।।
लीन भयो हरि सौं अभि अंतर आठहुं जाम रहयो मतवारौ।
सुंदर कोऊ न जान सके यह गोकुल गांव को पैंडो ही न्यारौ।।
यह जो गोकुल के गांव का रास्ता है, यह बड़ा न्यारा है। सुंदर कोऊ न जान सके यह... । यह जानने की बात नहीं है। यह अनुभव करने की बात है कि यह गोकुल

का रास्ता बड़ा न्यारा है। यहां नियम नहीं, विधि नहीं, व्यवस्था नहीं। यहां वर्ण नहीं, यहां ब्राह्मण-शूद्र नहीं, यहां पापी-पुण्यात्मा नहीं।
सुंदर कोऊ न जान सके यह गोकुल गांव को पैंडो ही न्यारौ।
यह रास्ता ही बहुत न्यारा है। यह मतवालों का है, दीवानों का है।
समझना तेरा कोई आसां है जालिम!
ये क्या कम है खुद आश्ना हो गए हम।।
भटक कर पड़े रहजनों के जो हाथों।
लुटे इस कदर रहनुमा हो गए हम।।
.जुनूने खुदी का यह ऐना.ज देखो।
कि जब मौ.ज आयी खुदा हो गए हम।।
मुहब्बत ने उम्रे-अबद हमको बख्शी।
मगर सब ये समझे.फना हो गए हम।।
लोग तो समझते हैं कि प्रेमी मिट गया, मर गया।
मुहब्बत ने उम्रे-अबद हमको बख्शी।
लेकिन प्रेम तो अमरता देता है।
प्रेम की मृत्यु अमरता का द्वार है।
मुहब्बत ने उम्रे-अबद हमको बख्शी।
मगर सब ये समझे फना हो गए हम।।
लोग यही समझे कि बरबाद हो गए कि पागल हो गए, कि दीवाने हो गए। और प्रेमी ने सब पा लिया जो भी पाने-योग्य है। प्रेमी ही पाता है। प्रेमी धन्यभागी है। उससे बड़ा और धन्यभागी कोई भी नहीं है।
द्वंद्व बिना विचरे वसुधा परि जा घट आतम ज्ञान अपारो।
और जिसको छू लेता है उसका प्रेम, उसके सारे द्वंद्व मिट जाते हैं
द्वंद्व बिना विचरे वसुधा परि जा घट आतम ज्ञान अपारो।
और उसमें आत्मज्ञान की अपारता प्रकट हो जाती है।
हे पवित्र
छू दिया आज तुमने
पवित्र हो गए प्राण
निष्कलुष शब्द
निष्कलुष छंद
निष्कलुश गान अब बने रहें
ऐसा वर दो
मैं कभी नहीं
नीचे उतरूं इन श्रृंगों से
ऐसा कर दो!
एक बार स्पर्श हो जाता है तो बस फिर एक ही पुकार उठती रहती है। हे पवित्र
छू दिया आज तुमने
पवित्र हो गए प्राण
निष्कलुश शब्द,
निष्कलुष छंद
निष्कलुष गान अब बने रहें
ऐसा वर दो
मैं कभी नहीं
नीचे उतरूं इनशृंगों से
ऐसा कर दो!
पर ऐसा हो ही जाता है। प्रेमी की सारी अभीप्सा पूरी हो जाती है।
काम न क्रोध न लोभ न मोह न राग न रोष न म्हारौ न थारौ।
ज्ञानी छोड़-छोड़ कर नहीं छोड़ पाता और भक्त का यूं चला जाता है, जैसे सुबह सूरज उगे और ओस के कण विलीन हो जाएं।
द्वंद्व बिना विचरे वसुधा परि जा घट आतम ज्ञान अपारौ।
काम न क्रोध न लोभ न मोह न राग न दोष न म्हारौ न थारौ।।

न फिर कुछ मेरा, न फिर कुछ तेरा। न काम न क्रोध न लोभ न मोह... ये सब छोड़ने नहीं पड़ते भक्त को। भक्त को तो सिर्फ एक ही हिम्मत करनी पड़ती हैः ज्योति में ज्योति मिले, मिलि जाइए। बस इतना। इतना कि उसके इस न्यारे नियम-रहित, विधि-रहित मार्ग पर चलने का सामर्थ्य। अपने को गंवाने की हिम्मत। इतना किया कि सब अपने से होता है। इस भेद को ख्याल में ले लेना। योग के मार्ग पर यह सब करना पड़ता है तब परमात्मा मिलता है। भक्ति के मार्ग पर परमात्मा मिलता है और ये सब बातें अपने से हो जाती हैं।
योग न भोग न त्याग न संग्रह देहदशा ढक्यो न उघारौ।
भक्त को यह सब अनायास होता है। इनकी कोई साधना नहीं करनी पड़ती--न योग न भोग, न त्याग न संग्रह--देहदशा न ढक्यो न उघारौ। न तो उसे विशेष आयोजन करने पड़ते हैं, जीवन की व्यवस्था ढालनी पड़ती है; न विशेष अनुशासन अपने जीवन पर लादना पड़ता है। न तो नग्न रहने की जरूरत है उसे।
सुंदर कोऊ न जान सकै यह गोकुल गांव को पैंडो ही न्यारौ।
कैफे-खुदी ने मौज को कश्ती बना दिया
फिक्रे-खुदा है अब न गमे-नाखुदा मुझे
कैफे खुदी ने मौज को कश्ती बना दिया
तूफान ही कश्ती बन जाती है--एक दफा अपने को विस्मृत करने की क्षमता हो;
एक बार अपनी आत्मा को मदमस्त करने की क्षमता हो।
कैफे-खुदी ने मौज को कश्ती बना दिया
फिक्रे-खुदा है अब न गमे-नाखुदा मुझे
अब कोई चिंता नहीं। अब मांझी की कोई जरूरत नहीं। अब परमात्मा की भी कोई जरूरत नहीं, क्योंकि वही है। तूफान की लहर में भी वही है। अब नाव की भी कोई जरूरत नहीं। अब पार जाने की भी कोई जरूरत नहीं। डुबा दे जहां, वहीं किनारा है। बस एक छोटी-सी चीज भक्त को छोड़नी पड़ती है--छोटी है, लेकिन बड़ी भी बहुत; ऐसे तो नाकुछ, ऐसे वही सब कुछ--अहंकार-भाव।
तसव्वुर आपका अहसास अपना, हमरही दिल की।
मुहब्बत की इस तकसीम ने मंजिल से बहकाया।।
यह.जरा-सा भी मैं-भाव रह जाए--मेरी प्रार्थना, मेरी पूजा, मेरा परमात्मा--जरा सा भी मैं-भाव रह जाए, तो बस पर्याप्त है उपद्रव के लिए, भटका रखने के लिए काफी है। कुछ भी न बचे। प्रार्थना भी उसकी। पूजा भी उसकी। आराध्य भी वही, आराधक भी वही। वही बैठा मूर्ति में, वही नाच रहा भक्त में। नाचते-नाचते रामकृष्ण, भगवान का भोग लगाते-लगाते खुद को भी भोग लगा लेते थे। ऐसी मस्ती, ऐसा एकात्म-भाव! भूल ही जाते कौन कौन है--कौन भक्त कौन भगवान्! जहां ऐसा अपूर्व घटता है, उस अपूर्व की सूचना दे रहे हैं सुंदरदास-- सुंदर कोऊ न जानि सकै यह गोकुल गांव को पैंडो ही न्यारौ!
सुंदर सदगुरु यौं कहया सकल सिरोमनि नाम।
उसकी याद करो। उसे पुकारो। बस यही साधना का सबसे ऊंचा शिखर है।
सुंदर सदगुरु यौं कहया सकल सिरोमनि नाम।
जैसे पुकार सको, जो नाम प्यारा लगे, जिस दिशा में सिर झुकाना हो, जिस भाषा में पुकारना हो, बोल कर तो बोल कर, चुप रह कर तो चुप रह कर--मगर यही बात एक ख्याल रखने की है: पुकारो!
अंगारिका आंख का गुलमुहर
रोएंदार परछाइयों की चपेट
दिया-बातियों की कातर कुबेला
फोड़कता यकायक पांखि अकेला...
तुम कहां?
तुम कहां?
पूछो! पुकारो! तुम कहां? तुम कहां? जैसा पपीहा पुकारता है अपने प्यारे को--पी कहां! --ऐसे ही तुम पुकारो। बस इतनी ही विधि है, इतना ही नियम है।
ताकौं निसदिन सुमरिए, सुखसागर सुखधाम।
उसका स्मरण बने, तुम्हारी श्वास-श्वास में रम जाए, तुम्हारी धड़कन-धड़कन में रम जाए। उठो-बैठो, चलो-फिरो, वह न भूले।

रामनाम बिन लैन को और बस्तु कहि कौन।
राम-नाम के बिना और इस जगत में कमाने-योग्य कोई भी वस्तु नहीं है।
सुंदर जप तप दान व्रत, लागे खारे लौन।
बाकी सब जप, तप, व्रत सब खारे लगते हैं, जैसे नमक खारा लगता है। मिठास नहीं है। मैं भी तुमसे यही कहता हूंः माधुर्य नहीं है तुम्हारे तथाकथित जप, तप, व्रत में। मधुरिमा नहीं है, मिठास नहीं है। सब खारा-खारा है। खारा क्यों है? अहंकार की अकड़ के कारण--मैंने इतना उपवास किया, इतना व्रत किया। अकड़ आती है। भक्त क्या कहे? आंसू गिराए हैं उसने; और क्या किया है? यह भी कुछ खास तो करना नहीं। रोया है; और तो कुछ नहीं किया। पुकारा है; और तो कुछ नहीं किया।
भक्त की आंख से गिरते आंसू धीरे-धीरे उसके अहंकार को गलाकर बहा ले जाते हैं। उसकी पुकार पुकारते-पुकारते ऐसी सघन हो जाती है कि पहुंच जगत के अंतस्तल तक, भेद देती है सारे अस्तित्व को, सारे रूप को भेद कर अरूप तक पहुंच जाती है! आकार को छेद कर तीर की तरह निराकार के केंद्र तक पहुंच जाती है।
रामनाम-पीयुष तजि, विष पीवै मतिहीन।
खारी चीजों में उलझे हो, व्यर्थ की चीजों में उलझे हो। अहंकार का जहर
पी रहे हो। नाम चाहे साधना देते हो, तपश्चर्या कहो--मगर अहंकार का विष पी रहे हो।
रामनाम-पियुष तजि... । जबकि अमृत उपलब्ध है। अमृत सुगम है। सहज है, सरल है। साधो, सहज समाधि भली!
सुंदर डोले भटकते, जन जन आगे दीन।
और इसी कारण भीख मांगते फिर रहे हो। हर किसी के सामने हाथ फैलाए हो। हाथ ही फैलाने हों तो उस एक मालिक के सामने फैला दो।
कहानी मुझे प्रीतिकर है, मैंने बहुत बार कही है। फरीद को उसके गांव के लोगों ने कहा, अकबर से प्रार्थना करो कि गांव में एक मदरसा खोल दे। फरीद के पास अकबर आता था। फरीद एक सूफी फकीर हुआ। फरीद ने कहा, ठीक। फरीद गया राजमहल। सुबह ही सुबह पहुंचा। उसे ले जाया गया महल के भीतर। सम्राट तब प्रार्थना कर रहा था। उसके हाथ इबादत में उठे थे। तो फरीद पीछे खड़ा हो कर सुनता रहा कि क्या प्रार्थना कर रहा है अकबर। अकबर ने प्रार्थना खत्म करते समय कहा: हे प्रभु, हे परमात्मा, हे परवरदिगार! मेरे धन को और बढ़ा, मेरी दौलत को और बड़ा कर! मेरे राज्य की सीमाओं को विस्तीर्णता दे।
फरीद उल्टे पांव लौट पड़ा। अकबर की प्रार्थना पूरी करके जैसे ही अकबर उठा, फरीद को उसने सीढ़ियां उतरते देखा। भागा। फरीद के प्रति उसको बड़ा आदर था। पैर पकड़ लिए। और कहाः आए, पहली दफा आए और कैसे चले? कैसे आना हुआ? फरीद ने कहा, भूल हो गयी, व्यर्थ आना हुआ। मैं तो सोचता था सम्राट के पास पास जा रहा हूं, लेकिन यहां भी एक भिखमंगा पाया। गांव के लोगों ने कहा था मदरसा के लिए मांग कर दो, तो मैंने कहा ठीक। आया था मांगने कि गांव में एक मदरसा खोल दो, मगर अब क्या मांगू! अभी तो तेरी मांग ही पूरी नहीं हुई है। यह मदरसा थोड़े तेरे साम्राज्य को और कम कर देगा, थोड़ा पैसा तेरा और कम हो जाएगा। नहीं-नहीं, यह मैं न करूंगा। यह बात खत्म हो गयी। मुझे जाने दो। सम्राट ने कहा ऐसा न करो। मदरसा खोल दूंगा, एक नहीं दस खोल दूंगा।
लेकिन फरीद ने कहा, अब तुझसे न मांगूंगा। तू जिससे मांग रहा था, अगर मांगना होगा तो हम भी उसी से मांग लेंगे।
जगह-जगह हम हाथ फैलाए हैं। उस एक के सामने हाथ फैला दो!
वो खुद अता करे तो जहन्नुम भी बहिष्त।
मांगी हुई नि.जात मेरे काम की नहीं।।
और सच तो यह है कि भक्त उससे भी नहीं मांगता। भक्त मांगता ही नहीं।
भक्त तो अपने को समर्पित कर देता है। निजात उसे मिलती है। स्वर्ग उसे
मिलता है। आनंद की उस पर वर्षा होती है।
वो खुद अता करे तो जहन्नुम भी बहिष्त।
मांगी हुई निजात मेरे काम की नहीं।।

मांगकर भी क्या मांगना! बिना मांगे मिले तो मूल्य है। मांगने में ही बात खत्म हो गयी। मांगने में ही हम भिखमंगे हो गए, मंगते हो गए। बिना मांगे मिले तो हम सम्राट्। और परमात्मा देता है, बिना मांगे देता है। पर उसकी तरफ आंख तो उठाओ! उसके न्यारे रास्ते पर तो थोड़ा चलो!
सुंदर कोउ न जान सके यह गोकुल गांव को पैंडो ही न्यारौ।
सुंदर डोले भटकते जन-जन आगे दीन।
सुंदर सुरति समेट के सुमिरन सौं लवलीन।।
मत फिरो मांगते। मत फिरो मांगते। मत फिरो संसार में भटकते। इकट्ठा कर
लो अपनी स्मृति को, अपने बोध को, अपने ध्यान को।
सुंदर सुरति समेट के सुमिरन सौं लवलीन।
सारी ध्यान की ऊर्जा को इकट्ठा करके उस एक को एक बार पुकार लो। संसार में तो कष्ट ही क्या है और? संसार सभी को भिखमंगा बना देता है।
और भिखमंगे को झूठा हो जाना पड़ता है, पाखंडी हो जाना पड़ता है।
जो दिल का राज बे-आहो-फुगां कहना ही पड़ता है।
तो फिर अपने.क.फस को आशियां कहना ही पड़ता है।
तुझे ऐ तायरे-शाखे-नशेमन! क्या खबर इसकी?
कभी सय्याद को भी बा.गबां कहना ही पड़ता है।।
ये दुनिया है यहां हर काम चलता है सली.के से।
यहां पत्थर को भी लाले-गिरां कहना ही पड़ता है।।
ब-.फैजे-मसलहत ऐसा भी होता है.जमाने में।
कि रहजन को अमीरे-कारवां कहना ही पड़ता है।।
जबानों पर दिलों की बात जब हम ला नहीं सकते।
ज.फा को फिर व.फा की दास्तां कहना ही पड़ता है।
न पूछो क्या गुजरती है दिले खुद्दार पर अकसर।
किसी बेमेहर की जब मेहरबां कहना ही पड़ता है।।
लेकिन इस संसार में तो यह चलता है। पापी को पुण्यात्मा कहना पड़ेगा।
कंजूस को दानी कहना पड़ेगा। झूठों को सच्चा कहना पड़ेगा।
न पूछो क्या गु.जरती है दिले खुद्दार पर अकसर।
किसी बेमेहर को जब मेहबां कहना ही पड़ता है।।
जो कठोर हैं, जिनमें करुणा का कोई लवलेश भी नहीं, उनको जब महाकरुणावान कहना पड़ता है, तो दिल पर क्या गु.जरती है! ऐसे झूठ बोलते-बोलते तुम भी झूठ हो जाते हो। मगर यह संसार का सलीका है, यह उसकी व्यवस्था है, यह उसकी राजनीति है। जो दूसरों से मांगने जाएगा कुछ, उसे झूठे पाखंड में पड़ना ही होगा।
मांगो मत! एक प्रभु को पुकारो। एक प्रभु के चरणों में सब समर्पित करो।
और फिर देखो! सब आता है, सब मिलता है। अनायास! बिना मांगे। और जब बिना मांगे मिलता है तो उसका मजा और। तब वह भेंट है, भिक्षा नहीं। तब प्रसाद है।
सुंदर सुरति समेट के सुमिरन सौं लवलीन।
मन बंच क्रम करि होत हैं हरि ताके आधीन।।
तुम मन से, वचन से, कर्म से उसे पुकारो तो! भगवान तुम्हारे आधीन हो जाएगा।
सुमिरन मैं ही शील है, सुमिरन मैं संतोष।
सुमिरन ही तें पाइए, सुंदर जीवन मोश।।
उस एक परमात्मा के स्मरण में ही सारा चरित्र छिपा है। यह वचन सोचना, गूढ़ है। विचारना, गहन है। भीतर इसे गुनगुनाना। इसमें बड़ा स्वाद है। एक ही चरित्र है भक्त का--परमात्मा का स्मरण। और उसके स्मरण से ही उसके जीवन में सब रूपांतरण होने शुरू हो जाते हैं। उसकी एक किरण भी याद की आनी शुरू होती है, तो सब कलुष मिटने लगता है, कल्मष गिरने लगता है। दीया जला, अंधेरा गया। फिर अंधेरे को धक्के दे-दे कर निकालना थोड़े ही पड़ता है।
सुमिरन ही मैं शील है, सुमिरन मैं संतोष।
और जिसे उसके नाम में आनंद आने लगा, उसे फिर संतोष ही संतोष है। फिर उसे किसी चीज में कोई असंतोष नहीं। उसे इतना मिलता है जितना वह संभाल नहीं

पाता। उसे इतना मिलता है जितने का वह अपने को पात्र नहीं मानता। उसकी पात्रता छोटी पड़ने लगती है। परमात्मा औघड़दानी है।
सुमिरन ही तें पाइए सुंदर जीवन मोश।
और मोक्ष पाने के लिए न योग न त्याग, न तप-तपश्चर्या, न विधि न विधान, सिर्फ स्मरण। यह स्मरण का एक छोटा-सा सूत्र,.जरा-सी चिंगारी पड़ जाए तुम्हारे जीवन में तो भभक कर विराट अग्नि बन जाती है। इसमें सब जल जाता है जो व्यर्थ है; और जो सार्थक है, निखर कर प्रकट होता है। इसमें जो-जो कूड़ा- करकट है, जल जाता है और सोना कुंदन हो जाता है।
मेरा जो हाल हो सो हो, बर्के-न.जर गिराए जा।
मैं यूं ही नालाकश रहूं तू यूं ही मुस्कराए जा।।
लह.जा-ब-लह.जा दम-ब-दम जलवा-ब-जलवा आए जा।
तश्ना-ए-हुस्ने-.जात हूं तश्नालबी बढ़ाए जा।।
जितनी भी आज पी सकूं उज्र न कर, पिलाए जा।
मस्त न.जर का वास्ता मस्ते-न.जर बनाए जा।।
लुत्.फ से हो कि कहर से हो होगा कभी तो रू-ब-रू।
उसका जहां पता चले शोर वहीं मचाए जा।।
पुकारे चलो। जहां पता चले, पुकारे चलो। सूरज के उगने में दिखायी पड़े
तो पुकारो। चांद की शीतलता में दिखायी पड़े तो पुकारो। फूलों में मुस्कराए तो पुकारो। हवाओं में लहराए तो पुकारो। लोगों की आंखों में झलके तो पुकारो। अपने भीतर स्मरण आए तो पुकारो।
लुत्.फ से हो कि कहर से हो, होगा कभी तो रू-ब-रू।
उसका जहां पता चले शोर वहीं मचाए जा।
तश्ना-ए-हुस्ने जात हूं तश्नालबी बढ़ाए जा।।
उससे एक ही प्रार्थना करना कि मेरी प्यास को बढ़ा, कि मेरी प्यास को जला, कि मैं प्यास ही प्यास हो जाऊं, ऐसा कर। और कुछ न मांगना।
जितनी भी आज पी सकूं, उज्र न कर पिलाए जा।
प्यास बढ़ा और पिला। और इस भांति पिला कि मेरी प्यास तेरे पिलाने से और बढ़ती जाए, इस प्यास और पिलाने का दौर जब शुरू होता है तो भक्त प्यासा होता है, भगवान पिलाता है। इसलिए सूफी भगवान को साकी कहते हैं, जो मदिरा ढाल देती है तुम्हारे प्याले में। तुम्हारी तरफ से बस इतना ही चाहिए कि तुम एक खाली प्याले बन जाओ, एक खाली पात्र बन जाओ।
है दिल मैं दिलदार सही, अंखियां उलट कर ताहि चितइए।
आब मैं खाक मैं बाद मैं आतस जान में सुंदर जानि जनइए।।
नूर मैं नूर है, तेज मैं तेज है, ज्योति में ज्योति मिलें मिल जइए।
क्या कहिए कहते न बनै कछु जो कहिए कहते ही लजइए।।
जासौं कहूं सब मैं वह एक तौ सौ कहै कैसी है आंखि दिखइए।
जो कहूं रूप न रेख तिसै कछु तौ सब झूठ तौ सब झूठ के मान कहइए।।
जो कहूं सुंदर नैनन मांझि, तो नैंनहुं बैन गए पुनहइए।
क्या कहिए कहते न बनैं कछु जो कहिए कहते ही लजइए।।
प्रीति की रीति नहीं कछु राखत, जाति न पांति नहीं कुल गारौ।
प्रेम के नेम कहूं नहीं दीसत लाज न कानि लग्यो सब खारो।।
लीन भयो हरि सौं अभिअंतर आठहूं जाम रहै मतवारौ।
सुंदर काउ न जानि सकै यह गोकुल गांव को पैंडो ही न्यारौ।।
द्वंद्व बिना विचरे वसुधा परि जा घट आतम ज्ञान अपारौ।
काम न क्रोध न लोभ न राग न दोष न म्हारो न थारो।।
योग न भोग न त्याग न संग्रह देहदशा न ढक्यो न उघारौ।
सुंदर कोउ न जान सकै यह गोकुल गांव कौ पैंडो ही न्यारौ।।
जाना तो नहीं जा सकता, लेकिन जिया जा सकता है। मैंने तुम्हें इसलिए पुकारा कि इस गोकुल गांव के अनूठे रास्ते पर तुम चल सको। तुम यहां तक आ गए, और थोड़े आगे बढ़ो!
सुंदर कोउ न जान सके यह गोकुल गांव कौ पैंडो ही न्यारौ।
पर जिया जा सकता है।

और जीना ही जानना है। और जानने का कोई उपाय नहीं। यहां ढल रही है शराब। तुम प्यास को जगाओ। यहां उसका स्मरण हो रहा है। तुम.जरा अपने हृदय को मेरे हृदय की तरंग से जोड़ो। यह घटेगा। तुम उसके अधिकारी हो। यह प्रत्येक का जन्मसिद्ध अधिकार है। और जब तक गोकुल के गांव की तरफ न चले, तब तक सब चलना व्यर्थ है। चलो कितना ही, कहीं पहुंचोगे नहीं। इस अनूठे रास्ते की पुकार सुनो! इस चुनौती को अंगीकार करो!

आज इतना ही।

ज्योति से ज्योति जले
छठवां प्रवचन

मनुष्य-जाति को संदेश

पहला प्रश्न: भगवान! आप दुनिया को क्या संदेश देना चाहते हो?

मेरा संदेश संक्षिप्त है--ऐसे संक्षिप्त, ऐसे सारे शास्त्र भी उसमें समा जाते हैं। और किसी एक परंपरा के शास्त्र ही नहीं, सभी परंपराओं के शास्त्र समा जाते हैं। और अध्यात्मवादियों के शास्त्र ही नहीं, भौतिकवादियों के शास्त्र भी समा जाते हैं।
मैं ऐसा धर्म देना चाहता हूं, जो आस्तिक और नास्तिक दोनों के लिए समान रूप से उपलब्ध हो। अब तक तो सारे धर्म आस्तिक को उपलब्ध रहे हैं; जो मान सके उसको उपलब्ध रहे हैं। लेकिन उसका क्या जो न मान सके? क्या उसे छोड़ ही दोगे? क्या उसके लिए परमात्मा तक पहुंचने का कोई उपाय नहीं होगा? तब तो यह पृथ्वी पूरी की पूरी धार्मिक कभी भी न हो सकेगी। तब तो कुछ कमी बनी ही रहेगी। तब तो कुछ लोग अधार्मिक होने को मजबूर ही रहेंगे।
फिर, जो मान सकता है उसके जीवन की क्रांति भी कुनकुनी होती है। उसके जीवन की क्रांति में बड़ी ऊर्जा नहीं होती। एक अर्थों में उसकी क्रांति नपुंसक होती है। वह मान सकता है, इसलिए मान लेता है। उसके मानने में कोई संघर्ष नहीं होता। उसके मानने में कोई अभियान नहीं होता। उसके मानने में सत्य की कोई खोज, गवेषणा नहीं होती।
असली खोज तो वह करता है जो नहीं मान पाता है; जिसके भीतर से "नहीं" का स्वर उठता है। क्रांति तो वहीं घटित होती है। इस जगत के जो परम धार्मिक लोग थे, वे वे ही थे, जो नास्तिकता से गुजरे। जिन्होंने आस्तिकता से शुरू किया उनकी आस्तिकता हमेशा लचर रही, कमजोर रही, लंगड़ी रही। मनुष्य यदि धार्मिक नहीं हो पाया तो इसी लचर आस्तिकता के कारण। विश्वास करो... जो कर सके, ठीक; लेकिन जो न कर सके वह कैसे करे? विश्वास कोई करने की बात है? हो जाए तो हो जाए। न हो तो फिर क्या? क्या परमात्मा तक पहुंचने का द्वार बंद ही हो गया? यह तो अन्याय होगा।
मैं एक ऐसा धर्म देना चाहता हूं, जो श्रद्धा का भी उपयोग करे और संदेह
का भी; जो कहेः श्रद्धा से भी पहुंचा जा सकता है और संदेह से भी पहुंचा जा सकता है। क्योंकि सभी रास्ते उस तक ले जाते हैं।
तुमने यह तो सुना होगा... जैसा रामकृष्ण ने कहा वह भी एक क्रांति की बात थी, पहली दफा उन्होंने कही थी... कि हिंदू भी वहीं पहुंच जाता है, मुसलमान भी वहीं पहुंच जाता है, ईसाई भी वहीं पहुंच जाता है, जैन भी वहीं पहुंच जाता है। मैं उससे भी आगे एक कदम उठाना चाहता हूं, उससे भी बड़ी क्रांति की बात तुमसे कहना चाहता हूंः आस्तिक ही नहीं पहुंचता वहां, नास्तिक भी पहुंच जाता है। रामकृष्ण ने यह नहीं कहा। रामकृष्ण वहां डगमगा गए। हिंदू भी आस्तिक है, मुसलमान भी आस्तिक है, ईसाई भी आस्तिक है। ये सब पहुंच जाते हैं तो आस्तिक पहुंच जाते हैं; नास्तिक के संबंध में क्या? चार्वाकों के संबंध में क्या?
और, पृथ्वी का बड़ा अंश नास्तिक है, बहुमत नास्तिक है। कहो तुम कुछ, मंदिर भी जाओ, मस्जिद भी जाओ, पूजा भी करो, प्रार्थना भी करो; लेकिन अंतस्तल में टटोलोगे तो पाओगे कि मनुष्य-जाति का बहुमत नास्तिक है। और यह स्वाभाविक है, इसमें कुछ अस्वाभाविकता नहीं है। जिसे जाना नहीं उसे मानें कैसे? जिससे प्रतीति नहीं हुई, संबंध नहीं हुआ, उसे स्वीकार कैसे करें? उसे स्वीकार करना तो झूठ होगा। और झूठ कहीं परमात्मा तक ले जा सकता है? सत्य तक जाना हो तो पहला कदम भी सत्य में ही उठना चाहिए। मान लिया क्योंकि तुम्हारे पुरखे कहते हैं; मान लिया क्योंकि समाज कहता है; मान लिया क्योंकि सारा वातावरण कहता है--लेकिन तुमने तो जाना नहीं। तुम्हारा घर तो खाली का खाली है। सारी दुनिया कहती है कि ईश्वर है, सो मान लेते हैं; मगर यह मानना झूठ है, असत्य है, प्रवंचना है, पाखंड है। इसलिए मंदिर-मस्जिद में पाखंड इकट्ठा हो गया है। इसलिए पंडित और पुजारी पाखंड की सेवा में लगे

हैं, परमात्मा की सेवा में नहीं। और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि कुछ ऐसे सरल लोग नहीं होते, जिनकी मान्यता सत्य होती है। जरूर होते हैं, मगर बिरले होते हैं, कभी-कभार होते हैं। और वे भी इसीलिए होते हैं कि जन्मों-जन्मों तक इनकार किया है उन्होंने, इनकार की आग में जले हैं, निषेध के कांटों पर चले हैं, निषेध ने उन्हें निखारा है, बहुत लंबे अर्सों तक, बहुत जन्मों तक नास्तिक रहे हैं। नास्तिकता ही वहां ले आई है उन्हें कि इस जन्म में वे सहज भाव से आस्तिक हैं।
सहज भाव से आस्तिक होने का अर्थ है, इनकार उठता ही नहीं। ऐसा तो कभी विरला होता है। इन विरले लोगों पर अगर हमने पृथ्वी को आधारित किया तो पृथ्वी अधार्मिक रहेगी।
इसलिए मेरे संदेश का पहला सूत्रः मैं नास्तिक तक धर्म को पहुंचाना चाहता हूं। और मैं कोई कारण नहीं देखता, क्योंकि श्रद्धा भी उसकी ही दी हुई है और संदेह भी। सम्यक रूप से श्रद्धा करो तो पहुंच जाओगे और सम्यक रूप से संदेह करो तो भी पहुंच जाओगे। असली बात है सम्यक रूप। अगर पूरी श्रद्धा करो तो भी पहुंच जाओगे। अगर पूरा संदेह करो तो भी रुके नहीं रह जाओगे। असली बात है, पूरापन, समग्रता।
इसलिए मेरे पास जो आता है उसके ऊपर कोई भी शर्त नहीं है। वह आस्तिक है
तो मुझे अंगीकार है। वह नास्तिक है तो मुझे अंगीकार है। वह कहता है, मैं ईश्वर को मानता हूं तो मैं कहता हूं खोज में चलो। वह कहता है, मैं ईश्वर को नहीं मानता, तो मैं कहता हूं "नहीं मानने" की खोज में चलो। अगर ईश्वर है तो नहीं मानते, नहीं मानते, नहीं मानते भी मिलेगा। अगर है तो कब तक इनकार कर सकोगे? और मैं जानता हूं कि है। इसलिए नास्तिक से मेरा विरोध नहीं है। जिन्होंने नास्तिक का विरोध किया है, शायद उन्हें भी शक है। अपने शक के कारण ही वे दूसरे के शक से भी प्रताड़ित हो जाते हैं।
एक नया सूत्रपात मनुष्य को रूपांतरित करने के लिए चाहिए। तुम जैसे हो, जहां हो, वहीं से तुम्हें स्वीकार किया जाना चाहिए। तुम पर कोई पूर्व-अपेक्षाएं लादी नहीं जानी चाहिए। इसलिए मैं तुम्हें विश्वास करने को नहीं कहता, खोज करने को कहता हूं। और ध्यान रखना, जिसने विश्वास कर लिया, वह खोज क्या करेगा? खोज तो न विश्वास से होती है न अविश्वास से होती है। खोज तो विश्वास-अविश्वास दोनों नहीं होते, तब होती है। पहली बात।
दूसरी बात: अब तक धर्म पारलौकिक रहा है; इस लोक की निंदा में तत्पर रहा है; संसार और निर्वाण विपरीत हैं, ऐसी धारणा रही है। मैं घोषणा करना चाहता हूंः संसार ही निर्वाण है और परमात्मा अपनी सृष्टि से अलग नहीं। सृष्टा अपनी सृष्टि में लीन है। जैसे नर्तक अपने नृत्य में लीन है, ऐसा परमात्मा अपनी सृष्टि में लीन है। यह लोक वह लोक है। इस लोक में और उस लोक में मैं किसी तरह की दुविधा खड़ी नहीं करना चाहता।
और बड़े आश्चर्य की बात है, जिन्होंने अद्वैत की बात की है अतीत में उन्होंने ही यह द्वैत खड़ा कर दिया। शंकर जैसा अद्वैतवादी भी खोजोगे तो द्वैतवादी ही पाओगे --माया और ब्रह्म... । और माया छोड़नी है और ब्रह्म पाना है... द्वैत खड़ा हो गया!
मैं तुमसे कहता हूंः माया ही ब्रह्म है। यह अद्वैत की आत्यंतिक घोषणा है। माया छोड़नी नहीं है। माया में गहरे डूबोगे तो तुम ब्रह्म को ही पाओगे, क्योंकि वहीं छिपा है। इस सारे राग-रंग में उसी की छवि है।
इसलिए जीवन का परम स्वीकार है मेरा संदेश।.जरा भी निषेध नहीं, .जरा भी नकार नहीं। किसी और लोक की खोज में मैं उत्सुक नहीं हूं। कोई और लोक है भी नहीं। और लोक कल्पना-जाल है। इस लोक में आदमी ने दुःख पाया है और इस लोक में सुख पाने के उपाय न खोज सका, इसलिए परलोक की ईजाद की गई है। परलोक एक तरह की आत्मवंचना है। यहां दुःखी हो, कहीं तो आशा टिकानी पड़ेगी, नहीं तो जियोगे कैसे! यहां तो सब तरफ कंटक ही कंटक हैं, दूर परलोक में खिलते हैं कमल के फूल! उस आशा में आदमी जिए चला जाता है।
मैं तुमसे कहता हूंः कांटों में फूलों को बदला जा सकता है। कांटों को फूलों में बदला जा सकता है। सब तुम पर निर्भर है; तुम्हारे जीवन के ढंग पर निर्भर है। यह पृथ्वी स्वर्ग हो जाती है। यही पृथ्वी नरक हो जाती है। तुम

अपने जीवन की शैली से, तुम अपने ध्यान की गहराई से, तुम अपने प्रेम की ऊंचाई से--रूपांतरण लाते हो।
कोई दूसरा जगत नहीं है। इस जगत को ही रूपांतरित करना है। कहीं और कोई स्वर्ग नहीं है, न कहीं कोई नरक है। नरक है, तुम्हारे गलत ढंग से जीने का परिणाम। नरक है, मूर्च्छित जीने का परिणाम। स्वर्ग है, होशपूर्वक जीने का परिणाम। मगर स्वर्ग और नरक कहीं और नहीं, तुम्हारे मनोविज्ञान हैं।
अतीत के सारे धर्मों ने मनुष्य को द्वंद्व सिखाया है--यह छोड़ो, वह पकड़ो। और जहां भी द्वंद्व सिखाया जाता है वहीं मनुष्य विभाजित हो जाता है। मनुष्य को विभाजित करना उसे विक्षिप्त करने के लिए तैयार करना है। इसलिए सारी मनुष्यता--पूछो मनोवैज्ञानिकों से--विक्षिप्त है। यह पृथ्वी हमने एक बड़े पागलखाने में बदल दी है। कोई थोड़ा पागल, कोई ज्यादा पागल। ज्यादा पागल पागलखाने में है, थोड़े पागल पागलखाने के बाहर हैं। मगर कोई बुनियादी भेद नहीं। कोई गुणात्मक भेद नहीं। पागलखाने में जाकर देख लो या पार्लियामेंट में जाकर देख लो, क्या भेद पाओगे? एक ही तरह के लोग, एक ही तरह से विक्षिप्त। विक्षिप्तता सामान्य स्थिति हो गई है। यहां स्वस्थ होना ही अड़चन की बात है। यहां स्वस्थ आदमी पसंद नहीं किया जाता। इसलिए तो मंसूर को सूली पर लटका देते हैं, सुकरात को जहर पिला देते हैं, बुद्ध पर पत्थरों की वर्षा होती है।
यह जो मनुष्य को विभाजित कर दिया गया है--कि तुम्हारे भीतर कुछ निम्न है, तुम्हारे भीतर कुछ पाप है, तुम्हारे भीतर कुछ गलत है, उसे काटो; और तुम्हारे भीतर कुछ श्रेष्ठ है, उसे उघाड़ो। मनुष्य को खंडित करना महत से महत पाप हैं। मैं मनुष्य को अखंड करना चाहता हूं। मैं कहता हूं: न तुम्हारे भीतर कुछ बुरा है न तुम्हारे भीतर कुछ भला है। तुम तो मात्र ऊर्जा हो। ऊर्जा अनेक रूपों में प्रकट हो सकती है। ऊर्जा एक सीढ़ी है। लेकिन सीढ़ी का जो नीचा से नीचा पायदान है, वह भी सीढ़ी के ऊंचे से ऊंचे पायदान से जुड़ा है। वे पृथक नहीं हैं, विपरीत नहीं हैं। वे एक ही इंद्रधनुष के रंग हैं।
तुम्हारी कामवासना और तुम्हारी रामवासना अलग-अलग नहीं हैं, शत्रु नहीं हैं--एक ही ऊर्जा की तरंगें हैं। तुम्हारी कामवासना ही एक दिन रामवासना में रूपांतरित होती है। तुम्हारी संभोग की क्षमता ही एक दिन समाधि बनती है।
अगर दो नहीं हैं जगत में तो फिर मनुष्य को भी दो में बांटने की कोई जरूरत नहीं। और जैसे ही मनुष्य को न बांटा जाए, चिंता विसर्जित होती है। जैसे ही मनुष्य को न बांटा जाए, तनाव शून्य हो जाता है। जैसे ही मनुष्य को न बांटा जाए वैसे ही उत्सव है, वैसे ही नृत्य का आविर्भाव होता है। जैसे ही मनुष्य को न बांटा जाए वैसे ही समाधि उतरनी शुरू हो जाती है।
तो दूसरी बात, मैं मनुष्य को अखंड स्वीकार करता हूं--जैसा है वैसा पूरा का पूरा! जिन्होंने उसमें खंड किए, उन्हें जीवन की पूरी कला का ज्ञान न था; उन्हें पता न था कि सारी ऊर्जा को एक साथ, समवेत, एक संगीत में कैसे गूंथा जाए। उन्हें जीवन का आरकेस्टर बनाने की सूझ-बूझ नहीं थी। स्वभावतः जीवन को आरकेस्टर बनाना हो, बहुत-से वाद्यों को एक ही संगीत में समाविष्ट करना हो तो बड़ी सूझ चाहिए, बड़ी अंतर्दृष्टि चाहिए--कि तुम्हारी देह तुम्हारे मन के साथ नाचे, तुम्हारा मन तुम्हारे आत्म के साथ नाचे, कि तुम्हारी पूरी त्रिवेणी इस पूरे अस्तित्व के साथ नाचे।
धर्म अब तक काट-छांट करता रहा है; मनुष्य को तोड़ता रहा खंडों में। मैं मनुष्य को जोड़ना चाहता हूं प्रेम मेरा सूत्र है। घृणा तोड़ती है। प्रेम जोड़ता है। अब तक धर्मों ने बात तो प्रेम की है, लेकिन प्रेम की आड़ में घृणा सिखाई है--"शरीर को घृणा करो, तो आत्मा से प्रेम होगा।" मैं तुमसे कहता हूं : जिसने अपने शरीर को भी प्रेम नहीं किया, वह अपनी आत्मा को कैसे प्रेम कर सकेगा? जो दृश्य से भी प्रेम कर न सका, उसके अदृश्य से कोई संबंध जुडेंगे, इसकी संभावना छोड़ो, इसकी आशा छोड़ो। अपने शरीर को भी प्रेम करो। उसी प्रेम की गहराई में तुम्हें मन की तरंगें मिलेंगी। अपने मन को भी प्रेम करो। उसी

गहराई में तुम्हें आत्मा का शाश्वत आनंद भी छलकेगा। अपनी आत्मा को प्रेम करो। और उसी में उतरते-उतरते तुम्हें परमात्मा के दर्शन होंगे।
अब तक धर्मों ने तुमसे कहा है--इसे काटो, उसे काटो; यह पैर ठीक नहीं है, इसे तोड़ डालो; यह हाथ ठीक नहीं है, इसे तोड़ डालो; आंखें वासना में ले जाती हैं, आंखें फोड़ डालो; जीभ में स्वाद उमगता है, जीभ काट डालो। इन्हें धर्म कहना ठीक नहीं। ये धर्म के नाम पर बड़े जंगली प्रयोग थे, अशिष्ट असय असंस्कृत। मनुष्य आगे आया है। मनुष्य अब प्रौढ़ हुआ है। अब मनुष्य को कुछ और विराटतर धर्म की आभा चाहिए, दिशा चाहिए।
कजानजाकिश का जोरबा और गौतम बुद्ध, इन दोनों को अब मैं एक साथ देखना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि तुम्हारा जीवन एक संगीत हो--जिस संगीत में सब समाविष्ट हो जाए, कुछ भी निषिद्ध न हो, कुछ भी वर्जित न हो, कुछ भी पाप की तरह छोड़ा न जाए। मैं तुम्हारे सारे पापों की ऊर्जा को भी पुण्य की सुवास में रूपांतरित करलेना चाहता हूं। और उसी को मैं कलाकार कहता हूं, उसी को मैं बुद्धिमान कहता हूं--जो लोहे को सोना बना ले; और जो जहर से औषधि बना ले; और जो मृत्यु से अमृत निचोड़ ले।
द्वंद के कारण अब तक के धर्म दमन पर आधारित रहे।... दबाओ! क्रोध है तो क्रोध को दबाओ। काम है तो काम को दबाओ।... दमन, रिप्रेस्सन उनकी आधारशिला रही है। और ध्यान रखना, जितना दबाओगे उतनी ही उलझन में उलझ जाओगे। दबाने से कभी कुछ जाता नहीं। दबाने से बात बिगड़ती है, बनती नहीं।
एक होटल में एक रात एक आदमी मेहमान हुआ। एक ही कमरा खाली था। मैनेजर
ने कहा कि आप किसी और होटल में चले जाएं। एक कमरा खाली है, मैं दे सकता हूं; लेकिन उस कमरे के नीचे जो सज्जन ठहरे हुए हैं, वे.जरा उपद्रवी स्वभाव के हैं। अगर तुम.जरा जोर से चले, .जरा जोर से बोले, .जरा आवाज हो गई, बर्तन गिर गया--तो झगड़ा-झांसा खड़ा हो जाएगा। इसलिए उस कमरे को हमने खाली ही छोड़ रखा है कि जब तक वे सज्जन न चले जाएं उसे खाली ही रहने दें।
उस यात्री ने कहा कि मैं दिन भर तो काम में रहूंगा, रात बारह बजे लौटूंगा। चार घंटे मुझे सोना है। सुबह पांच बजे की गाड़ी पकड़ लेनी है। बहुत कम संभावना है कि मेरी उनसे कोई झंझट हो।
कमरा दे दिया गया। रात वह आदमी बारह बजे थका-मांदा लौटा। दिनभर का बाजार का काम। बिस्तर पर बैठकर उसने जूता खोला और जूता पटक दिया। जैसे ही एक जूता पटका, उसे याद आया कि कहीं नीचे के आदमी की नींद न टूट जाए, कोई झंझट आधी रात में खड़ी न हो जाए... उसने दूसरा जूता आहिस्ते से रख दिया। सो गया। कोई घंटेभर बाद किसी ने द्वार पर जोर से दस्तक दी, द्वार को झकझोरा। नींद टूटी, उठा। सोचा कौन होगा! वह नीचे वाला आदमी खड़ा था--आगबबूला, आंख खून से भरी! उसने पूछा कि दूसरे जूते का क्या हुआ? पहला गिरा, मैंने कहा कि महानुभाव आ गए; फिर दूसरा गिरा ही नहीं! मैंने बहुत हटाने की कोशिश की, बहुत हटाने की कोशिश की कि मुझे क्या लेना-देना, किसी का जूता. . . अगर कोई एक जूता पहन कर सोए भी तो सो सकता है, मगर मेरी आंखों में दूसरा जूता झूलने लगा, एक जूता पहने हुए सोया हुआ आदमी दिखाई पड़ने लगा! मैंने सब तरफ करवटें बदलीं, सोने की कोशिश की, राम-राम जपा, मंत्र याद किए, कुछ काम न आया। जूता झूलता ही रहा। इसलिए मैं आया हूं। कृपा करके इतना बता दें कि दूसरे जूते का क्या हुआ, ताकि मैं सो सकूं।
दबाओगे कुछ ऐसा ही झूलने लगेगा। इसलिए जिसने कामवासना को दबाया वह कामवासना से ही भर जाता है। तुम्हारे तथाकथित ब्रह्मचारी सिवाय कामवासना के और किसी चीज से भरे हुए नहीं होते। इसलिए यह आकस्मिक नहीं है कि तुम्हारे ऋषि-मुनियों की कथाओं में अप्सराएं आ जाती हैं और नग्न उसके आसपास नाचती हैं। किन अप्सराओं को पड़ी है! तुम किसी इसी आशा में एक आध दिन जाकर झाड़ के नीचे आंखें बंद करके मत बैठ जाना कि अब अप्सराएं आएंगी। अप्सराओं को अगर बुलाना हो तो पहले ऋषि-मुनियों की पूरी दमन की प्रक्रिया से गुजरना होगा; कामवासना को इस बुरी तरह दबाना होगा कि तुम्हारा सारा प्राणपण उसी वासना से भर जाए; तुम्हारे भीतर धुआं ही धुआं हो जाए कामवासना का। इस तरह लड़ना होगा कामवासना से कि तुम्हें सिवाय कामवासना के और किसी चीज की सुधि ही न रहे। तो फिर विभ्रम खड़ा होगा। फिर बैठ जाना एकांत में।

फिर जरूर आती हैं उर्वशियां, आकाश से उतरती हैं, नाचती हैं, रुनझुन करती हैं। फिर वे तुम्हें बहुत लुभाएंगी। और वहां कोई भी नहीं है-- तुम्हीं हो।
और यह जो तुम देख रहे हो, वह तुम्हारा खुली आंख का सपना है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं अगर कोई चीज बहुत देर तक दबाई जाए तो फिर आंख बंद करके सपना देखने की जरूरत नहीं रहती; आंख खुली ही रहे और सपना खड़ा हो जाता है। हेलूसिनेशन पैदा हो जाता है। विभ्रम पैदा हो जाता है। मनुष्य-जाति को अब तक दमन सिखाया गया है। मेरा संदेश हैः दमन नहीं। अपनी ऊर्जाओं से संघर्ष नहीं। अपनी ऊर्जाओं की समझ। अपनी ऊर्जाओं के साथ एक मैत्री। शत्रुता से कुछ भी हल न होगा। लड़े कि हारे। जीतने का उपाय है: जागो, समझो। ध्यान करो। कामवासना है तो कामवासना पर ध्यान करो। कामवासना है तो कामवासना की प्रक्रिया से गुजरो ध्यान पूर्वक, जागे हुए, सजग, हाथ में दीए को लिए हुए! और जल्दी ही तुम मुक्त हो जाओगे। तब एक ब्रह्मचर्य आता है, जो तुम्हारे तथाकथित ब्रह्मचारियों का ब्रह्मचर्य नहीं है। उस ब्रह्मचर्य की शोभा अनूठी है। उस ब्रह्मचर्य में कुछ दबाया नहीं गया है। रूपांतरित किया गया है। सारी ऊर्जा एक नए रूप में प्रकट होनी शुरू हुई है। ऊर्जा का तल बदला है, अभिव्यक्ति बदली है।
ऐसा ही समझो कि तुम्हारे हाथ में नई-नई किसी ने वीणा थमा दी, तुम क्या सोचते हो तुम दीपक राग गा सकोगे, कि बुझे दीए जल जाएं? हालांकि दीपक राग भी उस वीणा में छिपा पड़ा है। किसी बैजूबावरा के हाथ पड़ जाए, तो बुझे दीपक जल सकते हैं। वीणा यही है, मगर तुम्हें कुशलता सीखनी होगी। क्या तुम सोचते हो कि उठाकर एक हंटर और वीणा को मारने लगोगे, पीटने लगोगे, तो वीणा झुक जाएगी, अपने रहस्य तुम्हारे सामने खोल देगी और तुम दीपक राग गा सकोगे? तो तुम पागल हुए हो। तो तुम वीणा तोड़ डालोगे। दीपक राग तो दूर, उससे कोई भी राग नहीं उठेगा।
अधिकतर लोग अपनी जीवन-वीणा को इसी तरह तोड़ कर बैठ गए हैं। तुम्हारे मंदिरों में, तुम्हारे आश्रमों में जो लोग बैठे हैं, जिनको तुम महात्मा, साधु-संत कहते हो, इसी तरह के मुर्दे हैं, जिनकी वीणाएं टूट गई हैं। उनकी वीणा से कोई राग नहीं उठ रहा है। उदास, उत्सव-हीन, न कोई संगीत है, न कोई सुवास है। और ये रुग्ण विक्षिप्त लोग दूसरों को भी रुग्ण और किए जा रहे हैं। जो इन्होंने सीखा है वही दूसरों को सिखाए चले जा रहे हैं। ऐसे ही मनुष्य-जाति एक बड़े गहन रोग से उलझी है।
मैं तुम्हें एक ऐसा धर्म देना चाहता हूं, जो तुम्हें वीणा पर अंगुलियों को साधने की कला सिखाए; जो तुम्हें वीणा से मैत्री सिखाए; जो तुम्हें वीणा के तारों में छिपे हुए सूक्ष्म-सूक्ष्म स्वरों को अनुभव कराए, जो तुम्हें इतना कुशल बना दे कि किसी दिन दीपक राग उठे, कि बुझे दीए भी जल जाएं, ऐसा संगीत जन्मे।
परमात्मा ने तुम्हें जो दिया है वह व्यर्थ नहीं हो सकता। अगर तुम्हें सार्थकता न दिखाई पड़ती हो तो इतना ही समझना कि अभी तुम्हारे पास देखने की क्षमता नहीं है। परमात्मा ने तुम्हें जो दिया है सभी सार्थक है। देखते हो, बिजली तो कब से चमकती थी, करोड़ों साल से चमकती है, जब से पृथ्वी बनी तब से चमकती है और आदमी सिर्फ डरता था! और जब बिजली कड़कती थी आकाश में और मेघ घिरते थे तो आदमी घुटने के बल गिरकर इंद्र देवता की प्रार्थना करता था। सोचता था इंद्र नाराज हैं, कि इंद्र ने बिजली के माध्यम से अपनी प्रत्ययंचा खींची है, कि अपना धनुष उठाया है। आज हम जानते हैं, न कोई इंद्र है, न कोई इंद्र की नाराजगी है न कहीं कोई प्रत्ययंचा है, न कोई धनुष उठाया गया है। आज हम जानते हैं कि विद्युत जगत की एक ऊर्जा है। आज हम ऊर्जा को पहचान गए, तो आज विद्युत तुम्हारी सेवक हो गई है, घरों में पंखे चला रही है। इंद्र महाराज पंखों में बंद हैं, बिजली के बल्ब जला रहे हैं, चूल्हे पर रोटी सेक रहे हैं। इंद्र महाराज! भूल-भाल गए प्रत्ययंचा, अब न मालूम कितने काम करने पड़ रहे होंगे। वैक्यूम क्लीनर से घर का कचरा साफ कर रहे हैं। इंद्र महाराज!
ऐसी ही ऊर्जाएं तुम्हारे भीतर हैं। तुम्हारा भीतर का आकाश भी बहुत सी बिजलियों से भरा है। कामवासना वैसी ही बिजली है, वैसी ही विद्युत की कड़क

है। नहीं जानोगे तो घबड़ाओगे, डरोगे, घुटने टेक दोगे। नहीं जानोगे, आंख छिपा लोगे, भागोगे। तुम जानोगे, पहचानोगे, तो यही बिजली परमात्मा के रास्ते पर रोशनी बनेगी, इसी से दीये जलेंगे।
मेरा संदेश हैः संसार को इतना प्रेम करो कि संसार में परमात्मा को पा सको। कहीं और कोई परमात्मा नहीं है। और परमात्मा को मान मत लेना--जानना है, खोजना है। अपने को अंगीकार करो। अपने को अंगीकार करने में ही तुमने परमात्मा और अपने बीच संबंध जोड़ा। अपने को अस्वीकार मत करो। तुम जैसे हो भले हो। उसके हस्ताक्षर तुम्हारे ऊपर हैं। तुम उसकी निर्मिति हो।
मैं मनुष्य को यह गौरव और गरिमा देना चाहता हूं। पुराने धर्मों ने तुम्हें पापी कहा है। पुराने धर्मों ने तुम्हें इतना निंदित किया है कि तुम्हारे भीतर बड़ा अपराध का भाव पैदा हो गया है। मैं तुम्हें अपराध के भाव से मुत्त करना चाहता हूं। तुम पापी नहीं हो। तुम्हारे भीतर पुण्य के बहुत से बीज पड़े हैं जो खिलने के लिए तत्पर हैं, जो फूल बनना चाहते हैं। खाद दो। सम्हालो उन्हें। तुम्हारे भीतर बड़ी हरियाली प्रकट होना चाहती है। तुम अगर रेगिस्तान हो तो सिर्फ तुम्हारा जुम्मा है। यह रेगिस्तान लहलहाता हुआ उपवन बन सकता है।

दूसरा प्रश्नः
आग में जल गयी यह दीवानी
भस्म हुई अब फिरती है
सिंदूरी मेघा बरसे
रिमझिम बरसे रुनझुन बरसे
जितने भीगे उतने तरसे।
मंजिल का भी होश नहीं
राहों का भी ज्ञान नहीं
अंतरघट में किरणें उतरीं
हृदय कंवल है खिलता जाता।
किंतु प्रभु! दृष्टि तुम्हारी एक
सारी पीड़ा हर लेती है
भस्मित करके जीवित करते
कितनी करुणा बरसाते हो!

निरुपम! तू तो सधुक्कड़ी भाषा सीख गई!
सधुक्कड़ी भाषा बड़ी प्यारी भाषा है। सधुक्कड़ी भाषा का अर्थ होता हैः जैसा है वैसा ही बिना लाग-लपेट के कह देना। सधुक्कड़ी भाषा का अर्थ होता हैः भाव को कच्चे-कच्चे बाहर ले आना; उन्हें मर्यादा न देना, व्यवस्था न देना, उन्हें गणित, तर्क और व्याकरण के नियम न देना। सधुक्कड़ी भाषा का अर्थ होता हैः सहज निवेदन। समझे कोई समझे, न समझे कोई न समझे।
कबीरदास ने कहा हैः एक अचंभा मैंने देखा, नदिया लागी आगि! क्या समझोगे? ... नदिया लागी आगि! एक अचंभा मैंने देखा, मछली चढ़ गई रुख! वृक्ष पर मछली चढ़ गई, क्या समझोगे? समझना कठिन हो जाएगा। बात समझने की कम, अनुभव की ज्यादा है। ऐसा उलटा हो रहा है दुनिया में, इसलिए कबीर ने कहा है।
देखो, आदमी के भीतर परमात्मा बैठा है और आदमी सारे जगत में खोज रहा है--एक अचंभा मैंने देखा, नदिया लागी आगि! आदमी जिसे खोज रहा है वह खोजने वाले में छिपा है और मजा है कि आदमी खोजता ही चला जाता है और खोजने के कारण ही खोज नहीं पाता है।
कबीर अगर आज होते तो.जरा मुश्किल में पड़ते; ये वचन आज नहीं बोल सकते थे। क्योंकि अभी ऐसा होने लगा है, अमरीका की नदियों में कभी-कभी आग लग जाती है, क्योंकि इतना तेल नदियों में मिल गया है, पैटरेल, तेल, फैक्टी... सारी नदियां इस तरह विषाक्त हो गई हैं कि अमरीका की नदियों में कभी-कभी आग लग जाती है। ख्याल रखना, अभी कुछ दिन पहले एक झील में आग लग गई थी। कबीर आज होते तो न कहते यह, कि एक अचंभा मैंने देखा। अचंभा ही नहीं रहा अब कुछ इसमें। मगर तब यह बड़ी अचंभे की बात थी। कबीर इशारा कर रहे थे।

ऐसे ही निरुपम! अच्छा हुआ कि ऐसे सधुक्कड़ी वचन तेरे भीतर पैदा होने शुरू हुए। अच्छे लक्षण हैं! मेघ घिरने लगे--आषाढ़ के पहले मेघ! जल्दी ही वर्षा होगी। तैयार करो अपने को।
आग में जल गई यह दीवानी
भस्म हुई अब फिरती है।
ऐसा होता है। जलकर ही तो जीवन मिलता है। अचंभे की बातें हैं, साधारण तर्क के बाहर हैं। जो अपने को बचाता है, खो देता है। जो अपने को खोने को तत्पर है, पा लेता है। जो मझधार में डूब जाता है उसे किनारा मिल जाता है। और जो किनारे की तलाश करता है वह मझधारों में डूब जाता है। ऐसा ही है।
जिंदगी के नियम तुम्हारे साधारण गणित के नियम नहीं है। जिंदगी के नियम तुम्हारे साधारण गणित के नियम से बहुत भिन्न हैं।
एक तो साधारण गणित है, जिसमें दो और दो चार होते हैं। एक प्रेम का गणित है, जिसमें दो मिलकर एक हो जाता है।
आग में जल गई यह दीवानी
भस्म हुई अब फिरती है
सिंदूरी मेघा बरसे
रिमझिम बरसे रुनझुन बरसे
जितने भीगे उतने तरसे!
सच। जितना भीगोगे उतने तरसोगे। जितना पियोगे, प्यास बढ़ती चली जाएगी।
यह परमात्मा के साथ नाता जोड़ना, ऐसी ही अनंत प्यास के साथ नाता जोड़ना है। यह कुछ पीने से बुझने वाली नहीं है, मिटने वाली नहीं। और भक्त चाहता भी नहीं कि मिटे; क्योंकि प्यास मिट जाएगी तो फिर परमात्मा को कैसे पिएगा? तो भक्त कहता है: तड़फाओ मुझे! जलाओ मेरी प्यास को, बढ़ाओ मेरी प्यास को। मुझे और दीवाना करो। बरसो मेरे ऊपर। मगर मेरी प्यास को बुझा मत देना। क्योंकि प्यास बुझ गई तो फिर जीवन कहां!
संसार की तो प्यासें बुझ भी जाएं, परमात्मा की प्यास कभी नहीं बुझती। जितना मिलन होता है उतना ही पास आने का मन होता है और पास से भी पास, और पास से भी पास और इस यात्रा का कोई अंत नहीं है! परमात्मा की यात्रा शुरू होती है, समाप्त नहीं होती। उसका पहला पृष्ठ तो है, अंतिम पृष्ठ नहीं है। जितने भीगे उतने तरसे
मंजिल का भी होश नहीं
राहों का भी ज्ञान नहीं।
जरूरत भी नहीं। मंजिलों का होश और राहों का ज्ञान--सब बुद्धि के हिसाब हैं। प्रेमियों को क्या चिंता पड़ी! प्रेमी तो लड़खड़ाए चले जाते हैं। और किसी भी दिशा में चल पड़ें, अगर हृदय में प्रेम है तो उससे मिलना हो जाता है। और अगर हृदय में प्रेम न हो तो तुम जाओ काशी, तुम जाओ काबा, उससे मिलना नहीं होगा। उससे मिलना दिशाओं में थोड़े ही होता है; उससे मिलना तो अंतरतम में होता है। किन्हीं मार्गों पर चलकर थोड़े ही हम उस तक पहुंचते हैं। वह तो हम में आया ही हुआ है, सदा से आया हुआ है। जब सब मार्ग छूट जाते हैं तब उसके दर्शन होते हैं।
इसलिए कहा सधुक्कड़ी भाषा। मार्गों से वह नहीं मिलता, मार्गों के छूट जाने से मिलता है। दौड़ोगे, चूकोगे। रुक जाओ, पा लोगे।
अंतरघट में किरणें उतरीं
हृदय कंवल है खिलता जाता।
रास्ते खो जाएंगे, मंजिलें खो जाएंगी, तभी किरणें उतरनी शुरू होती हैं। किरणें भी ऐसी कि बाहर के सब सूरज फीके हैं। किरणें भी ऐसी कि एक-एक किरण में हजार-हजार सूरज छिप जाएं।
अंतरघट में किरणें उतरीं
हृदय कंवल है खिलता जाता।
और हृदय-कमल खिलता ही जाता है, खिलता ही जाता है। इसलिए हमने मनुष्य
की अंतिम चेतना की अभिव्यक्ति को सहस्रदल कमल कहा है, हजार पंखुड़ियों वाला कमल! हजार प्रतीक-अंक है। उसका मतलब होता है असंख्य! पंखुड़ियों पर पंखुड़ियां खुलती चली जाती हैं। यह खुलना कभी बंद नहीं होता।

मनुष्य अपने में कितना छिपाए है, हमें पता ही नहीं। एक छोटे से बीज को देख कर कह सकते हो कितना इसमें छिपा है? वैज्ञानिक से पूछो, वह कहता है सब छिपा है, एक-एक पत्ता। अगर यह वृक्ष होकर हजार साल जिएगा तो उस हजार साल में जितने पत्ते पैदा होंगे सब छिपे हैं; जितने फूल लगेंगे, सब छिपे हैं; जितने फल लगेंगे, सब छिपे हैं; जितने बीज लगेंगे, सब छिपे हैं। वैज्ञानिक कहते हैं: एक छोटा सा बीज सारी पृथ्वी को हरियाली से भर सकता है। इतनी उसकी विराट क्षमता है! तो फिर आदमी के चैतन्य के बीज की तो क्षमता और भी विराट निश्चित ही होगी।
एक व्यक्ति के भीतर की रोशनी सारे जगत को रोशन कर सकती है। ऐसा ही तो कभी-कभी हो जाता है--किसी बुद्ध के पैदा होने पर, किसी मुहम्मद के पैदा होने पर। जिनके पास आंखें हैं, वे चल पड़ते हैं रोशनी की तलाश में। जिनके पास थोड़ा भी हृदय है--सजग, संवेदनशील--उनके भीतर भनक पड़ने लगती है, कंपन होने लगता है।
किंतु प्रभु! दृष्टि तुम्हारी एक
सारी पीड़ा हर लेती है।
पीड़ा ही क्या है? पीड़ा यही है कि उससे मिलन कब होगा। तो स्वभावतः उसकी
एक दृष्टि भी पड़ जाए तो बरस गए मेघ! जन्मों-जन्मों की प्यासी धरती हरी हो उठी!
दुख क्या है जीवन में? एक ही दुख है कि हम अपने मूलस्रोत से कैसे जुड़ जाएं? हम अपनी जड़ें भूल गए हैं। हम अपना घर भूल गए हैं। उस घर में हमारी वापसी कैसे हो जाए?
निश्चित ही एक झलक काफी है। एक आंख उसकी पड़ जाए कि फिर हम दुबारा वही नहीं हो सकते जो थे। हम कुछ के कुछ हो गए। हम नए हो गए। एक आंख की झलक और सारे रोएं बदल गए हैं। रोआं-रोआं, कण-कण, दिल की धड़कन-धड़कन गूंज उठी, नाच उठी!
भस्मित करके जीवित करते
कितनी करुणा बरसाते हो!
इसलिए मैंने कहा कि निरुपम, अच्छा हुआ, तेरे भीतर सधुक्कड़ी भाषा पैदा
हो रही है। ऐसा ही राज है उसका। मिटाता है, मिटा कर बनाता है।
जीसस ने कहा है: जो मिटेंगे, वही केवल उसे पा सकेंगे।
एक अंधेरी रात में निकोदेमस नाम का एक बहुत प्रसिद्ध विचारक जीसस को मिलने आया था। और उसने जीसस से पूछा कि मैं परमात्मा को कैसे पा सकता हूं? जीसस ने कहाः धर्म के नियमों का पालन करते हो? उसने कहा: पालन करता हूं अक्षरशः, एक-एक नियम का पालन करता हूं। और वह झूठ नहीं बोल रहा था, वह जाना- माना नीतिज्ञ था, जाना-माना चरित्रवान व्यक्ति था, उसकी बड़ी ख्याति थी। जीसस को तो कोई भी नहीं जानता था, निकोदेमस बहुत प्रसिद्ध था। यहूदियों के सबसे बड़े मंदिर का वह भी एक आचार्य था।
जीसस ने पूछाः तो फिर एक ही कमी रह गई है, अगर सब नियमों का पालन करते
हो और परमात्मा नहीं मिला और तुम्हें मुझसे पूछने आना पड़ा... तो सिर्फ एक ही बात की कमी रह गई है।
निकोदेमस ने पूछाः कहो किस बात की कमी, मैं पूरा करूंगा।
जीसस ने कहा: अनलेस यू आर बार्न अगेन... जब तक कि तुम्हारा फिर से जन्म
न हो, तब तक तुम उसे न पा सकोगे।
निकोदेमस ने कहा: फिर से जन्म! तो क्या मुझे मरना होगा?
जीसस ने कहा: मरना ही होगा। मिटना ही होगा। तुम्हारी तरफ से तुम्हें मरना ही होगा, मिटना ही होगा। जैसे बीज जमीन में गिरता है और मिट जाता है, ऐसे तुम जिस दिन मिट जाओगे उस दिन तुम्हारे भीतर से अंकुरण होगा।
धर्म मिटने की कला है--और पाने की भी। धर्म सूली है--और सिंहासन भी।

तीसरा प्रश्न: संसार में इतना दुख क्यों है?

संसार में दुख नहीं है। संसार में देखो, आदमी को हटा दो, .जरा आदमी को बाद कर दो, संसार में कहां दुःख है? पक्षियों के गीत सुनो, वृक्षों में

खिले फूल देखो, कहीं दुःख की छाया भी मालूम पड़ी है? आकाश के तारों से मुलाकात लो, सुबह उगते सूरज को देखो, वृक्षों से गुजरती हवाओं का नाच, सागर की तरफ दौड़ती हुई नदियों की गति, कहां दुःख है?
संसार में कोई दुःख नहीं है। दुःख है तो आदमी के मन में है। दुःख आदमी
की ईजाद है। दुःख आदमी का आविष्कार है।
ये रस की सेज, ये सुकुमार, ये सुकोमल गात
नैन कमल की झपक, कामरूप का जादू
ये रसमसाई पलक की घनी-घनी परछांई
फलक पे बिखरे हुए चांद और सितारों की
चमकती उंगलियों से छिड़के राज फितरत के तराने जागने वाले हैं, तुम भी जाग उठो यह महवे-ख्वाब हैं, रंगीन मछलियां तहे-आब
कि हौजे-सहन में अब इनकी चश्मकें भी नहीं
ये सरनिगूं हैं सरे-शाख फूल गुड़हल के
कि जैसे बेबुझे अंगारे ठंडे पड़ जाएं।
ये चांदनी है कि उमड़ा हुआ है रस-सागर
एक आदमी है कि इतना दुःखी है दुनिया में।
चांदनी देखते हैं! चांद से बरसता रस का सागर देखते हैं!
ये चांदनी है कि उमड़ता हुआ है रस-सागर!
एक आदमी है कि इतना दुःखी है दुनिया में।
दुनिया में दुःख नहीं है। नहीं, .जरा भी नहीं। दुनिया तो महत आनंद-उत्सव में लीन है। अस्तित्व तो परमात्मा के साथ नाच रहा है--उसका नृत्य है। जंगल में भागते हुए हिरणों की कतारें देखीं! पशुओं की आंख में झांक कर देखा, कैसा सन्नाटा है! कैसी निर्दोष भाव-भंगिमा! मोर को नाचते देखा! कोयल को पुकारते सुना है! इस सबसे तुम्हें खबर मिलती है कि संसार में दुःख है? संसार तो रस का सागर है। रसो वै सः! उस रस से उतरा है, रस का ही सागर है। परमात्मा तो रस-रूप है, मगर आदमी का मन इस रस के सागर से टूट गया है। आदमी ने अपने अहंकार में अपने को अस्तित्व से पृथक कर लिया है, अजनबी कर लिया है, अपने को दूर-दूर कर लिया है। चारों तरफ अहंकार की एक लक्ष्मण-रेखा खींच दी है, उसके बाहर नहीं जाता। उसके भीतर दुःख है। तुम्हारी मान्यता में दुःख है। और अगर तुम्हारी मान्यता में दुःख है तो फिर संसार में भी तुम्हें सुख दिखाई नहीं पड़ेगा।
तुमने कभी ऐसे आदमी को देखा, जिसको तुम कहो कि देखो कितना प्यारा चांद निकला है और वह कहे क्या प्यारा है इसमें? चांद है, चांद जैसा चांद है! निकलता ही रहा है, निकलता ही रहेगा, इसमें प्यारा क्या है? तुमने ऐसे आदमी से बात की कभी कि फूल खिले और तुम कहो कि देखो फूल खिला और वह कहे कि मुझे भी दिखाई पड़ रहा है, पर इससे क्या?
फितरत के पुजारी कुछ तो बता,
क्या हुस्न है इन गुलजारों में?
है कौन-सी रअनाई आखिर,
इन फूलों में, इन खारों में?
वो ख्वाह सुलगते हों शब भर,
वो ख्वाह चमकते हों शब भर मैंने भी तो देखा है अकसर, क्या बात नई है तारों में? इस चांद की ठंडी किरनों से मुझको तो सुकूं होता ही नहीं; मुझको तो जुनूं होता ही नहीं, जब फिरता हूं गुलजारों में। ये चुप-चुप नर्गिस की कलियां क्या जाने कैसी कलियां हैं? जो खिलती हैं, जो हंसती हैं और फिर भी हैं बीमारों में।

दरिया के तलातुम का मंजर हां तुझको मुबारिक हो लेकिन,
इक टूटी-फूटी कश्ती भी
टकराती है मंझधारों में।
कोयल के रसीले गीत सुने
लेकिन ये कभी सोचा तूने,
हैं उलझे हुए नगमे कितने
इक साज के टूटे तारों में?
कुछ लोग हैं, जो सिर्फ टूटे हुए साज के नगमे ही सुनते हैं।
कोयल के रसीले गीत सुने
लेकिन ये कभी सोचा तूने
हैं उलझे हुए नगमे कितने
इक साज के टूटे तारों में?
कुछ लोग हैं जो आदमी नहीं देखते, लाशें गिनते हैं। कुछ लोग हैं जो जिंदगी नहीं देखते, जो मौत का हिसाब लगाते हैं। कुछ लोग हैं, जो गुलाब की झाड़ के पास खड़े होकर फूल नहीं देखते, कांटे गिनते हैं। फिर उनके लिए दुःख ही दुःख है।
दुःख तुम्हारी दृष्टि में है, तुम्हारे चुनाव में है। संसार तो कोरा कागज है, चाहो तो स्वर्ग लिखो उस पर, चाहो तो नरक लिखो उस पर। संसार तो दर्पण है; तुम जैसे हो वही उसमें दिखाई पड़ जाएगा।
एक ईसाई पादरी अपने शिष्यों को समझा रहा था। शिष्य तैयार हो गए थे, दूर यात्राओं पर जा रहे थे--और-और लोगों को ईसाई बनाने। पादरी ने समझाया कि सुनो, जब तुम समझाओ लोगों को, तो जो-जो तुम समझाओ उसकी भाव-भंगिमा भी प्रकट करना। ऐसे ही मत समझाए जाना ग्रामोफोन के रिकार्ड की तरह, नहीं तो लोगों पर असर नहीं पड़ता। जैसे, उदाहरण के लिए, जब तुम स्वर्ग की बात करो, तो चेहरे पर एकदम स्वर्गीय आभा को प्रकट करना, मस्त हो जाना, जैसे शराब पी ली हो! मस्ती में डोलने लगना। आंखें ऊपर चढ़ जाएं! आकाश की तरफ देखना, हाथ उठा देना कि लोग भी अचंभे में आ जाएं।
एक युवक ने खड़े होकर पूछा कि यह तो ठीक है गुरुदेव, नरक का वर्णन करते समय क्या करना? तो ईसाई पादरी ने कहाः तुम्हारी जैसी शकल है वही काम कर जाएगी। कुछ विशेष भाव-भंगिमा की जरूरत नहीं। तुम जैसे हो बस ऐसे ही खड़े हो जाना। पर्याप्त है। तुम्हें देख कर भरोसा आ जाएगा कि नरक है।
एक युवती एक युवक के प्रेम में थी। मां भी चाहती थी कि विवाह हो जाए। लेकिन युवती ने एक दिन अपनी मां को कहा कि और सब तो ठीक है, उसे धर्म में बिल्कुल विश्वास नहीं है--उस युवक को। क्या यह उचित है कि हम ऐसे आदमी से विवाह करें जिसे धर्म में विश्वास न हो?
मां ने पूछाः तू विस्तार की बात कर। क्या मतलब? धर्म में विश्वास नहीं, किस बात में विश्वास नहीं?
लड़की ने कहाः जैसे उदाहरण के लिये, उसे नर्क में विश्वास नहीं मां ने कहाः पागल, छोड़ फिकर। हम दोनों के बीच एक दफा आ जाने दे, विश्वास दिला देंगे। एक दफा हम दोनों के बीच पड़ भर जाए, नरक में उसे निश्चित विश्वास आ जाएगा।
विवाह के पहले जिन्हें नरक में विश्वास नहीं होता, विवाह के बाद हो जाता है। अनुभव से हो जाता है। स्वर्ग में चाहे अविश्वास रहे, नरक में अविश्वास नहीं रह सकता।
तुम कैसे जी रहे हो, उस पर सब निर्भर है। ऐसा तो पूछो ही मत कि संसार में इतना दुःख क्यों है। संसार में कोई दुःख नहीं है। तुम्हारी दृष्टि दुःख को चुननेवाली दृष्टि है। तुम दुःखों को संग्रहीत करते हो। फिर स्वभावतः संसार में दुःख ही दुःख दिखाई पड़ता है।
कहते हैं, किसी आशावादी से पूछो तो वह कहेगा, दो दिनों के बीच में एक रात होती है; और किसी निराशावादी से पूछो तो वह कहेगा, दो रातों के बीच में एक दिन होता है।

पश्चिम का एक बड़ा विचारक, डीनइंगे, बहुत निराशावादी था। एक जगह बोल रहा था। उसने निराशा के बड़े चित्र खींचे। किसी व्यक्ति ने खड़े होकर पूछा कि आप महानिराशावादी हैं। आपकी बातें सुन-सुन कर मैं तक निराश हुआ जा रहा हूं। आपसे बड़ा निराशावादी मैंने नहीं देखा।
डीनइंगे ने कहाः क्या कहा? मैं और निराशावादी! गलत। क्योंकि मैं जितनी निराश अपेक्षाएं करता हूं जिंदगी से, जिंदगी उससे भी ज्यादा बदतर साबित होती है। मैं निराशावादी नहीं हूं। मेरा सब निराशावाद जिंदगी से कम बदतर है। मैं जो सोचता हूं उससे भी बुरा सिद्ध होता है।
एक आशावादी होता है।
मैंने सुना है कि एक आशावादी न्यूयार्क के एक मकान से गिर पड़ा, कोई पचास मंजिल मकान से। गिरते, राह में खिड़कियों से लोगों ने झांक कर पूछा कि भाई क्या हाल है? उसने कहाः अब तक सब ठीक है।
एक आशावाद है जीवन का। आशा हो तो बड़े फूल खिलते हैं। तुम पर निर्भर है। यह जिंदगी नरक बन जाती है, स्वर्ग भी बन जाती है। और इस जिंदगी से एक और नया द्वार खुलता है, जिसको हम मोक्ष कहते हैं। जब यह समझ में आ जाता है किसी व्यक्ति को कि जिंदगी पर मैं जो चाहूं वही रंग भर दूं, नरक का चाहूं तो नरक का, स्वर्ग का चाहूं तो स्वर्ग का--तब उसे एक अंतिम बात समझ आती हैः अगर जिंदगी में रंग ही न भरूं, न स्वर्ग का न नरक का, जिंदगी को खाली की खाली ही रहने दूं, तो क्या होगा? उस स्थिति की दशा मोक्ष है। कोई भी रंग नहीं भरा जाता। दिन भी ठीक और रात भी ठीक। रात आए तो रात ठीक और दिन आए तो दिन ठीक। सुख भी ठीक, दुःख भी ठीक, सब ठीक। ऐसा जो सर्व-स्वीकार का भाव है, जहां कांटों में और फूलों में भेद नहीं किया जाता, जहां जय और पराजय समान हो जाती है, जहां सफलता-विफलता में कोई अंतर नहीं रह जाता है--इस दशा को हमने मोक्ष कहा है। मोक्ष का अर्थ है: परम स्वतंत्रता। मन बिल्कुल गया। तो तीन बातें हैं। अगर मन निराशावादी हो तो संसार में दुःख ही दुःख है। और फिर तुम्हारी जितनी मर्जी हो उतना तुम दुःख बना सकते हो। संसार पूरी स्वतंत्रता देता है। कोरा कैनवास है। इससे तुम चाहो तो माइकल एंजिलो के अपूर्व चित्र उभर सकते हैं या पिकासो के। पिकासो के चित्र नरक का भरोसा दिलवा देंगे। नरक में भी इतनी गड़बड़ न होगा जितनी पिकासो के चित्रों में। मैंने सुना है, एक अमरीकी करोड़पति ने अपना चित्र बनवाया। पिकासो ने कहा, छः महीने लगेंगे। और बहुत दाम मांगे। लाखों डॉलर! उस करोड़पति ने कहा कि रुपए की तुम फिकर न करो। चित्र बन कर तैयार हुआ, वह करोड़पति लेने आया। उसने चित्र को सब तरफ से उलट-पलट कर देखा। उसने पूछा कि और सब तो ठीक है, नाक मुझे पसंद नहीं आई, नाक नहीं बनी। पिकासो ने कहा, यह बड़ी मुश्किल हो गई। अब बदलाहट नहीं हो सकती।
उसने पूछा, बदलाहट क्यों नहीं हो सकती? मैं और पैसा दूंगा।
पिकासो ने कहा, नहीं। बदलाहट हो ही नहीं सकती। पिकासो का एक शिष्य पास बैठा था, उसने कहा कि क्यों बदलाहट नहीं हो सकती? पिकासो ने कहा, भलेमानस, मुझे खुद ही पता नहीं है कि नाक मैंने कहां बनाई! बदलाहट कहां करनी है? नरक में कम से कम नाक तो साफ होती होगी। कहां कान, कहां नाक, कहां आंख... पिकासो के चित्रों में सब गड़बड़ हो जाता है। पिकासो का चित्र अपनी दीवाल पर रात लगाकर सो जाओ, रात तुम्हें दुख-स्वप्न आएंगे, भूत-प्रेत सताएंगे। कैनवास वही है।
मैंने माइकल एंजिलो के संबंध में यह कहानी सुनी है कि जब वह जीसस का अपना अपूर्व चित्र बना रहा था तो एक आदमी ने उसे रास्ते में गालियां दे दीं। उसका अपमान कर दिया। लेकिन उसने यह सोच कर कि अभी मैं जीसस में संलग्न हूं, इस झंझट में कहां पड़ूं! और जीसस ने कहा है, जो तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, तुम दूसरा उसके सामने कर देना। और जो तुम्हारा कोट छीने, कमीज भी दे देना। और जो तुमसे कहे कि मेरे साथ एक मील चलो और मेरा बोझा ढो दो, तो दो मील तक चले जाना। तो ऐसे आदमी का चित्र बना रहा हूं, अभी इस झंझट में नहीं पड़ना है।

वह चुपचाप सुन लिया और चला गया। मगर ऐसे कुछ आसान थोड़े ही है सुन लेना
और चला जाना। भीतर-भीतर आग उबलने लगी। उसका मन होने लगा कि सिर तोड़ देता उसका। ये जीसस बीच में आ गए, फिर देख लूंगा। अभी.जरा यह चित्र पूरा हो जाए। उस दिन उसने बहुत चेष्टा की। चित्र पूरा तैयार हो गया था, सिर्फ जीसस
के चेहरे पर बस आखिरी रंग भरने थे, मगर वे रंग न भरे जा सके। उसने सब तरह से चेष्टा की। लेकिन जीसस का चेहरा न उभरा सो न उभरा। अंततः उसे ख्याल में आया कि मैं इतने क्रोध से भरा हूं, इस अक्रोधी आदमी के चेहरे को मैं न उभार पाऊंगा। मैं इतनी आग से जल रहा हूं, मेरे भीतर तो वह आदमी घूम रहा है, उसकी गालियां गूंज रही हैं। इस आदमी के भीतर, जिसके भीतर ऋचाएं उठ रही थीं, इसके चेहरे को मैं कैसे बना पाऊंगा? मेरा तालमेल नहीं है।
अब तक ऐसी अड़चन न आई थी। उसने तूलिका रख दी, भागा हुआ गया। वह आदमी तो
सो गया था, रात हो गई थी, उसे उठाया, उसने क्षमा मांगी। कहा, मुझे माफ कर दो। उसने कहा, माफ करने की बात ही नहीं है; माफी मुझे मांगनी चाहिए। तुम तो कुछ बोले ही न थे। तुम मुझे अड़चन में डाल गए थे। मैं सोचने लगा, इसे क्या हो गया है? इसका दिमाग ठीक है कि कुछ गड़बड़ हो गया है? माफी मुझे मांगनी चाहिए। लेकिन माइकल एंजिलो ने कहा कि माफी मैं ही मांगता हूं, क्योंकि मैंने कहा तो कुछ नहीं, लेकिन भीतर आग जल गई। मुझे क्षमा कर दो।
जीसस का प्रसिद्ध वचन है: तुम मंदिर में जाओ और प्रार्थना करने लगो
और तुम्हें याद आ जाए कि तुमने किसी को क्षमा नहीं किया है, तुम किसी पर क्रुद्ध हो, तो पहले जाकर उसे क्षमा मांग आना, फिर ही प्रार्थना करना; अन्यथा तुम्हारी प्रार्थना में पंख नहीं होंगे। तुम्हारी प्रार्थना परमात्मा तक नहीं पहुंचेगी।
जब उसने क्षमा मांग ली, हलका हो गया, निर्भार हो गया, वापिस गया और घड़ीभर भी न लगी और जीसस का चेहरा उभर आया।
तुम मतलब समझे? जब तक जीसस जैसी भावदशा भीतर न हो, तब तक तुम बाहर जीसस
का चेहरा भी नहीं बना सकते। पिकासो भीतर नरक में जी रहा है। इस बसवीं सदी का सारा नरक, सारी सड़ांध, सारा उपद्रव, सारा वैमनस्य, दो महायुद्ध, उन महायुद्धों में कटे हुए हजारों लोग, बहा हुआ लहू, हिरोशिमा और नागासाकी-- वह सब पिकासो के भीतर भरा हुआ है। उसके चित्रों में बह जाता है।
तुम अपनी जिंदगी जो बना रहे हो, वह भी एक कैनवास है। तुम अपनी जिंदगी
को रंग रहे हो। उसमें अगर नरक उभर आता है तो समझना कि नरक तुम्हारे भीतर है। उसमें अगर स्वर्ग उभर आए तो समझना कि स्वर्ग तुम्हारे भीतर है। और ऐसा भी नहीं है कि कभी-कभी तुम्हें स्वर्गिक क्षणों का अनुभव नहीं होता। कभी- कभी होता है। तब जरा जांचना अपने भीतर कि क्या बात घट रही है। कभी-कभी भीतर सन्नाटा हो जाता है। तुम्हारे बावजूद हो जाता है। कभी सूरज को उगते देखते, डूबते देख कर, कभी पक्षियों को अपनी नीड़ की तरफ लौटते देख कर, तुम्हारे भीतर भी कुछ हो जाता है। कभी संगीत सुनते देखकर, कभी किसी बच्चे को हंसते देख कर, कुछ तुम्हारे भीतर हो जाता है, तब तुम भी क्षणभर को स्वर्ग से जुड़ जाते हो। मगर ये क्षण बड़े विरले हैं। अधिकतर तो तुम नरक में जीते हो।
पर ध्यान रखना, संसार न तो नरक है न स्वर्ग। यहीं हैं लोग, तुम्हारे ही पड़ोस में बैठे होंगे, जो स्वर्ग में जी रहे हैं; और यहीं वे लोग भी हैं जिन्होंने दोनों सत्य जान लिए कि स्वर्ग और नरक दोनों हमारे मन के खेल हैं, हमारा मनोविज्ञान है और उससे मुक्त हो गए। उन्होंने कैनवास को खाली छोड़ दिया। उस खाली कैनवास, उस शून्य का नाम समाधि है, उस शून्य का नाम मोक्ष है। वह परम दशा है। वहां शाश्वत शांति है। और अखंड आनंद है।
नरक में दुख है, स्वर्ग में सुख है। सुख और दुःख एक-दूसरे से जुड़े, एक
ही सिक्के के दो पहलू हैं। मोक्ष में न सुख है, न दुःख है। दोनों उपद्रव गए। दोनों उत्तेजनाएं गईं। मोक्ष उत्तेजना-शून्य है, निर्द्वंद्व, शांति--ऐसी परम दशा है जहां तुम भी नहीं; जहां कोई द्वैत, द्वंद्व नहीं; जहां तुम इस विराट ऊर्जा के साथ एक तरंग हो गए हो, एक लयबद्ध, एक छंद हो गए हो।
उसी छंदोबद्धता को पैदा कर सकूं, इसके लिए तुमसे बातें कर रहा हूं। उसी छंदोबद्धता में तुम्हें ले चल सकूं, इसलिए तुम्हें करीब अपने बुला

रहा हूं। वह छंद घटा है मेरे भीतर। मैं किसी शास्त्र के आधार पर तुमसे नहीं कह रहा हूं कि वह छंद घटेगा। वह छंद घटा है। मैंने तीनों बातें जान लीं। नरक के चित्र भी बनाकर देखे, स्वर्ग के चित्र भी बना कर देखे, फिर दोनों चित्र पोंछ डाले। कैनवास का सूनापन भी देखा है।

चौथा प्रश्न: मैं आपकी बातें सुन कर नशे में आ गया हूं। नाचना चाहता हूं, लेकिन मेरे पैरों में जंजीरें हैं। क्या इन जंजीरों से मुझे छुटकारा मिल सकता है?

नशा अभी पूरा नहीं आया। नहीं तो कौन फिकर करता है जंजीरों की! किसको याद रह जाती हैं जंजीरें! हां, थोड़ी-थोड़ी घूंट उतरी है गले के नीचे। थोड़ी- थोड़ी। और पियो!
मोहतसिब! साकी की चश्मे-नीम-वा को क्या करूं।
मैकदे का दर खुला गर्दिश में जाम आ ही गया।।
इक सितमगर तू कि वजहे-सद-खराबी तेरा दर्द।
इक बला-कश मैं कि तेरा दर्द काम आ ही गया।।
हमकफस! सय्याद की रस्मे-जबा-बंदी की खैर।
बेजबानों को भी अंदाजे-कलाम आ ही गया।।
मोहतसिब! साकी की चश्मे-नीम-वा को क्या करूं।
मैकदे का दर खुला गर्दिश में जाम आ ही गया।।
मधुशाला है यह। दरवाजा खुला है। दौर पर दौर चल रहे हैं। पीयो और पीने में संकोच न करो। जी भर कर पीयो। और जैसे ही तुम पूरी तरह पीयोगे, जैसे ही तुम पूरी तरह मस्त हो जाओगे, तुम चकित हो जाओगे--कहां की जंजीरें, कैसी जंजीरें! जंजीरें तुम्हारी मान्यता में हैं। कौन तुम्हें बांधे है? तुमने माना है कि बंधे हो, तो बंधे हो। तुम्हारी मान्यता है तुम्हारी जंजीरें।
मैंने सुना है, एक आदमी दस वर्ष से लकवे का मरीज था, बिस्तर पर पड़ा था। लकवे के मरीज अक्सर ही निन्यानबे प्रतिशत मानसिक मरीज होते हैं। दस साल से उठा नहीं, चला नहीं, बैठा नहीं। एक दिन घर में आग लग गई, आधी रात घर के लोग बाहर भागे। वह आदमी भी भाग खड़ा हुआ। वह उठता ही नहीं था, चलता ही नहीं था, बैठता ही नहीं था। अब घर में आग लगी हो तो कौन फिकर करता है लकवे की! यह लकवे की! यह कोई वक्त है लकवे की सोचने का? ये तो सब सुख-सुविधा की बातें हैं। याद ही न रही कि मैं लकवे का मरीज हूं! फुरसत कहां थी! इतना समय कहां था! रात आधी नींद में जगाया गया, घर में आग लगी है, सब भाग रहे हैं। एक तो नींद, आधी रात, अचानक जाग गया। कभी-कभी तुम्हें भी लगा होगा, एकदम अचानक कोई जगा दे तो तुम्हें समझ में नहीं आता, तुम कौन हो; समझ में नहीं आता, तुम कहां हो। जरा देर लगती है। और फिर आग लगी हो, तो और मुश्किल हो गई। वह भाग ही गया। जब बाहर पहुंच गया और भीड़ ने उसे भागते देखा तो लोगों ने पूछाः "अरे! यह क्या? आप तो लकवे के मरीज हैं।" वहीं गिर पड़ा! जैसे ही ख्याल आया... लकवे का मरीज!
जंजीरें! कैसी जंजीरें! किसने तुम्हें बांधा है? सब जंजीरें झूठी हैं। तुम सच मानो तो सच है।
गुरजिएफ ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि काकेसस पहाड़ के पास रहने वाला एक कबीला अपने छोटे बच्चों को... कबीले का जीवन.जरा संघर्ष का और कठिन है, पुरुषों को भी जंगल में मेहनत करने जाना पड़ता है। लकड़ियां काटो, शिकार करो। स्त्रियों को भी जाना पड़ता है। बच्चों को छोड़ देना पड़ता है। छोटे- छोटे बच्चे! जिंदगी.जरा मुश्किल है, सुविधापूर्ण नहीं है। तो उन्होंने एक तरकीब निकाल ली है, जिसका वे हजारों साल से उपयोग कर रहे हैं। वह तरकीब यह है कि छोटे बच्चे के चारों तरफ चाक से एक लकीर खींच देते हैं और बच्चे को कह देते हैं, इसके बाहर नहीं निकलना, कोई निकल ही नहीं सकता इसके बाहर! यह इतने बचपन से कही जाती है बात कि इसका भरोसा आ जाता है। यह एक तरह की हिप्नोसिस है, एक तरह का सम्मोहन हो जाता है। फिर बच्चा और बच्चों को भी देखता है। घर में सब अपनी-अपनी लकीरों में बंद हैं सब अपनी लकीरों में

बैठे हैं। बस लकीर तक आ सकते हैं। वहीं खेलते हैं, कूदते हैं; मगर लकीर के बाहर नहीं निकलते। लकीर के बाहर कोई निकल ही नहीं सकता है!
जब गुरजिएफ पहली दफा काकेसस के इन पहाड़ों में गया, तो वह चकित हुआ। बड़े आदमी के पास, जवान आदमी के पास लकीर खींच दो और कह दो कि इसके बाहर नहीं जा सकते, वह नहीं जा सकता। वह जा ही नहीं सकता! अगर कोशिश करेगा तो लकीर के पास जैसे कोई अदृश्य दीवाल उसे धक्के मारकर भीतर भेज देती है। वह अदृश्य दीवार कहीं भी नहीं है; पर उसके मन में, उसकी मान्यता में... ।
अगर तुमने सम्मोहन के संबंध में कुछ कभी समझा है तो तुम चकित हो जाओगे। किसी को सम्मोहित कर दो। और सम्मोहित करना बड़ी सरल बात है। बस कोई राजी भर हो, तुम पर भरोसा भर करता हो, तुम उससे कहना कि.जरा पांच मिनट तक बिना आंख को झपके बिजली के बल्ब को देखते रहो और तुम उसके पास बैठ कर कहते जाना कि बेहाशी आ रही है, बेहोशी आ रही है, बेहोशी आ रही है, बेहोशी आ रही है। और दस आदमियों पर प्रयोग करोगे तो तीन पर सफल हो जाओगे, क्योंकि तैंतीस प्रतिशत लोग हमेशा तैयार हैं सम्मोहित होने को। ये ही तैंतीस प्रतिशत लोग दुनिया के सब उपद्रव चलवाते हैं। ये आधारशिला हैं। ये दुनियाभर की राजनीति चलवाते हैं। इन्हीं के कारण हिटलर जैसे लोग पैदा हो जाते हैं। ये तैंतीस प्रतिशत लोग किसी के भी चक्कर में आने को तैयार होते हैं। ये आतुर होते हैं कि कोई चक्कर डाले। इन्होंने दुनिया को बड़े कष्ट में डाला है। और ये बुरे लोग नहीं हैं--सीधे-सादे भले लोग हैं।
पांच मिनिट के बाद जब उस आदमी की आंखें झपकने लगें, तब तुम समझ लेना, उसके चेहरे का भाव बदल जाएगा। एकदम से चेहरा निस्तेज हो जाएगा। वह जो चेहरे पर थोड़ा जीवन मालूम होता था, वह क्षीण हो जाएगा। जब चेहरा बिल्कुल निस्तेज हो जाए, जैसे मुर्दे का हो गया है, तो उस आदमी को कहना कि अब तुम लेट जाओ, तुम बिल्कुल बेहोश हो गए। अब इस बेहोशी की हालत में तुम उससे जो कहोगे वह मानेगा। तुम अगर उसके हाथ पर एक साधारण कंकड़ उठा कर रख दोगे और कहोगे कि यह अंगारा है तो वह चीख मार कर कंकड़ को फेंक देगा। इसमें बहुत आश्चर्य नहीं है कि उसने चीख मार कर अंगारा फेंक दिया, आश्चर्य तो तब तुम्हें होगा जब उसके हाथ पर फफोला उठ आएगा। इतना मन मान लेता है कि हाथ पर फफोला आ जाता है!
इसकी ही उलटी प्रक्रिया है, जो लोग आग पर चलते हैं, कुछ भिन्न नहीं हैं, सम्मोहन की ही प्रक्रिया है। इससे उलटी प्रक्रिया है। उसमें.जरा और गहरा सम्मोहन चाहिए। और गहरा सम्मोहित आदमी हो, उसके हाथ पर अंगारा रख दो और कहो कि यह साधारण कंकड़ है, ठंडा कंकड़, और हाथ नहीं जलेगा।
मन जो मान लेता है वैसा हो जाता है। मन की बड़ी क्षमता है।
तुम किन जंजीरों की बातें कर रहे हो? वे जंजीरें तुम्हारी मन की मानी हुई हैं। सोचते होओगे कि पत्नी है, बच्चा है। कौन किसका है! सोचते होओगे कि गांव में प्रतिष्ठा है, नाम है। लोग क्या कहेंगे कि तुम और नाचने लगे दीवाने की तरह! अच्छे-भले गए थे, यह तुम्हें क्या हो गया? मगर प्रतिष्ठा नाम, यश सब तुम्हारी मान्यता है।
आहे-जांसोज की महरूमी-ए-तासीर न देख।
हो ही जाएगी कोई जीने की तदबीर न देख।।
हादसे और भी गुजरे उल्फत के सिवा।
हां मुझे देख मुझे अब मेरी तस्वीर न देख।।
ये.जरा दूर पे मंजिल ये उजाला ये सुकूं।
ख्वाब को देख अभी ख्वाब की ताबीर न देख।।
देख जिंदां से परे रंगे-चमन, जोशे-बहार।
रक्स करना है तो फिर पांव की जंजीर न देख।।
नाचना है तो फिर पांव की जंजीर न देख!
देख जिंदां से परे रंगे-चमन जोशे-बहार
जिस कारागृह में तुम बंद हो, उसकी तरफ तुम्हारी आंखें उठाने के लिए पुकार रहा हूं, कि.जरा आंखें खोलो, .जरा आंखें ऊपर उठाओ!
देख जिंदां से परे रंगे-चमन जोशे-बहार

बसंत आया हुआ है। फूल खिले हुए हैं। पक्षी मदमस्त हैं। सारा अस्तित्व रसविमुग्ध है।
देख जिंदां से परे रंगे-चमन जोशे-बाहर।
रक्स करना है तो फिर पांव की जंजीर न देख।।
और नाचना है तो फिर पांव की जंजीर देखो ही मत। और मैं तुमसे कहता हूं
और मैं तुम्हें आश्वासन देता हूं कि अगर तुम नाचे तो पांव की जंजीर पायल बन जाएगी। मैंने पांव की जंजीर को पायल बनते देखा है, इसलिए कहता हूं। ये तुम्हीं थोड़े ही पहली दफा यहां आए हो, यहां सभी इसी तरह आते हैं और सभी जंजीरों से भरे आते हैं। और फिर नाचने लगते हैं तो चकित हो जाते हैंः वही जंजीर जो कल रोकती थी, नाच में ताल देने लगती है। वही जंजीर, जो कल जंजीर थी, पायल बन जाती है। उसकी रुनझुन से गीत प्रकट होने लगते हैं।
लेकिन तुमने अभी जरा-जरा चखा, इसलिए प्रश्न उठ रहे हैं। थोड़ा और पीयो। थोड़े और करीब आओ। थोड़ी और मस्ती में डूबो। यहां मैं तुम्हें उदासी सिखाने के लिए नहीं बैठा हूं। यहां मैं तुम्हें जीवन का रस सिखाना चाहता हूं। मैं नहीं चाहता कि मेरे संन्यासी उदास दिखें, विरक्त दिखें। मैं चाहता हूं, मेरे संन्यासी परमात्मा पर आसक्त दिखें, परमात्मा के प्रति रस-भरे हों। और यह जगत उसका है और यह जगत उसकी ही छाया है। इसलिए इस जगत के प्रति भी रस-भरे हों।
तुम नाचो, तुम्हारी जंजीरें भी नाचेंगी। तुम नाचो, तुम्हारी पत्नी भी कभी नाचेगी, तुम्हारे बच्चे भी कभी नाचेंगे। तुम नाचना तो शुरू करो! यह संक्रामक है, यह फैलता चला जाता है।

आखिरी प्रश्न: आपने हजारों को अपने रंग में रंग दिया है, इसके पीछे जादू क्या है?

जादू परमात्मा का है, मेरा उसमें कुछ भी नहीं है। जहां तक मेरा-तेरा है, वहां तक जादू आता ही नहीं। जहां मेरा-तेरा गया, वहीं से जादू की शुरुआत है।
वही रंग रहा है। रंग उसका है।
ऐसे ही समझो, जैसे तुम तूलिका को लेकर और चित्र बनाते हो। तूलिका थोड़े
ही चित्र बनाती है। तूलिका तो किसी के हाथ में होती है। मैं उसके हाथ में हूं। जीते तो वह, हारे तो वह। मैं बिल्कुल निश्चिंत हूं। अपना कुछ लेना- देना नहीं। कोई चेष्टा थोड़े ही कर रहा हूं लोगों को रंगने की। देखते हो, अपने कमरे से बाहर भी नहीं जाता। लेकिन लोग आए चले जाते हैं! न मालूम कौन उन्हें बुलाए लाता है!
मैं अकेला ही चला था जानिबे-मंजिल मगर।
मैं अकेला ही चला था जानिबे-मंजिल मगर।
लोग साथ आते गए और कारवां बनता गया।।
मैं तो जब मानूं कि भर दे सागरे-हर-खासो-आम।
यूं तो जो आया वही पीरे-मुगां बनता गया।।
जिस तरफ भी चल पड़े हम आबला पायाने शौक।
खार से गुल और गुल से गुलिस्तां बनता गया।।
शरहे-गम तो मुख्तसर होती गई उसके हुजूर।
लफ्ज जो मुंह से न निकला, दास्तां बनता गया।।
मैं अकेला ही चला था जानिबे-मंजिल मगर।
लोग साथ आते गए और कारवां बनता गया।।
यह सब कैसे हो रहा है, मुझे पता नहीं। तुम यहां कैसे आ गए हो, मुझे पता नहीं। कौन तुम्हें ले आया है, मुझे पता नहीं।
लेकिन जिनकी प्यास है वे खोजने निकलते हैं। जहां उन्हें सरोवर की खबर मिल जाती है, उसी तरफ चल पड़ते हैं। संसार में अभी वैसे दुर्भाग्य का दिन नहीं आया जब लोग सत्य की खोज बंद कर देते हैं।
नीत्शे ने कहा हैः वह दिन सबसे बड़े दुर्भाग्य का दिन होगा जब मनुष्य मनुष्य से ऊपर उठने की आकांक्षा छोड़ देगा। वह दिन सबसे दुर्दिन होगा, जब

मनुष्य की प्रत्ययंचा पर परमात्मा को खोजने के लिए तीर न चढ़ेगा। नहीं, वह दुर्दिन अभी नहीं आया और वह दुर्दिन कभी भी नहीं आएगा। वह आ ही नहीं सकता। लोगों को परमात्मा को खोजना ही पड़ता है। देर-अबेर! आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों। ज्यादा से ज्यादा तुम देर कर सकते हो, मगर सदा के लिए टाल नहीं सकते इस खोज को। इस खोज को अगर तुम ठीक-ठीक समझो तो मैं कहता हूं आनंद की खोज। कैसे इससे बचोगे? धन में भी उसी को खोजते हो, फिर नहीं पाते। पद में उसी को खोजते हो, फिर नहीं पाते। जब सब तरफ टटोल लेते हो, सब द्वार खटखटा लेते हो, दीन भिखारी की तरह न मालूम कितनों के सामने अपना भिक्षापात्र फैला देते हो और हर बार खाली के खाली लौट आते हो, कब तक यह चलेगा? एक दिन तो सोचोगे कि.जरा भीतर चलकर देखें, मालिकों का मालिक शायद वहां बैठा हो! और वहां बैठा है।
जिस दिन तुम्हारे भीतर परमात्मा की खोज शुरू होती है, उसी दिन गुरु की खोज शुरू हो जाती है। क्योंकि परमात्मा का और कोई प्रमाण नहीं है। कोई तर्क परमात्मा को सिद्ध नहीं कर सकता--सिर्फ एक सद्गुरु की मौजूदगी। उसकी आंखों में आंखें डालकर ही प्रमाण मिल सकता है कि परमात्मा है।
तुमने पूछाः आपने हजारों को अपने रंग में रंग दिया, इसके पीछे जादू क्या है?
सच पूछाः आपने हजारों को अपने रंग में रंग दिया, इसके पीछे जादू क्या है?
सच में जादू जानना है तो तुम भी रंगो। बिना रंगे तुम जान न पाओगे। ये बातें "होकर ही जानी जाती हैं। निश्चित ही पूछनेवाला अभी दूर-दूर खड़ा है, अभी रंगरेज के हाथ नहीं पड़ा है। शायद डर की वजह से पूछ रहा है कि माजरा क्या है, इतने लोग रंग गए हैं, थोड़ा पास जाऊं कि न जाऊं! प्रश्न पूछनेवाले ने अपना नाम भी नहीं लिखा है, क्योंकि नाम की भी मुझे खबर मिल जाए तो मैं खींचतान शुरू करता हूं।"
अभी परसों ही देखा न, यश शर्मा, जो रोहतक से आए हैं और लंबी यात्रा करके आए हैं, मिलना चाहते थे, लेकिन बिना संन्यास के मिलना नहीं हो पा रहा था। नाम लिख दिया प्रश्न में, फंस गए। कल सांझ रंग गए। क्योंकि जब मैं पुकारूंगा तो अगर थोड़ी भी आत्मा है भीतर, तो कैसे लौट जाओगे? जब मैं चुनौती दूंगा, तो थोड़ा भी बल है और थोड़ी भी आत्म-गरिमा है तो कैसे भाग जाओगे? नहीं भाग सके।
तुम भी रंगो! चलो नाम न सही, नाम तो किसका होता है! सभी अनाम हैं। औरों
को पता नहीं तुम्हारा नाम, तुम्हें तो पता है! तुम से ही कह रहा हूं।
साकी की हर निगाह पे बल खाके पी गया
लहरों से खेलता हुआ लहराके पी गया।
बेकैफियों की कैफ से घबराके पी गया
तोबा को तोड़-ताड़के थर्रा के पी गया
जाहिद! ये मेरी शोखी-ए-रिंदा न देखना
रहमत को बातों-बातों में बहलाके पी गया सरमस्ती-ए-अजल मुझे जब याद आ गई दुनिया-ए-एतबार को ठुकराके पी गया आजीजगी-ए-खातरे साकी को देखकर
मुझको यह शर्म आई कि शरमाके पी गया
ऐ रहमते-तमाम! मेरी हर खता मुआफ
मैं इंतहाए-शौक में घबराके पी गया पीता बगैर इज्म ये कब थी मेरी मजाल दर परदा-चश्मे-यार की शह पा के पी गया इस जान-ए-मयकदा की कसम बारहा जिगर कुल आलमें बशीद पे मैं छाके पी गया। पीयो!
साकी की हर निगाह पे बल खाके पी गया लहरों से खेलता हुआ लहराके पी गया

ये लहरें हैं। ये तुम्हारे पास गैरिक वस्त्रों में इन लहरों का तूफान उठा है। डूबो! इन लहरों के साथ थोड़ा नाचो!
लहरों से खेलता हुआ लहराके पी गया
बेकैफियों की कैफ से घबराके पी गया
तोबा को तोड़-ताड़के थर्रा के पी गया
अगर तोबा भी करके आए हो... कुछ लोग आते हैं घर से तय करके कि संन्यास नहीं लेना है। पक्का ही करके आते हैं कि संन्यास नहीं लेना है। पत्नी कसम खिला देती है कि संन्यास नहीं लेना है। पति कसम खिला देता है और सब करना, संन्यास मत लेना।
तोबा को तोड़-ताड़के थर्राके पी गया
छोड़ो, ये भी कोई कसमें हैं?
मुझको यह शर्म आई कि शरमाके पी गया
यश शर्मा की हालत देखी है! शर्मा थे, शरमा गए, पी गए!
रहमते तमाम मेरी हर खता मुआफ
मैं इंतहाए-शौक में घबराके पी गया
पीता बगैर इज्म ये कब थी मेरी मजाल
हे परमात्मा! तेरी आज्ञा के बिना पीता, यह मेरी सामर्थ्य कहां थी!
पीता बगैर इज्म ये कब थी मेरी मजाल
दर-परदा चश्मे-यार की शह पाके पी गया
तूने जो आंख का इशारा किया, उसमें मैं समझ गया कि तू भी राजी है, कि तोड़
ही डालूं सब तोबा और पी जाऊं।
मैं नहीं पुकार रहा हूं, परमात्मा पुकार रहा है।
पीता बगैर इज्म ये कब थी मेरी मजाल
दर परदा चश्मे-यार की शह पाके पी गया
डूबो! यह रंग ऊपर का ही रंग नहीं है। यह छंद ऊपर का ही छंद नहीं है। ऊपर-ऊपर तो खेल है, भीतर-भतर असली राज है। बाहर-बाहर से मत लौट जाना" अन्यथा तुम जो भी जानोगे वह गलत होगा।
यहां लोग आ जाते हैं--तमाशबीन जो सोचते हैं कि बाहर खड़े होकर देख लेंगे, समझ लेंगे क्या हो रहा है। सोचते हैं कि दूसरों को ध्यान करते देखकर हम समझ लेंगे कि क्या हो रहा है। पागल हो गए हो! ध्यान बिना किए कोई कभी नहीं समझता कि क्या हो रहा है। प्रेम किए बिना कोई नहीं समझता कि क्या हो रहा है। बात अंतर की है।
जादू परमात्मा का है। खोलो अपने हृदय को और उसके जादू को हृदय पर छा जाने दो। अपने ढंग से बहुत जी लिए, चलो अब उसके ढंग से जियो। कहोः तेरी मर्जी पूरी हो!
यही संन्यास हैः तेरी मर्जी पूरी हो! यही संन्यास की व्याख्या है।

आज इतना ही।

ज्योति से ज्योति जले
सातवां प्रवचन

मारग जोवै बिरहनी

मारग जोवै बिरहनी, चितवे पिय की वोर।
सुंदर जियरे जक नहीं, कल न परत निस भोर।।
सुंदर बिरहिनी मरि रही, कहूं न पइए जीव।
अमृत पान कराइकै, फेरी जिवावै पीव।।
बिरह-बघूरा ले गयौ, चित्तहि कहूं उड़ाय।
सुंदर आवै ठौर तब, पिय मिलै जब आए।।
बिरहा दुख दाई लग्यौ, मारै ऐंठी मरोरि।
सुंदर बिरहनि क्यों जिवै, सब तन लियो निचोरि।।
सुंदर बिरहनि अधजरी, दुक्ख कहै मुख रोइ।
जरि बरिकै भस्मी भई, धुआं न निकसै कोई।।
सब कोई रलियां करै, आयो सरस बसंत।
सुंदर बिरहनि अनमनी, जाको घर नहिं कंत।।
सांई तूं ही तूं करौं, क्यौं ही दरस दिखाव।
सुंदर बिरहिनी यौं कहै, ज्यौंही त्यौंही आव।।
जिस विधि पीव रिझाइए, सो विधि जानि नांहि।
जोवन जाय उतावला, सुंदर यहु दुख मांहि।।
लालन मेरा लाड़िला, रूप बहुत तुझ मांहिं।
सुंदर राखै नैन में, पलक उघारै नाहिं।।
सुंदर बिगसै बिरहनी, मन में भया उछाह।
फूल बिछाऊं सेजरी, आज पधारैं नाह।।
सुंदर अंदर पैसिकरि, दिल मौं गोता मारि।
तौ दिल ही मौं पाइए, सांई सिरजनहार।।
जिस बंदे का पाक दिल, सो बंदा माकूल।
सुंदर उसकी बंदगी, सांई करै कबूल।।
हर दम हर दम हक्क तूं, लेइ धनीं का नांव
सुंदर ऐसी बंदगी, पहुंचावै उस ठांव।।
मुखसेती बंदा कहै, दिल में अति गुमराह।
सुंदर सो पावै नहीं, सांई की दरगाह।।
मैं ही अति गाफिल हुई, रही सेज पर सोइ।
सुंदर पिय जागै सदा, क्यौं करि मेला होइ।
जौ जागै तो पिय लहै, सोए लहिए नांहिं।
सुंदर करिए बंदगी, तौ जाग्या दिल मांहिं।।

शहर की रात और मैं नाशादो-नाकारा फिरूं, जगमगाती-जागती सड़कों पे आवारा फिरूं,
गैर की बस्ती है, कब तक दरबदर मारा फिरूं?
ऐ गमे-दिल क्या करूं, ऐ वहिशते-दिल क्या करूं? झिलमिलाते कुमकुमों की राह में जंजीर सी, रात के हाथों में दिल की मोहनी तस्वीर सी, मेरे सीने पर मगर दहकी हुई शमशीर सी,
ऐ गमे-दिल क्या करूं, ऐ वहिशते-दिल क्या करूं? ये रूपहली छांव ये आकाश पर तारों का जाल, जैसे सूफी का तसव्वुर, जैसे आशिक का ख्याल, आह लेकिन कौन जाने, कौन समझे जी का हाल,
ऐ गमे-दिल क्या करूं, ऐ वहिशते-दिल क्या करूं? रात हंस-हंस के ये कहती है कि मैखाने में चल, फिर किसी शहनाजे-लालारुख के काशाने में चल, ये नहीं मुमकिन तो फिर ऐ दोस्त वीराने में चल,

ऐ गमे-दिल क्या करूं, ऐ वहिशते-दिल क्या करूं? रास्ते में रुक के दम ले लूं मेरी आदत नहीं, लौटकर वापस चला जाऊं मेरी फितरत नहीं
और कोई हम-नवा मिल जाए ये किस्मत नहीं,
ऐ गमे-दिल क्या करूं ऐ वहिशते-दिल क्या करूं?
दिल में एक शोला भड़क उट्ठा है आखिर क्या करूं?
मेरा पैमाना छलक उट्ठा है आखिर क्या करूं?
जख्म सीने का महक उट्ठा है आखिर क्या करूं?
ऐ गमे-दिल क्या करूं, ऐ वहिशते-दिल क्या करूं?
परमात्मा के बिना, आदमी इस जमीन पर आवारा है। उस प्यारे के बिना हम यहां अजनबी हैं। फिर यह घर नहीं, धर्मशाला है। उससे जोड़ हो तो घर बने। उससे मिलन हो तो अस्तित्व से संबंध बने। फिर हम अजनबी नहीं, फिर हम पराए नहीं। फिर यह सारा अस्तित्व, इस अस्तित्व का सारा आनंद, इस अस्तित्व की सारी संपदा हमारी है।
और जब तक ऐसा न हो जाए, तब तक जीवन से संताप नहीं मिटता। लाख तुम धन इकट्ठा करो, लाख तुम पद-प्रतिष्ठा इकट्ठी करो, तुम खाली हो, खाली रहोगे।
भरता तो सिर्फ आदमी परमात्मा से है। मेरी तो परमात्मा की परिभाषा यही है-- जो भर दे।
और संसार की परिभाषा? --जो भरने का आश्वासन दे, लेकिन भरे कभी नहीं; जो दौड़ाए बहुत, चलाए बहुत, लेकिन पहुंचाए कभी नहीं।
परमात्मा न तो दौड़ाता, न चलाता। सिर्फ प्रेम से भरी हुई प्रार्थना उठे तो तुम जहां हो वहीं मिलन हो जाता है। जिन्होंने जाना है उन्होंने ऐसा नहीं जाना है कि आदमी परमात्मा से मिलने जाता है; उन्होंने ऐसा जाना है कि परमात्मा आदमी से मिलने आता है। पुकार होनी चाहिए, पीड़ा होनी चाहिए, विरह की धू-धू जलती हुई आग होनी चाहिए। जिसने विरह की चिता बना ली, उस पर अमृत की वर्षा निश्चित हुई है, निश्चित होती है। निरपवाद है यह बात, लेकिन वहीं हम डर जाते हैं।
बीज टूटे न भूमि में, तो अंकुरित न होगा। मगर बीज का डर भी समझ में आता है--क्या पता, टूटकर अंकुरित होऊंगा या नहीं! बूंद सागर में न गिरे तो सागर नहीं हो सकती। मगर बूंद सागर में गिरे तो चिंता तो पकड़ेगी, भय तो आएगा मन में--कि कहीं खो ही न जाऊं; कहीं ऐसा न हो कि हाथ तो कुछ भी न लगे और जो पास था वह भी चला जाए! यही सभी संसारियों की चिंता है। इसलिए परमात्मा की बात तो चलती है लेकिन खोजने लोग नहीं निकलते। नाम ले लेते हैं ओंठों पर, प्राणों में गूंज नहीं होती। फिर अगर जीवन में दर्द जमती है और जीवन उदास हो जाता है और जीवन थका-हारा और सर्वहारा हो जाता है, तो कुछ आश्चर्य नहीं है।
शहर की रात और मैं नाशादो-नाकारा फिरूं,
जगमगाती-जागती सड़कों पे आवारा फिरूं,
गैर की बस्ती है कब तक दरबदर मारा फिरूं?
ऐ गमे दिल क्या करूं, ऐ वहिशते-दिल क्या करूं?
जब तक परमात्मा से मिलन नहीं हुआ, यह बस्ती गैर की है, अपनी नहीं। इसे अपनी बस्ती बनाना है। इसके साथ नाता जोड़ना है। इसके साथ हमारे सारे नाते टूट गए हैं। जैसे कि वृक्ष को उखाड़ लिया हो भूमि से और उसकी जड़ें उखड़ गयी हों और फिर वृक्ष कुम्हलाने लगे, तो फिर आश्चर्य क्या? फिर वृक्ष की हरियाली खोने लगे, तो आश्चर्य क्या? फिर वृक्ष में कलियां न आएं और फूल न लगें, तो आश्चर्य क्या? ऐसा ही आदमी है--उखड़ा हुआ!
परमात्मा हमारी भूमि है। हम उसमें समा जाएं, हमारी जड़ें उसमें फैलें,
तो ही हमारे जीवन में आनंद, उत्सव, नृत्य और गीत का जन्म होता है। फिर हम आवारा नहीं हैं। फिर यह गैर की बस्ती नहीं है। फिर यह अपना घर है। फिर हम परमात्मा के हैं, और परमात्मा हमारा है। फिर यह सारा अस्तित्व, यह सारा साम्राज्य हमारा है।
परमात्मा की खोज कोई दार्शनिक खोज नहीं है। परमात्मा की खोज कोई सैद्धांतिक खोज नहीं है। प्राणों की पुकार है। जैसे प्यासा तड़फता पानी के

लिए, ऐसी तड़फ है। जैसे भूखा भूख से पीड़ित मरता हो, ऐसी मरण की प्रक्रिया है।
किताबों को पढ़-पढ़ कर, सुंदर-सुंदर शब्दों को कंठस्थ करके तुम परमात्मा तक न पहुंचोगे। कीमत चुकानी होगी। और विरह कीमत है।
सुंदरदास के आज के सूत्र समझो--
मारग जोवै बिरहनी चितबै पिय की वोर। जिसको यह दिखाई पड़ गया कि हमारी जड़ें उखड़ी हैं, फिर और सब काम गौण हो गए; फिर एक ही काम अर्थपूर्ण है कि कैसे हमारी जड़ें वापिस जम जाएं। जिसे यह समझ में आ गया कि हम अपने घर से भटक गए हैं, उसकी सारी खोज फिर एक ही होगी, कि कैसे हम वापिस अपने घर से संयुक्त हो जाएं!
जैसे छोटा-सा बच्चा मेले में भटक गया हो, मजे से घूम रहा हो, जादूगरों
के खेल देख रहा हो, नटों के खेल देख रहा हो--तब तक देखता रहे जब तक उसे यह ख्याल नहीं है कि मां का हाथ छूट गया है। मां का हाथ छूट गया है, भीड़ में अकेला है; लेकिन अभी उलझा है जादूगरों के खेल में, कि नटों के खेल में, कि और हजार रंगबिरंगी दुनिया है मेले की, मस्त है! लेकिन जैसे ही यह याद आएगी--मां कहां? हाथ मेरा छूट गया है--फिर जादू सब फीके हो जाएंगे। फिर सब रंगनी मेले की खो जाएगी। आंखें आंसुओं से भर जाएंगी, एक ही पुकार हो जाएगी फिर--मां कहां है? खोजने निकल पड़ेगा। रोएगा, चिल्लाएगा। अब मेले में कुछ रस न रहा।
ऐसी ही दशा भक्त की है। बाजार रंगीन है, माना; और वहां खूब जादू भी चल रहा है, माना। रुपए का जादू है। और वहां बड़े नट हैं और उन्होंने बड़े खेल रचा रखे हैं! और खेल मनमोहक हैं। और बाजार में बड़ा मनोरंजन हो रहा है और लोग खूब उलझे हैं और भीड़ें लगी हैं। और तुम भी वहां खड़े हो।.जरा गौर से तो देखो, तुम्हारा हाथ परमात्मा के हाथ में है या नहीं? अगर तुम्हारा हाथ परमात्मा के हाथ में नहीं है, उसी क्षण सब व्यर्थ हो गया, सब बाजार खो गए, सब रंगीनियां खो गयीं। उसी क्षण तुम्हें पता चलेगा तुम आवारा हो; तुम्हारी जड़ें उखड़ गयी हैं; तुम अजनबी हो। यहां तुम क्या कर रहे हो? इतना समय तुमने कैसे गंवाया? अब तो बस सारे प्राण एक ही खोज में लग जाएंगे। मारग जोवै बिरहनी चितवे पिय की वोर।
भक्ति का ऐसे उदय होता है, जब पता चल जाता है कि मेरा हाथ परमात्मा के हाथ से छूट गया है। तब एक प्रगाढ़ अभीप्सा उठती है--उस हाथ को फिर पा लेने की, क्योंकि उस हाथ के बिना न तो जीवन में कोई रस हो सकता है, न जीवनी में कोई अर्थ हो सकता है।
परमात्मा के बिना जीवन ऐसी बांसुरी है, जो बजी नहीं।
परमात्मा के बिना जीवन ऐसा बीज है, जो फूटा नहीं, अंकुरित नहीं हुआ।
परमात्मा के बिना हृदय ऐसा है, जिसमें कोई धड़कन नहीं।
परमात्मा के बिना जीवन एक लाश है! जीवन नहीं है--जीवन का धोखा है।
तुम जिसे जीवन कहते हो, जीवन नहीं है। अगर तुम्हारा जीवन जीवन है, तो फिर कबीर का, नानक का और सुंदरदास का जीवन क्या है? तुम्हारा जीवन जीवन नहीं है। कहीं फूल खिलते दिखाई पड़ते नहीं। तुम्हारे पैरों में नृत्य भी मालूम नहीं होता, तुम्हारे भीतर कोई रसधार भी नहीं बहती दिखायी पड़ती। सोचो! .जरा तलाशो! तुम्हारी जड़ें अस्तित्व से उखड़ गई हैं। इन जड़ों को वापिस भूमि देनी है। धर्म अगर कुछ है तो परमात्मा में अपनी जड़ों की फिर से तलाश है।
सुनते हैं कि कांटे से गुल तक हैं राह में लाखों वीराने
कहता है मगर ये अज्मे-जुनूं सहरा से गुलिस्तां दूर नहीं
बुद्धि से सोचोगे तो, तो लगेगा--कहां खोजें? कैसे खोजें? कहां है परमात्मा? उसका पता क्या? उसका ठिकाना क्या? उसका रूप क्या, उसका रंग क्या? खोजने जाएं तो कहां जाएं? पूछें तो किससे पूछें? कौन है मार्गदर्शक, कौन है गुरु? किस शास्त्र पर भरोसा करें? अनंत-अनंत शास्त्र हैं। किस सिद्धांत की शरण पकड़ें? बड़ी उलझन है!
अगर बुद्धि से पूछा है तो उलझन घटेगी नहीं, बढ़ेगी। अगर बुद्धि से पूछा
तो शायद तुम थक कर बैठ ही जाओगे। शायद बुद्धि तुम्हें भरोसा ही दिला देगी

कि न कोई परमात्मा है, न कोई सत्य है, न कोई जीवन में अर्थ है। बुद्धि के अंतिम निष्कर्ष यही हैं कि जीवन व्यर्थ है, एक दुर्घटना मात्र है, संयोग मात्र है। ऐसे ही बन गए हो मिट्टी से, ऐसे एक दिन मिट्टी में बिखर जाओगे। यहां कोई गीत न जन्मा है कभी, न कभी जन्मेगा।
बुद्धि की मानी तो बुद्धि के निष्कर्ष बड़े उदासी से भरे हैं। क्योंकि बुद्धि के पास कोई उपाय नहीं है रसस्रोत को खोजने का।
जब छोटा बच्चा मेले में खो जाए तो बैठ कर विचार नहीं करता कि अब मां को कैसे खोजूं, किससे पूछूं? गणित नहीं बिठाता--बस रोने लगता है, चीखने लगता है, दौड़ने लगता है। उसी चीख-पुकार, उसी दौड़ने का नाम भक्ति है। आकुल हो जाता है, व्याकुल हो जाता है। उस आकुलता-व्याकुलता का नाम विरह है। और तब-- कहता है मगर ये अज्मे-जूनूं सहरा से गुलिस्तां दूर नहीं
बुद्धि तो कहती है कि मरुस्थल से उपवन तक जाना असंभव है, रास्ता बहुत लंबा है; या शायद अनंत है, या शायद गुलिस्तां होता ही नहीं! लेकिन हृदय बड़ा पागल है, असंभव को मान लेता है! हृदय कहता है--दूर नहीं है। सहरा से गुलिस्तां दूर नहीं!
मरुस्थल के बिल्कुल करीब है। दिल का पागलपन तो यह भी कहता है कि अगर तेरी प्यास गहरी हो, तेरी पुकार गहरी हो, तो मरुस्थल ही गुलिस्तां है। यहीं फूल खिल उठेंगे।.जरा तेरे आंसू गिरने दे, यहीं हरियाली हो जाएगी। यहीं मरुस्थल बन जाएंगे।
धर्म तो पागलों की बात है।
बुद्धि तो कूड़ा-करकट है। कामचलाऊ है। बाजार में, दुकान में, और व्यवसाय में उपयोगी है। लेकिन जब कोई विराट की तलाश में चले तो वहां पागल होने से कम में काम नहीं चलता। वहां सिर्फ दीवाने पहुंचते हैं। और बहुत बार लगेगा ऐसा कि किस भूल में पड़ गए, हृदय की मान ली! क्योंकि बुद्धि तो अड़चनें डालती ही चली जाएगी। बुद्धि तो प्रश्न उठाती ही चली जाएगी।
तुझे अपना समझ बैठे हैं फिर हम
हमीं से भूल होकर रह गयी है।
बहुत बार बुद्धि कहेगी कि किस झंझट में, किस उपद्रव में... ! काम के आदमी थे, बेकाम हुए जा रहे हो। किस परमात्मा को खोजने चले हो? किस धुएं की लकीर को पकड़ने चले हो? हवाई हैं बातें ये सब, यथार्थ नहीं हैं कुछ इन में। बुद्धि तो पदार्थ को स्वीकार करती है, परमात्मा को अस्वीकार करती है।
हृदय परमात्मा को स्वीकार करता है, पदार्थ को अस्वीकार करता है। बुद्धि तो क्षुद्र पर भरोसा करती है, क्योंकि क्षुद्र प्रकट है, स्थूल है। और जो बुद्धि से घिरे रह जाते हैं, उनसे बड़े बुद्धू इस जमीन पर दूसरे नहीं हैं।
वे व्यर्थ की बातों में ही जीवन गंवा देते हैं। और बुद्धि बड़ी कुशल है। व्यर्थ की बातों में उसकी कुशलता अप्रतिम है, अतुलनीय है।
धन्यभागी तो वे थोड़े-से लोग हैं, जो हृदय की सुन लेते हैं। बड़ा साहस चाहिए हृदय की सुनने के लिए! क्योंकि हृदय प्रेम की भाषा बोलता है--और प्रार्थना की। और प्रेम और प्रार्थना, सभी में विरह का रंग है, और सभी में बड़ी पीड़ा है।
बुद्धि सुविधा जुटाती है। बुद्धि, जीवन को कितनी सुविधाओं से भर दिया जाए, इसका इंतजाम करती है। और हृदय? हृदय जीवन में आग लगाता है। सांत्वना थोड़ी रही भी हो पहले, वह भी छिन जाती है। थोड़ी-बहुत सुरक्षा रही हो, वह भी उखड़ जाती है। हृदय तो भस्मीभूत कर देता है। लेकिन उसी भस्म से एक नये जीवन का आविर्भाव होता है। उसी जीवन से पैदा होते हैं संत! उसी राख से बुद्धों का जन्म हुआ है।
हृदय तो गणित नहीं जानता, तर्क नहीं जानता--प्रेम ही जानता है। वही उसका गणित, वही उसका तर्क।
मोहब्बत में मेरी तनहाइयों के हैं कई उनवां
तेरा आना, तेरा मिलना, तेरा उठना, तेरा जाना।
बस तो प्रेम एकबारगी, एकजुट, एकाग्र होकर परमात्मा पर लग जाता है।
तेरा आना, तेरा मिलना, तेरा उठना, तेरा जाना!

हृदय तो बस एक को मानता है। बुद्धि वेश्या है। हृदय सती है। बुद्धि तो अनेक को मानती है; द्वार-द्वार भीख मांगती है। हृदय एक को पहचानता है और उस एक से भीख नहीं मांगता। अपने को समर्पित करता है। मांगना क्या है? देना है। बुद्धि मांगती है, हृदय देता है। और जो देना जानते हैं, उन्हें सब मिल जाता है। और जो मांगते ही रहते हैं, उनका सब खो जाता है।
प्रेम की भाषा सीखो, तो ही सुंदरदास को समझ पाओगे!
मारग जौवै विरहनी! वह जो प्रेम में पीड़ित है, वह जो विरहनी है, जो विरह
की ज्वालाओं में दग्ध है, उसके तो सारे प्राण आंखों में अटके होते हैं। राह देखी जा रही है प्रीतम की।
और ध्यान रखना यह भी कि परमात्मा को सत्य कहो तो परमात्मा में बहुत कुछ कमी हो जाती है। सत्य रूखा-रूखा शब्द है। कांटे जैसा है, फूल जैसा नहीं है! मरुस्थल जैसा है, मरुद्यान जैसा नहीं है। सत्य गणित और तर्क की दुनिया का शब्द है। जिन्होंने उसे पहचाना है, उन्होंने उसे प्रीतम कहा, उसे प्यारा कहा है। उसके ही नाम हैं। बुद्धि से सोचने वाला उसको सत्य कहता है। हृदय से डूबनेवाला उसे प्रीतम कहता है, प्यारा कहता है। महबूब! फर्क काफी गहरा है।
सत्य से हमारा क्या संबंध जुड़ता है? सत्य और हमारे बीच नाता नहीं बनता। सत्य और हमारे बीच कोई रसधार नहीं बहती। सत्य शब्द को सुनकर तुम्हारे हृदय की वीणा छिड़ती है? तारों में स्वर उठते हैं? सत्य शब्द को सुन कर नाचने की उमंग आती है? सत्य शब्द को सुन कर तुम्हारी आंख से आंसू बहते हैं? कुछ भी नहीं होता। सत्य शब्द ऐसे ही आता, ऐसे ही चला जाता है। कोरा-कोरा है।
इसलिए भक्तों ने सत्य शब्द का प्रयोग नहीं किया। परमात्मा को प्यारा कहा है। और जब परमात्मा को प्यारा कहा है तो स्वभावतः थोड़े-से ढंग हो सकते हैं। इस देश में परमात्मा को प्यारा कहा है, कृष्ण कहा है। और भक्त प्रेयसी बन जाता है। यह एक उपाय है। सूफियों ने ठीक उल्टा किया है-- परमात्मा को प्रेयसी कहा है; तब भक्त प्रेमी हो जाता है। लेकिन दोनों बातों का फर्क भी साफ है। वही फर्क जो पुरुष और स्त्री में होता है। समझना इसे।
स्त्री पहल नहीं करती--प्रेम में पहल नहीं करती। स्त्री जाकर किसी से निवेदन नहीं करती। अगर स्त्री के हृदय में प्रेम भी उठे तो प्रतीक्षा करती है। आक्रामक नहीं होती। राह देखती है, राह देखती है, राह देखती है। हृदय के भाव को घना होने देती है, और भरोसा रखती है कि अगर हृदय का भाव घना होगा तो प्रेमी एक दिन द्वार पर आकर दस्तक देगा। पुरुष पहल करता है। स्त्री से निवेदन करता है प्रेम का; चेष्टा करता है, यत्न करता है।
इस देश ने ठीक किया, जो हमने परमात्मा को पुरुष कहा और भक्त को स्त्री। क्योंकि हम कहां जाएं खोजने उसे? उसका पता ही होता तो फिर खोजने की जरूरत ही क्या थी? अड़चन तो यही है कि उसका पता नहीं है, और खोजना है। तो फिर कुछ ऐसा करना होगा कि वही खोजता हुआ आ जाए। हमें पहल न करनी पड़े, हम प्रार्थना करेंगे। हम आंसुओं से भरेंगे। हम रोएंगे, पुकारेंगे--मगर आए वही! आना पड़े उसे!
इसलिए जैसे ही भक्त परमात्मा की बात करता है, वह सदा अपने को स्त्री- रूप में मान कर बात करता है।
मारग जोवै बिरहन, चितवे पिय की वोर।
बस आंख अटकी है प्यारे की तरफ। उस अज्ञात की तरफ बाट लगी है। आहट की
भी प्रतीक्षा है कि.जरा आहट हो जाए। मगर जाओ कहां, खोजो कहां, और अगर वह न आए तो इसका केवल इतना ही अर्थ है कि अभी तुमने पुकारा नहीं। अगर उसकी आहट सुनायी न पड़े, उसकी पगध्वनि पास न आए, तो इसका केवल एक ही अर्थ हैः तुम्हारी प्रार्थना अभी आंसुओं में भीगी नहीं, अभी सूखी-सूखी है।
बजा ये जब्ते-गम लेकिन, मुहब्बत में कभी रो ले
दबाने के लिए हर दर्द ओ नादां! नहीं होता
भक्त को रोना सीखना पड़ता है। यह संसार तो हमें रोने नहीं देता। यह संसार तो सिखाता है--"रोना मत! रोना कमजोरी है।" यह संसार तो सिखाता है कि

रोना निर्बलता है। लेकिन भक्ति का शास्त्र कहता है कि रोने में ही सारी सबलता है। क्योंकि जितना तुम्हारा गहरा रुदन होगा, उतना ही तुम परमात्मा को अपने पास खींच लोगे। यही अदृश्य धागे तुम्हारे आंसुओं के, उसे तुम्हारे पास ले आएंगे।
खोते हैं अगर जान तो खो लेने दे
जो ऐसे में हो जाए वो हो लेने दे
एक उम्र पड़ी है सब्र भी कर लेंगे
इस वक्त तो जी भर के रो लेने दे
तो भक्त करता क्या है? उसकी प्रार्थना क्या है? उसकी पूजा क्या है? उसकी उपासना क्या है? भक्त उठता कैसे, बैठता कैसे? जागता कैसे, सोता कैसे? भक्त आंसुओं में डूबा रहता है। भत्त का हृदय आंसुओं से गीला रहता है। सूरज को भी देखता है तो राह "उसकी"; और चांद को भी देखता है तो बाट "उसकी"; और फूल भी खिलते हैं तो प्रतीक्षा "उसकी।" मोर नाचता है तो वह उसी मोर मुकुट वाले की राह देख रहा है। कहीं कोई बांसुरी बजती है तो वह चौकन्ना हो उठता है--"उसकी" ही होगी! क्योंकि सब बांसुरी उसकी हैं। और सब नृत्य उसके हैं। लेकिन यह तत्त्व समझने जैसा है कि भक्त को हमने इस देश में स्त्रैण रूप दिया है, ताकि पहल उसे न करनी पड़े।
तुमने कभी ख्याल किया, जो स्त्री पहल करती है प्रेम का, उसमें स्त्रैण तत्त्व कम होता है! कोई स्त्री एकदम राह में तुम्हारा हाथ पकड़ ले और कहे कि मुझे तुमसे प्रेम है तो एक बात पक्की है कि तुम भाग जाओगे। स्त्री से यह अपेक्षा नहीं की जाती। यह उसके प्रसाद के अनुकूल नहीं। यह उसकी गरिमा के अनुकूल नहीं! यह उसके सौंदर्य के अनुकूल नहीं! ऐसी आक्रामकता हिंसा है। स्त्री अनाक्रमक होती है। और बड़ा रहस्य यह है कि बिना पुकारे, बिना आवाज दिए बुला लेती है। उसके भीतर जो प्रेम पकता है, उसका ही बल है।
मारग जोवै विरहनी, चितवे पिय की वोर।
सुंदर जियरै जक नहीं, कल न परत निस-भोर।।
एक क्षण को भी चैन नहीं है! सुंदर जियरे जक नहीं! हृदय में एक क्षण को
भी चैन नहीं! ... कल न परत निस-भोर। दिन हो कि रात, सांझ हो कि सुबह, कल नहीं पड़ती। एक विकलता है। एक विकलता चौबीस घंटे घेरे रहती है--कैसे हो मिलन, कब हो मिलन, कब वह प्यारा आए और द्वार पर दस्तक दे! भत्त चौबीस घंटे एक ही हवा से आंदोलित रहता है, एक ही वातावरण में जीता है।
तारों का गो शुमार में आना मुहाल है
लेकिन किसी को नींद न आए तो क्या करे?
तारे गिनता रहता है। नींद खो जाती है। कब आ जाए प्रेमी, पता नहीं!
हसीद फकीर, झुसिया जब रात सोता था, (कम ही सोता था--कोई तीन-चार घंटे मुश्किल से) लेकिन जब सोता था तो अपने शिष्यों को कह देता: अगर "वह" आ जाए तो मुझे जल्दी से उठा देना! रात में भी एकाध बार उठ कर पूछ लेता कि "वह" आ तो नहीं गया? सुबह उठते ही खिड़की पर जाकर बाहर झांकता कि वह आ तो नहीं गया? जिंदगी भर यह बात रही। ऐसी प्रतीक्षा का नाम विरह है। सुंदर विरहनी मरि रही, कहूं न पइए जीव।
अमृत पान कराइ कै फेरि जिवावै पीव।।
विरह में गलता है भक्त, जलता है, मरता है। साहसियों का काम है, दुस्साहसियों का काम है--अपने को गलाना-पिघलाना!
सुंदर बिरहनी मरि रही, कहूं न पइए जीव।
जीवन के कहीं उसे आसार नहीं दिखायी पड़ते। उस प्यारे के बिना जीवन है
भी कहां? उसका संस्पर्श हो तो जीवन जगे। अभी जिसको हमने जीवन समझा है, वह सिर्फ नाममात्र का जीवन है। जन्म और मृत्यु के बाद, बीच में तुमने जिसे जीवन समझा है, वह है क्या? आपा-धापी है। और तुम्हारा जीवन अंततः तो मृत्यु में ही समाप्त होता है। यह भी कोई जीवन हुआ? जो जीवन अंततः मृत्यु में ही ले जाता हो, उसे जीवन कहना, शब्द के साथ ज्यादती है।
जीसस ने कहा है: जीवन तो वह है जो महाजीवन में ले जाए! यह बात समझ में आती है। सीधी साफ है। दो और दो चार जैसे होते हैं, इतनी साफ है। जीवन तो वही जो महाजीवन में ले जाए! यह भी कोई जीवन है जो मृत्यु में ले जाता है? जरूर

कहीं हम धोखा खा गए हैं! हमने जन्म को जीवन समझ लिया है। जन्म केवल एक अवसर है। जीवन हो भी सकता है, न भी हो। अगर परमात्मा का संस्पर्श हो जाए तो जन्म जीवन बन जाता है, फिर कोई मृत्यु नहीं है। हां, देह गिरेगी सो गिरेगी। औरों को मृत्यु मालूम पड़ेगी सो पड़ेगी। मगर जिसका जीवन जाग गया है, जिसने उस महाजीवन को पहचान लिया है, उसकी फिर कोई मृत्यु नहीं है।
रमण महर्षि से मृत्यु के क्षण किसी ने पूछाः आप हमें छोड़ कर जा रहे हैं, कहां जा रहे हैं? रमण ने आंख खोली और कहा: जाऊंगा कहां? यहीं हूं, यहीं रहूंगा। यहीं था। सदा से हूं। जाना कहां है?
रामकृष्ण मरते थे। शारदा ने, उनकी पत्नी ने, उनसे आखिरी समय में कहा
कि मेरे लिए कोई आदेश? तो रामकृष्ण ने आंख खोली और बड़ा अजीब आदेश दिया। कहाः चूड़ियां मत फोड़ना, क्योंकि मैं रहूंगा! तू विधवा नहीं होनेवाली है। शायद भारत में शारदा अकेली स्त्री थी जिसने चूड़ियां नहीं फोड़ी। और ऐसा ही नहीं कि ऊपर ही ऊपर नहीं फोड़ीं, शारदा उसी कोटि की आत्मा थी जिस कोटि के रामकृष्ण। हंसने लगी--जब रामकृष्ण ने कहा कि चूड़ियां मत तोड़ना, तेरा सुहाग कायम रहेगा, मैं जानेवाला नहीं हूं। यह देह गिरेगी, मगर मैं देह कभी था भी नहीं। वस्त्र बदले जाएंगे, परिधान बदलेंगे, जीर्ण-शीर्ण हो गयी देह... मैं रहूंगा!
शारदा ने जीवन भर इसको ऐसे ही जिया, जैसे रामकृष्ण हों। रोज उनका बिस्तर लगाती, मसहरी लगाती। झांककर मसहरी में देखती कि कोई मच्छर इत्यादि भीतर तो नहीं रह गया है। अन्य शिष्य रोते, सोचते कि शारदा पागल हो गयी है। भोजन बनाती, जैसा सदा बनाती थी। थाली लगाती, जाकर कहती, रामकृष्ण परमहंस जहां बैठते थे जिस कमरे में--कि परमहंसदेव! भोजन तैयार हो गया है, चलें! आगे-आगे चलती वैसे ही जैसे सदा चली थी। बिठा देती, पंखा झलती।
निश्चित ही लोग कहेंगे, पागल हो गयी। मगर इस पागलपन की भी अपनी एक प्रज्ञा है। एक आंसू न टपका उसकी आंख से। सुहाग उसका नहीं मिटा।
जब शारदा मरती थी, किसी ने पूछाः कहां जा रही है? तो उसने कहाः अब परमहंस देव में समाविष्ट हो जाऊंगी। काफी दिन वे बिना देह के रहे, मैं देह में रही, इतना-सा फासला था, अब वह फासला भी गिरेगा। वह प्रतीक्षा की घड़ी आ गयी। आनंद-मग्न हो, जैसे कोई प्यारे को मिलने जाता है, ऐसे ही मृत्यु में गयी।
जिन्होंने जीवन जाना है, उनके लिए मृत्यु मिट ही जाती है। मृत्यु उनके लिए द्वार है--और नएये जीवन का--और महाजीवन का!
सुंदर विरहनी मरि रही कहुं न पइए जीव।
अमृत पान कराइकै फेर जिवावै पीव।।
सुंदरदास कहते हैं कि अब तो तुम ही आओ और पिलाओ अमृत, ढालो अपना प्रेम, बहाओ अपने प्रेम की सुधा, तो ही मैं जीवित हो सकूं, अन्यथा अपनी तरफ से मैं मर रही हूं। यह विरह मुझे मारे डाल रहा है। और इस जगत में मुझे कहीं जीवन नहीं दिखायी पड़ता। तुम हो तो जीवन है। तुम नहीं हो तो जीवन नहीं है। तुम्हारे होने में ही जीवन है।
उमीदे-मर्ग कब तक, जिंदगी का दर्दे-सर कब तक?
ये माना सब्र करते हैं मोहब्बत में, मगर कब तक?
दियारे-दोस्त हद होती है यूं भी दिल बहलने की!
न याद आएं गरीबों को तेरे दीवारो-दर कब तक?
ये तदबीरें भी तकदीरे-मोहब्बत बन नहीं सकतीं।
किसी को हिज्र में भूले रहेंगे हम मगर कब तक?
इनायत की, करम की, लुत्फ की आखिर कोई हद है!
कोई करता रहेगा चारा-ए-जख्मे-जिगर कब तक?
किसी का हुस्न रुसवा हो गया पर्दे ही पर्दे में।
न लाए रंग आखिरकार तासीरे-नजर कब तक?
कब तक भक्त पुकारता रहे? कब तक रोता रहे? बहुत बार विरह में ऐसी घड़ियां आती हैं कि भक्त सोच लेता है लौट ही पड़ूं; शायद मैं किसी व्यर्थ की दिशा में चला गया हूं!
उमीदे-मर्ग कब तक, जिंदगी का दर्दे-सर कब तक?

ये माना सब्र करते हैं मुहब्बत में, मगर कब तक?
विरह जब जलाता है, और जलाता ही जलाता है, और मरुस्थल का कोई अंत आता मालूम नहीं पड़ता; उपवनों की तो बात दूर, कहीं एक घास की पत्ती भी हरी दिखाई नहीं पड़ती; परमात्मा के मिलन की बात तो दूर, संसार तो छूटने लगता है और परमात्मा की कोई खबर नहीं मिलती--तो घबड़ाहट होती है। तो बेचैनी होती है। उमीदे-मर्ग कब तक, जिंदगी का दर्दे-सर कब तक?
ये माना सब्र करते हैं मुहब्बत में, मगर कब तक?
इनायत की, करम की, लुत्फ की आखिर कोई हद है!
कोई करता रहेगा चारा-ए-जख्मे-जिगर कब तक?
कब तक कोई अपने घावों का इलाज करता रहे?
घड़ियां आती हैं भक्त को, जब बड़ा विषाद घेर लेता है, बड़ी उदासी घेर लेती है, लौट पड़ने की आकांक्षा पकड़ती है। उन्हीं घड़ियों में, उन्हीं क्षणों में सद्गुरु की जरूरत है--जो तुम्हें लौटने न दे; जो कहे बस, दो कदम और।
बुद्ध एक गांव से जा रहे हैं--एक दूसरे गांव को। सांझ होने के करीब आ
गई है और आनंद ने पास खेत में काम करनेवाले किसानों से पूछा, गांव कितनी दूर है? उन्होंने कहा, बस दो कोस। सूरज भी ढल गया, दो कोस भी चल लिए, फिर किसी से पूछा कि भई गांव कितनी दूर है? उन्होंने कहा, दो कोस। दो कोस भी पूरे हो गए, अब तो आकाश में चांद भी निकल आया और फिर किसी से पूछा कि भई गांव कितनी दूर है? उन्होंने कहा, दो कोस। तो आनंद क्रोध से भर गया और उसने कहा, हद हो गयी! झूठ की भी कोई सीमा होती है! बुद्ध से उसने कहा, ये किस तरह के लोग हैं? ये इलाका झूठ बोलनेवाले लोगों से भरा है।
बुद्ध ने कहा: तू नाराज न हो। मैं उनकी बात समझा। यही तो मुझे करना पड़ता है।... बस दो कोस! ये भले लोग हैं। ये झूठे नहीं हैं। ये बड़े प्यारे लोग हैं। दो-दो कोस कहकर छः कोस चला दिया, यह तो सोच! आशा बंधाए रखी। अब देख, गांव के दीये पास दिखाई पड़ने लगे। मैं भी तुझ से कहता हूं कि बस दो कोस और। अब ज्यादा दूर नहीं है मंजिल!
ऐसी घड़ियां आती हैं भक्त को जब संसार छूट जाता है और परमात्मा नहीं मिलता! तभी सदगुरु के हाथ की जरूरत होती है। तभी कोई चाहिए जो कहे दो कोस और, बस.जरा देर और, बस अब आए कि आए, कि देख, दूर गांव के दीये दिखाई पड़ने लगे, कि देख गांव के मंदिर का स्वर्ण कलश झलकने लगा है।
और भक्त को कुछ दिखाई भी नहीं पड़ता--न दूर गांव के दीये दिखाई पड़ते, न मंदिर का कलश दिखाई पड़ता! लेकिन गुरु की आंखों में आश्वासन दिखाई पड़ता है।
आशा के दीये जलते दिखायी पड़ते हैं। गुरु के वचन में श्रद्धा ही एकमात्र सहारा रह जाती है।
सुंदर बिरहनी मरि रही, कहूं न पइए जीव।
अमृतपान कराइकै फेर जिवावै पीव।।
आ जाओ, सुंदर कहते हैं। मैं तो मर रहा हूं, कहीं ऐसा न हो कि मैं मर ही जाऊं और तुम्हारे आने में देर हो जाए; कि तुम आओ जब मरीज मर ही जाए।
लेकिन परमात्मा आता ही तब है जब तुम मर ही जाते हो, इसके पहले नहीं आ सकता! जब तक तुम्हारा अहंकार थोड़ा सा भी जीवित है तब तक बाधा है। तुम्हारी मृत्यु में ही उसका आगमन है। तुम्हारे मिटने में ही उसका अवतरण है। तुम मिटो कि वह आया। तुम खाली कर दो अपने भीतर के भवन को कि वह भर देगा। तुम्हारी शून्यता में उसकी पूर्णता उतरती है।
शून्य होना शर्त है; जो उसे पूरी कर देता है, जब पूरी कर देता है, तभी परमात्मा उतर आता है। मगर ये काम बुद्धि के नहीं हैं, ये काम तो दीवानगी के हैं।
हो गया जब इश्क हम-आगोशे-तूफाने-शबाब।
अक्ल बैठी रह गयी साहिल पे शरमाई हुई।।
साधारण जीवन में भी जिसको तुम प्रेम कहते हो, वह भी बुद्धि से नहीं चलता। यह तो असाधारण प्रेम है! साधारण जीवन में भी...
हो गया जब इश्क हम-आगोशे-तूफाने-शबाब। जब यौवन के तूफान पर प्रेम सवार
हो जाता है...
अक्ल बैठी रह गयी साहिल पे शरमाई हुई।।

इससे भी बड़ी हिम्मत चाहिए। लोग तो साधारण प्रेम करना भी भूल गए हैं, क्योंकि लोग दांव लगाना ही भूल गए हैं। अब मजनू कहां होते हैं? अब फरिहाद कहां होते हैं? अब तो लोगों ने साधारण प्रेम का दांव लगाना भी छोड़ दिया है। दुनिया खाली हो गयी है। और इस परमात्मा की खोज में तो मजनूओं का ही काम है, फरिहादों का ही काम है। वे जो अपने को सब तरह गंवाने को राजी हैं! प्रेम हो तो ही पता चले। परमात्मा तो सदा मौजूद है और पास ही मौजूद है। दो कोस भी नहीं, मैं तुमसे कहता हूं। उसी में तुम श्वास ले रहे हो। उसी में तुम्हारा हृदय धड़क रहा है। मगर प्रेम हो तो पता चले। जैसे सोने को कसते हैं न कसौटी पर, कसो तो पता चले। ऐसे प्रेम की कसौटी पर ही परमात्मा की मौजूदगी अंकित होती है, नहीं तो अंकित नहीं होती।
कहीं मजाके-नजर को करार मिल न सका
कभी चमन से भी कहकशां से गुजरा हूं
तेरे करीब से गुजरा हूं इस तरह कि मुझे
खबर भी हो न सकी कि मैं कहां से गुजरा हूं!
खबर भी हो न सकी कि मैं कहां से गुजरा हूं!
तेरे करीब से गुजरा हूं इस तरह कि मुझे
पता भी न चल सका! हम रोज ही उसके करीब से गुजर रहे हैं। हम उसी में जी रहे हैं, जैसे मछली सागर में जी रही है। हम उसी में पैदा हुए हैं, उसी में लीन हो जाएंगे। लेकिन प्रेम तड़फे तो पहचान हो। विरह जगे तो अनुभूति हो। विरह बघुरा लै गयौ चित्तहि कहूं उड़ाइ।
सुंदर आवै ठौर तब पीय मिलै जब आइ।।
सुंदरदास कहते हैं--विरह बघुरा लै गयौ, चित्तहि कहूं उड़ाइ।
यह जो विरह का बवंडर उठा है इसमें मेरा चित्त, मेरा होना सब कहां उड़ गया, पता नहीं! अब मैं हूं भी कि नहीं, यह भी पता नहीं। यह बवंडर सब ले गया। यह बवंडर जब उठे तो डरना मत। यह तूफान जब आए तो स्वीकार कर लेना चुनौती। यह सिर्फ धन्यभागियों के जीवन में तूफान आता है। यह बहुत थोड़े-से विरले लोगों के जीवन में तूफान आता है। आना तो सबके जीवन में चाहिए, परमात्मा की तरफ से तो हर-एक के जीवन में आने की तैयारी है, मगर हमारी तरफ से कभी तैयारी नहीं होती। हम पुकारते ही नहीं।
विरह बघुरा लै गयौ चित्तहि कहूं उड़ाइ।
अगर विरह की अग्नि पूरी-पूरी जले तो भक्त को ध्यान नहीं करना पड़ता। इस सत्य को खूब ख्याल से समझ लेना। भक्त को ध्यान नहीं करना पड़ता। उसके विरह की अग्नि ही उसके चित्त को जला देती है। ध्यान में भी चित्त को जलाना पड़ता है, मिटाना पड़ता है। ध्यान में उपाय करने पड़ते हैं चित्त को विसर्जित करने के। लेकिन विरह में तो चित्त अपने-आप जल जाता है, अपने-आप राख हो जाता है। विरह बघुरा लै गयौ चित्तहि कहुं उड़ाइ।
सुंदर आवै ठौर तब... ।।
अपने तरफ से तो मिट ही गया हूं। अब तो पता नहीं कि मैं कौन हूं, कहां हूं, क्या हूं। अब तो कोई ठौर-ठिकाना न रहा। अब तो तुम जब आओ तब फिर से पता चले कि मैं कौन हूं!
अभी तुम्हें पता है कि तुम कौन हो। तुम्हारा नाम, तुम्हारा ठिकाना, तुम्हारा पद, तुम्हारी प्रतिष्ठा, धन, परिवार, गांव. . .अभी तुम्हें पता है कि तुम कौन हो। विरह इस सब को जला देगा। तुम एकदम लापता हो जाओगे। बीच में वह घड़ी आएगी लापता होने की, जब तुम्हें समझ में भी न आएगा कि तुम कौन हो, तुम्हारा नाम क्या है, तुम किस देश के वासी हो, तुम किस धरम के माननेवाले हो, तुम किस घर में पैदा हुए हो? सब अस्तव्यस्त हो जाएगा। तुम्हारा सारा तादात्म्य टूट जाएगा। उस घड़ी में फिर सद्गुरु की जरूरत होगी, कि कोई तुम्हें संभाल ले, अन्यथा तुम बिखर सकते हो।
तुमने देखा, बहुत से लोग धर्म की साधना में विक्षिप्त हो जाते हैं। उसका कारण यही है। पुराना ढांचा उखड़ गया और नये ढांचे का कुछ पता ही नहीं चल रहा है। बीच में वह जो थोड़ी-सी संधि आती है, उसी में बिखर जाते हैं, विक्षिप्त हो जाते हैं। कोई संभालनेवाला चाहिए, जो तुम्हें बांधे रखे।
किसी की श्रद्धा का सूत्र "किसी का आशीर्वाद तुम्हें बांधे रखे।"

मुझसे लोग रोज पूछते हैं कि क्या बिना संन्यास के साधना नहीं हो सकती? साधना तो हो सकती है। साधना में कोई अड़चन नहीं है। लेकिन जब साधना में बाधाएं आना शुरू होंगी, तब तुम्हारे पास बांधनेवाला कोई श्रद्धा का सूत्र नहीं होगा। जब तुम खोने लगोगे, पुराना ठौर उखड़ने लगेगा और नये ठौर का कुछ पता न चलेगा, तब कौन हाथ तुम्हें संभालेंगे? तब कौन तुम्हें रोके रखेगा? तब अड़चन होगी।
संन्यास के बिना साधना बिल्कुल हो सकती है। साधना में उतने गुरु की जरूरत नहीं है जितने जब साधना की संकट की घड़ियां आती हैं तब जरूरत है। साधना तो शास्त्र को पढ़कर भी हो सकती है। सब सूत्र किताबों में लिखे हैं। मगर किताबें तुम्हें संभाल न सकेंगी। किताब क्या करेगी? तुमने किताब में जो पढ़ा था, वैसा-वैसा कर लिया, सब ठीक-ठीक कर लिया; लेकिन जब यह घड़ी आएगी, जब पुराना अहंकार अस्त हो जाएगा और नये सूरज का जन्म अभी होने में देर है, तब यह संध्याकाल आएगा--तब तुम क्या करोगे? तब तुम बिखर जाओगे। तब तुम खंड-खंड हो जाओगे। तब तुम न घर के रह जाओगे न घाट के रह जाओगे। दुविधा में दोनों गए, माया मिली न राम!
तब कोई एक ऐसा प्रबल श्रद्धा का सूत्र चाहिए--इतना प्रबल, इतना अखंड, इतना अटूट! --जो तुम्हें बांधे रखे। इसलिए सारे सदगुरुओं ने श्रद्धा पर जोर दिया है। श्रद्धा कीमिया है।
विरह बघुरा लै गयो चित्तहि कहुं उड़ाइ।
सुंदर आवै ठौर तब पीय मिलै जब आइ।।
अब तो ठौर तभी होगा, चैन तभी होगी, जब प्यारा मिल जाए। इस बीच तुम्हें कौन छाती से लगाए इन विरह की प्रगाढ़ घड़ियों में, इन विरह की प्रगाढ़ संकट की घड़ियों में, कौन तुम्हारे हाथ को पकड़े रहे? कौन तुमसे कहे कि दो कोस, और कि बस अब पहुंचे, कि अब पहुंचे ही जाते हैं?
विरहा दुखदाई लग्यौ, मारै ऐंठि मरोरि।
विरह तो काटता है, टुकड़े-टुकड़े कर देता है।
विरहा दुःखदाई लग्यौ, मारे ऐंठि मरोरि।
सुंदर बिरहनी क्यूं जिवै, सब तन लियौ निचोरि।।
अब जीने का कोई कारण समझ में नहीं आता। विरह सारे जीवन को निचोड़ डालता है। और तुम कहो या न कहो, तुम किसी को बताओ या न बताओ, भीतर कुछ मरने लगता है।
"जिगर" मैंने छुपाया लाख अपना दर्दो-गम लेकिन
बयां कर दी मेरी सूरत ने सब कैफियतें दिल की
तो आंखों में दिखने लगता है। चेहरे पर आने लगता है। उठने-बैठने में साफ होने लगता है। तुम एकदम उखड़े-उखड़े हो जाते हो। तुम्हारा कोई सहारा नहीं रह जाता। कल तक घर को पकड़ा था, पत्नी को पकड़ा था, बेटे को पकड़ा था, बेटी को पकड़ा था, प्रतिष्ठा थी, काम-धाम था, उलझे थे; आज सबसे हाथ छूट गया। इसलिए तुमसे कहता हूं: अगर सद्गुरु मिल सके तो अवसर मत चूकना। जब सब हाथ छूट जाएंगे तब उसका हाथ तुम्हारे हाथ में होगा। उसका हाथ भी तभी छूटेगा; लेकिन उसका हाथ तभी छूटेगा जब परमात्मा का हाथ तुम्हारे हाथ में आने लगता है। तब चुपचाप सद्गुरु अपना हाथ खींच लेता है।
भक्त के पास भगवान को चढ़ाने के लिए कुछ भी नहीं होता। विरह में सब टूट जाता है, अस्तव्यस्त, खंडित हो जाता है। घाव ही घाव रह जाता है।
निसार करने को तुझ पर कहां से लाएं खुशी
यही है इश्क के कुछ गम बचाए हुए
फिर इन्हीं घावों को चढ़ाना पड़ता है। लेकिन यही घाव स्वीकृत होते हैं। तुम जो वृक्षों से तोड़कर फूल मंदिर में चढ़ा आते हो, तुम व्यर्थ श्रम कर रहे हो; वे फूल स्वीकार नहीं होंगे। विरह के घाव स्वीकृत होते हैं, क्योंकि वे ही असली फूल हैं।
सुंदर विरहनि अधजरी, दुक्ख कहै मुख रोइ।
जारि-बारि कै भस्म भई धुवां न निकसै कोइ।।

यह विरह की घड़ियों का बहुत महत्त्वपूर्ण वर्णन है। यह घड़ी तुम सबको आए, ऐसी प्रार्थना करना। इसे समझो। समझोगे तो जब यह घड़ी आनी शुरू होगी तो तुम सजगता से उसे झेल सकोगे।
सुंदर बिरहनि अधजरी. . .।
एक अत्यंत उलझनपूर्ण अवस्था हो जाती है, जैसे कि अध-जली लकड़ी--न तो पूरी जल ही गयी है कि मिट ही जाए, न पूरी बची है। विरह में भक्त आधा-आधा हो जाता है। एक पैर उठ जाता है परमात्मा की तरफ, एक पैर जमीन पर रह जाता है-- त्रिशंकु की भांति अटक जाता है।
सुंदर विरहनि अधजरी, दुक्ख कहै मुख रोइ।
और अपने दुःख को कितना ही रोओ, कितना ही कहो, कोई समझनेवाला नहीं मिलता। क्योंकि इस दुःख तक पहुंचनेवाले लोग ही बहुत विरले हैं। इसलिए इस दुःख को रो-रो कर किसी से कहना भी मत। लोग समझेंगे नहीं, लोग हंसेंगे।
आज पश्चिम में ऐसा हुआ है कि न मालूम कितने भक्त, न मालूम कितने साधक पागलखानों में पड़े हैं, क्योंकि पश्चिम में अब कोई उपाय नहीं रहा उनको स्वीकार करने का। पश्चिम के पास कोई मापदंड नहीं रहे उनको परखने के। पश्चिम के पास सद्गुरु नहीं रहे। तो जब ऐसी घड़ी किसी की आ जाती है तो पश्चिम में क्या करेगा कोई? ले चले उसको चिकित्सक के पास, मनोचिकित्सक के पास, लगाओ उसे बिजली के शॉक, इंशुलिन के शॉक। दो उसे शामक दवाएं। कर दो उसे बेहोश। उसके मस्तिष्क को अस्तव्यस्त करो। क्योंकि वह विक्षिप्त हो गया है।
यह विक्षिप्तता साधारण विक्षिप्तता नहीं है। यह विक्षिप्तता बड़ी असाधारण विक्षिप्तता है।
और ऐसा मैं नहीं कह रहा हूं, पश्चिम के कुछ मनोवैज्ञानिक भी इस नतीजे
पर पहुंच रहे हैं, कि हमारे पागलखानों में कुछ लोग बंद हैं जो पागल नहीं हैं। लेकिन उनके सौभाग्य को समझने की भाषा खो गयी है। और उनके सौभाग्य को समझने वाले लोग खो गए हैं।
ऐसा ही समझो, अंधों की बस्ती में किसी को अचानक आंखें आ जाएं, तो अंधे क्या करेंगे? कुछ गड़बड़ हो गयी। वे उसकी आंखें फुड़वा देंगे। ऐसा न कभी हुआ, न कभी होता है; यह घटना स्वीकार नहीं की जा सकती।
जो पश्चिम में हुआ है वह जल्दी ही पूरब में भी हो जाएगा। हो ही रहा है। धीरे-धीरे हवा पश्चिम की पूरब पर छाती जा रही है।
मेरे एक मित्र ने मुझे लिखा। संन्यास लेकर गए, मस्ती में गए, नाचते हुए गए। स्टेशन पर घर के लोग लेने आए थे, उनको तो भरोसा ही नहीं आया कि क्या हो गया! पढ़े-लिखे आदमी हैं, डॉक्टर हैं। कभी किसी ने नाचते तो देखा ही नहीं था और जब उतरकर स्टेशन पर जब उन्होंने सब के पैर छुए--पत्नी के भी! तो हद हो गयी। बात साफ हो गयी कि पागल हो गए। जल्दी गाड़ी में बिठाकर घर ले गए। कहा कि सोओ, आराम करो। वे मुझे पत्र लिखे कि मुझे बड़ी हंसी आए, कि उन सबको मैं चिंतित देख रहा हूं, मैं तो इतना मस्त हूं, इतना खुश, इतना प्रसन्न मैं कभी जीवन में था नहीं! जैसे बाढ़ फूट गयी हो आनंद की! जैसे सब दबा रखा था, वह प्रकट हो गया हो! तो मैं तो उठ-उठकर बैठ जाऊं और वे मुझे लिटा-लिटा दें। फिर डॉक्टर को बुला लाए। वह डॉक्टर भी मित्र उनके। लेकिन मित्र ने भी कहा, कुछ गड़बड़ हो गयी है। क्या हो गया आपको?
तो वे मुझे लिखे हैं कि मुझे इतनी हंसी आए. . .!
अस्पताल से लिखा है कि मुझे अस्पताल में भर्ती करवा दिया है। वे वहां
भी हंस रहे हैं, मस्त हो रहे हैं; मगर जितने मस्त होंगे उतनी ही मुश्किल में पड़ेंगे। मैंने उनको खबर भिजवायी कि मस्ती बंद करो। भीतर-भीतर रखो। ऊपर-ऊपर से फिर उदास हो जाओ। यह उदासों की दुनिया है। यहां मस्तियां बरदाश्त नहीं की जा सकतीं। ऊपर-ऊपर से ढौंग करो कि तुम वही हो--वैसे ही उदास, वैसे ही परेशान, वैसे ही चिंतित।
देखते हैं आदमी की कैसी दशा है! चिंतित आदमी ठीक मालूम होता है; नाचने लगे, गैर ठीक मालूम होने लगता है! उदास हो, परेशान हो, स्वीकार है। मस्त हो जाए, अहोभाव से भर जाए, संदेह पैदा होने लगता है। ऐसा कहीं होता है। हम भूल ही गए भाषाएं कुछ।

मैंने उनको खबर भेजी कि तुम जल्दी से नाटक करना सीखो। जिंदगीभर जो किया था, उसी नाटक को जारी रखो। जब कोई कमरे में न हो तब नाच लिए, हंस लिए, प्रसन्न हो लिए; अन्यथा प्रकट मत करो। लोग नहीं समझेंगे और लोग गलत समझेंगे।
यही मौलिक अर्थ था आश्रमों का, कि वहां जाकर तुम एक अलग ही हवा में जी सकोगे--जहां सब स्वीकार होगा; जहां सब अंगीकार होगा; जहां तुम्हारा आनंद विक्षिप्तता न समझा जाएगा; जहां तुम्हारा आनंद स्वाभाविक स्वीकृत होगा।
मगर वे स्थल खोते जा रहे हैं। वे लोग खोते जा रहे हैं। जगत निश्चित ही परमात्मा से रोज-रोज दूर होता जा रहा है।
सुंदर विरहनि अधजरी दुःख कहे मुख रोइ।
जारि-बारि कै भस्म भई, धुआं न निकसै कोइ।
और यह घटना घटती है। इसे समझो। जब विरह में कोई भक्त जलता है तो धुआं नहीं निकलता। धुआं निकलता ही क्यों है? जब तुम आग जलाते हो, लकड़ी जलाते हो, तो धुआं निकलता क्यों है? धुआं लकड़ी के कारण नहीं निकलता; धुआं तो लकड़ी में पानी छिपा होता है उसके कारण निकलता है, गीलेपन के कारण निकलता है। लकड़ी अगर बिल्कुल सूखी हो तो धुआं नहीं निकलेगा। जितनी गीली हो उतना धुआं निकलता है।
अगर भक्त अभी संसार की कामवासनाओं में लिप्त हो, गीला हो, अभी धन से,
पद से, मोह हो तो धुआं निकलेगा। अगर भक्त के मन में अब कोई लोभ न हो, कोई मोह न हो; देख लिया सब संसार और देख ली इसकी असारता, ऐसी प्रतीति हो गयी हो--तो धुआं नहीं निकलता। आग जलती है--स्वच्छ आग, निर्धूम अग्नि!
जारि-बारि कै भस्म भई धुवां न निकसै कोइ।
सब कोई रलियां करैं, आयौ सरस बसंत।
सुंदर विरहनि अनमनी, जाकौ घर नहिं कंत।।
एक उलझन शुरू होती है जो दुनिया को मनोरंजन लगता है, वह अब भक्त को व्यर्थ लगता है। जो भक्त को आनंद लगता है, वही दुनिया को व्यर्थ लगता है।
एक भेद पड़ना शुरू होता है। एक फासला पड़ना शुरू होता है।
सब कोई रलियां करैं, आयौ सरस बसंत।
बसंत आ गया। झूले पड़ गए। राग-रंग शुरू हुए। मगर भक्त को कोई फर्क नहीं पड़ता।
जब कफस की जिंदगी अपना मुकद्भदर हो गयी
फस्ले-गुल आयी तो क्या, दौरे-खिजां आया तो क्या?
अब कुछ फरक नहीं पड़ता, बसंत हो कि पतझड़। भक्त को तो अब एक ही बसंत है-- कंत का आना! अब तो उस प्यारे से मिलन हो तो बसंत है। इस पृथ्वी के बसंत और पतझड़ सब बराबर हो गए।
ढोल बजते हैं दनादन की सदा आती है,
फसल कटती है, लचकती है, बिछी जाती है,
नौजवां गाते हैं जब सांवले महबूब का गीत,
एक दोशीजा ठिठक जाती है शरमाती है।
अगर कोई प्रेमी के गीत गा रहा हो तो तुम्हें भी अपने प्रेमी की याद आने लगती है। लेकिन जिसने परमात्मा को अपना प्रेमी बना लिया है, उसे अपने परमात्मा की याद आने लगती है।
ढोल बजते हैं, दनादन की सदा आती है
कहीं भी ढोल बजें, कहीं भी मृदंग पर थाप पड़े, मगर उसके हृदय पर परमात्मा की ही याद आती है।
फसल कटती है, लचकती है, बिछी जाती है
लोग फसल काट रहे हैं. . .।
नौजवां गाते हैं जब सांवले महबूब का गीत
वे अपनी प्रेयसियों के गीत गा रहे होंगे, कि अपने प्रेमियों के गीत गा रहे होंगे। लेकिन भक्त को तो अपने सांवले की याद आनी शुरू हो जाती है।
एक दोशीजा ठिठक जाती है, शरमाती है।
भक्त को इस जगत में सब तरफ से परमात्मा की ही सुधि आने लगती है। फूल खिलें कि गीत जगे, कि बांसुरी बजे, कि आकाश में मेघ मल्हार करे, कि दीया

रोशन हो, कि कोई आंख से आंसू टपके, कि किसी ओंठ पर मुस्कराहट हो, कुछ भेद नहीं पड़ता! कोई मृदंग बजाए कि कोई घूंघर बांधकर नाचे, कुछ फर्क नहीं पड़ता। हंसो कि रोओ, हर तरफ से उसे भगवान की याद आनी शुरू हो जाती है। और ऐसी जब याद आती है तभी स्मरण अखंड है। यह कोई राम-राम जपने की बात नहीं है कि बैठ गए और चौबीस घंटे राम-राम जपते रहे। ये तो मूढ़ता के लक्षण हैं। यह भाव-दशा की बात है।
मुझे खबर नहीं ऐ हमदमों सुना ये है
कि देर-देर तक अब मैं उदास रहता हूं
यह दूसरे ही उसको बताते हैं कि तुम खो जाते हो, कहां खो जाते हो? तुम्हारी आंखें किसी और लोक में चली जाती हैं। तुम कहां चले जाते हो? मुझे खबर नहीं ऐ हमदमों सुना यह है
कि देर-देर तक अब मैं उदास रहता हूं
बाहर से उदासी दिखाई पड़ने लगती है, क्योंकि उसकी सारी जीवन-ऊर्जा भीतर की तरफ बहने लगती है। बाहर अब कुछ अर्थ नहीं दिखाई पड़ता। बाहर के रागरंग सब फीके हो गए। बाहर के सब राग-रंग भीतर के ही रंगों की खबर लाते हैं। बाहर की हर घटना उसे भीतर फेंक देती है।
सब कोई रलियां करै आयौ सरस बसंत।
सुंदर बिरहनि अनमनी जाकौं घर नहीं कंत।।
लेकिन उसे बस एक ही याद आती है कि सबके प्यारे तो घर आ गए, मेरा प्यारा
कब आएगा? और उसका प्यारा ऐसा नहीं है, जो परदेश गया हो, चिट्ठी-पाती लिखे।
उसका प्यारा ऐसा नहीं है, जो परदेश से गहने और आभूषण लेकर आ जाएगा--उसका प्यारा ऐसा है जो यहीं मौजूद है! अपनी ही आंख अंधी है। इसलिए प्यारे को दोष भी नहीं दिया जा सकता। अपनी ही पुकार अधूरी है। अपनी ही प्रार्थना अभी लचर और कमजोर और नपुंसक है। साईं तूं ही तूं करौ क्यौं ही दरस दिखाव।
बस एक ही भाव उठता रहता है भक्त में कि अब तू ही तू बच, मुझे पूरा मिटा।
साईं तूं ही तूं करौ, क्यों ही दरस दिखाव।
और किसी भी तरह हो, अब दर्शन हो। मैं मिटूं तो भी तैयार हूं। मैं न बचूं तो भी तैयार हूं। दर्शन करनेवाला न भी बचे तो भी चलेगा, मगर दर्शन हो।
सुंदर बिरहनि यौं कहै, ज्यौंही-त्यौंही आव।
अब जैसे बन सके, अब जैसे हो सके, आओ! भक्त तो सिर्फ पुकार सकता है कि आओ। और सब अर्थों में अवश है, असहाय है पर यह असहाय अवस्था भक्त का बल है। निर्बल के बलराम!
जितनी यह निर्बलता होती जाती है उतना ही राम करीब आने लगता है। तुम्हारी अकड़ बाधा है। इसलिए भक्त न तो व्रत में भरोसा करता है, न उपवास में, न योग में, न त्याग में, न विधि में, न विधान में। क्योंकि ये सारे योग, तप, त्याग तुम्हारी अकड़ को और मजबूत कर जाते हैं, और धार रख जाते हैं तुम्हारे अहंकार पर। तुम्हें और सजा जाते हैं। तुम्हारी अस्मिता और प्रगाढ़ हो जाती है। भक्त का तो एक ही भरोसा है कि मेरे किए कुछ भी न हो सकेगा।
सुंदर बिरहनि यौं कहै ज्यौंही-त्यौंही आव
साईं तूं ही तूं करौ क्यौं ही दरस दिखाव।।
जिस विधि पीव रिझाइए सो विधि जानी नाहिं।
भक्त कहता है: कैसे तुम्हें रिझाऊं, इसकी विधि का मुझे कुछ पता नहीं।
जिस विधि पीव रिझाइए सो विधि जानी नाहिं।
जीवन जाई उतावला, सुंदर यहु दुःख माहिं।।
बस एक ही दुःख है कि जीवन हाथ से बहा जाता है। और कैसे तुम्हें रिझाऊं, इसकी कुछ विधि मुझे पता नहीं।
यही विधि है भक्त की--यही रोना, यही आंसू, यही आकाश की तरफ अटकी हुई आंखें!
मारग जोवै बिरहनी, चितवै पिय की वोर।
सुंदर जियरे जक नहीं, कल न परत निस भोर।।
भक्त की क्या है साधना? यही साधना है कि मैं असहाय हूं, कि मेरे हाथ कुछ भी नहीं, कि मेरे किए न कभी कुछ हुआ है न कभी कुछ होगा। मैं हार गया, मैं

थक गया! ... हारे को हरि नाम! उस हार से जब हरि का नाम उठता है तो फिर देर नहीं होती!
जोवन जाई उतावला, सुंदर यहु दुःख माहिं।
बस एक ही दुःख है कि जीवन चला जा रहा है। यह जीवन की गंगा बही जाती है,
और तुम्हारे दरस नहीं हुए और तुम्हारा परस नहीं हुआ। क्या मैं लोहा का लोहा ही रह जाऊंगा? तुम न छुओगे? क्या तुम्हारा परस, तुम्हारा पारस-पत्थर स्पर्श देकर मुझे सोना न बना लेगा? लोहे का क्या बस है सोना बने--पारस-पत्थर को पुकारता है। अगर पुकार मजबूत हो, गहरी हो, सच्ची हो, तो घटना घटती रही है, घटती है, घटेगी।
अलग बैठे थे फिर भी आंख साकी की पड़ी हम पर।
अगर है तिश्नगी कामिल तो पैमाने भी आएंगे।।
हम तो पा-ए-जाना पर कर भी आए इक सजदा।
सोचती रही दुनिया कुफ्र है कि ईमां है।।
लोग बैठे-बैठे यही सोच रहे हैं कि क्या धर्म अधर्म?
हम तो पा-ए-जाना पर कर भी आए इक सजदा।
हम तो प्यारे के चरणों में सिर भी झुका आए।
सोचती रही दुनिया कुफ्र है कि ईमां हैं।।
अलग बैठे थे फिर भी आंख साकी की पड़ी हम पर
प्यास होनी चाहिए, फिर तुम कहीं भी हो, उसकी आंख तुम पर पड़ेगी।
अलग बैठे थे फिर भी आंख साकी की पड़ी हम पर।
अगर है तिश्नगी कामिल तो पैमाने भी आएंगे।।
अगर प्यास पूरी है तो ढलेगी शराब, तो रस बहेगा। एक शर्त पूरी कर दो -- तिश्नगी कामिल हो! पूरी हो! कच्ची-कच्ची प्यास न हो, ऐसी-ही-ऐसी न हो, ऊपर-ऊपर न हो; कहने भर की न हो!
विवेकानंद अमरीका में बोलते थे। उन्होंने जीसस का वचन उद्धृत किया कि श्रद्धा पहाड़ों को हटा देती है। फेथ कैन मूव माऊंटेंस। एक बुढ़िया भी बैठी सुन रही थी। वह बड़ी खुश हो गयी, उसके मकान के पीछे ही पहाड़ था। और उस पहाड़ की वजह से उसके घर में अंधेरा भी रहता था, सूरज का भी पता नहीं चलता था। और वह बूढ़ी भी हो गयी थी, सर्दी भी ज्यादा रहती थी। उसने कहा: यह अच्छा हुआ, यह मैंने ख्याल ही नहीं किया। आज ही जाकर पहाड़ को हटाए देती हूं।
बुढ़िया गयी। आखिरी बार उसने खिड़की खोल कर पहाड़ देखा, क्योंकि फिर तो देखने को मिलेगा नहीं। आखिरी बार देखा, खिड़की बंद की, बैठी वहां और कहा: "हे प्रभु! हटा पहाड़!" भूल-चूक न हो जाए, इस लिए तीन बार कहा। फिर खिड़की खोली, पहाड़ जहां था वहीं था। हंसने लगी।... उसने कहा: मुझे पहले से ही पता था। कहीं पहाड़ इत्यादि हटे हैं?
अगर पहले से ही पता था कि पहाड़ इत्यादि नहीं हटते तो श्रद्धा कहां? शर्त ही चूक गयी। शर्त वही थी कि श्रद्धा पहाड़ हटा सकती है। श्रद्धा ही न हो तो ऊपर-ऊपर से तुम चेष्टा करते रहो, वह व्यर्थ चली जाएगी।
अलग बैठे थे फिर भी आंख साकी की पड़ी हम पर
अगर है तिश्नगी कामिल तो पैमाने भी आएंगे।
बस अपनी प्यास को बढ़ाए चले जाओ। प्यास को गहन करते चले जाओ। प्यास ही प्यास हो जाओ।
लालन मेरा लाड़िला रूप बहुत तुम मांहिं।
सुंदरदास कहते हैं: तुम बड़े प्यारे हो। तुम्हारे बहुत रूप हैं! अनंत तुम्हारे रूप हैं!
लालन मेरा लाड़िला रूप बहुत तुम मांहिं।
मेरे मन में तुम्हारे सब रूप बसे हैं। ये सारे रूप उसी के हैं। ये सारे लोग जो तुम्हारे पास बैठे हैं, ये वृक्ष जो हमें घेरे खड़े हैं, ये पक्षी जो आवाज कर रहे हैं--ये सारे रूप उसके हैं। ये कृष्ण, ये मुहम्मद, ये बुद्ध, ये महावीर, ये जरथुस्त्र, ये सभी रूप उसके हैं। कितने-कितने रूपों में वह प्रकट हुआ है!
लालन मेरा लाड़िला रूप बहुत तुम मांहिं।
सुंदर राखै नैन मैं पलक उघारै नांहिं।।

सुंदरदास कहते हैं: लेकिन मैं डर के मारे अपनी पलक नहीं खोलता कि कहीं तुम्हारा रूप न खो जाए! किसी-किसी तरह तुम्हें अपनी आंखों में बसाता हूं। पलक बंद रखता हूं।
देखते हो मजा, फर्क देखते हो? ज्ञानी, ध्यानी भी आंख बंद करता है, भक्त
भी आंख बंद करता है; लेकिन दोनों के आंख बंद करने का फर्क और भेद साफ है। ध्यानी आंख बंद करता है, ताकि संसार न दिखे। भक्त आंख बंद करता है, क्योंकि जो दिख रहा है कहीं चूक न जाए! ध्यानी का आंख बंद करना नकारात्मक है। वह सिर्फ इसलिए आंख बंद करता है कि लोग न दिखायी पड़े, संसार न दिखायी पड़े, थोड़ी देर को यह संसार भूल जाए किसी तरह से। उसकी प्रक्रिया नकारात्मक है। वह संसार का निषेध करने पर उतारू है। भक्त भी आंख बंद करता है। लेकिन भक्त आंख इसलिए बंद नहीं करता कि संसार न दिखे। संसार तो दिखायी पड़ना बंद हो चुका है। तभी तो भक्ति का आविर्भाव हुआ है। संसार में देखने-योग्य कुछ है भी नहीं, पाया भी नहीं, इसीलिए तो भक्ति का उदय हुआ है। सब संसार में प्यार से ढंग देख लिए और प्यारा नहीं मिला; अब वह आंख बंद करके प्यारे को देखता है, तो खोलने में डरता है कि कहीं आंख खोलूं तो प्यारा छिटक न जाए, आंख से निकल न भागे!
तुमने देखा, स्त्रियां प्रेम के क्षण में अकसर आंख बंद कर लेती हैं! भक्त स्त्रैण है। स्त्रियां क्यों प्रेम के क्षण में आंख बंद कर लेती हैं? अगर उनका प्रेमी उन्हें गले से लगाए है तो प्रेमी आंख बंद नहीं करता, प्रेयसी आंख बंद कर लेती है। क्योंकि जो अपूर्व घट रहा है, वह उसे अपने भीतर समा लेना चाहती है। आंख खोलकर क्या देखना है? आंख खोलकर तो जो दिखेगा वह ऊपर-ऊपर होगा, क्षुद्र होगा, स्थूल होगा। वह आंख बंद करके सूक्ष्म के दर्शन करती है।
प्रेम के क्षण में स्त्री की भी आंख बंद हो जाती है। भक्त की भी आंख बंद हो जाती है। आंख बंद करके भी देखने के ढंग हैं। और जीवन में जो भी गहन है, वह आंख बंद करके ही देखा जाता है।
स्त्रियों से कुछ सीखो, क्योंकि भक्त का मार्ग स्त्री का मार्ग है।
सुंदर राखै नैन में पलक उघारै नांहिं।
सुंदर विगसै बिरहनी मन मैं भया उछाह।
और जैसे-जैसे यह आंख संभलने लगती है और यह आंख बंद होने लगती है और भीतर उसका रूप निखरने लगता है, प्रकट होने लगता है, भीतर उसके रूप का कमल खिलने लगता है।
सुंदर विगसै बिरहिनी... ।
जैसे-जैसे उसका रूप खिलता है, वैसे-वैसे बिरहनी खिलती है। जैसे-जैसे उसका रूप स्पष्ट होता है वैसे-वैसे भक्त का हृदय भी आंदोलित होता है, रसमग्न होता है।
सुंदर बिगसै बिरहनी मन मैं भया उछाह।
बड़ा उत्साह जन्मता है। बड़ी ऊर्जा अभिव्यक्त होती है।
फूल बिछाऊं सेजरी आज पधारैं नाह।
स्वामी आज आ गए, मालिक आज आया, तो आज फूल बिछाऊं सेज पर। भीतर की सेज की बात है।
फूल बिछाऊं सेजरी, आज पधारैं नाह।।
ये भीतर की बातें हैं। बाहर से इनका कोई संबंध नहीं। लेकिन यह सदी बड़ी मूढ़ है। अगर तुम सिंग्मंड फ्रायड और उसके अनुयायियों से पूछोगे--और उसके अनुयायी इस देश में भी हैं... अगर तुम विश्वविद्यालय में जाकर मनोविज्ञान के अध्यापक से पूछोगे तो वह भी कहेगा कि ये सब कामवासना के प्रतीक हैं--सेज बिछाना-फूल बिछाना... । यह मीरां का कहना बार-बार कि मेरी सेज खाली पड़ी है, तुम कब तक आओगे--ये सब कामवासना के ही रोग हैं। ये कामवासना को ही नये-नये ढंग देना है। यह अध्यात्म के नाम से कामवासना का ही खेल है।
कुछ ऐसा दुर्भाग्यपूर्ण हुआ है इस सदी में... कि हमने सदा अतीत में कीचड़ को कमल से समझाया था; अब हम कमल को कीचड़ से समझा रहे हैं।
मेरा तुमसे निवेदन है। मेरी मौलिक धारणाओं में, मान्यताओं में एक मान्यता यह भी है कि क्षुद्र में विराट को देखो, लेकिन विराट को क्षुद्र

मत बनाओ। कामवासना में भी राम की वासना छिपी है, यह सच है; मगर राम की वासना में कहां कामवासना? कमल कीचड़ से पैदा होता है, यह सच है; लेकिन कमल में कहां कीचड़?
लेकिन इस सदी में कुछ मनुष्य का मन बड़ा रुग्ण हुआ है--हर चीज को नीचे खींच लाओ! आदमी का अध्ययन करना हो तो चूहों का अध्ययन कर रहे हैं लोग। चूहे को समझ लिया तो आदमी को समझ लिया। यह भी हद हो गयी!
आदमी का अध्ययन करना हो तो बंदरों का अध्ययन चल रहा है। बंदर को समझ लिया तो आदमी को समझ लिया!
जैसे कोई एक छोटे बच्चे को समझकर बूढ़े को समझना चाहे, गलत है यह बात। हां, बूढ़े को समझ लो तो छोटा बच्चा भी समझ में आ जाएगा, क्योंकि बूढ़े में छोटा बच्चा भी समाविष्ट है। लेकिन छोटे बच्चे में बूढ़ा आदमी समाविष्ट नहीं है। अभी छोटे बच्चे को बूढ़ा होना है। कली को समझ कर फूल समझ में नहीं आएगा। अभी फूल घटा नहीं। लेकिन फूल को समझ लो तो कली जरूर समझ में आ जाएगी, क्योंकि फूल में कली समाविष्ट है। वृक्ष को समझो तो बीज समझ में आता है; बीज को समझने से तो वृक्ष समझ में नहीं आता।
धर्म और विज्ञान की यह बुनियादी धारणा का भेद है। विज्ञान हमेशा स्थूल से सूक्ष्म को समझने की कोशिश करता है। वहीं चूक जाता है। दृश्य से अदृश्य को समझाना चाहता है, वहीं चूक जाता है।
सुंदर बिगसै बिरहनी मन में भया उछाह।
फूल बिछाऊं सेजरी, आज पधारैं नाह।।
और वह मालिक बंद आंख में ही आता है। संसार देखना हो, आंख खोल कर देखो।
उस प्यारे को देखना हो, आंख बंद करके देखो।
भटक जाए कोई कमसिन हसीना जैसे जंगल में
खुशी यूं मेरे दिल में लर जबर अंदाम आती है।
आंख बंद करो और लरजती है, सिहरती है, नाचती है। खुशी तुम्हारे भीतर आनी शुरू हो जाती है। आंख बंद करने की कला सीखो। यही तो सुंदरदास बार-बार कह रहे हैं। आंखें उलटाओ! बहुत देख लिए बाहर, अब भीतर देखो।
सुंदर अंदर पैसिकर दिल मौं गोता मारि। अब उतरो भीतर! अब बैठो भीतर! अब वहीं गोता मारो!
तौ दिल ही मौं पाइए सांई सिरजनहार।
तो वहीं पाओगे उस मालिक को जिसे बाहर खोजा और नहीं पाया। मालिक तुम्हारे भीतर छिपा है। और तुम सारी दुनिया में तलाश कर रहे हो। तुम खूब दौड़ चुके! कहां-कहां नहीं दौड़े! सब चांद-तारे तुमने खोज डाले। मगर एक छोटी सी जगह बिना खोजे छोड़ दी--अपने भीतर का आकाश।
सुंदर अंदर पैसिकरि दिल मौं गोता मारि।
तौ दिल ही मौं पाइए सांई सिरजनहार।।
जिस बंदे का पाक दिल सो बंदा माकूल।
और जिसके हृदय में निर्दोष भाव है, वही योग्य है उसे पाने का। ध्यान
से नहीं मिलता वह, निर्दोषता से मिलता है। छोटे बच्चे जैसा निर्दोष भाव चाहिए। पंडित का ज्ञान नहीं, भोले-भाले बच्चे का भाव!
जिस बंदे का पाक दिल सो बंदा माकूल।
सुंदर उसकी बंदगी सांई करैं कबूल।।
छोटे-छोटे बच्चों की प्रार्थनाएं स्वीकृत हो जाती हैं। तुम भी जिस दिन छोटे बच्चे की भांति उसे पुकारोगे, तुम्हारी प्रार्थना स्वीकृत हो जाएगी। अकड़ कर मत पुकारो। दावेदार बन कर मत पुकारो। असहाय छोटे बच्चे की भांति पुकारो। जैसे छोटा बच्चा अपनी मां को पुकारता है; न तो उठ सकता है झूले से, न बैठ सकता, न चल सकता। भूख लगी है, प्यास लगी है। रोता है। वही विधि है भक्त की। इसे मैं जितनी बार दोहराऊं, उतना कम है। रुदन भक्ति का योगशास्त्र है। और जो रोने में कुशल हो जाता है, जो रोने में मस्त हो जाता है, जिनके आंसुओं में जिनके हृदय का विरह बहने लगता है--उनके पाने में देर नहीं है।

जिस बंदे का पाक दिल सो बंदा माकूल। और आंसू तुम्हारी आंखों को ही स्वच्छ नहीं कर जाते, तुम्हारे हृदय को भी पाक कर जाते हैं, तुम्हारे हृदय को भी स्वच्छ कर जाते हैं।
सुंदर उसकी बंदगी, सांई करै कबूल।
हरदम हरदम हक्क तूं, लेइ धनी का नांव।
सुंदर ऐसी बंदगी, पहुंचावै उस ठांव।।
धड़कन-धड़कन में उसके नाम को गूंजने दो। श्वास-श्वास में उसकी याद उठने दो,। मुखसेती बंदा कहै दिल मैं अति गुमराह। ऊपर-ऊपर मत कहो। मुंह की बातें मत कहो। व्यर्थ समय मत गंवाओ।
मुखसेती बंदा कहै, दिल मैं अति गुमराह।
प्रार्थना तो ओंठों से हो रही है और दिल में कुछ और चल रहा है।
सुंदर सौ पावै नहीं सांई की दरगाह। उसको उस मालिक का मंदिर न मिलेगा मैं ही अति गाफिल हुई रही सेज पर सोइ।
यही गाफिलता है, यही बेहोशी, यही मूर्च्छा है, कि तुम परमात्मा तक को धोखा देने को तैयार हो। तुमने मंदिरों में प्रार्थनाएं की हैं; मस्जिदों में आवाजें दी हैं, लेकिन वे सब झूठी हैं। नहीं तो सुन ली गयी होतीं। नहीं सुनी गईं, यह पर्याप्त प्रमाण है कि वे झूठ थीं। तुमने ऊपर-ऊपर कह दिया, तुमने ऐसे ही कह दिया, कि देखो शायद कुछ हो जाए।
लेकिन "शायद" के साथ प्रार्थना नहीं होती। जहां शायद है वहां प्रार्थना कैसी? जहां किंतु-परंतु हैं, वहां प्रार्थना कैसी? या तो प्रार्थना का अर्थ होता है हां या प्रार्थना का अर्थ होता है ना; इन दोनों के बीच में कोई स्थान नहीं होता। लेकिन तुम्हारी सब प्रार्थनाएं किंतु- परंतु वाली हैं। तुम कहते होः देखें, शायद, कौन जाने हो ही जाए! हर्ज भी क्या है? सुबह उठ कर थोड़ी प्रार्थना कर ली तो बिगड़ेगा भी क्या?
सुंदर सो पावै नहीं सांई की दरगाह।
मैं ही अति गाफिल हुई रही सेज पर सोइ।
सुंदर पिय जागै सदा क्यौं करि मेला होई।।
बड़ा प्यारा वचन है कि वह प्यारा तो सदा जाग रहा है और मैं सो रही हूं,
तो मिलन कैसे हो? सोनेवाले का और जागनेवाले का मिलन कैसे हो? तुम्हारे पास ही कोई सोया हो और तुम उसके पास ही जागे बैठे हो, मिलन कैसे हो? सोने और जागने में मेल कैसे हो? सोनेवाला जागे तो ही मेल हो सकता है। तुम भी सो जाओ तो भी मेल नहीं होगा। दो सोनेवालों में भी मेल नहीं होता, अलग-अलग सोते हैं। एक जागे, एक सोए, तो भी मेल नहीं होता; दोनों जागे तो ही मेल है। जागरण में ही मिलन है।
किसी सूरत नमूदे-सोजे-पिनहानी नहीं जाती।
बुझा जाता है दिल चेहरे की ताबानी नहीं जाती।।
मुहब्बत में एक ऐसा वक्त भी दिल पर गुजरता है।
कि आंसू खुश्क हो जाते हैं तुगियानी नहीं जाती।
जिसे रौनक तेरे कदमों ने देकर छीन ली रौनक।
वो लाख आबाद हो उसके घर की वीरानी नहीं जाती।।
वो यूं दिल से गुजरते हैं कि आहट तक नहीं होती।
वो यूं आवाज देते हैं कि पहचानी नहीं जाती।।
बड़ी बेहाशी है! आवाज भी उसकी आती है, तुम आवाज न भी दो तो कोई हर्ज नहीं!
उसकी आवाज सुनो। मगर बड़ी बेहोशी है।
वो यूं दिल से गुजरते हैं कि आहट तक नहीं होती।
वो यूं आवाज देते हैं कि पहचानी नहीं जाती।
मैं ही अति गाफिल हुई रही सेज पर सोइ।
सुंदर पिय जागै सदा क्यौं करि मेला होइ।।
जौ जागै तौ पी लहै, सोए लहिए नाहिं।
सुंदर करिए बंदगी तौ जाग्या दिल मांहि।।

जागो तो प्रार्थना। भीतर जागो तो पूजा। जागो तो अर्चना। क्योंकि जागते ही जो तुम्हारे भीतर सदा से जागा बैठा है, उससे मिलन हो जाता है। एक क्षण की देरी नहीं होती। अमृत की वर्षा हो उठती है।
मैखाना-ए-हस्ती में अकसर हम अपना ठिकाना भूल गए।
या होश से जाना भूल गए, या होश में आना भूल गए।।
असबाब तो बन ही जाते हैं तकदीर की जिद को क्या कहिए।
इक जाम तो पहुंचा था हम तक, हम जाम उठाना भूल गए।।
आए थे बिखेरे जुल्फों के, इक रोज हमारे मरकद पर।
दो अश्क तो टपके आंखों से दो फूल चढ़ाना भूल गए।।
चाहा था कि उनकी आंखों से कुछ रंगे-बहारां ले लीजै।
तकरीब तो अच्छी थी लेकिन, वो आंख मिलाना भूल गए।।
मालूम नहीं कि आईने में चुपके से हंसा था कौन "अदम"।
हम जाम उठाना भूल गए वो साज बजाना भूल गए।।
मैखाना-ए-हस्ती में अकसर हम अपना ठिकाना भूल गए।
या होश से जाना भूल गए या होश में आना भूल गए।।
असबाब तो बन ही जाते हैं तकदीर की जिद की क्या कहिए।
एक जाम तो पहुंचा था हम तक हम जाम उठाना भूल गए।।
रोज ही उसकी खबर आती है। रोज ही उसका हाथ तुम तक फैलता है। रोज ही तुम्हारे हृदय को वो जगाने की चेष्टा करता है कि उठो, सुबह हो गयी, भोर हुआ। मगर न उसकी आवाज तुम तक पहुंचती, न उसका जाम तुम तक पहुंचता। तुम गाफिल हो। तुम बेहोश हो!
इन वचनों पर ध्यान करना! ध्यान ही नहीं, इन वचनों को अपने भीतर तीर की तरह चुभ जाने दो।
मैं ही अति गाफिल हुई रही सेज पर सोइ
सुंदर पिय जागै सदा क्यौं करि मेला होइ।।
जो जागै तो पिय लहै, सोए लहिए नाहिं।
सुंदर करिए बंदगी तौ जाग्या दिल मांहि।।
प्यारा बहुत करीब है। जागो तो करीब कहना भी शायद ठीक नहीं, तुम और प्यारा दो नहीं। सोओ तो बहुत फासला है, अनंत फासला है! फिर भटकते रहो सोए-सोए, कभी मिलना न हो सकेगा।
ध्यानी जागता है ध्यान से; भक्त जागता है विरह से। विरह में कहां सोओगे, कैसे सोओगे? नींद आए कैसे? ध्यानी जागता है विधि से, उपाय से; भक्त जागता है असहाय आंसुओं से।
रोओ! पुकारो! जागो! तो ही उससे मिलना हो सके। क्योंकि वह सदा जागा हुआ है।
जीवन तब तक व्यर्थ है जब तक उस जागे तत्त्व से संबंध नहीं हुआ। और जीवन तब तक अंधेरी अमावस है, जब तक भीतर जागरण का दीया न जला हो। जलाना ही है यह दीया। सब दांव पर लगाना है इस दीये के लिए। कुछ भी बचाना मत, क्योंकि बचाने वाले पीछे बहुत पछताते हैं।
तुम कुछ ऐसा करो कि इस जीवन से जब विदा होओ तो मृत्यु से मिलना न हो अमृत का द्वार खुले। अमृत के उसी द्वार के लिए तुम्हें पुकार रहा हूं।

आज इतना ही।

ज्योति से ज्योति जले
आठवां प्रवचन

प्रेम अर्थात धर्म

पहला प्रश्नः एक बार आप स्वप्न में आए। कभी मूसलाधार बारिश में लगा
आप आ रहे हैं। कभी आपकी तस्वीर में मुस्कराहट ऐसी लगती है कि सच में आप आए। प्रभु, यह मेरा भ्रम है अथवा आप आए? कृपया बताएं!
एक नजर मेरे वल वी उठा देख ले
जो मैं कीते गुनाह, वो गुनाह बख्श दे!

राधा, यह भी खूब रही! बुलाती हो, पुकारती हो, फिर आना हो तो संदेह उठाती हो।
स्वप्न का भी अपना एक सत्य है। स्वप्न भी बिल्कुल ही स्वप्न नहीं। स्वप्न भी असत्य नहीं। जो भी है, स्वप्न भी, है तो! वह भी सत्य की ही तरंग है। इसलिए तो कहा कि माया भी ब्रह्म की ही छाया है। स्वप्न भी सत्य का ही रूप है, रंग है, गंध है। सत्य निराकार है; स्वप्न उसका ही आकार है।
इन भेदों को छोड़ो। ये भेद हमारे खून में मिल गए हैं, हमारी हड्डियों में समाविष्ट हो गए हैं। ब्रह्म अलग, माया अलग; जीवन अलग, मृत्यु अलग; सत्य अलग, स्वप्न अलग... अलग-थलग कुछ भी नहीं है। सब एक में ही संयुक्त है। और जिस दिन एक को ही पहचानो, उस दिन फिर संदेह नहीं उठते। संदेह की गुंजाइश ही तभी तक है, जब तक दो है। इस बात को खूब ख्याल से समझो। दो हैं तो संदेह उठता रहेगा कि पता नहीं, क्या है? परमात्मा का अनुभव भी हो जाएगा तो भी मन संदेह उठाता रहेगा कि पता नहीं, सत्य है कि स्वप्न है? और अगर संदेह ही उठाना हो तो स्वप्न पर ही संदेह थोड़े उठाए जा सकते हैं?
अभी देखो! अभी मैं बोल रहा हूं। कौन जाने, तुम सो गए होओ और सपना देख रहे होओ कि मैं बोल रहा हूं! कैसे निर्णय करोगे कि सच में मैं यहां बोल रहा हूं? क्या होगा आधार, क्या होगी कसौटी?
एक पुरानी कथा है। एक वेदांत के अनुयायी ने, एक फकीर ने घोषणा की कि सारा संसार असत्य है। यह वेदांत की वास्तविक घोषणा नहीं है, भूल-चूक भरी है। वेदांत यह नहीं कहता कि सारा संसार असत्य है। वेदांत इतना ही कहता हैः संसार माया है। माया और असत्य पर्यायवाची नहीं है। माया का मतलब इतना ही होता है, जैसे लहर सागर में; सागर की माया है, असत्य नहीं। सत्य इसलिए नहीं कह सकते कि लहर बनती है और मिट जाती है, शाश्वत नहीं है; मगर क्षण को तो है! पूरी तरह है। सच तो यह है, जब तुम सागर के तट पर जाते हो सागर कहां दिखाई पड़ता है, लहरें ही दिखाई पड़ती हैं। ऐसे ही जहां भी तुम खोजोगे परमात्मा कहां दिखाई पड़ता है उसकी माया ही दिखाई पड़ती है! कहीं एक छोटे बच्चे में किलकारी भर रहा है। कहीं फूल में खिला है। कहीं मेघों में बरस रहा है। कहीं सूरज की किरणों में नाच रहा है। जहां भी तुम पाओगे, माया ही पाओगे। फिर कहीं कृष्ण में बांसुरी बजाता हो और कहीं राम में धनुष लेकर खड़ा हो, वह भी माया है। और कहीं बुद्ध में बोधिवृक्ष के तले आंख बंद किए बैठा हो और कहीं मीरां में नाचता हो, वह भी माया है।
माया का अर्थ झूठ नहीं होता। माया का इतना ही अर्थ होता हैः ये तरंगें हैं उस शाश्वत के सागर की। उसी से उठती हैं, उसी में लीन हो जाती हैं। माया सिर्फ इसलिए कहते हैं कि शाश्वत नहीं है। अभी हैं, अभी नहीं थीं, अभी फिर नहीं हो जाएंगी।
लेकिन उस वेदांती ने घोषणा कर दीः जगत असत्य है। ऐसा अनेक वेदांती कर रहे हैं। वेदांत का कुछ पता नहीं। उन्हें वेदांत का क, ख, ग भी नहीं आता। लेकिन तार्किक व्यक्ति था, सिद्ध तो कर सकता था। और यह बड़ा सरल सिद्धांत है सिद्ध करना कि सब असत्य है। क्योंकि किसी भी चीज को सत्य सिद्ध करना बहुत असंभव है।
मैं तुम्हारे सामने बैठा हूं, लेकिन सिद्ध नहीं कर सकते कि सत्य हूं।
क्योंकि ऐसे ही तो कभी-कभी रात सपने में भी तुमने देखा है, कि तुम बैठे हो, गैरिक वस्त्रों से भरे हुए लोगों की भीड़ में, मैं तुमसे बात कर रहा हूं।

उसमें और इसमें फर्क क्या करोगे? और जब सपने में देखा था तब तो वह भी सच मालूम हुआ था; अभी यह भी सच मालूम हो रहा है! कल की कौन जाने! कल सुबह जागकर पाओ कि सपना था, फिर क्या करोगे?
सत्य को तो सिद्ध किया नहीं जा सकता। इसलिए ज्ञानियों ने कहा हैः सत्य स्वयं सिद्ध है, उसको सिद्ध किया नहीं जाता, किया जा सकता नहीं। करने का कोई उपाय नहीं है। मगर किसी भी चीज को असत्य सिद्ध करना बहुत आसान है। निषेध आसान है। मन की सारी कला ही निषेध की है। "नहीं", संदेह, शक--मन उसमें बड़ा कुशल है। "हां" मन की भाषा नहीं है। श्रद्धा, किसी वस्तु में स्वीकार, वह मन का मार्ग नहीं है।
उस आदमी ने सिद्ध कर दिया कि सारा जगत असत्य है। राजा झक्की था गांव का। उसने कहाः अच्छा, ठीक है। उसके पास एक पागल हाथी था। उसने कहाः छोड़ो पागल हाथी इसके पीछे, उससे प्रमाणित हो जाएगा कि जगत सत्य है कि असत्य। वेदांती थोड़ा डरा। विवाद उसने बहुत किए थे। झंडा लेकर घूम रहा था। जो मिलता था उसको हराता था। दिग्विजय पर निकला था। सिर्फ मूढ़ ही दिग्विजय पर निकलते हैं। ज्ञानियों को क्या पड़ी है? किसकी विजय, कैसी विजय? उसी की जीत है, उसी की हार है! वही इस तरफ है, वही उस तरफ है।
वेदांती थोड़ा घबड़ाया, पैर कंपे। और जब पागल हाथी देखा तो होश खो दिए। हाथी बिल्कुल पागल था। अब हाथी वेदांत इत्यादि थोड़े ही मानते हैं, तर्क इत्यादि थोड़े ही मानते हैं। तुम लाख कहो कि संसार असत्य है, हाथी थोड़े ही सुनेगा। हाथी ने तो उठाई सूंड, चिंघाड़ा और भागा वेदांती के पीछे। बहुत दिन से उत्सुक था किसी को पकड़ने के लिए। जंजीरों में कसा था, मौका मिलता नहीं था, बहुत दिन की वासना, बहुत दिन की आकांक्षा इकट्ठी हो गयी थी। बड़े दमित भाव से भरा था। खूब उपवास कर लिया था उसने, खूब ब्रह्मचर्य साध लिया था! आज मौका पा गया, टूट पड़ा एकदम। वेदांती भी भागा, चिल्लाया जोर सेः "बचाओ मुझे! बचाओ मुझे!" हाथी ने पकड़ा और पटकने ही जा रहा था कि राजा ने उसे बचाया। उसकी चीख-पुकार ही इतनी थी, दया भी आ गयी और कहाः बात भी सिद्ध हो गई है! हाथी चला गया। वेदांती थोड़ा शांत हुआ, पसीना सूखा, सांस वापिस लौटी, होश वापिस ठहरा। राजा ने पूछाः अब क्या विचार है? वेदांती ने कहाः सब असत्य है महाराज! संसार माया है। उस राजा ने कहाः और अभी यह हाथी? और यह हाथी का तुम्हें पकड़ना और सूंड में मरोड़ना? और तुम्हारा यह चिल्लाना?
उस वेदांती ने कहाः सब माया है महाराज! मेरा चिल्लाना, हाथी का आना, शोरगुल मचाना, आपका बचाना--सब माया है। लेकिन मैं कहे देता हूं, हाथी को फिर मत बुलाना! यह सिद्धांत की चर्चा है, इसमें हाथी को बीच में कहां लाते हो?
जीवन को बांटो मत। जीवन की अद्वैतता को देखो और जियो।
राधा, तू पूछती हैः "एक बार आप स्वप्न में आए... ।"
आने की कोशिश तो मैंने बहुत बार की, मगर तू दरवाजा नहीं खोलती। एक तो रात, अंधेरा, अकेली... कौन दरवाजा खटखटा रहा है! दिन में लोग डरते हैं, तो रात में तू डरे तो कुछ आश्चर्य नहीं। पुकारती बहुत है, रोती बहुत है। शायद ही कोई दिन जाता हो जिस दिन तेरे आंसू मेरे लिए न गिरते हों और तेरी पुकार मेरे लिए न उठती हो। मगर जब आता हूं तब घबड़ा जाती है। तब सोचने लगती हैः कहीं शक ही तो नहीं है, कहीं मन का भ्रम ही तो नहीं है?
मन बड़ा कुशल है, हर चीज को भ्रम सिद्ध करने में। आनंद की पुलक उठती है
तो मन पूछता है कि कहीं भ्रम तो नहीं? और तुमने इस मन की तरकीब देखी है? जब दुख आता है तब मन कभी नहीं पूछता कि यह मन का भ्रम तो नहीं। जब सुख आता है, तब जरूर उठाता है प्रश्न। जब दुख आता है तब बिल्कुल तल्लीन हो जाता है दुख में। जब क्रोध उठता है तो संदेह नहीं उठता और जब करुणा आती है तो कहता हैः ठहरो, यह दया-ममता, यह करुणा का भाव कहीं सिर्फ क्षण की तरंग न हो? कुछ दे- दा मत बैठना। रुको जरा, सोचो-विचारो। शुभ करने की घड़ी में कहता हैः सोचो- विचारो। अशुभ की घड़ी में कहता है कि बस कर गुजरो, अभी देर करने की जरूरत नहीं है।
स्वप्न तो राधा, तू और भी देखती है। तूने घर-गृहस्थी बनाई है, वह क्या स्वप्न नहीं? पति है, बच्चे हैं, घर-द्वार है, खूब सजाया है--वह क्या स्वप्न

नहीं? रोज रात कहां खो जाता है वह स्वप्न? रात जब तू स्वप्न में सो जाती है, तब तेरे पति तेरे पति होते हैं? स्वप्नों को क्या पता कि तूने किसके साथ भांवर पाड़ ली? सपनों को क्या पता, कौन तेरा बेटा है? रात तो सब खो जाता है, यह दिन का विस्तार... । दिन में जागते हैं, रात का विस्तार खो जाता है। दिन रात को गलत कर देता है, रात दिन को गलत कर देती है। कौन सच है? दोनों एक जैसे समर्थ हैं एक-दूसरे को गलत करने में। इनमें सच और झूठ की फिक्र ही मतकर। वह जो तू आंख खोलकर देखती है दिन में, वह भी झूठ है। झूठ इस अर्थों में कि क्षणभुंगर है, माया है; इस अर्थ में नहीं कि नहीं है। है, पूरा है। तेरा घर है, तेरे पति हैं, पर समुद्र की लहर है। और रात तू जो देखती है वह भी क्षणभंगुर है। दिन का क्षण शायद थोड़ा लंबा है, रात का क्षण शायद थोड़ा छोटा है; लेकिन लंबाइयों से सच्चाइयों का निर्णय थोड़े ही होता है।
लेकिन एक बात पर ध्यान कर, बाहर सच है या झूठ, माया है या ब्रह्म, इसकी चिंता न ले। वही है--माया में भी वही! साधारण मनुष्य के स्वप्न में भी वही और असाधारण मनुष्य की समाधि में भी वही। लेकिन इन दोनों के पार एक साक्षी है, उसको पकड़ राधा! वह जो देखता है-- जो रात सपने देखता है, दिन जगत का विस्तार देखता है--उसको पकड़। वही शाश्वत है। वह सागर है शेष सब लहरें हैं। तू पूछती हैः "आप स्वप्न में आए। कभी मूसलाधार बारिश में लगा आप आ रहे हैं।"
शुभ हो रहा है। अच्छे लक्षण हो रहे हैं। मूसलाधार बारिश में जब मेघ गरजते हों, बिजलियां चमकती हों, जोर से नर्तन होता हो हवाओं का, बूंदें पड़ती हों तेरे मकान पर--उस सारे साज-संगीत में अगर तुझे मेरी याद आने लगी है तो अच्छा हुआ है। फिर जल्दी ही सूरज की किरणों में भी होगा। हवा के झोंकें तेरे द्वार थपथपाएंगे, उसमें भी होगा। धीरे-धीरे होता जाएगा, होता जाएगा, हर घड़ी होता जाएगा। धीरे-धीरे चौबीस घंटे तू मुझसे घिर जाएगी, मुझ में डूब जाएगी। यही तो शिष्य की लक्षणा है।
स्वप्न से पकड़ रहा हूं, क्योंकि जागने में तू पकड़ में नहीं आती। भागी- भागी! लोग कहते भी हैं कि हमें ले लो, हमारा जीवन अपने हाथ में ले लो और फिर जब लेने जाओ तो भागने भी लगते हैं; डर भी पकड़ता है कि किसी झंझट में तो न पड़ जाएंगे? कोई असुरक्षा तो न हो जाएगी? लोग झिझके-झिझके होते हैं; हर काम में हिचक होती है। एक कदम उठाते हैं, एक लौटा लेते हैं। एक हाथ से मंदिर की ईंट रखते हैं, दूसरे हाथ से गिरा देते हैं। फिर मंदिर बनता नहीं। फिर मंदिर नहीं बनता तो तड़पते हैं, रोते हैं।
मंदिर श्रद्धा से बनता है। श्रद्धा का अर्थ होता हैः तुम्हारा सारा जीवन एक काम में संगठित हो जाए एकाग्र हो जाए। किसी चरण में अगर तुम इकट्ठे उतर जाओ, किसी भाव में, किसी गीत में तुम्हारा सब खो जाए, सब तल्लीन हो जाए--तो उसी तल्लीनता में तुम्हें वह स्वर सुनाई पड़ने लगेगा जो शाश्वत का है। एक नाम ओंकार! तुम्हारे भीतर अनाहद का नाद बजने लगेगा।
अच्छा हुआ कि मूसलाधार बारिश में तुझे लगा कि मैं आता हूं।
"... कि कभी आपकी तस्वीर में मुस्कराहट ऐसी लगती है कि आप आए।"
अभी भी तू जो देख रही है, वह मेरी तस्वीर ही है। मैं तो यहां बहुत दूर तुझसे बैठा हूं। तेरी आंख में तो तस्वीर बनती है। वही तस्वीर तेरे मन में जाती है। हम जब भी देखते हैं, सभी तस्वीरें हैं। तस्वीरों के अतिरिक्त आंखें कुछ देख ही नहीं सकतीं। आंख का मतलब ही है तस्वीर बनाने का यंत्र। आंख तो कैमरा है। आंख करती ही क्या है? जो बाहर है... पता नहीं बाहर क्या है? किसी को पक्का नहीं कि बाहर क्या है?
वैज्ञानिक से पूछो तो बहुत चौंकाने की बातें हैं! ये वृक्ष तुम्हें हरे मालूम पड़ते हैं। वैज्ञानिक कहते हैं, जब इन्हें देखने वाला कोई नहीं होता तो ये हरे नहीं होते। क्योंकि हरियाली तो वृक्ष और आंख के बीच घटी हुई घटना है। आंख न हो तो हरियाली नहीं होती। आंख के बिना हरियाली कैसे होगी? हरियाली वृक्ष में नहीं है, हरियाली तुम्हारी आंख में है।
अब तुम बड़े चौंकोगे, कि जब तुम इस बगीचे से सब चले जाओगे और कोई भी नहीं होगा, रात सन्नाटा होगा, सब वृक्ष रंगहीन हो जाते हैं! न पत्ते हरे

होते हैं, न फूल लाल होते हैं। तुम पूछोगे, उनका रंग क्या होता है? उनका रंग होता ही नहीं, क्योंकि रंग तो आंख में होता है।
तुमने देखा नहीं, आंख पर नीला चश्मा चढ़ा लो तो हर चीज नीली दिखाई पड़ने लगती है। वह रंग कहां से आ रहा है? ये आंखें भी चश्मा हैं प्रकृति के दिए हुए। वैज्ञानिक कहते हैं कि जब तुम किसी जल-प्रताप पर जाते हो, घनघोर आवाज होती है पहाड़ी चट्टानों में गिरती हुई सरिता की! क्या तुम सोचते हो, जब वहां कोई सुननेवाला नहीं होता, तब भी आवाज होती है? तुम गलती में मत रहना। जब कोई सुननेवाला नहीं होता तो वहां आवाज होती ही नहीं, क्योंकि आवाज कान के माध्यम से हो सकती है। नदी लाख गिरे, पहाड़ से टकराए, मगर आवाज नहीं हो सकती। आवाज कान की संवेदना है।
तुम्हें कभी-कभी जीवन में भी यह अनुभव होता है, यह कोई विज्ञान से ही पूछने जाने की जरूरत नहीं है--बुखार के बाद भोजन में स्वाद नहीं आता। स्वाद तुम्हारी जीभ में है। जीभ रुग्ण है, स्वाद नहीं आता। भोजन वही है, स्वाद कहां होता है? अगर तुम गौर से देखोगे तो तुम्हारी पांचों इंद्रियों ने यह जगत को रंग दिया है, स्वाद दिया है, रूप दिया है। तुम हट जाओ--यह जगत बिल्कुल रंगहीन, स्वादहीन, रूपहीन है। उसको ही ज्ञानियों ने निर्गुण कहा है।
सगुण हमारा अनुभव है। सगुण माया है। विज्ञान और रहस्यवादियों का इस बात पर बड़ा तालमेल है। सगुण हमारी मान्यता है, हमारा सृजन है। हमारे हटते ही निर्गुण रह जाता है। उसमें कोई गुण नहीं होता। और वह निर्गुण अगर तुम्हें पहचानना हो तो बाहर न पहचान सकोगे। वह निर्गुण पहचानना हो तो भीतर पहचान सकोगे, क्योंकि बाहर तो आंख का उपयोग करना पड़ेगा। बाहर तो छुओ तो हाथ से ही छूना पड़ेगा।
तुम जब कहते हो, कोई चीज खुरदरी लगती है, तुम सोचते हो खुरदरी है? तुम्हारे हाथ की प्रतीति है। चीजें कहीं खुरदरी होती हैं, चिकनी होती हैं? चीजें तो बस जैसी हैं वैसी हैं। तुम्हारे पास उन्हें प्रकट करने का कोई उपाय नहीं है। वस्तुएं अपने में कैसी हैं, इसे कहा भी नहीं जा सकता। लेकिन तुम्हारे पास एक वस्तु ऐसी है, जिसे तुम वैसा का वैसा जान सकते हो जैसी है-- वह है तुम्हारा साक्षीभावः जो रात में सपने देखता है; जो दिन में जगत का विस्तार देखता है; जो वृक्षों में हरा रंग देखता है; फूलों में लाल रंग देखता है; पहाड़ों से गिरती हुई सरिताओं में आवाज सुनता है; वीणा पर टंकार उठती है, संगीत सुनता है; जीभ में स्वाद आता है, स्वाद का अनुभव करता है। भीतर तुम्हारे बैठा हुआ जो साक्षी है वह शाश्वत है; शेष सब तो बदलता रहता है। साक्षी निर्गुण है; अनुभव सगुण है। द्रष्टा निर्गुण है, दृश्य सगुण है।
धीरे-धीरे राधा, द्रष्टा के प्रति जाग! पर अच्छा हो रहा है, अगर दृश्य में प्रेमी दिखाई पड़ने लगे, गुरु दिखाई पड़ने लगे, परमात्मा दिखाई पड़ने लगे तो शुभ हो रहा है। इसमें संदेह उठाने की.जरा भी कोई जरूरत नहीं है। "प्रभु" मेरा यह भ्रम है अथवा आप आए? यह प्रश्न हमारे मन में सदा उठ आता है और तभी उठता है जब कोई महत्त्पूर्ण घटना घट रही होती है, अन्यथा नहीं उठता! पैर में कांटा गड़ता है तो हम नहींं पूछते कि हे कांटे! यह मेरा स्वप्न है, भ्रम है, कि आप असली में आए? सिर में दर्द होता है तो हमारे मन में प्रश्न नहीं उठता कि हे सिरदर्द! आप हैं कि ऐसे ही भ्रम हो रहा है? लेकिन भीतर प्रकाश फैल जाता है, तत्क्षण संदेह खड़ा हो जाता हैः है ऐसा, कि सिर्फ मुझे दिखाई पड़ रहा है, कि सिर्फ मेरी प्रतीति है?
जागो! आनंद के संबंध में यह प्रश्न उठाने की मन की आदत धीरे-धीरे त्यागो। क्योंकि यह प्रश्न अवरोध बनेगा। यह प्रश्न जहां खड़ा हो जाता है, वहीं अवरोध बन जाता है। इस प्रश्न को दुःख की तरफ मोड़ो।
मैं इस प्रश्न का यह उत्तर नहीं दे रहा हूं कि मैं आया या नहीं, ख्याल रखो। मैं यह उत्तर दे रहा हूं कि इस प्रश्न को दुख की तरफ मोड़ो। जहां-जहां जीवन में दुःख हो, इस प्रश्न को खड़ा कर दो। और तुम इस प्रश्न की क्षमता का उपयोग कर लोगे। तब तलवार ठीक जगह पड़ी। दुख को काटना है, गिरने दो यह प्रश्न की तलवार। जहां-जहां पीड़ा, जहां-जहां विषाद, जहां-जहां संताप है, खड़ा करो

इस प्रश्न को कि क्या यह सच है? और तत्क्षण तुम पाओगे कि तुम दुःख के बाहर होने लगे। इस प्रश्न को आनंद की घड़ी में खड़ा मत करो, अन्यथा आनंद के बाहर हो जाओगे। पहले दुःख काटो।
पहला कदम साधक का है, दुख को काटना। फिर जब सारा दुख कट जाए और आनंद ही आनंद रह जाए, तब यह प्रश्न पूछता है कि आनंद सही है? क्योंकि आनंद को भी काटना है। फिर एक और कदम ऊपर उठना हैः अब दृश्य को ही काट देना है, ताकि द्रष्टा ही शेष रह जाए। और सिर्फ द्रष्टा ही ऐसा है जो इस प्रश्न से नहीं कटता है, बाकी सब चीजें कट जाती हैं। वही अकाट्य है। इसलिए उसको ही हमने शाश्वत सत्य कहा है; शेष सब सत्य की तरंगें हैं क्षणभंगुर!
और राधा, तूने यह भी पूछा है;
"एक नजर मेरे वल वी उठा देख ले,
जो मैं कीते गुनाह वो गुनाह बख्श दे!"
कहां के गुनाह! धर्मगुरु समझाते रहे तुम्हें खूब कि तुमने बहुत पाप किए, पापी हो।
कोई पापी नहीं है। करो यह उदघोषणा सारे जगत मेंः न कोई पापी है, न कोई पापी हो सकता है! परमात्मा ही सब में विराजमान है, कैसा पाप! और अगर कभी तुम्हें लगता भी हो कि तुमसे कुछ भूल-चूक हुई... ध्यान रखना, भूल-चूक पाप नहीं है। भूल-चूक सुधर जाती है। अगर कभी कुछ भूल-चूक होती है... होती है भूल-चूकें, क्योंकि आदमी मूर्च्छित है... तो भूल-चूक को भी परमात्मा के पास ले जाने के लिए उपयोग करो। भूल-चूक से पछताओ। भूल-चूक को प्रार्थना बनाओ। मयस्सर है किसी का.फर की शर्मीली निगाहों को
तसव्वुर में भी जो पाकीजगी मुश्किल से आती है
.गमे दुनिया के दागों में तरब का रंग भर वर्ना
ये वो तारे हैं जिनमें रोशनी मुश्किल से आती है
अरे हम अहले-कफस कैसे भूल जाएं उसे
बराए नाम सही, फिर भी आशियाना था
ब.जा कि दैरो-हरम भी करीब थे लेकिन--
हमारी राह में हाइल शराबखाना था
गुनाह से हमें रगबत न थी मगर या रब!
तेरी नि.गाहें-.करम को तो मुंह दिखाना था।
समझे अर्थ? बजा कि दैरो-हरम भी करीब थे लेकिन... मंदिर और मस्जिद बहुत करीब थे, माना। हमारी राह में हाइल शराबखाना था... लेकिन एक मधुशाला उसके भी पहले पड़ती थी, सो हम मधुशाला में भटक गए। गुनाह से हमें र.गबत न थी मगर या रब! और यह भी हम तुझे कह देते हैं, हे परमात्मा! कि हमें पाप करने से, गुनाह करने से कुछ रस नहीं था, कोई रुचि नहीं थी।
गुनाह से हमें रगबत न थी मगर या रब!
तेरी निगाहे-करम को तो मुंह दिखाना था
लेकिन सुना है कि तू महाकरुणावान है, तू महाक्षमावान है! तो कुछ पाप न करते तो तुझे मुंह कैसे दिखाते? तेरी निगाहे-करम को भी तो मुंह दिखाना था। यही सोच मधुशाला में चले गए। जब तेरे सामने खड़े होंगे हाथ जोड़ कर तो क्षमा मांगने को भी तो कुछ चाहिए न!
.जरा तुम सोचो, अगर परमात्मा रहीम है, रहमान है, और तुम पहुंचे वहां बिल्कुल साधु-पुरुष! तुमने कभी भूल-चूक की नहीं। तुमने कभी गुनाह किया नहीं, पाप किया नहीं। तुमने हर रत्ती-रत्ती नियम का पालन किया, आष्टांगिक योग पाला। सब जैसा विधि-विधान था शास्त्रों में, ठीक वैसे ही चले, रत्ती भर राह से यहां-वहां न गए। जरा सोचो, परमात्मा कैसी फजीहत में न पड़ जाएगा! एक तरफ तुम्हें देखेगा, एक तरफ अपनी तरफ देखेगा, कुछ समझ में न आएगा कि बात भी कहां से शुरू हो? बड़ा बेढंगा लगेगा, राधा। थोड़े-थोड़े गुनाह झुकने का मजा देंगे। पश्चाताप का रस होगा। उसके चरणों में सिर रख सकेंगे; कहेंगे, माफकर।
तेरी निगाहे-करम को मुंह दिखाना था
गुनाह से हमें रगबत न थी मगर या रब!

छोटी-मोटी भूलों की फिक्रें न करो। और मुझसे तो भूलकर इस बात की फिक्र
मत करना, क्योंकि मेरी दृष्टि में कोई भी पापी नहीं है। मेरी दृष्टि में कोई बुरा नहीं है। बुरा होने का इस जगत में उपाय नहीं है। क्योंकि परमात्मा ने इस जगत को ऐसा भरा है, ऐसा लबालब है जगत परमात्मा से, कि यहां भूल कैसी, गुनाह कैसा, पाप कैसा? सिर्फ बोध चाहिए।
मगर राधा यह आदत छोड़। अब तो स्वप्न में भी उसको ही देखना शुरू कर। अब
तो भूल में भी उसका ही हाथ... अब सभी उस पर समर्पण कर।
किया है सैर-गहे-जिंदगी में रुख जिस सिम्त
तेरे ख्याल से टकराके रह गया हूं मैं।
अब तो जहां आंख जाए उसी के ख्याल से टकराए। अब तो जिंदगी की इस यात्रा में... किया है सैर-गहे-जिंदगी में रुख जिस सिम्त... जिस तरफ मुंह उठे, जिस दिशा में, उसी से पहचान हो, उसी से मुलाकात हो।
अच्छा हो रहा है कि बादलों की गड़गड़ाहट में भी तू मुझे सुनने लगी। धीरे-धीरे मुझमें भी तू उसको सुनने लगेगी। यही गुरु का उपयोग है कि जोड़े अपने से, कि इस बहाने तुम उस अदृश्य से जुड़ने लगो। और ये छोटे-छोटे जो प्रश्न उठ आते हैं संदेह के, ये जाने दो, इनको विदा करो।
कहां का वस्ल तनहाई ने भेस बदला है
तेरे दम-भर के आ जाने को हम भी क्या समझते हैं।
मन तो संदेह उठाए जाएगा, वह कहेगा----जरा-सी देर के लिए यह घटना घटी इसमें रखा क्या है? कहां का वस्ल? कहां का मिलन? तनहाई ने शायद भेष बदला है? शायद हमारे अकेलेपन ने ही कोई नया रंग-ढंग अख्तियार कर लिया है, कोई नया वेष पहन लिया है।
तेरे दम भर के आ जाने को हम भी क्या समझते हैं।
लेकिन दमभर को भी सत्य की किरण उतरे, स्वप्न में भी सत्य की किरण उतरे,
तो भी रूपांतरित करती है। तुम्हारे स्वप्न भी तुम्हें अछूता नहीं छोड़ जाते। तुम जो स्वप्न देखते हो, वह भी तुम्हें बदलता है।
तुमने कभी ख्याल किया है? एक रात अगर तुमने मधुर स्वप्न देखे, शांति
और आनंद के स्वप्न देखे, समाधि के स्वप्न देखे... । एक रात तुमने स्वप्न देखा बुद्ध का, महावीर का, कृष्ण का, मुहम्मद का। एक रात तुमने स्वप्न देखा कि तुम स्वयं बुद्ध हो और वृक्ष के नीचे बैठे हो समाधि में। क्या दूसरे दिन क्रोध उतना ही आसान होगा जितना पहले था? हालांकि स्वप्न ही देखा है, लेकिन दूसरे दिन एक ताजगी और होगी तुम्हारे मन पर। तुम्हारी जीवन-शैली और होगी। तुम्हारे पैरों में नाच होगा। तुम्हारी आंखों में रौनक होगी। और एक रात तुमने हत्या के स्वप्न देखे और तुमने लोग मारे और काटे और तुमने खून बहाया और गर्दनें गिराईं, रातभर एक दुख-स्वप्न रही। क्या दूसरे दिन तुम सोचते हो इसका परिणाम नहीं होनेवाला है? तुम्हारा मन खिन्न नहीं होगा, चिंतित नहीं होगा, उदास नहीं होगा, रुग्ण नहीं होगा? फिर स्वप्न और दिन में भेद क्या, दोनों तो एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं।
भेद छोड़ो। दिन भी एक तरह का स्वप्न है और स्वप्न भी एक तरह का जागरण है। इस भेद के छोड़ते ही तुम्हें तीसरे की याद आनी शुरू होगी, कि वह कौन है जो दोनों को देखता है? दिन में आंख खोल कर देखता है, रात आंख बंद करके देखता है। वह कौन है जो सब का साक्षी है? वही परमात्मा है।
दूसरा प्रश्नः आपके चरणों में अपने को समर्पित कर निर्भार और मस्त हो जाने को लोग ढौंग कह रहे हैं। मैं उनको क्या अभिव्यक्त करूं?
हरि वेदांत! वे ठीक ही कह रहे हैं। उन्हें कहना ही पड़ेगा। वे तुम्हारे संबंध में कुछ भी नहीं कह रहे हैं, वे सिर्फ अपनी आत्मरक्षा कर रहे हैं। अगर तुम सही हो तो वे गलत हैं। अगर तुम गलत हो तो ही वे अपने सहीपन की रक्षा कर सकते हैं।
तो उनसे नाराज मत हो जाना। उनका भाव समझो। वे तुमसे डर गए हैं। वे तुमसे भयभीत हो गए हैं। तुम्हारा आनंद उनके लिए संकट हो गया है, एक चुनौती हो गयी है। अगर तुम सच में आनंदित हो तो फिर उन्हें अपनी जिंदगी को बदलना पड़ेगा। वे भी आनंद की तलाश कर रहे हैं और उन्हें नहीं मिला। वे भी ऐसे ही मस्त होना चाहते हैं। उनने भी चाहत की है कि नाचें। सब लोकलाज छोड़ कर आनंद

के गीत गाएं--ऐसा भाव किसके मन में नहीं है, किसकी अभीप्सा का अंग नहीं है? लेकिन जो जिंदगी उन्होंने बनाई है, वह बड़ी नारकीय हो गई है। सब सूत्र उलझ गए हैं। कुछ सूझ नहीं पड़ता। अचानक एक दिन उन्हीं जैसा एक आदमी नाचने लगा। कल तक तुम भी उन जैसे ही उलझे थे-- उसी बाजार में, उसी भीड़ में, उन्हीं उपद्रवों में। आज अचानक तुम नाच उठे! भीड़ कैसे स्वीकार कर ले कि ऐसे कहीं रूपांतरण होता है, क्षण में?
उन्हें पता नहीं कि पारस छू जाए तो लोहा क्षण में स्वर्ण हो जाता है। कोई जन्म-जन्म थोड़े ही लगते हैं। फिर तुमने जो नरक बनाया है, वह तुम्हारे अपने हाथ की बनावट है। जिस क्षण छोड़ना चाहो उसी क्षण छूट जाता है। स्वभावतः उन्हें शक होगा कि ढौंगी दिखता है। यह हंसी झूठ होनी चाहिए। यह हंसी सच कैसे हो सकती है? क्योंकि उन्होंने तो कांटे ही कांटे जाने हैं; ये फूल सच कैसे हो सकते हैं? बाजार से खरीद लाया होगा। प्लास्टिक के होंगे, नकली होंगे, कागजी होंगे। यह हंसी ओंठो पर होगी। यह किसी धोखे में पड़ गया है या धोखा दे रहा है। दो में से एक ही बात हो सकती है--या तो खुद धोखा खा गया है या धोखा दे रहा है।
यह तीसरी बात स्वीकार करना तो बड़ी कष्टपूर्ण है, कि जो हुआ है वह सच में ही हुआ है। क्योंकि फिर हमारा क्या, फिर हम अपनी जिंदगी का क्या करें? फिर से गिराएं पुराना सारा बनाया हुआ, फिर से बनाएं नया? इतना साहस कम लोगों में होता है। फिर से शुरू करें क ख ग से? फिर से यात्रा शुरू करें पहले पाठ से? तो ये जो पचास साल गए, पानी में गए? इतना साहस बहुत थोड़े से हिम्मतवर लोगों में होता है।
इसलिए जिनमें हिम्मत है वे स्वीकार करेंगे और जिनमें हिम्मत नहीं है
वे स्वीकार नहीं करेंगे।
तुम कहते होः आपके चरणों में अपने का समर्पित कर निर्भार और मस्त हो जाने को लोग ढौंग कह रहे हैं।
लोगों की मजबूरी समझो। वे बेचारे ठीक ही कह रहे हैं। वे अपनी आत्मरक्षा का उपाय कर रहे हैं। ढौंग कहकर तुम्हें, वे कवच ओढ़ रहे हैं। तुम्हें जब वे कह रहे हैं कि ढौंग है, तब उन्होंने एक ढाल अपने पर कर ली है। वे अपने को बचा रहे हैं, कि नहीं, यह नहीं हुआ है। चिंता में मत पड़ो, तुम जैसे चलते हो चले जाओ। तुम ठीक ही चल रहे हो। और भीड़ तुम्हारे साथ है। और ऐसा इक्का-दुक्का आदमी या तो पागल हो गया है, या सम्मोहित हो गया है, या धोखा देने में लगा हुआ है।
तो एक तो यह कारण, फिर दूसरा कारण है। इसलिए मैं कहता हूं, वे ठीक कहते हैं क्योंकि हजारों साल से साधुओं के नाम पर इतना धोखा दिया गया है कि लोग आनंद की बातें ही करते रहे हैं और सोचने लगे हैं कि आनंद की बातें करने से ही आनंद हो जाता है!
तुम जाकर अपने साधु-संन्यासियों को देखो। सच्चिदानंद की चर्चा चलती है, मगर आनंद की कहीं कोई झलक नहीं है। जीवन बिल्कुल रूखा-सूखा रेगिस्तान मालूम होता है और फूलों की बातें होती हैं।
अकसर ऐसा हो जाता है, जो हमारे जीवन में नहीं होता, उसे हम बातचीत से पूरा कर लेते हैं। वह परिपूरक है। बातचीत चलाकर हम ढांक लेते हैं अपने को। आदमी अपनी नग्नता को प्रकट नहीं करना चाहता।
इसलिए एक बहुत अनूठी बात मनोविज्ञान ने खोजी है कि लोग जो बाहर से दिखलाते हैं, अकसर भीतर उससे उल्टे होते हैं। जैसे कमजोर आदमी अपने को बड़ा बहादुर दिखलाता है। उसे डर है अपनी कमजोरी का। वह भीतर कंप रहा है। वह बड़ा भयभीत है। वह इतना डर रहा है कि वह यह तो कह नहीं सकता है कि मैं डर रहा हूं। अगर वह यह भी कह दे कि मैं डर रहा हूं तो समझना हिम्मतवर आदमी है! डर के जाने का क्षण आ गया। लेकिन इतनी हिम्मत भी नहीं जुटा पाता कि कह दे कि मैं डरा हुआ हूं। अपने को ढांक-ढूंक कर, सिद्धांतों इत्यादि, शास्त्रों की आड़ में, वह कहता हैः मैं और डर? कभी नहीं, मैंने डर जाना ही नहीं।
कल रात मैं एक मनोवैज्ञानिक की जीवन-कथा पढ़ रहा था। उसने बड़ी प्यारी घटना लिखी है। उसने लिखा हैः बचपन से ही उसे एक ही चीज का सबसे बड़ा भय रहा कि किसी को यह पता चल जाए कि मेरे भीतर भय है।

दुनिया में भय से लोग जितने डरते हैं उतना किसी और चीज से नहीं डरते। क्योंकि कायर, नामर्द... लोग कहेंगे... अरे नपुंसक! कुछ भी नहीं, किसी काम के नहीं!
उसने लिखा है कि बचपन में स्कूल में बच्चों से झगड़ा हो गया। बच्चों के
एक गिरोह ने उसकी पिटाई का इंतजाम किया। वह किसी तरह उस दिन तो उन्हें धोखा देकर पीछे के रास्ते से भाग आया। वे दूसरे रास्ते पर इकट्ठे थे। मगर दूसरे दिन वह डरा कि अब अगर मैं गया तो आज तो पिटाई होने ही वाली है। दो ही रास्ते थे। एक पर कल उन्होंने इंतजाम किया था, आज वे दोनों पर इंतजाम कर लेंगे। और यह वह स्वीकार नहीं करना चाहता है कि अपनी मां को कह दे कि मैं डरता हूं, कि अपने अपने शिक्षक को कह दे कि मैं डरता हूं। उसने अपनी मां को कहाः मेरे पेट में दर्द है। आज मैं स्कूल नहीं जाना चाहता।
मां ने कहाः किस तरफ दर्द है? तो उसने बताया दर्द इस तरफ है। मां ने कहाः यह तो हो न हो अपेंडिक्स होना चाहिए। वह बहुत घबड़ाया कि अब और एक मुसीबत हुई। कहां का अपेंडिक्स? उसे कोई दर्द वगैरह है भी नहीं। मगर उसकी अब यह हिम्मत कहने की न पड़े कि मैं सिर्फ झूठ ही बोला हूं। मां उसे डॉक्टर के पास ले गयी। उसने सोचा था जांच-पड़ताल होगी, बात खत्म हो जाएगी। डॉक्टर ने जांच-पड़ताल की, डाक्टर ने जांच-पड़ताल करके कहा कि पक्का तो बैठता नहीं कि अपेंडिक्स है या नहीं, लेकिन झंझट लेना ठीक नहीं, इसलिए ऑपरेशन कर लेना उचित है।
अब तो वह बहुत घबड़ाया। मगर अब बात बहुत आगे बढ़ चुकी है। तुम चकित होओगे जान कर कि ऑपरेशन हुआ! अब उसने जीवन के अंत में सत्तर साल की उम्र में यह बात लिखी है कि अब मैं यह इतनी हिम्मत जुटा पाया हूं कहने की, कि अब मैं सच-सच कह ही देना चाहता हूं कि न मुझे दर्द था न अपेंन्डिक्स था, मगर मेरा अपेंडिक्स भी निकला। ऑपरेशन मैंने करवा लिया हिम्मत करके। मगर यह हिम्मत न जुटा सका कहने की कि वहां बच्चे मुझे मारने को इकट्ठे हैं। और यह मैं स्वीकार नहीं करना चाहता कि मैं कायर हूं।
तुम.जरा अपनी जिंदगी को गौर से देखना। अपने आस-पास गौर से देखना। जिन लोगों के जीवन में भीतर बहुत दुःख है वे अकसर ऊपर झूठी मुस्कान ओढ़े रहते हैं। जिन्होंने जीवन में कभी प्रेम नहीं जाना, वे प्रेम के गीत गुनगुनाते हैं। ऐसे मन को भुलाते हैं, समझाते हैं, सांत्वना देते हैं। आदमी क्या करे, आदमी बड़ा कमजोर है।
तो वे लोग जो कह रहे हैं कि तुम ढौंगी हो, उसके पीछे एक कारण यह भी है। सदियों तक उन्होंने ढौंग देखा है। न मालूम कितने-कितने तरह के ढौंगी देखे हैं। फिर मेरा संन्यासी तो उन्हें और भी अड़चन का कारण है। क्यों कि मैं संन्यास को एक नयी परिभाषा दे रहा हूं, नया अर्थ दे रहा हूं, जो उनकी समझ के बाहर है, जो उन्होंने कभी सुना न देखा। संन्यास का उनका अर्थ थाः जो सब छोड़कर भाग जाए। अब वे तुमको ढौंगी न कहें तो क्या कहें? तुम कुछ भी छोड़कर नहीं गए, यह कैसा संन्यास!
इसलिए मैं कहता हूंः वे बेचारे ठीक ही कह रहे हैं। उन पर नाराज मत होओ। अगर वे किसी पुराने संन्यासी को अपने बाल-बच्चों के साथ देख लें, पत्नी के साथ देख लें, तो उसे ढौंगी कहेंगे कि यह ढौंगी है। अगर पुराने संन्यासी को दुकान करते देख लें तो ढौंगी कहेंगे। और तुमसे मैंने कहा दुकान छोड़ना मत, पत्नी-बच्चे छोड़ना मत। असल में मैंने तुमसे ढौंग का उपाय ही छीन लिया है, मगर उनकी समझ में जब आएगा तब आएगा। मैंने तुमसे ढौंग का उपाय ही छीन लिया है, जड़ ही काट दी। ढौंग का उपाय ही कहां बचा? मेरे संन्यासी के लिए ढौंग का उपाय ही नहीं है। तुम ढौंग करोगे क्या? जितनी चीजें ढौंग से की जाती थीं, वे तो मैंने तुम्हें करने की आज्ञा दी है। मेरा संन्यासी भर ढौंगी नहीं हो सकता। मेरा संन्यासी तो ढौंगी तब होगा जब वह छोड़-छाड़ कर भाग जाए और किसी जंगल में बैठ जाए आंख बंद करके, तब तुम कहना कि यह ढौंगी है। यहां क्या कर रहे हो?
क्योंकि मैंने तो कहाः संसार में परमात्मा के दर्शन करने हैं। जीवन
के छोटे-छोटे कामों में उसकी उपासना को खोजना है। क्षुद्र में विराट की

तलाश करनी है। सामान्य में असामान्य को खोदना है। रूप में अरूप को पाना है।
तो मैंने तो तुमसे छोड़ने को कहा नहीं, इसलिए उनका कहना बिल्कुल ठीक है। आखिर उनके पास भाषा पुरानी है। मेरी भाषा तो बनते-बनते बनेगी। उनके पास, मैं जो कह रहा हूं, उसे समझने का कोई उपाय नहीं है। मैंने उन्हें सिर्फ भौंचक्का कर दिया है। वे एकदम बेबूझ-से खड़े रह गए हैं। उनकी समझ में नहीं पड़ रहा है कि क्या हो रहा है।
मेरे पास आ जाते हैं कभी... पुराने ढब के एक संन्यासी आए कुछ दिनों पहले। कहाः यह कैसा संन्यास है? तीस साल से संन्यासी हैं, उम्र भी साठ साल की है। कहाः मैंने तो बहुत साधु-संत देखे हैं, बहुत हिमालय में घूमा हूं, गंगोत्री तक की यात्रा की है; मगर यह कैसा संन्यास है?
मैंने कहाः यह सहज संन्यास है। मेरा संन्यास का अर्थ और ही है। संन्यास का अर्थ हैः भाव की एक ऐसी दशा कि तुम बाजार में खड़े हो, फिर भी अकेले हो। कर रहे सारे काम, फिर भी निष्काम। जी रहे संबंधों में, फिर भी असंग हो। तो स्वभावतः
मेरे एक मित्र हैं, संन्यस्त हुए। आठ दिन बाद आए कि मेरी पत्नी को भी संन्यास दे दें। मैंने कहाः मामला क्या है? पत्नी राजी है?
कहाः राजी होना ही पड़ेगा, क्योंकि जहां भी मेरे साथ जाती है, लोग बहुत खड़े होकर देखने लगते हैं कि ये स्वामीजी किसकी पत्नी को लिए जा रहे हैं? कल एक पुलिसवाले ने रोक लिया, कि रुको महाराज, यह स्त्री किसकी है? दस बजे रात कहां जा रहे हो? मैंने कहा, भाई मेरी पत्नी है। उन्होंने कहाः तुम्हारी पत्नी? फिर तुम संन्यासी कैसे? पुलिसवाले को भी पता है कि संन्यास का मतलब क्या होता है।
मैंने उनकी पत्नी को भी संन्यास दे दिया। आठ दिन बाद वे फिर वापस आ गए
कि मेरा एक बेटा और है, इसको और संन्यासी करें, क्योंकि कल टेन में हम दोनों बैठे थे... । बंबई में रहते हैं। लोकल गाड़ी में चले आ रहे थे, डब्बे में दो-तीन आदमी एकदम नाराज हो गए और कहा कि यह मालूम होता है किसी का बच्चा भगाकर ले जा रहे हैं।
साधु-संन्यासी भगाकर ले जाते हैं न बच्चा! और कोई उपाय नहीं मिलता चेला खोजने का तो बच्चों को भगा ले जाते हैं कि चलो। चेले तो चाहिए ही चाहिए!
तो कहाः इसको भी संन्यास दे दें, नहीं तो मुश्किल खड़ी हो जाएगी किसी
भी दिन। वे तो बिल्कुल लड़ने-झगड़ने को राजी हो गए थे। बामुश्किल समझाया कि भाई यह हमारा ही बच्चा है।
"तुम्हारा बच्चा कैसे? संन्यासी का, और बच्चा?"
मैं तुम्हें अड़चन में डाल रहा हूं, जानकर डाल रहा हूं। क्योंकि जब भी किसी एक नयी धारणा की पहली दफा रूप-रेखा बनती है, जब किसी नए भाव की अवधारणा होती है, तो देर लगती है लोगों को समझने में, पहचानने में। वे तो कहेंगे ही कि यह बस ढौंग है, यह कैसा संन्यास? बाजार में बैठे, दुकान भी चलाते, काम भी करते, पत्नी भी, बच्चा भी... यह कैसा संन्यास है?
लेकिन मेरे संन्यास से प्रयोजन है कि तुम आनंदित हो, तुम मग्न हो, तुम तल्लीन हो। तुम प्रभु की याद से भरते जा रहे हो। यह संन्यास उसके संसार को भी स्वीकार करने में असमर्थ है। यह संन्यास कमजोर का संन्यास नहीं है। यह भगोड़े का संन्यास नहीं है। हम जीवन के संघर्ष को पूरा का पूरा स्वीकार करते हैं। उसने दिया है जीवन, हम इससे भाग कर जाएं, यह उसका अपमान होगा। यह अकृतज्ञता होगी। अगर उसके प्रति सम्मान है तो उसने जो दिया है, उसके प्रति भी सम्मान होना चाहिए।
कठिनाइयां तो आएंगी तुम्हें, हरि वेदांत! ख्याल रखनाः
वही ह.कदार हैं किनारों के
जो बदल दें बहाव धारों के।
बहाव, धार... इनको बदलना है।
वही ह.कदार हैं किनारों के
जो बदल दें बहाव धारों के।

संघर्ष करना होगा। यही तुम्हारी साधना है।
और छिपाने से भी कुछ होगा नहीं। बच-बच कर भी मत चलना। परिस्थितियों से बचाव भी मत करना। उससे भी कुछ न होगा।
निगाहें ताड़ लेती हैं मोहब्बत की अदाओं को
छुपाने से जमाने भर में शोहरत और होती है।
छुपाना भी मत, तुम जैसे हो वैसे प्रकट करना।
संन्यास को जीयो। इस संन्यास को जीयो--इसकी पूरी भाव-भंगिमाओं में और परम आनंद में!
वे ढौंग कहते हैं, उन्हें कहने दो। उनके कहने से तुम्हारा क्या बनता- बिगड़ता है?
लोग जब कुछ कहते हैं तो हम परेशान क्यों हो जाते हैं? इसलिए नहीं कि लोगों ने कुछ गलत बात कह दी। हम इसलिए परेशान हो जाते हैं, क्योंकि हम अपना स्वरूप अभी जानते नहीं। लोगों के ऊपर ही हमारे स्वरूप का भाव निर्भर है। लोग हमारे संबंध में क्या कहते हैं, वही हम अपने संबंध में जानते हैं। लोग अच्छा कहते हैं तो हम सोचते हैं हम अच्छे हैं। लोग बुरा कहते हैं तो हमें शक होने लगता है कि हम जरूर बुरे होंगे, जब इतने लोग बुरा कहते हैं। और जब सारे लोग...
और मैं तो तुम्हें पूरे समाज की आग में डाल रहा हूं। तुम्हें ये जो गैरिक वस्त्र दिए हैं अग्नि के रंग के, ये सिर्फ वस्त्र नहीं हैं, फिर तुम्हें धक्के दे रहा हूं संसार की आग में। फिर बीच बाजार में तुम खड़े रहोगे। चारों तरफ आग होगी। सभी लोग हंसेंगे, निंदा भी करेंगे, मजाक भी उड़ाएंगे, अपमान भी करेंगे, ढौंग भी बताएंगे। और अगर टिके रहे तो पूजा भी करेंगे। अगर टिके ही रहे तो सम्मान भी देंगे, स्वीकार भी करेंगे। मगर ये सब सीढ़ियां हैं, धीरे-धीरे होती हैं। इस सारी कठिनाई को झेलना ही होगा। और इस झेलने में तुम्हें लाभ है एक।
तुम यह बात ही छोड़ दो कि दूसरे तुम्हारे संबंध में कुछ कहते हैं, उससे तुम्हारे संबंध में कुछ पता चलता है। कुछ भी पता नहींं चलता! तुम्हें अपना पता नहीं है, दूसरों को तुम्हारा क्या पता हो सकता है? तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता तुम कौन हो, दूसरे कैसे जानेंगे?
आदमी सबसे पहले अपने को जाने। और जो अपने को जान लेता है वह फिर दूसरे
पर निर्भर नहीं रहता। फिर दूसरे अच्छा कहें, बुरा कहें, सब बराबर हो जाता है। उसके भीतर एक समतौल पैदा हो जाता है, एक सम्यकत्व पैदा हो जाता है।
सब के सब गुलाब सुर्ख और जितने चाहिए उतने खिले हुए
सारे के सारे लोग शांत और लीन और जितने चाहिए उतने हिले हुए
भीतर से बाहर तक
जवाहर से मूंगों तक आंखें पंखुरी से फूल और फल तक ओंठ
चांद से तारों तक चेहरे
आओ तुम भी इस महफिल में, अब सब ठीक हो गया है
दर्द आज खारिज कर दिया गया है, सुख लीक हो गया है
सेहरे किरनों के पहनाए जाएंगे तुम्हें भी
ये जो गीत सबके लिए हैं
गाएंगे तुम्हें भी यहां के कलाकार
लाचार बैठ कर रोने की जगह जी खोल कर हंसना तय किया गया है
बड़ी से बड़ी तकलीफ के पांवों में देखते नहीं हो घुंघरू बंधे हुए हैं
हर टूटा हुआ मन आज आसमान से जोड़ा जा रहा है
ना, भाई निराशावादी, तुम इसे पकड़ नहीं सकते
यह आनंद के अश्वमेध का घोड़ा आ रहा है!
मैं तुम्हें जो दे रहा हूं, यह एक अपूर्व भेंट है। इसे लोग पहचान न सकेंगे। उनकी अंधी आंखें सूरज की इन किरणों को कैसे पहानेंगी? उनके रोते मन...
ना, भाई निराशावादी, तुम इसे पकड़ नहीं सकते
यह आनंद के अश्वमेध का घोड़ा आ रहा है!
वे इस घोड़े को न देख सकेंगे। यह आनंद का अश्वमेध हो रहा है।

आनंद ही परमात्मा है। नृत्य ही प्रार्थना है। गीत और गीतों की गुंजार
ही उपासना है। नहीं कोई व्रत, नहीं कोई उपवास, नहीं कोई योग, तप-जप आनंद की सुगंध तुम्हारे जीवन से उठे, उसी से तुम परमात्मा से जुड़ जाओगे।
लोग तो कहेंगे, लोग तो बहुत बातें कहेंगे। सुन लेना। उनसे विवाद में
भी पड़ने की कोई जरूरत नहीं।
तुम पूछते होः "मैं उनको क्या अभिव्यक्त करूं?"
विवाद में पड़ने की जरूरत नहीं है। विवाद में समय व्यर्थ खराब मत करना। जब लोग कहें ढौंग है, तब और भी मस्त होकर नाचना। जब लोग कहें ढौंग है, तब और भी हंसना--प्रेम से, प्रीति से, करुणा से! नाराज मत होना।
और ये बातें समझाने की नहीं हैं। तुम समझा भी न सकोगे। कौन समझा पाया
है आनंद को कभी किसी दूसरे को? हां, तुम्हारा आनंद प्रकट हो, शायद देखने वाले देख लें, पहचानने वाले पहचान जाएं। तुम तो अपना जियो अपनी धुन में। तुम और सारी चिंताएं छोड़ दो। तुम समझाने-बुझाने का उपक्रम भी छोड़ दो। तुम्हारी मस्ती ही प्रमाण होगी। तुम ही प्रमाण बन सकते हो कि कुछ हुआ है, जिसके लिए दूसरे भी लालायित होने लगेंगे। मगर यह विवाद और तर्क और विचार का काम नहीं है। तुम्हारा अस्तित्वगत... । तुम्हारी अभिव्यक्ति तुम्हारे पूरे प्राण-पण की हो।
आखिर लोग कब तक देखेंगे कि ढौंग है? जब देखेंगे तुम्हारी हंसी बढ़ती ही जाती है, जब देखेंगे तुम्हारे गीत गहराते ही जाते हैं, जब देखेंगे तुम्हारा नाच नये-नये रंग, नये-नये रूप लेने लगा, और जब देखेंगे सच में ही एक और ही जीवन की शैली पकड़ ली है, तुम अब नरक निर्मित नहीं करते अपने आसपास, तुम्हारे पास स्वर्ग के फूल खिलने लगे हैं--बस वही होगा प्रमाण! और चिंता में तुम पड़ो मत। समझाने का गोरखधंधा तुम मुझ पर छोड़ दो।
ब.र्क की तरह चमक शोले की मानिंद लपक
उम्रभर यूं तो न जल शमए-शबिस्तां होकर
मौज की तरह से वाबस्तए-साहिल ही न रह
हुस्न के बहर से उठ इश्क का तूफां होकर
फूल की तरह से खिल, शौक के गुलजारों में
फैल जा निकहते-गुले-रंगे-बहरां होकर
ब.र्क की तरह चमक! जैसे आकाश में बिजली चमके, ऐसे चमकने दो तुम्हारे आनंद को।
ब.र्क की तरह चमक, शोले की मानिंद लपक
और जैसे लपटें उठें, शोला लपके, इस भांति तुम्हारी मस्ती को प्रकट होने दो। हुस्न के बहर से उठ... सौंदर्य के सागर में लहरें उठने दो।
हुस्न के बहर से उठ इश्क का तूफां होकर
और प्रेम के एक तूफान बनो, एक अंधड़ बनो, आंधी--कि बहा ले जाओ धूल-धवांस लोगों की!
तर्क में मत पड़ना, प्रेम में पड़ो! जो कहे ढौंगी हो, गले लगा लो। ऐसा गले लगाओ कि उसे कभी किसी ने गले न लगाया हो, कि वह भी याद करे, कि रात छाती की हड्डियां दुखें, कि रात सपने में भी डरे कि फिर यह आदमी न मिल जाए।
फिर कल उसके द्वार पर जाकर दस्तक दो कि भाई मेरे, आओ फिर आलिंगन करें। हुस्न के बहर से उठ इश्क का तूफां होकर
फूल की तरह से खिल शौक के गुलजारों में
फैल जा निकहते-गुले-रंगे बहारां होकर
एक बसंत बनो, वही तर्क है। खिलो, वही व्याख्या है। मेरा शास्त्र तुम्हारे जीवन में लिखा जाए।
मैं संन्यास की जो परिभाषा करना चाहता हूं, वह तुम्हारे जीवन-ढंग से हो।
जिन मंजिलों में राहबरों का गु.जर नहीं
ले आयी है वहां भी मेरी गुमरही मुझे
आज तक वह नजर नहीं भूली
तुमने देखा था एक बार हमें
अपने अश्कों को पी रहे हैं मगर

लोग कहते हैं बादाख्वार हमें
लोग तो तुम्हें कहेंगे कि तुम पागल हो, कि क्या पी लिए हो, कोई शराब पी लिए हो। उन्हें क्या पता कि तुमने क्या पीया है! उन्हें क्या पता किस मधुशाला में तुम सम्मिलित हो गए हो!
आज तक वह नजर नहीं भूली
तुमने देखा था एक बार हमें
अपने अश्कों को पी रहे हैं मगर
लोग कहते हैं बादाख्वार हमें
जिसने गुरु की आंख में झांक लिया, वह सदा के लिए मस्त हुआ। जिसने उसकी आंख से पी लिया थोड़ा सा रस, जिसने थोड़ी डुबकी ली, जो उसकी जीवनधारा का अंग बना, लोग तो उसे शराबी कहेंगे ही।
मै तो है मै, खुलूस से सा.की! अगर मिले
हम मैकशों को.जहर भी आबेहयात है
हम तीरःबख्त के नूर के पैगंबर भी हैं
ऐ "शाद"! हम पै खत्म यह तारीक रात है
मै तो मै है... शराब की तो बात ही छोड़ो। मै तो है मै, खुलूस से सा.की! अगर मिले। अगर प्रेम से कोई जहर भी दे... हम मैकशों को.जहर भी आबेहयात है... तो फिर जहर भी अमृत है। प्रेम से कोई पीना जान ले तो जहर अमृत हो जाता है। प्रेम छू दे जहर को तो अमृत बना देता है। असली बात प्रेम की है।
हम तीरःबख्त के नूर के पैगंबर भी हैं
मेरे संन्यासियो! तुम प्रकाश के, एक नए प्रकाश के अग्रदूत हो, नए संदेशवाहक हो, एक नए धर्म की नयी किरण हो!
हम तीरः बख्त के नूर के पैगंबर भी हैं
ऐ "शाद!" हम पै ख़त्म यह तारीक रात है
और चाहता हूं कि आदमी जिस अंधेरी रात में अब तक जिया है, वह तुम पर समाप्त हो जाए। तुम्हारे बाद एक सुबह हो। एक सुबह, जिसमें जीवन रंगों में अंगीकार होगा।
एक धर्म, जो परलोक का नहीं होगा, इस लोक का होगा और इस लोक में ही परलोक
को उतार लाएगा। बहुत समय हो गया कि लोग स्वर्ग को परलोक में खोजते रहे और नहीं मिला। अब उसे यहीं बनाना है! बहुत समय हो गया कि लोग मृत्यु के बाद सच्चिदानंद में जिएंगे, इसकी आशाएं बांधते रहे हैं। अब यही जीना, अभी जीना, इसी क्षण! मृत्यु के बाद क्यों, मृत्यु के पहले! इस तरह जीना है सच्चिदानंद में, कि फिर मृत्यु हो ही नहीं।
लोग तो बहुत कुछ कहेंगे, तुम उनकी चिंता न लेना।

तीसरा प्रश्नः भक्त विरह-अवस्था में दुःखी होता है या सुखी?

दुखी भी होता है, सुखी भी होता है। भक्त की विरह-अवस्था बड़ा विरोधाभास है! दुखी होता है, क्योंकि परमात्मा मिलता-मिलता लगता है और अभी मिला नहीं। आती-आती लगती है उसकी पगध्वनि, अब आया तब आया, और मिलन अभी हुआ नहीं। स्वाद भी लग गया है, मगर सागर अभी मिला नहीं।
तो दुखी भी होता है और सुखी भी होता है, क्योंकि धन्यभागी है। इतना भी कहां होता है? किन्हीं धन्यभागियों के जीवन में होता है। लौट कर औरों की तरफ देखता है तो अपने को सुखी पाता है कि कम से कम रो रहा हूं, लेकिन परमात्मा के लिए तो रो रहा हूं। उनसे तो धन्यभागी हूं जो रुपये-पैसे के लिए रो रहे हैं, पद-प्रतिष्ठा के लिए रो रहे हैं! कैसे दिल्ली पहुंच जाएं, इसके लिए रो रहे हैं। उनसे तो बेहतर हूं, उनसे तो धन्यभागी हूं।
इस संसार के कष्ट उसे अब कष्ट मालूम नहीं होते और न इस संसार की प्रतिष्ठा उसे प्रतिष्ठा मालूम होती है। इस संसार की झंझट तो गई। यह दुःख-स्वप्न तो समाप्त हुआ। इससे बड़ा सुखी है, बड़े चैन में है। यह उपद्रव, यह आपाधापी, यह भाग-दौड़, यह चित्त का प्रतिपल विक्षिप्त बने रहना--यह पा लूं वह पा लूं--यह सब गया। यह भीड़-भाड़ विदा हो गई। अब सन्नाटा है। अब हजार

दिशाओं में एक साथ दौड़ नहीं रहा है। अब खंड-खंड नहीं है, अखंड हुआ है। ऐसे पीछे लौटकर देखता है तो बड़ा सुखी है।
अगर हम संसारियों से तौलें तो भक्त महासुखी है, लेकिन अगर हम सिद्धों
से तौलें तो निश्चित ही बहुत दुःख में है, बड़ा विरह है। जैसे-जैसे संसार समाप्त हुआ है और भीतर शून्य इकट्ठा हुआ है, वैसे-वैसे पूर्ण की अभीप्सा भी गहरी हो गई है। अब तो रात-दिन वीणा पर एक ही स्वर उठ रहा हैः मिलो, मिलो! पी कहां, पी कहां? बस एक ही पुकार है।
तो तुम्हारा प्रश्न... भक्त विरह-अवस्था में दुःखी होता है या सुखी? दोनों होता है। और एक और अर्थ में भी दोनों होता है। परमात्मा मिल नहीं रहा है, इससे दुखी होता है; और मिलता लग रहा है, इससे भी सुखी होता है। दूर से ध्वनि सुनाई पड़ने लगी, थोड़ी-थोड़ी बूंदाबांदी होने लगी। मूसलाधार बारिशें न हुई हों अभी, लेकिन बूंदाबांदी होने लगी है। आकाश में मेघ घिरने लगे हैं। आषाढ़ आ गया। बसंत शायद पूरा न भी आया हो, लेकिन इक्के-दुक्के फूल खिलने लगे हैं। लेकिन जब पहला फूल खिलता है तो भी बसंत का आगमन हो गया है, इसकी खबर तो हो जाती है न?
और ध्यान रखना, जितना मिलता है उतनी ही पाने की आकांक्षा जगती है, इससे दुखी भी है। सुखी, धन्यभागी, कि जितना मिला उतनी भी पात्रता नहीं थी, उतना भी पुण्य नहीं था। किया क्या था। अर्जन क्या किया था? इसलिए सुखी बहुत और दुखी भी बहुत, क्योंकि प्यास और लपकती है, प्यास और बढ़ती है, अतृप्ति और सघन होती है। अब जरा सी भी दूरी बरदाश्त नहीं होती। अब रंचमात्र का फासला सहा नहीं जाता। अब तो ज्योति से ज्योति मिले। अब तो एक होना हो जाए। अब तो ऐसा आलिंगन हो कि फिर कभी छूटना न हो। अब तो ऐसा जोड़ बने जो फिर कभी टूटे नहीं। इससे दुखी भी हैं।
मैं फूल चुनने आया था बागे-हयात में
दामन को खारे-जार में उलझाके रह गया
इसमें जब तक किसी की आस न थी
दिल था एक फूल जिसमें बास न थी
जख्म गहरे नहीं थे जब दिल के
दर्द में इस कदर मिठास न थी
आप ही आप का यह फैज है वरना
जिंदगी इस कदर उदास न थी!
वो भी क्या दौर था कि "शाद" हमें
गम तो गम है, खुशी भी रास न थी!
ऐसी विरोधाभासी दशा है। समझो--
मैं फूल चुनने आया था बागे-हयात में! आया था जीवन के बगीचे में कुछ फूल चुन लूंगा।... दामन को खारे-जार में उलझाके रह गया। और दामन सिर्फ कांटों में उलझ गया है, फूल कहीं हाथ लगते नहीं।
इसमें जब तक किसी की आस न थी
दिल था एक फूल जिसमें बास न थी
और अगर फूल हाथ लग भी गए कभी बहुत, कांटों में उलझे-उलझे, तो उनमें कुछ बास न थी, सुवास न थी।
परमात्मा की जब तक अभीप्सा न जगे, इस जगत में कहीं कोई सुवास नहीं होती। इस जगत में तब सब राग-रंग ऊपर-ऊपर, फीका-फीका होता है, त्वरा नहीं होती, जीवंतता नहीं होती।
दो प्रेमी भी आपस में मिलते हैं तो मिलन नहीं होता। यहां प्रेम भी व्यर्थ ही चला जाता है। प्रेम इस जगत की सबसे बड़ी घटना है। उसमें भी कुछ हाथ नहीं लगता, उसमें भी कोई सुवास नहीं उठती। परमात्मा की अभीप्सा जगती है, उस एक की आस जगने लगती है, उस एक पर आंखें टिकने लगती हैं, उस एक तारे पर आंख अटक जाती है--तो बड़ी अपूर्व घटना घटती है। विरोधाभासी!
इसमें जब तक किसी की आस न थी
दिल था एक फूल जिसमें बास न थी
जख्म गहरे नहीं थे जब दिल के
दर्द में इस कदर मिठास न थी!

तो एक तरफ फूल में सुगंध आ जाती है। जीवन उछाह से भर जाता है। एक उत्सव
आ जाता है, लेकिन साथ ही साथ घाव भी लग जाते हैं।... मगर घाव मीठे! इसलिए कहाः विरोधाभास।
परमात्मा का विरह भी बड़ा मीठा है, संसार का मिलन भी बड़ा कड़वा है! परमात्मा का मिलन भी बड़ा मीठा है।
असत्य की राह पर जीते तो हार से बदतर है और सत्य की राह पर हारे भी तो जीत है।
जख्म गहरे नहीं थे जब दिल के
दर्द में इस कदर मिठास न थी!
आप ही का यह फैज है वर्ना...
भक्त कहता है, प्रेमी कहता हैः यह तुम्हारी ही कृपा है।
... जिंदगी इस.कदर उदास न थी!
चौंकोगे तुम! भक्त कहता हैः यह आपकी ही कृपा है--मिठास भी दी, उदासी भी
दे दी। आस दी, मिठास दी और जिंदगी उदास भी कर दी! आस आयी, झलक मिली कि कुछ घट सकता है, कि जीवन यूं ही न चला जाएगा, कि यह बीज टूटेगा, कि यह वीणा गाएगी। आस दी। लेकिन यह आस इतनी बड़ी है कि मैं इसे पूरा कर पाऊंगा? यह मंजिल इतनी दूर, यह शिखर इतना ऊंचा, यह गौरी शंकर... यह मैं चढ़ पाऊंगा? आकांक्षा दे दी। तो जिंदगी में सुगंध आ गयी, अर्थ आ गया; लेकिन यह आकांक्षा पूरी हो सकेगी? तो घाव आ गया, तो दर्द है।
लेकिन दर्द जब भी विराट का होता है तो उसमें मिठास होती है। दर्द भी होते हैं, जो मीठे होते हैं। शत्रु तुम्हारे पास भी आकर बैठ जाए तो उसके पास बैठने में कड़वाहट होती है और मित्र हजारों कोस दूर हो तो उसकी दूरी में भी मिठास होती है।
और फिर बड़ी कृपा है आपकी, जिंदगी इसके पहले इस तरह उदास न थी। उलझे थे अपने कामों में। दुकान थी, बाजार था, व्यवसाय था; यह कमा लें, वह कमा लें, यह मकान बना लें, वह मकान बना लें... कहां, व्यस्तता में फुरसत उदास होने की किसे थी! उदास होने के लिए भी थोड़ा समय तो चाहिए न, समय ही कहां है? लोग भागे ही चले जाते हैं। क्षणभर बैठकर सोचने का उपाय कहां है, मौका कहां है, सुविधा कहां है? लेकिन जब जिंदगी की आपाधापी सब व्यर्थ हो जाती है और यहां सब खेल-खिलौने हो जाते हैं, तो बड़ा समय हाथ में आता है। और तब पहली दफा दिखाई पड़ना शुरू होता हैः अब तक सब व्यर्थ गया! जन्मों-जन्मों जो भी किया न किया, बराबर हुआ। एक उदासी उतरनी शुरू होती है। और जो अब करने योग्य लगता है, वह मेरी सामर्थ्य में है, मैं कर पाऊंगा? पैर थरथराते हैं!
वह क्या दौर था कि "शाद" हमें
गत तो गम खुशी भी रास न थी!
ऐसे भी दिन थे, जब यह अपूर्व उदासी की तो हम बात ही क्या कहें, जिंदगी
की साधारण खुशियां भी हमें नहीं थीं। मजा समझना इस बात का। ऐसे भी दिन थे जब यह अपूर्व उदासी की तो हम बात ही क्या करें--यह अनूठी, यह तो सौभाग्य की उदासी है, जो परमात्मा को पाने की आकांक्षा से पैदा हो रही है-- ऐसे भी दिन थे जब जिंदगी की छोटी-मोटी खुशियां भी हमें नहीं मिली थीं, यह तो बड़ी खुशी है!
परमात्मा के लिए उदास हो जाने से बड़ी और कोई आशा नहीं। और उसके लिए पीड़ित हो जाने से बड़ा कोई प्रेम नहीं। और उसके लिए जलने से बड़ी कोई शांति नहीं। उसकी बैचेनी में चैन है। उसके लिए भटकने में बड़ा रस है।
भक्त इन दो दशाओं में डोलता हैः कभी खुशी कभी उदासी, कभी भरोसा कभी संदेह।
क्यों चटकी कली, क्यों फूल हंसा, क्यों सारा गुलिस्तां जाग उठा?
वह सैरे-चमन को आए हैं, या वादे सहर के झोंके हैं!
सुबह होती है, हवा आती है, फूल नाचने लगते हैं, सुगंध फैलने लगती है-- भक्त भाग कर बाहर आ जाता है। वह सैरे-चमन को आए हैं... ? वह आया क्या? इतनी सुगंध कैसे, इतना प्रकाश कैसे?
क्यों चटकी कली, क्यों फूल हंसा, क्यों सारा गुलिस्तां जाग उठा?

जरूर वह आया होगा। और निश्चित ही वह आता है, हमारे पास आंख नहीं देखने को! फूल हमसे पहले उसे देख लेते हैं और चटक जाते हैं। फूल हमसे पहले उसे पहचान लेते हैं और खिल जाते हैं। पक्षी हमसे पहले उसे सुन लेते हैं और गानों में गूंज उठते हैं। हमसे पहले! हम बड़े अंधे हैं। आदमी बड़ा अंधा है! क्यों चटकी कली, क्यों फूल हंसा, क्यों सारा गुलिस्तां जाग उठा
वह सैरे-चमन को आए या वादे-सहर के झोंके हैं?
या सिर्फ सुबह की हवा के झोंके हैं, या वादे-सहर के धोखे हैं? या सुबह
की हवा सिर्फ धोखा दे रही है? ऐसी तरंगें भक्त के मन में उठें, स्वाभाविक है। यह भी सोचकर उसे डर लगता है कि मैं अपने से पहुंच न पाऊंगा।
तू न चाहे तो तुझे पाके भी नाकाम रहें
तू जो चाहे तो गमे-हिज्र भी आसां हो जाए।
सब तेरे हाथ में है। अपने हाथ कुछ भी हो न सकेगा। इससे कभी निराशा भी पकड़ती है, दुख भी होता है। अपने नियंत्रण में तो कुछ भी नहीं है। यह मैं किस राह पर चल पड़ा! यह मैंने कैसी पुकार मान ली? यह मैं किसके पीछे हो लिया? जहां अपना बस नहीं है, जहां अवश हो जाने में ही बस है। नाव डूबने भी लगती है। तूफान बड़े हैं।
बचा लिया मुझे तूफां की मौज ने वर्ना
किनारेवाले सफीना मेरा डुबो देते!
लेकिन जब नाव डूब ही जाती है और जब भक्त परमात्मा में पूरी तरह लीन ही
हो जाता है, तब उसे पता चलता है कि धन्यभागी हूं मैं!
बचा लिया मुझे तूफां की मौज ने वर्ना
यह तो तूफान ने मुझे बचाया है! किनारेवाले सफीना मेरा डुबो देते!
और अगर मैं किनारे वालों की सुनता और कहतेः कहां जा रहे हो? पागल हुए हो! अभी तूफान है और दूसरे किनारे का कोई पता नहीं है। नाव छोटी है। पतवार काम न आएगी। तुम्हें कोई अनुभव भी नहीं है ऐसी यात्राओं का। मांझी कौन है? और इस जगत में जो मांझी की तरह लोग होते हैं, वे तो पागल ही लगते हैं।
अब मेरे साथ चलोगे तो किसी पागल के साथ चल पड़े! अब यह कहां ले जाएगा? इस तरह के मांझियों का भरोसा क्या है? जो बुद्ध के साथ चले, पागल के साथ चले। समझदारों ने तो अपने कान फेर लिए। जो बुद्धिमान मानते थे अपने को, वे तो बुद्ध से बचने लगे।
यह तुम जानकर हैरान होओगे, इस जगत में जब भी कोई किरण सूरज की उतरी है
तो थोड़े से हिम्मतवर और दीवानों ने ही उसका पीछा किया है। क्योंकि यह डूबने का रास्ता है, मिटने का रास्ता है। यहां मिट कर पाना होता है। यहां जो सूली पर चढ़ता है, उसी को सिंहासन मिलता है!

आखिरी प्रश्नः भत्ति-भाव का वास्तविक अर्थ क्या है?

बड़े मियां! कभी प्रेम इत्यादि किया? प्रेम की ही पराकाष्ठा है भक्ति। प्रेम न किया हो तो मैं भी समझा न पाऊंगा। प्रेम किया हो तो समझ में बात आ सकती है। ये बातें अनुभव की हैं। कुछ तो उस दिशा में अनुभव चाहिए ही। नागार्जुन के पास एक आदमी आया और उसने कहा कि मुझे भी ले चलो "उसकी" यात्रा पर। वह गरीब आदमी था। नागार्जुन ने कहाः तूने किसी से कभी प्रेम किया है? उसने कहाः प्रेम! अब आप से क्या छिपाना, मेरे पास एक भैंस है, उसी से मेरा प्रेम है। गरीब आदमी हूं, और तो कुछ मेरे पास है भी नहीं, मगर उससे मेरा बड़ा लगाव है। खो जाए कभी जंगल में तो मेरे प्राणों पर संकट पड़ जाता है। कभी बीमार हो जाए तो फिर मुझे चैन नहीं पड़ती।
सीधा-सादा आदमी रहा होगा, नहीं तो ऐसी सच्ची बात कैसे कहता? लोग तो ऊंची-ऊंची बातें कहते हैं। लोगों से कहोः तुम्हें प्रेम है... ? वे कहते हैंः हमें कृष्ण से प्रेम है। है भैंस से, शायद भैंस से भी न हो, बातें कृष्ण की कर रहे हैं! ... कि हमें राम से प्रेम है, कि हमें महावीर से प्रेम है।
एक सज्जन मेरे पास आते थे कि हमें महावीर से प्रेम है। मैंने कहाः उसका तो मुझे पक्का पता ही है। उन्होंने कहाः आपको कैसे पता है? तो वे

साइकिल की दुकान करते हैं उसका नाम हैः महावीर साइकिल मार्ट। मैंने कहाः पक्का ही है। तुम्हारा प्रेम तो जाहिर ही है। महावीर मिल जाएं तो तुम उन्हें भी साइकिल पर बिठाकर पीछे राजधानी घुमवा देना, बड़ा दृश्य रहेगा। महावीर से प्रेम!
आदमी सच्चा-सीधा रहा होगा। उसने कहाः अब आपसे क्या छिपाना, और तो मेरा किसी से प्रेम है ही नहीं। पिता मर गए, छोटा था, मां मर गई। गरीब आदमी हूं, विवाह हुआ नहीं। और कोई मेरा है नहीं, बस यह भैंस ही मेरा सहारा है। नागार्जुन ने कहाः फिकर न कर, इससे काम चल जाएगा। वह तो बहुत चौंका, उसने कहाः भैंस से प्रेम से काम चल जाएगा! उन्होंने कहाः बस, भक्ति का सारसूत्र तो तेरे हाथ में है ही। इसको बड़ा करना होगा। इसको निखारेंगे। हीरा कीचड़ में पड़ा है, धो लेंगे। सोने में गंदगी मिली है, आग में डाल देंगे, निखार लेंगे, कुंदन बना लेंगे।
तुम पूछते होः "भक्ति-भाव का वास्तविक अर्थ क्या है?"
प्रेम की प्रगाढ़ता। प्रेम का शुद्ध हो जाना। प्रेम का निष्कलुष हो जाना, निष्कपट हो जाना। प्रेम का अहेतुक हो जाना।
लेकिन संसार की ऐसी कठिनाई हो गयी है कि तुम्हें इतनी बार समझाया गया
है, इतनी सदियों तक दोहराया गया है--कि तुम जिसे प्रेम कहते हो वह पाप है। इसका अंतिम परिणाम यह हुआ कि तुम्हारे परमात्मा से संबंध विच्छिन्न हो गए। क्योंकि प्रेम ही है जिससे परमात्मा से सेतु बन सकता है। और प्रेम को पाप करार दे दिया गया है। पत्नी से तुम्हारा प्रेम है, यह पाप; बेटे से तुम्हारा प्रेम तुम्हारा प्रेम है, यह पाप; मां से तुम्हारा प्रेम है, यह पाप; मित्र से प्रेम है, यह पाप। सब प्रेम पाप हैं। तब बहुत मुश्किल हो गयी। फिर भक्ति का अर्थ क्या हो? और इतने प्रेम सब पाप हों तो तुम्हारी भक्ति सिर्फ थोथी होगी, औपचारिक होगी।
मैं तुमसे यह कहना चाहता हूंः तुम्हारे इन सब प्रेमों में भक्ति की थोड़ी झलक छिपी है। जब एक मां अपने छोटे से बच्चे को दुलार करती है तो इस दुलार में यशोदा का कृष्ण के लिए दुलार छिपा है। उघाड़ना है, निखारना है, साफ करना है--माना; लेकिन छिपा है। तो ही तो निखार पाओगे, तो ही तो साफ कर पाओगे।
जब कोई प्रेयसी अपनी प्रेमी को प्रेम करती है, तो इसमें ऐसे क्षण होते हैं जब हर प्रेयसी राधा हो जाती है और हर प्रेमी कृष्ण हो जाता है। क्षण ही होते हैं, यह मैं जानता हूं। कभी-कभी होते हैं; मगर ऐसी ऊंचाइयां आती हैं प्रेम की। क्षुद्र-से कहे जाने वाले प्रेम में भी कभी-कभी ऐसी तरंगें उठती हैं जब हर प्रेयसी राधा होती है और हर प्रेमी कृष्ण होता है। होना ही चाहिए, क्योंकि हर स्त्री में राधा छिपी है! पड़ी होगी बहुत कीचड़ में, यह दूसरी बात। कीचड़ से निकालने के उपाय हैं। मगर अगर राधा की निंदा ही हो जाए तो अड़चन हो जाएगी। फिर निकालने का उपाय ही न रह जाएगा। फिर शाब्दिक भक्ति का जाल बनेगा, जिसकी कोई जड़ें जमीन में नहीं होंगी। वह हवाई होगी। उससे न कोई तरा है न तर सकता है।
मैं धर्म को जमीन में जड़ें देना चाहता हूं। चाहता हूं आकाश में फूल खिलें। मगर आकाश में फूल तभी खिलते हैं जब जमीन में जड़ें गहरी जाती हैं। और जितनी गहरी जड़ें जाती हैं जमीन में, उतना ही वृक्ष आकाश में ऊपर जाता है।
तुम जीवन को प्रेम करो। अनेक-अनेक रूपों में चाहो। तुम जीवन से भागो मत। हां, इतना ध्यान रखो कि जैसा जीवन है उतने पर ही रुक मत जाना, इसे खूब निखारा जा सकता है। ऐसा ही समझो कि मैं तुम्हें एक वीणा भेंट दे दूं... । एक युवती का विवाह हुआ। मेरी विद्यार्थिनी थी, जब मैं विश्वविद्यालय में अध्यापक था। उसने मुझे निमंत्रित किया तो उसके विवाह पर मैं गया। कुछ उसे भेंट देनी जरूरी थी, तो मैं एक वीणा ले गया। एक वीणा उसे भेंट दे दी। उसने कहाः लेकिन मैं तो वीणा बजाना जानती ही नहीं और आपको भलीभांति पता है। मुझे तो वीणा से कुछ लेना-देना नहीं है। यह भेंट आप किसलिए लाए हैं? और इतनी कीमती वीणा मैं क्या करूंगी? इस पर रखे-रखे धूल जमेगी। सम्हाल कर रखूंगी, आपने भेंट दी है।

मैंने कहाः इसे सम्हालने का एक ही उपाय है कि वीणा बजाना शुरू कर। उसने कहाः पर मुझे आता नहीं।
इस जगत में किसी को भी जन्म से वीणा बजाना नहीं आता। कोई वीणा लिए हुए थोड़े ही आते हैं मां के गर्भ से, कि चले आ रहे हैं... ये तानसेन आ रहे हैं, कि वीणा लिए चले आ रहे हैं कि बैजूबावरा आ रहे हैं, अपना साज-सामान लिए चले आ रहे हैं! तबला ठोकते, इंतजाम करते चले आ रहे हैं। कोई लेकर नहीं आता। तू सीखना।
कोई दस वर्ष तक उससे मेरा मिलना नहीं हुआ। दस वर्ष बाद वह मुझे मिली
तो और ही स्त्री हो गयी थी। दीप्त हो गयी थी। उसने कहाः आपने मेरा जीवन बदल दिया। वह वीणा मेरा सारा जीवन बदल गई। आपने कहा था सीखना और भेंट आपने ऐसी दी थी... । और लोगों ने भी भेंटें दी थीं। किसी ने हीरे की अगूठी दी थी तो उसमें से तो कुछ निकलता नहीं। हीरे की अंगूठी पहन लो, दो-चार दिन बाद कंकड़-पत्थर जैसी मालूम होने लगती है, फिर क्या करोगे? किसी ने कुछ और दिया था, किसी ने कुछ और दिया था। भेंट तो आपने ऐसी दी थी कि दस साल हो गए और अब दस जन्म भी हो जाएं तो भी उसमें से रोज कुछ और निकलता आ रहा है। अब तो मैं डूबने लगी हूं। वीणा ने मेरे भीतर की वीणा भी छेड़ दी है।
उसकी आंख में आनंद के आंसू थे।
मैंने कहाः तेरे पति कहां हैं?
उसने कहाः सब गए।
मैंने कहाः क्या कहती है तू।
उसने कहाः इस वीणा ने सब गड़बड़ कर दिया। एक अर्थ में आप मेरी झंझट कर गए, क्योंकि पति को यह रास नहीं पड़ा कि वीणा में मैं इतनी डूबूं। और मेरा रस ऐसा बढ़ा, ऐसा जगा कि दिन हो कि रात, सुबह हो कि सांझ, जब सुविधा हो, जब समय हो, बस वीणा पर लगी रही। यह अयास ऐसा होने लगा कि पति और मेरे बीच तालमेल टूट गए। लेकिन इससे मुझे पीड़ा नहीं है, क्योंकि इस वीणा से मुझे कोई और बड़े पति से मिलन होने लगा है। कोई तार भीतर के जुड़ने लगे हैं। जरा भी चिंता नहीं है। नाराजगी भी नहीं है। कोई वैमनस्य भी नहीं है। पति नौकरी पर दूसरे नगर चले गए हैं। संबंध न के बराबर है। लेकिन अब मुझे बाहर से संबंध में कुछ रस भी नहीं है। यह वीणा मेरा ध्यान बन गई है।
और मैं देख सकता था, उसकी आंखों में ध्यान था! मैं देख सकता था, उसके चेहरे पर नयी आभा थी! जिसे मैंने वीणा भेंट दी थी, वह कोई साधारण स्त्री थी; यह स्त्री असाधारण थी। निखार हुआ था खूब। एक सोया संगीत इसमें जग गया था। यह जीवन एक अवसर है, जिसमें तुम अपने सोए संगीत को जगाओ। यहां जितने प्रेम हैं, सभी प्रेमों में भक्ति की थोड़ी-थोड़ी झलक है--किसी में कम, किसी में ज्यादा। उस झलक को बढ़ाओ।
मैं तुम्हें अर्थ दूं भक्ति के, शब्द होंगे वे, जब तक तुम्हारे अनुभव
से मेल न खाएं।
मेरा दिल क्यों धड़कता है, सहेली मुझको बतला दे?
जो सीने में खलुस है तू उसे पहचानती होगी
जवानी क्या इसी का नाम है तू जानती होगी
बता दे कौन से मौसम में यह शोला भड़कता है?
मेरा दिल क्यों धड़कता है?

न जाने मेरी सांसो में यह एक महकार-सी क्या है? बिना पायल जो मैं सुनती हूं वह झंकार-सी क्या है ख्यालों में कोई घूंघट उठाकर मुझको तकता है मेरा दिल क्यों धड़कता है?

मेरा दिल झूमता है गीत अपने-आप सुन-सुन कर जवानी मुस्कराती है किसी की चाप सुन-सुन कर मैं अकसर चौंक पड़ती हूं जो पत्ता भी खड़कता है मेरा दिल क्यों धड़कता है?

अनोखी-सी कोई तस्वीर दिल में गुदगुदाती है
नहीं है सामने कोई मगर आवाज आती है
मेरे सीने से रह-रहकर मेरा आंचल सरकता है
मेरा दिल क्यों धड़कता है, सहेली मुझको बतला दे?
लेकिन बताने का कोई उपाय है? बताने की जरूरत भी क्या है? दिल धड़कने लगा तो बात होने लगी।
तुम पूछते होः भक्ति-भाव का वास्तविक अर्थ क्या है?
नाचो, गाओ! डुबकी लगाओ कीर्तन में, भजन में। जीवन को प्रेम से थोड़ा पगो। जो तुम्हारे पास हैं, जो तुम्हारे निकट हैं, उनका सिर्फ उपयोग मत करो, उनका शोषण मत करो। उनमें थोड़ा परमात्मा की छवि देखना शुरू करो--अपने बेटे में, अपनी पत्नी में, अपनी मां में, अपने भाई में, अपने मित्र में, अपने संगी-साथी में। धीरे-धीरे जहां-जहां तुम्हें प्रेम की थोड़ी सी भी झलक हो, वहीं प्रार्थना को भी संयुक्त करो। कभी अपनी पत्नी का हाथ इस तरह हाथ में लो, जैसे परमात्मा का हाथ हो--और देखो फर्क! और देखो कि कोई तार छिड़ जाता है कि नहीं! कि कोई दिल धड़कता है कि नहीं!
न जाने मेरी सांसों में यह महकर सी क्या है
बिना पायल जो मैं सुनती हूं वह झनकार सी क्या है
ख्यालों में कोई घूंघट उठाकर मुझको तकता है
मेरा दिल क्यों धड़कता है?

मेरा दिल झूमता है गीत अपने-आप सुन-सुन कर
जवानी मुस्कराती है किसी की चाप सुन-सुन कर मैं अकसर चौंक पड़ती हूं जो पत्ता भी खड़कता है
मेरा दिल क्यों धड़कता है?

अनोखी-सी कोई तस्वीर दिल को गुदगुदाती है
नहीं है सामने कोई मगर आवाज आती है
मेरे सीने से रह-रहकर मेरा आंचल सरकता है
मेरा दिल क्यों धड़कता है, सहेली मुझको बतला दे!
लेकिन कोई बतला न सकेगा। मैं इशारे कर सकता हूं कि कैसे यह तुम्हारा
भी अनुभव बन जाए। कुछ तो प्रेम होगा। किसी से भी तो प्रेम होगा।
और ध्यान रखना, मैं किसी भी प्रेम को बुरा नहीं कह रहा हूं। सब प्रेम शुभ हैं। प्रेम सभी को शुभ कर देता है। जिस चीज से प्रेम जुड़ जाता है उसी को पवित्र कर देता है। प्रेम की वह महिमा है। प्रेम अपवित्र होता ही नहीं। जैसे मैंने कहा डाल दो हीरे को कीचड़ में तो भी हीरा कीचड़ नहीं होता है। कीचड़ से भिड़ जाए, चारों तरफ कीचड़ जग जाए, सदियों तक पड़ा रहे कीचड़ में, तो भी हीरा कीचड़ नहीं होता। जरा सी वर्षा आएगी, कीचड़ बह जाएगी, जरा पोंछ लोगे, फिर सूरज की किरणें उस पर इंद्रधनुषों के जाल बुन देंगी।
तुम्हारे भीतर हीरा पड़ा है। जहां-जहां प्रेम हो वहां-वहां प्रेम को गहराओ। क्योंकि प्रेम की ही वर्षा हो तो हीरा निखरे। नाचना सीखो, गाना सीखो, गुनगुनाना सीखो, प्रेम करना सीखो--ये सब प्रेम के उपाय हैं।
दिल को दिल की गोद में लेकर, प्यार को प्यार की लोरी देकर
गीत खुशी के गाऊं, मैं छमक-छमक लहराऊं

आज यह कैसा मिला संदेसा, मेरा तन-मन झूम रहा है
सपनों में एक छैल-छबीला मेरा दामन चूम रहा है
मैं घूंघट की ओट से देखूं, देख-देख रह जाऊं
मैं छमक-छमक लहराऊं

मेरा सपना रंग-रंगीला खुले आंख फिर भी न टूटे इक दूजे से दूर भी रहकर मेरा उनका साथ न छूटे उनकी सांस सांस में मिला कर सपनों में खो जाऊं मैं छमक-छमक लहराऊं

भरी जवानी की आंधी में प्यार का दिया जलाया मैंने
जगमग-जगमग नैना चमके नया उजाला पाया मैंने
मेरे भाग जगानेवाले मैं तुझ पर इतराऊं
मैं छमक-छमक लहराऊं
थोड़ा लहराओ! बहुत दिन हो गए खड़े-खड़े। थोड़े नृत्य की गरिमा को उतरने दो।
इसलिए यह स्थल है कि यहां तुम थोड़ा प्रेम सीखो। यहां तुम थोड़े तरल बनो थोड़े पिघलो, कि तुम्हारे पत्थर जैसे हृदय को थोड़ा गलाओ।
मुझसे लोग आकर पूछते हैं कि ध्यान में नृत्य क्यों, गान क्यों, संगीत क्यों? उनके मन में ध्यान की एक रूढ़ धारणा है--कि आंख बंद करके उदास, भूखे- प्यासे बैठ गए तो ध्यान है। उनके मन में ध्यान की एक धारणा है, जो प्रेम-शून्य है। मेरे मन में ध्यान का एक रूप है, जो प्रेमपूर्ण है। ध्यान प्रेम में पगा हो तो अपूर्व घटना घटती है।... तो तुम एक ही साथ बुद्ध की शांति जान लोगे और मीरां की मस्ती!
मेरे संन्यासी को मैं ऐसी ही मस्ती और ऐसी ही शांति की दिशा में ले चलना चाहता हूं। मैं तुम्हारे भीतर एक विराट समन्वय को घटते हुए देखना चाहता हूं। जैसे बुद्ध के ओठों पर किसी ने बांसुरी रख दी हो!
पलक-पलक प्यार तेरा छलक-छलक जाए
आयी मै द्वार तेरे अलबेला रूप लिए
जुल्फों की छांव लिए, मुखड़े की धूप लिए
पांव तेरे छूने मेरी पलक-पलक जाए
पलक-पलक प्यार तेरा छलक-छलक जाए
सीने की धड़कन में आज तेरी चाप सुनी गाऊं गुन तेरे पिया अपनी धुन आप सुनी सांस भी लूं मैं तो खुशी झलक-झलक जाए
पलक-पलक प्यार तेरा छलक-छलक जाए
अपनी तकदीर पर मैं इतराऊं आज के दिन
तू है मेरे पास तो मैं शरमाऊं आज के दिन
आज मेरा आंचल भी ढलक-ढलक जाए
पलक-पलक प्यार तेरा छलक-छलक जाए
ये गीत तो साधारण प्रेम के लिए लिखे गए हैं। तुम सोचते होओगे कि मैं इन्हें भक्ति के लिए क्यों उद्धृत कर रहा हूं? जान कर, क्योंकि मैं साधारण प्रेम और भक्ति को दो विपरीत आयाम नहीं मानता--एक ही इंद्रधनुष के रंग मानता हूं, एक ही सीढ़ी के पायदान।
और तुमसे मैं वही तो बात कर सकूंगा जो तुम आज समझ सकोगे; वह बात कैसे करूं जो तुम कल समझोगे? मैं तुमसे वही कह सकता हूं जो तुम्हारी अभी समझ में आ सकता है। और उसी समझ के सहारे तुम आगे बढ़ो, वही एक छोटा सा दीया लेकर आगे बढ़ो तो कल भक्ति भी समझ में आ सकेगी।
अभी तो प्रेम समझो। अभी तो प्रेम से मत चूको। और तुमने अगर प्रेम को समझ लिया तो शेष अपने से घटता है। प्रेम की गहन समझ में एक दिन परमात्मा अपने आप उतर आता है। प्रेम के विपरीत भर मत जाना। क्योंकि जो प्रेम के विपरीत गया, वह धर्म के विपरीत गया। प्रेम अर्थात धर्म।
जीसस ने ठीक ही कहा है कि प्रेम परमात्मा है। मैं भी इसे दोहराता हूंः प्रेम परमात्मा है। भक्ति का अर्थ खोजने की चिंता न करो, पहले प्रेम का राज खोलो। वह तुम्हारे साथ है। उतना तुम अभी कर सकते हो। तुम जो अभी कर सकते हो वह तो करो! एक द्वार खुल जाए तो दूसरा द्वार उपलब्ध हो जाता है। लेकिन लोग अक्सर दूर की बातों को पूछते हैं और पास की भूल जाते हैं। यात्रा पास से शुरू होती है। तुम्हें वहां से चलना होगा जहां तुम खड़े हो। परमात्मा कहां है, इसकी फिकर छोड़ो; इसकी फिकर लो कि तुम कहां हो? तुम्हारा प्रेम कहां है? और इसी प्रेम को हम कैसे निखारें? और उस प्रेम को हम कैसे रोज-रोज साधें, जैसे कोई वीणा को साधता है!

पश्चिम के एक बहुत बड़े संगीतज्ञ बेजनर से किसी ने पूछा कि आपके संगीत में बड़ा इंसपॉयरेशन है, बड़ी प्रेरणा है, बड़ी सदप्रेरणा है! वेजनर ने उस आदमी की तरफ देखा और कहाः क्षमा करें, एक प्रतिशत इंसपॉयरेशन, निन्यानबे प्रतिशत पर्सपॉयरेशन! एक प्रतिशत प्रेरणा और निन्यानबे प्रतिशत पसीना! उस आदमी ने पूछाः मैं समझा नहीं। वेजनर ने कहाः चौबीस घंटे में से बारह घंटा, सोलह घंटा निखार रहा हूं।
और बड़ा मजा है, वेजनर ने बड़े क्रोध से कहा, कि मैं सोलह घंटे मेहनत कर करके मरा जा रहा हूं और लोग कहते हैंः आप बड़े प्रतिभाशाली हैं! प्रतिभाशाली का मतलब होता है, जिसको कुछ नहीं करना पड़ रहा है; जिसे जन्म से मिला हुआ है।
किसी ने और वेजनर से एक बार पूछा कि अगर आप तीन दिन अयास न करें तो क्या हो? तो उसने कहा कि तीन दिन अगर मैं अयास न करूं तो जो संगीतज्ञ हैं, वे पहचानने लगते हैं कि कुछ चूक हो रही है; अगर दो दिन अयास न करूं तो जो महासंगीतज्ञ हैं वे पहचानने लगते हैं कि चूक हो रही है। और अगर एक दिन अयास न करूं तो कोई न पहचाने, लेकिन मैं पहचानता हूं, मेरा परमात्मा पहचानता है कि चूक हो रही है।
इस जीवन की प्रेम की वीणा पर निरंतर अयास करो। इसमें बड़े सोए सरगम हैं, जगाओ। उन सारे सरगमों का जग जाना और उनका एक साथ एक लयबद्ध हो जाना, एक लय में छंदबद्ध हो जाना, भक्ति है।

आज इतना ही।

ज्योति से ज्योति जले
नौवां प्रवचन

दीया राखै जतन सौं

सुंदर मनुषा देह यह, पायौ रतन अमोल।
कौड़ी सटै न खोइए, मानि हमारौ बोल।।
सुंदर सांची कहत है, मति आनै कछु रोस।
जौं तैं खोयो रतन यह, तौ तोही कौ दोस।।
बार-बार नहिं पाइए, सुंदर मनुषा देह।
रामभजन सेवा सुकृत, यह सौदो करि लेह।।
सुंदर सांचि कहतु है, जौ मानै तो मानि।
यहै देह अति निंद्य है, यहै रतन की खानि।।
सुंदर नदी प्रवाह मैं, मिल्यौ काठ-संजोग।
आपु आपुकौं लै गए, त्यौं कुटुंब सब लोग।।
सुंदर बैठे नाव मैं, कहूं-कहूं तें आई।
पार भए कतहूं गए, त्यौं कुटुंब सब जाई।।
सुंदर पक्षी वृक्ष पर, लियौ बसेरा आनि।
राति रहे दिन उठि गए, त्यौं कुटुंब सब जानि।।
सुंदर यह औसर भलौ, भजिलै सिरजनहार।
जैसे ताते लोह कौं, लेत मिलाइ लुहार।।
सुंदर याही देह मैं हारि जीति कौ खेल।
जीतैं सो जगपति मिलै, हारै माया मेल।।
सुंदर सौदा कीजिए, भली बस्तु कछु खाटि।
नाना बिधि का टांगरा, उस बनिया की हाटि।।
दीया की बतियां कहै, दीया किया न जाइ।
दीया करै सनेह करि, दीये ज्योति दिखाइ।।
दीये तें सब देखिए, दीये करौ सनेह।
दीये दसा प्रकासिए, दीया करि किन लेह।।
दीया राखै जतन सौं दीये होइ प्रकाश।
दीये पवन लगै अहं, दीये होइ विनाश।।
साईं दीया है सही, इसका दीया नांहिं।
यह अपना दीया कहै, दीया लखै न मांहिं।।
साईं आप दिया किया, दीया मांहिं सनेह।
दीये दीये होत है, सुंदर जीया देह।।

मनुष्य एक संभावना है, सत्य नहीं; बीज है, फूल नहीं। फूल हो सकता है, पर होने की कोई अनिवार्यता नहीं। बीज बीज की भांति मर भी सकता है। बीज बीज की भांति सड़ भी सकता है। सभी बीज फूल नहीं हो जाते; सभी बीज फूल हो सकते थे। ऐसा ही मनुष्य है।
सभी मनुष्य बुद्ध हो सकते हैं। सभी की संभावना है। सभी के भीतर परमात्मा का अवतरण हो सकता है। लेकिन सभी हो नहीं पाते, इस बात को भूल मत जाना!
जन्म से ही कोई बुद्ध नहीं है। बुद्धत्व यात्रा है। जन्म और मृत्यु
के बीच जो महा अवसर है, उसका जो सम्यक उपयोग कर लेगा, उसे बुद्धत्व भेंट में मिलता है। वह अस्तित्व के द्वारा दिया गया पुरस्कार है। ऐसे ही धक्के खाते-खाते कोई बुद्ध नहीं हो जाता। संकल्प चाहिए, समर्पण चाहिए, संघर्ष चाहिए, साधना चाहिए! साधना की प्रक्रिया से गुजरे बिना, बीज बीज ही रह जाएगा। बीज भूमि में पड़े, भूमि में गले, मिटाए अपने को, तो अंकुरण होता है। ऐसे ही व्यक्ति को साधना की भूमि चाहिए--गले, मिटाए अपने को! राख कर दे अपने अहंकार को। अपनी अस्मिता को पोंछ डाले। तो अंकुरण होता है--अपूर्व प्रसाद का, अपूर्व आनंद का! जब तक उस अंकुरण को उपलब्ध न हो जाओ तब तक सोचना--जन्मे तो जरूर, अभी जीवन नहीं मिला। तब तक एक क्षण को भूलना मत, क्योंकि जितने क्षण भूले गए, भूल में गए, उतने ही व्यर्थ गए। तब तक सोते-

जागते स्मरण रखना कि जिंदगी के हाथ से समय की धारा बही जाती है। कौन जाने, आनेवाले क्षण मौत द्वार पर दस्तक दे! इसके पहले कि मौत आए, बुद्धत्व आना ही चाहिए।
ऐसा संकल्प सघन करो! ऐसी अभीप्सा जगाओ। तो ही तुम्हारा वास्तविक जन्म
हो पाएगा। तुम द्विज बनोगे। तुम्हारा दूसरा जन्म होगा। पहला जन्म तो नाममात्र का जन्म है। पहला जन्म तो जीवन की भूमिका-मात्र है। क, ख, ग! उसे सब मत समझ लेना। उस क, ख, ग से, उस वर्णमाला से वेद का निर्माण किया जा सकता है, उपनिषदों का जन्म हो सकता है। गीताएं आविर्भूत होती हैं--उसी वर्णमाला से! और यह भी ध्यान रहे कि जिस वर्णमाला से उपनिषदों के अमृत वचन पैदा होते हैं, उसी वर्णमाला से गालियां भी निर्मित हो जाती हैं। और वर्णमाला वही है।
जिस जीवन की संपदा को कुछ लोग बुद्धत्व के अमृत में बदल लेते हैं, कुछ लोग उसी अमृत की संभावना को जहर में बदल लेते हैं। अधिक लोग दुःखी दिखायी पड़ते हैं; उन्होंने अपने जीवन को जहर में बदल लिया है। अधिक लोग दुःखी ही जीते हैं, दुःखी ही समाप्त होते हैं। उनके जीवन में कांटों के अतिरिक्त न कभी कोई फूल खिलते, न कोई सुवास उठती। उनके अंतरंग में कभी कोई पक्षी गीत नहीं गाते। उनकी जीवन-वीणा ऐसी ही पड़ी रह जाती है; वे कभी उसका तार नहीं छेड़ पाते।
आज तुम यहां मेरे पास इकट्ठे हुए हो, यही तुम्हें याद दिलाना चाहता हूं, यही तुम्हें रोज याद दिलाता हूं। सतत एक ही बात तुमसे कह रहा हूं कि एक अमूल्य अवसर है, उसे खो मत देना! पुकारो परमात्मा को, कि तुम्हारा खाली घर रोशन हो जाए, कि तुम्हारा खाली घड़ा भर जाए!
और ध्यान रखना, चाहो तो चमत्कार भी हो सकता है। ऐसा चमत्कार, कि जिसके आगे और सब चमत्कार फीके पड़ जाते हैं। तुम्हारी छोटी-सी गागर में उसका पूरा सागर भर सकता है। क्योंकि तुम छोटे ऊपर-ऊपर से दिखायी पड़ते हो. . .। बीज कितना छोटा होता है, कितने बड़े वृक्ष को छिपाए होता है! और बीज कोई एक ही वृक्ष को थोड़े ही छिपाए होता है; एक बीज में एक वृक्ष लगेगा, उस वृक्ष में अनंत बीज लगेंगे, अनंत बीजों में अनंत वृक्ष लगेंगे, अनंत वृक्षों में अनंत-अनंत बीज लगेंगे! एक बीज में इतनी क्षमता है कि सारी पृथ्वी को हरियाली से भर दे! पृथ्वी को ही क्यों, सारे गृह-नक्षत्रों को, चांद-तारों को हरियाली से भर दे। एक बीज! फैलता जाए, अवसर का उपयोग करता जाए, संभावना को वास्तविकता बनाता जाए, कहीं रुके न, धारा बहती रहे--तो गंगा जैसे सागर में पहुंच जाती है, ऐसे ही व्यक्ति परमात्मा में पहुंच जाता है।
बहो! पुकारो! तलाशो रुके-रुके डबरे बने न रह जाओ!
मेरे भीतर मुझसे भी बड़ी कोई चीज है
आंखें चार न करना इससे
हर परेशानी का बीज है!
जीवन का सारा दुःख इस छोटे-से सूत्र में संक्षिप्त किया जा सकता है--
मेरे भीतर मुझसे भी बड़ी कोई चीज है
आंखें चार न करना इससे
हर परेशानी का बीज है!
जो अपने को देख ले, उसने जगत का सारा सार देख लिया। और जो अपने को पा ले, उसने जो भी पाने-योग्य है सब पा लिया।
जीसस ने कहा है: और तुम पृथ्वी के सारे राज्य को भी पा लो, लेकिन अगर अपने को गंवा दिया तो उस पाने का अर्थ क्या, अभिप्राय क्या?
और यही हो रहा है। लोग न मालूम क्या-क्या पाने में लगे हैं! --सिर्फ एक
को छोड़कर। उस एक की तरफ ध्यान नहीं जाता। उस एक को तो हमने मान ही लिया है कि जैसे हमने पा ही लिया है। जैसे पैदा क्या हो गए, सब हो गया! बीज ने स्वीकार कर लिया है: यही मेरी नियति है। तो मरेगा बीज की तरह ही। तो इस बीज से न तो वृक्ष होंगे, न वृक्षों पर कोयल के गीत होंगे, न वृक्षों पर चांद की किरणें बरसेंगी, न वृक्ष पर सूरज आएगा-जाएगा, न बादल घिरेंगे, न वर्षा होगी, न हवाएं नाचेंगी--कुछ भी न होगा! बीज तो निष्प्राण है। बीज तो बंद

है। बीज और कंकड़ में भेद ही क्या है? भेद तो तभी है, जब बीज वृक्ष बने, अन्यथा कोई भेद नहीं।
और तुम्हें याद दिला दूं कि इस पृथ्वी पर सौ में से निन्यानबे लोग ऐसे
ही आते हैं, ऐसे ही चले जाते हैं। निर्णय करो कि तुम ऐसे ही न चले जाओगे! और निर्णय कर लो तो कोई भी कारण नहीं है कि तुम ऐसे ही जाओ। जिन्होंने किया, वे भरकर गए।
तुम कि जिसने नील अंबर में
सितारों को कि जैसे सी दिया है
तुम कि जिसने पेड, पंछी, पहाड़ आदमी को जी दिया है
तुम कि जिसने चार महीने विपुल धरती-भर सरस बरसात दी है
तुम कि जिसने हर तपे दिन को सुशीतल रात दी है
हे वही तुम
आज अपने परम विस्तृत शून्य दिव्याकाश से थोड़े उतर कर पास धरती के चले आओ
कि धरती तुम्हें छूने के लिए उठ-सी रही है
एक विप्लव हर सतह में अतल तक इसके मचा है
एक कण भी अचल या अविचल नहीं इसका बचा है
हिल गयी हैं जड़ें ही धरती की जैसे
कांपते हैं आज उसके जड़-हिमालय
आज सर सरिता नगर उपवन सभी के प्राण के भय
यह रहेगी या नहीं
विक्षिप्त इतनी गति सहेगी या नहीं
संदेह आस्तिक मनों तक में कहीं यह जगने लगा है आज तुम्हें शांत दिव्याकाश से अपने उतर कर
पास इसके चले आओ यह मुझे लगने लगा है
एक शांत उदार सुख का झला बरसा दो भला
तुम कि जिसने विपुल धरती-भर सरस बरसात दी है
डूब जाए यह विकलता लीन हो जाए
पराजित चित्त की सारी व्यवस्था एक रस की बाढ़ में
यों कि बंजर भूमि मेरे देश की आषाढ़ में
कह सके धरती कि मैं आकाश हूं, आनंद हूं
लग सके उसके कि वह कोई पहेली निरर्थक अंधी नहीं है,
वह अंधेरे से उजाले में गयी है
लग सके उसको कि वह ज्योतिर्मयी है
देह तो तुम्हारी पृथ्वी से बनी है। देह तो तुम्हारी धरती है। पर अगर पुकारो, अगर प्रार्थना जगे, तो आकाश तुम में उतरे। देह तो तुम्हारी मिट्टी का बना हुआ दीया है। अगर पुकारो तुम, खोजो तुम, तलाशो तुम, तो ज्योति भी उतरे। और दीये में जब ज्योति उतरे, तभी दीया दीया है। नहीं तो नाममात्र को दीया है। और जब तुम्हारी देह में आकाश का अवतरण हो, उस आकाश को ही हम परमात्मा कहते हैं, मोक्ष कहते हैं, निर्वाण कहते हैं।
जब तुम्हारी मिट्टी की देह में चिन्मय का पर्दापण हो, तभी जानना कि जीवन सार्थक हुआ--तभी जानना कि जीवन हुआ! तभी मानना कि तुम व्यर्थ आए व्यर्थ नहीं गए। तुम भरकर जा रहे हो। तुम सार्थक होकर जा रहे हो।
और जो ऐसा धन्यभागी है, वह न केवल अपने भीतर दीये को जला लेता है, उसके आसपास जो भी बुझे दीये आते हैं वे भी जल उठते हैं। ज्योति से ज्योति जले! फिर एक परंपरा पैदा होती है।
बुद्ध जगे। जिन्होंने उनकी आवाज सुनी, वे जगे। जिन्होंने उन जागों की आवाज सुनी, वे जगे। फिर हजारों साल तक श्रृंखला चलती है जागे हुओं की। तुम जागो। जागने की यात्रा फिर तुम पर समाप्त नहीं हो जाती। सोए रहे
तो तुम अपने पर समाप्त हो जाओगे। जागे तो तुम्हारी ज्योति बहती रहेगी। जागे हुए शाश्वत हो जाते हैं। जागरण में नित्यता है। फिर समय उस ज्योति को बुझा नहीं पाता। फिर कैसे ही अंधड़ आएं और कैसे ही तूफान उठें और कैसी ही अंधेरी रातें घिरें, वह ज्योति जलती ही चली जाती है। गुरु से शिष्य में,

शिष्य से शिष्य में; एक हाथ से दूसरे हाथ; एक हृदय से दूसरे हृदय--ज्योति उतरती चली जाती है। लोग आते हैं, विदा होते हैं, मगर ज्योति बनी रहती है। यही संपदा है। अगर छोड़ना चाहो तो इसी संपदा को छोड़ना चाहना! छोड़ जाओगे कुछ ठीकरे, कुछ मकान, कुछ जमीन; उसका कोई भी मूल्य नहीं है। वसीयत कुछ छोड़ जाना हो तो रोशनी की छोड़ जाना।
पुकारो परमात्मा को! और वह पुकार सुनते ही दौड़ा चला आता है। तुम्हारी पुकार की ही जैसे प्रतीक्षा है। तुम्हारे भीतर प्रार्थना उठे तो परमात्मा तुम्हारे भीतर बरसना शुरू हो जाता है। देर नहीं लगती।
यह जगत एक नियम है, अराजकता नहीं है। इस नियम पर भरोसा धार्मिकता है--
कि अगर मैं पुकारूंगा प्राण-पण से तो उतर आएगा। ऐसे तो लोग दौड़ते ही रहते, गिर जाते कब्र में और समाप्त हो जाते!
दौड़ता ही रहा मैं
दीवार के इस पार. . .
बहुत जूझा,
बहुत टकराया, लड़ा. . .
व्यूह-भेदन सीखने को
कुछ युगातों की
अति कठिन मरुभूमि लांघी; बेतहाशा दौड़ फिर
दूरस्त कितने ही
स्वप्न-शिखरों पर चढ़ा. . .
किंतु मैं हूं वहीं
वहीं है दीवार
खोजता हूं आज भी
उस पार का
विस्तार!
.जरा दौड़ते हुए लोगों को देखो--तैमूर को और चंगेज को, नेपोलियन को और सिकंदर को! .जरा दौड़ते हुए लोगों को देखो, पहुंचते कहां हैं? जैसे एक वर्तुल में दौड़ते हों। और तुम भी कुछ नये नहीं हो, तुम भी खूब दौड़े हो। तुम भी कोल्हू के बैल की चाल खूब चले हो। आंखों पर पट्टियां हैं, इसलिए दिखायी भी नहीं पड़ता। तुम सोचते हो कि यात्रा हो रही है, कहीं पहुंच रहे हैं। .जरा रोज चौबीस घंटे की अपनी प्रक्रिया को परखो, जांचो, विश्लेषण करो, --करते क्या हो? वही रोज-रोज करते हो! कभी कुछ नया भी होने दो। वही क्रोध, वही लोभ, वही मोह, वही मान. . . इनका ही तो परिवर्तन होता रहता है। जैसे पृथ्वी पर आ गयी वही वर्षा, आ गयी शीत, आ गयी गर्मी, फिर आ गयी वर्षा--एक वर्तुल दोहरता है। ऐसे ही तुम अपने मन के वातावरण को भी.जरा देखो-- बस यही मौसम दोहरते रहते हैं! अभी क्रुद्ध, अभी लोभ से भरे, अभी काम में भरे, अभी भयातुर--ऐसे ही कब से तुम चलते रहे हो!
और मैं तुमसे कहता हूं: तुम नये नहीं हो, नया यहां कोई भी नहीं है। अनंत-अनंत जन्मों से तुम चल रहे हो। तुम्हारे पैर थकते भी नहीं! तुम्हारा मन ऊबता भी नहीं! कितनी बार क्रोध करके फिर तुम वही कर लेते हो।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन के घर एक मेहमान आए। होंगे तुम जैसे ही। मेहमान जो आए, खूब पान खाते थे। और बाहर पान की पीक न फेंककर जहां बैठे थे, वहीं जमीन पर पीक थूक रहे थे। यह देख नसरुद्दीन भीतर गया और नौकर द्वारा एक चांदी का नक्काशीदार पीकदान जहां मेहमान बैठे थे वहां ला कर रखवा दिया। मेहमान ने पीकदान दूसरी तरफ सरकाकर फिर जमीन पर थूक दिया। यह देखकर नौकर ने फिर से पीकदान उठाकर पहली वाली जगह पर रख दिया। पर इस बार भी मेहमान ने वह पीकदान हटा कर जमीन पर थूक दिया! नौकर ने एक बार फिर पीकदान पहले वाली जगह पर रख दिया। लेकिन इस बार भी मेहमान साहब ने उसे फिर से सरकाकर जमीन पर पीक फेंक दी। नौकर ने फिर पीकदान पुरानी जगह पर रख दिया। ऐसा बार-बार होता देखकर मेहमान नौकर पर बहुत गुस्सा होकर बोले: अब अगर इस पीकदान को यहां से नहीं हटाओगे और बार-बार इसे यहीं रखोगे तो हम इसी में थूक देंगे!

चांदी का पीकदान! मेहमान ने सोचा होगा कि चांदी के पीकदान में और थूकना! वे हटाते रहे और थूकते रहे।
तुम अगर अपनी जिंदगी को थोड़ा तलाशोगे तो ऐसा ही पाओगे! वही-वही करते जाते हो। और ऐसा ही नहीं है कि उससे चोट नहीं खाते, पीड़ित नहीं होते। कौन नहीं होगा पीड़ित! लोभ किसे नहीं दीन कर जाता, दुःखी कर जाता, हीन कर जाता? क्रोध किसे नहीं जला जाता, दग्ध कर जाता? किसके हृदय में घाव नहीं छोड़ जाता? अहंकार ने कब किसको शीतलता दी है? रोज वही पीड़ा है, और रोज तुम निर्णय भी करते हो कि अब बहुत हो चुका है। मगर कल फिर होगी सुबह, फिर तुम वही करोगे जो तुम सदा करते रहे हो।
इस वर्तुल को तोड़ो! इस वर्तुल से छलांग लगाओ। इस वर्तुल से बाहर आ जाने का नाम धर्म है। इस यांत्रिकता के बाहर आ जाने का नाम जीवन है। सम्मान दो अपने को! तुम यंत्र नहीं हो। यंत्र का जीवन झूठा जीवन होता है। ऊपर-ऊपर से लगता है गति है, लेकिन भीतर कोई होश तो होता नहीं। तो जैसे मशीन चलती है, ऐसे ही तुम्हारा जीवन चलता है। तुमने मशीन से भिन्न अपने जीवन को पाया है?
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पत्नी से बहुत पीड़ित था; जैसे
कि सभी पति हैं, और जैसे कि सभी पत्नियां हैं। पीड़ित यहां कौन नहीं! लाख छिपाओ, कुछ छिपता भी तो नहीं। चेहरे-चेहरे पर पीड़ा लिखी है। आंख-आंख में आंसू हैं। हृदय-हृदय में शूल चुभे हैं। सोचता था बहुत बार कि अगर इस बार छुटकारा हो जाए तो अब दुबारा इस झंझट में पड़ने का नहीं हूं।
संयोग की बात. . . ऐसे संयोग बहुत मुश्किल से आते हैं; पत्नियां ऐसे संयोग आने ही नहीं देतीं! . . . पत्नी बीमार पड़ी, जैसे बिल्ली के भाग्य से छींका टूटा! सुधार के कोई लक्षण न दिखाई पड़े। मुल्ला भीतर-भीतर प्रसन्न होने लगा। आखिर घड़ी मरने की भी आ गई। पत्नी ने कहा मरते वक्त: नसरुद्दीन, अगर मैं मर जाऊं तो क्या तुम दूसरी शादी करोगे?
नसरुद्दीन ने कहा: इस सवाल का जवाब देना मुश्किल है।
पत्नी ने पूछा: क्यों?
मर रही थी, लेकिन एक लपक आ गयी! . . ."क्यों? सवाल का जवाब देना मुश्किल क्यों है?"
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा: इसलिए कि अगर "हां" कहूं तो तुम नाराज हो जाओगी और अगर "ना" कहूं तो वह नाराज हो जाएगी।
जिंदगीभर से सोच रहा था कि किस तरह से छुटकारा हो। अभी छुटकारा हो भी नहीं पाया. . .।
तुम एक जाल से छूटते भी नहीं कि तुम दूसरा जाल बुनने लगते हो, कि कहीं ऐसा न हो पहला जाल टूट जाए और तुम्हारे पास कोई जाल ही न बचे! तुम एक दुःख के बाहर भी नहीं हो पाते कि तुम दूसरे दुःख के बीज बोने लगते हो, ताकि इस दुःख की फसल कटते-कटते दूसरी फसल आ जाए।
और मैं कोई सैद्धांतिक बात नहीं कर रहा हूं। अपने जीवन का निरीक्षण करो, वहां तुम्हें गवाहियां मिलेंगी! एक नहीं हजार गवाहियां मिलेंगी।
इस यांत्रिकता में ऊपर-ऊपर तुम एक होते हो, भीतर-भीतर तुम दूसरे होते हो। क्योंकि इस यांत्रिकता से तुम्हारी चेतना का मेल हो ही नहीं सकता। तो तुम्हारा जीवन ज्यादा से ज्यादा एक अभिनय, एक प्रवंचना, एक धोखा होता है। तुम्हारे चेहरे पर मुखौटे हैं। तुम्हारे असली चेहरे का तुम्हें पता नहीं है। तुम क्या कहते हो, वह वह नहीं है जो तुम कहना चाहते हो। और तुम क्या करते हो, वह भी वही नहीं है जो तुम करना चाहते हो, करना चाहते थे।
तुम कुछ सोचते हो, कुछ करते हो। कुछ कहते हो, कुछ होते हो। तुम्हारे जीवन में बड़ी वंचना है। सारी पृथ्वी एक झूठा नाटक हो गयी है। सच्चे आदमी नहीं हैं, क्योंकि सच्चा जीवन नहीं है।
जो भीतर से जिएगा और चैतन्यपूर्वक जिएगा, वही व्यक्ति एकस्वर हो सकता है। और जहां एकस्वर है वहां सच्चिदानंद का वास है। और जहां बहुत स्वर हैं, जहां ऊपर कुछ है भीतर कुछ है, ऊपर नाटक-नाटक है--वहां तो आनंद का वास नहीं हो सकता।

"हे हनुमान! मैं तुमसे अत्यंत प्रसन्न हूं। मैं तुम्हें मनोवांछित वर दूंगा! बोलो क्या चाहते हो?" --भगवान राम ने हनुमान से कहा।
यह घटना एक नाटक-कंपनी द्वारा प्रस्तुत लंका-विजय नामक नाटक की है। राम की भूमिका में नाटक-कंपनी के मालिक स्वयं थे। और हनुमान की भूमिका में एक वेतनभोगी कलाकार! कंपनी की स्थिति जनता में सिनेमा की तुलना में नाटकों के प्रति घटती रुचि के कारण दिनों-दिन गिर रही थी। पिछले तीन महीनों से किसी कलाकार का वेतन नहीं चुकाया जा सका था। यह बात कलाकारों के मन में सदैव खटकती रहती थी। ऐसा क्यों न होता, आखिर उनके भी परिवार थे, बाल-बच्चे थे।
श्री रामचंद्र जी द्वारा मनोवांछित वर देने की इच्छा प्रकट करते ही हनुमान ने अकस्मात कहा: "मैनेजर साहब, तीन महीने का वेतन बाकी है। मिल जाए तो बड़ी कृपा होगी। बच्चे भूखों मर रहे हैं, मेरे मालिक!"
जनता में तो सन्नाटा हो गया। "मैनेजर साहब! . . . तीन महीने का वेतन बाकी है! . . .बच्चे भूखे मर रहे हैं!" ये हनुमान क्या कह रहे हैं? जो सो गए थे वे भी जग गए। सब चौकन्ने हो गए कि यह क्या हो रहा है! यह कैसी रामलीला! सांसे रुक गईं। अपलक लोग सुनने लगे कि अब रामचंद्रजी ही कहेंगे--"तथास्तु"! लेकिन नहीं, रामचंद्र जी ने भी तथास्तु नहीं कहा! कुछ कहना चाहा, लेकिन मुंह से आवाज न निकली। फसूकर निकलने लगा। चक्कर खाकर गिर पड़े! नाटक ही उखड़ गया। भाग-दौड़ मची, भीड़ में से कोई डॉक्टर आया। रामचंद्रजी को इंजेक्शन दिया। हनुमान ने हालत बिगड़ते देखकर भागने की कोशिश की, जनता ने पकड़ लिया, खींच-तान में पूंछ निकल गयी।
तुम अगर अपनी जिंदगी पर गौर करोगे तो ऐसी ही हालत पाओगे। लेकिन असली
को कब तक छिपाओगे? और कभी-कभी निकल-निकल आता है, उभर-उभर आता है। तुम्हारे न चाहे तुम्हारे बावजूद भी, भीतर जो है--वह तुम्हारी आंखों से झांक जाता है। लहरें कभी-कभी तुम्हारे भीतर भी सत्य की उतरती हैं, अभिनय को तोड़कर, लेकिन जिंदगी के न्यस्त स्वार्थ हैं, तुम फिर सत्य को दबा देते हो। तुम फिर उसकी छाती पर बैठ जाते हो। तुम फिर उखड़ी पूंछों को चिपका लेते हो। सरक गए मुखौटे, फिर से ओढ़ लेते हो। झूठ का फिर गुणगान करने लगते हो।
मेरे पास अगर सच में तुम आए हो तो अब छोड़ो। ये नकली पूंछें गिर जाने दो। ये मुखौटे सरक जाने दो। अब जिंदगी का एक बार फिर से निर्णय करो। जिस ढंग से जिए हो, जैसे जिए हो, वह गलत गया है। और शैली सीखो। सुंदरदास उस नयी शैली की ही बात कर रहे हैं। उनके वचन सीधे-साफ हैं।
सत्य सदा ही सीधा-साफ होता है। उलझाव तो झूठ में होते हैं। झूठ सीधा- साफ हो ही नहीं सकता, क्योंकि सीधा-साफ हो तो फौरन पकड़ में आ जाए। झूठ को तो बहुत चालबाजियां करनी होती हैं! झूठ तो पेचदार होता है। झूठ में गुत्थियां बनानी पड़ती है। झूठ में बड़े जटिल शब्दों में जकड़ना होता है--ऐसे शब्दों में कि लोग समझें न। लोग अगर हिंदी बोलते हैं तो झूठ संस्कृत बोलता है। लोग अगर उर्दू बोलते हैं, झूठ अरबी बोलता है। लोग अगर अंग्रेजी बोलते हैं, झूठ लेटिन बोलता है।
वास्तविक संत सदा लोगों की भाषा में बोले। झूठा धर्म सदा मुर्दा भाषाओं में बोलता है। झूठा धर्म संस्कृत, अरबी, चीनी. . .। झूठा धर्म लेटिन और ग्रीक. . . लोगों की समझ में जो न आए। लोगों की समझ में जो आ जाए तो जितना जाल फैलाकर रखा है--शब्दों का, सिद्धांतों का--वह टूटे, गिरे। और उस जाल के साथ जुड़े हुए न्यस्त स्वार्थ भी गिर जाएं।
पंडित हमेशा मुर्दा भाषाओं में बोलता है; वही उसका पांडित्य है। सुंदरदास सीधे-सादे आदमी हैं, पंडित नहीं हैं। और ऐसा नहीं है कि संस्कृत के अद्भभुत ग्रंथों से उनका कोई परिचय न था। मगर बोले लोकभाषा में, बोले लोगों की सीधी-सादी भाषा में, जो लोगों की समझ में आए। क्योंकि लोगों की समझ रूपांतरित करनी है। इसलिए शब्द कुछ कठिन नहीं हैं। शांति से सुनोगे, सुनते ही समझ में आ जाएंगे। मगर उस समझ में ही रुक मत जाना, क्योंकि उतने से कुछ भी न होगा।
बुद्धि की समझ काफी नहीं है, जब तक तुम्हारा अंतरतम न रंग जाए। ये बातें रंगे जाने की हैं। ये लोग रंगरेज जैसे हैं--ये सुंदरदास, ये नानक, ये

कबीर. . .। ये लोग रंगरेज हैं। इनका काम है, इन्हें एक रंग मिल गया है--ऐसा पक्का रंग कि जिंदगी तो उसे मिटा ही नहीं सकती, मौत भी नहीं मिटा पाती। उसी रंग में तुम्हें भी रंग देना चाहते हैं। डुबकी मारो! रंगो!
सुंदर मनुषा देह यह, पायौ रतन अमोल।
कौड़ी सटै न खोइए, मानि हमारौ बोल।।
यह मनुष्य की देह एक अमूल्य रत्न है। तुम्हें तो भरोसा न आएगा--कैसे भरोसा आए? तुमने तो नरक के अतिरिक्त इस जीवन में कुछ जाना नहीं है। हां, कोई कहे कंकड़-पत्थर है, दो कौड़ी की है, तो समझ में आ जाए।. . . अमोलक रत्न! तुम कैसे मानोगे? तुमने तो अपने भीतर कुछ भी देखा नहीं है, जिसका कुछ मूल्य हो। तुम तो अपने को दो कौड़ी में इसीलिए बेचने को तैयार हो।
एक कुम्हार मिट्टी खोदकर अपने गधे पर लादकर मटके बनाने के लिए ले जा रहा था। एक हीरा हाथ लग गया। प्यारा हीरा! बड़ा हीरा! मगर कुम्हार को तो हीरे की पहचान नहीं। कुम्हार का तो संबंध मिट्टी से है। माटी उसका नाता, माटी उसकी भाषा। पहले तो उसने फेंक ही दिया उस हीरे को। फिर थोड़ा चमकदार दिखता था, सूरज की रोशनी में चमकता था, सोचा कि चलो अपने प्यारे गधे के गले में लटका देंगे। और तो उसका किसी से नाता-रिश्ता भी न था। कुम्हार का और नाता-रिश्ता हो भी किससे! गधा ही उसका सब कुछ था। तो उसने गधे के गले में लटका दिया। बड़ा खुश हुआ। चला मिट्टी लादकर।
राह पर एक जौहरी ने यह देखा। उसकी तो आंखें फटी की फटी रह गयीं। इतना बड़ा हीरा उसने देखा ही नहीं था। और गधे के गले में बंधा! बात तो साफ हो गयी कि इस कुम्हार को कुछ भी पता नहीं है। वह जौहरी पास आया और कहा, इस पत्थर का क्या लोगे? कुम्हार ने तो सोचा ही नहीं था कि इसका कोई दाम देनेवाला मिलेगा। अब उसने कहा कि अब आपकी मर्जी ही हो गयी और आपको पत्थर रुच ही गया, एक रुपया दे दें।
एक रुपया भी कुम्हार ने बहुत हिम्मत करके मांगा। एक रुपया! दिनभर की मेहनत के बाद मिलता है। मगर इस आदमी की आंखों में ऐसी रौनक मालूम पड़ रही थी और जीभ में ऐसा स्वाद उठता दिख रहा था, लार टपकी पड़ रही थी, कि उसने सोचा कि देगा एक रुपया, इसको पत्थर जंच गया है।
लेकिन जौहरी ने कहा: एक रुपया? पत्थर का एक रुपया? चार आने में देना
हो तो दे दे।
लोभ की कोई सीमा नहीं है। लाखों का हीरा था, एक रुपये में भी लेने में लोभ पकड़ा। सोचा--चार आने में देगा यह, चार आने में भी इसको लगेगा कि बहुत कीमत मिल रही है।
कुम्हार ने कहा: चार आने! चार आने में तो नहीं दूंगा। इससे तो गधे के गले में ही अच्छा। और बच्चे घर में खेलेंगे। अपना रस्ता लो!
आठ आना ले लो--जौहरी ने कहा! फिर सोचकर दस-पांच कदम चला गया जौहरी, कि इसको बुद्धि आ ही जाएगी, आठ आने कौन इसको देने वाला है! आधे दिन की मेहनत। थोड़ी दूर जाकर जब कुम्हार नहीं लौटा तो जौहरी वापिस आया, लेकिन तब तक किसी दूसरे आदमी ने दो रुपये में खरीद लिया। दूसरे जौहरी ने खरीद लिया। बिक ही चुका था। छाती पीट ली पहले जौहरी ने। और कुम्हार से कहाः अरे मूरख! महामूरख! लाखों की चीज दो रुपये में बेच दी?
उस कुम्हार ने कहाः मैं तो मूरख हूं, सो जाहिर है। लेकिन तुम तो लाखों
की चीज रुपये में भी न खरीद सके! मैं तो मूरख हूं, मुझे पता नहीं है; तुम्हें तो पता था? तुम्हारी मूर्खता मुझसे बहुत ज्यादा घनी है।
यहां तुम देखो, लोग जिंदगी को ऐसे गंवा रहे हैं कि जैसे उन्हें सूझता
ही नहीं क्या करें! कोई ताश खेल रहा है, उससे पूछो: क्या कर रहे हो? वह कहता हैः समय काट रहे हैं। समय काटने का मतलब तो है, जिंदगी काट रहे हैं। काटे नहीं कट रही है! यह परमात्मा ने बड़ा गुनाह किया, तुम्हें जिंदगी दी। तुम काट रहे हो। कोई रोटरी-क्लब में काट रहा है, कोई होटल में काट रहा है, कोई सिनेमा में काट रहा है, कोई कहीं काट रहा है, कोई कहीं काट रहा है. . . काटो। तुम्हें पता नहीं है कि तुम क्या काट रहे हो!
एक कैसा अमूल्य अवसर--जहां इस जगत की सारी संपदा बरस उठे! जहां जीवन की परम अनुभूति प्रगाढ़ हो! जहां तुम्हारे भीतर सूरजों का सूरज उगे! जहां

तुम्हारे भीतर ऐसे अमृत का झरना बहे कि मौत भी उसे हरा न पाए! जहां तुम शाश्वत से जुड़ जाओ! --उस समय को तुम ताश खेल कर काट रहे हो?
लेकिन तुम तो ठीक ही हो, उनकी क्या कहें जो शास्त्र भी पढ़ते हैं, उपनिषद भी पढ़ते हैं, कुरान भी कंठस्थ है, वेदों के वचन भी याद हैं, उनकी क्या कहो? तुम तो कुम्हार जैसे हो, तुम्हें पता नहीं, तो तुमने गधे के गले में हीरा लटका दिया है। ताश खेल कर जिंदगी काट रहे हो! लेकिन उनके संबंध में क्या कहो जो काशी से पंडित होकर लौटे हैं? उनके संबंध में क्या कहो जिन्होंने उपनिषद पर टीकाएं लिखी हैं, कि शोध-ग्रंथ लिखे हैं। उनके संबंध में क्या कहो, क्योंकि वे भी जीवन ऐसे ही काट रहे हैं।
खैर, मूढ़ कुम्हार अगर गधे के गले में लटका दे हीरे को, चलेगा। लेकिन इन महामूढ़ों के संबंध में क्या कहो!
तुम्हारे अज्ञानी में और तुम्हारे ज्ञानी में तुम्हें कुछ फर्क दिखाई पड़ता है? तुम जिसको अज्ञानी कहते हो, उसमें और तुम्हारे पंडित में तुम्हें कुछ फर्क दिखाई पड़ता है? तुम में और तुम्हारे घर जो पूजा करने आता है पंडित, उसमें तुम्हें कुछ फर्क दिखाई पड़ता है? तुम्हारे लोभ में, तुम्हारे क्रोध में, तुम्हारे काम में, कुछ भेद है? सब एक जैसे हैं। समझ में नहीं आएगा।
इसलिए मजबूरी में सुंदरदास को एक बात कहनी पड़ रही है, जो सभी संतों को कहनी पड़ी है--
सुंदर मनुषा देह यह, पायौ रतन अमोल।
कौड़ी सटै न खोइए मानि हमारो बोल।।
वे कहते हैंः हमारी बात मान लो। तुम्हारी समझ में अभी आ नहीं सकता। तुम हमारी बात मान लो। हम भी तुम जैसे थे और हमने भी बहुत जिंदगियां ऐसे ही गंवाईं और बहुत हीरे ऐसे ही खो दिए। तुम मत खोओ।
मैंने सुना है, एक सुबह एक मछुआ, जल्दी ही उठा और मछलियां पकड़ने नदी के किनारे पहुंच गया। थोड़े जल्दी आ गया था, अभी रात अंधेरी थी और बादल घिरे थे, सूरज निकला नहीं था। थोड़ी रोशनी हो जाए तो नाव खोले, मछिलयां पकड़ने जाए। तो बैठ गया किनारे पर। बैठा तो उसे पता लगा कि पास ही एक झोला पड़ा है। टटोलकर देखा, कुछ काम तो था नहीं। टटोल कर देखा तो झोले में लगा कि बहुत से पत्थर भरे हैं। बैठा-बैठा आदमी करे क्या, समय काटने लगा। एक पत्थर निकाला, पानी में फेंका। आवाज हुई--छपाक! लहरें उठीं! फिर दूसरा पत्थर निकाला, फेंका --छपाक! फेंकता रहा, फेंकता रहा, फिर सूरज निकलने लगा। जब सूरज निकलने लगा तो झोले में से आखिरी पत्थर हाथ में आया। सूरज की किरणें पड़ीं। वह पत्थर नहीं था, हीरा था। उसकी छाती पर क्या गुजरी होगी, सोच सकते हो! एकदम छाती पकड़ कर बैठ गया--तो वे भी सब हीरे ही थे, जो अंधेरे में फेंकता रहा और छपाक-छपाक पानी की आवाज सुनता रहा!
अंधेरे में जो पत्थर दिखाई पड़ता है, वह रोशनी आने पर हीरा हो जाता है।
जो जागे और जिन्होंने थोड़ा ध्यान को साफ-सुधरा किया, जिन्होंने अपनी.जरा भीतर की भूमि सुधारी, घास-पात काटा, कूड़ा-करकट हटाया, जिन्होंने भीतर थोड़ी- सी दीये की बाती जलायी--उन्होंने पाया कि हीरा है।
सुंदरदास इसलिए कहते हैंः मानि हमारो बोल! मजबूरी है। तुम्हारा अनुभव तो राजी नहीं होगा, क्योंकि तुमने जिंदगी में कुछ जाना नहीं। तुम अंधेरे में जिए हो। तुम्हारी जिंदगी में तुमने पत्थरों से ही पहचान पायी है। हीरों से तुम्हारी मुलाकात नहीं हुई। इसलिए सुंदरदास कहते हैं कि हमारा बोल सुनो और मान लो।
यह जीवन अमोल है। बड़ी मुश्किल से मनुष्य की यह देह मिलती है। जन्मों- जन्मों की यात्रा के बाद, न मालूम कितनी योनियों में यात्रा के बाद यह देह मिलती है! न मालूम कितने जन्मों तक तुमने प्रार्थना की है मनुष्य हो जाने की! प्रार्थना अब पूरी हो गयी है। अब कुछ करो! मनुष्य तुम हो गए हो, अब इस सौभाग्य का कुछ उपयोग करो! अब इस अवसर को किसी और महा अवसर में बदलो। सुंदर मनुषा देह यह, पायौ रतन अमोल।
कौड़ी सटै न खोइए, मानि हमारो बोल।।

और इसे कौड़ियों में मत गंवाओ। और लोग कौड़ियों में ही गंवा रहे हैं। लोग कागज के नोटों के ढेर लगाए जा रहे हैं और सोच रहे हैं, जिंदगी सार्थक हुई जा रही है! लोग बैंक में अपना बैलेंस बड़ा किए जा रहे हैं और सोचते हैं जिंदगी सार्थक हुई जा रही है। या कोई पदों की सीढ़ी पर चढ़ा तो जा रहा है और सोचता है, जिंदगी सार्थक हुई जा रही है।
सावधान! यही ढंग हैं लोगों के जिंदगी गंवाने के। यहां कुछ पाओगे नहीं। दौड़-धूप बहुत है। आपा-धापी बहुत है। लेकिन पाना न कभी यहां हुआ है, न कभी हो सकता है।
एक रात मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने स्वप्न देखा। सुबह उठकर उसने मुल्ला से कहा: मुल्ला! कल रात मैंने स्वप्न देखा कि मैं और आप किसी गहनेवाले की दुकान पर गए हैं। वहां पर मेरे लिए आपने नौ लाख का एक हार खरीदा।
मुल्ला तो घबड़ाने लगा, पसीना आने लगा! मुल्ला ने कहा: पर ये ख्याल रखो
ये बातें सपने की हैं। पत्नी ने कहा: वह तो जब आपने गहना खरीद लिया, तभी मैं समझ गयी थी कि यह सपना है। तभी तो मेरी नींद टूटी। जैसे ही तुमने गहना खरीदा, मैं तभी समझ गयी कि यह सपना है। यह सच नहीं हो सकता। उसी चोट में तो मेरी नींद खुली!
इस जिंदगी में कुछ भी नहीं खरीदा जा सकता। इस जिंदगी में तुम कुछ भी इकट्ठा न कर सकोगे। हां, इकट्ठा करने में अपने को गंवा सकते हो।
कौड़ी सटै न खोइए, मानि हमारो बोल।
तूने प्राणपन से नहीं टेरा
ऊष्मा और प्रकाश
और शक्ति का सवेरा
तभी तो शून्य में खड़ा है तू
और अब सूने में रोएगा
अंधेरे में जागेगा
अंधेरे में सोएगा!
बस जिंदगी ऐसे ही अंधेरे-अंधेरे में बीत रही है। टटोलते-टटोलते अंधेरे में लोग कैसे मां के गर्भ के बाहर आ जाते हैं, टटोलते-टटोलते और फिर कैसे कब्रों में प्रवेश कर जाते हैं, बस इतनी ही दो घटनाएं घटती हैं, और कुछ भी नहीं घटता। इसलिए तुम मानो तो कैसे मानो? मैं भी तुमसे कहता हूं कि जिंदगी अमोल है। यह रत्न ऐसा है कि बड़ी मुश्किल से मिलता है, सौभाग्य से मिलता है।. . .मानि हमारो बोल!
इसलिए सारे धर्मों ने श्रद्धा पर बल दिया है। श्रद्धा का अर्थ क्या होता है? जो तुम्हारे अभी अनुभव में नहीं आ रहा है, लेकिन किसी के अनुभव में आ गया है; अगर उस आदमी के अनुभव से तुम्हें कुछ बातें प्रत्यक्ष होने लगें. . .। उसका अनुभव तो प्रत्यक्ष नहीं हो सकता जो मैंने भीतर पाया है, उसे तुम्हें दिखाने को मेरे पास कोई उपाय नहीं है, न सुंदरदास के पास है, न बुद्ध के पास है। लेकिन अगर तुम में थोड़ी समझ हो तो उसके कुछ अनुमान लगाने के उपाय जरूर हैं। बुद्ध की शांति देखो। बुद्ध के जीवन पर छाया हुआ प्रसाद देखो। बुद्ध के चारों तरफ आ गया बसंत देखो! बुद्ध के उठने में, बैठने में, बुद्ध के बोलने में, न बोलने में, कोई स्वर बज रहा है, उसे सुनो! बुद्ध की आंखों में झांको। शायद आंखें चार हों, तो उन आंखों की गहराइयों में तुम्हें किसी चीज का अनुमान होने लगे! बुद्ध के चरण पकड़ो, शायद उन चरणों से बहती हुई कोई ऊर्जा तुम्हें तरंगित करे!
बुद्ध के पास बैठो--सिर्फ बैठो! सत्संग करो! शायद बैठे-बैठे, पास बैठे- बैठे जो उनके हृदय में घटा है, उसकी तरंगें तुम्हारे हृदय को भी छुएं, आंदोलित करें। इसलिए इस देश में सत्संग का इतना मूल्य हो गया है। क्योंकि बुद्ध को क्या हुआ है, इसको हम बाहर तो देख ही नहीं सकते। अब इसको परोक्ष रूप से अनुभव करने के उपाय खोजने पड़ेंगे। सीधे-सीधे देखने की तो कोई व्यवस्था नहीं हो सकती, लेकिन आस-पास से घूमकर पहचानने का कोई उपाय हो सकता है।

तुम जब बगीचे के करीब आने लगते हो तो बगीचा दिखाई भी न पड़े, तो भी हवाएं ठंडी होने लगती हैं। उससे अनुमान तो कर सकते हो कि बगीचा करीब आ रहा है, कि हम ठीक दिशा में हैं। बगीचा दिखाई भी न पड़े, लेकिन हवाओं में कुछ सुवास तो आने लगती है। बेले के फूल खिल गए होंगे और हवाएं सुवास को ले आयी होंगी, तुम्हारे नासापुट अहसास करने लगते हैं कि हम जिस दिशा में जा रहे हैं वहां फूल होने चाहिए। फिर जैसे-जैसे तुम बढ़ते हो, सुवास बढ़ती है। अभी भी बगीचा दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन एक बात पक्की हो जाती है कि मैं ठीक दिशा में जा रहा हूं, क्योंकि सुवास बढ़ने लगी, मेरे कदम ठीक रास्ते पर हैं। इसी का नाम सत्संग है।
गुरु के जैसे-जैसे पास होते हो, सुवास बढ़ने लगती है। जीवन का संगीत बढ़ने लगता है। तुम्हारे भीतर भी प्रसाद की अवधारणा होने लगती है। तुम्हारे भीतर कुछ नया होने लगता है, जो इसके पहले नहीं हुआ था।
यह जो अनुमान है, यही श्रद्धा है--कि मुझे तो नहीं हुआ है अभी, लेकिन किसी को हुआ है। इसके परोक्ष प्रमाण मुझे मिल रहे हैं।
रामकृष्ण मरते थे, उनको कैंसर हुआ था। गले का कैंसर था, पानी भी नहीं
पी सकते थे, भोजन भी नहीं ले सकते थे, अंतिम दिन बड़े कष्टपूर्ण थे। लेकिन चिकित्सक चकित थे, क्योंकि रामकृष्ण की आंखों में कोई कष्ट नहीं। ये परोक्ष लक्षण हैं। चिकित्सक मान ही नहीं सकते थे कि इतनी पीड़ा में तो आदमी को मूर्च्छित हो जाना चाहिए। और रामकृष्ण जैसे आदमी को तो निश्चित हो जाना चाहिए, जो.जरा-.जरा सी बातों में समाधि में उतर जाते थे। किसी ने राम का नाम ले दिया कि वे गिर पड़ते थे, बेहोश हो जाते थे। छह-छह घंटे बेहोश रह जाते थे। रास्ते पर उनको ले जाना मुश्किल था। उनके शिष्यों को उन्हें पकड़ कर रास्ते से गुजारना पड़ता था; क्योंकि कोई ऐसे ही कह दे कि जै राम जी, कि राम शब्द सुन लें वे कि काफी हो गया। उतनी बूंद पड़ जाए कि वे मस्त हो गए, वहीं सड़क पर नाचने लगें, कि सड़क पर गिर पड़ें, भावाविष्ट हो जाएं।
तो जो आदमी ऐसी छोटी-छोटी घटनाओं में भावाविष्ट हो जाता था, कंठ सड़ गया है, पानी की एक बूंद नहीं उतरती, दिनों से भोजन-पानी भीतर नहीं गया है, भयंकर पीड़ा है, सारा शरीर अग्नि से भरा हुआ है... लेकिन रामकृष्ण की आंखें ऐसी शांत हैं जैसे वे परम आनंद में हैं। जो चिकित्सक उनकी देख-रेख करते थे, वे भी आस्तिक होने लगे। आए नहीं थे आस्तिक होने, सत्संग करने की इच्छा भी नहीं थी, अनायास आ गए थे, ऐसे ही आ गए थे; लेकिन आस्तिकता जन्मने लगी। सत्संग अनायास भी हो जाए, अनायास भी बगीचे के पास से निकल जाओ तो भी तो फूलों की गंध नासापुटों में भर जाएगी न।
रामकृष्ण के भक्तों ने रामकृष्ण से कहाः आप मां को क्यों नहीं कहते?
आप तो काली के ऐसे भक्त हैं, एक बार कह देंगे, सब ठीक हो जाएगा!
रामकृष्ण कहतेः लेकिन मुझे दुःख हो तो मैं कुछ कहूं। दुख हो तो शिकायत करूं।
आखिर भक्तों ने एक तरकीब निकाली। उन्होंने कहाः दुख हमें है, आपको नहीं। हमारे लिए तो प्रार्थना करो!
तो रामकृष्ण मना न कर सके। सीधे-सीधे आदमी थे, यह उन्हें तर्क जंचा कि मुझे दुख नहीं है, ठीक; मैं शिकायत भी नहीं कर सकता, यह भी ठीक। लेकिन ये दुखी हैं जरूर, सब रो रहे हैं। तो उन्होंने कहाः तुम्हारे लिए प्रार्थना करूंगा, आज आंख बंद करके कहता हूं। आंख बंद की खिल-खिला कर हंसने लगे। उस घड़ी में हंसी का आना तो मुश्किल ही था, असंभव ही था। ये लक्षण हैं। भक्तों ने पूछाः आप क्यों हंस रहे हैं? उन्होंने कहा कि मैंने कहा मां को कि देख, मुझे तो कोई अड़चन नहीं है, जैसा रख वैसा रहूंगा। जैसा तूने रखा है वैसा ही सदा रहा हूं, उससे अन्यथा मैंने नहीं चाहा है। उससे अन्यथा चाहने का सवाल भी नहीं है। तूने जो दिया है वही सुख है। तूने जो दिया है वही शुभ है। मुझे जिस बात की जब जरूरत थी, वही तूने दिया है। यह दिया है तो जरूर जरूरत होगी, मुझे पता हो या न हो। मगर ये मेरे प्रेम करनेवाले लोग हैं, ये बड़े दुखी हो रहे हैं, ये रो रहे हैं। इनको ख्याल में रख कर एक घूंट पानी मेरे गले से उतर जाने दे, एक कौर भोजन मेरे गले से उतर जाने दे, ताकि ये प्रसन्न हो जाएं।

तो भक्तों ने कहा, फिर हंसे क्यों? तो उन्होंने कहा कि मां ने कहा कि
यह भी खूब रही! तुझे भलीभांति पता है कि इनके कंठों से भी तो तू पानी पी रहा है, इनके कंठों से भी तो तू भोजन ले रहा है! अब इसी कंठ से क्यों अटकाना? आप हंसे क्यों? भक्तों ने पूछा। रामकृष्ण ने कहाः मैं हंसा इसलिए कि
यह मुझे पता था, वह यही कहेगी। यह मुझे पहले से ही पता था कि यही उत्तर आनेवाला है। तुम नहीं माने, नाहक मेरी फजीहत करवायी। उसने कहा कि अब इस कंठ से बहुत भोजन ले लिया, बहुत पानी ले लिया, अब और कंठों से ले। अब प्यारों के कंठ से ले, सब कंठ तेरे हैं।
ये लक्षण कुछ कहेंगे। इन लक्षणों पर श्रद्धा होती है।
श्रद्धा विश्वास का नाम नहीं है। श्रद्धा परोक्ष अनुमान है। प्रत्यक्ष तो समझ में नहीं आ रहा है। साफ-साफ दिखाई नहीं पड़ रहा है, लेकिन दूर एक तारा टिमटिमाने लगा है। बहुत दूर से संगीत का एक स्वर सुनाई पड़ने लगा है। कौन बजाता है, पता नहीं। क्यों बजाता है, पता नहीं!
सत्संग में बैठने का अर्थ होता हैः जिसको घटा है, जिसने जीवन के मूल्य
को समझा है, उसके पास बैठते-बैठते, उसकी सोबत में, उसके रंग में, कुछ-कुछ तुम्हें भी दिखाई पड़ने लगेगा। जौहरी के पास बैठ-बैठ कर हीरों की परख हो जाती है।
कौड़ी सटै न खाइए, मानि हमारौ बोल
जो नहीं दिखना चाहिए
उसे न देख सकने के लिए
एक अलग आंख चाहिए
जहां नहीं उड़ना चाहिए
वहां न खुलने के लिए
एक अलग पांख चाहिए!
दृश्य को देखनेवाली एक आंख है। अदृश्य को देखने के लिए और दूसरे तरह
की आंख चाहिए, उसी का नाम श्रद्धा है। इस बाहर के जगत में उड़ने के लिए एक और तरह का पंख चाहिए। उसी का नाम श्रद्धा है। इस बाहर के जगत में उड़ने के लिए एक तरह के पंख चाहिए, भीतर के जगत में उड़ने के लिए एक और तरह का पंख चाहिए। उसी का नाम श्रद्धा है।
जो नहीं दिखना चाहिए
उसे न देख सकने के लिए
एक अलग आंख चाहिए
जहां नहीं उड़ना चाहिए
वहां न खुलने के लिए
एक अलग पांख चाहिए!
और भीतर जो दिखाई पड़ता है वह दिखाई पड़ने जैसा नहीं है। और भीतर जो उड़ान होती है, वह उड़ान जैसी भी नहीं है। कहते हैं उड़ान, क्योंकि बाहर की उड़ान हम पहचानते हैं। कहते हैं दर्शन, आत्मदर्शन, प्रभु-दर्शन, क्योंकि यह भाषा हमारी पकड़ में आ सकती है। लेकिन वहां कैसा दर्शन? वहां तो द्रष्टा और दर्शन एक हो जाते हैं। और वहां कैसा उड़ना? वहां किसमें उड़ना! वहां तो आकाश और पंख एक हो जाते हैं। मगर यह अलग पांख चाहिए, अलग पांख चाहिए। उस अलग आंख, अलग आंख का नाम श्रद्धा है।
इसलिए सुंदरदास कहते हैंः मानि हमारो बोल!
सुंदर सांची कहतु है, मति आनै कछु रोस।
जौ तैं खोयो रतन यह, तौ तोही कौ दोस।।
सुंदरदास कहते हैंः मैं बिल्कुल सच कह रहा हूं सांची कह रहा हूं। नाराज न हो जाना!
बड़ी महत्वपूर्ण बात कही है। संतों को सदा इस बात की चिंता रही है कि
जब भी वे सच कहेंगे, लोग नाराज हो जाएंगे। लोग झूठ में ऐसे पग गए हैं, लोग ऐसे झूठ हो गए हैं कि सच उन्हें कांटे की तरह चुभेगा। लोग झूठ के ऐसे आदी हो गए हैं कि सच को वे झेल नहीं पाएंगे। इसलिए तो लोग नाराज होते हैं। लोग मुझसे नाराज हैं! कितने नाराज हैं!
सुंदर सांची कहतु है, मति आनै कछु रोस।

सुंदर कहते हैंः नाराज न हो जाना। नाहक क्रोध से मत भर जाना। मैं तुमसे सच-सच कह रहा हूं। जैसा है वैसा कह रहा हूं।.जरा भी अन्यथा नहीं कर रहा हूं।
लेकिन लोगों से वैसा-वैसा कह दो जैसा है, तो लोग नाराज हो जाते हैं। अंधे से अंधा नहीं कहना पड़ता--अंधे से हम कहते हैंः सूरदास जी! उससे सूरदास जी बहुत प्रसन्न होते हैं। कोई मर जाता है तो कहते हैं। "महायात्रा" पर गए। जा रहे हैं मरघट, कहना पड़ता है महायात्रा। राजनेता भी मर जाते हैं तो हम कहते हैं स्वर्गीय हो गए। तो फिर नरक कौन जाता है? जो मरा, वही स्वर्गीय! दिल्ली में भी मरो तो भी स्वर्गीय हो जाते हैं!
एक राजनेता मरे। जब आंख खुली, सोचा स्वभावतः, राजनेता थे कि स्वर्ग में होंगे! आसपास देखा, हालात बिल्कुल दिल्ली जैसे मालूम पड़े। थोड़े चौंके भी। वही शोरगुल, वही उपद्रव, वही जुलूस, घिराव, मार-पीट... ठीक पार्लियामेंट भरी थीं! कुर्सियां फेंकी जा रही हैं, माइक फेंके जा रहे हैं, दंगा-फसाद हो रहा है, एक-दूसरे की टांग खींच रहे हैं लोग, उठा-पटक चल रही है। पास ही खड़े एक आदमी से पूछा कि भाई, स्वर्ग की स्थिति तो ठीक वैसी ही मालूम पड़ती है जैसी नई दिल्ली की है। पास खड़े आदमी ने कहाः महानुभाव! होश में आइए, यह स्वर्ग नहीं है, यह नरक है।
राजनेता भी मरता है तो हम कहते हैं स्वर्ग गया। हम अच्छी बातें कहने
के आदी हैं। अच्छे-अच्छे शब्दों का उपयोग करते हैं। इसलिए जब संत हमसे सीधी-सीधी बात कह देते हैं तो चोट लगती है। जीसस को हमने ऐसे ही थोड़े सूली पर लटका दिया। बहुत नाराज हो गए, तब लटकाया। मंसूर की हमने ऐसे ही थोड़े गर्दन काट दी। कोई ऐसे ही थोड़े किसी की गर्दन काटता है। बहुत नाराज हो गए। उसने कुछ बात कह दी, ऐसी बात कह दि कि हमारे हृदय को छू गयी, घाव कर गयी।
सुकरात को हमने जहर पिला दिया। सीमा के बाहर हो गयी हमारी बात, बर्दाश्त के बाहर हो गयी।
सुंदर सांची कहतु है, मति आनै कछु रोस।
जौ तैं खोयो रतन यह, तौ तोही कौ दोस।।
और सुंदर कहते हैंः यह मैं तुझसे कहना चाहता हूं कि अगर यह जीवन तूने खोया तो तेरे अतिरिक्त और कोई जिम्मेवार नहीं है। नाराज हो मत जाना! यह बात सुनकर पीड़ित मत हो जाना!
लोग हमेशा चाहते हैं, किसी और पर दोष दे दो! यह लोगों की आदत ही है। जिंदगी में जब भी कुछ तकलीफ होती है--कोई कहता है, भाग्य; कोई कहता है, भगवान्। भाषा बदल जाती है, समय बदल जाते हैं, तो लोग कहते हैंः समाज, राज्य की व्यवस्था। पुराने दिनों में लोग कहते थे भाग्य; फिर मार्क्स आया, उसने कहाः भाग्य का कोई सवाल नहीं, आर्थिक व्यवस्था समाज की खराब है, इसलिए लोगों की जिंदगी खराब जा रही है। इसलिए लोगों की जिंदगी में सुख नहीं है। जंची लोगों को बात। भाग्य की भी जंचती थी, मार्क्स की भी जंची। फिर फ्रायड आया और फ्रायड ने कहा कि ये गलत ढंग से बच्चे पाले जा रहे हैं, इसलिए सब उपद्रव हो रहा है। यह भी सबको जंचती है, कि ठीक है। बच्चे जब तक ठीक से न पाले जाएंगे, शिक्षा जब ठीक से न होगी, तो सब गड़बड़ हो जाएगा। शिक्षा ठीक होनी चाहिए। समाज ठीक होना चाहिए--व्यवस्था ठीक होनी चाहिए। सब ठीक होना चाहिए। एक कोई तुमसे यह भी न कहे कि तुम जुम्मेवार हो! जुम्मेवारी किसी और की होनी चाहिए।
हम भी सब यही करते हैं। अगर तुम दुःखी हो तो पति कहता है पत्नी के कारण। इस दुष्ट से कहां संबंध हो गया! और तुम्हारे तथाकथित महात्मा भी यही कहते हैं। कोई भेद तुममें और तुम्हारे महात्माओं में नहीं है। दोनों का गणित एक है। पत्नी सोचती है, इस पति के कारण। बच्चे हों तो लोग सोचते हैं, बच्चों के कारण हम नरक में पड़े हैं। और बच्चे न हों तो सोचते हैं कि बच्चे के न होने के कारण हम दुख भोग रहे हैं।
मेरे पास दोनों तरह के लोग आते हैं। कोई आ जाता है कि बड़ी मुश्किल में
पड़ गया हूं, ये बच्चे-कच्चों में उलझ गया हूं! कोई आ जाता है कि बच्चे- कच्चे बिल्कुल नहीं हैं, आशीर्वाद दें! मगर कोई यह बात देखने को राजी नहीं

होता कि अगर जिंदगी हमारी व्यर्थ जा रही है तो सिवाय मेरे, और सिवाय मेरे, और कोई जुम्मेवार नहीं है! धर्म की शुरुआत इसी सूत्र से होती है।
जिस व्यक्ति ने यह स्वीकार कर लिया कि मैं ही जुम्मेवार हूं, उसके जीवन में क्रांति घट सकती है। और किसी के जीवन में क्रांति नहीं घटती। और तो सब बहाने हैं। टालने के बहाने हैं! अपना बोझ हटाने के बहाने हैं। हटाते रहो बोझ, लेकिन अगर मूल कारण को तुमने स्वीकार नहीं किया तो तुम जैसे के तैसे हो, वैसे ही रहोगे, वैसे ही मर जाओगे!
सुंदर सांची कहत है, मति आनै कछु रोस।
जौ तैं खोयो रतन यह, तो तोही कौ दोस।।
बार-बार नहीं पाइए, सुंदर मनुषा देह।
राम भजन सेवा सुकृत, यह सौदो करि लेह।।
यह बार-बार नहीं मिलेगा जीवन। यह सौदा कर ही लो। दो चीजों से यह सौदा
हो सकता है। भीतर राम का स्मरण, भीतर भक्ति-भाव, ध्यान--और बाहर, जो राम के बहुत रूप हैं, उनकी सेवा। इन दो छोटे से शब्दों में सब कह दिया। सीधी-साधी बात। भीतर शांति ध्यान की, प्रभु का स्मरण; और बाहर, जो प्रभु के अनंत-अनंत रूप हैं, उनकी जितनी सेवा बन सके सेवा!
रामभजन सेवा सुकृत, यह सौदो कर लेहु।
बस ये दो बातें अगर तुम पूरी कर लो, तो यह सौदा हो गया! यह हीरा तुम्हारा रहा। तुमने पा लिया जीवन का धन। तुमने पा ली असली संपदा--जो तुमसे छीनी न जा सकेगी, डाकू जिसे लूट न सकेंगे, चोर जिसे चुरा न सकेंगे, मृत्यु भी जिसे नष्ट न कर सकेगी। तुमने शाश्वत की संपदा पा ली!
सुंदर सांचि कहतु है जौ मानै तो मानि।
यह देह अति निंद्य है, यहै रतन की खानि।।
बहुत मूल्यवान वचन है। इसी देह में जहर भरा है, इसी देह में अमृत। सब तुम पर निर्भर है। समझदार हो तो जहर से औषधि बना लेना। और नासमझ हो तो अमृत से भी जहर बना लेता है। नासमझ के हाथ में जहर भी जहर है, अमृत भी जहर है। समझदार के हाथ में अमृत भी अमृत है और जहर भी अमृत है। सब तुम पर निर्भर है।
इसलिए जिनने तुमसे कहा कि देह पाप है, कि देह निंद्य है, कि देह नरक है, उनकी बात सुन कर रुक मत जाना; उन्होंने आधी बात कही है। दूसरा हिस्सा तो बात चूक ही गए वे--इसी देह में परमात्मा छिपा है। इसी देह की पोर-पोर में प्रेम की रसधार छिपी है। इसी हृदय पर अनाहद का नाद उठता है। इसी से अमृत की तलाश पर निकलना है। इसी देह को सीढ़ी बनाना है स्वर्ग की।
दिल पै जब कोई चोट खाते हैं
अहले-दिल और मुस्कराते हैं
देखकर तेरी मस्त आंखों को
मैकदे खुद भी झूम जाते हैं
ऐ गमे-जिंदगी! उदास न हो
आ तुझे हम गले लगाते हैं
अहले-दिल जिंदगी की जुल्मत में
खूने-दिल से दिए जलाते हैं
हम हैं वो रहरबे-हयात जिन्हें
राहजन रास्ता दिखाते हैं
अगर समझ हो तो लुटेरे भी तुम्हारे लिए मार्गदर्शक हो जाएंगे।
हम हैं वो रहरबे-हयात जिन्हें
राह जन रास्ता दिखाते हैं
हम ऐसे जीवन-पथिक हैं कि लुटेरे भी जिनके मार्गदर्शक हो जाते हैं। बस पीने का अंदाज आए, पीने की शैली आए। अमृत न तो अमृत है, न जहर जहर है। सब तुम्हारे पीने के अंदाज पर निर्भर है। कोई वीणा उठा कर किसी के सिर पर दे मारे, हत्या कर दे, उसी वीणा से अपूर्व संगीत उठ सकता था।
एक वक्त आता है
जिसमें सब कुछ सीधा हो जाता है
मगर यह वक्त आता है तब

जब लगा देते हो अपना सब
तुम दांव पर या कह सकते हैं जब रख देते हो तुम
अपने जीवन का सिर
मौत के पांव पर
तब सब सीधा हो जाता है
और सरल अमृत बन जाता है तब
अब तक का गरल
जिस दिन भी तुमने बोधपूर्वक अपनी सारी ऊर्जा को दांव पर लगाया उसी दिन गरल अमृत हो जाता है; मृत्यु परमात्मा का द्वार बन जाती है; और देह में ही उससे मिलन हो जाता है।
यह देह दिव्य भी है। यह देह सिर्फ संसार का घर नहीं है, यह परमात्मा का मंदिर भी है। तुम पर निर्भर है सब, कैसा इसका उपयोग करोगे।
यह देह अति निंद्य है, यह रतन की खानि।
सुंदर सांची कहतु है, जौ मानै तौ मानि।।
लेकिन वे कहते हैं, मान सको तो मान लो! सिद्ध करने का कोई भी उपाय नहीं। देखते हो अवशता संतों की! उनकी अड़चन देखते हो! उन्हें दिखाई पड़ रहा है। तुम दिखाई पड़ रहे हो कि गड्ढे में गिर रहे हो। तुम्हें पुकारते हैं, चिल्लाते हैं कि मत जाओ उस रास्ते पर, गड्ढा है; मगर तुम्हें गड्ढे में संपदा दिखाई पड़ रही है। तुम्हें सांपों में मित्र दिखाई पड़ रहे हैं।
... जौ मानै तौ मानि! सुंदरदास कहते हैंः जो मान सको तो मान लो। सुन सको
तो सुन लो! आ सको मेरे पास तो आ जाओ। इसका स्वाद थोड़ा ले सको तो ले लो। सुंदर नदी प्रवाह मैं मिल्यौ काठ संजोग।
आपु आपकौ बहि गए, त्यौं कुटुंब सब लोग।।
जिनमें तुम भटके हो, भरमाए हो अपने को... मित्र हैं, प्रियजन हैं, भाई-बंधु हैं, मा-पिता हैं, पति-पत्नी हैं, बच्चे हैं... जिस परिवार में तुम अपने को उलझाए हो, यह सिर्फ समय गंवाया जा रहा है। इस उलझाव को जिंदगी का सब कुछ मत समझ लेना। इस खेल को जीवन का सार मत समझ लो।
सुंदर नदी-प्रवाह मैं मिल्यौ काठ संजोग।
यह तो ऐसा ही है, जैसे लकड़ी के दो टुकड़े नदी में बहते-बहते मिल जाएं अचानक, फिर बिछड़ जाएं।... आपु आपुकौ बहि गए। फिर विदा हो जाएंगे। फिर अपने- अपने रास्तों पर चले जाएंगे।
सुंदर बैठे नाव मैं, कहूं-कहूं ते आइ!
पार भए कतहूं गए, त्यौं कुटुंब सब जाइ।।
जैसे नाव में बैठते हैं यात्री न मालूम कहां-कहां से आकर, घड़ीभर को साथ हो जाता है, फिर नदी पार हो गए, फिर उतर-उतरकर फिर अपने रास्तों पर चले जाते हैं।
तुम्हारी पत्नी से तुम्हारी पहले कभी पहचान थी? सोचते हो, फिर कभी पहचान हो पाएगी?
अभी कुछ ही दिन पहले सुप्रीम कोर्ट के एक जस्टिस मिलने आए। भले और प्यारे आदमी हैं! पत्नी मर गयी है, तो बहुत दुःखी हैं। दो वर्ष बीत गए पत्नी को मरे हुए, मगर उनका दुःख का घाव उन्हें सुखाए डाल रहा है, जलाए डाल रहा है। सीधे-साफ आदमी हैं। मुझसे कहने लगेः बस एक ही बात के लिए आया हूं। मेरा मेरी पत्नी से फिर कभी मिलना हो पाएगा या नहीं?
मैंने उनसे पूछाः मुझे यह बता दो, इस जन्म के पहले कभी पत्नी से मिलना हुआ था? उन्होंने ऐसा सोचा भी नहीं था। जब पहले नहीं हुआ था तो पीछे भी क्या होगा? यह तो नाव पर हम बैठे गए हैं, थोड़ी घड़ी को। तुम कहां से आए, मैं कहां से आया, हम बड़ी-बड़ी दूर से आए। अलग-अलग रास्ते हैं हमारे, अलग-अलग जीवन-पथ हैं। यह थोड़ी देर नाव पर बैठ गए, दोस्ती भी बन गई, मित्रता भी बनी, पति-पत्नी भी बने, बच्चे भी हुए, सब हुआ! फिर नाव किनारे पर लग जाएगी सब उतर पड़ेंगे, अपने-अपने रास्ते पर चले जाएंगे। मौत सब को विदा कर देगी। जन्म ने जोड़ दिया, मौत विदा कर देगी। जन्म इस घाट को समझो, मौत उस घाट को समझो। इस

जीवन में थोड़ी देर नाव पर बैठ गए, बस इतना समझो। इसमें ही उलझ मत जाओ, कुछ पहले की याद करो।
झेन फकीर कहते हैंः याद करो उस चेहरे की जो तुम्हारा तब था जब तुम पैदा नहीं हुए थे, जब तुम्हारे मां-बाप भी पैदा नहीं हुए थे। याद करो उस चेहरे को जो तुम्हारा तब होगा, जब तुम मर जाओगे। अपने मूल को पहचानो, क्योंकि वही चेहरा परमात्मा का चेहरा है।
सुंदर पक्षी वृक्ष पर, लियौ बसेरा आनि।
राति रहै दिन उठि गए, त्यौं कुटुंब सब जानि।।
सांझ को देखते हैं, वृक्षों पर पक्षी आकर इकट्ठा हो जाते हैं! बड़ा शोरगुल मचता है। बड़े झगड़े-झांसे हो जाते हैं। किसकी जगह किसने ले ली, कौन किस की डाल पर बैठ गया! फिर थोड़ी देर में सब सन्नाटा हो जाता है। रात सब सो गए। सुबह होगी, सूरज उगेगा, पक्षी जगेंगे, फिर चल पड़ेंगे अपने-अपने यात्रा- पथों पर। ऐसा ही यह संसार है।
सुंदर यह औसर भलौ, भजिलै सिरजनहार।
जैसे ताते लोह कौं लेत मिलाइ लुहार।।
समझकर, देख कर कि यह मिलना तो चार दिन का है, इसी में सब गंवा नहीं देना है, इस परम अवसर का उपयोग कर लो। और एक ही उपयोग हैः उसको खोज लेना, जिसने बनाया। उसको खोज लेना, जो मैं हूं। उसको खोज लेना, जो इस जीवन की आधारशिला है, जो मेरा स्वभाव है, स्वरूप है।
सुंदर यह औसर भलौ, भजि लै सिरजनहार।
जैसे ताते लोह कौं, लेत मिलाइ लुहार।।
लुहार को देखा है, लोहे को गर्म करता है, सुर्ख करता है--आग जैसा! और फिर दो लोहे के टुकड़ों को मिला देता है। ऐसा ही इस जीवन का उपयोग कर लो।
जीवन एक ऊर्जा है, एक गर्मी है। अगर चाहो तो यह परमात्मा से मिल सकती है।
लेकिन अभी। ठंडा होकर नहीं मिल पाएगी।
अकसर लोग बुढ़ापे की राह देख रहे हैं, तब सोचते हैं परमात्मा की याद करेंगे। तब लोहा ठंडा हो जाएगा। कुछ लोग तो सोचते हैं, जब मर रहे होंगे बिल्कुल, बिस्तर पर पड़े होंगे, तभी कर लेंगे याद, इतनी जल्दी क्या है? अभी तो भोग लें, चार दिन का राग-रंग देख लें। मरते वक्त लोग गंगाजल पिलाते हैं। वह आदमी मर रहा है, उसे अब कुछ होश भी नहीं कि तुम क्या पिला रहे हो। मरते आदमी को लोग वेदों का पाठ सुनाते हैं। उसे कुछ सुनायी नहीं पड़ता अब। उसके कान डूबे जा रहे हैं। जब जिंदगी गरम हो, जब जिंदगी युवा हो, तभी खोज लेना। मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैंः आप युवकों को संन्यास दे देते हैं। मैं उनसे कहता हूंः संन्यास मूलतः युवकों का ही गुणधर्म है। क्योंकि जब लोहा गर्म हो, जब जीवन तप्त हो और ऊर्जा से भरा हो, जब जीवन में तूफान की क्षमता हो, जब जीवन में अंवेषण का उपाय हो, जब अभियान करने के लिए चुनौती स्वीकार करने का साहस हो, तभी! ठंडे हो गए सब, मुर्दा हो गए सब, फिर? फिर तुम तो राम-राम न कह पाओगे, दूसरे लोग कहते हैं। ले चले अर्थी पर रख कर तुमको। ले जाएंगे लोग अर्थी पर रखकर तुमको। वे कहेंगे, राम-नाम सत्य है। और इन सज्जन ने जिंदगी भर न कहा राम-नाम सत्य है। यह भी खूब मजा है! जिंदगी थी, तब राम-नाम सत्य नहीं था; तब और सब चीजें सत्य थीं, राम-नाम को छोड़कर। अब मर गए, अब लोग चिल्ला रहे हैं--दूसरे, कि राम-नाम सत्य है। वे भी अपने लिए नहीं कह रहे हैं; तुम्हें ठंडा करके घर लौटकर वे भी उसी को सत्य कहेंगे जिसको तुम जिंदगीभर सत्य कहते रहे। वे भी प्रतीक्षा करेंगे कभी फिर कोई चार आदमी उनको उठाएंगे, तब वे कह देंगे राम-नाम सत्य है। राम को तुमने उधार छोड़ रखा है?
तुम्हीं को पुकारना होगा!
सुंदर याही देह में हारि जीति को खेल।
यहीं सब घट रहा है इसी देह के भीतर--हारने का खेल, जीतने का खेल। चोसर बिछी है। पांसे फेंके जा रहे हैं। किस बात को हार कहते हैं सुंदर? किस बात को जीत कहते हैं?
सुंदर याही देह में हारि जीति को खेल।
जीतै सौ जगपति मिलै, हारै माया मेल।।

जो राम-नाम सत्य है, ऐसा जीवन में जान ले, वह जीत गया! और जिसने और कुछ जाना--पद सत्य है, धन सत्य है, प्रतिष्ठा सत्य है--वह चूका, वह हारा। यहां सिकंदर भी भिखमंगों की तरह मरते हैं। सम्राट की तरह मरना हो तो बुद्धों की तरह जीना सीखो।
सुंदर सौदा कीजिए, भलि बस्तु कछु खाटि।
नाना विधि का टांगरा, उस बनिया की हाटि।।
सुंदरदास कहते हैंः उस परमात्मा की इस दुकान पर सब कुछ है--अच्छा भी, बुरा भी; ठीक भी, गलत भी; जहर भी, अमृत भी।
सुंदर सौदा कीजिए, भलि बस्तु कछु खाटि। जरा सोच-परख कर। आदमी दो पैसे
की हंडी खरीदने बाजार जाता है तो ठोंक-ठोंक कर बजा-बजा कर लेता है। और तुम पूरी जिंदगी को ऐसे ही गंवा रहे हो--बिना परखे। तुम जैसा पागल और कौन होगा? नाना विधि का टांगरा, उस बनिया की हाटि।
सुंदरदास कहते हैं कि उस परमात्मा के उस बाजार में सब तरह की चीजें बिक रही हैं। यहां क्या है जो नहीं बिक रहा है? हर चीज का सौदा हो रहा है। यहां आदमी बिकते हैं; औरतें बिकती हैं। यहां इज्जतें बिकती हैं, यहां प्रेम बिकता है, यहां शरीर बिकते हैं। यहां सब चीजें बिक रही हैं। सिर्फ यहां एक चीज नहीं बिक रही--परमात्मा नहीं बिक रहा है। इसी हाट में मत उलझ जाना। इसी बाजार के शोरगुल में मत खो जाना। उसको पा लो, जिसे पकड़ कर फिर कुछ खोता नहीं; जिसे पाकर फिर कुछ और पाने को शेष नहीं रह जाता है।
दीया की बतियां कहैदीया किया नजाय।
ये वचन बड़े प्यारे हैं। इनमें श्लेष अलंकार है। इनके दोहरे अर्थ हैं।
दोनों ही अर्थ समझने जैसे हैं।
दीया की बतियां कहै दीया किया न जाइ।
दीया करै सनेह करि दीये ज्योति दिखाइ।।
जो आदमी दीये की बातें करता रहे, क्या तुम सोचते हो वह इन बातों को करने से ही कभी दीये को जला पाएगा? प्रकाश की बात से प्रकाश तो नहीं होता और न रोटी की चर्चा से पेट भरता है। कब तक पड़े रहोगे शास्त्र में? कब तक शब्द में उलझे रहोगे? शास्त्र नहीं, शास्ता खोजो। शब्द नहीं, कहीं जीवंत सत्य हो, उसकी शरण गहो। बुद्धं शरणं गच्छामि! जहां कहीं परमात्मा की किरण उतरी हो, उस किरण से मैत्री करो। उस किरण से नाता जोड़ो, संबंध जोड़ो!
दीया की बतियां कहै दीया किया न जाइ।
सिर्फ बातचीत ही करते रहोगे तो दीया कभी न जलेगा। अंधेरा जैसा है वैसा ही बना रहेगा।
और दूसरा अर्थ हैः देने की बातें करने से दीया नहीं जाता! देना हो तो दो, बातें ही मत करते रहो। और मजा यह है, जिसके भीतर का दीया जल जाता है उसके बाहर दान प्रकट होता है।
इसलिए श्लेष अलंकार का उपयोग किया है। जिसके भीतर रोशनी होती है, वह बाहर रोशनी बांटने लगता है, करेगा क्या? परमात्मा उसे देता है, वह औरों को देता है। जितना देता है उतना भीतर की संपदा बढ़ती है। जितना बांटता है उतना साम्राज्य बड़ा होता है।
दीया करै सनेह करि, दीये ज्योत दिखाइ।
और अगर भीतर का दीया जलाना है तो तेल खोजना पड़ेगा। भीतर का दीया, भीतर
का प्रकाश प्रार्थना के तेल से जलता है। और फिर दीया जल जाए तो भीतर सब दिखाई पड़ने लगता है। जैसा है, वैसा ही दिखाई पड़ने लगता है। फिर राम-नाम सत्य है, जीते-जी राम-नाम सत्य है।
दूसरा अर्थः दीया करै सनेह करि... । अगर देना हो तो प्रेम से देना। प्रेम से दिया गया हो, तो ही दान में रोशनी होती है। अगर किसी और कारण से दिया तो दान व्यर्थ हो गया। तुमने अगर इसलिए दिया कि स्वर्ग मिले तो तुम चूक गए। तुमने अगर इसलिए दिया कि प्रतिष्ठा मिले, तुम चूक गए। तुमने मंदिर बनवाया और पत्थर लगवा दिया नाम का, तुम चूक गए। देना हो तो देने के आनंद से देना। जिसको दिया हो, उसके प्रति प्रेम से देना। सिर्फ प्रेम के कारण ही देना, और कोई कारण न हो, पाने की कोई आकांक्षा न हो, तो तुम्हारे जीवन में बड़ी रोशनी होगी, बड़ा प्रकाश होगा। एक कंजूस आदमी तालाब में डूब रहा था,

किनारे खड़े एक आदमी ने अपना हाथ बढ़ाकर कहा, भाई! मैं तुम्हें खींचता हूं, मुझे अपना हाथ दो।
लेकिन यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि उस आदमी ने अपना हाथ नहीं बढ़ाया। तब पास ही खड़े मुल्ला नसरुद्दीन ने उसे समझाया, भैया! इन्होंने अपनी तमाम जिंदगी में दूसरों से लिया है। किसी को कभी कुछ दिया नहीं। आप इनसे कहिए मै, तुम्हें खींचता हूं, मेरा हाथ लो। तब ये आपका हाथ पकड़ेंगे। और ऐसा ही हुआ! जैसे ही कहा कि मैं हाथ देता हूं, लो मेरा हाथ, तत्क्षण
उस आदमी ने हाथ पकड़ लिया।
जीवन के ढंग और शैलियां होती हैं! एक भाषा सीखने के हम धीरे-धीरे अयस्त हो जाते हैं। लोभी देता भी है तो कुछ और सौदा कर लेने के लिए। स्वर्ग में सही। एक पैसा देता है तो सोचता है कितना मिलेगा।
एक आदमी मरा, स्वर्ग पहुंचा। खाते-बही खोले गए, देख-दाख की। उस आदमी से पूछाः भाई, तुम्हारे नाम का कुछ पता नहीं चलता। तुमने कभी किसी को कुछ दिया? क्योंकि जो देते हैं, उनका ही यहां नाम लिखा होता है।
उसने कहाः हां, मैंने दिया। एक बुढ़िया को मैंने तीन पैसे दिए थे। बहुत खोजबीन करने से मिला। दिए थे जरूर। वह देवदूत भी थोड़ा परेशान हुआ कि तीन पैसे दिए इस आदमी ने, अब इसको कहां स्वर्ग में जगह दें? तीन पैसे में स्वर्ग बड़ा सस्ता हो जाएगा। उसने अपने सहयोगी से पूछा, असिस्टेंट से, कि भाई क्या करें? उसने कहा, इसके तीन पैसे वापस लौटाओ और नरक भेजो। तीन ही पैसे दिए थे। देवदूत ने खीसे से तीन पैसे निकालकर उस आदमी को दिए। उस आदमी ने कहाः ब्याज? आदमी तो आदमी है! न मिले स्वर्ग, मगर ब्याज... ।
दीये ते सब देखिए, दीये करौ सनेह।
दीये दसा प्रकासिए, दीया करि किन लेह।।
दीये से सब दिखाई पड़ता है, दर्शन होता है। इसलिए सबसे महत्त्वपूर्ण बात है, मेरे भीतर का दीया कैसे जले? इसलिए अगर कोई भी चीज खोज करनी हो और अपने प्रेम को किसी एक केंद्र पर आधारित करना हो, एक जगह अपने प्रेम, अपने ध्यान को एकाग्र करना हो, तो वह एक ही बात हैः मेरे भीतर प्रकाश कैसे प्रज्वलित हो?
पुकारोः हे ज्योतिर्मय, मेरे भीतर उतरो!
उपनिषद के ऋषि कहते हैंः ले चलो हमें अंधकार से प्रकाश की तरफ! तमसो
मा ज्योतिर्गमय!
वही सार-प्रार्थना है। क्योंकि दीये से ही सब दिखाई पड़ेगा। इसलिए दीये से ही प्रेम करो!
दूसरा अर्थः जो देता है उसी को दिखाई पड़ता है। जो बांटता है उसी को दिखाई पड़ता है। कृपण तो अंधा हो जाता है। दानी की आंख होती है।
तुमने कभी देखा, जब तुम किसी को बिना किसी हेतु के कुछ देते हो, कैसी प्रफुल्लता होती है! कैसा हलकापन होता है! कैसा चित्त निर्भार हो जाता है! पंख लग जाते हैं कि लगे आकाश में उड़ जाओ! और जब तुम किसी से कुछ छीन लेते हो, कैसे बोझिल हो जाते हो! भारी हो जाते हो! और जब तुम किसी को नहीं दे पाते, तो कैसी पीड़ा मन में काटती है!
देने से बड़ा मजा तुमने कोई और जाना है? देने से बड़ा सुख तुमने कोई और जाना है? इसलिए कृपण सुख को जान ही नहीं पाता, सिर्फ दाता ही जानते हैं। दीये ते सब देखिए, दीये करौ सनेह।
इसलिए देने की कला सीखो। और ध्यान रखना, सुंदरदास यह नहीं कह रहे हैं
कि देने से तुम्हें स्वर्ग मिलेगा, इसलिए। सुंदरदास कह रहे हैं, देने में स्वर्ग है। देना स्वर्ग है। मिलने-विलने की बात छोड़ो। भविष्य नहीं है कुछ। वर्तमान के क्षण में ही तुमने जब भी किसी को प्रेम से कुछ दिया है, तभी तुमने पाया हैः स्वर्ग के द्वार खुले!
दीये दसा प्रकासिए, दीया करि किन लेह।
दीये से, प्रकाश से तुम्हारी वास्तविक दशा का बोध होगा कि तुम कौन हो। तुम परमात्मा हो! तत्त्वमसि! तुम परमात्मा से इंच भर कम नहीं, रत्ती भर कम नहीं, .जरा भी छोटे नहीं!

उपनिषद कहते हैंः उस पूर्ण से ही पूर्ण प्रकट हुआ। उस पूर्ण में ही पूर्ण लीन होता है। और जब हम उस पूर्ण से पूर्ण को भी निकाल लें, तब भी पीछे पूर्ण ही शेष रहता है।
ऐसा मत सोचना कि तुम्हारे भीतर परमात्मा अंश-अंश में प्रकट हुआ है।
तुम प्रत्येक पूरे के पूरे परमात्मा हो। परमात्मा पूरा का पूरा उतरा है।
लेकिन यह पहचान कहां हो? भीतर तो अंधेरा छाया है।
दीया जलाओ! और यह पहचान कैसे हो? भीतर तो हम बड़े कृपण हो गए हैं। हम देना ही भूल गए हैं। और हम देना भूल गए हैं, तो परमात्मा हमें नहीं दे पाता।
जैसे कोई किसी कुएं से पानी न उलीचे, तो उसमें नये झरने पानी नहीं लाएंगे। झरने बंद हो जाएंगे। पानी उलीचो तो नये झरने आएं, खुलें। उलीचते जाओ पानी और कुएं में नया जल आता जाए। न उलीचोगा, सड़ जाएगा जल, मर जाएगा जल। उलीचते रहोगे, जीवंत रहेगा, स्वच्छ रहेगा, प्रवाहमान रहेगा।
ऐसे ही जो देता है, बांटता है, जो... जिसके पास प्रेम है, प्रेम बांटो। ज्ञान है ज्ञान बांटो। ध्यान है, ध्यान बांटो। जो जिसके पास है, बांटो! पकड़ो मत। मौत तो वैसे ही आकर सब छीन लेगी। इसके पहले बांटो। तो तुम्हें अपने भीतर के मूल स्वरूप का पता चलना शुरू हो जाएगा। क्योंकि तुम्हारे भीतर परमात्मा के झरने प्रवाहित होने लगे।
दीया राखै जतन सौं दीये होइ प्रकाश।
और दीये को संभालना पड़ा है--जतन से!
देखा तुमने, कोई चली महिला तुलसी के चौरे पर दीया चढ़ाने, तो आंचल में सम्हाल कर चलती है दीये को! उसका नाम जतन। बुझ जाए नहीं तो, हवा का झोंका आ जाए। छोटा सा दीया है। और जब शुरू-शुरू में जलता है तब तो बड़ा छोटा होता है।
दीया राखै जतन सौं, दीये होइ प्रकाश।
दीये पवन लगै अहं, दीये होइ बिनास।।
हवा का झोंका, नई-नई ताजी ज्योति है दीये की, बुझा न जाए कहीं! किस चीज
का झोंका लगता है इस दीये को? अहंकार की हवा का झोंका लगता है इस दिए को दीये पवन लगै अहं!
इसको और कोई हवा कहीं बुझा सकती, भीतर के दीये को; इसको सिर्फ अहंकार
की हवा बुझा सकती है। और अहंकार बड़ा चालबाज है। बड़े जल्दी पकड़ लेता है। आंख बंद कर के घड़ीभर ध्यान में बैठे रहे तो भी अहंकार पकड़ लेता है कि देखो, मैं कितना बड़ा ध्यानी! दो पैसे किसी को दे दिए तो अहंकार कहता हैः कितना बड़ा दानी! किसी का एक कांटा निकाल दिया तो अहंकार कहता हैः कितना बड़ा महासेवी!
बचो इससे! नम्र बनो!
नम्र कुछ नहीं है
घास के सिवा
या परिपूर्ण विश्वास के सिवा
परिपूर्ण विश्वास का अर्थ हैः मैं हूं ही नहीं, परमात्मा है!
दीया राखै जतन सौं दीये होइ प्रकाश।
और दूसरा अर्थ, कि जो भी दिया हो, उसको जतन से देना! ऐसे मत दे देना कि दूसरे का अपमान हो जाए। ऐसे मत दे देना कि दूसरा छोटा अनुभव करने लगे। इस ढंग से मत देना कि देखो कितना दे रहा हूं। जतन से देना! जिसको दो, उसको चोट न लगे! जिसको दो, उसको ऐसा न लगे कि छोटा हो गया, भिखारी हो गया!
इस दुनिया के सबसे बड़े दाता वही हैं जो देते भी हैं और जिसको देते हैं उसे पता भी नहीं चलने देते! उसे कानोंकान खबर भी नहीं होती कि उसे कुछ दिया गया है।
दीया राखै जतन सौं दीये होइ प्रकाश।
अगर इस तरह दोगे तो तुम्हारे देने से बड़ा प्रकाश होगा।
दीये पवन लगै अहं, दीये होइ बिनास।
और कहीं देने के इस मन में अहंकार न पकड़ ले कि देखो, मैंने इतना दिया! मैंने इतना किया! लोग अकसर यही बात करते दिखाई पड़ते हैं--कि मैंने इतना

दिया, मैंने इतना किया! और मैं तो नेकी ही नेकी करता रहा और लोग मेरे साथ बदी कर रहे हैं!
सूफी फकीरों ने कहा है--नेकी कर और कुएं में डाल! करना और भूल जाना! याद मत रखना! याद रखा कि खराब हो गया। नेकी करने की बात है और भूल जाने की, विस्मृत हो जाने की। पीछे उसकी याद भी कभी मत करना, नहीं तो अहंकार उस पर हावी हो जाएगा। और अहंकार की हवा जैसे दीये को बुझा देती है, ऐसे ही अहंकार तुम्हारे दान को लीप-पोत कर मिट्टी कर देता है, कूड़ा-कचरा कर देता है। सांईं दीया है सही, इसका दीया नाहिं।
ध्यान रखो जो कुछ दिया है वह उसका दिया है। सांईं दीया है सही... ! सब परमात्मा का दिया है। अपना दिया क्या है? तुम लेकर क्या आए थे? तुम स्वयं भी उसके ही दान हो। तुम स्वयं भी उसकी ही एक धार हो! उसने तुम्हें इतना दिया है, और तुम जरा सा देने में अकड़ जाते हो!
सांईं दीया है सही इसका दीया नाहिं।
एक अर्थ--कि सब परमात्मा का दिया है, मेरा दिया क्या है? तो अहंकार खड़ा
न होगा।
और दूसरा अर्थः सांईं दीया है सही... रोशनी तो सब उसकी है, प्रकाश तो उसका है, हम तो अंधेरे हैं। हमारा क्या प्रकाश होगा?
"मैं" जहां है वहां अंधकार है। अहंकार अंधकार है। और जहां निर-अहंकार है, वहीं प्रकाश है। निअर्हंकार में परमात्मा का प्रकाश उतरता है। तुम जब शून्य होते हो तब पूर्ण उतरता है।
यह अपना दीया कहै, दीया लखै न माहिं।
शोरगुल न मचाओ कि मैंने दिया! जरा भीतर तो देखो कि सब उसका दिया है। तुम जो दे रहे हो वह भी उसका दिया है। तुम सिर्फ बीच के एक उपकरण हो! रोशनी भी तुम्हारे भीतर जो जलेगी, वह भी तुम्हारी जलाई हुई नहीं है, उसकी ही जलाई हुई है। तुम तो सिर्फ विस्मरण कर बैठो हो। तुम तो भूल बैठे हो। तुमने तो पीठ कर ली है दीये की तरफ। दीया तो जल ही रहा है। जरा लौटो अपनी तरफ और तुम पाओगे कि ज्योति सदा से मौजूद थी। मैं ही भूल बैठा था।
परमात्मा को पाना ऐसा नहीं है कि हमने उसे खो दिया है और अब पाना है; बल्कि ऐसा है कि हम उसे पाए हुए बैठे हैं और विस्मरण हो गया है। सिर्फ स्मरण!
सांईं आप दिया किया, दीया माहिं सनेह।
वही दे रहा है। वही भर रहा है हमारे भीतर के जीवन के दीये को तेल से।
वही भर रहा है हमारे जीवन के हृदय को प्रेम से। वही बांट रहा है। वही रोशनी है।
सांईं आप दिया किया, दीया मांहि सनेह।
दीये दीये होत हैं, सुंदर जीया देह।।
सुंदरदास कहते हैंः उसने गुरु को दिया। गुरु ने मुझे दिया। मैं दूसरों को दे रहा हूं।... दीये दीये होत हैं! ... ज्योति से ज्योति जले! ... सुंदर जीया देह। और सुंदर कहते हैंः इस देने की प्रक्रिया का मैं अंग बन गया, धन्यभागी हूं! इस श्रृंखला का मैं भी एक अंग बन गया, धन्यभागी हूं। मैं भी इसशृंखला की एक कड़ी हूं, बस, इतना मेरा धन्यभाग! मैं भी एक बांस की पोली बांसुरी हूं, उसके स्वर मेरे भीतर से भी उतरे--इतना मेरा धन्यभाग! गीत मेरे नहीं हैं, गीत उसके हैं। गाया उसने। ज्यादा से ज्यादा मेरा गुण इतना है कि मैंने बाधा नहीं दी! मेरे गुरु ने मुझे जगाया, मैंने औरों को जगाया। औरों से कहूंगा, तुम औरों को जगा देना। जगाते जाना!
लेकिन सब रोशनी उसकी है। उसकी ही एक धारा बह रही। और सब प्रेम उसका ही है। उसका ही प्रेम बंट रहा है। यह सारा जगत उसका ही प्रकाश और उसके ही प्रेम का अवतरण है।
सूत्र तो सरल हैं। कुछ ऐसी कठिनाई नहीं कि बुद्धि को अड़चन आए, लेकिन सत्संग में इनका राज खुलेगा रहस्य खुलेगा। सत्संग में यही सूत्र तुम्हारे मुंह में पड़ी हुई मिश्री की डली हो जाएंगे। इनका स्वाद खिलेगा, स्वाद खुलेगा!

अभी तो तुमने समझा बुद्धि से--हृदय से भी समझना होगा। तभी अस्तित्वमय
हो जाती हैं सारी बातें! और तब यह औरों की नहीं रह जातीं। फिर सुंदरदास ने कही, ऐसी नहीं। फिर जैसे तुम्हारी ही बात किसी और ने तुम्हारे मुंह से छीन कर कह दी हो, ऐसी हो जाती हैं।
इन सूत्रों पर ध्यान करो। इन सूत्रों में मगन होओ। इन सूत्रों में नाचो, मदमस्त होओ! इन सूत्रों में कुंजियां छिपी हैं जो उसके मंदिर का द्वार खोल सकती हैं।

आज इतना ही।

ज्योति से ज्योति जले
दसवां प्रवचन

संन्यास यानी अभय

पहला प्रश्नः प्रभु! मैं बिरहन बौराई, पियरवा रूप जो तेरो निरखों!

कुसुम! प्रेम पागल है। पर पागलपन में ही उसकी महिमा है, गरिमा है। प्रार्थना पागलपन का शुद्धतम रूप है। उसके पार फिर कोई पागलपन नहीं। और प्रार्थना ही सेतु है परमात्मा से मिलाने का।
पागलपन दो प्रकार के हो सकते हैं। एक तो जब कोई बुद्धि से नीचे गिर जाए; और दूसरा जब कोई बुद्धि से ऊपर निकल जाए। दोनों ही स्थितियों में बुद्धि छूट जाती है। पागल की भी छूटती है, जिसको हम साधारणतः पागल कहते हैं; और प्रेम की भी छूटती है, भक्त की भी छूटती है। वह असाधारण अर्थों में पागल है। वह बुद्धि के पार गया।
अंतिम, प्रथम जैसा ही होता है। लक्ष्य उद्गम पर ही वापिस लौट आने का नाम है। इसलिए परम संत छोटे बच्चों जैसा भोला-भाला हो जाता है। पर ख्याल रखना, "जैसा"; छोटा बच्चा नहीं हो जाता।
जीसस का प्रसिद्ध वचन हैः धन्य हैं वे जो छोटे बच्चों की भांति होंगे, क्योंकि प्रभु का राज्य उन्हीं का है। लेकिन ध्यान रखना, जो छोटे बच्चों की भांति होंगे; छोटे बच्चे नहीं। छोटे बच्चे तो अभी भटकेंगे। अभी तो संसार उन्हें लुभाएगा। अभी तो धन, पद-प्रतिष्ठा, आकांक्षाएं उन्हें पुकारेंगी। अभी तो जीवन का विष उन्हें विषाक्त करेगा। अभी तो वे भटकेंगे, गिरेंगे, भूलेंगे। अभी तो बहुत अंधेरे पथों पर उन्हें जाना होगा। जीवन की प्रौढ़ता उन अंधेरे पथों पर जाने से ही संभव होती है। अभी तो उन्हें पकना है, लेकिन फिर जब एक बार जीवन के दुःख, जीवन की पीड़ाएं और जीवन के तथाकथित सुखों को समझने, भोगने के अनुभव के बाद वे वापस लौटेंगे, फिर छोटे बच्चों की भांति वे हो जाएंगे, फिर सरल, फिर निर्दोष--तब संतत्व का आविर्भाव होगा। बच्चा है संसार के पूर्व; संत हैं संसार के बाद। दोनों में एक समानता है कि दोनों के चित्त में संसार नहीं है। और दोनों में बड़ा भेद भी है। एक अभी भटका नहीं है; एक भटक चुक, जाग चुका।
ऐसा ही प्रेम है भक्त का। वह भी पागलपन है। एक पागलपन है पागलखाने में बंद आदमी का, वह बुद्धि से नीचे उतर गया है। उसकी बुद्धि अस्त-व्यस्त हो गयी है। उसके तार उलझ गए हैं। और एक पागलपन है भक्त का, प्रेमी का; वह बुद्धि के पार चला गया। बुद्धि से उसका तादात्म्य छूट गया। बुद्धि से उसका संबंध विच्छिन्न हो गया है। वह बुद्धि का साक्षी हो गया है।
मैं तेरी बात समझा। और तूने सिर्फ प्रश्न ही पूछा होता तो मैं उत्तर न देता। तू जब दो-चार दिन पहले मेरे पास आई तब मैंने देखा भी, बौरा गई है! तेरी आंखों में, तेरे चेहरे पर, तेरे उठने-बैठने में वह अपूर्व दशा फल रही है, जिसको भक्ति कहा है। घबड़ाएगी भी तू। तेरे जैसे और भी बहुत मित्र हैं यहां। यह तो दीवानों की बस्ती है। यहां तो पागलों का जमघट है। पियक्कड़ों से ही मेरा संबंध बन पाता है। वे जो पागल होने की क्षमता रखते हैं, वे ही केवल प्रेमी हो पाते हैं।
तू यहां अकेली भी नहीं है; तेरे ही नगर से चमनभारती हैं। उनने भी पूछा
है कि मैं क्या करूं? जब से आपके प्रेम में पड़ा हूं, आंखें लाल-लाल रहने लगी हैं, चेहरे पर शराबी जैसा भाव है। पत्नी शक करती है। परिवार के लोग समझते हैं कि मैं पीने लगा हूं। गांव में भी अफवाह है। मैं किसको समझाऊं, कैसे समझाऊं?
समझाने से कुछ होगा भी नहीं। और वे ठीक ही कहते हैं, पीने तुम लगे हो!
और तुमने कोई छोटी-मोटी शराब नहीं पी है कि रात पी और सुबह उतर गई। तुमने कुछ ऐसी शराब नहीं पी है कि मोरारजी बंद करना चाहें तो कर पाएं। तुमने ऐसी पी है, जो चढ़ती है तो बस चढ़ती ही चली जाती है।

कुसुम, तू चमन से पूछ लेना। नीलम से पूछ लेना। तेरे ही गांव के लोगों
के नाम ले रहा हूं। वह भी खूब पी है और मदमाती हो रही है। शुभ लक्षण हैं।
सिर्फ थोड़े-से सौभाग्यशालियों को ऐसी घड़ियां आती हैं।
मन जाए, अमन आए--इससे बड़ी और संपदा क्या है?
मन नहीं बस में।
आज बही फगुनौटी; मन नाहीं बस में।
पाग रंगीली, मूंछ कंटीलीः
पीपल पुरखा धुत्त, गा रहा पीरी होरी;
कमर दोहरी, पवन डोकरीः
फर्राटे से बके जा रही टेसुई गारी;
जुड़ी टोलियां, बजी डफलियां; नशा दिशा दस में। आज बही फगुनौटी; मन नाहीं बस में।
आंख अंगूरी, चाह सिंदूरी
सुरुज छेड़ता भर पिचकारी: देह मखमली
लजवंती की सिहरी, झमकी;
ठुमुक रही अंधरों पर स्मिति की तोतई तितली; मोरपंखिया सुधियां छूतीं गाल, डुबोती रस में। आज बही फगुनौटी; मन नाहीं बस में।
महुआ टपका; माटी बहकी
पी के रंग में रंगी कोइलिया स्वर-स्वर महकी।
पेड़ आम का--कैसा सनकीः
गंध-गीत के समारोह में भरता सुरमई सिसकी।
(प्यास रेत-सी, आस बूंद-सी; झूठी कसबिन कसमें? )
आज बही फगुनौटी; मन नाहीं बस में।
इसी फगुनौटी को बहाने की चेष्टा कर रहा हूं। यह जो तुम्हें रंग दिया है, गैरिक, यह बसंत का रंग है। यह प्रेम का रंग है। यह फूलों का रंग है। यह सुबह के ऊगते सूरज का रंग है। यह जलती हुई अग्नि का रंग है। यह क्रांति का रंग भी है, यह उन्माद का रंग भी है।
आज बही फगुनौटी; मन नाहीं बस में।
डूबो इस बसंत! में डरना मत, भय लगेगा। भय भी स्वाभाविक है, क्योंकि कल
तक का जीवन, कल तक की व्यवस्था, कल तक का सब हिसाब-किताब टूटने लगेगा; खंड-खंड होने लगेगा। एक तरह से जिए थे अब तक, अब उस तरह से न जी सकोगे। अब एक उतरी किरन जो तुम्हें रूपांतरित करेगी। और रूपांतरण ऐसे ही है जैसे कोई सोने को आग में डाले। जल जाता है कचरा, पर पीड़ा भी तो होती है। निखरता है सोना, कुंदन होकर निकलता है; पर आग से गुजरकर ही निकलता है।
यह पागलपन पीड़ा भी देगा, बदनामी भी देगा। नहीं तो मीरां ऐसे ही थोड़े कहती है कि--सब लोक-लाज छोड़ी। मीरां के घर के लोगों ने कुसुम, जहर का प्याला भेजा था। तू सोचती है दुष्ट लोग थे। गलत सोचना है वैसा। दुष्ट लोग नहीं थे। लेकिन मीरां की बदनामी परिवार पर भी काली छाया डालने लगी थी। मीरां नाचने लगी गांव-गांव, सड़कों-सड़कों पर। अंगों का, वस्त्रों का कोई ध्यान न रहा। और थोड़ा ख्याल करो सदियों पीछे मेवाड़ का, जहां घूंघट से स्त्रियां कभी बाहर निकली न थीं। फिर मीरां कोई साधारण घर की स्त्री न थी, राजघर की थी, राजरानी थी। पैर कभी धूल में न पड़े थे, डोलियों से कभी नीचे न उतरी थी। पहरेदारों के बिना कभी एक कदम न चली थी। और नाचने लगी! राहों में, बाजारों में! गाने लगी गीत परमात्मा के। आंख से बहने लगे आंसू। आंचल सरक जाए, वस्त्र गिर जाएं... घर तक बदनामी में डूबने लगा। बड़ा परिवार था, कुलीन परिवार था, भले लोग थे, बुरे लोग नहीं थे। जहर कुछ पुष्टता के कारण न भेजा था, आत्मरक्षा के लिए भेजा था। परिवार की, कुल की प्रतिष्ठा बचानी थी। मगर पागलों पर जहर का परिणाम कहां! मस्तों पर जहर का परिणाम कहां! जो परमात्मा का अमृत पीते हैं उन पर किसी जहर का कोई परिणाम नहीं है।
तो कुसुम, कठिनाइयां तो आएंगी। तू जब मिलने आयी और अचानक गिर पड़ी मेरे चरणों में, तभी मुझे लगा था कि अड़चन आएगी। तू होश में न थी, तू डगमगा गई है।
अब संभलना होगा।

प्रेम के दो कदम हैं एक कदम है, जब आदमी डगमगा जाता है। जरूरी कदम है। फिर एक और कदम है जब आदमी पुनः संभल जाता है। मीरां का एक रूप है, यह पहला रूप है; फिर बुद्ध का दूसरा रूप है, वह और भी आगे की बात है। जब मस्ती इतनी हो जाती है, इतनी सूक्ष्म, इतनी गहन, इतनी भीतर कि बाहर किसी को उसका पता भी नहीं चलता। पहले-पहले मस्ती आती है तो स्वाभाविक है। नया-नया आदमी शराब पीना सीखता है तो बहुत डगमगाता है असली पियक्कड़ों से पूछो, कितना ही पी जाएं किसी को पता ही नहीं चलता कि पिए हैं। पचाने की क्षमता भी धीरे-धीरे बढ़ती है। अब पचाओ। डोलो, लेकिन ध्यान रहे कि अंतिम स्थिति में डोलना भी विदा हो जाना चाहिए। डगमगाओ, लेकिन ध्यान रहे, परम अवस्था में डगमगाना भी समाप्त हो जाना चाहिए। जब डगमगानेवाला इतना डूब जाता है नशे में कि बचता ही नहीं, डगमगानेवाला ही नहीं बचता तो कौन डगमगाए?
तो प्रेम की या प्रेम के पागलपन की दो अवस्थाएं हैं। पहली अवस्था में
तो बड़ी दीवानगी होती है।... आज बही फगुनौटी; मन नाहीं बस में! सब अवश हो जाता है। फिर धीरे-धीरे इस पागलपन को पचाना है। फिर धीरे-धीरे इस बेहोशी में भी होश का दीया जलाना है। फिर इस मस्ती में भी मौन को साधना है। तब मीरां बुद्ध बनती है। और जब तक मीरां बुद्ध बन जाए तब तक मस्ती कितनी ही हो, कुछ कमी रह गयी, कुछ कमी रह गयी, थोड़ी कमी रह गयी। अकंप समाधि अंतिम लक्ष्य है।
पर जो हो रहा है, शुभ है। इसी प्रेम से मनुष्य के जीवन में आत्मा का जन्म होता है। प्रेम के बिना जो जी रहे हैं वे बिना आत्मा के जी रहे हैं। जो डोले ही नहीं जिन्हें जीवन के बसंत ने छुआ ही नहीं, जिनके जीवन में न कोई फूल खिला न कोई गंध बही, न कोई राग उठा, जिनके जीवन में कोई उत्सव का अनुभव ही नहीं है--उनके भीतर आत्मा क्या? वे खाली, चली हुई कारतूस जैसे हैं, उनके भीतर बारूद नहीं। वे थोथे हैं।
मैंने सुना, एक रूसी कहानी है। बर्फ के पुतले को बना चुकने के बाद एक बच्चे ने उसके मुंह में लकड़ी की एक पाइप थमा दी। दूसरे ने अपनी गर्दन के गमछे को उसकी गरदन में लपेट दिया। तीसरे बच्चे ने नारियल के सूखे पत्तों की टोपी उसके सिर पर रख दी। जब तक बच्चे पास रहे, बर्फ के पुतले को ठंढ का आभास न हुआ।
कहानी रूसी है, हिंदुस्तानी होती तो हमने बर्फ के पुतले को चूड़ीदार पाजामा पहना दिया होता, अचकन पहना दी होती, गांधी टोपी लगा दी होती। कहते कि अब आप प्रधानमंत्री हुए, विदेश-यात्रा कर आओ। क्योंकि जिनके पास भी चूड़ीदार पाजामा है, याद रखें उनको प्रधानमंत्री होना ही पड़ेगा। नहीं तो चूड़ीदार पाजामा छोड़ दो। चूड़ीदार पाजामा है तो कर क्या रहे हो? विदेश-यात्रा करो!
कहानी रूसी है। एक बच्चे ने पाइप मुंह में लगा दिया। एक ने गमछा ओढ़ा दिया। एक ने सिर पर टोपी रख दी। बर्फ का पुतला अकड़ गया होगा! और बच्चे पास खेलते रहे, बच्चों की गरमी, उसे बड़ा सुखद अनुभव हुआ। रात होने लगी, बच्चों को घर लौटना था। उस ठंड में सिसियाते से वे अपने-अपने घर को लौट गए। बच्चों के चले जाने के बाद बच्चों के हाथ से बने हुए बर्फ के बूढ़े को ठंड महसूस हुई। उसके अपने चारों ओर बर्फ ही बर्फ थी। दूर कहीं शहर की टिमटिमाती रोशनी जरूर दिखाई पड़ रही थी। बर्फ का बूढ़ा शहर की गरमी की चाह को अपने भीतर पाने के लिए शहर की ओर बढ़ा। किसी तरह वह शहर के बीच पहुंच ही गया। बिजली की बत्ती के खंभे के नीचे वह जा खड़ा हुआ। उसकी ठंडक जाती रही। उसने गरमी का आभास पाया। उस खुशी में, उस क्षणिक उल्लास में, उसे अपने पिघलने का एहसास भी न हुआ।
रात ढल गई, सुबह हुई। बच्चे फिर घरों से निकल कर गलियों में आ गए। बीच शहर में बिजली की बत्ती के खंभे के नीचे बच्चों को तीन ही चीजें मिलीं--एक पाइप, एक गमछा और एक टोपी।
बिना प्रेम का आदमी ऐसा ही है--चूड़ीदार पाजामा, अचकन, गांधी टोपी; भीतर कुछ भी नहीं! एक दिन इनको संभाल कर रख लेना।
प्रेम मनुष्य के भीतर अवतरण है--चैतन्य का। प्रेम मनुष्य के भीतर संगठन है ऊर्जा का। प्रेम मनुष्य के भीतर केंद्र का आविर्भाव है। बिना

प्रेम के आदमी बिना केंद्र का है। परिधि है, लेकिन केंद्र नहीं। बिना प्रेम के आदमी एक भीड़ है, आत्मा नहीं। बहुत स्वर हैं उसके भीतर। बहुत शोरगुल है, लेकिन कोई छंद नहीं, कोई लयबद्धता नहीं।
प्रेम जीवन में लयबद्धता लाता है। साधारण प्रेम भी जीवन में लयबद्धता लाता है तो असाधारण प्रेम, परमात्मा-प्रेम की तो बात ही क्या करनी! देखते हो, जब तुम्हारे जीवन में किसी से प्रेम का थोड़ा नाता बन जाता है--किसी स्त्री से, किसी पुरुष से, किसी मित्र से--तुम्हारे जीवन में एक नई रौनक आ जाती है, आंखों में चमक आ जाती है, पैरों में गति आ जाती है; जीवन में छंद आ जाता है, पुलक आ जाती है, उत्फुल्लता आ जाती है, तुम खिले-खिले लगते हो। तुम्हारा मुरझानापन गया। तुम्हारी कली खिलने लगी; जैसे सूरज उगा, सुबह हुई और कली ने अपनी पंखुड़ियां खोलीं! इसके पहले तक तुम जमीन में घिसटते-से चलते थे; अब तुम आकाश में उड़ते-से मालूम होते हो, तुम्हारे पंख लग गए! अब तुम हल्के हुए, निर्भार हुए।
साधारण प्रेम भी जीवन को कैसा निर्भार कर जाता है, हल्का कर जाता है, पंख लगा जाता है! आदमी आकाश में उड़ने की क्षमता पा जाता है। साधारण प्रेम भी जीवन को प्रसाद दे जाता है, अर्थ दे जाता है, एक गीत दे जाता है। जीवन तब खाली-खाली नहीं मालूम होता। जीवन तब एक दुर्घटना ही नहीं मालूम होता। जैसे पश्चिम के बहुत से विचारक, ज्यांपाल सार्त्र, कामू, मार्शल जैसे लोग कहते हैं--कि जीवन सिर्फ एक दुर्घटना है।
सार्त्र का प्रसिद्ध वचन है कि मनुष्य एक व्यर्थ वासना है। सार्त्र
ने किसी ऐसे ही मनुष्य की परीक्षा की होगी, जिसके भीतर कुछ भी नहीं था--बस चूड़ीदार पाजामा, अचकन, गांधी टोपी! असली आदमी से सार्त्र का मिलना नहीं हुआ है। सार्त्र दया का पात्र है। असली आदमी से तो मिलना हुआ ही नहीं; अपने भीतर भी अभी आदमी को पहचानने की कला नहीं आई है। अपने भीतर भी स्वयं से पहचान नहीं हुई है। बुद्ध जैसे व्यक्ति को मिलता, या कबीर जैसे, या सुंदरदास को, तो पता चलता कि एक और तरह का आदमी भी होता है।
तुम जाओ एक दुकान पर, जहां वीणाएं बिकती हों और वीणाओं की कतारें लगी हों। बहुत वीणाएं तुम्हें दिखाई पड़ेंगी, लेकिन जब तक कोई संगीतज्ञ, कोई स्वरकार, कोई बीनकार, वीणा के तारों को न छू दे, सोए संगीत को जगा न दे, जगमगा न दे--तब तक वीणा मुर्दा है, तब तक उसमें आत्मा नहीं है। तब तक वीणा में वीणा जैसा क्या है? हां, कुछ तार हैं, मगर तारों से क्या होगा? तार से तो सितार नहीं बनता। तार तो केवल ऊपर का आयोजन है। सितार का जन्म तो तब होता है जब कोई रविशंकर उसे छू देता है।
जब प्रेम की अंगुलियां तुम्हारे हृदय के तार को छेड़ देती है, तब तुम्हारे भीतर संगीत उठता है, अर्थ उठता है। तब मनुष्य एक व्यर्थ वासना नहीं है। तब मनुष्य परमात्मा है। तब मनुष्य इस जगत की सबसे बड़ी अभीप्सा है। तब मनुष्य इस सारे जगत के विस्तार का शिखर है, विकास की चरम कोटि है, चरम छलांग है, ऊंचे से ऊंचा गौरीशंकर है!
प्रेम ही व्यक्ति को आत्मा देता है। साधारण प्रेम भी! लेकिन साधारण प्रेम से ही तो हम असाधारण प्रेम का पाठ सीखते हैं। इसलिए ख्याल रखना, मैं साधारण प्रेम के विरोध में नहीं हूं, जैसे तुम्हारे तथाकथित साधु-संत हैं। क्योंकि जो साधारण प्रेम के विरोध में है उसने असाधारण तक पहुंचने का मार्ग ही तोड़ दिया! जो साधारण के विरोध में है उसके पास सेतु कहां? नाव कहां? वह कैसे असाधारण तक जाएगा?
तुमने अपनी पत्नी को चाहा है, परमात्मा से तुम्हारी कोई पहचान नहीं है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, अगर तुमने अपनी पत्नी को चाहा है तो तुम्हारी चाहत में कभी-कभी ऐसे क्षण रहे हैं जब पत्नी परमात्मा हो गयी है? अगर तुमने अपने पति को चाहा है तो ऐसी घड़ियां आई हैं प्रेम की, चाहे क्षणभर को ही आई हों--जैसे बिजली कौंध जाए आकाश में, एक क्षण को अंधेरा कटे और सब रोशन हो जाए, क्षणभर बाद फिर अंधेरा हो जाता है--लेकिन अगर तुमने अपने पति को चाहा है, अपने बेटे को चाहा है, अपने भाई को, अपने मित्र को चाहा है, किसी को भी चाहा है, तो चाहत में भी कभी-कभी परमात्मा की झलक उतर आती है। वही तो सेतु है। उसी से तो पहचान बनेगी। उसीसे तो पहली खबर मिलेगी।

परमात्मा की पहली खबर शास्त्रों से नहीं मिलती, प्रेम से मिलती है। प्रार्थना की पहली खबर मंदिरों में बजती हुई घंटियों से नहीं मिलती और न मस्जिदों में की गई अजानों से मिलती है। प्रार्थना की पहली खबर प्रेम से भरी आंखों से मिलती है।
मैं तुमसे कहता हूं: तुम्हारे तथाकथित पंडितों के मुकाबले एक मजनू परमात्मा के ज्यादा करीब है! एक फरहाद तुम्हारे काशी में बैठे हुए पंडितों से, महापंडितों से परमात्मा के ज्यादा करीब है। अभी दृश्य से प्रेम हुआ है, हुआ तो! दृश्य से हो गया; जैसे-जैसे गहरा होने लगेगा प्रेम, वैसे-वैसे ही दृश्य में अदृश्य प्रकट होने लगता है। अभी रूप से हुआ, हुआ तो! रूप भी तो उसी के हैं! वह अरूप तो रूपों में भी छिपा है।
गुरु से जब प्रेम हो जाता है, तो वह निकटतम है अरूप के। गुरु से छलांग
लग जाती है फिर अरूप में।
कुसुम, तू सौभाग्यशाली है। भयभीत न होना। तेरा प्रश्न प्यारा है: "मैं बिरहन बौराई, पियरवा रूप जो तेरो निरखो!" लेकिन अभी और अरूप के रूप को भी निरखना है। अभी यात्रा बहुत है, शेष है। अभी यात्रा का प्रारंभ हुआ। लेकिन प्रारंभ हुआ तो आधी यात्रा हो ही गई।
सारे बुद्धिमानों ने यह कहा है कि पहला कदम ही यात्रा का सबसे कठिन कदम होता है। क्यों कठिन होता है? क्योंकि हमारा अतीत उसके विपरीत होता है। हमारा तो पूरा अतीत पीछे खींचता है। एक कदम उठ गया, यात्रा आधी पूरी हो गई। क्यों आधी पूरी हो गई? क्योंकि फिर एक ही एक कदम तो उठाना है। एक उठा लिया, दो कदम तो कोई भी एक साथ उठाता नहीं। तो गणित तो आ गया। एक कदम उठाया है; अब दूसरा उठा लेंगे, वह भी एक होगा; फिर तीसरा उठा लेंगे, वह भी एक होगा। और एक-एक कदम चलकर आदमी हजारों मील की यात्रा कर लेता है। पहला कदम उठ गया है। आधी यात्रा हो गयी है, आधी शेष है। आधी यात्रा में प्रेमी डगमगाता हुआ चलता है--बेहोश, मदहोश, आंखें लाल हो जाती हैं। फिर शेष आधी यात्रा में सब ठहरने लगता है, शांत होने लगता है। जो उन्माद आया था, पच जाता है। फिर प्रगाढ़ मौन... फिर समाधि!

दूसरा प्रश्नः भगवान!
न गुरु की खोज थी
न परमात्मा की प्यास थी
न जन्मों-जन्मों का बोध!
कौन-सी पुकार आपके पास ले आयी! तेरा मिलना,
तेरा आना
तेरा बैठना
तेरा जाना
आपकी बात आप जानें लेकिन अब --
गुरु बिन आवत नाहीं चैन।
गुरु मिलो आनंद भयो।
हमारे लिए तो आप ही सर्वस्व,
आप ही परमात्मा!
गुरुर ब्रह्मा, गुरुर विष्णु, गुरुर देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात परब्रह्म, तस्मै श्रीगुरुवे नमः।।
गुरु-समर्पण के इस महोत्सव पर इस शास्त्रोक्त कथन को समझाने की कृपा करें!

चित्तरंजन! यह शास्त्रोक्त कथन ही नहीं है, यह अनंत-अनंत प्रेमियों
का अनुभव है, सार है। यह किताब में लिखी हुई बात ही नहीं है, यह करोड़ों हृदयों में लिखी हुई बात है। शास्त्र तो मुर्दा होते हैं। मैं शास्त्र की व्याख्या करने में रस नहीं लेता। मेरा रस तो जीवंत शास्त्र से है--जो आदमी के हृदयों में लिखे गए हैं, जो आदमी के हृदय में खोदे गए हैं।

और यह वचन आदमी के अनुभव में बड़ा प्रगाढ़ है। इसका अर्थ तुम समझो। इस देश में हमने ईश्वर के तीन रूप माने हैं--त्रिमूर्ति। उसके तीन चेहरे हैं। आत्मा तो एक, लेकिन उस तरफ जाने वाली दिशाएं तीन हैं। विज्ञान ने तो तीन आयाम, थ्री डॉयमेंशन की कल्पना अभी-अभी दी है; लेकिन इस देश में बहुत-बहुत प्राचीन समय से, जीवन के तीन आयाम हैं, इस बात को पकड़ लिया है। इसलिए तीन का बड़ा मूल्य इस देश में रहा है। तीन का आंकड़ा ही मूल्यवान हो गया! हमने त्रिमूर्ति बनाई; वह हमारा पुराना ढंग है कहने का कि अस्तित्व थ्री- डाइमेंशनल है, तीन-आयामी है। अस्तित्व तो एक है, मगर उसके चेहरे तीन हैं। और वे तीन चेहरे भी बड़े सार्थक हैं। एक चेहरा है ब्रह्मा का। ब्रह्मा
का अर्थ होता है--स्रष्टा, निर्माता। दूसरा चेहरा है विष्णु का। विष्णु का अर्थ होता है-- संभालनेवाला, सुरक्षा करनेवाला, प्रबंधक, संयोजक, संभालनेवाला। और तीसरा चेहरा है महेश का, शिव का। शिव का अर्थ होता है-- संहार करने वाला, मिटानेवाला, विनाश करनेवाला।
विज्ञान की नवीनतम खोजें पदार्थ के आखिरी विश्लेषण में भी इन्हीं तीन
को पायी हैं। उनके नाम अलग हैं, क्योंकि विज्ञान अपने नाम देगा--न्यूटरॅन, इलेक्टरॅन, पॉजिटरॅन कहेगा। लेकिन उनके गुण-लक्षण यही हैं। उनमें एक विध्वंसक है, एक सर्जक है, एक केवल संभालता है।
सदियों से हमने कहा है कि जीवन का मूल स्तंभ प्रकाश है। जगत प्रकाश से बना है। बाइबिल कहती हैः ईश्वर ने कहा: प्रकाश हो! पहला वचन है। फिर सब हुआ। फिर प्रकाश से शेष सब हुआ। और सदियों-सदियों में जिन्होंने समाधि की दशा पायी है उन्होंने पाया है कि अंत में फिर प्रकाश ही रह जाता है, सिर्फ प्रकाश! कबीर कहते हैंः जैसे हजार-हजार सूरज एक साथ उग आएं! कैसे उस प्रकाश का वर्णन करें?
परमात्मा का पहला वचनः "प्रकाश हो।" और जगत हुआ। और सारे संतों का अंतिम वचन कि प्रकाश ही शेष रह जाता है। और अब विज्ञान कहता है कि जगत बना है प्रकाश की ऊर्जा से, इलेक्टिसिटी से, विद्युत से। सब कुछ प्रकाश है। तुम जब भोजन भी करते हो तो तुम क्या कर रहे हो? तुम्हें शायद पता न हो
कि तुम्हारा भोजन केवल संग्रहीत प्रकाश है। वृक्षों के फलों में, सब्जियों में सूरज की किरणें संग्रहीत हो रही हैं। अगर तुम मांसाहारी हो तो वह भी प्रकाश है। पशु पक्षी घास चर रहे हैं, घास में सूरज की किरणें संग्रहीत हैं, पशु-पक्षी उनको पचाकर अपने भीतर मांस निर्मित कर रहे हैं। एक वैज्ञानिक ने जापान में एक अनूठा प्रयोग किया। उसने एक प्रयोग किया, सामान्यतया हम सोचते हैं कि जब एक पौधा बड़ा होता है तो उस पौधे में जमीन का बहुत-सा हिस्सा प्रवेश कर जाता होगा। इस वैज्ञानिक का निष्कर्ष बिल्कुल अनूठा है। इसने एक पौधे को लगाया, बीज से, और पूरे समय तौल करता रहा कि मिट्टी कितनी कम होती है। पौधा बड़ा होने लगा और मिट्टी कम होती नहीं। पौधा बहुत बड़ा हो गया, उसके पत्ते हो गए, फूल आ गए, फल लग गए, लेकिन मिट्टी उतनी ही उतनी है गमले में। मिट्टी में कुछ कमी हुई नहीं। इसका अर्थ हुआ कि पौधे का सारा-का-सारा अस्तित्व सूरज की रोशनी से आ रहा है।
जब तुम भोजन कर रहे हो तो तुम सूरज की रोशनी ही पचा रहे हो।
हम बने प्रकाश से हैं। और इसलिए यह आश्चर्यजनक नहीं है कि जब समाधिस्थ व्यक्ति, कोई बुद्ध अपनी परमशांति के क्षण में, निर्विचार क्षण में, जहां चित्त विलीन हो जाता है, वासनाएं क्षीण हो जाती हैं, जहां सब विदा हो जाता है, कुछ भी शेष नहीं रह जाता, जहां केवल शून्य रह जाता है-- सिर्फ प्रकाश को पाता है।
प्रकाश के तीन अंग हैं। एक उसमें विध्वंसक है, एक उसमें निर्माता है,
एक उसमें संभालनेवाला है। ये ही तीन नाम हैंः ब्रह्मा, विष्णु, महेश। गुरु को हमने क्यों ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तीनों कहा है? इसलिए कि गुरु बहुत कुछ बनाता है शिष्य में, बहुत कुछ मिटाता है। गुरु शिष्य को मारता भी है, संभालता भी है, जिलाता भी! मारता है उस सब को जो अहंकार है। संभालता है उस सब को, जिसमें परमात्मा का अवतरण होगा। बचाता है उस सब को जिसमें परमात्मा ग्रहण किया जा सकेगा। और जन्माता है तुम्हारी आत्मा को।

गुरु एक अनूठी प्रक्रिया है, एक प्रयोगशाला है। गुरु के पास होने का अर्थ है मरना, जैसे कि तुम हो वैसे तो मरना।
जीसस ने कहा है निकोदेमस से कि जब तक तू मर न जाए, तब तक मेरा पुनर्जन्म न हो, तब तक कुछ भी न हो सकेगा। निकोदेमस ने पूछा था कि मैं परमात्मा को कैसे पाऊं? और निकोदेमस भला आदमी था, सज्जन था, सच्चरित्र था। जिसको हम साधारणतः साधुपुरुष कहते हैं, ऐसा आदमी था। न चोरी की कभी, न बेईमानी की कभी, न झूठ बोला कभी, न वचन भंग किया कभी। सब तरह से चरित्रवान था। और यहूदियों के शास्त्रों में जो भी नियम हैं, दसों आज्ञाओं को मानकर जीता था। स्वभावतः, उसने कहा कि अब मुझमें कमी और क्या है? सब नियम पालन करता हूं। आप मुझे बता दें, कोई नियम कम हो तो मैं उसको और पूरी तरह पालन करूं। मुझमें कमी क्या है? परमात्मा मुझमें अवतरित क्यों नहीं होता है? सब तरह शील को साधा है, चरित्र को निर्मित किया है, आचरण को जमाया है, जीवनभर कुरबानी दी है, शुभ के लिए मरा हूं। सब कुछ मूल्य चुकाया है। अब परमात्मा अवतरित क्यों नहीं हो रहा है? मैं खाली का खाली क्यों हूं? क्या मैं ऐसे ही मर जाऊंगा?
उसकी आंख में आंसू थे! जीसस ने कहाः जब तक मेरा पुनर्जन्म न हो... । उसने पूछा: पुनर्जन्म का अर्थ क्या है? क्या इस जन्म में परमात्मा नहीं मिलेगा, अगले जन्म में मिलेगा?
जीसस ने कहा: नहीं; जब तक इसी जन्म में पुनर्जन्म न हो... । जीसस यह कह रहे हैं: जब तक तू एक गुरु में जाए और मरे नहीं... ।
इस देश में तो हमने गुरु की परिभाषा की है: "आचार्योः मृत्य।" गुरु वही है, जिसमें शिष्य की मृत्यु घटित हो जाए।
जीसस ने यह कहा कि निकोदेमस! तू सब अच्छा कर रहा है, लेकिन यह सब अच्छा तेरे अहंकार के आसपास ही इकट्ठा हो रहा है। तेरा मूल रोग मौजूद है। और उसी मूल रोग के आस-पास यह सब तेरा चरित्र, तेरा आचरण, तेरे पुण्य आभूषण बनकर लटक गए हैं। यह तेरा अहंकार ही तृप्त हो रहा है--"मैं ऐसा, मैं वैसा!" पहले यह अहंकार मिटना चाहिए, तब इस चरित्र का कुछ अर्थ है। निर-अहंकारी के ही चरित्र का कुछ अर्थ है। निअर्हंकारी के ही पुण्य में सुगंध होती है। अहंकारी के पुण्य में दुर्गंध होती है। तू पहले मर। तू किसी गुरु को तलाश, किसी गुरु के चरणों में अपने सिर को गिर जाने दे।
कबीर कहते हैं: जो घर बारै आपना, चलै हमारे संग। जो जलाने को तैयार हो
सब अपना घर, जो अपने को बिल्कुल भस्मीभूत करने को तैयार है, वह चले हमारे साथ।
इसलिए पहला रूप तो गुरु का संहारक का है। दूसरा रूप सम्हालने वाले का है। जैसे कोई माली पौधे को संभालता है--बागोड़ भी लगाता, पानी भी सींचता, खाद भी देता। सूरज की किरणें पहुंच जाएं उस तक, इसका भी आयोजन करता; कहीं आड़ में न हो जाए; किसी बड़े वृक्ष की छाया में न पड़ जाए। ज्यादा पानी न हो जाए, कम पानी न रह जाए। ज्यादा धूप न हो जाए, ज्यादा धूप होती है तो छाता लगा देता है।
कबीर से किसी ने पूछा कि गुरु का काम क्या है? तो कबीर ने कहाः कभी कुम्हार को घड़ा बनाते देखा है? बाहर से थपकी मारता है और भीतर से संभालता है। जब कुम्हार घड़े को बनाता है एक हाथ से चोट करता है और एक हाथ से संभालता है। अब ऐसे तो कहो, पागल ही कहना पड़ेगा कि जब चोट ही मारनी है तो अच्छी तरह मार ही दो, फिर संभालना क्या? और जब संभाल ही रहे हो तो चोट क्यों मार रहे हो? लेकिन घड़ा ऐसे ही निर्मित होता है--एक तरफ से चोट, एक हाथ से संभालना!
तो गुरु चोट भी बहुत करता है। और जितनी चोट करता है उतना ही संभालता है। जिस पर जितनी चोट करता है उसको उतना ही सम्हालता है। असल में जो चोट खाने का हकदार हो गया, वह सम्हाले जाने का भी हकदार हो गया। इसलिए गुरु की चोट खाकर लोग धन्यभागी होते हैं। जो नासमझ हैं, वे चूक जाते हैं और भाग जाते हैं। जो समझदार हैं, वे चोट खाकर बिल्कुल रुक जाते हैं, क्योंकि अब कुछ होने के करीब है। गुरु ने ध्यान दिया। गुरु ने रस लिया। गुरु मारने लगा। नपुंसक भाग जाते हैं--छोटी-छोटी बातों से भाग जाते हैं। ऐसी बातों से,

जिनकी तुम कल्पना न कर सकोगे! ऐसी क्षुद्र बातें... ! अध्यात्म को खोजने चले थे, आत्मा को खोजने चले थे और इतनी छोटी बातों से भाग जाते हैं!
कोई मुझसे मिलने आया और उससे मैंने कहा कि आठ दिन रुकना पड़ेगा तब मिल सकोगे, बस वह भाग गया! परमात्मा को खोजने चला था, निर्वाण की संपदा पानी थी! अपमानित हो गया... आठ दिन रुकना पड़ेगा!
एक फिल्म-अभिनेता और फिल्म-निर्देशक कल ही संन्यास वापिस लौटा गए हैं।... क्यों? ... तो पत्र में लिखा है कि अब आपके पास इतनी भीड़ बढ़ गयी है कि अब मैं जब आपसे मिलना चाहूं, नहीं मिल पाता हूं। इतनी भीड़-भाड़ में मैं सम्मिलित नहीं हो सकता।
... विशिष्टता चाहिए!... विशेष व्यवस्था चाहिए! चुनाहुआपन चाहिए! अहंकार ऐसे सूक्ष्म रास्तों से हावी हो जाता है कि पता नहीं चलता। बनते- बनते बात बिगाड़ ली है उन्होंने। घड़ा बनने के ही करीब था, थोड़ी चोटें और... । उन्होंने लिखा पत्र मुझे कि "आपने जो मेरे ऊपर श्रम किया उसके लिए बहुत कृतज्ञ हूं, अनुगृहीत हूं। और आपने मुझे इस योग्य बना दिया है कि अब मैं अपने पैर पर चल सकता हूं।"
घड़ा करीब-करीब बन गया है, मगर उन्हें पता नहीं कि अभी कच्चा है। अभी भट्टी में नहीं पड़ा है। वर्षा का एक झोंका... और मिट्टी मिट्टी में मिल जाएगी! आग में पड़ने का मौका आ रहा था, तब भागने लगे! यह भीड़, गैरिक संन्यासियों की आग ही तो है!
बहुत लोग आते हैं, जाते हैं। और ऐसी छोटी-छोटी बातों से चले जाते हैं
कि बड़ी आश्चर्य की बात होती है। कुछ मित्र मुझे पत्र लिखते हैं आकर कि हम पहली ही पंक्ति में बैठना चाहते हैं सुनते वक्त, हम पीछे नहीं बैठ सकते। उनका कारण है। कोई सुप्रीम कोर्ट का जज है, वह कैसे पीछे बैठ सकता है! अब यहां सुप्रीम कोर्ट का जज से क्या लेना? यहां तो और बुरी पिटाई हो जाएगी। यहां तो सुप्रीम कोर्ट के चपरासी होते, चल जाता, कम पिटते। यहां कोई राजनीति तो नहीं चल रही है।
कोई भूतपूर्व मंत्री आ जाते हैं, इस मुल्क में इतने भूतपूर्व मंत्री हैं कि भूत कम हो गए हैं? कुछ दिनों में तुम पाओगे साठ करोड़ भूतपूर्व मंत्री! हर एक को मंत्री होना है, हर एक को मंत्री होने से उतरना है। कोई भूतपूर्व मंत्री आ जाते हैं, वे कहते हैं कि मुझे आगे ही बैठने का है। आखिर आगे हमें क्यों नहीं बैठने दिया जाता?
जीसस ने कहा हैः जो पीछे हैं, वे मेरे प्रभु के राज्य में आगे हो जाएंगे।
पीछे बैठने की विनम्रता तुम्हें मेरे ज्यादा करीब ले आएगी। फिर आगे
जो बैठ रहे हैं वे कितनी चोटें खाकर बैठ रहे हैं, इसका तुम्हें पता नहीं है। उनकी कितनी पिटाई हुई है, इसका तुम्हें पता नहीं है। उतनी पिटने की तुम्हारी तैयारी नहीं है।
क्षुद्र बातें भगा ले जाती हैं। मगर गुरु तुम्हें सांत्वना देने के लिए नहीं है, तुम्हें संक्रांति देने को है। तुम्हें बदलना है, तो तुम्हारे साथ कठोर भी होना पड़ेगा। लोहार की तरह हथौड़ा पटकेगा तुम्हारे सिर पर, तोड़ेगा तुम्हें, क्योंकि तुम गलत हो। तुम्हारे अंग-अंग तोड़ने हैं, फिर से जोड़ने हैं।
इसलिए गुरु विनाशक भी है, सम्हालने वाला भी है, क्योंकि तब तक तुम्हें संभाले रखेगा। इधर से तोड़ देगा और संभाले रखेगा, क्योंकि टूटने में और परमात्मा के आने के बीच में अंतराल होगा। और उस वक्त किसी के हाथ के सहारे की जरूरत होगी! पुरानी रोशनी बुझ जाएगी और नयी रोशनी आएगी नहीं, उसके बीच गहरा अंधेरा हो जाएगा। उस अंधेरे में उसकी ही रोशनी तुम्हें संभाले रखेगी। उसका ही प्रेम तुम्हें रोके रखेगा। उसका ही हाथ अंधेरे में तुम्हारा सहारा होगा। और फिर, तुम्हारे भीतर निर्मित करता है वह जो निर्मित होना चाहिए। जो तुम्हारी नियति है।
इसी अर्थों में गुरु को ब्रह्मा कहा है, विष्णु कहा है, महेश्वर कहा है, गुरु को साक्षात परमब्रह्म कहा है।

परमात्मा तो कहां है, पता नहीं। परमात्मा को देखने के लिए तो और ही आंख चाहिए। वह आंख तुम्हारे पास नहीं। दो ही उपाय हैं। या तो आस्तिक का उपाय है साधारणतः कि मान लो कि होगा। जब इतने लोग कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे। मां कहती है, पिता कहते हैं, शिक्षक कहते हैं, पुजारी, पंडित कहते हैं, ठीक ही कहते होंगे। मान लो, विश्वास कर लो। लेकिन जो विश्वास मानकर किया गया है वह झूठ है। और जो यात्रा ही झूठ से शुरू होती है वह सत्य तक नहीं पहुंच सकती।
या दूसरा उपाय है कि इनकार कर दो--कि न मैं जानता हूं, न मैंने देखा है, कैसे मानूं? नास्तिक हो जाओ--"नहीं है" कहने लगो। यह मानना कि ईश्वर है, उतना ही भ्रांत है, जितना यह मानना कि ईश्वर नहीं है। क्योंकि दोनों का ही अनुभव नहीं है। न तो उसके होने का कुछ अनुभव है, न उसके न होने का कुछ अनुभव है। आस्तिक गलत है, नास्तिक गलत है। खोजी, जिज्ञासु, मुमुक्षु न तो आस्तिक होता है न नास्तिक होता है। फिर जिज्ञासु क्या करें? ये दो विकल्प मिलते हैं समाज में। या तो स्वीकार कर लो--हिंदू घर में पैदा हुए हिंदू हो जाओ... मुसलमान हो जाओ, ईसाई हो जाओ, या कम्यूनिस्ट घर में पैदा हुए, चीन में पैदा हुए, रूस में हुए, नास्तिक हो जाओ, अगर झंझट में नहीं पड़ना है, आस्तिक घर में हो तो आस्तिक हो जाओ--अगर झंझट में थोड़ा रस है, थोड़ी बगावती वृत्ति है, तो नास्तिक हो जाओ, मगर दोनों हालत में तुम पहुंचोगे नहीं। क्योंकि दोनों हालत में तुमने मान लिया कुछ जिसका तुम्हें अनुभव नहीं। फिर खोज कैसे शुरु होगी? खोज का एक ही उपाय है किसी ऐसे व्यत्ति के पास जाओ, जिसे अनुभव हो। पंडित के पास जाने से नहीं होगा, अनुभवी के पास जाने से होगा। किसी ऐसे आदमी की आंखों में आंखें डालो, जिसकी "वह" आंख खुल गयी हो। किसी आदमी के हाथ में हाथ दो, जिसका हाथ परमात्मा के हाथ में पहुंच गया हो। किसी आदमी के चरण छुओ, जिसके हाथ परमात्मा के चरण छू रहे हों। ऐसे परोक्ष रूप से तुम जुड़ जाओगे। ऐसे धीरे-धीरे गुरु सेतु बन जाएगा और जो तरंगें परमात्मा से उसके भीतर आ रही हैं, वे धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर भी आंदोलित होने लगेंगी। जो गीत परमात्मा का उसके भीतर गूंज रहा है, अगर तुम गुरु के पास बैठे ही रहे, बैठे ही रहे, बैठे ही रहे, कब तक तुम्हें सुनाई नहीं पड़ेगा? मैं तुमसे कहता हूं: बहरों को भी सुनाई पड़ा है और अंधों को भी दिखाई पड़ा है! लंगड़े भी पहाड़ चढ़ गए हैं! पर धीरज चाहिए।
इसलिए शिष्य के लिए तो परमात्मा नहीं है, गुरु ही परमात्मा है! यह शिष्य की भावदशा है, इसे दूसरे पर मत थोपना। जो मेरा शिष्य है उसे मुझमें साक्षात परब्रह्म दिखाई पड़ सकता है; लेकिन जो मेरा शिष्य नहीं है, उसे दिखाई नहीं पड़ेगा। उसे समझाने की जरूरत भी नहीं है। उस पर थोपने की चेष्टा भी मत करना। उससे विवाद भी मत करना।
मजनू लैला के प्रेम में पड़ गया था। लैला बहुत सुंदर नहीं थी, यह तुम्हें पता है? शायद तुम्हें पता न हो, क्यों मजनू ने इतना शोरगुल मचाया कि लोग यह भूल ही गए हैं कि लैला कोई बहुत सुंदर नहीं थी। मजनू घूमने लगा, चिल्लाने लगा; पुकारने लगा। रात गांव सो जाए और उसकी आवाज सुनाई पड़ती रहेः लैला, लैला... ! गांव का जो राजा था वह भी इस दीवाने को देख कर दुखी होने लगा। उसने एक दिन मजनू को बुलवा ही लिया। और उसने कहाः तू पागल है। मगर तुझ पर मुझे दया आने लगी है। ये तेरे आंसू, यह तेरा रोना, ये तेरा गाना... मैं भी अब निश्चिंत होकर नहीं सो पाता हूं। और तेरा लैला का ऐसा गुणगान सुन कर मैंने भी सोचा कि स्त्री सुंदर होगी। स्त्रियों में मुझे भी रस है। तो मैंने सोचा कि मैं भी तेरी लैला को देख लूं। जब तू इतना दीवाना हो रहा है तो कुछ बात होगी। और जब मैंने लैला को देखा तो मैं हैरान हुआ, मैंने सिर ठोंक लिया! साधारण-सी काली-कलूटी स्त्री है। कुछ खास नहीं है। तू पागल है! तुझ पर मुझे इतना प्रेम और इतनी दया है! तेरी दीवानगी में मुझे इतना भाव पैदा हुआ है कि तू आ मेरे साथ राजमहल।
राजमहल में तो सुंदर स्त्रियों की भीड़ थी! उसने एक दर्जन स्त्रियां खड़ी करवा दीं। उसने कहा: मजनू, तू चुन ले। इनमें से तेरी कोई लैला से पीछे तो होने का सवाल ही नहीं है; लैला तेरी इनमें से किसी के पैर छूने के योग्य भी नहीं है। तू.जरा गौर से देख!

सुंदरतम स्त्रियां थीं महल की, छांटकर राजा ने खड़ी करवा दी थीं। मजनू
ने देखा। एक को देखा, सिर हिलाया। दूसरी को देखा, सिर हिलाया। तीसरी को देखा, कहा कि नहीं। सम्राट बोला: तू बात क्या कर रहा है यह मेरे पूरे साम्राज्य में इनसे सुंदर स्त्रियां नहीं हैं। उसने कहा: स्त्रियों से मुझे लेना-देना नहीं है इनमें लैला कोई भी नहीं है। मैं जो सिर हिला रहा हूं, वह इसलिए सिर हिला रहा हूं कि इनमें से लैला कोई भी नहीं है।
जाने लगा उदास, सम्राट ने कहा कि मैं समझ नहीं पाया। मजनू ने कहा: आप समझ नहीं पाएंगे। लैला को देखना हो तो मजनू की आंख चाहिए।
गुरु को देखना हो तो शिष्य की आंख चाहिए। तुम हर किसी को समझाने बैठ
मत जाना। यह तो दीवानी बात है! वह मजनू तो कहता गया--नहीं, नहीं, नहीं! मैंने एक और कहानी सुनी है। मुल्ला नसरुद्दीन को निमंत्रण मिला एक सौंदर्य-प्रतियोगिता में। भारत-सुंदरी चुने जाने को थी। मुल्ला की भी गणना पारखियों में है; वह भी एक न्यायाधीश थे। न्यायाधीशों के साथ... न्यायाधीशों की पंक्ति बैठी। हजारों लोग इकट्ठे हुए। सुंदरियां एक के बाद एक मंच से निकलतीं--एक से एक सुंदर स्त्रियां! कश्मीर से लेकर केरल तक सुंदर से सुंदर स्त्रियां, अनेक रंग अनेक ढंग! और मुल्ला क्या करता है, मालूम? हर स्त्री को देखता है, कहता है: थूः! उसके पास बैठे हुए जो छह और दूसरे मजिस्टेट हैं, वे भी थोड़े हैरान हो गए कि हद हो गई! वे तो दीवाने हुए जा रहे हैं, वे तो भूल ही जाते हैं कि किसको कितने अंक देने हैं। उनकी आंखें अटकी रह जाती हैं। ऐसा रूप कभी देखा नहीं! और एक मुल्ला है कि वह हर बार कहता हैः थू:! जब उसने पंद्रहवीं बार आखिरी स्त्री को भी देखकर कहा थू :, तो उनसे न रहा गया। उन्होंने कहाः सुनो नसरुद्दीन, तुमने अपने को समझ क्या रखा है? इतनी सुंदर स्त्रियां और थू, थू, थू क्या मचा रखा है? तुम्हें इनमें से कोई जंचती नहीं?
नसरुद्दीन ने कहा: तुम पागल हुए हो, इनको देखकर थोड़े ही "थू" कह रहा हूं; इनको देख कर मैं अपनी पत्नी को "थू" कह रहा हूं।
अपनी-अपनी नजर है, नजर-नजर की बात! किसी पर थोपना मत।
चितरंजन, तुम्हारा प्रश्न प्यारा है।... "न गुरु की खोज थी, न परमात्मा
की प्यास थी, न जन्मों-जन्मों का बोध!"... नहीं, मैं तुमसे कहता हूं: खोज थी, प्यास थी, इसलिए तुम मेरे पास आ गए। न होती खोज, नहीं आ सकते थे न होती प्यास नहीं आ सकते थे। मगर ऐसा होता है कि हमें अपनी प्यास का भी कहां पता है? हम किसे खोज रहे हैं, इसका भी हमें कहां पता है?
और अकसर तो ऐसा हो जाता है कि हम वह खोजते रहते हैं जो हम चाहते भी नहीं और उसे नहीं खोजते जो हमारे भीतर प्रगाढ़ रूप से पुकार कर रहा है! और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हम चाहते हैं जो, उसी को खोज रहे होते हैं, लेकिन गलत दिशा में खोज रहे होते हैं।
धन को थोड़े ही लोग खोज रहे हैं चितरंजन! लोग ध्यान को ही खोज रहे हैं। तुम्हें यह बात मेरी थोड़ी कठिन लगेगी, लेकिन मैं हजारों लोगों के अनुभव से यह कहता हूं और हजारों लोगों के निरीक्षण से यह कहता हूं। मेरे पास कितने लोग गुजरे हैं! धन को कोई भी नहीं खोज रहा है, लोग ध्यान को खोज रहे हैं! लेकिन धन से उन्हें आशा बंधती है ध्यान की।
धन की कुछ खूबियां हैं! धन से एक तो आशा बंधती है कि धन होगा तो सीमा नहीं होगी। तुमने अनुभव किया है, धन नहीं होता तो कैसी सीमा का बोध होता है! राह से चले जा रहे हो, दुकान पर सुंदर वस्त्र टंगे हैं, खरीदने का मन होता है, जेब खाली है--सीमा आ गई! धक से दिल हो जाता है। आज जेब भरी होती तो इतनी सीमा अनुभव न होती। सुंदर मकान देखा है, लेने का मन होता है, फिर बैंक-बैलेंस का ख्याल आता है, सिर झुका कर गुजर जाते हो--सीमा आ गई! धन की कमी से आदमी को लगता है, मेरे चारों तरफ दीवालें ही दीवालें हैं, चीन की दीवाल मुझे घेरे हुए है! तो आदमी चाहता है, धन होगा तो असीम हो जाऊंगा। फिर कोई सीमा न होगी। जो खरीदना होगा खरीदूंगा। जिस मकान में रहना होगा उस मकान में रहूंगा। जिस स्त्री से विवाह करना होगा उस स्त्री से विवाह करूंगा। जो करना होगा करूंगा, सीमा नहीं रहेगी।

मैं तुमसे कहता हूं कि तुम्हारी आंतरिक खोज असीम की है। मगर तुम सोचते हो, धन के मिल जाने से असीम मिल जाएगा तो तुम गलती में हो। धन मिल जाएगा एक दिन और धन के मिलने में जीवन खो जाएगा! क्योंकि ऐसे ही तो नहीं मिल जाएगा! चेष्टा करनी होगी, सतत चेष्टा करनी होगी। बामुश्किल मिलेगा। क्योंकि तुम अकेले ही थोड़े धन खोजने निकले हो, ये करोड़ों-करोड़ों लोग उसी को खोजने निकले हैं। यहां बड़ी छीना-झपटी है, बड़ा संघर्ष है, बड़ी प्रतिद्वंद्विता है, बड़ी प्रतिस्पर्धा है। यहां भाई भी भाई नहीं है, यहां मित्र भी मित्र नहीं है, क्योंकि सब प्रतिस्पर्धी हैं, यहां जो तुम्हारे पीछे खड़ा है, वही छाती में छुरा भोंकेगा। तुम्हें हटाना पड़ेगा न! और तुम भी तो दूसरों को हटा कर इसी तरह आगे बढ़े हो। एक-दूसरे की लाश को सीढ़ी बनाना पड़ता है... ऐसा खूंखार संघर्ष है! यहां बामुश्किल तुम पहुंच पाओगे पद पर, धन पर... । और बड़ा मजा यह है कि जब पहुंच जाओगे, तब बड़े हैरान होओगे। जीवन भी गंवा दिया, धन भी मिल गया, मकान भी मिल गया, दुकान भी मिल गई, जो सामान चाहिए था वह भी मिल गया--फिर भी असीम का तो कुछ पता नहीं है!
असीम तो ध्यान से मिलता है, धन से नहीं मिलता। कहीं गणित की भूल हो गई है।
लोग पद खोजते हैं। और मैं तुमसे कहता हूं, पद कोई नहीं खोजता; लोग परमात्मा को खोज रहे हैं। पद नहीं परमात्मा! वही पद है, वही परम पद है। लोग ऐसी अवस्था पाना चाहते हैं जिसके आगे कुछ भी न हो। लेकिन इस संसार में ऐसी कोई अवस्था नहीं है, जिसके आगे कुछ भी न हो। कुछ भी हो जाओ, तुम आओ, पाओगे-- आगे कोई है! यहां हजार ढंग हैं आगे होने के। नेपोलियन, इतना बड़ा सम्राट्, इतना बड़ा विजेता! मगर मालूम है कि बड़ी अड़चन में रहता था! उसकी ऊंचाई ज्यादा नहीं थी, बस पांच फीट पांच इंच। वही उसका दुख था। छह फीट का आदमी बगल में आकर खड़ा हो जाए कि बस... सब साम्राज्य फीका! एक दिन अपने कमरे में, तस्वीर लटकी थी वह तिरछी हो गई थी, वह उसे सीधा करना चाह रहा था, उसका हाथ नहीं पहुंच रहा था। तो उसके अर्दली ने कहाः "रुकिए, मैं आपसे बड़ा हूं, मैं ठीक किए देता हूं।" नेपोलियन आगबबूला हो गया, कहा: "शब्द वापस लो! मुझसे बड़े? बड़े नहीं, लंबे कहो।" उसकी पीड़ा वही थी।
लेनिन इतना बड़ा शक्तिशाली आदमी था! बड़े से बड़ा जार का साम्राज्य उसके हाथ में पड़ गया था। लेकिन उसकी एक तकलीफ थी, उसका ऊपर का धड़ बड़ा था और पैर छोटे थे। तो कुर्सियां वह ऐसी बनवाता था कि किसी को दिखाई न पड़े उसके पैर; मेज में, आड़ में छिपाए रखता था।
अब क्या करोगे? कहां जाओगे, जहां तुम सबसे आगे पहुंच जाओ और तुमसे आगे कोई भी न हो? किसी के पास सुंदर देह होगी, किसी के पास सुंदर कंठ होगा, किसी के पास सुंदर आंखें होंगी, किसी के पास मतवाली चाल होगी! और कभी-कभी ऐसा हो जाएगा कि राह का भिखमंगा तुम्हें झेंपा जाएगा। उसकी मस्ती तुम्हें बेचैनी से भर देगी।
इस जगत में तुम कहीं पहुंच जाओ, किसी भी पद पर पहुंच जाओ, तुम भिखमंगे
ही रहोगे। इसलिए मैं तुमसे कहता हूंः किसी आदमी की तलाश पद की नहीं है। असली तलाश तो उस अवस्था की है जिसके आगे पाने को कुछ न हो जाए और हम निश्चिंत हो सकें। क्योंकि जब तक पाने को कुछ है, चिंता रहेगी।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूंः चितरंजन! गुरु की भी खोज थी, परमात्मा की
भी प्यास थी, तुम्हें पहचान न थी। तुम मेरे पास आ गए, यह अनायास नहीं हुआ है। अनायास कुछ भी नहीं होता, अकारण कुछ भी नहीं होता। करोड़-करोड़ लोग हैं, उनमें से थोड़े से लोग मेरे पास आए हैं, सभी नहीं आ गए हैं। सभी आएंगे भी नहीं। ऐसा भी हो जाता है कि जो ठीक पडोस में रहता है वह भी नहीं आता; और दूर... कोई आया है स्वीडन से, कोई आया है कोरिया से, कोई आया है अमेरिका से; पड़ोस में कोई रहता है और नहीं आया। तुम यहां जाकर पड़ोसियों से पूछ ले सकते हो। सच तो यह है कि वे इस उत्सुकता में हैं कि मैं कब यहां से जाऊं! उनकी अड़चन यही है कि मैं यहां क्यों हूं?
अनायास कुछ भी नहीं होता। हां, यह हो जाता है कि तुम्हें ठीक-ठीक बोध न हो, तुम सजग न होओ, तुम नींद-नींद में तलाश रहे होओ--सोए-सोए। लेकिन तुम टटोलते थे, इसलिए तुम्हारा हाथ मेरे हाथ में आ गया है।

"कौन सी पुकार आपके पास ले आई?"
उसी पुकार को अब निखार रहा हूं, साफ कर रहा हूं। रोज-रोज साफ होगी, रोज-रोज निखरेगी, रोज-रोज तुम समझोगे। और जिस दिन तुम जागोगे पूरे, उस दिन तुम पाओगेः यही तुम्हारी जन्मों-जन्मों की तलाश थी, यही तुम्हारी प्यास थी; यही तुम्हारी नियति थी। और जब तक न मिल जाती तब तक तुम भटकते। तुम्हारे भटकाव का अंत करीब आ गया है।
अपने कामों को समर्पित कर देना
अथ है
अपने क्षण-क्षण को समर्पित कर देना
पथ है
विलीन कर देना अपने समूचेपन को
अकथ है
अर्थात प्राप्ति है
समाप्ति है यह
हमारे अधूरे शरीर की अधूरे मन की
अधूरी आशाओं की अधूरे भयों की
प्राप्ति है यह प्रकृति की उन समूची लयों की पाकर जिन्हें हम मानो
एक ही साथ तपते हैं बरसते हैं
उगते हैं पकते हैं
ताजा बने रहते हैं अखिल काल तक
थकते हैं तो वैसे थकते हैं
जैसा थकता है सूरज या समुद्र
क्षुद्र नहीं बचता तब हमारा कुछ
समर्पित हो जाता है जब हमारा सारा कुछ!
आ गए हो अब, अब सब समर्पित हो जाने दो चितरंजन! जिस दिन तुम बिल्कुल खाली होकर मेरे पास बैठ जाओगे उसी दिन भर जाओगे उसी दिन तुम्हारे चित्त का पक्षी गीत गाने लगेगा!
हर निमिष में मुझे जैसे घेरते हैं सौ सवेरे
और मेरे चित्त का पंछी चहकता है
बड़ी गहरी नींद से जैसे जगा हो प्राण
ऐसी ताजगी मन में सिहरती है
समय सरिता नयी जीवन चेतना के
पवनझोंकों से लहरती है
और मानस कमल मानो कम खिला था
अधिक खिलता है महकता है
हर निमिष में मुझे जैसे घेरते हैं सौ सवेरे और मेरे चित्त का पंछी चहकता है
काम जो भी हाथ में आ जाए
लगता है कि अपना है
शोकमय संघर्ष दुःख देता नहीं है
क्योंकि सपना है
और गृहिणी की अंगीठी की तरह
हर क्षण उठाकर शिखाएं सुख की दहकता है
हर निमिष में मुझे जैसे घेरते हैं
सौ सवेरे और मेरे चित्त का पंछी चहकता है!
तैयारी हो रही है। तुम्हारे भीतर का गीत पक रहा है। मैं उस गीत के पहले अंकुर देखने लगा हूं। क्षितिज पर सूरज की पहली लालिमा प्रकट होने लगी है। सब समर्पित करो। खाली हो जाओ, रिक्त हो जाओ।
अनंत में प्रवेश करने की बात
न भावना है न कल्पना है
न किसी इच्छा का उच्चारण है
न जल्पना है

वह एक ठोस और सही अनुभव है
मगर सारे वातावरण में से ओस की तरह समेटो और खींचो अपने को
तब टपकती है वह बूंद अनुभव की बड़े दूर के अर्थ में भी तब आदमी व्यक्ति नहीं बचता
सारे ख्याल और इच्छाएं सब उसकी जब स्वच्छ एक बूंद की तरह
नगण्य और सुंदर और पवित्र
हो जाती हैं और हो पाती हैं जब वे विभोर किसी नन्हीं-सी घास की पत्ती को सहलाने में
और सो भी किसी लहर की तरह हिलडुल कर नहीं
निस्पंद बैठे रह कर
तब मिलती है बच्चे जैसी गहराई
और समझ और सहज सुख
सहज शांति सहज गति
सहज विरति!

तीसरा प्रश्नः श्रद्धा क्या है? श्रद्धा बनानी पड़ती है या हो जाती है? श्रद्धेय के निकट आने से श्रद्धा पर क्या असर होता है? कृपा कर समझाइए।

दिनकर! श्रद्धा का अर्थ है: जितना है उससे ज्यादा की प्रतीति; जितना दिखाई पड़ता है उससे ज्यादा का एहसास; जितना अनुभव में आता है उतने पर सब समाप्त नहीं है, ऐसी धीमी-धीमी अनुभूति... धुंधली-धुंधली अनुभूति!
जगत मेरे ज्ञान से बड़ा है, इस बात का नाम श्रद्धा है। अस्तित्व मेरी बुद्धि से बड़ा है, इस बात का नाम श्रद्धा है। मेरी इस छोटी सी खोपड़ी पर सारा अस्तित्व समाप्त नहीं है। मैं इस अस्तित्व से पैदा हुआ हूं, इसी में लीन हो जाऊंगा। मैं तो इसकी एक तरंग हूं, जैसे सागर की एक तरंग। सागर की तरंग सागर नहीं हो सकती। मैं तो एक छोटी सी तरंग हूं, बड़ा सागर मेरे चारों तरफ फैला है। इस सागर का स्वीकार श्रद्धा है।
श्रद्धा बड़ा साहस है। क्योंकि मन कहता हैः उतना ही मानो जितना मैं बताता हूं, एक कदम मुझसे आगे न जाना! मन लक्ष्मण-रेखा खींच देता है। मन कहता है: आगे मत बढ़ना इस रेखा के, इसके आगे कुछ भी नहीं है। लेकिन रेखा ही सबूत है इस बात का कि आगे कुछ होगा, अन्यथा रेखा नहीं खिंच सकती थी। रेखा खींचने के लिए भी आगे कोई चाहिए। रेखा के पार भी कुछ होना चाहिए, तभी रेखा खिंच सकती है।
मन की रेखाओं को जो स्वीकार कर लेता है और उनको लक्ष्मण-रेखा मान लेता है, उस आदमी के जीवन में श्रद्धा कभी अंकुरित नहीं होती और वह विराट से वंचित रह जाता है। उस आदमी की हालत ऐसी है जैसे वह आंख गड़ा कर जमीन में चलता हो और उसने कभी आंख उठा कर आकाश की तरफ न देखा हो, तारों से भरी रात न देखी हो, चांद-तारे न देखे हों, सूरज न देखा हो, यह नीला आकाश का विस्तार न देखा हो, आकाश में पंख मार कर उड़ते दूर दिगंत में पक्षी न देखे हों! नीचे आंखें गड़ाए चलता रहा हो। कसम खा ली हो आंख न उठाने की!
श्रद्धा-रहित आदमी ऐसा है, जिसने जमीन के पार कुछ भी देखना नहीं है, इसका निर्णय ले लिया है। यह जरूर किसी भय के कारण हुआ होगा। क्योंकि विराट को देखने से भय लगता है। विराट में कहीं खो न जाऊं यह डर लगता है। आदमी क्षुद्र में जीना चाहता है; क्षुद्र में सुरक्षा है। क्षुद्र के हम मालिक होते हैं; विराट के हम मालिक नहीं हो सकते। विराट हमारा मालिक होगा, इसको ख्याल में ले लो। हम सबने तय कर लिया है क्षुद्र में ही रहेंगे, क्योंकि

क्षुद्र में हमारी मालकियत रहती है। विराट में न जाएंगे, क्योंकि विराट में हम मालिक न रह जाएंगे। विराट तो हमें भर देगा, हमें ले जाएगा।
ऊंट, कहते हैं, पहाड़ों के पास जाने से डरता है। रेगिस्तान में शायद इसीलिए रहता हो। रेगिस्तान में ऊंट हिमालय मालूम पड़ता है। पहाड़ों के पास जाएगा, उत्तुंग शिखर देखेगा, तब उसे पता चलेगा।
मैंने सुना है, सुबह-सुबह एक लोमड़ी उठी। अपनी खोल के बाहर निकली। सूरज निकला था, बड़ी छाया पड़ी उसकी। उस लोमड़ी ने कहा: अरे, यह मेरा असली रूप है! आज मुझे नाश्ते में कम से कम एक हाथी की जरूरत तो पड़ेगी ही। बड़ी अकड़ कर चली हाथी की तलाश में, नाश्ते का इंतजाम करना है! न कहीं हाथी मिला, और मिल भी जाता तो लोमड़ी करती क्या? दोपहर हो गई, भूखी-प्यासी, रोज तो नाश्ता खोज भी लेती थी, आज यह हाथी के कारण झंझट हो गई। भूखी-प्यासी फिर से लौटकर देखा कि देख तो लूं; कहीं भूल तो नहीं हो गई? अब छाया सिकुड़ आयी थी, बिल्कुल उसके नीचे पड़ रही थी। लोमड़ी का चित्त बैठ गया। उसने कहा: अब तो चींटी भी मिल जाए तो बहुत हो जाए। अब तो चींटी भी मैं पचा सकूंगी, इसकी संभावना नहीं मालूम होती।
अपनी बड़ी-बड़ी छायाएं देख रहे हैं। अहंकार हमारा बड़ी-बड़ी छायाएं हैं। उन्हें हम खूब बड़ा करते हैं, उन्हें हम खूब रंगते हैं। और स्वभावतः परमात्मा के पास जाने से हम डरेंगे। जहां परमात्मा की बात होती है वहां जाने से भी डरेंगे। क्योंकि वहां जाकर हमें पता चलेगा कि यह छाया सिर्फ छाया है; यह हमारा रूप नहीं। हम छोटी-छोटी बूंदें हैं और हमें सागर होने का भ्रम हो गया है। और हम सागर पर भरोसा नहीं करना चाहते।
तुमने उस मेढक की कहानी तो सुनी है न, जो अपने कुएं में रहता है। और एक बार सागर का एक मेढक कुएं में आ गया। छोटा सा कुआं है। और कुएं में मेढक ने पूछा हालचाल--कहां से आते हैं, पता-ठिकाना... । उसने कहा: सागर से आता हूं। मेढक ने पूछाः सागर कैसा है? इस कुएं के बराबर है न?
सागर वाले मेढक की हालत तुम समझो; वही हालत मेरी है। सागर वाले मेढक
ने कहाः कुएं और सागर की तुलना नहीं हो सकती। लेकिन कुएं के मेंढक को बड़ा बुरा लगा। उसने कहाः क्या बात कर रहे हो? इससे बड़ी कोई जगह नहीं है! हम भी जिए हैं, हमने भी अनुभव लिया है। हमने कोई बाल ऐसे धूप में नहीं पका लिए हैं। अनुभवी हैं। हमने भी बहुत देखी है जिंदगी। मूसलाधार वर्षाएं भी देखी हैं। बड़े आकाश की वर्षा भी! हमारे इस कुंए में समा जाती है। मगर आकाश जब मूसलाधार वर्षा करता है तब भी हमारे कुएं में समा जाती है, पता नहीं चलता कहां गई! यह हमारा कुआं आकाश से भी बड़ा है। (स्वभावतः सीधा-साफ तर्क है।) तुम किस सागर की बातें कर रहे हो, होश में हो?
कुएं का मेढक छलांग लगाया कुएं के आधे तक और कहाः इतना बड़ा है सागर? फिर और थोड़ी उसने उदारता दिखाई, और.जरा बड़ी छलांग लगाया, तीन चौथाई, कहाः इतना बड़ा है? फिर और अंतिम उदारता दिखाई, पूरी छलांग लगाई कुएं की, कहाः इतना बड़ा है?
लेकिन जब सागर के मेढक ने कहाः मुझे क्षमा करो, इस मापदंड से तौला नहीं जा सकता। तो कुएं के मेढक ने कहाः निकल जा बाहर यहां से! झूठे कहीं के!
श्रद्धा का अर्थ होता हैः जिन्होंने देखा है, जो सागर के पास गए हैं, उनकी सुनो। शायद उनके हृदय की धड़कन में तुम्हें सागर की थोड़ी गूंज सुनाई पड़े। उनके पास बैठो।
श्रद्धा का मौलिक अर्थ सत्संग है।
समझ और क्षमता
ठीक-ठीक जीते चले जाने से बढ़ती है
और फिर चढ़ जाते हैं
हर प्राप्तव्य शिखर पर पांव
हर धूप-छांव को मानते हुए सुख यों मानो पहाड़ कोई था ही नहीं
पथ था सीधा और सरल, जो अपने आप कट गया है एक कुहरा था केवल

जो अपने भीतर की किरन से छंट गया है!
तुम्हारे भीतर सागर है, लेकिन तुम भरोसा कर सको--सागर से आए किसी यात्री की बात पर, सागर से आए किसी गायक के गीत पर, सागर से भर लाया है जो अपने भीतर संगीत--अगर तुम उसके संगीत को सुन सको, उसके हृदय पर अपने कानों को रख कर, तो तुम्हारे भीतर का कुहासा छंट जाए, तुम्हारे भीतर की किरण साफ हो जाए।
श्रद्धा मानती नहीं सीमा में। श्रद्धा कहती है: सीमा नहीं है। श्रद्धा मानती नहीं मृत्यु में; श्रद्धा कहती है: मृत्यु नहीं हो सकती। क्यों? क्योंकि जीवन कैसे मर सकता है? सीमा हो कैसे सकती है? क्योंकि वहां भी सीमा होगी, उसके पार कुछ होगा। जगत असीम है और जीवन भी शाश्वत है। हम अनंत के यात्री हैं।
क्षितिज से क्षितिज तक सवेरे का घेरा
चहक से भरा है
चमकदार पंखों को छूते हुए
मन हवा का हरा है
हरी घास पर दूर तक मोतियों की
लड़ी दिख रही है
किरन मोतियों पर कि मोती किरन पर
जड़ी दिख रही है
हवा और पंछी किरन और मोती
लहर और गाने
अंधेरे ने इनको बहुत कुछ डराया
मगर ये न माने!
श्रद्धा का अर्थ हैः अंधेरे की मत मानना।
हवा और पंछी, किरन और मोती
लहर और गाने
अंधेरे ने इनको बहुत कुछ डराया
मगर ये न मानें!
डरना मत--अज्ञात से, अनंत से, विराट से--तो तुम अपना घर खोज पाओगे, क्योंकि वही तुम्हारा घर है।
एक ही विश्वास मेरी चेतना के पास
एक केवल एक निष्ठा की मुझे है आस
अर्थ मिलता शब्द को ध्वनि को गिरा की सांस
एक ही विश्वास हरता है हृदय का त्रास।
तुम न दो कुछ और मुझको, मैं नहीं असहाय
आस्था का बल जिसे है वह नहीं निरुपाय
आज गूंगे हों भले शंकित हृदय के भाव
हो पड़ा मूर्च्छित कहीं अभिव्यक्ति का सब चाव; हो भले छूंछे पड़े अयास के आधार
हो पुराने की विवशता आज मेरी हार
पर जयी विश्वास मेरा, एक ही विश्वास
दे रहा भवितव्य को जो शक्ति का उल्लास।
गति नदी को दे रहा, गिरि को गगन की राह
एक ही विश्वास हरता मरुवनों का दाह
है नहीं बिकता किसी भी मूल्य पर यह मौन
इस गहन जीवन-क्रिया को मोल लेगा कौन?
एक श्रद्धा ही है, जो इस जगत में नहीं खरीदी जा सकती। एक श्रद्धा ही है, जो नहीं बिकती।
एक ही विश्वास हरता मरुवनों का दाह।
और एक श्रद्धा ही है जो मरुस्थल में हरे वृक्ष उगा देती है, फूलों को जगमगा देती है। एक श्रद्धा ही है जो अंधेरे में दिया जला देती है; जो मृत्यु में अमृत को खोज लेती है।
श्रद्धा इस जगत की सर्वाधिक बड़ी संपदा हैं।

तुमने पूछा, दिनकर! कि "श्रद्धा बनानी पड़ती है या हो जाती है?"
बनानी नहीं पड़ती और अपने आप भी नहीं हो जाती। तब तुम.जरा मुश्किल में पड़ोगे, क्योंकि तुम सोचते हो दो ही विकल्प हैं। नहीं, असली बात तीसरी है। श्रद्धा बनाने से तो नहीं बनती; बनाने से तो थोथी होगी, ऊपर-ऊपर होगी, कागज के फूलों जैसी होगी। तुम्हारी बनाई श्रद्धा तुमसे छोटी होगी। और श्रद्धा को तुमसे बड़ा होना चाहिए। और अगर तुम न बनने दो तो दुनिया की कोई शक्ति उसे बना भी नहीं सकती। मैं लाख चाहूं उड़ेल दूं अपने प्राण तुम में, लेकिन तुम अपने द्वार ही न खोलो... । मैं लाख चाहूं कि बरसा दूं यह मेघ जो भरा है, मगर तुम अपने घड़े को उलटा ही रखो... । मैं पुकारता रहूं और तुम बहरे बने रहो... । मैं दीये लेकर तुम्हारी आरती उतारूं और तुम आंखें बंद रखो... । मैं क्या करूंगा? सुगंध उठे, तुम्हारे नासापुटों को घेरे, तुम अपनी नाक को बंद कर लो... ।
श्रद्धा न तो बनाने से बनती है और न हो जाती है अपने आप। श्रद्धा बनने
से जब होने लगे, जब किसी के पास श्रद्धा का स्वर गूंजने लगे तो तुम अड़चन मत डालना, सहयोग करना, बनने देना। बनाने से नहीं बनती है--बनने देने से बनती है। भेद समझ में आया? तुम्हारे बनाने नहीं बन सकती, न किसी और के थोपे थोपी जा सकती है। लेकिन जहां सूरज निकला हो, वहां तुम आंखें बंद रखने की जिद मत करना। इतना सहयोग देना, आंख खोलना। आंख सूरज को पैदा नहीं कर सकती, लेकिन आंख चाहे तो सूरज उगा रहे, अपने को बंद रखे, तो अंधेरे में रह सकती है।
हवा का झोंका आ रहा है--सुवासित हवा का--तुम अपने द्वार-दरवाजे बंद रखो, धकधकाएगा, थपथपाएगा द्वार, लौट जाएगा। जबरदस्ती नहीं कर सकता। लेकिन तुम अपने द्वार खोल दो; तुम्हारे द्वार खोलने से हवा का झोंका पैदा नहीं होता; लेकिन तुम्हारे द्वार खुले हों और हवा का झोंका आता हो--यह संयोग मिल जाए, यह सोने से सुगंध का संयोग मिल जाए, कि कहीं सद्गुरु हो और तुम अपने द्वार खोल दो, तो श्रद्धा जन्म जाती है।
ऐसा ही समझो, जैसे कोई पूछे, एक बच्चा पैदा हुआ, एक प्यारा बच्चा पैदा हुआ, इसे पुरुष ने जन्माया? तो बात गलत है, क्योंकि स्त्री के बिना गर्भ के यह न हो सकेगा। और कोई कहे स्त्री ने ही जन्माया, तो भी बात गलत है, क्योंकि बिना पुरुष के संस्पर्श के यह न हो सकेगा। किसने इसे जन्माया? ये दोनों मिले, ये प्रेम में डूबे, इन्होंने अपने तार जोड़े। इनके तार जोड़ने से वह अवसर बना, जिसमें परमात्मा उतर सका, इस बच्चे के रूप में।
ठीक ऐसी ही घटना गुरु और शिष्य के बीच घटती है। न तो गुरु पैदा कर सकता
है श्रद्धा। जिसमें आग्रह है नहीं पैदा होने दूंगा, उसमें श्रद्धा पैदा नहीं की जा सकती। और जो सद्गुरु नहीं है, उसके पास तुम लाख सिर पटकते रहो, दरवाजा खोले बैठे रहो, श्रद्धा पैदा नहीं हो जाएगी। श्रद्धा उस संयोग में फलित होती है, जब तुम किसी सद्गुरु के पास अपने हृदय के द्वार खोलते हो। जहां शिष्य का और गुरु का मिलन होता है, वहां उस परम अवसर को अपने-आप निर्मिति होती है, जहां परमात्मा अवतरित होता है।
चौथा प्रश्न: मैं शास्त्रों में सदा से भरोसा करता आया हूं और अब आप हैं कि शास्त्रों से मुक्त होने को कह रहे हैं। मैं बड़ी उलझन में हूं।
रास्ता सुझाएं।
भरोसा काम नहीं आएगा। अगर काम आता होता तो तुम यहां न आए होते। अगर काम ही आ गया होता तो फिर वैद्य की तलाश क्या थी? शब्द काम नहीं आ सकते। शब्दों के पीछे कोई जीवंत प्राण चाहिए, कोई चलती हुई ज्योति चाहिए।
याद करो, सुंदरदास ने कल ही तो कहा था। दीए की बातें करने से दीया नहीं जलता। प्रकाश की बातें करने से प्रकाश नहीं होता। न ही पाकशास्त्र को छाती से लगाकर बैठे रहोगे तो भूख मिटेगी। और कागज पर लिखते रहो एच टू ओ, एच टू ओ, एच टू ओ, उससे प्यास नहीं बुझेगी। ऐसे ही कुछ लोग राम-राम, राम-राम लिख रहे हैं कागज पर, वह भी एच टू ओ, एच टू ओ, एच टू ओ लिख रहे हैं! मंत्र उनका बिल्कुल ठीक है। एच टू ओ में गलती कुछ नहीं है, मगर एच टू ओ में पानी थोड़े ही होता है। वह तो सूत्र है, उससे प्यास नहीं बुझती। तुम अपने कंठ पर खुदवा लो एच टू ओ, मंत्र बना लो इसका तुम सोचते हो फिर तुम्हें पानी पीने की जरूरत न रह जाएगी?

शास्त्र से कुछ भी न होगा। मगर कुछ लोग दीवाने हैं शास्त्रों के। और मजा यह है कि सद्गुरु सदा वही करते हैं जो सारे शास्त्रों का सार है। मैंने तुमसे क्या एक भी ऐसी बात कही है, जो शास्त्रों ने नहीं कही है?
तुम कहते होः "मैं शास्त्रों में सदा से भरोसा करता आया और अब आप हैं
कि शास्त्रों से मुक्त होने को कह रहे हैं!" तुमने शास्त्र पढ़े ही नहीं, क्योंकि प्रत्येक शास्त्र कहता है कि शास्त्रों से मुक्त हो जाओ। कृष्ण ने कहा है कि मेरा निर्वचन नहीं हो सकता--अनिर्वचनीय हूं! बुद्ध ने कहा: उसकी व्याख्या नहीं हो सकती--अव्याख्या है। जो लिखा गया है, उसमें वह नहीं है। जो कहा गया है, उसमें वह नहीं है। लाओत्सु का प्रसिद्ध वचन हैः सत्य बोला कि बोलते ही झूठ हो जाता है।
तुमने शास्त्र पढ़े नहीं, अन्यथा मैं जो कह रहा हूं वह वही है जो सारे शास्त्रों ने कहा है। उनका निचोड़ तुमसे कह रहा हूं। और अपनी गवाही के आधार पर कह रहा हूं। इसलिए नहीं कह रहा हूं कि शास्त्रों में लिखा है, बल्कि इसलिए कह रहा हूं कि मेरा अनुभव है। शास्त्रों में लिखा हो या न लिखा हो, यह गौण बात है। लेकिन लिखा है शास्त्रों में यही, क्योंकि जिन्होंने भी जाना है ऐसा ही जाना है।
लेकिन लोग शास्त्र पढ़ते थोड़े ही हैं, तोतों की तरह रटते हैं!
मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन रेलवे इंक्वायरी पर तर्क कर रहे थेः टाइमटेबल में यह गाड़ी फुलेरा से सीधी मेड़ता की तरफ जा रही है और आप कहते हैं कि गाड़ी अजमेर होकर निकलेगी। यह कैसे हो सकता है? टाइमटेबल गलत कैसे हो सकता है?
फुलेरा से आगे का रास्ता पानी में डूब गया है महोदय, इसलिए। इंक्वायरी वाले ने समझाया।
तो फिर टाइमटेबिल पानी में नहीं डूबा? मुल्ला नसरुद्दीन ने पूछा।
अगले साल तक डूब जाएगा--उत्तर आया।
और क्या करोगे? कुछ लोग किताबों के दीवाने हैं! टाइमटेबिल भी तो डूबना चाहिए! कम से कम टाइमटेबिल में स्टेशन तो डूबनी चाहिए। कम से कम स्थान तो जाहिर होना चाहिए कि यह जगह पानी में डूबी हुई है, नहीं तो नक्शे का मतलब क्या है?
नक्शों को पकड़ कर मत बैठे रहो, जिंदगी नक्शों से रोज आगे बढ़ जाती है। इंक्वायरी वाले ने ठीक ही कहाः अगले साल तक डूब जाएगा। इस देश की जैसी हालतें हैं, इसमें यह हो सकता है। पुल डूबेंगे, फिर टाइमटेबल भी डूब जाएंगे, सब डूब जाएगा। घबड़ाओ मत, प्रतीक्षा करो। भाग्य पर भरोसा रखो, यह दुर्दिन भी आ जाएगा।
शास्त्र पर इतना भरोसा! और तुम शास्त्र से समझोगे क्या? तुम शास्त्र
से उतना ही समझ सकते हो, जितना समझ सकते हो। कृष्ण ने जो गीता में कहा, क्या तुम समझते हो तुम पढ़कर वही समझ लोगे जो उन्होंने कहा? तुम उतना ही समझोगे, जितना तुम समझ सकते हो। तुम्हारी समझ उससे ज्यादा नहीं हो सकती।
एक आदमी डाक्टर के पास गया। उसकी आंखों में कम दिखाई पड़ता था। डाक्टर
ने चश्मा बनाया। वह आदमी कहने लगा कि जब चश्मा लग जाएगा मेरी आंख पर तो मैं पढ़ने लगूंगा न? डाक्टर ने कहाः क्यों नहीं बिल्कुल, जरूर पढ़ने लगोगे। उस आदमी ने कहा चमत्कार! क्योंकि पहले मैं बिल्कुल पढ़ना जानता ही नहीं।
तुम पढ़ना ही नहीं जानोगे तो चश्मा लगाने से कैसे पढ़ने लगोगे? तुम ही
तो गीता पढ़ोगे न, चश्मा लगाने से क्या होगा! और एक बार पढ़ो रोज पढ़ो, बार-बार पढ़ो, क्या होगा? तोतों की तरह रटते रहोगे।
मैंने सुना, एक पंडित जी के पास तोता था, वह राम-राम, राम-राम जपता था। बड़ा धार्मिक तोता था! तोते अकसर धार्मिक होते हैं और धार्मिक लोग अकसर तोते होते हैं! वह तोता सदा राम-नाम की चदरिया ओढे रहता था! और बैठा रहता, और माला लटकी रहती उसके बगल में और राम-राम, राम-राम, उसकी बड़ी ख्याति थी। पंडित जी के पास एक महिला आती थी। पंडितजिओं के पास महिलाओं के अतिरिक्त कोई और आता भी नहीं। एक बुढ़िया, अब जिसको कहीं और जाने की कोई जगह नहीं। पंडित जी के तोते को देखकर वह बुढ़िया भी एक तोता खरीद लायी। मगर तोता बड़ा नालायक था। वह गालियां बके। वह किसी अफीमची के पास रहा था। सत्संग का असर

वह शुद्ध गालियां दे। बुढ़िया उसको बहुत राम-राम करवाए, लेकिन वह कहे: ऐसी की तैसी राम-राम की! बुढ़िया ने कहा: हद हो गई! यह तोता किस तरह का तोता है! पंडित जी से कहा कि मेरा तोता बिल्कुल... हालत खराब है।
पंडित जी ने कहाः तू ऐसा कर, तेरे तोते को यहां ले आ। एक दस-पंद्रह दिन मेरे तोते का सत्संग कर ले, सब ठीक हो जाएगा। यह तोता बड़ा ज्ञानी है। यह तो पिछले जन्मों का भक्त समझो। यह पहुंची हुई आत्मा है।
वह तोता बैठा था, अपना ओढ़े, राम-राम, राम-राम जप रहा था। उसके चेहरे पर बड़ा भक्ति-भाव दिखाई पड़ता था। बुढ़िया ले आयी अपने तोते को। दोनों को एक ही पिंजड़े में बंद कर दिया। पांच-सात दिन के बाद पंडित जी एकदम भागे हुए आए। बुढ़िया से कहा: ले जा अपना तोता! मेरे तोते ने राम-राम कहना बंद कर दिया, चदरिया फेंक दी! और मैंने उससे आज सुबह कहा कि कह भाई, राम-राम नहीं कहता? उसने कहा ऐसी की तैसी राम-राम की! तो मैंने उससे पूछाः इतने दिनों तक राम-राम क्यों जपता था? उसने कहा: जिस वजह से जपता था वह बात पूरी हो गयी। एक प्रेयसी की तलाश थी, यह आ गई। इसी के लिए तो राम-राम जप रहा था।
तुम तोतों की तरह शास्त्रों को पढ़ते रहो, इससे कुछ होगा नहीं। आंख उठा-उठाकर देखते रहोगे, दुकान पर ग्राहक आया कि नहीं? कौन गुजर रहा है रास्ते से! घर में क्या हो रहा है? पत्नी किससे बात कर रही है? यह सब चलता रहेगा और गीता पढ़ रहे हैं! कुत्ता आएगा, उसको भगा दोगे, गीता पढ़ रहे हैं! कंठस्थ हो गई है। अकसर ऐसा हो जाता है कि पन्ना कोई और है और पढ़ कोई और पन्ना रहे हैं, मगर कंठस्थ है। उलटी रख दो किताब सीधी रख दो किताब, कोई फर्क नहीं पड़ता, वह अपना पढ़े जा रहे हैं!
जो शास्त्रों में लिखा है वह शास्त्रों से नहीं जाना जा सकता। जो शास्त्रों में लिखा है उसे अगर जानना है तो समाधि में उतरना पड़ेगा। उसी की चेष्टा कर रहा हूं।
तुमसे कहता हूंः शास्त्र छोड़ो, समाधि में उतरो। मेरी बात तुम्हें विरोधाभासी लगती है। मैं कहता हूंः शास्त्र छोड़ो, समाधि में उतरो, क्योंकि समाधि में उतरोगे तो सारे शास्त्र तुम्हें उपलब्ध हो जाएंगे। पांचवां प्रश्न: मैं संन्यास में दीक्षित होना चाहता हूं, समग्र मन
से तैयारी है; लेकिन परिवारवालों को कहीं दुःख न हो, इसलिए रुका हुआ हूं। फिर आप भी तो कहते हैं कि करुणापूर्वक जीना उचित है।
देखा! ... तोते कैसे अपने मतलब का अर्थ निकाल रहे हैं!
आदमी बड़ा कुशल है। रेशनलाइजेशन... जो-जो करना चाहता है उसके लिए ठीक-ठीक तर्क खोज लेता है।
मैंने सुना, बाबा मुक्तानंद और बाबा चुक्तानंद दोनों एकझाड़ के नीचे बैठे थे। गांजे का धुआं उठ रहा था, कुंडलिनी जाग्रत हो रही थी! मुक्तानंद गुरु हैं, चुक्तानंद शिष्य हैं। लेकिन मुक्तानंद चूहा-छाप, चुक्तानंद हाथी-छाप! दोनों डोल रहे थे। ज्ञान की चर्चा चल रही थी ऐसे अवसर पर तो ज्ञान की चर्चा चलती है। जैसे-जैसे गांजे का नशा बढ़ने लगा और जैसे-जैसे जमीन भुलने लगी और आकाश के तारे दिखाई पड़ने लगे, मस्ती छा गई... ! चुक्तानंद की कुंडलिनी ऐसी जागी कि एक घूंसा बाबा मुक्तानंद को मार दिया! एक तो शिष्य और गुरु को घूंसा मारे... ! और फिर हाथी जैसा शिष्य और चूहा जैसा गुरु... ! नशा उतर गया बाबा मुक्तानंद का और कुंडलिनी भी स्वभावतः उतर गई! बड़े क्रोध से देखा शिष्य की तरफ। डपटकर बोलेः क्यों बे चुक्तानंद, यह घूंसा क्यों मारा? लेकिन तभी ख्याल भी आया कि और झंझट बढ़ानी ठीक नहीं है, कहीं एकाध और न मार दे! एकांत है, यहां कोई है भी नहीं। और नशा इसका ज्यादा चढ़ा है और कुंडलिनी बिल्कुल जागी हुई है। सहस्त्रार तक पहुंचा हुआ मालूम होता है प्रभाव। एकदम डोल रहा है।
तो फिर बाबा मुक्तानंद ने थोड़ा संभालकर कहा कि एक बात बता, मजाक में मारा कि सीरियस होकर मारा? चुक्तानंद ने कहाः मजाक में नहीं, सीरियस होकर मारा है। करो क्या करते हो?
मुक्तानंद ने कहाः तब तो ठीक है, बाकी मजाक मुझे कतई पसंद नहीं!
आदमी अपने मतलब से निकाल लेता है अर्थ। मैंने जरूर कहा है कि करुणा से जियो, लेकिन यह मैंने भी नहीं सोचा था कि करुणा से जीने का अर्थ यह होगा कि

संन्यास लेने की अब क्या जरूरत! संन्यास का अर्थ ही करुणा है। संन्यास का सार ही करुणा है। संन्यास का भाव ही प्रेम है।
तुम कहते होः "मैं संन्यास में दीक्षित होना चाहता हूं, समग्र मन से तैयारी है; लेकिन परिवारवालों को कहीं दुख न हो।"
और किन-किन बातों में परिवार वालों के दुख की चिंता की है? जब पड़ोस की स्त्री से बातें करने लगते हो तो पत्नी की फिकर करते हो? किन-किन बातों में परिवारवालों की चिंता की है? और फिर कल मरोगे, मरते वक्त क्या करोगे? मौत से कहोगे ठहर, मेरे परिवार वालों को दुख होगा? यह बात ठीक नहीं। मौत आएगी और ले जाएगी।
शराब भी लोग पीते हैं, परिवार वालों की चिंता नहीं करते। जुआ भी खेलते हैं, परिवारवालों की चिंता नहीं करते। क्रोध भी करते हैं, मारपीट भी करते हैं, परिवार वालों की चिंता नहीं करते। लेकिन जब ध्यान करना हो या संन्यस्त होना हो तो तत्क्षण परिवारवालों की चिंता करते हैं! समझते हो तर्क! आदमी का मन बहुत जालसाज है।
रही बात तुम्हारे परिवारवालों के दुखी होने की तो दो-चार दिन में सब ठीक हो जाएगा, क्योंकि मेरा संन्यास कोई भगोड़ा संन्यास नहीं है। मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि भाग जाओ हिमालय, छोड़-छाड़ कर पत्नी को। मेरा संन्यास तो तुम्हें ज्यादा बेहतर पति बनाएगा अगर तुम पति हो। अगर तुम पिता हो तो ज्यादा बेहतर पिता बनाएगा। अगर तुम पत्नी हो तो ज्यादा बेहतर पत्नी बनाएगा। अगर तुम बेटे हो तो ज्यादा बेहतर बेटा बनाएगा।
मेरा संन्यास तो जीवन का समग्र स्वीकार है। मैं तो जीवन को प्रेम के फूलों से भरना चाहता हूं। तो दो-चार दिन में वे समझ जाएंगे कि यह संन्यास कोई पुराना भगोड़ा संन्यास नहीं है यह संन्यास की नयी भाव भंगिमा है। यह संन्यास का एक नया अवतरण है। यह संन्यास का नया अवतार है। वे जल्दी ही समझ जाएंगे कि तुम पहले से ज्यादा प्रेमी हो गए हो, पहले से ज्यादा आर्द्र, पहले से ज्यादा भले, पहले से ज्यादा मानवीय, पहले से ज्यादा सरल और निर्दोष! वे देखेंगे कि तुम्हारे जीवन में पहले से थोड़ा ज्यादा काव्य है, और ज्यादा संगीत है। तो क्यों दुःखी होंगे? हां, दो-चार दिन के दुख की बात है। दो-चार दिन के दुख की बात के लिए चिंता न लो।
और फिर अगर सच में तुम उन्हें प्रेम करते हो तो यह तुम्हारे प्रेम की सबसे बड़ी भेंट होगी उन्हें कि घर से कम से कम एक व्यक्ति संन्यस्त होने दो। आज नहीं कल तुम्हारी पत्नी भी डूबेगी। ऐसे ही लोग डूबते चले गए हैं और चले आए हैं। मैं तो अकेला ही चला था, फिर लोग साथ होने लगे। ऐसे लोग डूबते गए हैं, ऐसे ही चले आए हैं। पति आया, फिर पत्नी आयी; या पत्नी कभी आई और पीछे पति आया; फिर बच्चे आ गए हैं। कभी-कभी तो ऐसा हुआ कि छोटे बच्चे पहले आ गए! फिर मां आई, फिर पिता आया, जैसे-जैसे हिम्मत जुटाते गए वैसे-वैसे आते गए। एक बार तुम्हें यह समझ में आ जाए कि मेरा संगीत जीवन का निषेध नहीं है। मैं इस जगत का विरोधी नहीं हूं। मैं इस संसार को छोड़ने के लिए नहीं कह रहा हूं। मैं तुमसे कह रहा हूंः इस संसार को अहोभाव से जियो। यह परमात्मा की भेंट है।... तो क्यों दुखी होंगे?
फिक्र न लो। व्यर्थ भयभीत न होओ। मन को समझाने की चेष्टाएं न करो, टालने के उपाय मत करो। ऐसे ही आदमी टाले चला जाता है कि अब कल सोचेंगे, परसो सोचेंगे, पहले पत्नी को राजी कर लें, फिर बेटे को राजी कर लें, फिर पिता को राजी करना है, फिर मां को राजी करना है। तुम राजी करते-करते मर जाओगे।
मैं एक टेन में यात्रा कर रहा था। पैसेंजर टेन, और रफ्तार इतनी धीमी
थी कि मुसाफिर एक-दूसरे पर खीझे पड़ रहे थे। और कोई उपाय भी नहीं था। गाड़ी कहां ठहर जाएगी, कुछ भी तय नहीं, कहीं भी ठहर जाए। गाड़ी इतनी ठहर रही थी कि लोग उतर-उतर कर रास्तों के किनारे लगे आम तोड़ रहे थे। बार-बार एक मूंगफलीवाला "करारा चीनी बादाम का शोर मचाता हुआ डब्बे के सामने से गुजरता था। मेरे साथ मुल्ला नसरुद्दीन भी सफर में था। मुल्ला बुरी तरह खीझा हुआ बैठा था। मैं था और मुल्ला। अब मुझ पर खीझने का कोई ज्यादा उपाय भी नहीं था। भुनभुना रहा था। कोई और उपाय न देखकर, जब अगले स्थान पर गाड़ी

रुकी और मूंगफलीवाले ने आकर जोर से फिर आवाज दी "करारा चीनी बादाम!" तो फिर मुल्ला के बर्दाश्त के बाहर हो गया। खिड़की से सिर निकाल कर उसने पूछा कि भइया, तुझमें कौन सा इंजन फिट है? गाड़ी से तू तेज चल रहा है। जहां देखो तू आगे तैयार मिलता है!
इतना ही जरा ख्याल कर लेना, तुम कहीं डब्बे ही डब्बे तो नहीं हो? नहीं
तो अकसर डब्बे जो हैं वे बस पोस्टपोन करते रहते हैं। उनका काम ही स्थगन करने का है--कल करेंगे; इसको ठीक कर लें, उसको ठीक कर लें; लड़की की शादी हो जाए, लड़के के शादी हो जाए; फिर दुकान अभी नयी शुरू की है, वह चल जाए। फिर तुम्हारे जीवन में कभी कुछ घट न सकेगा।
निर्णय लो। और मैं नहीं कहता कि संन्यास लो। लेना है तो फिर किन्हीं बहानों से अटकाओ मत। नहीं लेना है तो फिर तो इतना स्पष्ट मन में भाव होना चाहिए कि नहीं लेना है, बात खत्म हो गई। दो टूक होना चाहिए आदमी को! साफ-साफ होना चाहिए आदमी को। आधा-आधा... धोबी का गधा नहीं होना चाहिए, न घर का न घाट का! त्रिशंकु नहीं होना चाहिए, क्योंकि ऐसी उलझन में आदमी की जीवन-ऊर्जा व्यर्थ ही नष्ट होती है।
और अच्छे बहाने मत खोजो। अकसर लोग बुरे काम अच्छे बहानों से करते हैं। इसीलिए तो कहते हैं कि नरक का रास्ता अच्छी आकांक्षाओं से पटा है।... अब संन्यास से बचना है। भाव भी उठ रहा है, हिम्मत नहीं जुड़ रही--तब तुम कह रहे हो कि आप ही तो कहते हैं कि करुणापूर्ण जीना उचित है।
संन्यास करुणापूर्ण जीने की ही प्रक्रिया का नाम है।
सुरीली किरणें प्रकाशवान गान
उड़ते हुए रूप
मूक और मौन आंधियां
भीतर हैं ये सब
भीतर के येढब बाहर करने हैं
समुद्र चढ़ने हैं पहाड़ तरने हैं
ऊंचाइयों के लिए पुकार रहा हूं, तुम्हें चुनौतियां दे रहा हूं। जागो! भीतर हैं ये सब
भीतर के येढब बाहर करने हैं
समुद्र चढ़ने हैं पहाड़ तरने हैं
बड़ी यात्रा करनी है। ऐसे ढील-ढाल करोगे तो कैसे होगा?
जिंदगी मांगती है तुमसे अधिक से अधिक
उतनी शक्ति जितनी तुममें है
जैसे हो तुम में छै
तो वह तुमसे सात नहीं मांगती
शाम दे सकते हो तुम
तो वह तुमसे प्रभात नहीं मांगती
इसलिए तुम्हारे किए
जितना हो सकता है करो तुम उतना ही
पीठ नहीं देना है उसकी मांग को
बस इतना ही!
बस पीठ मत देना चुनौती को। जब चुनौती उठे तो स्वीकार कर लेना! क्षण-क्षण पल-पल खुद को देना
यह जीवन का अर्थ है
जितना अधिक दे रहा है जो
उतना अधिक समर्थ है
जो जितना ज्यादा देता है
उतना ज्यादा जीता है वह
वर्षा मेघ न बरसे तो फिर
भरा हुआ भी रीता है वह
तो हम जीवन जिएं
उंड़ेलें अपने प्राणों की रस-गागर नहीं चुकेंगे नहीं भरे हैं

हर गागर में कितने सागर
नदी सिवा बहने के क्या है
जीवन दिए बिना है सूना
धारा से हरियाली जागे
तो धारा का बहना दूना
मेरा संन्यास जीविन की कला है। प्रेम को बांटने की व्यवस्था है। यह संन्यास संसार-विरोधी नहीं है। मेरी दृष्टि में परमात्मा और संसार में कोई दुश्मनी नहीं है। कैसे हो सकती है? संगीतज्ञ में और उसके संगीत में दुश्मनी? कवि में और उसकी कविता में दुश्मनी? चित्रकार में और उसके चित्र में दुश्मनी? कैसे हो सकती है? यह उसका नृत्य है। इस नृत्य के विपरीत नहीं जाना है। इस नृत्य में इतनी गहरी डुबकी लगाना है कि नर्तक भी हाथ में आ जाए, कि नर्तक भी पकड़ में आ जाए।
मेरा संन्यास एक नए ही संन्यास का सूत्रपात है। तुम्हारे मन में जरूर पुराने संन्यास की धारणा डोल रही होगी। इसी से तुम भयभीत हो। मेरे संन्यास में भय का कोई भी कारण नहीं।
संन्यास अभय देता है। हिम्मत जुटाओ। साहस करो। चुनौती अंगीकार करो।
बस इतना ही ख्याल रहे--
जिंदगी मांगती है तुमसे अधिक से अधिक
उतनी शक्ति जितनी तुममें है
जैसे हो तुम में छै
तो वह तुमसे सात नहीं मांगती
शाम दे सकते हो तुम
तो वह तुमसे प्रभात नहीं मांगती इसलिए तुम्हारे किए
जितना हो सकता है करो
तुम उतना ही है
पीठ नहीं देना उसकी मांग को
बस इतना ही!

आज इतना ही।

ज्योति से ज्योति जले
ग्यारहवां प्रवचन

मन ही बड़ौ कपूत है

मन कौं राखत हटकि करि, सटकि चहूं दिसि जाइ।
सुंदर लटकि स लालची गटकि बिषैफल खाइ।।
सुंदर क्यौंकरि धीजिए मन कौ बुरौ सुभाव।
आइ बनै गुदरै नहीं, खेलै अपनौं दाव।।
सुंदर यहु मन भांड है, सदा भंडायौ देत।
रूप धरै बहु भांति कै, राते पीरे सेत।।
सुंदर आसन मारिकै, साधि रहे मुख मौन।
तन कौं राखै पकरिकै, मन पकरै कहि कौन।।
तन कौ साधन होत है, मन कौ साधन नाहिं।।
सुंदर बाहर सब करै, मन साधन मन मांहिं।।
मन ही बड़ौ कपूत है, मन ही महा सपूत।
सुंदर जौ मन थिर रहै, तौ मन ही अवधूत।।
जब मन देखै जगत कौं, जगत रूप ह्व जाइ।
सुंदर देखै ब्रह्म कौं, तब मन ब्रह्म समाइ।।
सुंदर परम सुगंध सौ, लपटि रहयौ निश-भोर।
पुंडिरीक परमातमा, चंचरीक मन मोर।।
छुटयौ चाहत जगत सौं, महा अज्ञ मतिमंद।
जोई करै उपाय कछु, सुंदर सोई फंद।।
बैठौ आसन मारि करि, पकरि रहयो मुख मौन।
सुंदर सैन बतावतें, सिद्ध भयौ कहि कौन।।
कोउ करैं पयपान कौं, कौन सिद्धि कहि बीर।
सुंदर बालक बाछरा, ये नित पीवहिं खीर।।
कोऊ होत अलौंनिया, खाय अलौंनो नाज।
सुंदर करहिं प्रपंच बबहु, मान बढ़ावन काज।।
कोऊक दूध रूपूत दे, कर पर मेल्हि विभूति।
सुंदर ये पाखंड किय, क्यौंही परै न सूति।।
केस लुचाइ न ह्व जती, कान फराइ न जोग।
सुंदर सिद्धि कहा भई, बादि हंसाए लोग।।

मेरे एक संन्यासी कवि स्वामी योग प्रीतम ने यह गीत मुझे भेजा है-- भगवान एक और गीत मुझे गाना है
एक और छंद गुनगुनाना है
गीत तो वही हैं जो हुलस-हुलस
अपने ही कंठों ने गाए हों
भाव तो वही है जो उमग-उमग
अपने ही प्राणों से आए हों क्या होगा पर के सुर-तालों से मुझको निज सरगम पर आना है प्यारे हैं गीत बहुत प्यारे हैं रसभीगे गीत ये तुम्हारे हैं इन पर मैं न्यौछावर होता हूं पर मेरे गीत अभी क्वांरे हैं इनका भी ब्याह अब रचाना है प्राणों का साज ही बजाना है
जब तक वह पाहुना न आएगा
आंसू की आरती उतारूंगा
जब तक सागर न मिले अपना ही सरिता की पीर बन पुकारूंगा

अपनी ही आग में सुलगना है अंतस में प्रीत को जगाना है कुछ ऐसा वर दो भगवान मेरे!
मैं भुला अपने घर आ जाऊं
कुछ ऐसा कर दो गुरुदेव मेरे!
मैं अपने मितवा को पा जाऊं
उस परम उत्सव की घड़ियों को
अनगाए लौट नहीं जाना है।
प्रत्येक मनुष्य एक गीत लेकर पैदा होता है और बहुत थोड़े से सौभाग्यशाली लोग हैं जो उस गीत को गाकर विदा होते हैं। अधिक गीत अनगाए ही मर जाते हैं। यही जीवन की पीड़ा है, यही विषाद है। यही जीवन की चिंता और संताप है।
जब तक तुम्हारा गीत गाया नहीं गया है, तब तक तुम हो या नहीं बराबर है।
जब तक तुम्हारा बीज नहीं टूटा, तब तक तुम्हारा होना एक आभास मात्र है, एक छाया भर, एक परछाईं! जिस दिन तुम्हारा गीत प्रकट होगा... और ध्यान रहे, वह तुम्हारा हो! वह बुद्ध का न हो, महावीर का न हो, कृष्ण का न हो, मेरा न हो--वह तुम्हारा हो! और सभी बुद्धों ने यही कहा है। किसी के गीत दोहराने नहीं हैं। किसी को भी कार्बनकॉपी बन कर मर जाना नहीं है। उससे बड़ा कोई दुर्भाग्य नहीं है।
मूल बनों! अपने को प्रकट होने दो। खोजो अपने भीतर, कहां तुम्हारा खजाना दबा है? तलाशो, टटोलो! तुम भी हीरा लेकर आए हो। परमात्मा ने किसी को भी बिना पाथेय के भेजा नहीं है; पूरी यात्रा का सारा प्रबंध करके भेजा है। वह सब दिया है जो तुम्हें जरूरी पड़ेगा। वह सब दिया है जो तुम चाहते हो। और इतना दिया है जितना तुम कभी चाह नहीं सकते हो।
जब जीवन की संपदा मिलती है तो आश्चर्यचकित होकर यह पता चलता है कि हम
तो कौड़ियां मांगते थे और उसने हीरों के ढेर दे रखे हैं। हम तो कुछ छुद्र की मांग किए बैठे थे, उसने विराट दे रखा है। हम तो पदार्थ मांगते थे, परमात्मा स्वयं हमारे भीतर मौजूद है। सम्राटों का सम्राट तुम अपने भीतर लिए बैठे हो; पर सोया पड़ा है, तुमने जगाया नहीं, तुमने पुकारा नहीं।
धर्म और कुछ भी नहीं है--अपने भीतर सोए पड़े गीत को जगाने की प्रक्रिया है। तुम्हारे मन में, तुम्हारी समाधि है। तुम जो-जो बाहर तलाश रहे हो, तलाशो लाख, पाओगे नहीं। क्योंकि जिसे तुम बाहर तलाश रहे हो वह तलाश करनेवाले में ही छिपा है। गंतव्य बाहर नहीं है, गंता का अंतर्तम है। लौटाओ आंखें भीतर। मुड़ो अपनी ओर।
योग प्रीतम का गीत ठीक-ठीक है। मेरे प्रत्येक संन्यासी के मन में यह गीत गूंजना चाहिए। अपना ही गीत गाना है! और मजा यह है, विरोधाभास यह है कि जिस दिन तुम ठीक-ठीक अपना गीत गाओगे, उसमें तुम समस्त बुद्धों के स्वर पाओगे। और जब तक तुम बुद्धों के वचन दोहराते रहोगे, तब तक बुद्धों की कोई छाया भी इन वचनों में नहीं होगी। क्योंकि जब कोई अपने अंतर्तम को अभिव्यक्ति देता है तो वहां कहां मेरा कहां तेरा! वहां तो बस एक ही बचता है।
योग प्रीतम तो मेवाड़ी कवि हैं। उन्हें सुंदरदास की बात याद दिला देनी चाहिए--"न म्हारो न थारो!" वहां न कुछ मेरा है, न तेरा है। जब तुम अपने अंतर्तम में आओगे तो पाओगे, अपना अंतर्तम कहना इसे उचित नहीं है--बस अंतर्तम है। सबका है। समस्त अस्तित्व का है। परिधि पर हम भिन्न-भिन्न हैं, केंद्र पर हम एक हैं। दीयों की भांति हम भिन्न-भिन्न हैं, ज्योति की भांति हम एक हैं।
इस ज्योति की तलाश में मनुष्य ने बहुत-सी विधियां ईजाद की हैं, बहुत योग-तप खोजे हैं। सुंदरदास आज के सूत्रों में कह रहे हैं, वे योग-तप, विधि- विधान कोई काम नहीं पड़ते। इस गीत की तलाश विधियों से नहीं होती। इस अंतर्तम की खोज साधारण उपायों से नहीं होती। कारण है। जो हमारा नहीं है, उसे खोजने का एक उपाय होता है। जो दूर है, उसे खोजने की एक व्यवस्था होती है। जो अपना ही है, उसे खोजने का वही उपाय नहीं होता। और जो पास ही है उसे

खोजने की वही व्यवस्था नहीं होती जो दूर को खोजने की होती है। जो बाहर है उसे पाने को चलना पड़ता है; और जो भीतर है उसे पाने को ठहराना पड़ता है। दूर है जो, उसके लिए वाहन खोजने होते हैं; और जो भीतर ही बैठा है, उसके लिए सब वाहनों से उतर आना होता है। जो जितने दूर हैं उसे पाने के लिए उतनी शक्ति चाहिए। स्वभावतः, नहीं तो यात्रा कैसे करोगे? और जो भीतर ही बैठा है उसे पाने के लिए शक्ति ही बाधा बन जाएगी। वहां समर्पण चाहिए। निर्बल के बल राम! वहां असहाय अवस्था चाहिए। वहां शक्तिशाली चूक जाते हैं, वहां सरल पहुंच जाते हैं।
जो उलझा है उसे सुलझाने को ज्ञान चाहिए; लेकिन जो कभी उलझा ही नहीं, जो सुलझा ही पड़ा है तुम्हारे भीतर, उसके लिए कोई ज्ञान की आवश्यकता नहीं। उसके लिए निर्दोष चित्त चाहिए। उसके लिए बालक जैसा मन चाहिए। इस भेद को समझ लेना।
तुम्हारे उपाय जो भी ले आएंगे वह तुमसे छोटा होगा। इस गणित को गांठ बांध लो। तुम जो करोगे, तुम्हारे करने से जो निःसृत होगा, वह तुमसे छोटा होगा। तुम्हारा कृत्य तुमसे बड़ा नहीं हो सकता। कोई संगीत संगीतज्ञ से बड़ा नहीं हो सकता। कोई चित्र चित्रकार से बड़ा नहीं हो सकता। और परमात्मा तुमसे बहुत बड़ा है, इसलिए परमात्मा तुम्हारे हाथ में नहीं हो सकता। तुम परमात्मा पर मुट्ठी नहीं बांध सकते। बांधोगे कि चूकोगे।
जरा देखो, आकाश को मुट्ठी में बांध कर देखो! जैसे-जैसे मुट्ठी बंधती जाती है, आकाश मुट्ठी के बाहर होता जाता है। हां, धन पर मुट्ठी बंध सकती है; धन क्षुद्र है, तुमसे बहुत छोटा है। हाथ का मैल है तो हाथ में आ जाता होगा। आकाश तो हाथ में न आएगा। मगर एक मजा हैः हाथ खुला रखो कि पूरा आकाश तुम्हारा है! खुले हाथ में पूरा आकाश है, बंद हाथ में बिल्कुल नहीं। ऐसी ही प्रक्रिया तुम्हारे विचार में साफ-साफ बैठ जानी चाहिए कि परमात्मा पर मुट्ठी नहीं बांधी जा सकती। उसे पाने के लिए सब मुट्ठी खोल देनी होती है। उसे पाने के लिए निर्बंध, निर्ग्रंथ... ! उसे पाने के लिए तुम्हारा मन कोई उपाय करे तो चूकते चले जाओगे। उसे पाने के लिए मन का निरुपाय हो जाना जरूरी है।
गीत तो निश्चित गाना है। गीत तो जरूर जगाना है। बिना गाए गए गीत तो फिर वापिस लौटना पड़ेगा। वह तो परीक्षा है। उसमें तो उत्तीर्ण होना ही है। गीत तो गाकर जाना ही है। परमात्मा ने तुम्हें जो बनने भेजा है वह तुम्हें बनना ही है, तो ही तुम स्वीकार हो सकोगे।
यह जगत एक शिक्षण की व्यवस्था है, एक पाठशाला है। यहां कोई गहरा पाठ सीखने के लिए तुम्हें भेजा गया है। तुम आकस्मिक नहीं हो। एक विराट आयोजन तुम्हारे पीछे काम कर रहा है। तुम ऐसे ही नहीं फेंक दिए गए हो। तुम्हें भेजने के पीछे कोई सुनियोजित दिशा है, गंतव्य है। क्या गंतव्य है? कुछ पाठ है, जो यहां, सीखना है। कुछ राज है जो यहां सीखना है। कुछ रहस्य है जो यहां खोलना है। अगर तुम खोल सके तो पहुंच जाओगे।
एक कहानी मैंने सुनी है। एक सम्राट का वजीर मर गया। बड़ा बुद्धिमान। दूर-दूर तक उसकी ख्याति थी। उसके स्थान को भरना भी मुश्किल था। खोज शुरू हुई सारे साम्राज्य में। जगह-जगह से बुद्धिमानों को बुलाया गया, खोज-बीन की गई। फिर तीन बुद्धिमान चुने गए अंततः और उनकी अंतिम परीक्षा बड़ी अनूठी थी। उन्हें एक कमरे में ले जाकर छोड़ दिया गया। सम्राट ने कहा कि तुम अंदर बैठो, मैं दरवाजे पर ताला लगा जाता हूं; जो सबसे पहले इस ताले को खोल कर बाहर आ जाए, वजीर हो जाएगा। चाबी तुम्हें देता नहीं हूं। इस ताले की कोई चाबी नहीं है। यह ताला गणित की एक पहेली है।
ताला क्या था, उस पर अंक ही अंक लिखे थे। अगर तुम यह पहेली हल कर लोगे
तो इन अंकों को जमाने की कला तुम्हें आ जाएगी। अंकों के जमते ही ताला खुल जाएगा और तुम बाहर आ जाओगे।
जल्दी ही वे काम में लग गए। पहले ने जल्दी से अपनी किताबें निकाल लीं जिन्हें वह चोरी से अपने वस्त्रों में छिपा लाया था। अफवाहें उड़ गई थीं कि इस तरह का एक ताला बनाया गया है, जिसकी कोई चाबी नहीं है; जिस पर गणित के अंक हैं; अंकों के जमा लेने से ताला खुलेगा। तो वह गणित की बड़ी किताबें ले

आया था। उसने किताबें खोल कर जल्दी खोज-बीन शुरू कर दी कि कहीं कोई उपाय मिल जाए। लेकिन किताबों में जो उलझा हो, उसे उपाय नहीं मिलते। वह किताब में उलझ गया, ताले पर तो ध्यान ही न दे पाया। समस्याएं किताबों में से नहीं सुलझतीं। समस्याएं तो समस्याओं को गौर से देखने से सुलझती हैं। समस्याएं तो समस्याओं में गहरे उतरने से सुलझती हैं। समस्याओं का समाधान तो समस्याओं की ही गहराई में पड़ा होता है, उनकी ही तलहटी में पड़ा होता है।
हर प्रश्न अपने उत्तर को अपने भीतर छिपाए है। तुम जरा प्रश्न की सीढ़ियों से उतरो और तुम उत्तर के तल तक पहुंच जाओगे।
मगर उसे फुरसत न थी। बड़ी किताबें ले आया था। पन्ने पलट रहा था। जल्दबाजी थी। किताब भी ठीक से पढ़ नहीं पाता था, कहीं दूसरा खोल न ले! दूसरे ने जल्दी से अपने कागज निकाल लिए; वह कलम-कागज लेकर आया था। बड़ी गहरी गणित की गुत्थियों को सुलझाने में लग गया। सारे ताले के अंक उसने लिख लिए और जल्दी कागज पर सुलझाने में लग गया। सारे ताले के अंक उसने लिख लिए और जल्दी कागज पर सुलझाने में व्यस्त हो गया। और तीसरे आदमी ने पता है, क्या किया? वह एक कोने में आंख बंद करके बैठ गया। न वह किताबें लाया था; उसके पास कोई शास्त्र नहीं थे--न गीता, न कुरान न, बाइबिल। वह कोई कागज-कलम भी न लाया था। उसने तो आंखें बंद कर लीं और शांत होकर बैठ गया। उन दोनों ने एक-दूसरे की तरफ देखा और हंसे। उन्होंने कहा, यह मूढ़ देखो! आंख बंद करके वहां क्या कर रहा है? आंख बंद करने से कहीं ताले खुले हैं।
मगर कुछ ताले हैं जो आंख बंद करने से खुलते हैं।
यह वहां आंख बंद करके क्या खोल रहा है? लगता है हताश हो गया।
ध्यान में बैठे आदमी को देख कर लोग अक्सर सोचते हैं--हताश हो गया।
जिंदगी से हार गया। हारे को हरिनाम! अब जैसे जप रहे हैं राम-राम, गए काम से! डगमगा गए पैर।
यह क्या कर रहा है पागल?
लेकिन वह आदमी बैठा ही रहा। वह ऐसे हो गया जैसे बुद्ध की मूर्ति। वह इतना शांत हो गया... । उसने सारे विचार विदा कर दिए। ताले का भी विचार भी विदा कर दिया। ताला खोलना है, यह विचार भी विदा कर दिया। निर्विचार हो गया। और निर्विचार में एक तरंग उठी। वह तरंग विचार की नहीं थी, भाव की थी। वह तरंग मस्तिष्क में नहीं आई थी, हृदय से उठी थी। एक तरंग उठी। उसी तरंग में वह उठ आया। तरंग में लोग उठ गए हैं। तरंग में लोग ऐसे उठ गए हैं कि परमात्मा तक पहुंच गए हैं। तरंग में लोग उठ गए हैं, नाच गए हैं, गीत फूट गया है, फूल खिल गए हैं! वह तरंग में उठ गया। उसे पता भी नहीं, क्यों उठा? मजा जानते हो उस उठने का, जब तुम्हें पता भी नहीं होता कि तुम क्यों उठे? जब एक गीत फूटता है तुम्हारे कंठ से और तुम्हें पता भी नहीं होता कि क्यों, कौन गा गया! और एक भावभंगिमा प्रकट होती है, जो तुम्हारी नहीं है! क्योंकि तुम्हारी आयोजित नहीं है। क्योंकि तुमने उसकी व्यवस्था नहीं की है। जो तुमसे उपर से आती है। जो परमात्मा की ही होगी।
इसलिए हमने राम को भगवान कहा, बुद्ध को भगवान कहा, कृष्ण को भगवान कहा, क्राइस्ट को भगवान कहा। किस कारण कहा? ये भाव-भंगिमाएं इनकी नहीं थीं। देह तो इनकी ही थी, मगर देह में जो भाव उतरा था वह इनका नहीं था। आंखें तो इनकी थीं, लेकिन आंखों में जो गहराई आ गई थी वह उनकी नहीं थी। शब्द तो इनके ही थे, मगर शब्दों में जो अर्थ था वह उनका नहीं था। ये उठ खड़े हुए थे।
ऐसे ही वह आदमी उठ खड़ा हुआ। वह कहां जा रहा है, उसे पता नहीं। वह क्यों
जा रहा है, उसे पता नहीं। कोई उसे ले चला। और जब कोई तुम्हें ले चलता है तब तुम पहुंचते हो। अपने से कोई नहीं पहुंचता; उसके ले जाने से पहुंचता है। वह चल पड़ा। उसने बाहर जाकर दरवाजे को हाथ से छुआ। दरवाजा अटका था। ताला बंद था ही नहीं। दरवाजा खुल गया। वह चुपचाप बाहर निकल गया। वे जो किताब में उलझे थे और जो गणित का हल कर रहे थे, उन्हें पता भी न चला कि कोई बाहर भी हो गया।
इस जगत में पता भी नहीं चलता उन लोगों का जो चुपचाप बाहर हो जाते हैं। कौन कब चुपचाप सरक जाता है समाधि के द्वार से परमात्मा में, लोगों को कानों-कान खबर भी नहीं होती। लोग अपने कामों में व्यस्त हैं--कोई अपनी

दुकान पर खाते-बही में लगा है, कोई अपने दफ्तर में फाइलों में उलझा है, कोई किसी और काम में, कोई किसी और काम में, कोई धन में कोई पद में, कोई प्रतिष्ठा में। फुरसत किसको है! कौन बाहर हो गया--कौन कबीर कौन सुंदरदास कौन नानक--कब चुपचाप, किसने उठा दिया... !
उन्हें तो पता तब चला जब सम्राट भीतर आया उस तीसरे आदमी को लेकर और कहा कि भाई बंद करो किताबें, बंद करो तुम्हारी लिखा-पढ़ी। जिसे बाहर निकलना था वह निकल चुका। उनको तो भरोसा न आया आंखें उठाईं। वे तो चौंके के चौंके रह गए, अवाक। उन्होंने कहाः यह हुआ कैसे? उस आदमी से पूछा कि तुम निकले कैसे? उसने कहाः मुझे कुछ पता नहीं। एक बात पक्की थी कि गणित मैंने कभी हल नहीं किए। सो मैंने कहा, यह अपने बस का नहीं। नाहक मेहनत करने से सार भी क्या है? मैं अवश होकर बैठ गया, अपने बस का नहीं। मैंने परमात्मा को कहा कि तेरी मर्जी हो तो कुछ कर। सब मैंने उसकी मर्जी पर छोड़ दिया। फिर किसने मुझे उठाया, किसने मुझे द्वार तक पहुंचाया, किसने मुझे यह भाव दिया कि दरवाजा सिर्फ अटका है बंद नहीं है कि एक मजाक की गई है।
और समझो, ताले लगे हों तो चाबियां खोजी जा सकती हैं। उलझन हो, सुलझाई
जा सकती है। समस्या हो, समाधान हो सकते हैं। कठिनाई तो यही है कि परमात्मा समस्या नहीं है, इसलिए तुम्हारे समाधानों से कुछ भी न होगा। उसके द्वार पर ताला नहीं पड़ा है। इसलिए तुम बिठाते रहो कुंजियां, बनाते रहो कुंजियां, तुम्हारी कोई कुंजियां काम नहीं आएंगी। तुम्हारे कागजों पर फैलाए गए तुम्हारे गणित के विस्तार, तुम्हारे मन को और उलझा जाएंगे, और जंगलों में भटका जाएंगे।
परमात्मा कोई गणित का सवाल नहीं, न दर्शन की कोई समस्या है। परमात्मा उलझाव नहीं है। परमात्मा खुली किताब है।
दरवाजा खुला था, लेकिन शांत चित्त को पता चलता है कि दरवाजा खुला है।
मौन में पता चलता है कि दरवाजा खुला है। शून्य में पूर्ण का साक्षात्कार होता है।
गीत तो निश्चित गाना है, लेकिन तुम्हें नहीं--उसे गाने देना है। गीत
तो जरूर उठाना है, लेकिन तुम्हें नहीं--उसे अवसर देना है। तुम बाधा न बनो। तुम उसके झरने के बीच पत्थर की आड़ न बनो। तुम चट्टान न बनो।
अगर छंद मधुगंध सरीखा किसी चांदनी रात में
हल्का-हल्का फैल न पाए जग के मुक्ति प्रभात
अगर शब्द के तट से लहरें अर्थ की
हटा न दें शैवाल सिवार अनर्थ की
अगर गीत पक्षी आकाश न चीर दे
अगर शब्द का स्नेह न सबको धीर दे
अगर तीर के चरण न ऊंचे चढ़ सकें
नेत्र आज के अगर न शाश्वत पढ़ सकें अगर मृत्यु के शिखरों से स्वर-निर्झर जीवन सलिल न ढालें
बंद शब्दकोशों से अक्षर
अरमानों की असि न निकालें
मर्त्य अचेतन जड़ता को यदि
कवि न भागवत स्वर से सींचे
अर्थहीन आकाश शीस पर
नाहक धरा पांव के नीचे।
गीत तो उठाना है। गीत तो जगाना है। पर तुम्हें नहीं। तुम्हें बीच से विदा हो जाना है। ताकि वह गा सके। ताकि वह गुनगुना सके। तुम्हें बांसुरी बन जाना है। तुम्हें मार्ग देना है। उसका रथ आता है। राह से हटो। और जिस दिन तुम अपना गीत गाओगे, उसी दिन तुम पाओगेः कौन अपना, कौन पराया!
न म्हारो न थारो! न मेरा न तेरा।
प्रभु के हाथ में निमित्त होने से अधिक
और क्या है मेरे चित्त
पूरी तरह अर्पित हो जाना

निःशेष खो जाना
हो जाना है प्रकृति की तरह सरल
और प्रबल और विमल भी
बसंत न अपनी मर्जी से आता है
न निदाध अपनी मर्जी से जाता है
न घिरते हैं बादल अपने किसी काम से
किसी आकाश भर
उड़ो पतझड़ के पत्ते की तरह जब प्रभु चाहें खिलो सरसिज की तरह
जब और जितनी देर प्रभु उस तरह निबाहें
राहें मत चुनो क्योंकि तुम क्या चुन सकते हो आदेश सुनो उसका क्योंकि वह तो तुम सुन सकते हो पूरी तरह अर्पित होकर
पूरी तरह अपने को खोकर
अर्पित होने और बनने और करने
और टूटने तक में सुख ही सुख है
दुख है जितना अर्पित न होने का है
अपने को समूचे में न खोने का है!
एक ही सुख है जगत में--स्वयं का मिट जाना और उसका हो जाना। और एक ही दुख
है जगत में--उसका न होना और स्वयं का होना। क्या करोगे तुम? उड़ो पतझड़ के पत्ते की तरह जब प्रभु चाहें! छोड़ दो अपने को उसके हाथ में--जहां ले जाए जैसे ले जाए, जहां चलाए, जैसे चलाए।
खिलो सरसिज की तरह
जब और जितनी देर प्रभु उस तरह निबाहें
फूल सुबह खिला और सांझ मुरझा गया। न तो खिलने में फूल ने अकड़ बांधी, न सांझ मुरझाने में रोया। खिला तो हंसा, मुरझाया तो हंसा।
तुमने मुरझाते फूल का सौंदर्य देखा?
तुमने सांझ सूरज के डूबते हुए सौंदर्य को देखा या नहीं? उस सौंदर्य में तुम कुछ कमी पाते हो, प्रभात के सौंदर्य से? सुबह उगता है सूरज--उसी शान से, उसी गरिमा से, उसी गौरव से, वही आभा वहीशृंगार! सांझ डूबता है--उसी आभा, उसी गरिमा से! सुबह तो सुंदर होती ही है, संध्या भी सुंदर है, बहुत सुंदर है! क्या होगा कारण? एक ही कारण है--
खिलो सरसिज की तरह
जब और जितनी देर प्रभु उस तरह निबाहें
राहें मत चुनो क्योंकि तुम क्या चुन सकते हो
आदेश सुनो उसका क्योंकि वह तो तुम सुन सकते हो
पूरी तरह अर्पित होकर
पूरी तरह अपने को खो कर
अर्पित होने और बनने और करने
और टूटने तक में सुख ही सुख है
फिर से दोहरा दूं--
अर्पित होने और बनने और करने
और टूटने तक में सुख ही सुख है
दुख है जितना अर्पित न होने का है
अपने को समूचे में न खोने का है!
आज के सूत्र इसी खोने के संबंध में हैं। अपने को समग्र रूप से कैसे कोई शून्य कर पाए? विधि से तो नहीं होगा, विधान से तो नहीं होगा। विधि- विधान में उलझे रहे तो जीवन एक कष्टपूर्ण यात्रा हो जाएगी। जीवन में नृत्य नहीं होगा फिर। जीवन एक बोझ हो जाएगा।
इसलिए तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी ऐसे दिखाई पड़ते हैं जैसे पहाड़ उनकी छाती पर रखा है; जैसे सारे संसार का उपद्रव वे ही झेल रहे हैं। उनकी दशा वैसी है, जैसे मैंने सुना, एक छिपकली एक महल में रहती थी। कुछ उत्सव था छिपकलियों का और उसे भी, महल की छिपकली को भी, निमंत्रण दिया था। निमंत्रण

ही नहीं दिया था, कहा था उदघाटन करो। महल की छिपकली थी, कोई साधारण छिपकली न थी। कुछ छिपकलियां यही काम करती हैं--उदघाटन! उनका काम ही यही है।
मगर उस छिपकली ने कहा, असंभव। मेरा आना न हो सकेगा। मैं बहुत व्यस्त हूं।
और छिपकलियों ने देखा कि कोई व्यस्तता दिखाई न पड़ती। उसने कहा, तुम्हें दिखाई नहीं पड़ेगी। तुम्हें क्या पता? मेरे जाते ही यह महल गिर जाएगा। मैं ही इसे सम्भाले रखती हूं। यह सारा महल मैंने सम्हाला है। मेरे बिना इस महल की क्या गति हो जाएगी?
तुम्हारे साधु-संन्यासी ऐसे लगते हैं, जैसे सारे जगत का बोझ वे ही ढो रहे हैं; जैसे उनके ही सिर पर सारा भार है; जैसे वे ही स्तंभ हैं! साधु तो हो हलका, फुलका, शुभ्र बादलों की भांति! हवाएं जहां ले जाएं, चला जाए! साधु तो हो फूल जैसा; खिले परमात्मा उसमें तो खिले और परमात्मा विदा हो जाए तो विदा हो जाए! गिर जाए फूल की पंखुड़ियों सा। खिलने में भी आनंद हो! साधु तो हो ऐसा--सुबह की ताजी ओस जैसा! क्षण भर को चमके लेकिन क्षण भर की पीड़ा न हो। क्षण भी, उसका शाश्वत भी उसका। और फिर आए सूरज और उड़ जाए ओस की बूंद आकाश में, बन जाए वाष्प, तो फिर उड़ जाए--आनंद से, उसी मग्नता से, उसी धन्यवाद से, उसी अहोभाव से!
साधुता एक समझ है--साधना नहीं है। साधुता एक अंतर्दृष्टि है जीवन में। और उस अंतर्दृष्टि का सार सूत्र सुंदरदास के इन वचनों में है। अगर ये वचन पूरे हो जाएं, तो तुम भी अपना गीत गा सकोगे; अन्यथा रोओगे, परेशान होओगे, बहुत पीड़ित होओगे। जीवन तो व्यर्थ जाएगा ही जाएगा, मृत्यु के क्षण में भी बहुत तड़फोगे।
मृत्यु के क्षण में लोग तड़फते क्यों हैं? तुमने किसी पक्षी को मरते देखा? ऐसे सरल, ऐसे सहज, चुपचाप विदा हो जाता है! पंख भी नहीं फड़फड़ाता। शोरगुल भी नहीं मचाता। पक्षी तो इतने चुपचाप विदा हो जाते हैं, कि सदियों से इस तरह धारणा रही है कि पक्षी मरते भी हैं या नहीं? क्योंकि राहों किनारे तुम चिड़ियों को मरा हुआ पड़ा नहीं देखते। जंगलों में पक्षी मरे हुए नहीं पाए जाते। पक्षी मरते भी हैं या नहीं? इतनी सरलता से विदा हो जाते हैं! जरा नोच-खचोंट नहीं। जरा शोरगुल नहीं।
तुमने पशुओं को मरते देखा? मौत में भी एक अपूर्व शांति होती है। आदमी
को मरते देखो--कितना उपद्रव मचाता है, कितना रोकने की अपने को चेष्टा करता है! क्या होगा कारण? कारण हैः जिंदगी व्यर्थ गई और मौत आ गई। अब आगे कोई समय न बचा। अब तक सब दिन ऐसे ही गए--खाली आए खाली गए, कुछ भराव नहीं और यह मौत आ गई। तड़फे न आदमी तो क्या करे आदमी? भरे हुए आदमी ही शांति से मर सकते हैं। हां, बुद्ध विदा होते हैं शांति से, उल्लास से, उमंग से; जैसे किसी प्यारी यात्रा पर जाते हों! जरा भी क्षण भर को भी, कण भर को भी मोह नहीं होता इस तट से बंधे रहने का। छोड़ देते अपनी नाव उस पार जाने को। खोल देते अपने पंख। विराट की पुकार आ गई, आवाज आ गई, संदेश आ गया। रुकना कैसा? फिर इस तट को खूब जी लिया, मन भर कर जी लिया जी भर कर जी लिया! इस तट के गीत भी सुन लिए, इस तट का गीत भी गा लिया। इस तट के नृत्य भी देख लिए, इस तट का नाच भी नाच लिया। इस तट पर जो भी सुंदर था, जो भी मूल्यवान था, सबका स्वाद ले लिया। जाने की घड़ी आ ही गई। अब और तटों पर होंगे। अब और नृत्य और गीत उठेंगे। अब और दीये जलेंगे। एक उल्लास है। एक जाने की तत्परता है। अगर गीत न गाया गया हो तो मुश्किल खड़ी होती है।
अपनी सोई हुई दुनिया को जगा लूं तो चलूं,
अपने गम खाने में एक धूम मचा लूं तो चलूं,
और इक जामे-मए-तल्ख चढ़ा लूं तो चलूं,
अभी चलता हूं जरा खुद को सम्हालूं तो चलूं।
मौत जब आती है तो स्वभावतः खाली आदमी यह कहेगा--अपनी सोई हुई दुनिया
को जगा लूं तो चलूं। अभी तो सोए-सोए रहा। अभी तो जागरण भी नहीं फला। यह मौत कैसे असमय में आ गई! हम तो सोचते थे कल जगेंगे, कल जगेंगे और यह मौत आ गई। कल तो आया नहीं और मौत आ गई। कल कभी आता नहीं है, कल सदा मौत ही आती है।
अपनी सोई हुई दुनिया को जगा लूं तो चलूं,

अपने गमखाने में एक धूम मचा लूं तो चलूं, और इक जामे-मए-तल्ख चढ़ा लूं तो चलूं,
अभी चलता हूं जरा खुद को सम्हालूं तो चलूं, जाने कब पी थी अभी तक है मए ए गम का खुमार, धुंधला-धुंधला नजर आता है जहाने-बेदार, आंधियां चलती हैं दुनिया हुई जाती है गुबार, आंख तो मल लूं जरा होश में आ लूं तो चलूं। वो मेरा सहर, वो एजाज कहां है? लाना,
मेरी खोई हुई आवाज कहां है? लाना,
मेरा टूटा हुआ वो साज कहां है? लाना, एक.जरा गीत भी एक साज पे गा लूं तो चलूं। मुझसे कुछ कहने को आई है मेरे दिल की जलन, क्या किया मैंने जमाने में नहीं जिसका चलन, आंसुओ! तुमने तो बेदार भिगोया दामन,
अपने भीगे हुए दामन को सुखा लूं तो चलूं। मेरी आंखों में अभी तक है मोहब्बत का गरूर, मेरे ओठों पे अभी तक है सदाकत का गरूर
ऐसे वहमों से भी अब खुद को निकालूं तो चलूं
वो मेरा सहर, वो एजाज कहां है? लाना,
मेरी खोई हुई आवाज कहां है? लाना,
मेरा टूटा हुआ वो साज कहां है? लाना
एक जरा गीत भी उस साज पे गा लूं तो चलूं।
मृत्यु पीड़ा है, क्योंकि गीत गाया नहीं गया है। गीत गाने की तो बात दूर, साज भी टूट गया है। वीणा के तार भी उखड़ गए हैं। वाद्य भी विकृत हो गया है। आवाज भी मर गई है। यह आवाज जो गीत गाने को दी गई थी, गालियां देते-देते मर गई है। ये प्राण जो प्रार्थना के लिए दिए थे, इनका प्रार्थना से तो कोई संबंध ही न जुड़ा; ये तो पद-प्रतिष्ठा की आपा-धापी में ही टूट गए हैं, उखड़ गए हैं। ये धड़कनें जो परमात्मा के साथ नाचने के लिए थीं, इन्हें तो बड़े सस्ते में बाजार में बेच आए हो।
आत्मा बेच कर मरते हैं लोग, तो रोते हुए मरते हैं।
अपना गीत तो निश्चित गाना है। और यह गीत तुम्हारे गाए नहीं गाया जा सकता। तुम्हें राह देनी है कि परमात्मा गा सके। और यह गीत जब गाया जाता है तो पता चलता हैः अपना है न पराया है, उसका है।
आज के सूत्र --
माइ हो, हरिदरसन की आस।
एक ही आकांक्षा है कि कैसे प्रभु का दर्शन मिल जाए! कैसे हम जान लें उसे, जो इस सबका मालिक है! कैसे हम पहचान लें, उसे जो हमारे भीतर हृदय में धड़कन है और श्वासों में चलता है! कैसे हम पहचान लें उसे, जो वृक्षों की हरियाली है, पक्षियों का गीत है, सागरों की गूंज है। कौन है वह? किसकी है यह अभिव्यक्ति सब? कौन छिपा है इन सारे रहस्यों के पीछे?
माइ हो, हरिदरसन की आस।
जिस व्यक्ति के जीवन में यह आकांक्षा उठ गई कि अब बस एक ही आकांक्षा है, एक ही अभीप्सा है, एक ही प्यास है, हरि का दर्शन हो, उसके लिए ही ये सूत्र सार्थक हो सकेंगे। ये सूत्र सबके लिए नहीं हैं।
मन कौं राखत हटकि कर, सटकि चहुं दिसि जाइ।
सुंदर लटकि स लालची, गटकि विषै फल खाइ।।
मन भटका रहा है। मन दौड़ा रहा है। मन न मालूम कितने-कितने सपनों में उलझा रहा है। मन कहता है, यह करो वह करो, यह पा लो वह पा लो। मन बैठने नहीं देता चैन से। क्षण भर विश्राम नहीं देता। दिन भी दौड़ाता है, रात भी दौड़ाता है, जागते भी, स्वप्नों में भी। मन दौड़ता ही रहता है। और इसी दौड़ने के कारण उसका पता नहीं चल पाता जो सदा ठहरा हुआ है। ठहरो तो उसका पता चले।
मन तो गति के नये-नये साधन खोज रहा है कि कैसे गति और तीव्र हो जाए, कैसे हम चांद पर पहुंच जाएं कैसे सूरज पर और तारों पर। मन तो कहता हैः और

दूर चलो। यहां नहीं मिला तो थोड़ा और आगे चलो। मन तो कहता है कि दूर है। मन सदा कहता है कि दूर है। दूर के ढोल सुहावने! मन तो दूर की आवाजों पर लोभित होता है, प्रलोभित होता है। और जिसकी तलाश है, वह तुम्हारे भीतर बैठा है। इसलिए सारी आध्यात्मिक साधना की प्रक्रिया के आधार में एक बात समझने
की है--मन दूर ले जाता है और परमात्मा पास है। इसलिए मन और परमात्मा का मिलना नहीं हो पाता। मन कहता है वहां, और परमात्मा है यहां। मन कहता है कल, और परमात्मा है अभी। मन पैदा करता है समय की लंबाइयां, भविष्य और परमात्मा है सदा वर्तमान के क्षण में।
सुनो इस क्षण!
चुप हो जाओ इस क्षण!
एक क्षण को ठहर जाओ इस क्षण।
--और तुम परमात्मा से भर जाओगे। भरे ही हुए हो। मन मौका नहीं देता। मन अवसर नहीं देता। मन बैठने ही नहीं देता। मन डरता है। मन बहुत भयभीत है। मन ध्यान से ऐसा डरता है, जैसे किसी चीज से भी नहीं डरता, क्योंकि ध्यान का मतलब होता है, बैठ जाना, न दौड़ना। और जहां दौड़ गई वहां मन गया। मन यानी दौड़। और जहां दौड़ गई वहां परमात्मा मिला। और परमात्मा जिसे मिला वह कैसे दौड़ेगा फिर? क्योंकि फिर तो मिल गया सारी आकांक्षाओं को पूर्ण कर देने वाला, सारी अभीप्साओं की तृप्ति। फिर तो कुछ पाने को शेष नहीं। फिर जाओगे कहां? फिर दौड़ोगे कैसे? इसलिए मन मौका नहीं देता।
सुंदर कहते हैंः मन को राखत हटक करि। कितनी चेष्टा लोग करते हैं कि मन
को हटको, रोको, कि रुक जा भाई, जरा ठहर! ... सटकि चहूं दिसि जाइ। तुम कितना ही रोको वह चारों दिशाओं में भागता रहता है। तुम इधर से रोको वह उधर से भागता है। उधर से रोको, इधर से भाग जाता है। तुम जितना रोको उतना भागता है। तुमने ख्याल किया, साधारणतः मन इतना नहीं भागता जितना जब तुम मंदिर में या मस्जिद में जाकर बैठ जाते हो शांत होकर, तब भागता है! ध्यान करने बैठते हो तब बहुत भागता है। ऐसे नहीं भी भागता। ऐसे निश्चिंत रहता है, कोई भय भी नहीं होता।.जरा ध्यान करने बैठो, कभी आंख बंद करके कुछ देर के लिए बैठ जाओ एक कोने में और तब तुम देखो मन का खेल, उसका व्यवहार, कितनी उछल-कूद मचाता है। फिर तो एक पल नहीं ठहरता, क्योंकि ध्यान से भयभीत हो जाता है। एक बात साफ हो जाती है उसको कि अब अगर रुका, .जरा भी अगर रुका तो सदा के लिए मर जाऊंगा। मरना कौन चाहता है! मन मरना नहीं चाहता इसलिए मन दौड़ाए रखता है। सुंदर लटकि स लालची गटकि बिषै फल खाइ।
और मन की हालत ऐसी है कि वह सदा लालच में है। मन यानी लोभ। मन यानी लालच। लालच है तभी तो दौड़ेगा। लालची ही दौड़ता है। लोभी ही दौड़ता है। लोभ न होगा तो कोई किसलिए दौड़ेगा?
भर्तृहरि सम्राट थे। उन्होंने सब छोड़ दिया, छोड़-छाड़ जंगल चले गए। मन
को यह बात जंची न होगी। मन को यह बात कभी नहीं जंचती। जंगल में बैठे हैं, वर्षों बीत गए हैं। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे तरंगें शांत होती जा रही हैं। एक दिन सुबह ही आंख खोली, सुबह का सूरज निकला है, सामने ही राह जाती है--जिस चट्टान पर बैठे हैं, उसी के सामने से राह जाती है। उस राह पर एक बड़ा हीरा पड़ा है! बांध-बूंध के वर्षों में मन को किसी तरह बिठाया था--और मन दौड़ गया! और मन जब दौड़ता है तो कोई सूचना भी नहीं देता कि सावधान कि अब जाता हूं। वह तो चला ही जाता है तब पता चलता है। वह तो इतनी त्वरा से जाता है, इतनी तीव्रता से जाता है कि दुनिया में किसी और चीज की इतनी गति नहीं है जितनी मन की गति है। तुम्हें पता चले, चले, चले, तब तक तो वह काफी दूर निकल गया होता है।
शरीर तो वहीं बैठा रहा, लेकिन मन पहुंच गया हीरे के पास। मन ने तो हीरा उठा भी लिया। मन तो हीरे के साथ खेलने भी लगा। तुमने कहानियां तो पढ़ी हैं न शेखचिल्लियों की, वे सब कहानियां मन की कहानियां हैं। मन शेखचिल्ली है। और इस के पहले कि मन शरीर को भी उठा दे, दो घुड़सवार दोनों तरफ से आए, उन्होंने तलवारें खींच लीं। दोनों को हीरा दिखाई पड़ा, दोनों ने तलवारें हीरे के पास टेक दीं और कहा, हीरा पहले मुझे दिखाई पड़ा। भर्तृहरि का मन तो कहने लगा कि यह बात गलत है, हीरा पहले मुझे दिखाई पड़ा। मगर यह अभी मन में ही

चल रहा है। और इसके पहले भर्तृहरि कुछ बोलें, वे तो तलवारें खिंच गईं।
राजपूत थे। तलवारें एक-दूसरे की छाती में घुस गईं। दोनों लाशें गिर पड़ीं।
हीरा अपनी जगह पड़ा है सो अपनी जगह पड़ा है।
लोग आते हैं और चले जाते हैं, हीरे अपनी जगह पड़े हैं अपनी ही जगह पड़े
रह जाते हैं।
लाशों का गिर जाना, लहू के फव्वारे फूट जाना, चारों तरफ खून बिखर जाना, हीरे का अपनी जगह ही पड़े रहना--होश आया भर्तृहरि को कि मैं यह क्या कर रहा था! वर्षों की साधना मिट्टी हो गई? मेरा मन तो भाग ही गया था, मैं तो खुद भी दावेदार हो गया था। मैं तो कहने ही जाने वाला था कि चुप, हीरे को पहले मैंने देखा है! तुम दोनों पीछे आए हो। हीरा मेरा है!
मगर इसके पहले कि कुछ कहते, उसके पहले ही यह घटना घट गई--दो लाशें गिर गईं। भर्तृहरि ने आंखें बंद कर लीं। सोचा कि हद हो गई, कितने हीरे घर छोड़ आया हूं जो इससे बड़े-बड़े थे! इस साधारण से हीरे के लिए फिर लालच में आ गया। कुछ हुआ नहीं, बाहर कोई कृत्य नहीं उठा, लेकिन मन के भीतर तो सब यात्रा हो गई।
जरूरी नहीं है कि तुम बाहर कुछ करो, मन तो भीतर ही सब कर लेता है। यह हो
भी सकता है कि बाहर से कोई हिमालय गुफा में बैठा हो और मन सारे संसार की यात्राएं करता रहे। बाहर की गुफाओं से धोखे में मत पड़ जाना। असली सवाल मन का है। और यह भी हो सकता है कि कोई राजमहल में बैठा हो और मन कहीं न जाता हो। तो जनक जैसे व्यक्ति भी पहुंच जाते हैं। क्यों? बात बाहर की नहीं है; बात भीतर की है, बात मन की है। और मन बड़ा लोभी है। मन हर चीज में लोभ लगा लेता है। मन कहता है सब मेरा हो जाए। और यह लोभ उसका ऐसा है कि जरा-जरा से स्वाद के पीछे जहर भी गटक जाता है।
तुमने यह प्रतीति की या नहीं? सुख तो न के बराबर होते हैं, शायद ही नहीं। जो ठीक-ठीक देखते हैं उनको पता चलता है कि सुख तो हैं ही नहीं, आभास होते हैं। सुख तो ऐसे ही हैं, जैसे कड़वी दवाई के ऊपर हम शक्कर की थोड़ी सी पर्त चढ़ा देते हैं। नहीं तो कौन गटके कड़वी दवाई को! शक्कर की पर्त चढ़ी होती है, दवाई को हम गटक जाते हैं। सुख भी ऐसे ही हैः शक्कर की पतली सी पर्त है जहर के ऊपर। हम किसी भी तरह के जहर को पीने को तैयार हैं, जरा सा हमारे जीभ पर मिठास का स्वाद आ जाए।
कामवासना या क्रोध या लोभ या मोह या अहंकार तुम्हें कितने नरक में डालते हैं, कितने विष-बुझे तीर तुम्हारी छाती में चुभाते हैं, मगर जरा सा सुख जरूर होगा, जरा सा स्वाद जरूर होगा। उस स्वाद के लिए हम सब कीमत चुकाने को तैयार हैं।
सुंदर लटकि स लालची, गटकि विषैफल खाइ।
जरा सी लालच में विष के फल खा रहे हो।
सुंदर क्यों कर दीजिए मन को बुरौ सुभाव।
और ऐसा मत सोचो कि तुम्हारी कोई गलती है। आत्मनिंदा से मत भर जाना।
अपने को पापी मत समझ लेना। यह मन का स्वभाव है। यह बात बड़ी वैज्ञानिक है, बड़े मूल्य की है। ऐसे रोने मत लगना, नाहक पछताने मत लगना। छाती मत पीटने लगना। उससे कुछ हल नहीं होगा। यह मन का स्वभाव है। जैसे आग जलाती है, ऐसा मन भटकाता है। यह वैज्ञानिक उदघोषणा हुई। जैसे आग जलाती है, ऐसे मन भटकाता है। तुम्हारा और मेरा मन, ऐसा कोई सवाल नहीं है--सबका मन भटकाता है। मन का यह स्वभाव है। इसलिए किसी भटकते आदमी को देख कर मन में यह मत सोचना कि यह पापी है। अपने को भटकते पाकर नाहक निंदा की धारणा से मत दब जाना। नहीं तो पहले पाप दबाए बैठा था, अब निंदा दबा कर बैठ जाएगी। मगर तुम दबे थे सो दबे रहे। क्या फर्क पड़ता है किस पत्थर से दबे हो--सफेद पत्थर से दबे हो कि काले पत्थर से दबे हो, क्या फर्क पड़ता है? दबे हो सो दबे हो।
अक्सर ऐसा हो जाता है कि जो लोग धर्म की दुनिया में प्रवेश करते हैं,
वे जल्दी ही आत्म-निंदित हो जाते हैं, क्योंकि वहां हर तथाकथित महात्मा यही कह रहा है कि यह पाप वह पाप। इतने पाप बताए जा रहे हैं कि आदमी घबड़ा जाता है, डर जाता है।

बौद्ध शास्त्रों में बौद्ध भिक्षुओं के लिए तो हजार नियमों के पालन करने की व्यवस्था है। नियम को याद रखना ही मुश्किल हो जाएगा। तीस हजार नियम, कैसे याद रखोगे? और तीस हजार नियम का मतलब हुआ कि तीस हजार पाप की संभावना हो गई।
एक बहुत मजाक की घटना घटी। पोप ने एक वक्तव्य दिया, जिसमें उसने कहा-- लोगों को सावधान करने के लिए--कि सावधान रहना! शैतान बहुत कुशल हैं, चालबाज हैं। दुनिया में तीन सौ सड़सठ पाप हैं।
कई पत्र आए पोप के पास कि आप पूरी लिस्ट हमें भिजवा दें। कुछ ने तो सच्ची बात लिखी कि सच्ची बात आप से क्या छिपाना, पाप तो हमने भी किए, मगर तीन सौ सड़सठ नहीं किए हैं। तो मन में ऐसा होता है कि न मालूम कितने अनकिए रह गए हैं! बड़ी पीड़ा हो रही है कि पता नहीं कौन-कौन से चूके हैं हम!
यह तो आदमी को तीन सौ सड़सठ पाप हैं, ऐसा सुन कर भाव उठेगा कि जिंदगी यूं ही गंवाई, ऐसे ही दो चार ही करते रहे, उस्तादों ने तीन सौ सड़सठ कर लिए! हम कहीं के नहीं रहे। तो कम से कम पता तो चल जाए, अभी कुछ देर बची हो, कुछ समय बचा हो, कुछ थोड़ा-बहुत सुविधा बची हो तो थोड़े हम भी कर गुजरें। पता नहीं, कौन-कौन से चूक गए! या तो यह और या फिर यह कि तीन सौ सड़सठ पाप... तीन सौ सड़सठ चट्टानें छाती पर बैठ गईं। अब इनसे कैसे छूटोगे?
नहीं, सुंदर की घोषणा बड़ी वैज्ञानिक है। सुंदर कहते हैं--मन कौ बुरौ सुभाव। यह मन का स्वभाव है भटकाना। यह तीन सौ सड़सठ ढंग से भटकाए कि तीन हजार ढंग से भटकाए, कि तीस हजार ढंग से भटकाए, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। यह मन का स्वभाव है।
सूत्र एक समझो कि मन न भटकाए। और मन इतना कुशल है कि संसार की चीजों से
तो भटकाता ही है, आध्यात्मिक चीजों के नाम पर भटका सकता है। कोई थोड़ा पुण्य कर लेता है तो सोचता है कि अब मिलीं अप्सराएं, बस अब देर नहीं है! अब पहुंचे स्वर्ग! अब बस हूरें नाचेंगी। अब ज्यादा देर नहीं है।
एक महात्मा मरा। संयोग की बात, उसी दिन उनके शिष्य भी मरे। महात्मा .जरा पहले, शिष्य जरा पीछे, जैसा कि नियमानुसार उचित है। गुरु आगे चला, शिष्य पीछे चला। महात्मा पहले पहुंच गए स्वर्ग। शिष्य तो सोचता ही चला कि गुरुदेव आनंद कर रहे होंगे, हूरें नाच रही होंगी। क्योंकि तपश्चर्या भी तो की है बेचारों ने, दुख भी तो भोगे, उपवास भी तो किए, व्रत-नियम... कांटों पर भी तो सोए! जिंदगी उनकी खड़ग की धार थी। अब अगर सुख भोग रहे होंगे तो भोगना ही चाहिए।
मगर मन में यह ख्याल उठता था कि देखें कहां होंगे। सोए होंगे फूलों की सेज पर! बज रही होगी बांसुरी! नाच रही होंगी हूरें--जो सदा जवान रहती हैं, कभी बूढ़ी नहीं होतीं; जिनके शरीर पर कभी पसीना नहीं आता; जिनके शिरीर से हमेशा सुवास झरती है। अह्लादित हो रहा था कि बेचारों ने तकलीफ भी बहुत भोगी। सोच रहा था अपने लिए कि कुछ-कुछ अपने को भी मिलेगा, मगर ज्यादा अपन ने तकलीफ भोगी भी नही है। मगर गुरुदेव को मिल रहा है, यह क्या कम है! पहुंचा स्वर्ग, देखा सच में बात सच थी। एक बहुत सुंदर स्त्री, नग्न, गुरुदेव के गले लगी थी। शिष्य तो एकदम गिर पड़ा साष्टांग दंडवत गुरुदेव के चरणों पर, कि गुरुदेव, धन्य हो आप! आज सिद्ध हो गया कि तपश्चर्या आपने की थी।
लेकिन गुरु बहुत नाराज हुआ। गुरु ने कहाः चुप रह नासमझ। जब तक पूरी बात का पता न हो बीच में नहीं बोलना चाहिए।
उसने कहाः पूरी बात! पूरी बात सब आंख के सामने है, अब इसमें और क्या पता चलना है?
गुरु ने कहाः पूरी बात यह है कि यह मेरी तपश्चर्या का पुण्य-फल नहीं है, यह इसके पापों का दंड मैं हूं। इसने जो पाप किए हैं, उनका दंड भोगने के लिए मैं दिया गया हूं इसको। जब तक पूरी बात पता न चले, बीच में नहीं बोलना चाहिए। यह बेचारी कष्ट पा रही है। यह फिल्म-अभिनेत्री थी, अब कष्ट पा रही है। अब भोगो एक महात्मा को।
मगर लोग सोच रहे हैं, स्वर्ग में ऐसा मिलेगा वैसा मिलेगा, योजनाएं बना रहे हैं। अपने लिए स्वर्ग की योजनाएं बना रहे हैं और अपने प्रतियोगियों

के लिए; विरोधियों के लिए नरक की योजना बना रहे हैं कि कैसे सड़ाए जाओगे, कैसे गलाए जाओगे, कैसे शैतान तुम्हारी छाती पर नाचेंगे, तांडव नृत्य करेंगे।
मन के जाल गहरे हैं। मन का स्वभाव बुरा है। मन चाहे संसार की सोचे तो गलत, मन चाहे स्वर्ग की सोचे तो गलत--सोचने में ही गलती है। कोई सोचना अच्छा नहीं होता, कोई सोचना बुरा नहीं होता। विचार मात्र भ्रांत होते हैं। निर्विचार शुभ दशा है।
इसलिए तुम्हें यह कह दूंः कोई विचार शुभ नहीं होते, कोई विचार अशुभ नहीं होते। विचार तो सभी अशुभ होते हैं। कोई अच्छा मन कोई बुरा मन, ऐसा भेद मत करना। मन का स्वभाव ही बुरा है। मन मात्र बुरा है। मन से मुक्ति, उन्मन हो जाना, वहां शुभ का सूर्योदय होता है।
सुंदर क्यौं करि दीजिए मन कौ बुरो सुभाव।
आइ बनै गुदरै नहीं, खेलै अपनौं दाव।।
अगर इसको मौका मिल जाए, अगर अवसर आ जाए... आइ बनै गुदरै नहीं... तो यह चूकता ही नहीं। बस.जरा ही इसको अवसर मिले, जरा सा भी संधि मिल जाए इसको, यह तत्क्षण अपना दांव मार देता है।
आइ बनै गुदरै नहीं खेलै अपनौं दाव।
अति सावधान कोई हो तो ही बच सकता है। अति जागरूक कोई हो तो ही बच सकता है। क्योंकि यह क्षण में अपना दांव खेल देता है। इसके दांव.जरा देखना। इसकी सूक्ष्म चालें देखना। इसकी चालें इतनी सूक्षम हैं कि जब तक तुम्हारी उन चालों से ज्यादा सूक्ष्म न हो तब तक तुम इससे जीत न पाओगे। और लोग स्थूल काम कर रहे हैं। लोग सोच रहे हैं स्थूल काम करने से मन से मुक्ति हो जाएगी। मन बड़ा सूक्ष्म है, सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। लोग क्या कर रहे हैं--कोई शीर्षासन लगा कर खड़ा है; जैसे कि शीर्षासन करने से मन को कोई फर्क पड़ता है। तुम लगाए रहो शीर्षासन, मन अपना काम जारी रखता है। मन सोचता ही रहेगा। शीर्षासन तुम करते रहो और मन विचार कर रहा है कि क्या करना है, क्या नहीं करना है, कि कब यह शीर्षासन खत्म हो। तुम बैठ जाओ सिंहासन में, तुम मार लो पालथी, तुम आसन जगा लो, तुम बिल्कुल पत्थर की मूरत हो जाओ, मगर कुछ फर्क नहीं पड़ता, भीतर मन दौड़ता ही रहेगा। तुम उपवास करो, तुम व्रत करो, तुम शरीर को गलाओ, तुम रोज शरीर को कोड़े मारो--कुछ फर्क नहीं पड़ता। मन अपना काम जारी रखेगा।
मन सूक्ष्म है और तुम स्थूल से लड़ रहे हो। मन कुछ और है, तुम कुछ और से
लड़ रहे हो। तुम तन से लड़ रहे थे, तन का कोई कसूर नहीं।
आइ बनै गुदरै नहीं खेलै अपनौं दाव।
सुंदर यहु मन भांड है सदा भंडायौ देत।
रूप धरै बहु भांति के राते पीरे सेत।
और यह तो भांड की तरह है। यह तो न मालूम कितने रूप रख लेता है! तुम यह
मत सोचना कि इसका कोई एक रूप है। तुम एक रूप पहचानो, यह दूसरा रूप रख लेता है। दूसरा रूप पहचानो, यह तीसरा रूप रख लेता है। यह रूप रखने में कुशल है। तुम्हारे पास धन था, मन अकड़ा-अकड़ा फिरता था कि कितना मेरे पास धन है! तुम्हें समझ आई, तुमने सोचा कि यह तो मन की अकड़ हो रहा है धन, तुमने धन त्याग दिया, अब मन अकड़ा-अकड़ा फिरता है कि मैंने कितना बड़ा त्याग किया! उसने रूप बदल लिया। और ध्यान रखना, धनी से त्यागी की अकड़ ज्यादा खतरनाक है। क्योंकि धनी की अकड़ तो किसी को भी दिखाई पड़ जाए, त्यागी की अकड़ देखने वाला बहुत सूक्ष्म दृष्टि का आदमी हो तो ही दिखाई पड़ती है। नहीं तो त्यागी की अकड़ तुम्हें कैसे दिखाई पड़ेगी? स्त्रियों के पीछे भाग रहा था, किसी को भी दिखाई पड़ जाएगा। स्त्रियों को छोड़ कर भागने लगा, अब बहुत कम संभावना है किसी को दिखाई पड़े। लेकिन यह मन वही का वही है। स्त्रियों की तरफ भागो कि स्त्रियों को छोड़ कर भागो, मन कहता है भागते भर रहो। बस चलते रहो, रुकना भर नहीं। दिशा की तुम फिकर रखो। किस दिशा में तुम्हें जाना है, तुम समझो। तुम्हें संसार की तरफ भागना है, संसार की तरफ भागो, मोक्ष की तरफ भागना है मोक्ष की तरफ भागो, मुझे कोई चिंता नहीं--भागते भर रहो! बस मैं जी लूंगा।
मैं भागने में जीता हूं।

तुमने देखा न, तुम साइकिल चलाते हो, तुम पैडल मारते हो। पैडल मारते रहो, साइकिल चलती रहती है। अब साइकिल यह थोड़े ही कहती है कि जब तुम पश्चिम की तरफ जाओगे तभी चलूंगी, पूरब की तरफ जाओगे तो नहीं चलूंगी। साइकिल कहती है, शर्त एक है--पैडल मारो। पूरब जाओ कि पश्चिम, दक्षिण कि उत्तर, जहां जाना है जाओ, पैडल मारो। बस पैडल लगते रहे तो साइकिल चलती रहेगी।
मन कहता हैः भागते रहो, मैं चलता रहूंगा, मैं जीता रहूंगा। तुम कहां जाते हो... हिमालय चल रहे हो चलो, साधु बनना है साधु बनो, तुम्हें जो करना है मैं राजी हूं। तुम्हें स्वर्ग जाना है, मन तुमसे आगे जाने को राजी है। वह कहता है, हम तैयार हैं। मोक्ष--हम तैयार हैं। मन कहता है तुम बस एक काम भर मत चूकना--दौड़ना, भागना, मांगना, चाहना, वासना भर मत छोड़ना। बस और सब ठीक है। तुम्हें जो मांगना हो, उसकी तुम्हें स्वतंत्रता है। मांगते भर रहना। मन तो भिक्षा पात्र है।
रूप धरै बहु भांति के राते पीरे सेत।
सुंदर आसन मारि के साधि रहे मुख मौन।
कि तुम बैठ जाओ आसन मार कर, कि कर लो मुंह बिल्कुल बंद, कुछ फर्क नहीं पड़ता।
तन कौं राखै पकरि कै मन पकरै कहीं कौन।
तुम तन को बिल्कुल पकड़ कर बैठ सकते हो। अयास करने से ऐसा कर सकते हो कि
तन बिल्कुल अड़िग हो जाए। मगर मन को कौन पकड़ेगा?
महावीर के जीवन में प्यारी कथा है। सम्राट प्रसेनजित उन्हें मिलने आया। जब वह महावीर को मिलने आ रहा था, तभी रास्ते में उसे ख्याल आया कि उसका एक पुराना मित्र बचपन का साथी, साथ ही स्कूल में पढ़े, वह भी राजकुमार था, वह संन्यासी हो गया है, महावीर का मुनि हो गया है। तो उसने सोचा कि महावीर से मिलने जा रहा हूं, सुना है कि रास्ते में ही कहीं मेरे मित्र ने भी किसी चट्टान पर अपनी साधना कर रखी है। उसके भी दर्शन कर चलूं। प्रसन्नकुमार उसका नाम था--मित्र का। तो वह गया। देख कर दंग हो गया, भाव-विभोर हो गया। ऐसी शांत प्रतिमा। पत्थर जैसी मौन! न पलक हिले न रोआं कंपे! अड़िग। उन चट्टानों के बीच में प्रसन्नकुमार भी जैसे चट्टान ही है। प्रसेनजित ने चरणों में झुक कर नमस्कार किया; यद्यपि बचपन का मित्र था, संगी-साथी थे, मगर अब इसकी क्या बात करनी। यह कहां पहुंच गया और मैं कहां रह गया! मन में बड़ा खिन्न, उदास, महावीर के दर्शन को गया। महावीर से उसने पूछा कि मेरे मन में एक प्रश्न उठा, प्रश्नकुमार के दर्शन करते समय, कि अगर प्रसन्नकुमार की अभी मृत्यु हो जाए तो किस स्वर्ग में इनका जन्म होगा। ये किस ऊंचाई पर पहुंचेंगे? किस देवलोक में? किस प्रकार के देव होंगे? महावीर ने कहाः जिस समय तूने नमस्कार किया प्रसन्नकुमार को, अगर उसी वक्त वह मर जाता तो सातवें नरक में पैदा होता। प्रसेनजित तो भरोसा ही न कर सका कि सातवें नरक में! आप कहते क्या हैं?
महावीर ने कहाः तू पूरी बात सुन ले। लेकिन अब, अभी घड़ी ही गुजरी है, अब अगर प्रसन्नकुमार मर जाए तो वह सातवें स्वर्ग में पैदा होगा।
एक घड़ी में इतना फासला! प्रसेनजित पूछने लगा। महावीर ने कहाः एक क्षण में हो जाता है। मन की बात है। तू पूरी कहानी समझ ले। तेरे आने के पहले तेरा और फौज-फांटा निकला। सम्राट का आगमन... तो पहले घोड़े आए, फिर वजीर आए, फिर पहरेदार आए। तो तेरे दो वजीर प्रसन्नकुमार का दर्शन करने गए और उन्होंने कहा कि ये बूद्धू देखो, यहां खड़ें हैं सिर घुटाए! प्रसन्नकुमार आगबबूला हो गया कि ये क्या कह रहे हैं। मगर उसने अपनी शांति रखी। ऊपर से वह शांत ही रहा, भीतर बवंडर उठ गया। दूसरे ने पूछा कि बुद्धू कहते हो इन्हें, लेकिन देखो तो कितने शांत हैं! पहले ने कहा5 अरे रहने दो इनकी शांति! बच्चे मुश्किल में पड़ गए, पत्नी मुश्किल में पड़ गई। और यह जिन वजीरों के हाथ में अपने बच्चों को सौंप आया है... बच्चे अभी कच्ची उम्र के थे... वे सब हड़पे जा रहे हैं। जब तक बच्चे योग्य होंगे सम्राट बनने को, तब तक रत्ती नहीं बचेगी खजानों में और ये भैया यहां खड़े हैं। इनके बच्चे बरबाद हो रहे हैं। इनका राज्य बरबाद हो रहा है।

प्रसन्नकुमार तो भूल गया एक क्षण में, जैसे भर्तृहरि भूल गया था एक क्षण में और हीरे पर लोभ हो गया। भूल ही गया कि मैं महावीर का मुनि हूं। भूल ही गया कि अब मैं सम्राट नहीं हूं। उसने कहा, अच्छा! तो वे वजीर मुझे धोखा दे रहे हैं? गर्दनें उतार दूंगा।
उसने तलवार खींच ली--तलवार जो कि अब थी ही नहीं। पुरानी आदत। तुमने देखा न, पुरानी आदत से हो जाता है। पुरानी आदत। होश कहां था। म्यान से तलवार बाहर आ गई। गर्दनें काट डालीं उसने अपने वजीरों की। तलवार वापिस चली गई। उसकी पुरानी आदत थी। जब भी वह किसी की गर्दन काटता था, पुराना हत्यारा था। सम्राट बिना कोई हत्यारा हुए होता भी नहीं। तो उसकी पुरानी आदत थी कि जब भी किसी की गर्दन काट देता था तो अपने मुकुट को सम्हालता था। तो उसने अपने हाथ से अपने मुकुट को सम्हाला। वहां तो कुछ था ही नहीं मुकुट इत्यादि। एक क्षण में उसे ख्याल आया कि अरे, यह मैंने क्या किया! न तलवार है, न मुकुट है, और मैंने हत्या कर दी और यह मेरा भाव, यह मेरा विचार है, यह मन मुझे कहां ले गया!
महावीर ने कहा कि प्रसेनजित, जब तू उसको नमस्कार कर रहा था, तब वह तलवारें हाथ में लिए हुए था। तब गर्दनें गिर रही थीं। इसलिए मैंने कहा, वह सातवें नरक में गया होता। अब उसने होश वापस सम्हाल लिया है। उसे हंसी आ गई अपनी मूढ़ता पर। उसे मन की चालबाजियों पर समझ आ गई। तलवार, मुकुट, राज्य फिर विदा हो गया है। अब वह फिर शांतचित्त है। अब मन निस्तरंग है। अभी मर जाए तो सातवें स्वर्ग में पैदा हो।
मन और बात है, तन और बात है। और तुम जो जगत में देखते हो इतनी साधना- प्रक्रियाएं, वे सब तन की ही हैं। लोग जिंदगियां लगा रहे हैं, व्यायाम कर रहे हैं, कवायतें कर रहे हैं, प्राणायाम कर रहे हैं। वे सब तन की ही हैं। मन के प्रति जागो!
सुंदर आसन मारिकै साधि रहै मुख मौन।
तन कौं राखै पकरिकै मन पकरै कहि कौन।।
मन को कैसे पकड़ोगे? तन को तो पकड़ सकते हो।
तन कौ साधन होत है मन कौ साधन नाहिं।
सब साधन तन के हैं, मन का कोई साधन नहीं है।
सुंदर बाहर सब करै मन साधन मन माहिं।
और तो सब करना बाहर-बाहर है, मन का साधन मन के भीतर है। वह क्या है साधन?
अभी किरन बढ़ती आती है और सोचता हूं
कि रोज सूरज होता है अस्त और फिर रोज निकलता है
क्या यह इसका पुनर्जन्म है? नहीं; नहीं है पुनर्जन्म यह
यह तो केवल गर्दिश ठहरी
लेकिन उसकी नहीं धरित्रि की गर्दिश है
धरती नियमबद्ध अपनी गति से व्याकुल है
दिवस रात्रि ऋतु के परिवर्तन इसी विकल गति के कारण हैं
यही विकलता किंतु देश अवकाश और आकाश बनाती
और विराट प्रभा सूरज की
केवल साक्षी रहकर मानो
क्रिया शून्यता में कर्मों के पर्व मनाती!
तुम्हारे भीतर जो बैठा हुआ है सूरज, जो प्रकाश वह मात्र साक्षी है, न कर्ता है न भोक्ता है।
और विराट प्रभा सूरज की
केवल साक्षी रह कर मानो
क्रिया शून्यता में कर्मों के पर्व मनाती!
साधनाएं कृत्य हैं, कर्म हैं। कर्मों से तुम मन के बाहर न जा सकोगे। कर्म तो मन का भोजन है। एक ही उपाय है मन के बाहर जाने काः साक्षीभाव। साक्षी बनो। भीतर बैठ जाओ और मन की दौड़ देखो। सिर्फ दौड़ देखो। इतना ही ध्यान रखो कि मैं द्रष्टा हूं। भूलेगा, बार-बार भूलेगा। मन बार-बार तुम्हें उलझा लेगा। मन बार-बार प्रलोभन देगा। फिर-फिर याद करो, पुनः-पुनः

स्मरण करो कि मैं साक्षी हूं, मैं सिर्फ देखने वाला हूं। दुख आता तो दुख को देखता हूं, सुख आता तो सुख को देखता हूं। सुबह होती सुबह देखता हूं, सांझ होती सांझ देखता हूं। सफलता-विफलता, यश-अपयश सब देखता हूं। मैं सिर्फ द्रष्टा हूं।
बस यही सूत्र है। द्रष्टा तुम्हें साफ होने लगे तो मन उतना ही तिरोहित होने लगता है। वही ऊर्जा जो मन में दौड़ती है, द्रष्टा में थिर हो जाती है। वही ऊर्जा जो मन में भागी-भागी है, द्रष्टा में शांत सरोवर हो जाती है।
सुंदर बाहर सब करै मन साधन मन माहिं।
जो भी तुम कर सकते हो, बाहर है। कृत्य मात्र बाहर है, साक्षी भीतर है।
मन ही बड़ो कपूत है मन ही महा सपूत।
अगर मन में उलझ गए, उसके कर्मों के जाल में पड़ गए, मान लिया कि मैं कर्ता हूं, तो चूके।
मन ही बड़ो कपूत, मन ही बड़ो सपूत।
लेकिन अगर जागे, अगर मन के साक्षी बने तो बात बदल जाती है; कांटा फूल
बन जाता है, जहर अमृत हो जाता है। पीने का अंदाज बदल जाता है। भोक्ता का एक अंदाज है, साक्षी का दूसरा अंदाज है।
सुंदर जो मन थिर रहे तो मन ही अवधूत।
और जैसे ही साक्षी का भाव हुआ और मन ठहरा कि फिर तुम पहुंचे हुए सिद्ध
हो, तुम परमात्मा हो, तुम साक्षात ब्रह्म हो!
जब मन देखै जगत को जगत रूप ह्व जाइ।
सुंदर देखै ब्रह्म कौं तब मन ब्रह्म समाइ।
और भेद कुछ भी नहीं है। मन जब जगत को देखता रहता है तो जगतरूप हो जाता है। और जब मन भीतर मुड़ता है, साक्षी बन कर ठहरता है और अंतर्तम को देखता है, तो ब्रह्मरूप हो जाता है। मन तो एक दर्पण है; उसमें बंदर झांकता है तो दर्पण बंदर हो जाता है; उसमें कोई बुद्ध झांकने लगता है तो दर्पण बुद्ध हो जाता है। मन बाहर-बाहर जा रहा--मकान देखता, धन देखता, दुकान देखता--तो वही हो गया। मन भीतर आ जाए, मन ठहरे और भीतर देखे, आंख भीतर खुले तो मन ही ब्रह्मरूप हो जाता है।
सुंदर परम सुगंध सौं लपटि रह्यों निश-भोर।
फिर तो ऐसी हो जाती है बात--उस परम सुगंध की एक दफा खबर मिल जाए, जरा सा झलक मिल जाए कि फिर तो दिन-रात उसी में डुबकी लगी रहती है। फिर दुनिया की कोई चीज नहीं खींच पाती। फिर कुछ है ही नहीं, सब फीका-फीका है। जिसने भीतर देखा, उसके लिए बाहर सब जग फीका है।
सुंदर परम सुगंध सौं लपटि रह्यो निश-भोर।
पुंडरीक परमात्मा, चंचरीक मन मोर।।
जैसे भंवरा कमल के चारों तरफ डोले, कमल में बैठे, कमल बंद भी हो जाए तो
भी बैठा रहे... ।
छूटयो चाहत जगत सौं महा अज्ञ मतिमंद।
जगत से छूटने की कोशिश करोगे, सफल नहीं होओगे। परमात्मा को जानने की कोशिश, करो, जगत से छूट जाओगे।
छूटयो चाहत जगत सौं महा अज्ञ मतिमंद।
जोई करै उपाइ कछु सुंदर सोई फंद।।
यहां तो जगत से छूटने के तुम भी उपाय करोगे सभी फंदे हो जाते हैं।
दुकान से छूटे, मंदिर में उलझ गए। गांव से भागे, जंगल में उलझे। जहां से जाओगे... कहीं तो जाओगे, वहीं उलझ जाओगे।
बठौ आसन मारि करि पकरि रह्यो मुख मौन।
बैठ जाओ आसन मार कर। ओंठ बंद कर लो। जबान न हिलाओ।
सुंदर सैन बतावतें सिद्ध भयो कहि कौन।
वह हाथ सैन से बातें करने लगेगा। मन जो है, बड़ा तरकीब वाला है; वह सैन बताने लगेगा।
तुमने देखा न, लोग मौन हो जाते हैं तो लिख-लिख कर बातें करने लगते हैं।
फायदा क्या हुआ? बात ही तो कर रहे हो न! बात ही करनी थी तो मुंह से करने में

क्या खराबी थी? इसमें और समय ज्यादा खराब होता है। हाथ से इशारे करने लगते हैं। कोई गूंगे सिद्धपुरुष थोड़े ही होते हैं। तुम गूंगे हो गए, और क्या हुआ? मगर जो बात तुम कागज पर लिख रहे हो, वह तुम्हारे मन में भी तो उठेगी न। नहीं तो कागज पर कैसे लिखोगे? जब कागज पर ही लिख रहे हो, मन में उठ ही गई, तो कंठ से बोलने में कौन सी कठिनाई थी? ये उलटे कान पकड़ने की चेष्टाओं से क्या होगा?
सुंदर सैन बतावतें सिद्ध भयो कहि कौन।
कोउ करै पयपान कौं कौन सिद्धि कहि बीर।
और कुछ ऐसे-ऐसे वीर पड़े हैं, कुछ ऐसे बहादुर कि वे सोचते हैं कि दूध ही दूध पीते रहेंगे तो सिद्धपुरुष हो जाएंगे।
सुंदर बालक बाछरा ये नित पीवहिं खीर।
सुंदरदास कहते हैं बछड़े पी रहे हैं दूध ही दूध, सिद्ध नहीं हो गए।
बालक पी रहे हैं दूध ही दूध, सिद्ध नहीं हो गए। और अकसर ऐसा हो जाता है कि दूध ही दूध पीने वाले बछड़े हो जाते हैं। शंकर जी के सांड! किसी न मतलब के, न किसी उपाय के। इन क्षुद्र सी बातों से कुछ होने वाला नहीं है।
लोग सोचते हैं कि दूध बड़ा सात्विक आहार है। पागल हो गए हो? सच यह है कि आदमी को छोड़ कर कोई जानवर बचपन के बाद दूध नहीं पीता। आदमी अजीब है। यह भी कोई ढंग की बात है? और कभी-कभार पी लो तो भी ठीक है, चाय-काफी में डाल कर पी लो तो भी ठीक है। कुछ है कि वे दूध ही दूध पी रहे हैं। अब गाय का दूध पीओगे तो गाय का दूध बना बछड़े के लिए है, बछड़े की बुद्धि आ जाएगी। सिद्ध कैसे हो जाओगे? मन का इससे क्या लेना-देना है? मन कैसे विलीन हो जाएगा?
कोऊ होत अलौंनिया, खाय अलौंनो नाज।
और कुछ ऐसे महापुरुष हैं कि वे कहते हैं नमक नहीं खाएंगे। बड़ा. . .इसमें भी बड़ा महत्व माना जाता है।
एक घर में मैं मेहमान था तो पति महाराज ने मुझे कहा कि मेरी पत्नी बड़ी धार्मिक है। "क्या उसका धर्म है?" नमक नहीं खाती! नमक खाने न खाने से धर्म का क्या लेना-देना हो सकता है? लेकिन कोई घी नहीं खाएगा, कोई नमक नहीं खाएगा, कोई शक्कर नहीं खाएगा। और कभी-कभी तो समझदार लोग तक नासमझियां कर देते हैं।
मैंने सरदार भगत सिंह के जीवन में पढ़ा कि जब वे जेल में थे तो और सब खाते थे, नमक नहीं खाते थे। सरदार भगत सिंह समझदार आदमियों में एक थे। मगर यह क्या मामला? नमक क्यों नहीं खाते थे? कोई धार्मिक आदमी भी नहीं थे। वे नमक इसलिए नहीं खाते थे कि कहीं कोई यह न कह दे कि ब्रिटिश सरकार का नमक खाया। और बाकी सब खाते थे। यह भी खूब मजा है! तो बुद्धू तो यहां बुद्धू हैं ही, जिनको बुद्धिमान समझो उनमें भी कुछ बुद्धिमत्ता दिखाई नहीं पड़ती। सरकारी नमक कैसे खा सकते हो! सरकारी रोटी खा सकते हो! शब्दों से उलझ जाते हैं लोग।
कोऊ होत अलौंनियां खाय अलौंनो नाज।
सुंदर करहिं प्रपंच बहु मान बढ़ावन काज।।
इन सारी बातों से सिर्फ अहंकार बढ़ता है, और कुछ भी नहीं होता।
कोउक दूध रू पूत दे, कर पर मेल्हि विभूति।
और कुछ हैं कि चमत्कार दिखा रहे हैं, भभूत मल-मल कर हाथ से किसी को दे देंगे कि ले, तुझे पुत्र हो जाएगा, किसी की बीमारी ठीक करवा देंगे। और अब तो लोग आगे बढ़ गए हैं। सुंदरदास जी, कहां की पुरानी बातें कर रहे हो! लोग स्विस घड़ियां निकाल रहे हैं। तुम भी कहां पिटी-पिटाई पुरानी बातों में लगे हो! जमाना आगे जा चुका। बेचारे सुंदरदास! उन्हें क्या पता, नहीं तो वे लिख गए होते कि स्विस घड़ी निकालने से कोई सिद्ध नहीं होता। और बड़ा मजा यह है कि हाथ के मलने से स्विटजरलैंड की बनी घड़ी क्यों निकलती है? उस पर तो सिर्फ लिखा होना चाहिए--मेड इन हैवन। कुछ ऐसा कुछ लिखा होना चाहिए। स्विटजरलैंड... ।
फिर सत्य साईंबाबा के खिलाफ बहुत सी बातें जब चलीं तो उन्होंने स्विटजरलैंड की घड़ियां निकालनी बंद कर दीं, तो एच. एम. टी.। उन्होंने सोचा कि स्वदेशी निकालो अब, क्योंकि इस देश में लोग स्वदेशी को बहुत मानते हैं।

मगर और झंझट में पड़ गए, क्योंकि एच. एम. टी. के लोगों ने ज्यादा शोरगुल मचाना शुरू कर दिया। स्विटजरलैंड के लोगों ने तो कुछ फिकर भी नहीं की थी, ऐसी फिजूल की बातों की फिकर दुनिया में और कोई करता नहीं। लेकिन एच. एम. टी. के लोगों ने तो मामले को मुकदमा तक बनाने की कोशिश करनी शुरू कर दी, कि हमारी घड़ियां इस तरह कोई निकालेगा तो हमारे बाजार का क्या होगा? अब बेचारे बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं। तो अब उन्होंने घड़ियां निकालना बंद कर दिया है। क्योंकि अब घड़ियां निकालो कहां से? घड़ी कहीं की तो बनी हुई होगी! परमात्मा के वहां घड़ियां बनती नहीं, क्योंकि वहां समय नहीं है। कालातीत। वहां कैसे घड़ी बनेगी?
कोउक दूध रू पूत दे कर पर मेल्हि विभूति।
सुंदर ये पाखंड किय क्यौं हि परै न सूति।।
ये सब पाखंड हैं। सब धोखे-धड़ियां हैं। यह सब मदारीबाजी है। इनसे सावधान रहना! इस तरह किसी का सूत्र परमात्मा से नहीं जुड़ता। इस तरह तो सूत्र बनते हों तो टूट जाते हैं। परमात्मा से सूत्र जुड़ता है सरलता से, इन पाखंडों से नहीं। ये मदारीबाजियां, ये सब बाजार में अहंकार को सिद्ध करने की कोशिशें हैं। और इससे भले, गोगिया पाशा भले, पी. सी. सरकार भले, कम से कम साफ तो कहते हैं कि यह जादू है, हाथ की सफाई है। कम से कम बेईमान तो नहीं! मगर जो लोग कह रहे हैं कि यह सिद्धि है, सिद्धि का चमत्कार है, ये महा बेईमान हैं। साधु तो कहना असंभव ही है, इनको असाधु कहो तो भी शब्द छोटा मालूम पड़ता है। ये असाधु से भी बदतर हैं।
तोड़ो नहीं तार
धरती पर
इसी पार
कोई रुद्ध रोता है
भटक परछाइयों में
तुमुल युद्ध होता है
जीतने को जिसे होते
वार पर वार
तोड़ो नहीं तार!
परमात्मा से ऐसे तार मत तोड़ो। यहां जीवन में बड़ा संघर्ष है। इस संघर्ष में उसके साथ की बड़ी जरूरत है, उसके सहारे की जरूरत है। ऐसे तार मत तोड़ो। ऐसे पाखंड मत फैलाओ। लोगों को ऐसे मत भटकाओ।
तोड़ो नहीं तार
धरती पर
इसी पार
कोई रुद्ध रोता है
भटकी परछाइयों में
तुमुल युद्ध होता है
जीतने को जिसे होते
वार पर वार
तोड़ो नहीं तार!
धरती पर
इसी पार
जीवन भी फैला है
श्रम की उज्जवलता में
भाग्य के प्रकोप का
रंग मटमैला है
भाग्य को मिटाने को
जीवन में उठा नया ज्वार
तोड़ो नहीं तार!
इस तरह के साधु-महात्मा संसार से विदा हो जाएं तो संसार थोड़ा ज्यादा धार्मिक हो। इस तरह के पाखंडी, इस तरह के उपद्रवी लोगों के मन को व्यर्थ जालों में भरमाते हैं। लोगों को झूठी आशाएं दिला देते हैं।

और इस तरह की चालबाजियों के पीछे सारा खेल क्या है? एक ही खेल है--और
वह खेल हैः मान बढ़ावन काज! अहंकार बड़े!
केस लुचाइ न हवैं जती, कान फराइ न जोग।
सुंदर सिद्धि कहा भई बाछि हंसाए लोग।।
फिर कुछ हैं, जैनों के मुनि हैं, वे बाल नोंचते रहते हैं। केस लुचाइ न हवै... । वे केस नोंच-नोंच कर सोचते हैं कि कोई सिद्धि हो रही है। बाल उखाड़ने से क्या सिद्धि होगी? क्यों व्यर्थ के तमाशे कर रहे हो? अगर बाल नोंचने से सिद्धि होती हो तो कितना आसान मामला था! कुछ करने जैसा खास है ही नहीं मामला। कोई बड़ी कठिन बात नहीं है। पहले-पहले खींचोगे तो थोड़ी तकलीफ होगी, फिर धीरे-धीरे अभ्यस्त हो जाओगे। फिर मजे से खींचने लगोगे। लेकिन बाल खिंच जाएंगे; प्रेम, प्रार्थना, पूजा इससे कैसे पैदा होगी? बाल खिंच जाएंगे, मन कैसे ठहरेगा? समाधि कैसे लगेगी? बालों के होने से मन है? तो बालों के न होने से चला जाता है।
लेकिन इस तरह की व्यर्थ की बातें लोगों को आकर्षित करती हैं। लोगों
को इस तरह की बातों में चमत्कार मालूम पड़ता है, कि देखो, बेचारे कितना कष्ट झेल रहे हैं।
मैंने देखा है, जैन मुनि जब बाल नोंचते हैं, लोग इकट्ठे हो जाते हैं, महिलाओं की आंखों से आंसू गिर रहे हैं। वे मूढ़ता कर रहे हैं और महिलाओं की आंखों से आंसू गिर रहे हैं--कि मुनि महाराज! कैसा कष्ट झेल रहे हैं! अगर कष्ट झेल रहे हैं तो अपनी मूढ़ता से झेल रहे हैं। तुम किसलिए परेशान हो, पुलिस में खबर दो, कि एक आदमी पगला गया है! अपने बाल नोंच रहा है। इसको रोको। या न मानता हो तो इसका सिर घोंट दो।
केसे लुचाई न हवै जती... ऐसे कहीं कोई सिद्ध हुआ?
कान फराइ न जोग।
और लोग कान फड़वा-फड़वा कर... कनफटा जोगी! बड़ा मजा है! तुम.जरा सोचो तो,
इस धार्मिक देश ने कैसी-कैसी कलाएं खोजीं। कन-फटा जोगी! कान फाड़ दिया, तुम जोगी हो गए। लोगों ने सस्ती तरकीबें खोज ली हैं। इन सस्ती तरकीबों से सावधान रहना।
योग तो एक है--और वह परमात्मा से मिलन है। सिद्धि तो एक है-- स्वयं का शून्य हो जाना है। समाधि तो एक है--मन का ठहर जाना है।
सब तुम्हारे भीतर है। गीत तुम्हारे भीतर है। बीज तुम्हारे भीतर है। बाहर के उपक्रम छोड़ो। भीतर जाओ। बाहर की व्यर्थ प्रवंचनाएं, बाहर के व्यर्थ जाल, विधि-विधान छोड़ो। लौटो अपनी तरफ।
मेरी सारी चेष्टा यहां यही है कि तुम्हें तुम्हारे अंतर्तम की तरफ लौटा दूं। तुम्हारा जो कुछ भी पाने योग्य है, तुमने कभी खोया है। तुम पीठ किए खड़े हो। अभी तुम संसार की तरफ मुख किए हो, परमात्मा की तरफ पीठ किए हो। अभी तुम काम-मुख हो, राम-विमुख हो। बस इतना सा काम करना है--राम की तरफ सम्मुख हो जाओ। और राम तुम्हारे भीतर खड़ा है। राम तुम्हारा स्वभाव है। ये सूत्र कीमती हैं। इन सूत्रों का सहारा लेकर चले तो जरूर तुम गीत
गा सकोगे। और मौत तुम्हारे द्वार पर आए तो तुम्हें रोना न होगा, न पीड़ित होना होगा, न परेशान होना होगा, न तुम्हें कहना होगा--
अपनी सोई हुई दुनिया को जगा लूं तो चलूं।
तुम जागे ही हुए होओगे।
अपने गमखाने में एक धूम मचा लूं तो चलूं
तुम्हारा कोई गमखाना ही न होगा। धूम तो मची ही रही जीवन भर। तुम तो उत्सव थे, मृत्यु में और महोत्सव हो जाओगे।
और इक जामे-मए तल्ख चढ़ा लूं तो चलूं।
और एक प्याली पी लूं... । नहीं; तुम्हें इसकी जरूरत न होगी। तुमने तो जीवन भर पीया। तुम तो पीते ही रहे, हर पल उसी को पीते रहे।
अभी चलता हूं जरा खुद को सम्हालूं तो चलूं।
नहीं; तुम एक क्षण का भी मौत से समय नहीं मांगोगे कि अभी चलता हूं।
जरा खुद को सम्हालूं तो चलूं

तुम्हारी तो सारी जिंदगी सम्हाली ही हुई थी। मौत तुम्हें तैयार पाएगी। तुम तो मौत की डोली पर बैठ जाओगे। तुम कहोगेः मैं तैयार हूं। मैं अपने प्रभु से मिलने को राजी हूं!

आज इतना ही।

ज्योति से ज्योति जले
बारहवां प्रवचन

प्रेम जादू है

पहला प्रश्नः मैं न सत्य को देखता हूं न सौंदर्य को। प्रभु का भी मुझे कुछ आभास नहीं होता है। आपकी बातें न समझ पाता हूं, न पचा पाता हूं। मैं क्या करूं?

प्रभु को देखने का प्रश्न नहीं है, आंख खोलने का प्रश्न है। सौंदर्य
को अनुभव करने की बात ऐसी नहीं है कि सौंदर्य वहां पड़ा है और अनुभव हो जाए। सौंदर्य को अनुभव करने वाला संवेदनशील हृदय जगाना पड़ता है। भीतर संवेदनशील हृदय हो तो बाहर सौंदर्य है। अंधा आदमी प्रकाश को तलाशे और प्रकाश उसे न मिले, तो प्रकाश का कोई कसूर है? अंधे आदमी को आंख का इलाज खोजना चाहिए, आंख की औषधि खोजनी चाहिए। अंधे आदमी को सूरज की खोज में नहीं जाना चाहिए, वैद्य की खोज में जाना चाहिए।
इसलिए संतों ने निरंतर कहा है कि परमात्मा को मत खोजो, गुरु को खोजो। परमात्मा को कैसे खोजोगे? परमात्मा को खोजने में तुम सीधे समर्थ होते तो तुमने कभी का खोज लिया होता।
एक अंधे आदमी को बुद्ध के पास लाया गया था। वह अंधा आदमी बड़ा तार्किक था। अंधे अक्सर तार्किक हो जाते हैं। अंधों को तार्किक होना पड़ता है। तार्किकता अंधेपन के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ी है। कारण है। अंधा आदमी अगर यह चुपचाप मान ले कि प्रकाश है तो उसने यह भी मान लिया कि मैं अंधा हूं। और कौन मानना चाहता है कि मैं अंधा हूं! मन को पीड़ा होती है। अहंकार को चोट पड़ती है। छाती में घाव हो जाता है। प्रकाश को मानो तो यह मानना पड़ेगा कि मैं अंधा हूं, क्योंकि मुझे दिखाई नहीं पड़ता। इसलिए उचित यही है कि प्रकाश को ही न मानो। जड़ से ही काट दो बात, प्रकाश है ही नहीं। और जब प्रकाश नहीं है तो मुझे क्यों दिखाई पड़ेगा, कैसे दिखाई पड़ेगा? प्रकाश को इनकार करके अंधे आदमी ने अपने अंधेपन को इनकार कर दिया। उसने अपने घाव से बचा लिया। वह जो पीड़ा होती है, वह जो अवमानना होती है, वह जो अपने ही सामने दीनता हो जाती कि मैं अंधा हूं, अभागा हूं, उससे बचने का उपाय क्या है? उससे बचने का एक ही उपाय है कि प्रकाश है ही नहीं। इसलिए अंधा तार्किक हो जाता है।
नास्तिक का इतना ही अर्थ होता है कि वह आदमी आत्मरक्षा में लगा है। कह रहा हैः ईश्वर नहीं है। क्योंकि अगर ईश्वर है, तो फिर मैं दीन हूं। अगर ईश्वर है, तो फिर मैंने अपने जीवन का कोई सदुपयोग नहीं किया। अगर ईश्वर है, तो मैंने ऐसे ही कूड़े-कांकर को इकट्ठा करने में जीवन गंवा दिया। मैं व्यर्थ गया।
कौन मानना चाहता है कि मैं व्यर्थ गया! मैं सार्थक हूं, तो एक ही उपाय
है कि ईश्वर नहीं है। होता तो मुझे भी मिल गया होता, मुझमें क्या कमी थी? मेरी पात्रता में कौन सी कमी है? होता तो मुझे भी मिल गया होता। नहीं मिला, तो इसके दो ही कारण हो सकते हैंः या तो मैं अपात्र हूं या वह नहीं है। दूसरी ही बात माननी आसान मालूम पड़ती है, अहंकार के विपरीत नहीं जाती। इसलिए मैंने कहा कि अंधे तार्किक हो जाते हैं। साधारण अंधों की बात नहीं कर रहा हूं, आध्यात्मिक अंधों की बात कर रहा हूं।
उस अंधे आदमी को बुद्ध के पास ले जाया गया। बड़ा तार्किक था! जो भी सिद्ध करना चाहते कि प्रकाश है, वह असिद्ध कर देता।
और भी एक बात ख्याल में ले लेना, जिसको प्रकाश दिखाई नहीं पड़ा है, तुम उसके सामने प्रकाश को सिद्ध करना भी चाहोगे तो कर न पाओगे। वह तुम्हें असिद्ध कर देगा। यद्यपि तुम जानते हो कि प्रकाश है, मगर जानना एक बात है और जनाना दूसरी बात है। जानने से क्या होता है? कैसे सिद्ध करोगे अंधे आदमी के सामने कि प्रकाश है? न तो प्रकाश को उसके हाथ में दे सकते हो कि वह छू ले, चख ले, गंध ले ले, प्रकाश को बजा कर ध्वनि सुन ले। ये चार इंद्रियां उसके पास हैं।

वह अंधा आदमी भी अपने मित्रों को कहता था कि तुम प्रकाश को मुझे दे दो, मैं जरा हाथ में प्रकाश लेकर स्पर्श कर लूं। और ऐसा भी नहीं है कि प्रकाश हाथ में नहीं पड़ता है, लेकिन प्रकाश का स्पर्श नहीं होता। खड़े हो धूप में तो हाथ पर प्रकाश बरस रहा है, लेकिन स्पर्श नहीं होता।
वह अंधा आदमी कहता था कि मुझे दे दो, जरा मैं चख लूं--मीठा है, कड़वा है, तिक्त है, स्वाद क्या है? कोई भी चीज हो तो उसका स्वाद तो होगा। उसे बजा कर, ठोक कर देख लूं, कुछ आवाज तो निकलेगी! ऐसे मैं मान लूंगा कि आज प्रकाश है। वे थक गए थे, हार गए थे। उनका सारा अनुभव दो कौड़ी का कर दिया था उस अंधे आदमी ने। एक नास्तिक हजारों अनुभव से भरे हुए लोगों को हरा सकता है। नकार की वह बड़ी खूबी है। तुम कहो कि चांद सुंदर है और हजार लोग कहें कि चांद सुंदर है, लेकिन एक आदमी खड़ा हो जाए और कहे कि सिद्ध करो, क्या सौंदर्य है, कौन सा सौंदर्य, कहां है सौंदर्य? --तो हजार व्यक्ति जो अनुभव कर रहे थे चांद का सौंदर्य, अपने भीतर सिकुड़ जाएंगे, कोई उपाय न पाएंगे। अनुभव को सिद्ध करने का कोई उपाय होता ही नहीं।
वे उस आदमी को बुद्ध के पास ले आए, सोचा कि बुद्ध तो सिद्ध कर सकेंगे! लेकिन बुद्ध अनूठे व्यक्ति थे। बुद्ध ने कहाः तुम इसे मेरे पास लाए क्यों, इसे किसी वैद्य के पास ले जाओ। मेरा अपना वैद्य है, जो कभी-कभी मेरी चिकित्सा करता है। जीवक उसका नाम है, तुम उसके पास ले जाओ। इसकी आंख पर जाली है, जाली कटनी चाहिए। जाली कट गई। छह महीने के बाद वह अंधा आदमी नाचता हुआ आया, बुद्ध के चरणों में गिरा और कहाः मुझे क्षमा कर दें। मैंने उस समय जो बातें कही थीं, मैं अज्ञानी था। मैंने जो दंभ दिखलाया था कि प्रकाश नहीं है, वह मेरी भ्रांति थी। मगर मैं और कर भी क्या सकता था? मुझे दिखाई नहीं पड़ता था, तो मुझे ऐसा ही लगता था कि जितने लोग कहते हैं प्रकाश है, वे सब मुझे अंधा सिद्ध करने की कोशिश कर रहे हैं। मुझे पीड़ा होती थी। प्रकाश शब्द ही मुझे कांटे की तरह चुभता था। आपने भला किया मुझे समझाया नहीं, समझाते तो मैं समझता नहीं। मैं आपसे भी जूझा होता, आपसे भी विवाद किया होता। और अब मैं जानता हूं, मैंने देख लिया। मैं भी किसी अंधे आदमी को समझा न सकूंगा। अब मैं आपकी तकलीफ भी समझता हूं। और मेरे मित्रों की तकलीफ भी समझता हूं; उनसे भी क्षमा मांग आया हूं।
तुम पूछो कि "मैं न सत्य को देखता हूं, न सौंदर्य को। प्रभु का भी मुझे कुछ आभास नहीं होता है।"
तो इसका एक ही अर्थ है कि तुम्हारे भीतर जो संवेदना के स्रोत होने चाहिए, वे सोए पड़े हैं। उन्हें जगाना होगा। तुम परमात्मा की बात ही छोड़ दो। तुम ध्यान करो।
मुझसे लोग आकर पूछते हैं कि हम तो नास्तिक हैं, क्या हम ध्यान कर सकते हैं? मैं उनसे कहता हूं कि नास्तिक हो इसलिए ध्यान के अतिरिक्त और करोगे क्या? ध्यान में ईश्वर को मानना शर्त नहीं है। ईश्वर का अनुभव ध्यान का परिणाम है, शर्त नहीं है। इस बात को ख्याल में ले लेना। ध्यान यह नहीं कहता कि पहले ईश्वर को मानो फिर ध्यान करो; मानोगे तो ही ध्यान हो सकेगा। नहीं, जो कोई ऐसा कहता हो कि मानो, फिर ध्यान हो सकेगा, वह झूठ कहता है। उसे ध्यान का स्वयं भी पता नहीं है।
अंधा आदमी प्रकाश को न माने तो क्या उसकी आंख की चिकित्सा नहीं हो सकती? क्या मानने के बाद चिकित्सा होगी? क्या मानना चिकित्सा की अनिवार्य शर्त हो सकती है? चिकित्सा से क्या लेना-देना है मानने न मानने का?
मानो या न मानो, जहर पीओगे तो मरोगे। मानो या न मानो, अमृत पीओगे तो शाश्वत जीवन मिलेगा। मानने न मानने की बात ही नहीं है।
ध्यान करो; और ध्यान की कोई भी शर्त नहीं है। ध्यान का सीधा सूत्र हैः धीरे-धीरे मन को निर्विचार करो। तुम ईश्वर की फिकर ही छोड़ो, नहीं तो यह ईश्वर भी एक और विचार का बवंडर खड़ा कर देगा। ईश्वर से तुम्हें क्या लेना- देना है? ईश्वर शब्द भी तुम्हारे लिए व्यर्थ है। जो तुम्हारा अनुभव नहीं है वह शब्द कोरा होता है, खाली होता है। उसमें कोई अर्थ नहीं होता। हां, रामकृष्ण ने कहा होगा जब यह शब्द, उसमें अर्थ रहा होगा। रमण ने कहा होगा, उसमें अर्थ रहा होगा। तुम जब इस शब्द का उपयोग करते हो, इसमें कोई अर्थ

नहीं होता। यह बिल्कुल व्यर्थ होता है। और व्यर्थ ही हो, इतना नहीं अक्सर तो अनर्थ होता है।
तुम इन शब्दों को छोड़ो। तुम निर्विचार की थोड़ी तलाश करो। विचार तो तुम जानते हो न, विचार तो तुम्हें अनुभव में आते हैं न, विचारों से तो तुम घिरे हो, वहीं से यात्रा शुरू करो। और कभी-कभी यह भी समझ में आता है या नहीं कि कभी विचार ज्यादा होते हैं और कभी कम होते हैं? उससे एक बात प्रमाणित हो जाती है कि विचार कम हो सकते हैं, और कम हो सकते हैं, और कम हो सकते हैं, और ज्यादा हो सकते हैं, और ज्यादा हो सकते हैं। विचार जब बहुत ज्यादा हो जाते हैं कि तुम सम्हाल न पाओ, तो उस अवस्था का नाम विक्षिप्तता है। और विचार जब बिल्कुल शून्य हो जाते हैं कि सम्हालने को कुछ बचे ही नहीं, उस अवस्था का नाम विमुक्तता है। विचार की भीड़ का बढ़ जाना विक्षिप्तता की यात्रा है, और विचार से खाली होते जाना विमुक्त की। जिस दिन विचार बिल्कुल नहीं होते उस दिन परमात्मा सामने ही खड़ा हो जाता है, सब तरफ खड़ा हो जाता है। खड़ा ही था, सिर्फ विचारों के कारण तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता था। आंख से जाली कट गई। विचार की जाली ने तुम्हारी आंख को अंधा किया है। विचार के परदे पर परदे पड़े हैं।
और जहां परमात्मा दिखा, वहीं सौंदर्य दिखा। यह परमात्मा का ही दूसरा नाम है। मेरे लिए सत्य से भी ज्यादा मूल्यवान शब्द है--सौंदर्य। क्योंकि सत्य में तो थोड़ी तर्क की गंध आती है, विचार की थोड़ी सी झलक मिलती है। सत्य तो ऐसा लगता है जैसे विचार का निष्कर्ष हो, जैसे तर्क की निष्पत्ति हो। नहीं, परमात्मा सौंदर्य है। रसो वै सः। वह रस-रूप है। वह परम सौंदर्य है। फूल में जो छिपा है सौंदर्य, चांद में जो छिपा है सौंदर्य, किन्हीं की आंखों में जो छिपा है सौंदर्य, बच्चे की मुस्कुराहट में, पक्षियों की चहचहाट में... यह सारा सौंदर्य वही है! यह तुम्हारे भीतर चलने वाली विचार की प्रक्रिया की निष्पत्ति नहीं है। इसलिए सत्य से भी ज्यादा उचित, सत्य से भी ज्यादा सार्थक शब्द परमात्मा को प्रकट करने वाला "सौंदर्य" है। मैं रवींद्रनाथ से राजी हूं। रवींद्रनाथ ने सत्य शब्द का उपयोग किया; परमात्मा को सुंदर कहा। हमारे पास दो बड़े बहुमूल्य सूत्र हैं। "सच्चिदानंद" एक सूत्र है और "सत्यं शिवं सुंदरम्" दूसरा सूत्र है। इन दो सूत्रों में भारत की सारी खोज समाविष्ट है। दूसरा सूत्र पहले सूत्र से भी मूल्यवान है। सच्चिदानंद मूल्यवान सूत्र है--कि वह परम सत है, चित है, आनंद है। दूसरा सूत्र पहले से भी ज्यादा मूल्यवान है। वह परमात्मा सत्य है, शिव है, सुंदर है। दूसरे सूत्र में काव्य है, पहले सूत्र में दर्शन है। पहला सूत्र दार्शनिक की भाषा में अभिव्यक्त हुआ है, दूसरा सूत्र कवि की भाषा में। और कवि की भाषा हृदय की भाषा है। कवि ऋषि के निकटतम है।
तुम पूछते होः "न मैं सत्य को देखता हूं, न सौंदर्य को।"
तो इससे एक ही बात की खबर मिलती है कि तुम्हारे पास सत्य को और सौंदर्य को ग्रहण करनेवाली संवेदनशीलता नहीं है। और ऐसा नहीं है कि कोई आदमी बिना संवेदनशीलता के पैदा होता है। यह तो असंभव है। संवेदनशीलता तो हम सभी लेकर आते हैं, कुछ लोग निखार लेते हैं और कुछ लोग बिना निखारे ही छोड़ रखते हैं। कुछ लोग सुव्यवस्थित कर लेते हैं, कुछ लोग अव्यवस्थित छोड़ देते हैं। कुछ लोग इस संवेदनशीलता कोशृंगारित कर लेते हैं, और कुछ लोग उपेक्षित छोड़ देते हैं। तुमने उपेक्षित छोड़ रखी है।
तुमने अपनी हृदय की वीणा पर ध्यान नहीं दिया। उस पर धूल जम गई है, कूड़ा-करकट बैठ गया है। शायद वीणा दब ही गई होगी। शायद अब वीणा का पता भी न चलता होगा। जैसे किसी दर्पण पर बहुत धूल जम जाए और दर्पण का कोई पता ही न चले। दर्पण मिट नहीं जाता। दर्पण अब भी वैसा का वैसा है, लेकिन अब उसमें प्रतिफलन की क्षमता नहीं है। अब कोई सामने से निकलेगा तो दर्पण उसे पकड़ नहीं पाएगा। दर्पण अंधा है। जरा सी धूल झाड़ने की बात है और दर्पण फिर सजीव हो उठेगा, सप्राण हो उठेगा। तब तुम जानोगे सत्य भी, तब तुम जानोगे शिव भी, तब तुम जानोगे सुंदर भी।
पूछते होः "प्रभु का भी मुझे कुछ आभास नहीं होता।"

कैसे होगा? और जो कहते हैं उन्हें होता है, उनमें से भी निन्यानबे झूठ
ही कहते हैं। इसलिए तुम उस चिंता में भी मत पड़ना कि तुम बड़े अल्पमत में हो। तुम्हारा ही बहुमत है। सौ व्यक्ति जो कहते हैं कि ईश्वर को हम मानते हैं, उनमें से निन्यानबे तो झूठ ही कहते हैं। और यह दुनिया का सबसे बड़ा झूठ है। और सब झूठ तो छोटे-छोटे हैं। किसी आदमी ने दो रुपये की जगह तीन रुपये बता दिए और किसी आदमी ने कुछ और छोटा-मोटा झूठ बोल दिया, कुछ कहा था कुछ बदल दिया; कमरे में दस लोग बैठे थे, उसने बाहर जाकर बारह बता दिए; घर में कुछ भी न था, बाहर ऐसे अकड़ कर चला कि जैसे लाखों पड़े हों... मगर ये सब छोटे झूठ हैं। इनका कोई मूल्य नहीं है। ये तो सपने के भीतर सपने हैं, झूठ के भीतर झूठ हैं, छोटे झूठ हैं। लेकिन जो व्यक्ति ईश्वर को बिना जाने कहता है कि ईश्वर है, उसने तो आखिरी झूठ बोल दिया! इसकी बेईमानी तो हद के बाहर हो गई। यह आदमी तो बिल्कुल अधार्मिक है।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, तुम्हारे मंदिर और मस्जिदों में जो लोग पाए जाते हैं, अधार्मिक लोग हैं। बाजारों में मिलने वाले लोगों से ज्यादा अधार्मिक! क्योंकि बाजार के झूठ हैं; मंदिर और मस्जिदों में जो झूठ बोले जा रहे हैं, ये आध्यात्मिक झूठ हैं। जब तक तुमने न जाना हो तब तक ईमानदारी इसी में है कि कहना कि अभी मैंने जाना नहीं। न तो यह कहना कि "ईश्वर है", क्योंकि वह भी झूठ है, तुम्हारे अनुभव के अनुकूल नहीं है। और न यह कहना कि "नहीं है", क्योंकि वह भी झूठ है, तुमने वह भी नहीं जाना।
और दुनिया में दो ही तरह के लोग हैं--आस्तिक और नास्तिक। एक तरह का झूठ हिंदुस्तान में बोला जाता है, एक तरह का झूठ रूस में बोला जाता है; मगर दोनों झूठ हैं। और इसीलिए यह एक अपूर्व घटना घटती है। एक झूठ से दूसरे झूठ पर जाने में देर भी नहीं लगती! रूस बड़ा आस्तिक देश था, उन्नीस सौ सत्रह के पहले, क्रांति के पहले। रूस ऐसे ही था जैसे भारत। बड़ा आस्तिक, बड़ा धार्मिक; मस्जिद, गुरुद्वारे, चर्च सारे रूस की भूमि पर फैले हुए थे। हर आदमी धार्मिक था। और तब एक चमत्कार हो गया, क्रांति हुई, और सारे के सारे लोग दस साल के भीतर नास्तिक हो गए! वे ही लोग! क्या हुआ, इतनी जल्दी कैसे बदल गए? एक झूठ से दूसरे झूठ पर जाने में अड़चन क्या? एक झूठ मानते थे आस्तिक का, मानने लगे नास्तिक का।
लोग तो उसके साथ हो जाते हैं जिसके हाथ में ताकत होती है! जिसकी लाठी उसकी भैंस। पहले ताकत थी जिनके हाथ में वे आस्तिक थे, तो लोग आस्तिक थे। अब ताकत आ गई उनके हाथ में जो नास्तिक हैं, तो लोग नास्तिक हो गए। लोग तो सदा पीछे चलते हैं, अनुकरण करते हैं। लोग तो नकली हैं। लोगों के चेहरे तो मुखौटे हैं। वे क्या कहते हैं, उनकी बातों का कुछ अर्थ नहीं है।
तो तुम इससे चिंतित मत हो जाना कि तुम कुछ बड़ी मुश्किल में हो, और बाकी लोग बड़ा आनंद पा रहे हैं। ईश्वर को जानने वाले, ईश्वर की पूजा करने वाले, प्रार्थना करने वाले, सत्यनारायण की कथाएं करने वाले, पंडित-पुजारियों के पास जाने वाले--तुम जैसे ही हैं, तुमसे भी गए-बीते हैं! क्योंकि तुम्हें कम से कम इतना तो बोध है कि मुझे कुछ अहसास नहीं होता। इतनी सच्चाई की किरण तो तुम्हारे पास है। इसी किरण का अगर सहारा पकड़ा तो एक दिन तुम परमसत्य तक पहुंच जाओगे।
लेकिन ख्याल रहे, सारे बात भीतर घटनी है। परमात्मा बाहर है, ऐसी तलाश में मत निकलो। न तो हिमालय पर मिलेगा, न काशी में मिलेगा, न काबा में मिलेगा। जब तुम्हारे भीतर का अंतःचक्षु खुलेगा, जब तुम्हारे भीतर की संवेदनशीलता प्रगाढ़ होगी--ऐसी प्रगाढ़ कि जो छिपा है वह प्रतीति में आने लगे।
इसे तुम ऐसा समझो, कभी तुमने ख्याल किया, अभी तुम मुझे सुन रहे हो... जब तुम मुझे सुन रहे हो तो पक्षियों की चहचहाहट तुम्हें सुनाई नहीं पड़ेगी। मैं चुप हो जाऊं, पक्षियों की चहचहाहट सुनाई पड़ने लगेगी। फिर एक और बात सोचोः मैं तो चुप हूं, लेकिन तुम भीतर बोल रहे हो, तो पक्षियों की चहचहाहट सुनाई पड़ रही, लेकिन अपनी परिपूर्णता में नहीं। अगर तुम भीतर भी चुप हो जाओ तो चहचहाहट में ऐसा सौंदर्य प्रकट होगा, रसविमुग्ध हो जाओगे। वह रसविमुग्धता ही परमात्मा का अनुभव है। परमात्मा कोई ऐसा थोड़े ही है कि

लिए धनुषबाण खड़े हैं! ... कि मुख पर बांसुरी रखे नृत्य की मुद्रा में खड़े हैं। पत्थर के हों तो ठीक, असली हों तो अब तक लकवा मार गया होगा! अब उनको लिटाओ, थोड़ी मालिश करो। उनके पैर अकड़ गए होंगे, वही मुद्रा पकड़ गई होगी। उनकी नसें जकड़ गई होंगी। कुछ उन पर भी दया करो!
कोई परमात्मा धनुषबाण लिए थोड़े ही खड़ा है, कि बांसुरी बजा रहा है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। यह जगत अपूर्व सौंदर्य से भरा है। यह जगत अपूर्व आनंद से लबालब है। यह जगत ऐसी शांति से तरंगित हो रहा है, ऐसे संगीत से आंदोलित हो रहा है कि जिसका हमें पता नहीं है। जब हम बिल्कुल चुप हो जाते हैं, तब वह संगीत एकदम से हम पर टूट पड़ता है। चारों तरफ से! न मालूम कितने ढंगों में, परमात्मा का मेघ हम पर बरस जाता है।
इसलिए बाहर मत खोजो। संवेदनशीलता खोजो। परमात्मा शब्द ही छोड़ दो, चलेगा। संवेदनशीलता खोजो। ज्यादा संवेदनशील बनो।
तुमने देखा, कुछ लोग होते हैं जिनका काम शराब को परखना होता है। उनके मुंह पर तुम जरा सा, दो बूंद शराब दे दो, उस शराब का स्वाद लेते ही बता सकेंगे कि किस ढंग की शराब है। इतना ही नहीं, उसमें जो बड़े पारखी होते हैं, वे कंपनी का नाम बता देंगे--कहां की बनी है, किस देश की बनी है। इतना ही नहीं, कितनी पुरानी है--सौ साल पुरानी है, कि दो सौ साल पुरानी है, कि तीन सौ साल पुरानी है--यह भी बता देंगे। सैकड़ों ढंग की शराबें दुनिया में हैं। सैकड़ों कंपनियां बनाती हैं। लेकिन पारिखी की जीभ इतनी संवेदनशील हो जाती है कि जरा-जरा से भेद पकड़ती है। तुम्हें तो कुछ पता न चलेगा। तुम्हें तो सब शराबें एक जैसी मालूम पड़ेंगी। अगर भेद भी पता चलेगा तो भी इतना स्पष्ट पता नहीं चलेगा कि तुम बता सको क्या क्या है।
चित्रकार जब बगीचे में आता है तो एक ही हरा रंग नहीं देखता; तुम जब आते
हो बगीचे में, तुम को दिखाई पड़ता है सब वृक्ष हरे हैं। चित्रकार जब बगीचे में आता है तो उसको लगता है--हजारों हरे रंग... । क्योंकि हरे रंग भी बहुत ढंग के हैं। कोई दो वृक्ष एक से हरे नहीं हैं। हरे रंग हैं, और हरे रंग हैं, और हरे रंग हैं, और उनमें बड़े भेद हैं, बारीक भेद हैं। मगर चित्रकार की आंख को पकड़ में आते हैं। साधारण आदमी तो देखता है कि ठीक है, हरियाली है। बस इतना देख लिया, काफी है।
जब कोई शास्त्रीय संगीत को सुनता है तो जिसके कान प्रवण हो गए हैं, जिसके पास शास्त्रीय संगीत को समझने की क्षमता आ गई है, तुम यह मत सोचना कि वह भी वही सुनता है जो तुम सुनते हो। वह बहुत कुछ सुनता है, जो तुम्हें कभी सुनाई नहीं पड़ेगा। वह स्वरों के बीच में जो शून्य है, उनको भी सुनता है। दो स्वरों के बीच में जो अंतराल है, उनको भी सुनता है। उन्हीं अंतरालों से तो गहरा संगीत निर्मित होता है। गहरा संगीत स्वर में नहीं होता--स्वरों के बीच में, दो स्वरों के बीच में जो खाली रिक्त स्थान होता है, उसमें होता है।
तुम मुझे सुन रहे हो, यह दो ढंग से सुन सकते हो। जो विद्यार्थी की तरह यहां आया है, वह मेरे शब्दों को सुनेगा। जो शिष्य की तरह यहां आया है, वह मेरे दो शब्दों के बीच में जो खाली जगह है उसको भी सुनेगा। और तब अर्थ बदल जाएंगे। तब अर्थ बिल्कुल ही भिन्न हो जाएंगे।
हर चीज में संवेदनशीलता बढ़ती चली जाए। तुम रंग देखो तो गहराई से देखो। तुम संगीत सुनो तो गहराई से सुनो। तुम नाचो तो गहराई से नाचो। तुम गाओ तो गहराई से गाओ। तुम्हारी गहराई बढ़ती चली जाए। गहराई का ही नाम परमात्मा है। जिस दिन गहराई इतनी हो जाएगी कि तुम पाओगे कि तुम अपने से ज्यादा गहराई में पहुंच गए--जहां तुम चूक जाते हो और गहराई नहीं चूकती; जहां तुम पिघल गए और गहराई नहीं चूकती।
रामकृष्ण कहते थेः दो नमक के पुतले एक मेले में गए। मेला भरा था समुद्र के तट पर। लोगों में विवाद छिड़ गया कि समुद्र कितना गहरा है? बैठे लोग अपने-अपने शास्त्र खोल कर, किसके शास्त्र में कितना गहरा लिखा है। पर सब बैठे घाट पर। नमक के एक पुतले ने कहाः यह भी क्या बकवास लगा रखी है! यहां बैठ कर कैसे तय होगा कि समुद्र कितना गहरा है? मैं डुबकी मारता हूं, अभी पता लगा कर आता हूं।

उसने डुबकी मारी, वह लौटा ही नहीं। फिर दूसरे ने कहाः मैं जरा उसका पता लगाऊं कि वह गया कहां? उसने भी डुबकी मारी, वह भी नहीं लौटा। मेला बसा था, रहा, उजड़ भी गया। लोग राह देखते-देखते थक भी गए, चले भी गए। रामकृष्ण कहते थे, अब तक वे नमक के पुतले लौटे नहीं। नमक के पुतले लौटें कैसे? गल गए! सागर का ही तो अंग थे। जैसे-जैसे गहरे गए होंगे, वैसे ही वैसे गलते गए होंगे। जब ऐसी गहराई आ गई होगी कि जहां बिल्कुल गल गए, लौटने का उपाय न रहा होगा। फिर भी गहराई पर गहराई थी, और भी गहराइयां थीं।
जहां मनुष्य गल जाता है, उसके आगे भी गहराइयां हैं। उन्हीं गहराइयों
का नाम परमात्मा है। परमात्मा को हम कभी पूरा चुका नहीं पाएंगे। किसी ने परमात्मा को कभी पूरा नहीं जाना, और न कोई कभी पूरा जानेगा। क्योंकि अगर कोई परमात्मा को पूरा जान ले तो उसका मतलब हुआ परमात्मा की सीमा है। किसी ने कभी परमात्मा को पूरा नहीं जाना।
लेकिन फिर हम पूर्ण ज्ञानी किसको कहते हैं? तुम मुश्किल में पड़ोगे कि
यह मैं क्या कह रहा हूं! अगर किसी ने परमात्मा को पूरा नहीं जाना, तो फिर हम पूर्ण ज्ञानी क्यों कहते हैं बुद्ध को, नानक को, कबीर को, सुंदरदास को? इनको हम पूर्ण ज्ञानी क्यों कहते हैं? इनको पूर्ण ज्ञानी कहने का दूसरा अर्थ है। इनको पूर्ण ज्ञानी कहने का यह अर्थ नहीं कि इन्होंने पूरा परमात्मा जाना; पूर्ण ज्ञानी कहने का अर्थ है, ये पूरे परमात्मा में डूबे। ये पूरे परमात्मा में लीन हुए। इन्होंने कुछ बचाया नहीं। ये परमात्मरूप हो गए। जैसे नमक का पुतला सागर में मिल कर एक हो गया। नमक के पुतले ने पूरा सागर जाना, पूरे सागर की गहराई नाप ली, ऐसा नहीं है। लेकिन क्या बचा? नमक का पुतला सागर के साथ एक हो गया... यही तो सागर को जान लेना है। जानने का और कोई उपाय नहीं है।
सौंदर्य का जन्म आदमी की आंखों में है
आकाश की शून्यता पंछी की पांखों में है
अगर आदमी खूबी न देखे तो सब खराब है
अगर पंछी न उड़े तो आकाश एक बड़ा घाव है
घोंसले की छाती का जो भर नहीं सकता
पंछी अगर उड़े तो आकाश
उसका कुछ कर नहीं सकता
आज के उदास सिद्धांतों को चीर डालो हिम्मत के तरकश में आशा के तीर डालो
हर अंधेरे में दीपक जलाओ
हर अमावस में दीवाली मनाओ
गले में अगर गीत है तो गाओ
चुप्पी की सांस टूट जाए उसे ऐसा उठाओ
उदार बनो, इतना मत परखो साथियों को
कसौटी पर नहीं कसते हैं पगले, बातियों को वे तो स्नेह में डुबा कर सुलगा दी जाती हैं इतना करो, वे तुम्हारे खातिर खुशी से चलेंगे दूर-दूर तक तुम्हारे साथ अंधेरे में चलेंगे जिंदगी आज की भी मीठी है, चखो
शर्त एक ही है भाई
दांतों को साफ और मजबूत रखो।
तुम्हारे भीतर की पचाने की क्षमता प्रगाढ़ हो।
शर्त एक ही है भाई
दांतों को साफ और मजबूत रखो!
परमात्मा को पचाने की क्षमता, परमात्मा को चबाने की क्षमता, परमात्मा
को पी जाने की क्षमता! तुम्हारे भीतर संवेदनशीलता बड़ी से बड़ी होती चली जाए। तुम्हारा पात्र बड़ा से बड़ा होता चला जाए।
तुम शून्य बनो, पूर्ण अपने से आएगा। लोग पूर्ण की तलाश में निकल जाते हैं, इसकी फिकर बिना किए कि हम अभी शून्य नहीं हैं। और जिंदगी को ऐसा बांटो भी मत कि यह साधु है वह असाधु है, यह सुंदर वह असुंदर, यह सत्य वह झूठ।

जिंदगी तो एक है, कौन साधु कौन असाधु, कौन सुंदर कौन असुंदर? जिन्होंने जाना है, उन्होंने सर्वांग को सुंदर पाया है। जिन्होंने जाना है, उन्होंने सारे अस्तित्व को परमात्मामय पाया है। उन्होंने राम में तो देखा ही है, रावण में भी देखा है।
रावण को जलाना बंद करो! रावण को जलाने में तुम बस इसकी ही घोषणा कर रहे
हो कि हम परमात्मा के भी खास-खास ढंग चुनेंगे, हम चुनाव करेंगे। परमात्मा ऐसा होगा तो चुनेंगे, वैसा होगा तो नहीं चुनेंगे। गोरा होगा तो चुनेंगे, काला होगा तो नहीं चुनेंगे। सुंदर होगा तो चुनेंगे, असुंदर होगा तो नहीं चुनेंगे।
परमात्मा सभी में व्याप्त है। बुरे से बुरे में भी उतना ही है जितना भले से भले में है। जिस दिन तुम्हें शुभ और अशुभ में, जीवन में और मृत्यु में, रोशनी में और अंधेरे में, सफलता में और विफलता में, सुख में और दुख में, सब में एक का ही अनुभव होने लगेगा। ऐसी जब तुम्हारी पात्रता होगी--तभी तुम कह पाओगे परमात्मा है, उसके पहले नहीं।
यह फल है यह पत्ती है यह सूरज है यह बत्ती है
यह दुर्बल है वह पुष्ट है यह साधु है वह दुष्ट है
यह कवि है वह दार्शनिक!
ये खंड हैं और खाने हैं लगभग मनमाने हैं
इनमें हम बंधें तो बंधें लेकिन यह मान कर
अपना अस्तित्व सिर्फ खाना नहीं
खानों में समाए रहना जीवन ने माना नहीं
जीवन तो पत्ती है फूल है फल है
सूरज है चंदा है साधु है सकल है
खानों में बंद रहना जिससे बनेगा नहीं
अपने को अपने तक मानना मनेगा नहीं
अपने से उस तक चलेगा वह
बीज से कुसुम तक फलेगा वह
बिखरेगा फैलेगा धूल बन जाएगा
चाहोगे बिछेगा वह पंथ पर चाहोगे बनेगा दूर्वा
धारा बनेगा, अभी फूल बन जाएगा!
वही है, एक ही है! वही फूल बन जाता है, वही धूल बन जाता है। फिर धूल से फूल उग आते हैं, फिर फूल धूल में समा जाते हैं। वही जीवन की तरंग में उठता है, वही मृत्यु में शांत सो जाता है। दिन में वही जागता है, रात वही सोता है। वही भटकता है, वही पहुंचता है। लेकिन उसे जानने को कोई तर्क, कोई शास्त्र काम का नहीं। एक चीज भर काम की है--तुम्हारी संवेदनशीलता बढ़े। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं बार-बारः जितने ज्यादा प्रेमपूर्ण बन सको बनो। प्रेम से तुम पाओगे, प्रेम से तुम जानोगे, प्रेम से तुम पहचानोगे। जो बात तुम्हारी करते हैं प्रभु रातों दिन
हमको लगती हैं उनकी बातें बहुत कठिन
वे जब देखो तब बहसें करते दिखते हैं
वे बड़े-बड़े ग्रंथों में तुमको लिखते हैं
वे तरह-तरह का रूप तुम्हारा बतलाते
वे तुम्हें खोजने घने जंगलों में जाते वे कहते हैं तुम छोटे हो अणु से कण से फिर कहते हैं विस्तृत हो जग के आंगन से प्रभु कुछ है ऐसे जिन्हें नहीं आता पढ़ना जो नहीं जानते लिखना या बातें गढ़ना
वे सुबह किरण फूटी बिस्तर से उठ जाते और अपने अनगढ़ स्वर में मन का सुख गाते हम उनको सुनते हैं तो तुम मिल जाते हो तुम उनके हाथों खेतों में खिल जाते हो

परमात्मा सब तरफ मौजूद है, जरा पंडित से बचना! परमात्मा सब तरफ से घेरे हुए है, जरा शास्त्र को विदा देना। और आस्तिक के शास्त्र हैं, नास्तिक के शास्त्र हैं; आस्तिक के पंडित हैं, नास्तिक के पंडित हैं। पांडित्य से बचो। पांडित्य का क्या अर्थ होता है? पांडित्य का अर्थ होता हैः बिना जाने जानने की भ्रांति। अनुभवी बनो। ज्ञान से बचो, तो तुम ज्ञानी बन सकोगे। शास्त्र से बचो तो तुम्हारा अपना शास्त्र आविर्भूत हो सकेगा। वेद और कुरान से बच सके तो तुम्हारे भीतर से आयतें उठेंगी; तुम्हारे भीतर कुरान जन्मेगा; तुम्हारे भीतर वेद की ऋचा उठेगी। तुम पाओगे भीतर उपनिषद जन्मने लगे। और तभी तुम सारे शास्त्रों का सार भी पा जाओगे। लेकिन सारी बात भीतर है। और सारी बात स्वयं को निखारने की है-- अपने मन
के दर्पण को निखारने की है, पखारने की!

दूसरा प्रश्नः आप हमें अक्सर समझाते हैं कि मन की बजाय हृदय की सुनो। लेकिन कोई कैसे जाने कि उसके मन की आवाज कौन है और उसके हृदय की आवाज कौन है? कुछ समझाने की अनुकंपा करें।

रेणुका! बात बिल्कुल सीधी-साफ है। जरा भी उलझन नहीं है।
मन सदा बाहर की तरफ ले जाने के इशारे करता है, हृदय सदा भीतर की तरफ ले जाने के इशारे करता है। जब कोई तुम्हारे भीतर बोले कि चलो बाहर, धन कमाओ, पद कमाओ, प्रतिष्ठा, महत्वाकांक्षा... तो समझना मन बोला; क्योंकि हृदय की ये आकांक्षाएं नहीं हैं। जब कोई कहे कि बैठो चुप, आंखें बंद करो, डूबो अपने में, डुबकी मारी अपने अस्तित्व में, अपने प्राणों की सुनो, भीतर जो नाद उठ रहा है उसमें पगो--तो जानना कि हृदय बोला है।
अंतर्यात्रा हृदय की सूचना है; बहिर्यात्रा, मन की। इसमें भूल का कोई कारण नहीं। जब द्वेष उठे तो जानना कि मन बोला और जब प्रेम उठे तो जानना कि हृदय बोला। जब विचार घेर लें तो जानना कि मन ने पकड़ा, और जब भावों की तरंगे उठें तो जानना कि मन ने पकड़ा, और जब भावों की तरंगें उठें तो जानना कि हृदय में हो। जब नकार उठे, नहीं कहने का मन हो, संदेह उठे, तो जानना कि मन बोल रहा है। क्योंकि मन का अस्त्र है नकार। जब प्रकार उठे, स्वीकार उठे, श्रद्धा उठे, तो जानना कि हृदय बोला। कठिनाई नहीं होगी।
चीजें बिल्कुल साफ-साफ हैं। उतनी ही साफ-साफ, जैसे सिर में दर्द होता
है तो तुम्हें पता चलता है सिर में दर्द है और पैर में कांटा गड़ता है तो तुम्हें पता चलता है कि पैर में कांटा गड़ा है। इतनी ही साफ-साफ हैं। शायद बाहर तुम किसी को समझा न पाओ। कोई अगर पूछे कि कैसे तुम्हें पक्का होता है कि पेट में दर्द है कि सिर में दर्द है? क्या लक्ष्ण है? तो तुम कहोगेः लक्षण की कोई जरूरत नहीं, मुझे पता चलता है कि सिर में दर्द है या पेट में दर्द है। इसमें लक्षण की क्या जरूरत है? तुम डाक्टर के पास जाओ और कहो कि मेरे सिर में दर्द है। वह कहेः पहले सिद्ध करो। तुम्हें कैसे पता चला? अगर कोई जोर देकर तुमसे पूछे कि कैसे पता चले, तो तुम्हें तो बहुत संदेह पैदा होने लगेगा कि पता नहीं पेट में है कि सिर में है? कोई अगर बहुत तुम्हें उलझाए, तो झंझट में डाल दे सकता है। लेकिन भीतर स्वर बिल्कुल साफ होते हैं।
इतनी ही साफ होती है बात हृदय की और मन की। जरा भी विभ्रम का कारण नहीं है। लेकिन विभ्रम पैदा हुआ है। और मैं समझा कि रेणुका का प्रश्न सार्थक है। बहुत लोगों को यह झंझट खड़ी होती है--कैसे समझें? पुरुषों को यह अक्सर हो जाता है कि वे मन को ही हृदय समझ लेते हैं। और स्त्रियों को अक्सर यह हो जाता है, वे हृदय को ही मन समझ लेती हैं। इसलिए पुरुष और स्त्रियों के बीच संवाद बड़ा मुश्किल होता है। पति-पत्नी के बीच संवाद कभी देखा है? होता ही नहीं। विवाद होता है, बोले कि विवाद... । धीरे-धीरे पति सीख ही लेता है कि बोलना ही नहीं।
मुल्ला नसरुद्दीन के बेटे को एक नाटक में एक पात्र मिला, काम करने का मौका मिला। विश्वविद्यालय में पढ़ता है। नाटक हुआ, घर आया, बाप से बोला कि मुझे भी पात्र मिला है, मुझे भी अभिनय करने का अवसर मिला है। पिता ने कहाः

किस बात का पात्र मिला है, तू क्या अभिनय करेगा? बेटे ने कहा कि मुझे पति बनने का अभिनय करना है। बाप ने कहाः तू फिकर मत कर, किए जा। कभी ऐसा भी समय आएगा कि तुझे बोलने वाला अभिनय भी मिलेगा। इसमें तो बोलने की कोई जरूरत आनेवाली नहीं है। मगर अयास करता चल।
पति बोलते ही नहीं, धीरे-धीरे चुप होने लगते हैं। इसी में सुरक्षा पाते हैं। कारण? बोलने से सिर्फ विवाद खड़ा होता है।
क्यों स्त्री और पुरुष के बीच संवाद नहीं हो पाता? दोनों के केंद्र अलग-अलग हैं। स्त्री भाव से जीती है, तर्क से नहीं। पुरुष तर्क से चलता है, विचार से चलता है, गणित से चलता है।
एक पति-पत्नी झगड़ रहे थे। पति ने कहाः बैठो, बैठ कर शांति से, विचारपूर्वक बात करें। पत्नी ने कहा कि रहने दो, विचारपूर्वक बात नहीं करनी है। क्योंकि जब भी विचारपूर्वक मैं बात करती हूं, मैं हार जाती हूं। सीधी बातें होने दो, विचार इत्यादि को बीच में लाने की जरूरत नहीं है, क्योंकि विचार से मुझे सदा हानि होती है।
पति सदा चाहता है कि विचारपूर्वक बात हो--शांति से बैठो, तुम अपनी कहो, मैं अपनी कहूं। विचारपूर्वक निर्णय करें। विचारपूर्वक निर्णय में स्त्री हार जाती है। इसलिए विचारपूर्वक निर्णय होने ही नहीं देती। तुम विचार कर रहे हो, वह रोना शुरू कर देती है। अब कोई सामने बैठ कर रो रहा हो, विचार कैसे करोगे? तुम विचार कर रहे हो, वह चीजें तोड़ना-फोड़ना शुरू कर देती है। अब कैसे विचार करोगे? वह सिर्फ विचार में बाधा डाल रही है। वह यह कह रही है कि विचार नहीं चलने देंगे। क्योंकि विचार जब भी करो, तभी हार हो जाती है। वह भाव को बीच में ला रही है। वे जो आंसू हैं, भाव हैं। वह जो चीजें पटकना है, वह भी भाव हैं। वह तुम्हें उद्विग्न कर रही है। वह तुम्हें कह रही है मस्तिष्क से उतरो नीचे; यह कोई गणित का सवाल नहीं है, यह पति-पत्नी का संबंध है। इसमें हिसाब-किताब नहीं चलेगा, चलाओ दफ्तर में हिसाब-किताब! यहां तो सीधी-सीधी बात होगी। सीधी-सीधी बात का मतलब होता है कि पति की बिल्कुल समझ में नहीं आती।
भाव का एक अलग लोक है, तर्क का एक अलग लोक है। और बातें बहुत साफ हैं। अड़चन इसलिए पैदा हो जाती है कि हमें बचपन से कभी साफ-साफ बताया नहीं जाता, स्पष्ट नहीं किया जाता। हमारे विद्यापीठ हृदय को कोई ध्यान नहीं देते। सम्यक शिक्षा कभी अगर होगी दुनिया में तो हम लोगों को बुद्धि को निष्णात करने की कला तो सिखाएंगे ही, हृदय को निखारने की कला भी सिखाएंगे। इतना ही नहीं, हम उनको यह भी समझाएंगे कि कब हृदय में उतरो, कब बुद्धि में जाओ, कहां किसकी जरूरत है। जब दुकान पर बैठे हो, बाजार में काम कर रहे हो, तो एक बात; जब घर आए हो, अपने बेटे से बात कर रहे हो, या अपनी पत्नी से बात कर रहे हो, तो दूसरी दुनिया है। यहां उपकरण हृदय का काम आएगा।
जब परमात्मा के सामने मंदिर में झुके हो तो यहां तर्क इत्यादि को हटा दो। यहां भाव की तरंगों को उठने दो। यहां प्रार्थना के स्वर गूंजने दो। यहां प्रेम आए, और तुम प्रेम में दीवाने हो जाओ तो ही प्रार्थना सार्थक होगी।
पर यह लक्षण ख्याल में रखो। मन बाहर जाने की बात करता है। द्वेष, प्रतिस्पर्धा, संघर्ष, प्रतियोगिता, तुलना, विचार का बवंडर खड़ा करता है। इनकार, "नहीं" सुगमता से आती है मन को, और संदेह स्वाभाविक है। संदेह मन का गुणधर्म है। जब संदेह उठे तो समझना कि तुम्हारा हृदय चुप है, तुम्हारा मस्तिष्क बोल रहा है। हृदय को बाहर से कुछ लेना-देना नहीं है। हृदय का सारा रस भीतर-भीतर है। हृदय तो ऐसा है जैसे वृक्ष की जड़ें जमीन के भीतर छिपी रहती हैं। शाखाएं ऊपर फैलती हैं, जड़ें भीतर छिपी रहती हैं। ऐसा ही हृदय भीतर छिपा है, उसमें तुम्हारे प्राणों की जड़ें हैं। जीवन का सारा सत्व वहीं से तुम पाते हो। जब भीतर जाने की बात उठे, तो हृदय की सुनना।
और जब भीतर जाने की बात उठे तो जान लेना कि हृदय ने पुकारा है। वहां द्वेष नहीं पैदा होता, क्योंकि वहां दूसरा नहीं है। दूसरा हो तो द्वेष, द्वैत हो तो द्वेष। वहां कोई दूसरा है ही नहीं, वहां बस अकेले तुम हो। वहां परम सुंदर एकांत है। उस एकांत में तो सिर्फ प्रेम ही तरंगें लेता है। यह

भी जान कर तुम्हें हैरानी होगी! क्योंकि तुमने अब तक जो प्रेम जाना है, वह भी द्वेष का ही दूसरा हिस्सा है। तुमने असली प्रेम नहीं जाना। तुमने हृदय का प्रेम नहीं जाना।
तुम्हारे प्रेम का मतलब इतना ही होता है कि इस आदमी से हमें द्वेष नहीं है। तब तुम कहते होः इससे हमारा प्रेम है। मगर जिससे तुम्हारा प्रेम है, एक क्षण में द्वेष हो जाता है। जरा सी बात खटक जाए, तुम्हारे अनुकूल न हो, बस दुश्मनी हो गई! मित्रता को शत्रुता में बदलने में कितनी देर लगती है? तुम्हारी मित्रता-शत्रुता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तुम्हारा प्रेम बहुत कुछ प्रेम जैसा नहीं है, द्वेष का ही विपरीत हिस्सा है। इसलिए जिससे तुम्हारा द्वेष होता है, उससे ही तुम्हारा द्वेष भी होता है, ईर्ष्या भी होती है।
मुल्ला नमरुद्दीन की पत्नी कल मुझे दिखाई पड़ी। आंखें सूजी-सूजी, चेहरा फुला-फुला। मैंने कहाः हुआ क्या? उसने कहा कि आपको पता नहीं कि मुल्ला बहुत बीमार हैं। तो मुझे जागना पड़ता है। तो मैंने पूछाः लेकिन मैंने तो सुना है कि रात जागने के लिए एक नर्स रख छोड़ी है। उसने कहा कि इसीलिए तो मुझे जागना पड़ता है। अब रात भर नर्स पर नजर रखो। बीमार भला है, बिल्कुल मरणासन्न है, मगर इससे क्या फर्क पड़ता है तो वह मुल्ला नसरुद्दीन! रात एकांत में छोड़ना नर्स के पास... नर्स नहीं थी तो मैं कभी-कभी थोड़ा-बहुत सो भी लेती थी, नर्स आई तो मुझे बैठे रहना पड़ता है।
प्रेम में तुम्हारे भरोसा कहां है, श्रद्धा कहां है? तुम्हारा प्रेम
तो ईर्ष्या है, जलन है। तुम्हारा प्रेम तो एक तरह का बंधन है। नहीं, इस प्रेम की मैं बात नहीं कर रहा हूं। हृदय में जब प्रेम का आविर्भाव होता है तो वह प्रेम एक दशा है, संबंध नहीं। उसका किसी से कुछ लेना-देना नहीं है... कि पति से प्रेम, कि पत्नी से प्रेम, कि बेटे से, कि मां से, कि भाई से। जब तुम्हारे हृदय में प्रेम का जन्म होता है तो सिर्फ प्रेम का एक भाव होता है। तुम वृक्ष को भी छुओगे तो तुम्हारे हाथ में प्रेम होता है। तुम पत्थर को भी उठाओगे तो तुम्हारे हाथ में प्रेम होता है। तुम नदी में स्नान करने जाओगे तो नदी के प्रति तुम्हारे भीतर में प्रेम बहता होता है। तुम अकेले बैठोगे तो प्रेम की सुवास उड़ती रहती है। जो ले ले तुम्हारा प्रेम तब किसी के प्रति नवेदित नहीं होता, चारों ओर बहता है। बाढ़ आई होती है... कंजूस नहीं होता, कृपण नहीं होता। तुम ऐसे घबड़ाए नहीं होते कि कहीं इसको दे दिया, तो फिर उसको क्या देंगे? प्रेम कोई ऐसी चीज थोड़े ही है।
प्रेम का अर्थशास्त्र भिन्न है। साधारण अर्थशास्त्र में तुम्हारे पास अगर पांच रुपये हैं और तुमने किसी को एक दे दिया, तो चार ही बचे। इसीलिए तुम्हारे साधारण जीवन में जो प्रेम है उसमें ईर्ष्या है। पत्नी घबड़ाई हुई है कि पति अगर किसी ओर से प्रेम से हंस कर बोल लिया तो फिर इतना कम हो गया। अब जब वह मेरे पास आएगा, तो इतना नहीं हंसेगा; इतनी हंसी तो निकल ही गई। कारतूस खाली है, अब बैठे रहो कारतूस खाली लिए।
तुम सोचते हो प्रेम कोई ऐसी चीज है कि करने से घटता है? तो तुम्हें प्रेम का पता नहीं है। फिर तुमने प्रेम का धोखा खा लिया है। हृदय का प्रेम जब उठता है तो जितना दो उतना बढ़ता है; जितना बांटो उतना बढ़ता है। अगर पति दिन भर हंसता रहा है, दफ्तर में भी हंसा है, मित्रों के साथ भी मिला है, प्रसन्न रहा है, तो पत्नी के पास और भी ज्यादा प्रसन्न रहेगा। उसके दिन भर की प्रसन्नता उसे प्रसन्न अैर ताजा रखेगी, आनंदित रखेगी। पत्नी अगर दिन भर प्रसन्न रही है, सहेलियों से मिली है, मित्रों से मिली है, बात की है, गीत गाए हैं, तो पति जब घर आएगा तो प्रसन्न होगी। अभी तो हालत उलटी है, दिन भर वह उदास बैठी है। दिन भर की उदासी इकट्ठी हो जाती है, बदला किससे लो? वह राह देखती है कि आओ। पति दिन भर हंसा नहीं है, अब अगर हंसना भी चाहे तो ओंठ साथ न देंगे, हंसना चाहे तो हंसी न निकलेगी।
ऐसे ही समझो कि घर के बाहर गए कि श्वास लेनी बंद कर दी, फिर घर क्या लौटोगे? मुर्दा लौटोगे। वह तो अच्छा कहो कि पत्नी यह नहीं कहती तुमसे कि घर के बाहर जाओ तो श्वास मत लेना। जब आओ श्वास सदा मेरे पास लेना। और पति पत्नियों से नहीं कहते कि देख, अब मैं जा रहा हूं, अब तू श्वास बंद कर दे; जब

मैं आऊंगा, जब हम दोनों पास-पास बैठेंगे, खूब प्रेम में मगन होंगे, श्वास लेंगे।
मगर प्रेम के साथ यही हो रहा है। प्रेम श्वास है। जैसे शरीर श्वास से जीता है, ऐसे प्रेम से आत्मा जीती है। हृदय के दो अंग हैं। एक तो फेफड़े हैं, उन तक श्वास जाती है। फेफड़ों के पीछे ही छिपा हुआ अदृश्य हृदय है, उस तक प्रेम जाता है। श्वास कम हो, देह निर्बल होने लगती है; प्रेम कम हो, आत्मा निर्बल होने लगती है। एक ऐसे प्रेम की जब तुम्हारे भीतर अभिव्यक्ति होने लगे, जिस प्रेम को बांटने में कंजूसी नहीं है, आनंद है; और जिस प्रेम में किसी एक दिशा में निवेदन नहीं है, सभी दिशाओं में बहाव है--उस दिन जानना, हृदय का प्रेम जन्मा।
यही प्रेम धीरे-धीरे प्रार्थना बनता है। और यह प्रेम जन्म सकता है तभी, जब तुम्हारे भीतर श्रद्धा हो। तुम्हारा तो प्रेम भी संदेह ही होता है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन सांझ घर लौटा। पत्नी ने उसके सारे कपड़े देखे, कोट देखा--कोई बाल इत्यादि नहीं मिल जाए, अक्सर मिल जाता है। मिल जाता है तो झंझट शुरू हो जाती है। उस दिन बाल इत्यादि नहीं मिला, मुल्ला भी बिल्कुल सफाई करके आया था। खूब झड़-झड़ा कर आया था। बाल इत्यादि नहीं मिला। आज सोचता था कोई झंझट नहीं होगी, लेकिन एकदम पत्नी ने सिर पीट लिया और एकदम चिल्लाने लगी, रोने लगी। मुल्ला ने कहाः भई, न बाल मिला न कुछ, तू किसलिए रो रही, किसलिए चिल्ला रही? उसने कहाः अब तो हद हो गई, मालूम होता है अब तुम गंजी औरतों के साथ भी जाने लगे।
संदेह तो संदेह है। हालांकि गंजी औरतें खोजना बहुत मुश्किल मामला है। मगर संदेह संदेह है।
तुम्हारे प्रेम में संदेह ही संदेह है, इसलिए वह प्रेम हृदय का नहीं है। जहां श्रद्धा का आविर्भाव होता है, जहां सब स्वीकार करने की क्षमता होती है, पात्रता होती है--फिर तुम्हें जरा भी भेद करने में अड़चन न आएगी। मन और हृदय की भाषाएं बिल्कुल अलग-अलग हैं।
हालांकि रेणुका, मैं जानता हूं लोगों के भीतर सब अस्त-व्यस्त हो गया है, खिचड़ी हो गया है। उनके भीतर कुछ भी साफ-सुथरा नहीं है। जो चीजें जहां होनी चाहिए वहां नहीं हैं। जैसे भूकंप आया हो और घर की चीजें सब अस्त-व्यस्त हो गई हों--ऐसा आदमी सदियों से भूकंप से गुजरता रहा है। सब अस्त-व्यस्त हो गया है। हाथ की जगह पैर हो गए हैं, पैर की जगह हाथ हो गए हैं। हृदय की जगह सिर हो गया है, सिर की जगह हृदय हो गया है। मनुष्य एक अराजकता हो गया है, इसलिए ऐसे सवाल उठते हैं।
लेकिन, अगर जरा समझपूर्वक, होशपूर्वक अपने भीतर खोज-बीन करना शुरू करो तो चीजें फिर सजाई जा सकती हैं, फिर संवारी जा सकती हैं। इसी सजाने और संवारने को मैं संन्यास कह रहा हूं।
संन्यास से मेरा अर्थ इतना ही है कि तुम्हारे जीवन में एक संगीतपूर्ण छंद पैदा हो जाए, तुम सुव्यवस्थित हो जाओ। तुम्हारा मस्तिष्क मस्तिष्क हो, तुम्हारा हृदय हृदय हो। जब मस्तिष्क की जरूरत हो तो तुम उसका उपयोग कर सको। बेकार नहीं है, उसकी जरूरत है। अब कोई हृदय से गणित के सवाल हल नहीं किए जा सकते। लाख रोओ, गणित का सवाल हल नहीं होगा। अगर कोई वैज्ञानिक पहेली सुलझाना है तो कितना ही नाचो, इससे कोई वैज्ञानिक पहेली नहीं सुलझेगी, और उलझ जाए भला। लेकिन अगर परमात्मा की खोज करनी है तो नाचने से करीब पहुंचोगे। और किसी तरह कोई करीब पहुंचता ही नहीं है। नाचनेवाले ही उसके करीब पहुंचते हैं। वही उसकी यात्रा है।
बाहर की दुनिया के संबंध में अगर कुछ जानना हो--अर्थात विज्ञान--तो मन, बुद्धि काम देती है; और परमात्मा के संबंध में अगर कुछ जानना हो--अर्थात धर्म--तो हृदय काम देता है। दोनों की जरूरत है। मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि हृदय को ही चुनो और मस्तिष्क को बिल्कुल फेंक दो। इतना ही कह रहा हूं कि तुम्हारी इतनी मालकियत होनी चाहिए कि जब जिसकी जरूरत हो उसका उपाय कर सको। किसी की भी तुम्हारे ऊपर मालकियत नहीं होनी चाहिए। यही स्वामित्व

का अर्थ होता है कि जब मुझे चलना हो तो पैर का उपयोग करूं, जब मुझे बैठना हो तो पैर का उपयोग बंद कर दूं।
अब एक सज्जन बैठे हैं, वे पैर चलाए जा रहे हैं। कुछ लोग बैठे-बैठे चलाते रहते हैं। कुर्सी पर बैठे हैं, मगर उनकी टांगें चल रही हैं। इसका मतलब क्या है?
इनकी टांगें पागल हो गई हैं। इनको पक्का पता नहीं समझ में आ रहा है कि
ये बैठे हैं कि चल रहे हैं। अब पैर रुकने चाहिए। जब चलो तो चलने चाहिए। अगर बैठे-बैठे पैर चलते रहे तो जब चलने का मौका आएगा तब तुम पाओगे कि थके ही हुए हो। अब चलें कैसे? जब काम नहीं है बुद्धि का, तब भी बुद्धि चलती रहती है, तो जब काम आता है तब थके-मांदे होते हैं, तब बुद्धि काम नहीं करती। उतना ही काम लो, जब काम हो--तुम सदा पाओगे तुम्हारे सब अंग ताजे हैं। तुम सदा पाओगे तुम्हारे सारे यंत्र सुचारु रूप से काम कर रहे हैं। और जब सारे जीवन के यंत्र सुचारु रूप से काम करते हैं तो उनमें एक छंद होता है, एक नाद होता है। वही नाद संन्यास है।

तीसरा प्रश्नः जगत में सर्वाधिक मूल्यवान क्या है?

प्रेम! परमात्मा भी उतना मूल्यवान नहीं है। क्योंकि प्रेम मिल जाए तो परमात्मा मिल ही जाता है। और प्रेम के बिना परमात्मा मिलता नहीं। प्रेम सर्वाधिक मूल्यवान है, प्रार्थना भी उतनी मूल्यवान नहीं। क्योंकि जिसने प्रेम नहीं जाना वह प्रार्थना से परिचित ही नहीं हो सकेगा। प्रेम ही शुद्ध हो-हो कर प्रार्थना बनता है। प्रेम ही निखर कर प्रार्थना बनता है। प्रेम समझो कच्ची प्रार्थना, प्रार्थना पका प्रेम।
इस पार उस पार
एक ही कगार
इस पार उस पार
आर-पार धार
इस पार उस पार
धार औ" कगार
इस पार उस पार
प्यार, प्यार, प्यार!
इस पार भी प्रेम महत्वपूर्ण है और उस पार भी प्रेम महत्वपूर्ण है। इस पार को उस पार से जोड़ने वाला ही प्रेम है। प्रेम सेतु है। प्रेम है इंद्रधनुष, जो जोड़ता है पदार्थ को परमात्मा से; जो जोड़ता है देह को आत्मा से। दृश्य और अदृश्य के बीच संवाद है, शब्द और मूल्य के बीच।
जलती ज्योति नहीं
जलता स्नेह,
यह जो फैला प्रकाश
समर्पित
अपरिमेय
मानव का मानव के लिए
अमिट नेह!
प्रेम करो। मनुष्य से शुरू करो, मगर रुक मत जाना, फैलता जाए... ! जैसे कोई कंकड़ फेंकता है झील में, पहले तो छोटी सी लहर उठती है वर्तुल, फिर फैलती जाती है लहर, फैलती जाती है लहर, दूर-दिगंत तक फैलती चली जाती है, अनंत के किनारों तक फैलती चली जाती है।
मनुष्य से प्रेम शुरू करो, क्योंकि वह तुम्हारे निकटतम है, लेकिन वहां रुक मत जाना। फिर फैलने दो प्रेम को। फिर पशु भी उसमें समाविष्ट हो जाएं। फिर पक्षी भी समाविष्ट हो जाएं। फिर पौधे भी समाविष्ट हो जाएं। फिर पत्थर भी समाविष्ट हो जाएं। इसीलिए हमने परमात्मा की मूर्तियां पत्थर की बनाई हैं, ताकि तुम्हारे प्रेम में पत्थर भी समाविष्ट हो जाए। मगर तुम ऐसे अदभुत हो कि तुम मूल तो भूल ही जाते हो, तुम कुछ का कुछ करने लगते हो। पत्थर को समाविष्ट करना है प्रेम में। इसलिए पत्थर की मूर्तियां बनाई हैं ताकि

तुम्हें याद रहे कि प्रेम जब तक पत्थर तक न पहुंच जाए तब तक समझना अभी यात्रा अधूरी है। और जहां से भी प्रेम सीखने की संभावना हो, जैसे भी, सीखो। प्यार की सीमा नहीं है
मुक्त स्वर में कह सकूं वह शक्ति दे
प्यार के मेरे पुजारी मन
लुटा दूं प्यार पर सब कुछ मुझे वह भक्ति दे
फूल जैसे खिल गया
सीमा नहीं बांधी कि यह तोड़े कि वह तोड़े उसी-जैसा लगा ले कंठ से हर कोई
न सोचूं बात नाते की कि यह जोड़े कि वह जोड़े जिसे छू दूं वही
आभा समेटे स्वर्ण की सब धन्य हो जाए
सभी का मैं बनूं
सब बन सकें मेरे, नहीं कुछ अन्य हो पाए
बसे वह प्यार की बस्ती
कि जिसमें हर किसी का दुख मेरा शूल हो जाए
मुझे तिरसूल भी मारे कोई यदि दूर करने में उसे
तो फूल हो जाए!
प्रेम चमत्कार है। प्रेम जादू है। अगर हृदय प्रेम से भरा हो, तुम्हारे लिए कांटे भी फूल हो जाते हैं। और अगर हृदय प्रेम से शून्य हो तो फूल भी कांटे हो जाते हैं। जिन्होंने प्रेम का जादू सीखा उन्होंने सारी दुनिया को रूपांतरित कर लिया है। यह सारा जगत उनके लिए परमात्ममय हो जाता है।
लेकिन धर्म के नाम पर इतने झगड़े खड़े हुए हैं। हिंदू मुसलमान को काटता है, मुसलमान हिंदू को काटता है। कोई मंदिर तोड़ता है, कोई मस्जिद जलाता है। आदमी के पागलपन का कोई अंत नहीं मालूम होता। धर्म का तो सार प्रेम है। यह कैसा धर्म? ऐसे धर्मों को जाने दो। ऐसे धर्मों को विदा दो। ऐसे धर्मों के जाने से पृथ्वी धन्यभागी होगी। इन पंडित-पुजारियों को जाने दो इनको अलविदा दो। काफी हो चुका उपद्रव। अब आदमी से आदमी के जुड़ने की बात हो। यहां देखते हो तुम, सारे धर्मों के लोग हैं, सारी जातियों के लोग हैं, सारे रंगों के लोग हैं। न कोई विवाद है, न कोई झगड़ा है, न कोई उपद्रव है। अगर यह छोटे-से जमात में हो सकता है तो यही बड़ी जमात में हो सकता है, यह पूरी पृथ्वी पर हो सकता है। क्योंकि इन्हीं आदमियों से तो सारी पृथ्वी बनी है। कोई और अलग तरह के आदमी थोड़े ही हैं, इसी तरह के आदमी हैं। तुम जैसे ही लोग पृथ्वी पर हैं। लेकिन गलत धारणाओं ने, गलत सिद्धांतों ने, गलत शिक्षण ने, गलत संस्कारों ने एक-दूसरे का दुश्मन बना दिया है। यहां तुम्हें ख्याल भी नहीं आता कि तुम्हारे पड़ोस में जो बैठा है वह हिंदू है कि मुसलमान है कि ईसाई है कि जैन है कि बौद्ध है।
शुभ घड़ी होगी वह, जब प्रेम सारी पृथ्वी पर ऐसा फैले कि प्रेम ही एकमात्र धर्म रह जाए और प्रेम के द्वारा ही एकमात्र प्रार्थना का जन्म हो और लोग प्रेम से ही परमात्मा को पाने चलें। जिस दिन काबा और काशी एक ही प्रेम के तीर्थ हों, जिस दिन मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा जो करीब पड़ जाए वहीं जाकर आदमी नाच ले, प्रेम कर ले, प्रभु को स्मरण कर ले--तो इस पृथ्वी का रूपांतरण हो सकता है।
और होना अत्यंत जरूरी है अब। या तो आदमी बदलेगा या आदमी मरेगा। रोग उस सीमा पर पहुंच गया है कि अब बिना इलाज के काम चल नहीं सकता। यह आदमी इतना सड़ गया है अगर ऐसा ही आदमी रहा तो यह जमीन खाली हो जाएगी। यह जमीन लाशों से पट जाएगी। या तो मनुष्य समाप्त होगा और आत्महत्या कर लेगा, अपनी घृणा में डूब कर खुद ही मर जाएगा। अपने धर्मों की राजनीति और अपने राजनीतिज्ञों के उपद्रव में खुद ही भस्मीभूत हो जाएगा। और या फिर इस दुर्घटना के आने के कारण जागेगा, सजग होगा और रूपांतरित होगा। लेकिन अब आदमी जैसा अब तक था वैसा ही रहनेवाला नहीं है।

मैं तुम्हें जो संकेत दे रहा हूं, वे नये आदमी के संकेत हैं--नया आदमी कैसा होना चाहिए? और नये आदमी का धर्म क्या होगा? इस पृथ्वी पर अब कैसी प्रार्थना की भाव-भंगिमा बनेगी; बननी चाहिए, जो आदमी को बचा सकती है। यह छोटा सा प्रयोग विराट हो सकता है।
सभी प्रयोग प्रारंभ में छोटे-छोटे होते हैं। जीसस के साथ सौ-पचास लोग थे, कोई बड़ी संख्या न थी। बुद्ध के साथ कुछ हजार लोग थे, कोई बहुत बड़ी संख्या न थी। लेकिन प्रयोग फैले। पृथ्वी के कोने-कोने तक गए। यह छोटा सा प्रयोग... और तुम धन्यभागी हो कि इसमें भागीदार हो! आज तुम्हें पता भी न हो। जीसस के साथ जो चले थे उन्हें क्या पता था कि वे किस महत प्रयोग में भाग ले रहे हैं। बुद्ध के साथ जो लोग चले थे, उन्हें क्या खबर थी? तुम्हें भी कुछ खबर नहीं है। तुम तो अपने-अपने कारणों से आ गए हो। किसी को छोटी सी तकलीफ है, किसी को चिंता है, किसी को और दुख है। तुम अपने दुखों को मिटाने आ गए हो। तुम्हारे दुःख तो मिट ही जाएंगे। तुम्हारे दुख मिट ही रहे हैं।
मेरे सामने एक और बड़ा चित्र भी है। उसमें पूरी मनुष्यता समाविष्ट है।
एक और बड़ा दुख है, जो हर आदमी को घेरे हुए है। वह भी मिट सकता है, अगर हम आनंद का, प्रेम का नाचता हुआ धर्म पैदा कर सकें--जो विशेषण न माने, जो सीमाएं न माने।
और सीमाएं बड़ी क्षुद्र बातों से बनती हैं। वे सभी क्षुद्र बातें एक
ही बात की खबर देती हैं कि प्रेम कहीं कम पड़ गया होगा। इसलिए मैं कहता हूंः प्रेम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है इस जगत में। सीखो प्रेम को। लोगों को काटो मत, जोड़ो।
किरणों को न काटो
ज्योति के द्वार नहीं पाटो
हम सब हैं एक प्राण
एक मन
लक्ष्य दीन जन का
लाख-लाख टुकड़ों में न बांटो!
मगर अब तक यही हआ है। आदमी वैसे ही दरिद्र है, वैसे ही दीन है, वैसे ही दुखी है, और उसको बांटते चले जाओ... । बांटो मत, जोड़ो। तोड़ो मत। और जहां से भी आनंद के और प्रेम के स्वर सीखे जा सकें, वहीं से सीखो।
चलो उषा के पास
उसी से मांगें टटका हास
किरन का फूलों का
चलो उषा के पास
उसी से मांगें
नीला गगन
सुनहली सुबह
मोतिया घास
चलो शाम के पास
कि उगते तारागन ओढ़ें
चांदनी की चादर तानें
लगाएं हंसने में होड़ें
चांद से फूलों से
लहर से कूलों से
चलो रात के पास
अंधेरे को अपना समझें
उदासी को सपना समझें
दुख को कर डालें आनंद
सुबह से लेकर मन के रंग
रात से लेकर मन के छंद!
चारों तरफ मौजूद है बहुत कुछ। जरा जुटाओ, आयोजन करो। सब साज मौजूद हैं, जमाना है, बिठाना है--विराट गीत पैदा हो सकता है। अपूर्व प्रेम की लपट जन्म सकती है।

चलो उषा के पास
उसी से मांगे टटका हास
आदमी तो हंसना भूल गया है, अब सुबह से मांग लें हंसी थोड़ी। सुबह के पास खूब हंसी है। सूरज आता है और सारे फूल हंसने लगते हैं। सुबह आया और सारे पक्षी हंसने लगते हैं।
चलो उषा के पास
उसी से मांगें टटका हास
किरन का फूलों का
चलो उषा के पास
उसी से मांगें
नीला गगन
आदमी तो आंखें गड़ा लिया है जमीन में, आकाश की तरफ देखता ही नहीं। क्षुद्र में लीन हो गया, विराट की उसे पुकार सुनाई ही नहीं पड़ती।
चलो उषा के पास
उसी से मांगें
नीला गगन
सुनहली सुबह
मोतिया घास
आदमी तो हीरे-जवाहरातों में उलझ गया है। कौन देखता है कि मोतिया घास
का सौंदर्य क्या है, कि जब घास पर मोती जम जाते हैं सुबह ओस के और सारे मोतियों को फीका कर जाते हैं! फूलों का सौंदर्य कौन देखे! कौन पूछे बेला से? कौन पूछे गुलाब से? लोग तो पत्थरों के पीछे पड़े हैं।
चलो उषा के पास
उसी से मांगें
नीला गगन
सुनहली सुबह
मोतिया घास
चलो शाम के पास
कि उगते तारागन ओढ़ें
रात आकाश से पूछो। रामनाम की चदरिया ओढ़ने से कुछ भी न होगा। उगते तारागन ओढ़ें। सारा आकाश तारों से भर जाता है, कभी इसकी चादर ओढ़ो और नाचो। यह चादर परमात्मा की है। परमात्मा न भी दिखाई पड़े, चादर तो दिखाई पड़ती है, इसे ओढ़ो और नाचो! इसे ओढ़ कर नाचने में शायद उससे भी मिलना हो जाए। शायद उसकी थोड़ी गंध इस चादर में भी हो। है ही, उसी की रोशनी है।
चलो शाम के पास
कि उगते तारागन ओढ़ें
चांदनी की चादर तानें
लगाएं हंसने में होड़ें
लोगों ने रोने में होड़ें लगा रखी हैं! लोग हिंसा में, प्रतिहिंसा में होड़ें लगा बैठे हैं। हंसो, हंसाओ! दो घड़ी जीवन के, हंसने से पाटो इस रास्ते को।
लगाए हंसने में होड़ें
चांद से फूलों से
लहर से कूलों से
हराओ फूलों को हंसने से, हराना ही है तो।... चले चुनाव लड़ने! चला मुरारी हीरो बनने! ... बचो! और अब तो मुरारी दिल्ली पहुंच गए। अब तो मुरारी हीरो भी नहीं बनते। अब तो वे कहते हैंः मैं हूं प्रधानमंत्री, और कोई भी नहीं! ... फूलों से करो प्रतिस्पर्धा, तारों से करो प्रतिस्पर्धा। मजा आ जाएगा, रस बह जाएगा, प्रेम उमगेगा। तुम भी फूलों-से खिलोगे। तुम भी तारों- से हंसोगे। आदमी की यह वसीयत है। यह उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। इस अधिकार को ऐसे ही छोड़ मत दो। यह अवसर ऐसा ही खो न जाए।
चलो रात के पास
अंधेरे को अपना समझें

अंधेरे की शांति देखी? अंधेरे का सन्नाटा देखा? अंधेरे का संगीत सुना? अंधेरे का विस्तार देखा? अंधेरे की शाश्वतता देखी? न आदि न अंत... ! चलो रात के पास
अंधेरे को अपना समझें
दुख को कर डालें आनंद
सुबह से लेकर मन के रंग
रात से लेकर मन के छंद!
ऐसा मैं तुम्हें बनाना चाहता हूं। ऐसा तुम्हें देना चाहता हूं छंद, ऐसा रंग, ऐसा गीत, ऐसा राग! ऐसा तुम्हें देना चाहता हूं संन्यास, जो उत्सवपूर्ण हो; जो महोत्सव हो। लेकिन उस महोत्सव का केंद्र प्रेम ही हो सकता है, और कुछ नहीं।
तुम पूछते होः "जगत में सर्वाधिक मूल्यवान क्या है?"
मैं तुमसे कहता हूंः प्रेम। और प्रेम उतरा कि परमात्मा उतरा।
आज उतरी किरन मन कमल हो गया
आज आंखों में पानी सजल हो गया
पास आई किरन हास मन में घुला
रूप चंदा का जैसे गगन में घुला
सब निखर कर धुला नभ विमल हो गया
आज उतरी किरन मन कमल हो गया
इस किरन को बसा लें अगर प्राण में
इस समय को समेटें अगर गान में
गूंथ लें कर्म में, रोज के धर्म में
तो सबल प्राण दिन यह सफल हो गया
आज उतरी किरन मन कमल हो गया
और इसलिए चाहता हूं कि तुम्हारा संन्यास तुम्हारे तन-प्राण में, तुम्हारे जीवन में, तुम्हारे व्यवहार में, तुम्हारे रोजमर्रा के दैनंदिन कामों में जुड़ जाए, संयुक्त हो जाए; उससे अलग न हो, पृथक न हो।
गूंथ लें कर्म में रोज के धर्म में
तो सबल प्राण दिन यह सफल हो गया
आज उतरी किरण मन कमल हो गया!

अंतिम प्रश्नः ओशो! अब दुल्हन हूं अपने पिया की! आपका आशीर्वाद।

स्वामी आनंद वैराग्य! यही घड़ी है, शुभ घड़ी! जिसकी प्रत्येक व्यक्ति प्रतीक्षा कर रहा है। जब कह सकेः "अब दुल्हन हूं अपने पिया की!" जब अपने को समर्पित कर सके। जब उस प्यारे के पैर पकड़ ले।
और प्यार हो तो ही उसके पैर दिखाई पड़ सकते हैं, क्योंकि वे पैर स्थूल नहीं हैं। चमड़े की आंखों से दिखाई नहीं पड़ते हैं; प्रेम की सूक्ष्म आंखें चाहिए तो ही दिखाई पड़ते हैं। प्यारा तो सामने ही खड़ा है, तुम्हें दिखाई नहीं पड़ रहा है; दिखाई पड़ जाए तो धन्य घड़ी आ गई। और तब सिवाय इसके क्या बचता है कि हम नाचें मगन होकर!
"अब दुल्हन हूं अपने पिया की!"
एक ही पुरुष है इस जगत में--परमात्मा; शेष सब गोपियां हैं। ऐसा भक्ति
का शास्त्र। ऐसा भक्ति का अपूर्व सूत्र!
मीरा गई वृंदावन। तो वृंदावन में एक मंदिर था, बड़ा मंदिर, सबसे बड़ा मंदिर, कृष्ण का मंदिर। उस मंदिर का जो पुजारी था, उसने स्त्रियों को न देखने का व्रत ले रखा था। कोई स्त्री मंदिर में अंदर नहीं जा सकती थी। जब पुजारी ने स्त्री न देखने का व्रत ले रखा हो तो कोई स्त्री मंदिर के भीतर प्रवेश नहीं कर सकती थी। कोई स्त्री कभी प्रवेश नहीं की थी। मीरा तो नाचती हुई मंदिर में चली गई। द्वारपाल खड़े भी थे, मगर मीरा का नाच ऐसा था कि द्वारपाल नाच में भूल ही गए। वे मीरा के स्वर ऐसे थे कि मगन हो गए, द्वारपाल भी नाचने लगे! पहली बार कृष्ण का मंदिर, कृष्ण का मंदिर हुआः नाच आया, गीत आया, मीरा आई! मीरा के बिना मंदिर खाली ही रहा होगा, मंदिर का

देवता भी वहां नहीं रहा होगा, दुल्हन ही न हो तो दूल्हा भी वहां क्या करे? आज दुल्हन आई, मंदिर सप्राण हुआ, सजीव हुआ।
द्वारपाल भूल गए रोकना कि स्त्री को भीतर जाने की मनाही है। और मीरा
तो ऐसी मस्ती में थी कि कोई रोकता तो रुकने वाली थी भी नहीं। ऐसे लोग किसी को रुकने वाले थोड़े ही होते हैं। वह तो भीतर पहुंच गई, पूजा चलती थी। पुजारी के हाथ से थाल गिर गया, स्त्री दिखाई पड़ गई! नारज हो गया पुजारी।
चिल्लायाः बदतमीज स्त्री! भीतर कैसे आई?
और मीरा हंसने लगी, और ऐसी हंसी कि जैसे फूल झर जाएं वृक्षों से और कहने लगी कि मैं तो सोचती थी कि कृष्ण के अतिरिक्त और कोई पुरुष नहीं है। तो तुम भी एक पुरुष हो? तो दुनिया में दो पुरुष हुए--एक कृष्ण और एक तुम। मैं तो सोचती थी उसके भक्त सभी उसकी गोपियां हैं। तुम क्या पूजा करते थे? तुम किसकी पूजा करते थे? अभी तुम्हारा पुरुष भी नहीं गया! पुरुष का अर्थ होता हैः अकड़। पुरुष का अर्थ होता हैः अहंकार। अभी तुम्हारा पुरुष भी नहीं गया, तुम किसकी पूजा करते थे? यह थाल तुम्हारे हाथ से नहीं गिरा; तुम्हारे सारे जीवन की पूजा अकारथ थी, यह सिद्ध हुआ।
कहते हैं पुजारी तो सकते में आ गया। बात तो सच थी। जैसे बिजली कौंध गई! गिर पड़ा चरणों में मीरा के। जिसने कभी स्त्री न देखी थी उसने स्त्री के पैर पकड़ लिए। जिसने कभी स्त्री छुई न थी, वर्षों बीत गए थे। सोचता था मैं ब्रह्मचारी हूं। आज उसे पता चला कि उसे भक्ति के शास्त्र का क ख ग भी मालूम नहीं है।
एक ही पुरुष है, परमात्मा!
आनंद वैराग्य, ठीक भाव उठाः "अब दुल्हन हूं अपने पिया की!"
मेरे पूरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं। इसी कोशिश में तो लगा हूं कि सभी यहां दुल्हन की तरह सज जाएं। सभी ऐसे नाचें, सभी के मन ऐसी उमंग से भरें, जैसे दुल्हन के भरे होते हैं, जो चल पड़ी है पिया से मिलने!
अकबर शिकार को गया था। सांझ हो गई, नमाज पढ़ने बैठा। एक स्त्री भागी हुई उसके पास से निकल गई उसको धक्का मारती हुई। वह नमाज पढ़ रहा था, लुढ़क गया। बहुत नाराज हुआ। एक तो अकबर, सम्राट! ... मगर अब नमाज में बीच में बोले भी कैसे? जल्दी नमाज पूरी की। जब तक पूरी की तब तक वह स्त्री वापस आती थी। रोक कर उसे कहा कि तू होश में है या बेहोश है? एक तो कोई नमाज पढ़ रहा हो, कोई भी नमाज पढ़ रहा हो, कोई भी प्रार्थना कर रहा हो, तो इतनी तो समझ होनी चाहिए, इतना तो संस्कार होना चाहिए कि उसकी नमाज में बाधा न दो। फिर मैं तेरा सम्राट हूं, मैं देश का सम्राट, तू मुझे धक्का देती गई! इतने जोर से धक्का मारा तूने भागते हुए कि मैं लुढ़क ही पड़ा।
उस स्त्री ने कहाः आप नमाज पढ़ रहे थे? क्षमा करें! मुझे कुछ पता नहीं। मुझे किसी ने खबर दे दी कि मेरा प्रेमी आ रहा है तो मैं दौड़ कर रास्ते पर उससे मिलने गई थी। मुझे तो होश ही नहीं था। जब प्रेमी आ रहा हो तो कैसे होश रहे? मुझे पता ही नहीं। मेरा धक्का आपको लगा और आप लुढ़क गए तो एक बात पक्की है कि आपका धक्का भी मुझे लगा होगा। हम दोनों टकराए होंगे। मगर मुझे याद नहीं है। मैं अपने प्रेमी से मिलने जा रही थी। लेकिन महाराज एक प्रश्न मेरे मन में उठता हैः आप अपने प्रेमी से मिलने में लगे थे, प्रार्थना कर रहे थे, नमाज पढ़ रहे थे, आपको मेरा धक्का पता चल गया? आप उस परम प्यारे की याद कर रहे थे और आपको मेरा धक्का पता चल गया? और मैं तो अपने साधारण से प्रेमी से मिलने गई थी, जो आया भी नहीं। खबर झूठी थी। मैं तो झूठी खबर में ऐसी लीन हो गई थी; तुम सच्चे प्रेमी से मिलने चले थे, जो कि सदा का ही आया हुआ है, फिर भी तुम्हें मेरा धक्का पता चल गया? तुम्हारी आंखों में क्रोध है। मुझे क्षमा करो!
अकबर ने अपनी आत्म-कथा में लिखवाया है कि उस दिन मुझे पता चला कि मैंने अभी प्रार्थना करना सीखा ही नहीं। अभी परमात्मा मेरे लिए प्रेमी भी नहीं हो पाया है। मैं अभी प्रेयसी भी नहीं हो पाया हूं।
प्रेम जगे, और तुम दुल्हन बन जाओ, तो चमत्कार हो जाता है। ऐसा चमत्कार--

क्या इल्म उन्होंने सीख लिए जो, बिन लिक्खे को बांचे हैं! जो बात नहीं मुंह से निकली बिन ओंठ हिलाए जांचे हैं! दिल उनके तार सितारों के, तन उनके तबल-तमाचे हैं
मुंह चंग-जबां, दिल सारंगी, पग घुंघरू, हाथ कमांचे हैं। हैं राग उन्हीं के रंग भरे, जो भाव उन्हीं के सांचे हैं जो बेगत, बेसुर-ताल हुए, बिन ताल पखावज नाचे हैं।
कुल बाजे बज कर टूट गए, आवाज लगी जब लहराने
जो छम-छम घुंघरू बंद हुए, तब गत का अंत लगे पाने।
संगीत नहीं यह संगत है, नटुवे भी जिससे नट माने
यह नाच कोई क्या पहचाने, इस नाच को नाचे सो जाने।
हैं राग उन्हीं के रंग भरे, जो भाव उन्हीं के सांचे हैं
जो बेगत, बेसुर-ताल हुए, बिन ताल पखावज नाचे हैं।।

एक जादू आ जाता है, जब प्रेम उतरता है। फिर न तो ताल की कोई चिंता है, न वाद्य की कोई चिंता है। वीणा टूटी भी पड़ी रहे तो भी उससे स्वर उठते हैं।

हैं राग उन्हीं के रंग भरे, जो भाव उन्हीं के सांचे हैं
जो बेगत, बेसुर-ताल हुए, बिन ताल पखावज नाचे हैं।
कुल बाजे बज कर टूट गए, आवाज लगी जब लहराने
और छम-छम घुंघरू बंद हुए तब गत का अंत लगे पाने।

आ गया जादू का वह क्षण, दुल्हन होकर नाचो!

जो आग जिगर में भड़की है, उस मिश्अल की उजियाली है
जो मुंह पर हुस्न की जर्दी है, उस जर्दी की सब लाली है। जिस गत पर उनका पांव पड़ा, उस गत की चाल निराली
जिस मजलिस में वह नाचे हैं, वह मजलिस सबसे खाली है। हैं राग उन्हीं के रंग भरे, औ भाव उन्हीं के सांचे हैं जो बेगत, बेसुर-ताल हुए, बिन ताल पखावज नाचे हैं।

अब नाचो, नाचने की घड़ी आ गई!

था जिनकी खातिर नाच किया, जब मूरत उनकी आय गई
कहीं "आप" कहा, कहीं "नाच" कहा, औ तान कहीं लहराया गई। जब छैल-छबीले सुंदर की छवि, नयनों अंदर आय गई
एक मूर्च्छा गत से आय गई, औ जोत में जोत समाय गई।
हैं राग उन्हीं के रंग भरे, और भाव उन्हीं के सांचे हैं जो बेगत, बेसुर-ताल हुए, बिन ताल पखावज नाचे हैं

अब रुको मत। अब ठहरो मत। अब अपने को सम्हालना मत।

सब होश बदन का दूर हुआ, जब गत पर आ मृदंग बजी
तन भंग हुआ, दिल दंग हुआ, सब आन गई, बे-आन सभी।
ये नाचा कौन, "नजीर" अब यां, औ रकिस ने देखा नाच अजी
जब बूंद मिली जा दरिया में, इस तान का आखिर, निकला जी।
हैं राग उन्हीं के रंग भरे, औ भाव उन्हीं के सांचे हैं जो बेगत, बेसुर-ताल हुए, बिन ताल पखावज नाचे हैं।।

आज इतना ही।

ज्योति से ज्योति जले
तेरहवां प्रवचन

संत समागम कीजिए

संत समागम कीजिए तजिए और उपाइ।
सुंदर बहुते उद्धरे सतसंगती मैं आइ।।
संत मुक्ति के पौरिया तिनसौं करिए प्यार।
कुंजी उनके हाथ है सुंदर खोलहिं द्वार।।
मात पिता सबही मिलैं भइया बंधु प्रहसंग।
सुंदर सुत दारा मिलैं दुर्लभ है सतसंग।।
मद मत्सर अहंकार की दीन्हीं ठौर उठाइ।
सुंदर ऐसे संतजन ग्रंथनि कहे सुनाइ।।
आएं हर्ष न ऊपजै, गए शोक नहीं होइ।
सुंदर ऐसे संतजन कोटिनु मध्ये कोइ।।
सुखदाई सीतल हृदय देखत सीतल नैन।
सुंदर ऐसे संतजन बोलत अमृत बैंन।।
क्षमावंत धीरज लिए सत्य दया संतोष।
सुंदर ऐसे संतजन निर्भय निर्गत रोष।।
घर बन दोऊ सारिखे सबतें रहत उदास।
सुंदर संतनी कै नहीं जीवन मरण की आस।।
धोवत हैं संसार सब गंगा मांहें पाप।
सुंदर संतनि के चरण गंगा बंहै आप।।
संतन की सेवा किए सुंदर रीझै आप।
जाकौ पुत्र लड़ाइए अति सुख पावै बाप।।
हरि भजि बौरी हरि भजु त्यजु नैहर कर मोहु।
जिव लिनहार पठाइहि इक दिन होइहि बिछोहु।।
आपुहि आप जतन करु जौं लगि बारि वेयस।
आन पुरुष जिनि भेंटहु केहू के उपदेस।।
जबलग होहु सयानिय, तबलग रहब संभारि।
केहुं तन जिनि चितबहु, ऊचिय दृष्टि पसारि।।
यह जोवन पियकारन नीकै राखि जुगाइ।
अपनो घर जिनि छोड़हु परघर आगि लगाइ।।
यह विधि तन मन मारै, दुइ कुल तारै सोइ।
सुंदर अति सुख बिलसइ, कंत-पियारी होइ।।

एक मित्र ने पूछा है कि मैं आखिर कहना क्या चाहता हूं?

यह कोई नया प्रश्न नहीं है। हजारों बार पूछा गया है और मुझसे ही नहीं, समस्त बुद्धों से पूछा गया है, समस्त सिद्धों से पूछा गया है। प्रश्न सार्थक हैं, लेकिन उत्तर देना आसान भी और कठिन भी। प्रश्न सार्थक है, क्योंकि बुद्धपुरुष सदियों से बोलते रहे। क्या कहना चाहते हैं? सीधा-साफ क्यों नहीं कह देते? संक्षिप्त में समा जाए, ऐसा क्यों नहीं कह देते? हमारी समझ में आ जाए, ऐसा क्यों नहीं कह देते?
प्रश्न सार्थक है। लेकिन उत्तर आसान भी और कठिन भी। आसान--क्योंकि एक
ही उत्तर सदा दिया गया है, वही मैं भी दूंगा। वह उत्तर है कि जो नहीं कहा जा सकता उसे कहने की चेष्टा चलती है। आसान तो है, लेकिन यह भी कोई उत्तर हुआ? जो नहीं कहा जा सकता उसे कहना चाहता हूं। और जो नहीं कहा जा सकता नहीं ही कहा जा सकता है। फिर भी कहने की चेष्टा बंद नहीं की जा सकती।
पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक, लुडविग विट्गिंस्टीन का वचन हैः जो न कहा जा सके उसे कहना ही नहीं। विट्गिंस्टीन बड़े विचारक, तर्कशास्त्री थे-- और रहस्यवादी भी। दैट व्हीच कैन नॉॅट बी सेड, मस्ट नॉट बी सेड। कहना ही मत उसे, जो न कहा जा सके। ठीक लगती है, नियम की बात लगती है। लेकिन जो कहा जा सकता है उसे कहने में कुछ सार नहीं। उसे कहते रहो। वह कूड़ा-करकट है। जो

नहीं कहा जा सकता, उसे कहने में ही कुछ सार है, क्योंकि उससे ही आदमी क्षुद्र से विराट की तरफ उठता है। उससे ही आदमी की आंखें जमीन से मुक्त होती हैं और आकाश की यात्रा पर निकलती हैं। उससे ही मनुष्य शब्द से मुक्त होता है। और शून्य में प्रवेश करता है। उससे ही एक संभावना का द्वार खुलता है--जो मन का अतिक्रमण है, मन के अतीत ले जाता है। और वहीं है विराजमान, परम प्यारा। वहीं है विराजमान वह, जिसकी तलाश चल रही है। सच्चिदानंद।
कहा तो नहीं जा सकता, लेकिन उसे कहने की कोशिश में प्यास जगती है। उसे करने वाले प्यास को जगाते हैं। कह नहीं पाते। उसे सुनने वाले सुन भी नहीं पाते, लेकिन सुनते-सुनते प्यास जगती है। कहने और सुनने का प्रयोजन है-- प्यास को प्रज्वलित करना। और प्यास ही सघन हो जाए तो प्रार्थना बनती है। और प्रार्थना सघन हो जाए तो परमात्मा बनती है।
इसलिए फिर से दोहरा दूं--मैं वह कहना चाहता हूं जो कहा नहीं जा सकता।
और भलीभांति जानता हूं कि नहीं कहा जा सकता। फिर भी कहना होगा। कहना होगा इसलिए, ताकि तुम उसी पर समाप्त न हो जाओ जो कहा जा सकता है; ताकि तुम वचनीय पर समाप्त न हो जाओ, अनिर्वचनीय में उठो; ताकि तुम सीमाओं में घिरे न रह जाओ, असीम से थोड़े तुम्हारे संबंध जुड़ें।
बुद्ध पुरुष कह कुछ भी नहीं पाते। इसलिए झेन फकीरों में प्रसिद्ध कहावत है कि--बुद्ध कुछ बोले ही नहीं। अब इससे झूठी कोई बात हो सकती है? और यह वे झेन फकीर कहते हैं, जो रोज बुद्ध के वचनों का स्मरण करते हैं, बुद्ध के शास्त्रों का अध्ययन करते हैं। बुद्ध चालीस वर्ष निरंतर बोले। ज्ञानोपलब्धि के बाद फिर और उन्होंने कुछ किया ही नहीं। सुबह बोले, दोपहर बोले, सांझ बोले--बोलते ही रहे। अनंत लोगों से बोले। गांव-गांव दौड़ते रहे और बोलते रहे। झेन फकीरों को पता नहीं है कि बुद्ध बोले नहीं; भलीभांति पता है। लेकिन उनके कहने में कुछ सार और है। वे यह कह रहे हैं कि बुद्ध बोले तो बहुत, मगर बोले क्या? कह तो पाए नहीं। जो कहना था वह तो अनकहा ही रहा। तो बोले न बोले बराबर।
ऐसा ही तुम मेरा बोलना जानना। मेरे बोलने में तुम्हारे भीतर प्यास जग जाए तो ही अर्थ है। मेरे बोलने से तुम्हारे भीतर ज्ञान जग जाए तो चूक गए तुम। मैं बोला और तुम थोड़े ज्ञानी होकर लौट गए और तुमने कहा कि चलो थोड़ी बातें और जान लीं, तो तीर व्यर्थ हो गया; तीर तुक्का हो गया। लग जाए तो तुक्का भी तीर है। न लगे तो तीर भी तुक्का हो जाता है। तो तुम आए भी, गए भी। व्यर्थ ही आए, व्यर्थ ही गए। तुम्हारा आना-जाना व्यर्थ का उपक्रम हुआ। मुझे सुन कर ज्ञान न जगे, मुझे सुन कर ध्यान जगे।
क्या फर्क है? मुझे सुन कर यह बात तुम्हारे प्राणों को मथने लगे कि ऐसी भी कोई बात है जो न कही जा सकती है, न सुनी जा सकती है, मगर अनुभव की जा सकती है--मैं उसे अनुभव करके रहूंगा। ऐसा संकल्प उठे। ऐसी प्रगाढ़ अभीप्सा का जन्म हो कि मैं भी खोजूंगा उसे, जो शब्दों में नहीं समाता; जो शास्त्रों की जिल्दों में नहीं बंधता, मैं उसे खोजूंगा; मैं उस जीवंत से नाता जोडूंगा।
परमात्मा कोई सिद्धांत नहीं है। परमात्मा एक सत्य है। और ऐसा सत्य नहीं, जो तर्क की निष्पत्तियों से निर्मित होता है, बल्कि ऐसा सत्य है जो हृदय की गहराइयों में जाना जाता है, जीया जाता है। एक ऐसा सत्य, जो तुम्हारे प्रेम में पगता है, तो ही जन्मता है। एक ऐसा सत्य, जिसके लिए तुम्हें गर्भ धारण करना होता है। एक ऐसा सत्य, जिसे तुम्हें अपने गर्भ में नौ माह तक विकास देना होता है। वे नौ माह कितने लंबे होंगे, कहा नहीं जा सकता। तुम पर निर्भर है तुम कितनी प्रगाढ़ता से पुकारोगे, तुम्हारी प्यास कितनी प्रज्वलित होगी उस पर निर्भर है। तुम्हारी त्वरा कितनी है, उस पर निर्भर है
एक सुगंध के बल पर
जी रहा हूं मैं
सुगंध यह कदाचित
गर्भ में समझे हुए
परिवेशों की है

शब्दों के
मेरे देवताओं के
मुझे दिए हुए वरदान
अनन्य लगेंगे मुझे
फैलाना चाहता हूं मैं
अंतिम रूप से गिरने के पहले इस तारे की तरह कहो
आम के वन की तरह कहो
आषाढ़ के घन की तरह कहो
सुगंध
उजाला
और
आवेश
फैलाना चाहता हूं मैं
इस तारे की तरह कहो
आम के वन की तरह कहो
आषाढ़ के घन की तरह कहो
मैं क्या कहना चाहता हूं?
वही--जो आकाश में घिरे आषाढ़ के मेघ कहते हैं। ऐसे ही चेतना के मेघ भी भरते हैं।
वही जो खिले हुए कमल के फूल कहते हैं। ऐसे ही जीवन के फूल भी खिलते हैं।
वही जो आकाश में चमकते हुए तारे कहते हैं। ऐसे ही प्रत्येक के भीतर तारे दबे पड़े हैं, जो अभी चमके नहीं; या चमके भी तो तुमने उनकी तरफ पीठ कर रखी है।
तुम्हारे भीतर भी कमल के बीज पड़े हैं, जो अभी अंकुरित नहीं हुए हैं; या अंकुरित भी हुए तो तुमने उनकी साज-संवार नहीं की है; या खिले भी तो तुम्हें उनका पता भी नहीं चला है। क्योंकि तुम अपने घर ही नहीं हो; तुम कहीं और, कहीं और, सदा कहीं और हो। तुम यहां तो होते ही नहीं, सदा वहां होते हो। तुम्हारा मन तो दौड़ा-दौड़ा, भागा-भागा, आपा-धापी में है। तुम्हें सुध कहां कि भीतर झांक कर देखो, कैसे कमल वहां हैं! तुम्हें सुधि कहां कि थोड़ा ठहरो और रुको और भीतर का संगीत सुनो।
भीतर की कोयल भी बोलती है। भीतर भी बड़ी चहचहाहट है। संतों ने उसे अनाहद-नाद कहा है। वहां ओंकार का नाद चल रहा है। एक ओंकार सतनाम! वहां मंत्र दोहराने नहीं होते, वहां मंत्र अपने आप गुंजाइत हो रहे हैं। वहां तुम्हें प्रार्थना करनी नहीं होती है, वहां प्रार्थना अपने आप उठ रही है। मगर तुम लौटो, देखो, अपने में झांको। यही कहना चाहता हूं। यह कहना ऐसा नहीं है कि तुम मेरा कहना समझ लोगे, अपनी स्मृति के कापी में लिख लोगे, और बात पूरी हो जाएगी। नहीं, ऐसे तो तुम चूक जाओगे। बात तो पूरी तब होगी, जो मैंने कहा उसे तुम भी साक्षी बनो, गवाह बनो। मैं चाहता हूं कि जिस भांति मैं कह रहा हूं कि ऐसा है, ऐसा एक दिन अनुभव से तुम भी कह सको कि हां, ऐसा है।
मैं तुममें विश्वास नहीं जगाना चाहता। मैं नहीं कहता हूं मुझ पर भरोसा करो। मैं कहता हूं, मुझसे केवल चुनौती लो। मैं पुकारता हूं कि एक शिखर है, जो पार करना है, जो चढ़ना है; जिसको बिना चढ़े तुम आत्मवान न हो सकोगे। चुनौती लो। एक सागर है जो तरना है; जिसे तरे बिना तुम इसी तट पर रहे, तो व्यर्थ ही रह जाओगे, व्यर्थ ही हो जाओगी छोड़ो अपनी नौका को--उस दूर अज्ञात में छिपे तट की तलाश में। यात्रा कठिन है, दुर्गम है, दुर्घटनाओं से भरी है; पर इसी यात्रा की चुनौती को स्वीकार करने वाला व्यक्ति आत्मवान हो पाता है। नहीं तो लोग पोच रह जाते हैं, नपुंसक रह जाते हैं।
जैसे शरीर नपुंसक हो सकता है वैसे ही लोगों की आत्मा नपुंसक हो सकती है। और जिन्होंने भी परमात्मा की खोज शुरू नहीं की, उनकी आत्मा नपुंसक रह जाती है। उसमें बल नहीं होता। उसमें धार नहीं होती है। उसमें जीवन की

तीक्षणा नहीं होती। और न ही कभी ऐसा अनुभव होता है कि हम धन्यभागी हैं। न ही कभी ऐसा लगता है कि झुकें और परमात्मा को धन्यवाद दें कि कितना तूने दिया है। कैसे झुकें, कैसे धन्यवाद दें? कुछ मिला ही नहीं तो धन्यवाद किस बात का, आभार किस बात का प्रकट करें? लोग तो शिकायतें करते हैं प्रार्थनाओं में। और प्रार्थना तभी होती है जब सिर्फ आभार हो, धन्यवाद हो। मगर धन्यवाद किस बात का करें? कुछ मिला हो तो धन्यवाद करें। मैं तुम्हें चुनौती दे रहा हूं। मिल सकता है और तुम्हारी पहुंच के भीतर है। अगर मेरी पहुंच के भीतर है तो तुम्हारी पहुंच के भीतर है। अगर एक भी आदमी की पहुंच के भीतर है तो तुम्हारी पहुंच के भीतर है। अगर बुद्ध ने पाया तो तुम पा सकते हो। अगर सुंदरदास ने पाया और सुंदर हो गए, परम सुंदर हो गए, तुम भी हो सकते हो। कबीर ने पाया या नानक ने, तो तुम भी पा सकते हो, अगर पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में एक आदमी ने भी पाया हो तो सारे मनुष्य पाने के हकदार हो गए। अगर एक बीज टूटा और फूल बना तो सब बीज हकदार हो गए--बने या न बनें, यह उनकी बात। बनने का निर्णय लें या न लें, यह उनकी बात।
आखिर डर क्या है? बीज फूल क्यों नहीं बनना चाहता? एक ही डर हैः बीज को वृक्ष बनने के पहले मिटना पड़ता है।
तो मैं तुम्हें मिटना सिखाता हूं। मैं तुम्हें स्वेच्छा से मरना सिखाता हूं। क्योंकि तुम स्वेच्छा से मरोगे, तुम जैसे हो ऐसे मरोगे--तो तुम वैसे हो जाओगे जैसे तुम्हें होना चाहिए।
यह जो मैं तुमसे यहां रोज-रोज कहता हूं, कोई दर्शनशास्त्र नहीं है, कोई फलसफा नहीं है। जीवित अंगार हैं ये। झेलने का तुममें साहस होगा तो तुम जलोगे और नये होओगे।
आज के सूत्र। आज के सूत्र इसी दिशा में इंगित करते हैं।
संत समागम कीजिए तजिए और उपाइ।
सुंदर बहुत उद्धरे सतसंगति में आइ।।
संत समागम कीजिए!
संत का अर्थ होता हैः वह, जिसने पाया। क्या पाया? जो उसकी अंतर्निहित संभावना थी, वह वास्तविकता हो गई--यह पाया। जो वह हो सकता था, अपनी पराकाष्ठा में हो गया। यह पाया तुम्हें कुछ और नहीं होना है। तुम्हें वही होना है जो तुम हो सकते हो; जो तुम्हारी नियति और स्वभाव है।
महावीर ने कहा हैः बाघु सहावो धम्म। वस्तु का स्वभाव धर्म है। इतनी प्यारी व्याख्या धर्म की और किसी ने भी नहीं की है। जो तुम्हारा अंतर्तम स्वभाव है वही। बस उसी को पा लेना है।
बीज जब टूटता है और वृक्ष बनता है और हजार-हजार फूल खिलते हैं तो क्या तुम सोचते हो बीच कुछ और हो गया? नहीं, बीज वही हो गया जो हो सकता था। ये फूल उसमें छिपे पड़े थे। अदृश्य थे, प्रकट हुए। अगोचर थे, गोचर हुए। शून्य में दबे पड़े थे, पूर्ण में प्रकट हुए। ऐसे ही तुम्हारा स्वभाव अभी अगोचर है, अभी पड़ा है। तुमने उसे निखारा नहीं। तुमने खाद नहीं दी। तुमने बागुड़ नहीं लगाई। तुमने सुरक्षा नहीं की। तुम्हें याद ही नहीं है कि तुम क्या हो सकते हो। जैसे एक हीरा, पत्थरों में पड़ा-पड़ा, सोचने लगे कि मैं भी पत्थर हूं।
चारों तरफ अविकसित लोगों की भीड़ है। इस अविकसित भीड़ से ही तुम्हारा मिलन होगा। यही तुम्हारे मां हैं, यही तुम्हारे पिता हैं, यही तुम्हारे भाई-बंधु हैं, यही मित्र हैं, यही बाजार है, यही दुकान है। करोड़ों-करोड़ों अविकसित लोग हैं। बीज पड़े हैं, ढेर लगे हैं। इसी में तुम भी एक बीज हो। अगर तुम इन बीजों में ही उलझे रहे तो तुम्हें कभी भी याद नहीं आएगी उसकी, जो तुम हो सकते हो। याद कहां से आए? सब तुम्हारे जैसे हैं।
सच तो यह है कि हर आदमी सोचता है कि और लोग मुझसे भी बदतर हैं। इसलिए
तो लोग रस लेते निंदा में। निंदा के रस का मनोविज्ञान है। निंदा के रस का मनोविज्ञान यही है कि दूसरा मुझसे बुरा, हम ही भले। जब भी कोई किसी की निंदा करता है, तुम बड़े रस-मुग्ध होकर सुनते हो। तुम्हें पता नहीं, तुम क्या कर रहे हो? तुम जहर पी रहे हो और अपने को मार रहे हो। जब भी तुमने निंदा को रस-मुग्ध होकर सुना है, उसका अर्थ यह कि तुम्हारे मन में यह भाव

उठाः तो हमीं ठीक। तो हम जैसे हैं, ऐसे ही ठीक। लोग हमसे भी ज्यादा बुरे हैं। फलां आदमी ने इतनी चोरी की, उसने इतना ब्लैक किया। फलां की स्त्री को ले भागा। फलां आदमी तस्करी कर रहा है। चारों तरफ से निंदा की खबरें आती हैं। सब शैतान हैं। इन शैतानों की तस्वीरें तुम्हारी आंखों के सामने जितनी झूमने लगती हैं, उतना ही तुम्हें लगता है तुलना में कि मैं साधु- पुरुष, छोटी-मोटी भूल करता हूं, मगर मेरी भूलों का क्या है। यहां तो बड़े- बड़े पड़े हैं। मैं तो न कुछ हूं। मैं ठीक हूं, जैसा हूं। जितना हूं, उतना ही रह जाऊं तो काफी।
आगे जाने की तो बात दूर, तुम जहां हो वहीं निश्चिंत होने लगते हो। तुम जहां हो, वैसे ही रह जाओ, यह भाव उठने लगता है। तुम्हारे भीतर चुनौती नहीं जगती। चुनौती कहां जगेगी? जब किसी बुद्ध या सिद्ध के पास आओगे, जहां तुम्हें कोई ज्योति जलती हुई दिखाई पड़ेगी और उसकी तुलना में अपना दिया बुझा मालूम पड़ेगा। पीड़ा होगी। इसी पीड़ा से बचने के लिए लोग संत समागम नहीं करते। बचते हैं हजार बहाने खोज लेते हैं। बहाने की कोई सीमा नहीं। तुम जितने बहाने खोजना चाहो, खोज सकते हो।
मेरे पास लोग आते हैं। कोई कहता हैः "संन्यास का भाव उठता है; मगर अभी बेटी की शादी करनी है। बेटी की शादी हो जाए तो बस फिर निश्चिंत हूं।" कोई आता है, वह कहता है; बेटे की शादी हो गई, उसे काम लग जाए। कोई आता है, वह कहता है कि बेटे के बच्चे हो गए, बेटा तो काम में उलझा रहता है, उसके बच्चों की साज-सम्हाल हमारे हाथ में है। वे जरा बड़े हो जाएं। कोई कुछ, कोई कुछ... लोग न मालूम कितने बहाने खोजते हैं। जैसे मौत तुम्हारी प्रतीक्षा करती रहेगी कि जब तुम्हारी सारी समस्याएं समाधान हो जाएंगी; जब तुम कहोगे कि हां, अब मैं राजी हूं, अब मौत आ जाए--जब मौत आएगी! मौत किस क्षण तुम्हारी गर्दन को दबा देगी, पता है? नहीं पूछेगी कि बेटे की शादी हुई या नहीं और नहीं पूछेगी कि बेटे को नौकरी लगी या नहीं? मौत तुमसे कुछ पूछेगी ही नहीं। तुम्हारी कोई आज्ञा थोड़े ही लेगी। कोई मौत आकर दरवाजा थोड़े ही खटखटाएगी, कहेगी कि मैं आई कम इन सर? क्या मैं भीतर आ सकती हूं? मौत तो बस आ जाती है; दरवाजे खटखटाती भी नहीं। बंद दरवाजों में से चली आती है। लोहे की दीवालों में से चली आती है। सारी सुरक्षाओं को तोड़ कर चली आती है। और मौत जब आती है तब एक क्षण में आ जाती है। क्षण भर का भी अवकाश नहीं देती कि तुम इंतजाम कर लो। अगर तुम एक पंक्ति लिख रहे थे अपनी खाता बही में तो उसको पूरा कर लो, इसका भी मौका नहीं देती, उसमें पूर्ण-विराम लगा दो; इसका भी मौका नहीं देती। लेकिन विकास के लिए तुम स्थगन करते हो। तुम कहते हो, कल। तुम कहते हो, परसों। करना जरूर है। और "किंतु-परंतु" खोजते हो।
कैलाश ने एक प्रश्न पूछा है। संन्यास... प्रश्नवाचक चिह्न लगाया हुआ है, फिर किंतु-परंतु।
संन्यास, तो किंतु-परंतु कैसा? किंतु-परंतु तो आदमी की चालबाजियां हैं। या तो हां या ना, किंतु-परंतु कहां। या तो तुम्हें कोई बात ठीक लगती है तो तुम करते हो, या ठीक नहीं लगती तो नहीं करते हो। लेकिन आदमी बेईमान है। यह भी अपने को समझाना चाहता है कि बात तो मुझे ठीक लग रही है, क्योंकि मैं इतना बुद्धिमान हूं, बात मुझे ठीक क्यों न लगेगी। लेकिन अभी परिस्थितियां ऐसी नहीं है--कि मैं संन्यास लूं। इसलिए किंतु जोड़ देता है। जब भी कोई आदमी किंतु जोड़ता है तो समझना राजनीति आई। किंतु-परंतु राजनीति की भाषा है। धर्म की भाषा हां या ना, सीधी साफ है।
लोग संत-समागम से डरते हैं, भयभीत होते हैं। बहाने कई खोज लेते हैं। लेकिन असली बात नहीं देखना चाहते। असली बात एक बात का डर है कि अगर वहां गए तो फिर वैसे ही न रह सकेंगे जैसे हम हैं। वहां रूपांतरण होगा ही। वहां क्रांति होने वाली है। संत के पास जाना आग के पास जाना है, और संत के पास एक ऐसी यात्रा पर निकलना है जहां से वापस नहीं लौटा जा सकता है। एक बार किसी संत से आंखें मिल जाएं, एक बार किसी संत के हाथ में हाथ पड़ जाए, एक बार किसी संत के हृदय की भनक तुम्हारे हृदय में समा जाए--फिर लौटने का कोई उपाय नहीं है। जन्मों-जन्मों तक वे आंखें तुम्हारा पीछा करेंगी और तुम्हें

पुकारेंगी। और जन्मों-जन्मों तक वह भीतर जो थोड़ी सी संगीत की लहर पहुंची थी, तुम्हें मथेगी।

संत समागम कीजिए तजिए और उपाइ।

सुंदरदास कहते हैंः एक ही काम कर लो तो सब हो जाए--संत समागम कर लो। जिन्हें मिला है, जो जागे हैं, उनके पास बैठ जाओ तो सब हो जाए। और इससे सरल कोई बात होगी?

भक्ति का शास्त्र इस अर्थ में अनूठा है। उसने एक अनूठी प्रक्रिया खोजी है। जिसको विज्ञान की भाषा में कैटेलिटिक एजेंट कहते हैं, उसी को भक्ति की भाषा में संत-समागम कहते हैं। कैटेलिटिक एजेंट का अर्थ होता है; कुछ घटनाएं हैं जो किसी चीज की मौजूदगी में घटती हैं। और जिस चीज की मौजूदगी में घटती हैं, उसका कोई हाथ नहीं होता। सिर्फ मौजूदगी होती है। जैसे अगर पानी बनाना हो, उद्जन और ऑक्सीजन को मिला कर, ऑक्सीजन और हाइड्रोजन को मिला कर पानी बनाना हो, इन दो के मिलने से पानी बनता है, तो तुम कितना ही मिलाते रहो, पानी नहीं बनेगा, जब तक बिजली की चमक न हो। बिजली की मौजूदगी हो, पानी बन जाएगा। और बड़ी आश्चर्य की बात यह है कि पानी के बनने में बिजली की मौजूदगी का कोई हाथ नहीं होता; बस सिर्फ मौजूदगी से ही कुछ हो जाता है। बिजली समाविष्ट नहीं होती पानी के निर्माण में। उसका कोई भाग नहीं होता।

विज्ञान को एक शब्द खोजना पड़ाः कैटेलिटिक एजेंट। क्योंकि अब तक ऐसा ही ख्याल था कि उन्हीं चीजों की जरूरत पड़ती है जिनके मिलन से कोई चीज निर्मित होती है। लेकिन विज्ञान को अनुभव में आना शुरू हुआ कि एक ऐसा भी तत्त्व स्वीकार करना पड़ेगा जो सम्मिलित तो नहीं होता, संयोग में मिलता तो नहीं, लेकिन जिसकी बिना मौजूदगी के संयोग घटता भी नहीं। इसलिए आकाश में बिजली चमकती है। बिजली की चमक से बादलों में जल निर्मित होता है। बिजली की मौजूदगी जरूरी है।

संत-समागम का इतना ही अर्थ हैः जो जाग गया, उसकी मौजूदगी जरूरी है। सोए हुए के भीतर जागे हुए मौजूदगी में कुछ होने लगता है। जागा हुआ कुछ भी नहीं करता, ख्याल रखना। जागा हुआ कुछ भी नहीं करता। न तुम्हारे हृदय के तार छेड़ता है, न तुम्हें हिलाता-डुलाता है। जागा हुआ तो सिर्फ जागा हुआ होता है--तुम्हारे पास मौजूद। मगर उसकी जागृति की उपस्थिति... तुम्हारे भीतर कुछ अपने आप होना शुरू हो जाता है।

सुबह सूरज उगता है। सूरज किसी एक-एक पक्षी को उठाता थोड़े ही है, कि उठो भाई, कि अब समय हो गया, चलो सुबह का गीत गाओ, प्रभाती शुरू करो। पक्षी उठ आते हैं। सूरज का आगमन होने ही होने के करीब है, प्राची में लाली फैली और पक्षी उठे! रोशनी की मौजूदगी कुछ करने लगती है। कंठों में गुदगुदाहट आ जाती है। कंठों के तार अपने आप छिड़ जाते हैं। कलियां खिलने लगती हैं। कोई सूरज की किरणें आ-आ कर एक-एक कली को खोलती थोड़े ही हैं। बस खुलने लगती हैं। सारी पृथ्वी जाग उठती है।

हम जिसके साथ होते हैं वैसे हो जाते हैं। इस अपूर्व प्रक्रिया को भक्ति ने सत्संग कहा है, समागम कहा है। किसी जागे हुए के पास बैठो। जो प्रेम से भर गया है, उसके पास बैठो।

दूसरे पंथों, मार्गों पर चलने वाले लोगों को यह बात बड़ी हैरानी की लगती है। वे कहते हैंः बिना योग के क्या होगा? शीर्षासन करो, प्राणायम करो, सर्वांगासन लगाओ, यह करो वह करो। बिना योग के क्या होगा? कोई कहता हैः बिना तप के क्या होगा? घर छोड़ो, द्वार छोड़ो, जंगल में जाओ नंगे खड़े होओ, धूप में तपो, वर्षों में खड़े रहो। बिना तप के क्या होगा? कोई कहता हैः उपवास। कोई कुछ, कोई कुछ।

लेकिन भक्तों ने एक अपूर्व वैज्ञानिक विधि खोजी है। वे कहते हैंः सत्संग। सुंदरदास कह रहे हैंः तजिए और उपाइ। और किसी उपाय की कोई जरूरत नहीं है। नाहक मत सताओ शरीर को। और नाहक मत व्यर्थ की झंझटों में पड़ो। एक सीधा सा काम कर लोः जहां कोई जागा हो, उस तरफ पहुंच जाओ; वहीं तीर्थ है। जहां कोई रोशनी पैदा हुई हो, सरकने लगो उसी रोशनी की तरफ। और तुम्हारे भीतर कुछ होना शुरू हो जाएगा, जो लाख व्रत-उपवास करो, नहीं होगा।

व्रत-उपवास शुरू कैसे हो गए? इसी तरह शुरू हो गए। एक बड़ी भ्रांति से शुरू हो गए। एक तार्किक भूल से शुरू हो गए। महावीर जागे; जो उनके पास आए वे भी जागने लगे। लेकिन जब महावीर विदा हो गए और जब याद्दाश्त ही याद्दाश्त रह गई, तब लोग सोचने लगे कि अब क्या करें?
महावीर के साथ जो घट रहा था उसका शास्त्र लोगों ने निर्मित किया। तो उन्होंने सोचा महावीर कैसे उठते थे, कैसे बैठते थे, क्या खाते थे, क्या पीते थे, कैसे चलते थे, कैसे सोते थे, सारा ब्यौरा लिखा डाला। लोगों ने सोचा कि ठीक ऐसा ही ऐसा हम भी करेंगे तो हम भी जाग जाएंगे। महावीर के पास जो घटना घट रही थी वह सत्संग के कारण घट रही थी। न तो महावीर के नग्न होने के कारण घट रही थी, ख्याल रखना। नहीं तो कृष्ण के पास नहीं घट सकती थी, बुद्ध के पास नहीं घट सकती थी, क्योंकि वे तो वस्त्र पहने हुए थे। महावीर के पास जो घटना घट रही थी, वह उनके पास उपवास के कारण नहीं घट रही थी। क्योंकि ऐसे संत हुए हैं जिनके पास वही घटना घटी है और जिन्होंने उपवास इत्यादि किया ही नहीं। महावीर के पास जो घटना घट रही थी वह उनकी तपश्चर्या के कारण नहीं घट रही थी, कि वे जंगल में खड़े थे, धूप-ताप में खड़े थे। वह घटना घट रही थी--महावीर के भीतर जो जागरण हुआ था, उसके कारण। वह जो ध्यान का दीया जला था, उसके कारण।
मगर ध्यान का दीया तो अदृश्य है। वह तो उनको दिखाई पड़ता है जो सत्संग में डूबते हैं। जो दूर-दूर से सोचते हैं, विचार करते हैं, हिसाब लगाते हैं, उनको तो ऊपर-ऊपर की बातें दिखाई पड़ती हैं।
जैसे समझो; सुबह सूरज उगा, पक्षी गीत गाने लगे। एक अंधा आदमी, जिसको सूरज का उगना दिखाई नहीं पड़ता, वह सोचेगाः मामला क्या है? हिसाब लगाएगा। पूछेगा कि भाई, घड़ी में इस वक्त कितना बजा है? कोई कहता है कि छह बजा है। तो वह लिख लेगा कि छह बजे, जब घड़ी में छह बजता है तब पक्षी गीत गाते हैं। ऐसे पता लगा कर हिसाब-किताब बांध लेगा। यह सब हिसाब-किताब झूठा है। असली बात तो चूक ही गई। ये घड़ि में छह बजने से पक्षी गीत नहीं गाते। तुम घड़ी में छह बजा दो, वे नहीं गाएंगे। सूरज उगना चाहिए, घड़ी में कितने ही बजें, घड़ी बंद भी पड़ी रहे तो भी चलेगा। घड़ी न हो तो भी चलेगा। सूरज उगना चाहिए। और ऐसा भी नहीं है कि सूरज दिखाई ही पड़े, बादलों में छिपा हो तो भी चलेगा। बस उसकी मौजूदगी होनी चाहिए। सुबह होनी चाहिए और पक्षी गीत गाएंगे।
महावीर को जिन्होंने देखा, उन्होंने तो पहचाना कि भीतर ध्यान का दीया जला है, बाकी सब तो गौण बातें हैं। वे गौण बातें प्रत्येक सिद्ध पुरुष के साथ अलग-अलग होती हैं। जनक सिंहासन पर बैठे-बैठे ही सिद्ध हो गए। अब तुम क्या सोचते हो, सिंहासन पर बैठोगे तब सिद्ध हो सकोगे? पहले सोने का सिंहासन बनवाओगे तब तुम सिद्ध हो सकोगे? तो तुम पागलपन में पड़ जाओगे। यह सांयोगिक बात है। बुद्ध बोधि-वृक्ष के नीचे बैठे थे, तब सिद्धत्व उपलब्ध हुआ। क्या तुम सोचते हो बोधि-वृक्ष के नीचे बैठने से तुम भी सिद्ध हो जाओगे? तो जगह-जगह बड़ और पीपल के वृक्ष हैं, बैठो। कई लोग बैठे भी रहे हैं। कुछ नहीं होता। कोई बोधि-वृक्ष के नीचे बैठने से थोड़े ही बुद्ध हो जाएगा। बुद्धत्व घटा उस घड़ी में, यह संयोग की बात है कि वे बोधि-वृक्ष के नीचे बैठे थे।
महावीर किसी वृक्ष के नीचे नहीं बैठे थे जब घटा। उकडूं बैठे थे; कोई ढंग का आसन भी नहीं लगाए हुए थे। आदमी मद्यासन में बैठता है, सिद्धासन में बैठता है। उकडूं! यह भी कोई ढंग हुआ! मगर महावीर मस्त आदमी हैं। पता नहीं, क्या कर रहे थे उकडूं बैठे। जैन शास्त्रों को संकोच होता है लिखने में उकडूं क्योंकि उकडूं लिखो, यह कोई जंचती नहीं बात। तो उन्होंने उसके लिए कोई अच्छा शब्द खोज लिया। अच्छे शब्द खोजने में भारतीयों का कोई मुकाबला नहीं। उन्होंने नाम दिया है गौदोहासन! जैसे जब गौ को दोहते हैं। अब वे उकडूं बैठे हैं, सीधा साफ न कहोगे। अब महावीर... क्या गौ को दोहने का उनसे संबंध कभी। कभी गौ दोही थी महावीर ने कि गौदोहासन? मगर उकडूं कहना जरा अजीब सा लगेगा और शक-शुबा पैदा होगा कि महावीर कर क्या रहे थे।
अब तुम उकडूं बैठ जाओ या गौदोहासन में बैठ जाओ, तो इससे कुछ ध्यान नहीं हो जाएगा। यह संयोग की बात है। ध्यान हर हालतों में घटा है। उपवास

करने वालों को घटा है, नहीं उपवास करने वालों को घटा है। शाकाहारियों को घटा है, गैर-शाकाहारियों को घटा है। जवानों को घटा है, बूढ़ों को घटा है।
सुंदर लोगों को घटा है, कुरूप लोगों को घटा है। पुरुषों को घटा है, स्त्रियों को घटा है। स्वस्थ लोगों को घटा है, अस्वस्थ लोगों को घटा है। सांयोगिक बातों की चिंता मत करो, मूल को पकड़ो। भक्तों ने मूल को पकड़ा।
उस मूल को वे नाम देते हैं संत-समागम। जहां कोई जागा हुआ आदमी हो, फिर छोड़ना मत मौका। फिर पकड़ लेना उसका आंचल। फिर बन जाना उसकी छाया। फिर जितना मौका मिल जाए, उसकी मौजूदगी में डुबकी लगाने का, उतनी डुबकी लगाना। उन्हीं डुबकियों से तुम तर जाओगे।
संत समागम कीजिए तजिए और उपाइ।
यह हिम्मत की बात सुनते हो? सुंदरदास कहते हैंः तजिए और उपाइ। और सब उपाय छोड़ दो। एक सदगुरु के चरण पकड़ लो।
सुंदर बहुते उद्धरे सत्संगति में आइ।
अब तक जो भी उद्धरे हैं, अब तक जिनका भी उद्धार हुआ है, ऐसे ही हुआ है।
सत्संगति में हुआ है। सत्संगति में ही स्मरण आना शुरू होता है कि मैं क्या हो सकता हूं। बुद्धों के पास ही अपनी ऊंचाइयों की स्मृति आनी शुरू होती है कि यह मेरी भी ऊंचाइयां हैं। इन शिखरों पर मैं भी हो सकता हूं। बुद्धों के पास आकर ही पता चलता है कि यह नीला आकाश मेरा भी है। मैं भी पंख फैलाऊं। मैं भी अपने डैने फैलाऊं! मैं भी उडूं।
बुद्धों को उड़ते देख कर तुम्हारे पंख भी फड़फड़ाने लगते हैं, जो सदियों
से ऐसे पड़े हैं जैसे हों ही न। तुम भूल ही गए हो। बुद्ध तुम जैसे ही तो होते हैं। तुम्हारे जैसा ही नाक-नक्शा, तुम्हारे जैसा ही उठना-बैठना, तुम्हारे जैसी ही देह। सब कुछ तुम्हारे जैसा होता है। और कुछ तुम्हारे जैसा नहीं होता। बस वही क्रांति घटती है। सब मेरे जैसा है और इस सब मेरे जैसे में कुछ ऐसा भी है जो मेरे जैसा नहीं है। तो कहीं यह हीरा मेरे भीतर भी न पड़ा हो। एक दिन इनको भी इसका पता नहीं था। मुझे भी आज पता नहीं है।
बुद्ध ने कहा है अपने शिष्यों को कि तुम जैसे हो ऐसा ही मैं एक दिन था,
और मैं जैसा हूं ऐसे ही तुम एक दिन हो सकते हो।
संत मुक्ति के पौरिया, तिनसौं करिए प्यार।
संत तो मुक्ति के द्वार पर पहरेदार हैं। इनसे अगर प्रेम हो जाए तो ये तुम्हारे लिए द्वार खोल दें।
संत मुक्ति के पौरिया, तिनसौं करिए प्यार।
कुंजी उनके हाथ है सुंदर खोलहिं द्वार।।
जिन्होंने पा लिया है, वे द्वार पर ही हैं। वे प्रभु के पास हैं। एक तरफ से तुम्हारे पास है। देह की तरफ से तुम्हारे पास हैं। आत्मा की तरफ से परमात्मा के पास हैं। वे द्वार पर खड़े हैं। वे तुम्हें और परमात्मा को जोड़ने का सेतु बन सकते हैं। आवरण कुछ बड़ा नहीं है तुम में और परमात्मा के बीच में--जरा सा है, झीना-झीना है।.जरा में हट जाए।
चीजों के
और मेरे बीच
आवरण आ जाता है एक
और जब-जब
आ जाता है यह आवरण
वे मुझको दिखती ही नहीं हैं दिखती भी है
तो एक आभास की तरह
धरती की भीतर की
उस सुवास की तरह
जो पानी बरसे तक
अपना पता नहीं देती
और जब
उठ जाता है कभी
यह परदा

तब एक-एक चीज
आसपास की
बता नहीं देती मुझे
अपना सब कुछ
मैं उनको देखता रहता हूं
और
बोलता रहता हूं उनसे
खोलता रहता हूं उनको
और अपने को
वर्षा होती है। अचानक तुम देखते हो, धरती से सुवास उठने लगती है! यह सुवास पड़ी ही थी धरती में। वर्षा इसे लेकर नहीं आई है। जल को हाथ में लेकर, जल को अंजुली में भर कर सूंघो, कोई गंध नहीं है। जल गंध लेकर नहीं आया है। गंध तो धरती में ही पड़ी थी। धरती को भी पता नहीं था। लेकिन वर्षा हुई तो सुवास उठी। आषाढ़ की पहली-पहली वर्षा में पृथ्वी से उठती हुई गंध से और सुंदर क्या है?
संत समागम में जब तुम्हारे भीतर से पहली दफा गंध उठनी शुरू होती है, तभी तुम्हें पता चलता है कि मैं कितना बड़ा खजाना लिए चल रहा हूं! मुझे इसका कुछ अहसास नहीं था, आभास भी नहीं था।
संत मुक्ति के पौरिया तिनसौं करिए प्यार।
कुंजी उनके हाथ है सुंदर खोलहिं द्वार।।
परमात्मा की प्रार्थना तो कठिन है। कठिन इसलिए है कि दिखाई भी नहीं पड़ता, उससे बात भी करें तो कैसे करें? न उसकी तरफ से कोई उत्तर आता मालूम पड़ता है।
मुश्किल यह है
तुमसे बात करते समय
कि तुम दिखते नहीं हो
और जिससे बोल रहे हैं हम
अगर वह दिखता नहीं है
तो उत्साह बात करने का ठंडा पड़ जाता है
अंदाज तो लगना चाहिए
कि हम जो कुछ कह रहे हैं
वह सुना भी जा रहा है या नहीं
सुना जा रहा है अगर
तो अच्छा या बुरा
कोई न कोई उसका असर
सुनने वाले पर पड़ रहा है या नहीं तो यह मेरी मुश्किल अगर हो तुम कहीं तो किसी तरह हल करो
याने जब लगे तुम्हें कि
कुछ ठीक कह रहा हूं
तो एकाएक खिला दो मेरे
पास के पौधे पर एक
हंसता हुआ फूल
और जब लगे मैं बहक रहा हूं तो कह दो किसी अपने पंछी से कि उड़ कर मेरे सिर पर से
थोड़ा सा चहक जाए
और लगे कि ऐसी बातें
मुझे करनी ही नहीं चाहिए तो तेज कर दो
मेरे ऊपर पड़ रही धूप को
इसी तरह समझ लिया करूंगा मैं

तुम्हारे प्रसन्न या अप्रसन्न
या सावधान करने वाले रूप को!
परमात्मा से बात कैसे हो? हम कहे चले जाते हैं, कोरा आकाश सुने चला जाता है; न कोई उत्तर आता है, न कुछ पता चलता है कि हमारी बात पहुंची भी या नहीं पहुंची? हमारी बात का कोई परिणाम भी हुआ या नहीं? दूसरी तरफ कोई है भी या नहीं?
प्रार्थना इसीलिए असंभव बात है। लेकिन सदगुरु से प्रेम संभव है। और वही प्रार्थना का पहला चरण है। पहले उससे जुड़ो, जिससे जुड़ने की कोई सुविधा है; जिससे बात हो सकती है संवाद हो सकता है; जिसके आंखों में उठते भाव समझ में आ सकते; जिसकी आंखों में खिलते फूल; तुम्हारी बात का क्या परिणाम हुआ, इसकी झलक दे जा सकते हैं; जिसका हाथ तुम्हारे सिर पर पड़े, जिसका आशीष तुम पर बरसे तो लगता है कि बात सुनी गई, पहुंची। जिससे प्रत्यक्ष कुछ नाता हो सके।
सदगुरु से प्रेम का अर्थ होता हैः हमने परमात्मा की तरफ पहला कदम उठाया। अभी तो हम परमात्मा को भी रूप में चाहेंगे। आकार में चाहेंगे, सगुण चाहेंगे। तुम देखते हो न, सारी दुनिया में ज्ञानियों ने निर्गुण की बात की है लेकिन फिर भी मंदिर बनते हैं, मूर्तियां स्थापित होती हैं। सगुण मिटता नहीं। ज्ञानी लाख सिर पटके कि परमात्मा निर्गुण है, सगुण भक्ति जारी रहती है। इसके पीछे एक मनोवैज्ञानिक कारण है। निर्गुण की बातचीत से संबंध नहीं जुड़ता आदमी का। वह पत्थर की मूर्ति बना लेता है कोई तो हो जिससे बात हो सके। पत्थर की मूर्ति के आस-पास नाच लेता है। इतना तो एहसास होता है कि चलो हम किसी के पास नाचे! पत्थर की मूर्ति की आरती उतार लेता है, फूल चढ़ा देता है, सिर झुका लेता है।
मनुष्य स्थूल है, उसे कुछ स्थूल चाहिए। लेकिन पत्थर की मूर्ति से कुछ
हल न होगा। पत्थर की मूर्ति को भी तुम गौर से देखोगे तो वह भी कोई उत्तर नहीं देती। आंखें उसकी पथराई हैं सो पथराई हैं। पत्थर की मूर्ति भी तुम्हारा कुछ सुनती नहीं। पत्थर की मूर्ति से भी कोई प्रत्युत्तर नहीं आता, न आ सकता है।
गुरु निर्गुण और सगुण के बीच में खड़ा है। उसका कुछ हिस्सा सगुण है, कुछ हिस्सा निर्गुण है। कुछ तुमसे जुड़ा है, कुछ परमात्मा से। एक हाथ तुम्हारे हाथ में, एक हाथ परमात्मा के हाथ में। तुम्हें तो परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन गुरु का जो एक हाथ दिखाई पड़ता है, अगर तुम पकड़ लो तो तुम्हारा भी हाथ अनजाने ही, परोक्ष रूपेण परमात्मा के हाथ में पड़ गया। क्योंकि गुरु का हाथ परमात्मा के हाथ में है। गुरु सेतु है।
माता पिता सबही मिले भैया बंधु प्रसंग।
सुंदर सुत दारा मिले दुर्लभ है सत्संग।।
इस संसार में अगर कोई चीज सर्वाधिक कठिन है, सर्वाधिक दुर्लभ है, तो कोहिनूर नहीं है--सत्संग। कई कारणों से कठिनाई है। पहली कठिनाईः करोड़ों में से एकाध उसे खोजता है। और करोड़ों खोजने वालों में से एकाध उस तक पहुंचता है। पहली कठिनाई। दूसरी कठिनाईः जो पहुंचता है, उसके वक्तव्य, उसकी प्रतीतियां, उसकी गवाहियां, शास्त्रीय नहीं होतीं, परंपरागत नहीं होतीं। उसकी अभिव्यक्ति मौलिक होती है। मौलिक होने के कारण लोगों को समझ में नहीं आती। लोग अपने शास्त्र, अपनी परंपरा को समझते हैं।
अब कृष्ण हिंदू थोड़े ही होते हैं। बुद्ध बौद्ध थोड़े ही थे। क्या तुम सोचते हो मोहम्मद मुसलमान थे? क्या तुम सोचते हो जीसस ईसाई थे? जीसस जब पैदा हुए तो उन्होंने जो कहा, यहूदी नाराज हो गए। यहूदी-घर में पैदा हुए थे। यहूदी चाहते थे कि ठीक यहूदी प्रक्रिया और परंपरा को दोहराएं वे। लेकिन इस जगत में जिसको भी सत्य मिलता है वह किसी की परंपरा नहीं दोहरा सकता। उसकी निष्ठा सत्य के प्रति होती है, परंपरा के प्रति नहीं होती। उसका सीधा संबंध परमात्मा से होता है। वह जो कहता है, वह स्वयं थोड़े ही कहता है--परमात्मा जो उससे बुलाता है, वही कहता है। और दुनिया तो बदलती जाती है। और परमात्मा तो दुनिया की भाषा में बोलता है। जब जैसी दुनिया होती है उस भाषा में बोलता है। ऐसा थोड़े ही है कि अब कृष्ण पैदा होंगे तो

संस्कृत में ही बोले चले जाएंगे। तुम सोचते हो संस्कृत में बोलेंगे अब कृष्ण पैदा होंगे तो तुम्हारी भाषा में बोलेंगे। सुंदरदास ने तुम्हारी भाषा में बोला। कबीर ने तुम्हारी भाषा में बोला। लेकिन कबीर के जमाने में भी जो पंडित था, पुराणपंथी था, वह संस्कृत ही बोल रहा था। जीसस अरेमैथ भाषा में बोले, जो लोगों की भाषा थी। लेकिन जो पंडित था, वह हिब्रु में बोल रहा था। परमात्मा तो तुमसे बोल रहा है, इसलिए तुम्हारी भाषा में बोलेगा और परमात्मा तो नितनूतन, नया है, प्रतिपल नया है। इसी तरह तो वह शाश्वत रूप से युवा है, स्वच्छ है, निर्मल है।
तो दूसरी कठिनाईः जब भी कोई साक्षात करने वाला व्यक्ति बोलता है तो किसी परंपरा से मेल नहीं खाता। और तुम सब परंपराओं के आदी हो। तुम चाहते हो, तुम्हारी परंपरा से मेल खाए, तो सत्य। तुम्हारी परंपरा से सिर्फ मुर्दे मेल खाते हैं, पंडित मौलवी मेल खाते हैं। बड़ी अड़चन आ गई। तो तुम संत के पास जाओ कैसे? तुम अगर जैन हो तो तुम जैन मुनि के पास जाओगे। तुम उस मुनि के पास जाओगे जो तुम्हारी परंपरा की लकीर को मान कर चलता है और उस लकीर को मान कर चलने वाले लोग मुर्दा ही हो सकते हैं। लकीरें मानकर कोई ज्ञानी चलता नहीं। ज्ञानी लकीर के फकीर नहीं होते। जो तुम्हारी लकीर मान कर चलते हैं वे तुम्हारे ही जैसे हैं, उनमें कुछ भेद नहीं है। मगर उनकी बात तुम्हें जंचेगी; क्योंकि तुमसे मेल खाएगी। तुम्हारे अहंकार को तृप्ति करेगी।
ज्ञान का अवतरण जब भी होगा, तब भी कोई वस्तुतः संत होगा, तो सभी उससे नाराज होंगे। सिर्फ उन थोड़े से लोगों को छोड़ कर, जिनकी प्यास इतनी है कि वे परंपरा को त्यागने को तैयार हैं, मगर प्यास को त्यागने को तैयार नहीं। जिनकी परंपरा इतनी मूल्यवान नहीं, जिन्हें मालूम होती, जितना परमात्मा। शास्त्र जिन्हें इतना मूल्यवान नहीं मालूम होता, जितना सत्य।... तो बहुत थोड़े से लोग खोज पाएंगे। अधिक लोग तो पंडित-पुजारियों के आस-पास ही भटकते रहेंगे और समाप्त हो जाएंगे।
फिर तीसरी और सबसे बड़ी कठिनाईः एक तो संत बहुत मुश्किल हैं, फिर उनकी मौलिकता, उसकी क्रांति बाधा बनती है। और तीसरी बात उसके पास जाओ तो मरना पड़ता है, मिटना पड़ता है, समर्पित होना पड़ता है। उससे कम में काम नहीं चलता। उसके साथ समझौते नहीं हो सकते। उसे तुम यह नहीं कह सकते कि थोड़ा-थोड़ा। या तो इस पार, या उस पार। इतनी हिम्मत, उतना साहस... दुस्साहस बहुत थोड़े से लोगों की आत्मा में होता है। इसलिए कायर मंदिर-मस्जिदों में पूजा करते रहते हैं। सिर्फ थोड़े से साहसी लोग दुर्लभ संतों के पास बैठते हैं। मिटते हैं और मिट कर नये होते हैं। मृत्यु के द्वारा पुनरुज्जीवन है। सिंहासन जरूर मिलता है; लेकिन सूली के बाद। सूली सीढ़ी है सिंहासन की।
मद मत्सर अहंकार की दीन्हीं ठौर उठाइ।
सुंदर ऐसे संतजन ग्रंथनि कहे सुनाइ।।
संत कौन है? जिसने मद, मत्सर, अहंकार की ठौर को मिटा दिया, आवास मिटा दिया। जिसने उनकी बुनियाद गिरा दी। कहां है बुनियाद? मैं-भाव में बुनियाद है। "मैं हूं"--यही बुनियाद है सारे मद, मत्सर, अहंकार, काम, क्रोध, लोभ की। संत हम उसे कहते हैं, जिसमें मैं-भाव न रहा, जिसमें परमात्मा-भाव का उदय हुआ। संत कहता हैः मैं नहीं हूं, तू है। इसीलिए कभी-कभी संत की भाषा में तुमको बड़ी हैरानी होगी। कृष्ण ने कहाः "सर्व धर्मान परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज।" सब छोड़-छाड़, सब धर्म इत्यादि, मेरी शरण आ। अब इससे ज्यादा अहंकार की और क्या बात होगी? अगर कोई तुमसे ऐसा कहेगा कि छोड़ो-छाड़ो सब, मेरी शरण आओ, मैं मुक्तिदाता, मैं तुम्हें पार ले जाऊंगा--तो स्वभावतः तुम्हें लगेगा यह कैसे अहंकार की बात हो रही है! मगर यह अहंकार की बात नहीं हो रही है, क्योंकि कृष्ण तो बिल्कुल मिट चुके हैं। कृष्ण तो हैं ही नहीं यह तो परमात्मा बोल रहा है। जब कृष्ण यह कह रहे हैंः "सर्व धर्मान परित्यज्य, मामेकं शरणं ब्रज", तो कृष्ण तो हैं ही नहीं। मामेकं शरणं व्रज... तब वही एक कह रहा है कि मुझ एक की शरण आओ। कृष्ण तो केवल बीच के एक माध्यम हैं। कृष्ण के ओंठों का, जीभ का, कंठ का उपयोग किया जा रहा है, कृष्ण बोल नहीं रहे हैं।

जब जीसस कहते हैंः आई एम दि वे, आई एम दि ट्रूथ... मैं हूं सत्य, मैं हूं मार्ग, तो क्या तुम सोचते हो जीसस यह अपने संबंध में कह रहे हैं। जीसस तो गए, कब के गए। कहानी हो गए, इतिहास हो गए। जीसस अब नहीं हैं। यह तो परमात्मा बोल रहा है कि मैं हूं मार्ग, मैं हूं सत्य। लेकिन हमारी अड़चन है। हमारे भीतर तो मैं बोलता है। उसी मैं शब्द का उपयोग ये संत भी करते हैं। जब मंसूर ने कहाः "अनलहक, मैं सत्य हूं", तो मुसलमान नाराज हो गए कि कोई आदमी अपने को सत्य कहे या अपने को परमात्मा कहे... फांसी लगा दी, मार डाला। लेकिन मरते वक्त भी मंसूर हंस रहा था। और किसी ने भीड़ में से पूछा कि तुम हंस क्यों रहे हो? तो मंसूर ने कहा, मैं इसीलिए हंस रहा हूं कि तुम जिनको मार रहे हो, वह तो बहुत पहले मर चुका है। मैं तो हूं ही नहीं, इसलिए हंस रहा हूं। मारे हुए को मार रहे हो, पागलो! मैं तो कब का जा चुका। अब तो वही था।
उपनिषद कहते हैंः "अहं ब्रह्मास्मि। मैं ब्रह्म हूं।" यह मैं शब्द का उपयोग करना पड़ रहा है, मजबूरी है, लेकिन इस मैं में कोई है नहीं भीतर।
परमात्मा ही है।
मद मत्सर अहंकार की दीन्हीं ठौरि उठाइ।
सुंदर ऐसे संतजन ग्रंथनि कहे सुनाइ।।
सुंदरदास कहते हैंः ग्रंथों ने जिन संतों की चर्चा की है, सारे ग्रंथ इन्हीं संतों की चर्चा से भरे हैं। तुम ग्रंथों की पूजा कर रहे हो। और ग्रंथ कहते हैंः संतों को खोजो! ग्रंथ कहते हैंः सदगुरु की तलाश करो। ग्रंथ कहते हैंः जहां अभी परमात्मा ताजा-ताजा उतरा हो, वहां जाओ। अभी जहां सुबह हुई हो, अभी जहां सूरज उगा हो, वहां झुको। लेकिन तुम तस्वीरें रखे बैठो हो सूरज की। कभी सूरज उगा था। हजारों साल पहले, उसकी तस्वीर रखे बैठे हो।
रामचंद्र जी खड़े हैं धनुष लिए। वह हजारों साल पहले उगे सूरज की तस्वीर है। उसको सिर झुका रहे हो। किसको तुम धोखा दे रहे हो। जरा किसी पक्षी को धोखा देकर देखो। एक सूरज की उगती तस्वीर ले जाओ पक्षी के सामने, पक्षी गीत नहीं गाएगा। जरा किसी फूल को धोखा देकर देखो। सुंदर से सुंदर रंगीन तस्वीर ले जाओ फूल के पास सूरज की, फूल नहीं खिलेगा। किसको तुम धोखा दे रहे हो? आदमी के अतिरिक्त यहां और कोई धोखा नहीं खा सकता। आदमी अदभुत है। आदमी बड़ा कुशल है, अपने को ही धोखा दे लेता है।
ऐसी कहानी है सम्राट सोलोमन के जीवन में एक स्त्री आई। विदुषी थी बहुत। सोलोमन की ख्याति थी कि वह बुद्धिमान है। उसकी ख्याति इतनी फैली कि दुनिया के सब कोनों में उसका नाम पहुंच गया। हिंदुस्तान में भी कहावत है। लोग कहते हैंः बड़े सुलेमान मत बनो। उसका मतलब यह है कि बड़ी बुद्धिमानी मत दिखलाओ। हालांकि उनको पता नहीं है कि वे किस सुलेमान की बात कर रहे हैं। सोलोमन, उसका नाम भी बदल गया हिंदुस्तान आते-आते सुलेमान हो गया। मगर लोग कहते हैं कि बड़े सुलेमान... क्या समझ रखा है अपने को?
सोलोमन की ऐसी ख्याति थी कि उस जैसा दुनिया में आदमी नहीं है। कई लोग उसकी परीक्षा लेने आते थे। एक विदुषी महिला उसकी परीक्षा लेने आई। उसने अपने हाथ में, एक हाथ में कुछ फूल ले रखे थे, दूसरे हाथ में भी कुछ फूल ले रखे थे। वह आकर दरबार में खड़ी हो गई, उसने कहा कि मैं पूछती हूं, इसमें कौन से फूल सच्चे हैं, कौन से झूठे हैं? सुलेमान थोड़ा झिझका। फूल बिल्कुल एक से मालूम होते थे। यह भी हो सकता है कि दोनों ही सच्चे हों। यह भी हो सकता है दोनों ही झूठे हों। और यह भी हो सकता है एक हाथ में झूठे हों, एक हाथ में सच्चे हों। मगर दोनों एक जैसे थे। किसी बड़े कलाकार ने झूठे फूल तैयार किए थे।
उसने कहाः एक क्षण। कहा कि द्वार-दरवाजे खोल दो, जरा रोशनी कम है.जरा रोशनी ठीक से हो जाए, मैं बूढ़ा आदमी हो गया हूं, आंखों में मुझे दिखाई कम पड़ता है, जरा दरवाजे खोल दो। सब द्वार-दरवाजे खोल दिए गए। उसके चारों तरफ महल के बड़ा सुंदर बगीचा है। और एक क्षण बाद उसने बता दिया कि तेरे बाएं हाथ में फूल जो हैं वे सच्चे हैं और दाएं हाथ में जो फूल हैं वे झूठे हैं। स्त्री तो बड़ी चकित हुई। उसके दरबारी भी बड़े चकित हुए। उन्होंने कहाः यह जाना कैसे? उसने कहाः अब तुम पूछते हो तो मैं बता देता हूं। मैंने

प्रतीक्षा की कि कोई मधुमाखी बगीचे से भीतर आ जाए, क्योंकि वही जांच सकती है। एक मधुमाखी आ गई। मैं उसको ही देखता रहा, किन फूलों पर बैठती है। जो फूल उसने बैठने के लिए चुने वे सच्चे हैं। तुम आदमी को धोखा दे सकते हो, मधुमाखी को तो धोखा नहीं दे सकते।
सारे ग्रंथ जीवंत संतों की चर्चा कर रहे हैं और तुम ग्रंथों को पकड़ कर बैठ गए हो! तुम्हारी हालतें ऐसी हैं जैसे रेलगाड़ी में न बैठ कर टाइम-टेबल के ऊपर बैठे हुए, चले बैठे टाइम-टेबल पर! कहीं नहीं पहुंचोगे। बैठे रहो टाइम-टेबल पर। और हिंदुस्तान के टाइम-टेबल तो वैसे ही किसी काम के नहीं हैं।
मैंने सुना है, एक आदमी हुज्जत कर रहा था स्टेशन पर, स्टेशन मास्टर से,
कि जो देखो वह ही गाड़ी लेट है। एक गाड़ी तीन घंटा, दूसरी सात घंटा, तीसरी चौदह घंटा। फिर टाइम-टेबल छापते ही क्यों हो? जब सभी गाड़ियां रोज ही लेट होनी हैं तो टाइम-टेबल की जरूरत क्या है?
स्टेशन मास्टर ने कहाः बिना टाइम-टेबल के पता कैसे चलेगा कि कौन सी गाड़ी कितनी लेट है? इसलिए छापते हैं।
यहां के टाइम-टेबल! उनको अब लिए बैठो हो, बैठे रहो उन पर जन्मों-जन्मों तक। कुछ भी न होगा।
कहीं खोजो। परमात्मा अब भी उगता है, जैसे सूरज अब भी उगता है। तुम क्यों पुरानी सूरज की तस्वीरें लिए बैठे हो? वे तस्वीरें प्यारी हैं। उन तस्वीरों से कोई विरोध भी नहीं है। वे तस्वीरें परमात्मा की हैं, मगर तस्वीरें हैं।
भक्ति का शास्त्र कहता हैः जीवंत से संबंध जोड़ो तो क्रांति घटेगी।
आए हर्ष न ऊपजै गए शोक नहीं होइ।
सुंदर ऐसे संतजन कोटिनु मध्ये कोइ।।
संत वे हैं, जिन्हें सफलता मिले कि विफलता, सम्मान मिले कि अपमान, कुछ
आए कुछ जाए--भेद नहीं पड़ता। जिनके भीतर सफलता-असफलता में कोई भेद नहीं रहा और जीवन-मृत्यु में कोई भेद नहीं रहा, जिनके भीतर ऐसा अद्वैत सधा है-- सुंदर ऐसे संतजन कोटिनु मध्ये कोइ।
करोड़ों में कभी कोई एकाध ऐसा होता है। मिल जाए तो तुम धन्यभागी हो। मिल जाए तो हर उपाय करना कि छूट न जाए साथ।
सुखदाई सीतल हृदय देखत सीतल नैन।
कैसे पहचानोगे कि जिसके पास पहुंचे हो वह संत है? क्योंकि हम तो अंधे हैं, बहरे हैं, हमारी संवेदनशीलता भी बड़ी क्षीण हो गई है। हम पहचानेंगे कैसे कि कोई संत है? बुद्ध के पास जाकर हम जानेंगे कैसे कि बुद्ध के पास आ गए। तो लक्षण देते हैं--
सुखदायी सीतल हृदय... ।
जिसके पास बैठ कर हृदय शीतल होने लगे, सुख की तरंगें उठने लगें। जिसके पास बैठो तो दुख भूल जाए। जिसके पास बैठो तो संसार ही भूल जाए। थोड़ी देर को किसी दूसरे देश के वासी हो जाओ।
सुखदायी सीतल हृदय, देखत सीतल नैन।
जिसकी तरफ देखो तो आंखें शीतल हो जाएं। जिसकी वाणी सुनो तो भीतर संगीत उठने लगे। जिसकी मौजूदगी में तुम जैसे हो वैसे न रह जाओ, किन्हीं उंचाइयों पर उड़ने लगो, जो तुमने कभी सपनों में भी नहीं देखीं। किसी और लोक में विचरण करने लगो! कोई नये द्वार खुल जाएं! तो बस पहचान हो गई।
ऊपर-ऊपर के लक्षण नहीं गिना रहे हैं, ख्याल रखना, कि धूप में खड़ा हो, कि कांटों की शय्या बनाई हो, उस पर लेटा हो, कि इतने उपवास किए हों। यह तो कोई भी कर सकता है, यह तो कोई भी सर्कसी कर सकता है। यह तो करते ही लोग, जिनके दिमाग खराब हैं वे ही।
अब कांटों की शय्या पर लेटने की क्या जरूरत है? संसार कोई कम कांटों
की शय्या है कि अब और कांटों की शैया बना रहे हो! फिर उसमें भी तरकीबें होती हैं। तुमको भी लेटना हो तो उसकी तरकीब होती है, सीखने का उसका क्रम होता है, ढंग होता है। तुम चले जाना, डाक्टर से पूछ लेना। तुम्हारी पीठ में ऐसे बहुत से हिस्से हैं जहां किसी तरह की पीड़ा का अनुभव नहीं होता। तुम

अपने घर में अपने छोटे बच्चे को कहना कि जरा सुई लेकर दस-पच्चीस जगह मेरी पीठ में चुभा। तुम हैरान हो जाओगे, कुछ जगह चुभाएगा, पता चलेगा; कुछ जगह चुभाएगा, पता ही नहीं चलेगा। वह चुभाता रहेगा और तुमको पता नहीं चलेगा। तुम्हारी पीठ में ऐसे बहुत से बिंदु हैं, जहां सुई चुभाने से पता नहीं चलता। बस उन्हीं-उन्हीं बिंदुओं पर कांटे होने चाहिए। फिर मजे से तुम सो जाओ कांटे की सेज पर। यह सब सर्कसी खेल है। इसका कोई भी मूल्य नहीं।
ऐसा ही उपवास भी है। तुम्हें शायद पता नहीं है कि अगर तुम समझ लो तो भूलकर उपवास न करो। और मैं उन उपवासों का विरोध नहीं कर रहा हूं, जो चिकित्सा की दृष्टि से किए जाएं। वे ठीक हैं। शरीर में कोई खराबी है और शरीर को विश्राम की जरूरत है, जरूर उपवास कर लेना। लेकिन उसका कोई धार्मिक मूल्य नहीं है। स्वास्थ्य के लिए कीमती है। जो लोग लंबे उपवास कर रहे हैं धर्म के नाम पर, उनको पता नहीं वे क्या कर रहे हैं। वह मांसाहार कर रहे हैं। वे अपना ही मांस खा रहे हैं। जभी तो रोज एक किलो वजन कम हो जाएगा। वह एक किलो वजन कहां गया, पता है? पचा गए।
शरीर में दोहरे यंत्र हैं। शरीर ने पूरी व्यवस्था की है। आपातकालीन स्थितियों की भी व्यवस्था की है शरीर ने। कभी ऐसा हो जाए कि महीना पंद्रह दिन भोजन न मिले, तो मर न जाओ। तीन महीने तक आदमी बिना भोजन के जी सकता है। साधारण स्वस्थ आदमी तीन महीने तक बिना भोजन के जी सके इसकी व्यवस्था कर रखी है, आपातकालीन व्यवस्था है। जंगल में भटक जाओ, समुद्र में नाव डूब जाए, तो तीन महीने तक कम से कम तुम्हारे पास सुरक्षित भोजन है। तुम्हारा जो मांस तुम्हारे भीतर है, वही मांस शरीर पचाना शुरू कर देता है। वह प्रक्रिया सातवें दिन के बाद शुरू होती है।
इसलिए उपवास की असली कठिनाई सात दिन होती है। सिर्फ पहले सात दिन जो पार कर गया, फिर कोई अड़चन नहीं होती। फिर आठवें दिन से तो नये यंत्र काम शुरू कर देता है। फिर तुम अपना ही मांस पचाने लगते हो। फिर तो तुम चकित होओगे, तीन सप्ताह के बाद भोजन करने की इच्छा ही नहीं होती। क्योंकि अब भोजन की कोई जरूरत ही नहीं है। अब तो नये ढंग पर शरीर ने काम शुरू कर दिया। अभी "वंदना" ने यहां किया। किसी नासमझ ने समझा दिया होगा कि उपवास करो, उपवास से बड़ा ध्यान बढ़ता है। उसने उपवास कर लिया। अब उसकी भूख भर गई। अब भोजन करना चाहती है तो भूख नहीं है। अब भोजन करना मुश्किल हो रहा है। अब कल मुझे पत्र लिखा कि अब क्या करूं मैं? रोज शरीर क्षीण होता जा रहा है, भोजन की कोई इच्छा पैदा होती नहीं। कुछ अगर जबरदस्ती ले लेती हूं तो वमन हो जाता है। अब शरीर ने दूसरे यंत्र को काम में लगा दिया। अब भोजन की जरूरत नहीं। वह फेंक देता है बाहर। अब इसकी प्रक्रिया काम कर रही है।
तो कुछ ऐसा मत सोचना कि उपवास से कुछ धार्मिकता हो रही है। तुम सिर्फ शरीर की एक आपातकालीन व्यवस्था का उपयोग कर रहे हो, जो कि मंहगी पड़ सकती है, जो कि घातक हो सकती है। ये ऊपरी लक्षण नहीं गिनाए सुंदरदास ने।
सुखदाई सीतल हृदय देखत सीतल नैन।
सुंदर ऐसे संतजन बोलत अमृत बैन।।
जिनकी वाणी से तुम्हें अमृत की थोड़ी खबर मिलने लगे। जिनकी वाणी तुम्हारे कंठ में अमृत का स्वाद देने लगे।
यहां तो सब मरणधर्मा हैं। चारों तरफ संसार मृत्यु से घिरा है। हम मृत्यु की अंधेरी अमावस में हैं। जिस किसी भी वाणी से तुम्हें अमृत के दीये जलते हुए दिखाई पड़ने लगें, चाहे कितने ही दूर आकाश में, कितने ही फासले पर, टिमटिमाटे दीये भी दिखाई पड़ने लगें--तो समझ लेना, कोई चरण आ गए जहां समर्पित हो जाना है।
क्षमावंत धीरज लिए सत्य दया संतोष।
सुंदर ऐसे संतजन निर्भय निर्गत रोष।।
जहां तुम्हें क्षमा का पता चले। अब तुम चकित होओगे। तुम जिन तथाकथित साधु-संतों के पास जाते हो, वहां क्षमा बिल्कुल नहीं है। वे तुम्हें समझा रहे हैं कि अगर तुमने यह पाप किया, नरक में सड़ोगे। क्षमा कहां है? भयंकर दंड का आयोजन किया है। और जिनने भी यह आयोजन किए हैं, बड़े दुष्ट प्रकृति के

लोग रहे होंगे। नरक का कैसा-कैसा रस लेकर वर्णन किया है। साधु-संत तो इतना डरवा देते हैं लोगों को--तथाकथित साधु-संत, कि लोग कंप जाते हैं बिल्कुल। मैंने सुना है, एक ईसाई पादरी समझा रहा था लोगों कोः जब नरक में पड़ोगे,
आग में जलाए जाओगे। ऐसी ठंडी रातों में फेंके जाओगे जहां बर्फ ही बर्फ होगी। हाथ-पैर कंपेंगे और नंगे रखे जाओगे। सिहरोगे। कंपोगे। दांत किटकिटाएंगे।
एक बुढ़िया खड़ी हो गई। उसने कहाः लेकिन मेरे दांत ही नहीं हैं। पादरी
भी कोई हार मानने वाला नहीं। उसने कहाः तू चुप रह। दांत दिए जाएंगे, मगर किटकिटाने तो पड़ेंगे ही। दांत तक का उसने बताया कि इंतजाम है वहां; जिनके दांत नहीं हैं, बरफ में फेंकने के पहले दांत दे दिए जाएंगे नकली लो, लगाओ। मगर किटकिटाने तो पड़ेंगे ही। किटकिटाने से तो कोई छुटकारा नहीं। आग में जलाए जाएंगे कीड़े-मकोड़े तुम्हें खाएंगे। प्यास लगेगी, पानी सामने होगा और पी न सकोगे। और अनंत-अनंत काल तक यह दुर्दशा की जाएगी।
और तुमने पाप क्या किया था। किसी ने सिगरेट पी ली थी। या कोई कभी दीवाली आ गई, जुआ खेल लिया था। तुम्हारे पाप इतने छोटे हैं और तुम्हारे तथाकथित पंडित-पुरोहित दंड तुम्हें इतने बड़े दे रहे हैं।
पाप ही क्या है? कौन से बड़े पाप कर लिए हैं? सब छोटे-मोटे पाप हैं। पाप कहना नहीं चाहिए, छोटी-मोटी भूलें हैं जो बिल्कुल मानवीय हैं। इन मानवीय भूलों को क्षमा जहां होती हो, वहां समझना कि कोई संत का अवतरण हुआ है, जहां तुम्हारी सारी भूलों को क्षमा करने की क्षमता हो। जिससे पास बैठ कर तुम्हें यह भरोसा आ जाए कि मैं पापी नहीं हूं, कि मैं बुरा नहीं हूं, कि मुझे नरक में नहीं सड़ना होगा, कि परमात्मा रहमान है। जिसके पास बैठ कर तुम्हें यह समझ में आ जाए कि परमात्मा रहमान है, रहीम है, कि परमात्मा करुणावान है, कि वहां कैसा दंड।
परमात्मा और दंड का कोई मेल ही नहीं बैठ सकता। अगर नरक है दुनिया में,
तो परमात्मा नहीं है और परमात्मा है तो नरक नहीं हो सकता। जिसके पास तुम्हें इस बात की झलक मिलने लगे, जिसकी आंखों में तुम्हारे प्रति सम्मान हो, समादर हो तुम्हारे तथाकथित साधुओं की आंखों में तुम्हारे प्रति निंदा का भाव है, भयंकर निंदा का। तुम पापी, महापापी! उनकी आंखों में एक ही ख्याल है कि सड़ोगे; हमारी मान कर चलो, अन्यथा सड़ोगे। और उनके मानने की बात ऐसी है कि मान कर तुम चलो तो यहीं सड़ने लगोगे। तो बेचारे लोग क्या करें? यहां सड़ें कि वहां सड़ें? फिर वे सोचते हैं कि वहीं सड़ेंगे, देखेंगे जब होगा। आगे की आगे देखेंगे। ये तो अभी सड़वा देंगे। तुम्हारे लिए विकल्प ही नहीं छोड़ा है। वे कहते हैं, यहां भूखे मरो, नहीं तो वहां भूखे मरोगे। यहां सोओ कांटों की सेज पर, नहीं तो वहां सोओगे। स्वभावतः आदमी सोचता है कि अब कल की कल देखेंगे, कल का कल उपाय करेंगे। कुछ रिश्वत, घूस चलती होगी वहां पर, हाथ-पैर जोड़ लेंगे, माफी मांग लेंगे कि कुछ पता नहीं था, भूल हो गई, अब जो कुछ हुआ। कोई न कोई मार्ग तो होगा ही। हर कानून से बचने के उपाय होते हैं। वकील कहीं तो होंगे। अगर नरक कहीं है तो सारे वकील वहां होंगे। बड़े-बड़े वकील वहां होंगे। उनका सहारा लेंगे।
मैंने सुना है, ईश्वर और शैतान में एक दिन झगड़ा हो गया। क्योंकि स्वर्ग और नरक के बीच में जो दीवार थी; वह गिर रही थी। न ईश्वर उसको ठीक करवाएं, न शैतान उसको ठीक करवाएं। पड़ोसियों के झगड़े। दोनों इस आशा में कि तुम करवाओ ठीक? अक्सर दोनों की मुठभेड़ हो जाए कि करवाते हो कि नहीं ठीक? आखिर एक दिन ईश्वर ने कहा कि देख, तू ठीक करवाता है कि नहीं? यह तेरी ही शैतानी के कारण ही गड़बड़ है और तेरे ही लोगों के कारण ही ये ईंटें गिर गई हैं। स्वर्ग में तो शांति ही है। यहां कोई लड़ाई-झगड़ा भी नहीं है। मगर तेरे ही लोग उछल-कूद मचाते हैं और ईंटें गिरा दिए हैं। अब इनको ठीक करवा, अन्यथा अदालत में मुकदमा चलाऊंगा।
शैतान खिल-खिला कर हंसने लगा। उसने कहाः चलाओ मुकदमा। वकील कहां से पाओगे? वकील तो सब मेरी तरफ हैं।
तो आदमी सोचता है कि वकील मिल जाएंगे वहां, कोई प्रार्थना-पूजा का उपाय होगा, कोई पंडित मिल जाएंगे, यज्ञ-हवन करवा देंगे। यज्ञ-हवन से तो

क्या नहीं होता--विश्व-शांति तक हो जाती है। क्या रखा है? एक हृदय की शांति न हो सकेगी? ऐसे-ऐसे बड़े-बड़े पंडित पड़े हैं इस देश में, सारे विश्व की शांति करवा देते हैं। अहमदाबाद में करवा देते हैं यज्ञ, सारे विश्व में शांति। शांति कभी होती ही नहीं, यज्ञ होते रहते हैं मगर आदमी सोचता है कि चलो एकाध की तो करवा देंगे। मंत्र-ताबीज वाले गुरु होंगे। किसी की ताबीज ले लेंगे, किसी का मंत्र ले लेंगे। देखेंगे, कल की कल देखेंगे। अभी तो कोई मरे नहीं जाते
तो आदमी स्वभावतः कल पर छोड़ देता है। और साधुओं ने विकल्प नहीं छोड़े हैं तुम्हारे। यहां सड़ो या वहां सड़ो। तुम्हारे पीछे ही पड़े हैं, जैसे तुम्हें सड़ाना ही हो। और तुम्हारी हर चीज की निंदा है। तुम्हारा प्रेम पाप है। तुम्हारा जीवन पाप है। तुम्हारा उठना-बैठना सब पाप हैं।
देखते हो, तेरापंथी मुनि नाक पर पट्टी बांधे... श्वास लेना पाप है। गुनाहों का तो कोई अंत ही नहीं है। नाक पर पट्टी क्यों बांधे हैं? पता है, गर्म श्वास जो निकलती है, उसमें कहीं कोई छोटे-मोटे कीड़े हवा में उड़ते हुए मर न जाएं। उनको बचाने के लिए। अगर वे भर गए तो फंसे। फिर किटकिटाओ दांत।
इससे बेहतर मुंह पर पट्टी बांधो।
मगर पानी तो पीओगे। कितना ही छान कर पीयो, उसमें जीवाणु होते ही हैं।
और तुम्हारी मुंह-पट्टी कितनी ही हो, जब तक श्वास लोगे, वायु में जीवाणु होते ही हैं। कम जाएंगे--जाएंगे ही।
कितना घबड़ा दिया है लोगों को दिगंबर जैन मुनि स्नान नहीं करता। इस डर
से कि इतना पानी का उपयोग करेंगे, उतना पाप लगेगा, उतने पानी के जीवाणु मर गए। बास आने लगती है जैन मुनियों से। नहाओगे नहीं तो बास आएगी ही। दतवन नहीं करते। कुल्ला करेंगे पानी में, उतने कीटाणु भर गए।
तुम जीने दोगे आदमी को कि नहीं? कुल्ला तक करने की सुविधा नहीं छोड़ रहे हो! नहाने नहीं देना चाहते। भोजन नहीं करने देना चाहते हो। चाहते क्या हो कि लोग आत्महत्या कर लें? आत्महत्या पाप है, याद रखना। फिर दांत किटकिटाओगे। छोड़ते कहीं से।
एक बात का पक्का कर लिया है कि तुम्हारे दांत किटकिटाने हैं। कोई भी तरह से हो, तुम्हें नरक में सड़वाना है। ये ठीक सिद्ध-पुरुषों के लक्षण नहीं हैं।
क्षमावंत धीरज लिए, सत्य दया संतोष।
सुंदर ऐसे संत जन, निर्भय निर्गत रोष।।
उनमें कोई रोष नहीं है, क्रोध नहीं है, असंतोष नहीं है। दया है, ममता है, करुणा है। सत्य की वहां वर्षा हो रही है। और जो भी इस वर्षा में पहुंचेंगे, उनके कंठ शीतल हो जाएंगे।
घर बन दोऊ सारिखे, सबतें रहे उदास।
संतों को घर और जंगल एक जैसा है वे घर के विपरीत जंगल नहीं चुनते। उन्हें सब बराबर है। घर तो घर, जंगल तो जंगल। वे तटस्थ हैं। उदास का अर्थ होता है तटस्थ। उदास का अर्थ उदास मत समझ लेना। उदास का अर्थ होता हैः उनको अब कोई आशा नहीं है, किसी चीज से कोई आशा नहीं है। किसी चीज से कुछ लेना नहीं, कुछ मांगना नहीं, कोई अपेक्षा नहीं है। तटस्थ भाव से जहां है ठीक, जैसे हैं ठीक।
सुंदर संतनि कै नहीं जीवन मरण की आस।
न तो जीवन में कोई रस है, न मरने में कोई रस है। कई लोग हैं जिनको मरने में रस है। वे कहते हैंः हे प्रभु, कब छुटकारा हो जीवन से? और वे सोचते हैं कि बड़ी धार्मिक बात कह रहे हैं, प्रभु पर बड़ी कृपा कर रहे हैं। कब छुटकारा हो जीवन से। मृत्यु मांग रहे हैं।
नहीं, संत तो वही है जो कुछ भी नहीं मांग रहा है--न जीवन, न मृत्यु।
जीवन दो तो ठीक, मृत्यु दो तो ठीक। जो हो आए, ठीक, जैसा आए वैसा ठीक। जैसा आए वैसा सर्व-स्वीकार है।
धोवत है संसार सब गंगा मांहें पाप।
सुंदर संतनि के चरण गंगा बंछै से आप।।

सुंदर दास कहते हैंः सारे लोग गंगा में पाप धोने जाते हैं। बेचारी गंगा की भी तो कुछ सोचो? इतने पाप इकट्ठे होते जा रहे होंगे, गंगा क्या करे? गंगा संतों के चरणों की आशा रखती है। गंगा स्वयं चाहती है संतों के चरणों में बहे। व्यर्थ है गंगा तक जाना। गंगा खुद संतों के चरणों की आशा कर रही है।
संतों के चरण जहां पड़ते हैं, वहीं तीर्थ बन जाते हैं। संत जहां उठते- बैठते, वहां मंदिर उठ जाते। तुम मंदिरों में क्या जा रहे हो? ये केवल खबरें हैं कि यहां कभी कोई संत उठा बैठा होगा। तीर्थों में क्या जा रहे हो? ये खबरें हैं कि कभी किसी संत के चरण यहां पड़े होंगे। ये केवल चरण-चिह्नों की पूजा मत करो। चरणों को खोजो, जहां अभी भी चरण चलते हों।
संतनि की सेवा किए, सुंदर रीझै आप।
और बड़ा प्यारा वचन है कि जो संतों की सेवा करता है, परमात्मा स्वयं उस
पर रीझ जाता है। क्योंकि संत उसके हैं, उसके प्रतिनिधि हैं, उसके द्वार हैं।
जाकौ पुत्र लड़ाइए अति सुख पावै बाप।
जैसे किसी के बेटे को खूब लाड़ करो, प्यार करो, तो उसका बाप भी सुख पाता है। ऐसे संतों की जो सेवा करता है, वह परमात्मा का प्यारा हो जाता है।
एक बड़े मजे की बात ख्याल लेना। दुनिया में सेवा की दो धारणाएं हैं। एक ईसाइयों की धारणा है सेवा की। उस धारणा का अर्थ होता है बीमार की, रुग्ण की, सेवा करो। शुभ है वह भी। मगर, उस धारणा से हमारी सेवा का कोई अर्थ नहीं जुड़ता। इस देश में हमारी सेवा की दूसरी धारणा है। हमारी सेवा की धारणा हैः सिद्ध की, संत की, जिसने पा लिया, उसकी, किसी बुद्ध की सेवा करो। ये दो सेवा की अलग-अलग धारणाएं हैं।
इसलिए मैं अक्सर कहता हूं कि महात्मा गांधी निन्यानबे प्रतिशत ईसाई थे। सेवा की धारणा थी--बीमार की, रुग्ण की सेवा करो। शुभ है, अच्छा है, नैतिक है, धार्मिक नहीं। होना चाहिए, लेकिन इससे धर्म का कोई संबंध नहीं है। धर्म से संबंध तो तब है, जब जो पहुंच गए हैं तुम उनके चरणों की सेवा करो। तुम किसी कोढ़ी के पैर कितने ही दबाते रहो, यह एक नैतिक कृत्य है--और अच्छा है, सम्मान के योग्य है। मगर इससे कुछ परमात्मा नहीं मिलेगा, जब तक तुम किसी बुद्ध के चरण न दबाओगे। क्योंकि बुद्ध के चरणों से ऊर्जा बहेगी। कोढ़ी के चरणों से क्या ऊर्जा बहनी है? तुम्हारी कुछ होगी थोड़ी-बहुत तो कोढ़ी के भीतर चली जाएगी। उसको थोड़ा स्वस्थ करेगी। अच्छा है। लेकिन बस अच्छा इससे ज्यादा नहीं। नास्तिक भी कर सकता है।
लेकिन हमारी जो सेवा की धारणा है, वह बड़ी और है। उसके चरण पकड़ो, जिसके चरणों से गंगा अवतरित होती हो, जिसके भीतर से परमात्मा बह रहा हो--ताकि तुम्हारे भीतर थोड़ी परमात्मा की झलक आ जाए; तरंग आ जाए।
हरि भजि बौरी हरिभजु त्यानु नैहर कर मोह।
जिव लिनहार पठाइहि, एक दिन होइहि बिछोह।।
तो कहते हैंः याद कर लो हरि को, प्रभु को याद कर लो, संतों के चरण पकड़ लो, समागम कर लो। क्योंकि यह जो घर तुमने अपना घर समझ रखा है, यह घर नहीं है, यह ऐसे है जैसे नैहर जैसे कोई जवान होने लगी लड़की। मां के घर को तो छोड़ कर जाना पड़ेगा यह घर सदा नहीं रह सकती। जल्दी ही लिवाने वाला आ जाएगा। जल्दी ही बारात आएगी। जल्दी ही घोड़े पर सवार दुल्हा आएगा और जाना पड़ेगा। यह घर तो छूटेगा।
ऐसा ही यह संसार है। यह हमारी मां का घर। यह पृथ्वी का घर, पृथ्वी हमारी मां है। प्यारा आएगा। मौत में प्यारा ही आता है, हम पहचान नहीं पाते क्योंकि हम अंधे हैं। वही हाथ फैलाता है। हम घबड़ा जाते हैं हमने जोर से इस घर को अपना घर मान लिया है। यह धर्मशाला है। यहां थोड़ी देर रुकना है और कुछ सीख लेना है--कुछ पाठ। यहां पकना है, लेकिन तैयारी करनी है उस घर जाने की। हरि भजि बौरी हरि भजु।
पागलो। हरि को भजो। "त्यज नैहर कर मोह।" नैहर का मोह छोड़ो। "जीवन लिन्हार पठाईहिं।" जब लेने वाला आएगा, "इक दिन होइहि बिछोह।" यहां से तो जाना है। एक बात जिसे याद रहे कि यहां से जाना है, यहां से जाना है, यहां से

जाना है--उसके जीवन में भ्रांति हो जाती है। क्योंकि फिर वह चीजों को जोर से नहीं पकड़ता है। उपयोग कर लेता है संसार का, वस्तुओं का उपयोग कर लेता है; लेकिन मालिक रहता है गुलाम नहीं बन पाता।
आपुहि आप जतन करूं, जौ लगि बारि वयेस।
और जब तक उम्र छोटी है, जब तक बच्चे हो, तब तक यहां रहना है। पकाओ अपने को। प्रौढ़ हो जाओ, कि फिर न यहां रहना है, न यहां लौटने की जरूरत पड़ेगी।
आन पुरुष जिनि भेंटहु केहुके उपदेश।
तैयार करो अपने को। किसी का उपदेश सुन कर तैयार करो, ताकि जब परम पुरुष लेने आए तो तुम्हें वरे, तुम्हें गले लगाए; तुम्हें स्वीकार करे। जबलग होहु सयानिय तब लग रहब संभारि।
और जब तक सयानापन न आ जाए, जब तक भीतर सिद्धावस्था न आ जाए, तब तक सम्हाल कर रखना अपने को; जैसे जवान लड़की अपने को सम्हाल कर रखती है। अपने कुंआरेपन को सम्हाल कर रखती है; क्योंकि उसका प्यारा आएगा, यह कुंआरापन उसी की भेंट है। यह हर किसी को नहीं दिया जा सकता
जबलग होऊ सयानिय तब लग रहव संभारि।
केहूं तन जिनि चिव वहु, कंचिय दृष्टि पसारि।।
जब तक अपना प्यारा न आ जाए, तब तक किसी पर आंख डालना ही मत। यहां आंख डालते--योग्य और कुछ है भी नहीं यहां मोह लगाने योग्य कुछ है भी नहीं। मोह लगाना तो उस प्यारे से लगाना। प्रेम लगाना तो उस प्यारे से लगाना या अगर वह प्यारा दिखाई न पड़े तो उस प्यारे के प्यारों से लगाना।
यह जौवन पियकारन नीकै राखि जुगाइ।
यह तो उसी प्यारे के लिए है--यह जो भीतर फूल खिल रहा है चैतन्य का। यह
जो जीवन की अदभुत ऊर्जा भीतर निर्मित हो रही है, यह तो उस के ही चरणों में चढ़ानी है।
यह जौवन पिय कारन...
यह यौवन, यह जवानी, यह फूल जीवन का उसके ही चरणों में चढ़ना चाहिए। किसी
और के चरणों में नहीं। और सब व्यर्थ है, सावधान रहना।
बौद्ध कथाओं में एक प्यारी कथा है। सुदास, एक चमार, एक दिन सुबह उठा। अपने मकान के पीछे, अपनी छोटी सी तलैया में पाया कि एक कमल का फूल खिला है। बेमौसम। हैरान हुआ। बेमौसम फूल नहीं खिलते। कभी नहीं खिला था, और इतना बड़ा फूल! तोड़ कर सोचा कि बाजार जाऊं और बेच आऊं। आज दाम अच्छे मिल जाएंगे। कोई धनी ले लेगा। चला बाजार की तरफ। रास्ते पर गांव के सबसे बड़े धनी से मिलना हो गया बाजार तक जाना भी न पड़ा। वह अपने स्वर्ण-रथ पर बैठ कर कहीं जा रहा था। शायद सुबह के लिए हवाखोरी को निकला हो। इसके हाथ में कमल का फूल देख कर उसने कहा कि रुक सुदास, कितने दाम लेगा? सुरदास ने कहाः मालिक, बेमौसम का फूल है। इतना बड़ा फूल मौसम में भी नहीं खिलता। क्या देंगे आप?
सुबह-सुबह का मौसम था और सुदास को पता नहीं था कि धनी क्यों इतना प्रसन्न था। उसने कहा कि सौ स्वर्ण-मुद्राएं दूंगा, दे दे मुझे। सोचा भी नहीं था। एक स्वर्ण मुद्रा मिल जाए यह भी नहीं सोचा था। सौ स्वर्ण-मुद्राएं! सुदास थोड़ा चौंका। लोभ पकड़ा मन को, कि अगर सौ मिल सकती हैं, तो शायद बाजार में जाऊं, ज्यादा मिल सकती हैं। क्या पता, मामला क्या है? तो उसने कहा कि नहीं मालिक, बहुत कम हैं।
लेकिन तभी वजीर का रथ भी आकर रुक गया और वजीर ने कहाः बेच मत देना।
जितना नगर सेठ देता हो, दस गुना मैं दूंगा।
सुदास ने कहाः रहा, फूल दे दो। अब तो सुदास और मुश्किल में पड़ गया।
हजार स्वर्ण-मुद्राएं और तभी राजा का रथ भी आकर रुक गया। और राजा ने कहाः सुदास, जो मांगेगा दूंगा। बेच मत देना।
सुदास ने कहाः दस हजार स्वर्ण-मुद्राएं देंगे? छाती धड़कने लगी सुदास की, मांगते भी हिम्मत न हो रही थी। मगर जब हजार मिल सकती हैं तो दस हजार भी मिल सकती हैं। सम्राट ने कहा कि दस नहीं, जितना तू कहेगा उतना दूंगा। फूल ले आ।
सुदास ने कहाः मालिक क्या मैं पूछ सकता हूं कि मामला क्या है? मैं पागल हुआ जा रहा हूं। इस फूल में ऐसा क्या है?

सम्राट ने कहाः फूल में कुछ भी नहीं है। कोई और दिन होता तो दस-पांच पैसे भी तुझे नहीं मिल सकते थे। लेकिन आज मामला और है। बुद्ध का गांव में आगमन हुआ है। हम सब उन्हीं के स्वागत को जा रहे हैं। कौन नहीं चाहेगा, बेमौसम के ही कमल के फूल को बुद्ध को चढ़ाना! तू ला, फूल मुझे दे।
सुदास एक क्षण ठिठका और उसने कहा मालिक फूल नहीं बिकेगा। सम्राट ने कहाः क्या? सुदास ने कहा कि नहीं, फूल नहीं बिकेगा। जब दस हजार स्वर्ण-मुद्राएं देकर आप फूल चढ़ाना चाहते हैं, तो जरूर फूल के चढ़ाने में ज्यादा लाभ होगा। मैं ही चढ़ाऊंगा फूल।
सुदास गरीब है--सुदास ने कहा, लेकिन इतना गरीब नहीं। यह फूल बुद्ध के चरणों में मैं ही चढ़ाऊंगा। जब बुद्ध आते हों तो फूल बिकेगा नहीं। मुझे तो पता ही नहीं था। अब मैं समझा कि यह फूल खिला भी क्यों बेमौसम। यह उनके आने के कारण ही खिला होगा।
यह फूल भीतर का उसी परमात्मा के आगमन के कारण खिलता है; उसी के लिए खिलता है; उसी के चढ़ने के लिए खिलता है। इसे कहीं और मत चढ़ा देना।
यह जौवन पियकारन नीकै राखि जुगाइ।
खूब सम्हाल कर रखना।
अपने घर जिन छोड़हु घर आगि लगाइ।
इसे अपने भीतर से बाहर मत चले जाने देना। इस जीवन-ऊर्जा को सम्हालना संपदा की तरह। यह तुम्हारे जीवन के बाहर चली जाए तो यह संपदा अग्नि हो जाती है।
जीवन ने ही तो लोगों को नरक बना दिया है। जीवन की ऊर्जा बाहर जाती है,
तो अग्नि हो जाती है। जैसे एक घर से लपटें उठें और दूसरे घर में आग लग जाए और फिर तीसरे घर में आग लग जाए और हवाएं लपटों को फैलाती जाए और सारे नगर में आग लग जाए--ऐसे ही सारी पृथ्वी जल रही है, क्योंकि किसी ने अपनी जीवन-ऊर्जा को सम्हाल कर नहीं रखा है। यही जीवन-ऊर्जा सम्हाली जाए तो रोशनी बन जाती है। बाहर जाए तो आग बन जाती है। भीतर जाए तो प्रकाश बन जाती है। जितनी भीतर ले जाओगे, उतना गहन प्रकाश होता है।
भीतर का ताप सहो
उसे शब्दों में मत कहो
शीतल उसे करो
कर्मों की रेवा में
सेवा की शिखरिणी से
स्नेह के समुंदर तक
उसको उतरने दो
फैलने दो
फलने दो
फूलने दो ताप को
अग-जग की
तरंगों में
भूलने दो अपने आप को
ताप तो प्रकाश है
उसमें जलो नहीं
उसके सहारे देखो
केवल चलो नहीं
स्थावर परिवेशों को जंगम करो चित्र-विचित्र भावों में चंद्र की किरन से उसे
पूनम में सजने दो
गाने दो लहरों पर
दोलायित नावों पर
देश के किनारे
दूर देश के निमंत्रण पर
तजने दो

भीतर का ताप
ठीक बरतो तो
भीतर भी प्रकाश है
बाहर भी प्रकाश है
उसमें जलो नहीं
उसके सहारे देखो
केवल चलो नहीं
स्थावर परिवेशों को
जंगम करो
ताप का
निष्ठा से संगम करो!
यह जो भीतर जीवन का ताप है, यह जो अग्नि है यह निष्ठा से जुड़ जाए यह श्रद्धा से जुड़ जाए, तो रोशनी बन जाती है। अपूर्व प्रकाश का उद्गम होता है। उस अवस्था को ही बुद्धावस्था कहा है।
यह विधि तनि मन मारै, हुई कुल तारै सोइ।
इस तरह अगर तुमने अपनी जीवन-ऊर्जा को सम्हाला, तो इस विधि के द्वारा,
तन भी जाता मन भी जाता, तुम तन और मन के पार चले जाते।
दुई कुल तारै सोइ।
यह जगत भी मिट जाता है, वह जगत भी मिट जाता--तुम दोनों के पार हो, द्वंद्व के पार हो जाते हो। और निर्द्वंद्व अर्थात निर्वाण।
दुई के पार हो जाना अर्थात मोक्ष।
सुंदर अति सुख बिलसइ, कंत पियारी होइ।
और उसी निर्वाण में उस प्यारे से मिलन है। वह निर्वाण उस प्यारे से विवाह है। वह निर्वाण उस प्यारे में डूब जाना, एक हो जाना है।
सुंदर अति सुख बिलसइ कंत पियारी होइ।
ऊर्जा तुम्हारे पास है--चाहो तो जलो, चाहो तो जगो। सूत्र सीधे-साफ हैं। मगर खोज लो कोई चरण! चरण-चिह्नों पर मत अटके रहो। जीवंत चरण ही चाहिए! कभी-कभी पास आ-आ कर लोग भटक जाते हैं। सावधान रहना। बहुत जतन करना।
जीवन एक कला है; जो उसे ठीक से जीते हैं वे परमात्मा को उपलब्ध हो जाते हैं।

आज इतना ही।

ज्योति से ज्योति जले
चौदहवां प्रवचन

एकांत मधुर है

पहला प्रश्नः ओशो!
मेरी निंदिया में तुम मेरे ख्वाबों में तुम
हो गए हम तुम्हारी मोहब्ब्त में गुम
मन की वीणा की धुन गा रही है सुन
हो गए हम तुम्हारी मोहब्बत में गुम
ओशो! कभी आप कहते हैं कि सपने सच नहीं होते और कभी कहा है कि स्वप्न की अवस्था बहुत ग्राहक होती है और स्वप्न में कभी संदेह नहीं उठता। और मैं आपके साथ उन नौ सालों में स्वप्न से ही जुड़ी रही हूं, और कोई कड़ी आप से नहीं जुड़ी थी। और अब भी जो बातें आपसे कहनी होती हैं या आप मुझे कुछ कहना चाहते हैं, वह सब स्वप्नों में ही होता रहता है। तो यह कैसी अवस्था है? इसमें सच क्या है? इस पर मार्गदर्शन की कृपा करें।

वीणा! प्रेम में भेद गिर जाते हैं--बाहर के, भीतर के; मेरे, तेरे; स्वप्न के, सत्य के। प्रेम अभेद की स्थापना है। प्रेम में दुई मिट जाती है, दोपन मिट जाता है, एकपन ही शेष रह जाता है। प्रेम में न तो कुछ माया है न ब्रह्म, न संसार है न निर्वाण। प्रेम का स्वाद एक है जैसे सागर का स्वाद एक है।
जैसे-जैसे प्रेम गहन होगा वैसे-वैसे सत्य में और स्वप्न में कोई भेद न
रह जाएगा। वैसे-वैसे बाहर और भीतर में अभेद अपने आप निर्मित हो जाता है। सब भेद बुद्धि के हैं, हृदय कोई भेद नहीं जानता। हृदय की पहचान तो बस अभेद की है।
प्रश्न संगत मालूम होता है--"स्वप्न सच है या झूठ?" बुद्धि स्वप्न पर
ही प्रश्न नहीं उठाती, बुद्धि तो जिसको हम सच कहते हैं उस पर भी प्रश्न उठाती है--"संसार सच है या झूठ?" बुद्धि तो सभी चीजों पर प्रश्न उठाती है।
बुद्धि में प्रश्न ऐसे ही लगते हैं जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं।
बुद्धि की प्रक्रिया प्रश्नों को जन्माने की प्रक्रिया है। निष्प्रश्न होना है, प्रश्नों के पार चलना है।
प्रेम के अतिरिक्त और कोई द्वार नहीं है प्रश्नों के पार जाने का। प्रेम पूछता ही नहीं--प्रेम जीता है। पूछो मत, जियो। और कुछ चीजें हैं जो पूछने से नष्ट हो जाती हैं। और कुछ चीजें हैं जिन पर विचार करोगे, विश्लेषण करोगे, छिन्न-भिन्न हो जाएंगी। प्रेम हो तो प्रेम में डूबो; प्रेम का विश्लेषण मत करना। फूल हो तो फूल के सौंदर्य को अनुभव करो; फूल को तोड़-ताड़ कर उसकी पत्तियों को उखाड़ कर, उसकी पंखुरियों को बिखेरकर, उसके भीतर झांकने मत लगना कि सौंदर्य कहां छिपा है, अन्यथा जो था वह भी खो जाएगा।
बुद्धि ऐसे ही तो धीरे-धीरे जगत से सारी चीजों को समाप्त कर दी है। परमात्मा खो गया है--बुद्धि के कारण। समाधि खो गई--बुद्धि के कारण। प्रेम भी तिरोहित हो गया है--बुद्धि के कारण। सौंदर्य भी गया। जगत एकदम खाली हो गया है, थोथा हो गया है। प्रेम ने जो मूल्य जगत को दिए थे, बुद्धि ने सब छीन लिए हैं। हृदय ने जो रंग भरे थे, बुद्धि ने सब पोत डाले।
परमात्मा की प्रतीति हृदय का रंग है। बुद्धि उसे स्वीकार नहीं करेगी। बुद्धि तो केवल क्षुद्र को स्वीकार कर सकती है, जो उसके विश्लेषण की पकड़ में आ जाए।
कुछ चीजें हैं जो अविश्लिष्ट हैं और शुभ हैं कि उनका विश्लेषण नहीं होता। जैसे जड़ें वृक्षों की जमीन में छिपी होती हैं, उन्हें भूल कर भी उखाड़ कर बाहर देखने मत लगना। यह मत सोचना कि वृक्ष को जड़ तो होगी, रस तो मिलता होगा भूमि से, कहां से मिलता है, कैसे मिलता है? वृक्ष को उखाड़ कर मत देख लेना जिज्ञासा के कारण। वृक्ष की जड़ों को धूप में मत ले आना, अन्यथा

वृक्ष मर जाएगा। उसकी जड़ें उखड़ जाएंगी। जड़ें तो होती ही अंधेरे में हैं, मौन में, शून्य में, शांति में--जहां सूरज की किरण भी नहीं पहुंचती, वहां।
जहां विचार की किरण नहीं पहुंचती, वहीं तुम्हारे जीवन की जड़ें हैं। जहां बुद्धि का कोई व्यापार नहीं पहुंचता, वहीं तुम्हारे सारे रसस्रोत हैं। इसलिए पूछो ही मत। जो हो रहा है उसके अनुभव में उतरो। उसका अनुभव ही सिद्ध करेगा कि यह सच है या झूठ है।
प्रेम में और प्रमाण लाने की आवश्यकता नहीं है। प्रेम स्वतः प्रमाण है। प्रेम को किसी और गवाही की जरूरत नहीं है, प्रेम स्वयं ही अपनी गवाही है और उसके अतिरिक्त कोई गवाही हो भी नहीं सकती। दीया जल रहा हो तो देखने के लिए दीए को, कोई और दूसरा दीया थोड़े ही लाना पड़ता है। दीया स्वतः प्रकाश है ऐसे ही प्रेम का दीया भी स्वतः प्रमाण है।
मुल्ला नसरुद्दीन किसी के घर नौकरी करता था, किसी नवाब के घर। सुबह हो गई। मुल्ला सोया पड़ा है। उसके मालिक ने पूछा कि नसरुद्दीन, जरा उठ कर बाहर देख, (सर्दी की मीठी सुबह) सूरज अभी निकला है या नहीं?
नसरुद्दीन बाहर गया। फिर भीतर आया। बिना उत्तर दिए लालटेन जलाने लगा। मालिक ने पूछाः तू क्या कर रहा है? मैं पूछता हूं, सुबह हुई या नहीं? सूरज निकला या नहीं?
नसरुद्दीन ने कहाः वही तो कर रहा हूं। बाहर गया, बहुत अंधेरा है। लालटेन जला कर ले जा रहा हूं, देखने कि सूरज निकला या नहीं।
सूरज को देखने के लिए लालटेन जला कर ले जानी पड़ेगी? प्रेम के देखने के लिए किसी और दीये की जरूरत नहीं है। प्रेम तो स्वतः अपनी सिद्धि है। रस लो, रस विभोर होओ। और जैसे-जैसे रस गहन होगा, वैसे-वैसे प्रामाणिकता अनुभव में आएगी।
प्रेम से रहित संसार भी झूठा है, प्रेम से भरे स्वप्न भी सच हैं।
पश्चिम में सिग्मंड फ्रायड ने स्वप्नों पर बहुत बड़ा काम किया है, लेकिन केवल एक तरह के स्वप्नों पर काम किया। उन स्वप्नों को हम कह सकते हैं वासना के स्वप्न--मनुष्य की दमित वासना के स्वप्न, अपूर वासना के स्वप्न, दुष्पूर वासना के स्वप्न। मनुष्य के भीतर नरक पाया है उसने। क्योंकि न मालूम कितनी अपूर्ण वासनाएं मनुष्य के भीतर पड़ी हैं। उन सबका ढेर लगा है। उन्हीं वासनाओं से तुम्हारे स्वप्न उठते हैं।
यह बात आधी सच है। और जहां तक सच है वहां तक बिल्कुल सच है। लेकिन एक
और तरह के स्वप्न होते हैं, जो वासना के स्वप्न नहीं हैं, जिनको हम कहें-- प्रार्थना के स्वप्न। वह दूसरा ही लोक है। अगर वासना के स्वप्न अंधकारपूर्ण हैं तो प्रार्थना के स्वप्न प्रकाशपूर्ण हैं। अगर वासना के स्वप्न उन वासनाओं से पैदा होते हैं जो तुमने जी नहीं और दबा कर रख ली हैं; जिनकी छाती पर तुम चढ़ कर बैठ गए हो; समाज ने, संस्कार ने, सयता ने जिन्हें तुम्हें जीने दिया; जिनका दमन करने की तुम्हें शिक्षा दी गई है--उन दबाई गई वासनाओं से स्वप्न उठते हैं, एक प्रकार के। फ्रायड ने उनका ही विश्लेषण किया है। एक और तरह का स्वप्न का जगत है, जो उनसे ठीक उलटा हैः प्रार्थना के स्वप्न।
जैसे दबाई गई वासनाओं से स्वप्न उठते हैं, वैसे ही उठाई गई प्रार्थनाओं से स्वप्न उठते हैं। जिन प्रार्थनाओं को तुमने उठाया है, जगाया है, उनसे स्वप्नों का एक नया अस्तित्व शुरू होता है। वासना को दबाओ तो स्वप्न पैदा होता है। प्रार्थना को जगाओ तो स्वप्न पैदा होता है। वासना तो सभी को मिली है, जन्म के साथ मिली है। दबाने का काम समाज की शिक्षा करवा देती है। प्रार्थना तो जन्म से नहीं मिली है और जगानेवाले लोग कभी लाखों में एकाध होते हैं। उसी के लिए सुंदरदास ने कहाः समागम करो, संत-समागम करो, जहां प्रार्थना जगे।
शायद फ्रायड के अनुभव में कोई भक्त कभी आया ही न होगा। आने का कोई कारण भी न था। फ्रायड तो उन्हीं का विश्लेषण करता रहा जो रुग्ण थे, परेशान थे, पीड़ित थे। कोई भक्त अपनी अंतर्दशाओं का विश्लेषण करवाने तो जाएगा नहीं। कोई सुंदरदास तो फ्रायड के सामने अपने अंतर का निवेदन न करेगा। उसे तो निवेदन करना होगा तो अपने गुरु से करेगा। उसका गुरु ही समझेगा, जो

प्रार्थना में और भी आगे गया है। जो परमात्मा में गया है, वही प्रार्थना की बात समझ सकेगा।
अब वीणा अगर अपना प्रश्न फ्रायड से पूछे तो वह इस प्रश्न की पूरी की पूरी प्रक्रिया को भ्रष्ट कर देगा। वह कहेगाः यह भी दबी हुई वासना है। वह समझने की कोशिश करेगा कि यह प्रेम भी वासना का ही विस्तार है। परमात्मा के प्रति जो प्रेम है, वह भी वासना का ही विस्तार है! फ्रायड की सोचने की पद्धति है। तो फिर वासना के अतिरिक्त कुछ बचता ही नहीं। और अगर वासना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं बचता तो मनुष्य के जीवन का सार भी कुछ नहीं बचता, अभिप्राय भी कुछ नहीं बचता, अर्थ भी कुछ नहीं बचता। फिर मनुष्य का अतिक्रमण भी नहीं हो सकता। फिर मनुष्य व्यर्थ है। फिर होना न होना बराबर है। अगर मनुष्य अपने से पार नहीं जा सकता तो उसके जीवन में कोई मूल्य नहीं हो सकता। मूल्य का पदार्पण होता है अपने से पार जाने में।
प्रार्थना का अर्थ हैः अपने से पार जाना। प्रार्थना का अर्थ हैः अपने
से दूर जाना और परमात्मा के पास जाना। वासना अहं-केंद्रित होती है। प्रार्थना परमात्मा-केंद्रित होती है। वासना कहती है, मैं प्रार्थना कहती हूं, तू। ये दोनों अलग आयाम हैं।
अभी प्रार्थना के स्वप्नों का विश्लेषण करने वाला फ्रायड पैदा होने
को है, अभी पैदा नहीं हुआ। और जब तक पैदा न होगा तब तक स्वप्नों का जो विज्ञान निर्मित हो रहा है, वह अधूरा रहेगा, पूरी तरह अधूरा रहेगा।
तुमने पूछा... और यह सच है, वीणा मुझे मिली नौ वर्ष पहले और फिर खो गई। फिर कोई मेरे और उसके बीच संबंध नहीं था। लेकिन फिर भी जुड़ी रही और नहीं खोई। कोई दृश्य संबंध नहीं था, लेकिन अदृश्य में जुड़ी रही, स्वप्नों में जुड़ी रही, चेतना की गहराइयों में जुड़ी रही। उसके प्राण कहीं गहरे में मुझे पुकारते ही रहे। और वह पुकार व्यर्थ नहीं गई। वह पुकार मुझ तक पहुंचती रही। उसी पुकार का परिणाम है कि फिर उसका आना हो गया। अदृश्य में जड़ें फैलती रहीं, अब दृश्य में भी पत्ते आने शुरू हो गए हैं, फूल लगने शुरू हो गए हैं। अदृश्य में तैयारी होती रही। जैसे गर्भ में बच्चा बड़ा होता है, ऐसे प्रार्थना पकती रही, पकती रही, पकती रही। अब प्रार्थना के जन्म का क्षण करीब आ गया है।
ठीक है कि "उन सात सालों में मैं आपसे स्वप्न से ही जुड़ रही हूं, और कोई कड़ी आपसे नहीं जुड़ी थी। और जो भी बातें आपसे करनी होती हैं या आप मुझे कुछ कहना चाहते हैं वह सब स्वप्नों में ही होता रहता है।"
ठीक हो रहा है, शुभ हो रहा है। जरा भी कहीं भूल-चूक नहीं है। इतनी तन्मयता से उसे होने दो कि संदेह की कोई रूपरेखा भी उसके पास न रह जाए और तब स्वप्न भी सत्य के पास लाने का सेतु बन जाते हैं।
इस जगत में सभी चीजें परमात्मा की तरफ ले जाने के लिए सेतु बनानी हैं, स्वप्न भी! माया को भी उसका ही द्वार बनाना है। है ही उसका द्वार। हम जहां हैं वहीं से हमें उसकी तरफ चल पड़ना है। यही तो मेरा बुनियादी संदेश है तुम्हें कि मैं तुम्हें छोड़ने को कुछ भी नहीं कहता। स्वप्न भी छोड़ने को नहीं कहता हूं, क्योंकि स्वप्न की ऊर्जा को भी उसी को समर्पित करो। स्वप्नों को भी उसी के गीत और गूंज से भर जाने दो। स्वप्न भी उसी के घिर जाएं। स्वप्न में भी उसकी धूप जले, उसकी पूजा उतरे। स्वप्न में भी उसकी आरती उठे। और जो तुम्हारे स्वप्न में उतरने लगेगा, वह तुम्हारे जीवन में भी फैल जाएगा। क्योंकि तुम्हारा जीवन ऐसे ही है जैसे वृक्षों के पत्ते हैं और फल। और तुम्हारे स्वप्न ऐसे ही हैं जैसे वृक्षों की जड़ें। तुम्हारे स्वप्न बस स्वप्न मात्र नहीं हैं, क्योंकि जो तुम सपने में देखते हो, जो तुम सपने में पाते हो, उसकी छाया, उसके परिणाम, तुम्हारे चौबीस घंटे के जीवन पर पड़ते हैं।
अब जरा सोचना, किसी रात तुमने स्वप्न देखा कि किसी की हत्या कर दी; सुबह पाया कि हत्या की थी, सपना था; लेकिन उस दिन तुम दिन भर पाओगे कि चित्त खिन्न है। हालांकि हत्या सपने में की थी और कुछ भी हुआ नहीं। कोई मारा नहीं गया है। अदालत तुम्हें पकड़ेगी नहीं। खून की एक बूंद नहीं गिरी है और गवाह कोई नहीं है। मगर चित्त खिन्न रहेगा, उदास रहेगा, अपराध-भाव से भरा

रहेगा। हत्या हुई या नहीं, यह सवाल नहीं है; हत्या करने का भाव तो तुममें उठा ही है।
यही तो पाप और अपराध का भेद है। अपराध का अर्थ हैः भाव उठा और भाव के अनुसार कृत्य हुआ। लेकिन पाप का अर्थ हैः भाव उठा, पाप हो गया। अपराध हुआ हो न हुआ हो, अदालत पकड़ सके न पकड़ सके; लेकिन उस परम ऊर्जा के समक्ष तुम दोषी हो गए।
जब कोई आदमी किसी की हत्या करता तो पहले तो भाव ही उठता है न, कृत्य पहले तो नहीं होता। हत्या करने के पहले न मालूम कितनी बार सोचता है! सोच-सोच कर, विचार कर-कर के भाव को सघन करता है। फिर भाव इतना सघन हो जाता है कि हत्या करनी पड़ती है।
दोस्तोवस्की के प्रसिद्ध उपन्यास "क्राइम एण्ड पनिशमेंट" में एक विद्यार्थी रासकोल्निकोव... वह जिस मकान के सामने रहता है उस मकान में एक बूढ़ी औरत रहती है। होगी अस्सी साल से ऊपर। दिखाई भी उसे ठीक से नहीं पड़ता, चलना भी बहुत मुश्किल है, उसका धंधा भी बड़ा खतरनाक है। धंधा है उसका, चीजें गिरवी रखना। महाकंजूस है। और जो उसके हाथ में फंस जाता है, उसे चूस ही लेती है। फिर उसकी चीज कभी वापस नहीं लौटती। उसका ब्याज भी इतना है कि वही नहीं चुकता, मूल तो चुकेगा कैसे? यह रासकोल्निकोव उसके सामने ही रहता है, विद्यार्थी है विश्वविद्यालय का। यह अपनी खिड़की से देखता रहता है, रोज लोग फंसते हैं। और जो उसके चक्कर में फंसा, गया! जैसे मकड़ी कोई जाला फैलाए, ऐसे ही वह बुढ़िया अपना जाला फैला रही है।
यह रासकोल्निकोव ऐसे ही सोचता है कि इस बुढ़िया को करना क्या है, इसके पास बहुत है! न बेटा है, न बेटी है, न कोई आगे न कोई पीछे। इसके पास जितना है काफी है। नगर के आधे मकान इसके हैं। धन भी खूब है। अब यह किसलिए चूस रही है? ऐसा सोचते-सोचते उसके मन में यह विचार उठता हैः इसको तो कोई मार ही डाले तो अच्छा है। न इसके होने से दुनिया को कोई लाभ है न इसकी कोई जरूरत है, न ही यह किसी उपयोग की है, न इसके अपने जीवन में अब कुछ अर्थ रहा है। मौत के कगार पर खड़ी है, एक पैर तो इसका कब्र में ही है। कोई इसको मार ही डाले तो न मालूम कितने लोगों का छुटकारा हो जाए! इसकी मृत्यु पाप नहीं हो सकती। इसको मारा जाना एक तरह का पुण्य-कृत्य होगा।
सिर्फ सोचता ही है। फिर उसकी परीक्षा के दिन करीब आते हैं। परीक्षा
की फीस भरनी है और उसके घर से रुपए नहीं आए तो वह अपनी घड़ी गिरवी रखने उस बुढ़िया के पास जाता है। सांझ का समय है, बुढ़िया को ठीक से दिखाई नहीं पड़ता, वह उसकी घड़ी को गौर से देखती है रोशनी के पास ले जाकर। जब वह रोशनी के पास घड़ी को देख रही है तब कमरे में कोई भी नहीं है। तीसरी मंजिल मकान है। तीसरी मंजिल पर वे हैं। रासकोल्निकोव पीछे खड़ा है, अचानक क्या उसे होता है, पास में पड़ा हुआ जो भी उसे मिल गया उसने उठा कर उसके सिर पर दे मारा। उसकी पीठ उसकी तरफ है। बुढ़िया तो गिर गई। गिरने को ही थी, जैसे सूखा पत्ता था कुछ मारने में देर न लगी, कुछ खास चोट भी नहीं थी, जरा सी चोट लगी कि वह गिर गई। तब उसे होश हुआ कि यह मैंने क्या कर दिया! कंप गया, घबड़ा गया! भागा, किसी ने देखा भी नहीं, कोई गवाह भी नहीं। अपने कमरे में आ गया, लेकिन उसे एक बात समझ में नहीं आती कि मैंने इसे मार क्यों डाला? भाव सघन होता रहा, हालांकि कभी उसने ऐसा नहीं सोचा था कि मैं इसे मार डालूं। इतना ही सोचता था कि कोई इसे मार डाले तो अच्छा। और यह भी कभी नहीं सोचा था कि इस तरह सोचना, कृत्य बन जाएगा।
भाव कृत्य बन जाते हैं। पाप बनने की प्रक्रिया पहले है, फिर अपराध। पाप बीज है, अपराध उसकी परिणति है। अपराध न भी हो तो भी पाप हो गया। अपराध सामाजिक कृत्य है, पाप धार्मिक कृत्य है।
तो अगर तुमने स्वप्न में किसी की हत्या की है तो तुम पाओगे; दिन भर एक उदासी तुम्हें घेरे है। तुम्हारे हाथ खून से भरे हैं। तुम उस दिन दिन में कई बार हाथ धोओगे। और किसी रात अगर तुमने किसी को डूबते नदी में से बचाया है तो तुम दिन भर पाओगे एक प्रफुल्लता, एक भीनी-भीनी महक तुम्हें घेरे हुए है। यद्यपि जिसको बचाया है वह डूबता भी नहीं था, कोई डूबने वाला था भी नहीं--सिर्फ स्वप्न था! स्वप्न की तरंगें भी तुम्हें आंदोलित करती हैं।

स्वप्न के विज्ञान को पूरब ने खूब विकसित किया था। इतना विकसित किया
था कि स्वप्न देखने की क्षमता, और जैसा स्वप्न देखना चाहो वैसे स्वप्न देखने की क्षमता के सूत्र भी खोज लिए थे।
जागरण को ही नहीं बदला जा सकता है, स्वप्न भी बदले जा सकते हैं। तुम अपने स्वप्नों के भी सर्जक हो सकते हो। भक्त अनजाने ही अपने स्वप्नों का सर्जक हो जाता है। वह परमात्मा को स्मरण करते ही सोता है। जब नींद उतरने लगती है तब भी परमात्मा का स्मरण गूंजता रहता है। धीमी-धीमी आवाज, धीमी- धीमी आवाज... स्मरण, फिर नींद पकड़ लेती है। लेकिन स्मरण चेतन से अचेतन में उतर जाता है। अगर कृष्ण का भक्त है तो रात कृष्ण को देखता है, उनके साथ रास रचाता है, उनके साथ नाचता है। उनकी बांसुरी सुनाई पड़ती है।
और ख्याल रखना, इसका परिणाम होने वाला है। जीवन में यह बांसुरी सुनाई पड़ती है।
और ख्याल रखना, इसका परिणाम होने वाला है। जीवन में यह बांसुरी जो आज स्वप्न में सुनी है, कल जागने में सुनाई पड़ेगी। क्योंकि स्वप्न में जिसके आधार रखे गए हैं, जागने में उसके कलश उठेंगे।
स्वप्न और जागरण संयुक्त हैं। क्यों? क्योंकि स्वप्न भी तुम्हारा है, जागरण भी तुम्हारा है, तुम तो दोनों में मौजूद हो। जो स्वप्न देखता है वही जागता है। फिर जैसे स्वप्न देखता है वैसा ही तो जागरण भी होगा। प्रेमी भी अनजाने अपने स्वप्नों का स्रष्टा हो जाता है।
वीणा, तूने प्रेम किया, गहरा प्रेम किया! तूने प्रार्थना की। उस प्रार्थना के परिणाम होने शुरू हुए हैं। पहले स्वप्न में उतरे, अब तेरे बाहर के जीवन तक फैलने शुरू हो गए हैं। अब तेरा सारा जीवन इससे भरेगा। इसके विश्लेषण में जाने की कोई भी जरूरत नहीं है। इसका रस ले।
रोज प्रकट होता है भीतर वह
किंतु शांत उस स्वर को सुनते नहीं हमारे कान
रोज प्रकट होता है बाहर वह
किंतु ज्वलंत शिखा के देखे छुप जाते हैं प्राण
किसी कोने में जाकर
रोज-रोज प्रभु लौट रहे हैं
हम तक आकर!
परमात्मा रोज तुम्हारे द्वार पर दस्तक देता है। उसकी दस्तक की आवाज धीमी है। तुम्हारे कान जब सुनने में समर्थ हो जाएंगे, संवेदनशील हो जाएंगे, तुम दस्तक पहचानोगे।
रोज परमात्मा भीतर से पुकारता है--तुम्हारे सपनों में भी, तुम्हारी निद्रा में भी! उसका रथ आता है। उसके हाथ तुम तक पहुंचते हैं। वह तुम्हें तलाश रहा है। इस भ्रांति को तो छोड़ ही देना कि तुम्हीं परमात्मा को तलाश रहे हो। तुम्हारी अकेली तलाश से कुछ भी न होगा, यह आग तो दोनों तरफ से लगे तभी परिणाम लाती है। वह भी तलाश रहा है।
गीत बन जाते हृदय के भाव
गीत बन जाते
तोड़ बंधन और बाधा
गीत ये फिर-फिर उमड़ते
उड़ स्वरों के पंख पर फिर
वर्ण-भास्वर गगन जाते
गीत बन जाते हृदय के भाव
गीत बन जाते
जब नयन में रूप आता
रंग आता
तब तरंगित हंस
मानस छोड़ उड़ते
नील नभ को पार करते
किस दिशा में मगन
गीत बन जाते हृदय के भाव

गीत बन जाते
कौन परिचय कौन संचय
जन्म कैसे, किस तरह छय
कौन जाने
किंतु भू के भाव ये
उड़ गगन जाते
गीत बन जाते हृदय के भाव
गीत बन जाते
जो भाव तुम्हारे भीतर सघन होते हैं, वे ही तुम्हारे स्वप्न बनते हैं,
वे ही तुम्हारे गीत बनते हैं, वे ही तुम्हारे कृत्य बनते हैं। धीरे-धीरे तुम्हारा सारा जीवन आच्छादित हो जाता है। होने दो आच्छादन।
भेद जाने दो--सत्य के और स्वप्न के। वे सब तर्क के भेद हैं, नहीं तो एक
ही है। वही स्वप्न है, वही सत्य है। वही संसार है, वही निर्वाण।
धारा ऊंचे से गिरती है तोड़ कर सन्नाटा
टूटती है तारिका चीर कर आकाश
चुपचाप फैल जाती है धरती भर चांदनी
नेह आंखों का टपक कर चू जाता है प्राणों में
छू जाता है जब आंचल निराकार का
इतना सब एक साथ हो जाता है तब
टूट जाता है सन्नाटा खिंच जाती है लकीर
फैल जाता है प्रकाश
आकाश धरती और मन सब एक हो जाते हैं
धारा के तारा के भेद खो जाते हैं
फिर वहां कुछ पता नहीं चलता क्या सच क्या झूठ...
छू जाता है जब आंचल निराकार का!
इतना सब एक साथ हो जाता है तब
आकाश और धरती और मन सब एक हो जाते हैं
धारा के तारा के भेद खो जाते हैं
प्रेम है अभेद का विज्ञान।... तुम्हें जगा रहा हूं--तुम्हारे जागते में भी जगा रहा हूं! और अगर तुम मुझसे जुड़े तो तुम्हारे सोते में भी जगाऊंगा। तुम्हें पुकार रहा हूं, जब तुम खुली आंख बैठे हो। और तुम अगर मुझसे जुड़े तो तब भी पुकारूंगा जब तुम अपनी गहन तंद्रा में हो, निद्रा में हो। तुम्हारे स्वप्न में भी उतरना शुरू हो जाऊंगा, हृदय का द्वार खुला मिलना चाहिए।
उठो आंख खोलो कि पौ फट गई है
युगों की अंधेरी निशा कट गई है
नया प्राण लेकर हवा आ रही है
नया गान लेकर सबा आ रही है
कली खिल गई है नया रूप धरकर
नया रंग भरकर किरन छा रही है
कमल के दलों की खुशी कुछ न पूछो
उदासी की छाया सभी हट गई है
उठो आंख खोलो कि पौ फट गई है
युगों की अंधेरी निशा कट गई है।
क्यों मैंने तुम्हें पुकारा है? क्यों तुम्हें रंगने में लगा हूं? इसीलिए! न केवल तुम्हारा जागरण रंग जाए, तुम्हारा स्वप्न भी रंग जाए। मनुष्य के चित्त की चार दशाएं हैं। जाग्रत, जिससे हम परिचित हैं। स्वप्न, जिसकी थोड़ी-थोड़ी झलक हमें सुबह याद रह जाती है। फिर सुषुप्ति, उसकी तो हमें याद भी नहीं रहती, सिर्फ एक आभास होता है कि रात गहरी नींद सोए। बड़ी शांत निद्रा थी, स्वप्न भी नहीं आए! बस इतनी ही याद आती है कि स्वप्न नहीं थे तो नींद गहरी रही होगी, ऐसा नकारात्मक आभास होता है। और फिर एक चौथी दशा है--तुरीय। उस चौथी दशा तक तुम्हें ले चलना है।

गुरु का साथ तीसरी दशा तक होता है। जाग्रत में गुरु जुड़ेगा, स्वप्न में गुरु जुड़ेगा, सुषुप्ति में गुरु जुड़ेगा। जब तक गुरु तुम्हें सुषुप्ति के द्वार से तुरीय में धक्का न दे दे तब तक साथ रहेगा। और तुरीय में धक्का देने पर साथ छूट जाता है, ऐसा कहना ठीक नहीं; तुरीय में धक्का देने पर गुरु गुरु नहीं रह जाता, शिष्य शिष्य नहीं रह जाता, दोनों एक हो जाते हैं। साथ के लिए तो दो का होना जरूरी है। इसलिए सुषुप्ति तक साथ, सुषुप्ति के आगे एकात्म!
वह निशा चली गई
जो अब तक
रंग-रंग के सपने देती रही
उड़ो विहग--
जिन किरणों ने
कोमल स्पर्श से
तुमको अपना प्रिय परिचय दिया उनको अब अपना लो
उड़ो विहग--
अब प्रकाश ही प्रकाश
भूतल पर नभतल पर
ये प्रकाश की लहरें
उज्जवल से उज्जवलतर
तिरते हैं जड़-चेतन
चर-अचर
उड़ो विहग!
वीणा! उड़ने का क्षण आ गया! जुड़ने का क्षण आ गया! मिटने का क्षण आ गया।
अब बुद्धि के विचार छोड़ो। अब विश्लेषण की चिंता में मत पड़ो। अब क्या है स्वप्न, क्या है सत्य--जिन्हें कुछ और काम नहीं है उन्हें इनका विश्लेषण करने दो। तुम तो उतरो, तुम तो डूबो, तुम तो पियो।

दूसरा प्रश्नः आबू के पावन पर्वत पर जब आपने "प्रेम वेदांत" नाम दिया था, तब तो ऐड़ी से चोटी तक घृणा और द्वेष से लबालब भरा था। आपके चरणों में बैठते-बैठते प्रेम के पारस का स्पर्श हुआ है। परंतु इसके साथ "वेदांत" का अर्थ अभी तक नहीं खुल पाया है। स्पष्ट कर अनुगृहीत करें।

जैसे प्रेम का अर्थ खुला ऐसे ही वेदांत का भी खुलेगा, जरा धीरज रखो। प्रेम का अर्थ खुला तो वेदांत का अर्थ खुलेगा ही, क्योंकि प्रेम कुंजी है वेदांत की।
वेदांत बड़ा प्यारा शब्द है; वेदांतियों ने खराब कर दिया, दूसरी बात है। वेदांतियों ने तो अर्थ का अनर्थ कर दिया, वह दूसरी बात है। मगर वेदांत शब्द बड़ा अदभुत है। उसका सार अपूर्व रूप से क्रांतिकारी है। वेदांत शब्द आग्नेय है।
वेदांत का अर्थ होता हैः जहां सब शास्त्र समाप्त हो जाते हैं, जहां वेद समाप्त हो जाते हैं, जहां वेदों का अंत आ जाता है। वहीं परमात्मा का प्रारंभ है।
वेदांत का अर्थ हैः जहां शब्द गए, सिद्धांत गए, शास्त्र गए। वहीं सत्य
का प्रारंभ है। कहां जाते हैं शब्द, सिद्धांत और शास्त्र? कब जाते हैं? जब प्रेम का आविर्भाव होता है।
इसलिए प्रेम कुंजी है वेदांत की। जिसने प्रेम जाना, वह फिर किसी शास्त्र की चिंता नहीं लेगा। उसे परम शास्त्र हाथ लग गया। अब तो वह प्रेम को ही पढ़ेगा। प्रेम को ही गुनेगा। अब तो प्रेम में डुबकी लगाएगा। अब तो मिल गई उसे मधुशाला, अब मंदिरों से क्या लेना? अब तो हो गया पियक्कड़। अब तो डूबने लगा। परमात्मा ने उसे पुकार ही लिया है।

मैं जब तुम्हें नाम देता हूं तो अनेक कारणों से देता हूं। तुम ठीक ही कहते हो कि जब आपने प्रेम वेदांत नाम दिया था तब तो एड़ी से चोटी तक घृणा और द्वेष से लबालब भरा था।
घृणा और द्वेष उसी ऊर्जा के अंग हैं जिससे प्रेम बनता है। घृणा प्रेम
का विकृत रूप है। प्रेम नहीं बन पाए, तो वही ऊर्जा घृणा बन जाती है। सृजन का जीवन में आविर्भाव न हो तो वही ऊर्जा विध्वंस बन जाती है। जो बना न पाए वह मिटाने में लग जाता है। ऊर्जा कुछ तो करेगी! ऊर्जा का कुछ तो रूप प्रकट होगा!
इसलिए मैं तुमसे घृणा छोड़ने को नहीं कहता। तुम घृणा छोड़ भी न सकोगे। घृणा रोग नहीं है, रोग तो है कि प्रेम नहीं जन्म पा रहा है। प्रेम न जन्मे तो प्रेम की जो तुम संपदा लेकर आए हो, वह सड़ेगी। उसी की सड़ांध घृणा है। प्रेम बहने लगे, तुम अचानक पाओगेः सड़ांध गई!
जैसे कोई नदी बहती हो, तो नदी गंदी नहीं होती। कूड़ा-करकट उसमें बहुत गिरता है, सारा कूड़ा-करकट उसमें गिरता रहता है। नगरों-नगरों की गंदगी ले जाती है। नदी, फिर भी स्वच्छ की स्वच्छ! बहाव उसे स्वच्छ रखता है। फिर एक डबरा होता है। उस डबरे में भी कूड़ा-करकट गिरता है, लेकिन सब सड़ता है। भयंकर दुर्गंध उठनी शुरू हो जाती है।
जिनके जीवन में प्रेम नहीं है उनके जीवन में घृणा की दुर्गंध आएगी, क्योंकि वे डबरे की भांति हैं। जिनके जीवन में प्रेम है उनके जीवन में प्रवाह है। कचरा तो गिरता है, कचरा तो गिरता ही रहेगा, लेकिन प्रवाह कहां सुनता है कचरे की! बहा ले जाता है सब। दूर सागर में जाकर सब फेंक देता है। और सागर विराट है. . सबको लीन कर लेता है, सब को आत्मसात कर लेता है।
तुम घृणा से भरे थे, यह देख कर ही तुम्हें "प्रेम" नाम दिया था। इसी बात की याद दिलाने को कि तुमने संपत्ति को विपत्त बना लिया है। तुम शीर्षासन कर रहे हो नाहक! पैर के बल खड़े हो जाओ। ऊर्जा को उलटा कर बैठे रहो। और तुम कहते हो आपके चरणों में बैठते-बैठते प्रेम के पारस का स्पर्श हुआ है। अब तुम समझे प्रेम का अर्थ, क्यों तुम्हें नाम दिया था। स्वभावतः जिज्ञासा उठी होगी कि वेदांत और क्यों जोड़ दिया था?
प्रेम अगर वेदांत से न जुड़ा हो तो एक सीमा तक जा सकता है, लेकिन फिर अटक जाएगा। जैसे नदी को सागर से जुड़ना पड़ता है, ऐसे प्रेम को वेदांत से जुड़ना पड़ता है। नदी की अंतिम परिणति तो सागर है। प्रेम की अंतिम परिणति वेदांत है।
"वेदांत" से मेरा प्रयोजन वेदांतियों वाला नहीं है। वह संप्रदाय वेदांत के नाम से जो चलता है उससे कुछ लेना-देना नहीं है। मैं तो वेदांत का शुद्ध अर्थ इतना ही करता हूंः जहां वेद छूट जाते हैं, शब्द छूट जाते हैं; जहां भाषा मौन हो जाती है; जहां बोलने को कुछ भी नहीं बचता; जहां अनिर्वचनीय आ जाता है, अव्याख्या के दर्शन होते हैं! नदी चल पड़ी, अब तुम डबरे नहीं हो! सागर भी आएगा। इतना हुआ, उतना भी होगा। अब तो श्रद्धा करो! अगर घृणा प्रेम बन सकती है, बड़ा चमत्कार तो हो ही गया कि डबरा नदी बन गया, बहने लगा। गति आ गई अगति में। ठहरा हुआ गतिवान हो गया। अब दूसरी बात तो सहज हो जाएगी। बैठते ही रहे, जैसे अब तक बैठते रहे हो, इस पारस को अगर स्पर्श होने ही दिया, जैसा अब तक होने दिया है... जल्दी भाग मत जाना, क्योंकि कई बार ऐसा हो जाता है कि लोग सोचते हैं कि काफी हो गया, अब चलें। अब तो अपने पैर पर खड़े हो जाएं।
मैं भी चाहता हूं कि तुम अपने पैर पर खड़े हो जाओ। लेकिन प्रतीक्षा करना मेरी, जब मैं कहूं तब। नहीं तो तुम्हें कुछ पता ही नहीं कि कितना और हो सकता था। तुम्हें तो उतना ही पता होगा जितना हुआ है। और कई बार ऐसा होता है, गरीब आदमी को थोड़ा-सा भी धन मिले तो वह सोचता हैः मिल गया सारा साम्राज्य! तुम्हारे पास कितनी बड़ी संपदा है, कितनी बड़ी संपदा के तुम मालिक हो सकते हो--इसका तुम्हें तब तक पता चलेगा ही नहीं जब तक तुम मालिक हो ही न जाओ।
चलने दो सत्संग! प्रेम भी आया, वेदांत भी आएगा। शब्द का अर्थ तो साफ है
कि तुम्हें एक ऐसी चित्त की दशा में ले चलना है, एक ऐसे चैतन्य में ले चलना

है, जहां निर्विकार, निराकार, निर्गुण का वास है। तुम्हें उस मूलस्रोत पर ले चलना है, जहां से हम उठे हैं और जहां हमें जाना है। ताकि वर्तुल पूरा हो जाए।
प्रेम यात्रा है; वेदांत तीर्थ है, जहां पहुंचना है। प्रेम तीर है; वेदांत लक्ष्य है। तीर चल पड़ा, अब लक्ष्य भी दूर नहीं। लक्ष्य की चिंता में न पड़ो, सारी ऊर्जा तीर को दे दो, ताकि गति त्वरा से, तीव्रता से हो; ताकि तीर अटके नहीं कहीं, भटके नहीं कहीं। रास्ते में बहुत भटकाव आते हैं, बहुत अटकाव आते हैं। उन सब को पार करना है।
और ख्याल रखना, जो चल पड़ता है उसी को मुसीबतें आती हैं, जो बैठा रहता
है उसको तो मुसीबत का कोई कारण ही नहीं। जो चलता है वही गिर सकता है; जो बैठा ही है वह तो गिरेगा ही क्यों? जो पहाड़ों की ऊंचाई चढ़ते हैं, वे खतरा मोल लेते हैं। गिरेंगे तो बुरी तरह गिरेंगे। इसलिए धर्म को खड्ग की धार कहा है, दुर्गम कहा है।
तुम चल पड़े। मेरी दृष्टि में तुम्हारे पैरों में गति आ गई। सागर भी दूर नहीं है। चलने वाले से सागर दूर है ही नहीं। एक ही अड़चन है इस जगत में कि लोग डबरे हो जाते हैं। शास्त्रों के डबरे बन गए हैं; हिंदू, मुसलमान, ईसाई के डबरे बन गए हैं। तुम बह चले, अब न तुम हिंदू हो, न मुसलमान हो, न ईसाई हो। अब तुम कोई भी नहीं हो। अब तुम परमात्मा के हो और परमात्मा तुम्हारा है। कम, थोड़े-बहुत अटके हुए शास्त्र भी रहे होंगे अभी। वह तुम्हारी गति से मेरी समझ में आता है कि कहीं कुछ थोड़ा अभी अटका होगा। धारा अभी भी धीमे-धीमे जा रही है। अभी कुछ चट्टानें शास्त्रों की पड़ी होंगी। अचेतन में पड़ी होंगी, गहरे में पड़ी होंगी, जन्मों-जन्मों की पड़ी हैं, तुम्हें उनका पता भी न होगा।
बर्ट्रेंड रसल ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मैं बचपन में ईसाई
की तरह पाला पोसा गया। बड़ा हो गया, तब ईसाइयत से मेरा भरोसा उठ गया। ईसाइयत से ही नहीं, सारे धर्मों से मेरा भरोसा उठ गया।
बर्ट्रेंड रसल ने बहुत प्रसिद्ध किताब लिखी हैः वॉय ऑय एम नॉट ए क्रिश्चियन? मैं ईसाई क्यों नहीं हूं? उसका जवाब अभी भी कोई ईसाई दे नहीं पाया। वर्षों हो गए, अब तो बर्ट्रेंड रसल जा भी चुके दुनिया से, मगर किताब अभी तक बेजवाब है। जो-जो प्रश्न उठाए थे वे वैसे के वैसे खड़े हैं।
रसेल ने लिखा हैः सारे धर्मों से भरोसा उठ गया, ईसाइयत से तो बिल्कुल
उठ गया, तब मैं बुद्ध से परिचित हुआ। यह मनुष्य अपूर्व मालूम हुआ। ऐसा लगा कि इतिहास में इससे ज्यादा शुद्धतम अभिव्यक्ति सत्य की और कभी नहीं हुई है। इससे बड़ा महामानव पृथ्वी पर कोई नहीं चला। यह बात बुद्धि को तो लगे, लेकिन जब भी मैं सोचूं तो कभी भी अपने अंतरतम में, अपने अचेतन में, बुद्ध को जीसस के ऊपर नहीं रख पाया। ईसाइयत से छुटकारा हो गया। बचपन के सारे संस्कार छूट गए। अब बुद्धि को साफ-साफ प्रमाणित भी हो गया है कि बुद्ध की बात बड़ी प्रगाढ़ है।
और यह सच है, बुद्ध के वचन जितने शुद्ध हैं उतने किसी के वचन नहीं हैं। सत्य को सभी ने कहा है, मगर जैसा बुद्ध ने कहा है उतने साहस से किसी ने भी नहीं कहा है! सत्य को बहुतों ने कहा है। जीसस ने भी कहा, मोहम्मद ने भी कहा, कृष्ण ने भी कहा, महावीर ने भी कहा; लेकिन जैसा बुद्ध ने कहा है, उतनी परम शुद्धता से किसी ने भी नहीं कहा है। सबने जाना--वही एक सत्य जाना--लेकिन बुद्ध के कहने की क्षमता अपूर्व है!
फिर भी बर्ट्रेंड रसल लिखता है कि अपने गहरे मन में मैं नंबर दो पर ही
रख पाता हूं बुद्ध को, नंबर एक पर नहीं रख पाता। नंबर एक पर तो जीसस बैठे हैं सो बैठे हैं। जानता हूं, सोचता हूं, मगर सोचना और जानना काम नहीं कर पाता। संस्कार बहुत गहरे बैठ जाते हैं।
तो प्रेम वेदांत, नाम तो मैंने तुम्हें वेदांत दिया, यह मेरी आशा है तुम्हारे लिए, ऐसा कभी हो। लेकिन अभी वेद पड़े हैं। फिर वेद का नाम कुरान है कि बाइबिल, इससे कुछ प्रयोजन नहीं है। वेद पड़े हैं। अभी भी शास्त्र कहीं अटके हैं। तुम्हारी धारा चल पड़ी है, शास्त्रों के बीच में से रास्ता निकाल कर बहने भी लगी है। लेकिन अभी धारा चट्टानों में बह रही है शास्त्रों के;

अभी निर्बाध नहीं हो पाई है। बैठते ही रहे अगर, अगर मेरी चोटें खाते ही रहे, सहते ही रहे, अगर गर्दन को कट ही जाने दिया, तो एक दिन धारा निर्बाध होकर बहेगी। उस दिन तुम जानोगे वेदांत क्या है।
वेदांत कहा नहीं जा सकता, लेकिन अनुभव का रास्ता मैंने बता दिया है।
कुंजी तुम्हें दे दी है। प्रेम कुंजी है।

तीसरा प्रश्नः यह जीवन क्या है?

मूर्च्छा से देखो तो "पानी केरा बुदबुदा"; होश से देखो तो परमात्मा।
यह जीवन दोनों है। अंधे की तरह देखो तो क्षणभंगुर--अभी है, अभी गया!
सुबह घास के पत्ते पर जमी ओस की बूंद हैं; सूरज निकलेगा, उड़ जाएगी।
नाव में बैठे गए यात्री हैं, जैसा सुंदरदास ने कहा। मिल गए घड़ी भर को,
उस पार नाव पहुंच जाएगी, सब अपने-अपने रास्तों पर विदा हो जाएंगे।
या सांझ को वृक्ष पर इकट्ठे हो गए पक्षियों का मेला। सोएंगे रात-भर, सूरज उगेगा, सुबह उड़ जाएंगे।
मूर्च्छा से देखो तो जीवन बस ऐसा है--
दिवस की ज्योति हुई सरसों के फूल सी
सरसों के फूल-सी
लहराया ज्वार में
धरती से आसमान
एक रंग
भिन्न रूप
धरती से आसमान
सुंदरता छाई है सरसों के फूल सी सरसों के फूल सी
संचित आनंद उड़ा
गीतों के पर खोले
लहरों सा
खेल रहा
गीतों के पर खोले
यह श्री झर जाएगी सरसों के फूल सी
सरसों के फूल-सी
सरसों का फूल देखा--अब झरा तब झरा! सुबह का डूबता तारा देखा? --अब गया
तब गया! ऐसा है जीवन, मूर्छा से देखो तो क्षणभंगुर!
एक-एक सांस से
जुड़ा हुआ
एक-एक तार से
बुना हुआ
कौन जाने कब टूटे
निश्चय क्या
जीवन का निश्चय क्या
लहरों पर दीप-दान
होता है
दीपक कब तक प्रकाश
ढोता है
अक्षय रहता प्रकाश
परिचय क्या
जीवन का निश्चय क्या
हाथों से छूट
छूट जाता है
तारों से टूट
टूट जाता है
बंधन, संबंध, कौन

संचय क्या
जीवन का निश्चय क्या
इस जीवन से तुम परिचित हो--
एक एक सांस से
जुड़ा हुआ
एक एक तार से
बुना हुआ
कौन जाने कब टूटे
निश्चय क्या, जीवन का निश्चय क्या!
चमत्कार है यह जीवन। जो श्वास गई शायद वापस न आए! कोई भरोसा नहीं। इस जीवन में जो अपने को उलझा लेता है, इस मूर्च्छा में जो मान लेता है, सब है, वह बुरी तरह भटक जाता है। एक और जीवन है--शाश्वत जीवन। और तुम्हें कठिनाई होगी यह जानकर कि वह जीवन और यह जीवन दो नहीं हैं। भेद मूर्च्छा और जाग्रति का है, जीवन तो एक ही है। मूर्च्छित देखो, क्षणभंगुर मालूम होता है; जाग कर देखो, शाश्वत मालूम होता है। जिन्होंने जाग कर देखा उनके लिए मृत्यु झूठी हो जाती है, जीवन शाश्वत हो जाता है। जिन्होंने सोए-सोए देखा, उनके लिए मृत्यु सच्ची मालूम होती है, जीवन झूठा मालूम होता है।
तुम देखते नहीं, जीवन में सिवाय मृत्यु के और कुछ भी निश्चित नहीं है!
और सब अनिश्चित है; निश्चित है एक बात, वह है मृत्यु। यह भी खूब जीवन हुआ, जिसमें मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ भी निश्चित नहीं है! पत्नी छोड़ दे, बांध डूब जाए, सरकार कानून बदल दे, हजार रुपये के नोट बंद हो जाएं, कुछ भी निश्चित नहीं है। लेकिन एक बात निश्चित है कि मृत्यु होगी, मृत्यु निश्चित होगी।
यह कैसा जीवन हुआ, जिसमें मृत्यु भर निश्चित है! नहीं, कहीं कुछ भूल हो रही है। जिन्होंने जागकर देखा, उन्होंने जीवन को शाश्वत पाया और मृत्यु को झूठा पाया। बुद्धों से पूछो, जाग्रत पुरुषों से पूछो, तो वे कहेंगेः मृत्यु झूठ है, जीवन सच है। तुमने जैसा जाना है वह तो बस ऐसा हैः
बना बना कर चित्र सलोने यह सूना आकाश सजाया
राग दिखाया रंग दिखाया,
क्षण-क्षण छवि से चित्त चुराया
बादल चले गए वे
आसमान अब नीला-नीला
एक रंग रस श्याम सजीला
धरती पीली हरी रसीली,
शिशिर प्रभात समुज्ज्वल गीला बादल चले गए वे
दो दिन सुख का दो दिन दुख का
दुख-सुख दोनों संगी जग में
कभी हास है कभी अश्रु है
जीवन नवल-तरंगी जग में
बदल चले गए वे
दो दिन पाहुन जैसे रह कर बादल चले गए वे!
बस, दो दिन पाहुन जैसे रह कर--।
इस जीवन से जागो।
इस में छिपा हुआ एक तत्व हैः तुम्हारा साक्षीभाव। ओस की बूंद ही मत देखो। देख चुके ओस की बूंदें बहुत। और पानी के बनते बबूले ही मत देखो; देख चुके बनते और फूटते भी बहुत। इंद्रधनुषों में मत उलझो; देख चुके इंद्रधनुष बनते और मिटते बहुत। अब.जरा उसे भी तो तलाशो, जो देख रहा है; जिसने बूंदों को बनते देखा मिटते देखा; इंद्रधनुष उठते देखे जाते देखे। अतिथि बहुत आए और गए, अब जरा आतिथेय को पहचानो।
झेन फकीर कहते हैंः बहुत दिन उलझे रहे मेहमानों में, अब.जरा मेजबान
को पहचानो। वह कौन है जो तुम्हारे भीतर सब देखता है? सुख को भी, दुख को भी, सफलता-असफलता को, यश-अपयश को! जीवन को भी, मृत्यु को भी! वह कौन है जो

तुम्हारे भीतर देखता है? जिस दिन तुम उसे देखने लगोगे, उस दिन शाश्वत से संबंध जुड़ गया। उस साक्षी को जान कर ही असली जीवन का स्वाद मिलता है

चौथा प्रश्नः ओशो! आप इस पद पर कैसे पहुंचे?

कृष्णतीर्थ! यह कोई पद है? ... चला मुरारी हीरो बनने! इसे तुम पद समझते हो? यह तो मिटने की प्रक्रिया है, मिटने की प्रक्रिया का अंत है।
मोक्ष को, निर्वाण को, समाधि को पद की भाषा में सोचना ही मत, नहीं तो अहंकार तुम्हारे सिर पर सवार हो जाएगा। पद के पीछे अहंकार अपने को छिपा लेगा। पद उसकी भाषा है। तुम तो इसे शून्य सोचो, मिटना सोचो, मृत्यु सोचो। ऐसा मत पूछो कि आप इस पद पर कैसे पहुंचे? ऐसे पूछो कि आप मिटे कैसे? व्यक्ति मिटता है तो परमात्मा होता है। बूंद मिटती है तो सागर हो जाती है। गिरने दो बूंद सागर में। यद्यपि जब बूंद सागर में गिर जाती है तो सागर हो जाती है, लेकिन सागर तो होगी तब जब बूंद की तरह खो जाएगी।
पहले से ही पद की भाषा में सोचोगे तो खोने में डरोगे। वही तो अहंकार
की दौड़ है--यह हो जाऊं, वह हो जाऊं, धनी हो जाऊं, यशस्वी हो जाऊं! अहंकार महत्त्वाकांक्षा है।
कुछ दिनों पहले मैं पढ़ रहा था, सामरसेट मॉम के भतीजे ने, रॉबिन मॉम ने
एक किताब लिखी हैः कनवर्सेशंस विद मॉम। सामरसेट मॉम इस सदी के प्रसिद्ध से प्रसिद्ध लेखकों में एक और सबसे ज्यादा धनी लेखकों में भी। जब मैं इस अंश पर आया तो बहुत चौंका। उसके भतीजे ने एक दिन सामरसेट मॉम से पूछाः "आपके जीवन की सबसे सुखद स्मृति क्या है?" मॉम हकलाए और कहाः "ऐसा... ऐसा कोई भी क्षण मैं याद नहीं कर पाता हूं।" भतीजा चौंका!
मॉम का लंबा जीवन सफलता ही सफलता की कहानी है। यश के एक सोपान से दूसरे सोपान पर चढ़ने की कहानी है। जगत-ख्याति, जैसी किसी दूसरे लेखक की इस पूरी सदी में नहीं! और मॉम कहे कि "ऐसा कोई भी क्षण मैं याद नहीं कर पाता हूं जिसे मैं जीवन की सुखद स्मृति कहूं!"
भतीजे ने लिखा हैः मैंने दीवानखाने में चारों ओर सजे हुए कीमती फर्नीचर, सजावटी सामान, कीमती पेंटिंग्स आदि पर नजर डाली, जो मॉम की सफलता के प्रतीक थे। इससे ज्यादा सुंदर सजा हुआ महल शायद पृथ्वी पर दूसरा हो! मुझे याद आया कि भूमध्य सागर के किनारे स्थित उनका यह महल और इसके साथ लगे बगीचे का मूल्य छह लाख पौंड है, करीब एक करोड़ रुपया। मॉम के पास ग्यारह नौकर थे जो सदा चौबीस घंटे उनकी सेवा में तत्पर रहते थे। वे ठोस सोने की रकाबियों में भोजन करते थे। हीरे-जवाहरात जड़ी हुई चीजों का उनके पास अंबार था।
भतीजा भरोसा न कर पाया। लेकिन उसने उस दिन बात वहीं छोड़ दी। दूसरे दिन दोपहर को, भतीजे ने लिखा है कि मैंने देखा कि वे सोफे पर लेटे हुए, बहुत मोटे टाइप में छपी बाइबिल के पन्ने पर नजर गड़ाए हुए कुछ पढ़ रहे हैं। आंखें उनकी कमजोर हो गई थीं और केवल मोटे-मोटे अक्षरों में छपी हुई किताब ही वे पढ़ सकते थे। और अंतिम दिनों में सिवाय बाइबिल के और वे दूसरी किताब पढ़ते भी नहीं थे। उनका चेहरा बहुत गंभीर था। उन्होंने मुझसे कहाः "तुमने यह बाइबिल भेजी थी न, इसमें मैंने यह वाक्य पाया हैः मनुष्य समूचा संसार पा ले, मगर अपनी आत्मा गंवा बैठे तो भला उसने हासिल क्या किया?" जीसस का प्रसिद्ध वचन है।
और मॉम ने कहाः मेरे प्यारे रॉबिन! मैं तुम्हें बताता हूं कि जब मैं छोटा बच्चा था, यह वाक्य मेरे बिस्तर के पास टंगा रहता था। लेकिन तब मैं इसका अर्थ न समझा और पूरा जीवन गंवा बैठा; जानते हो, जब मैं मरूंगा, ये सारी चीजें मुझसे छिन जाएंगी। ये बगीचे, इस बगीचे के एक-एक पेड़, यह समूचा महल, यह फर्नीचर, यह फर्नीचर का हर हत्था और पाया। मैं तुमसे कहता हूं कि एक मेज भी मैं अपने संग न ले जा सकूंगा; मैं सरासर असफल आदमी रहा हूं, सारे जीवन सब तरह से असफल!

वे बोलेः मैं गलती पर गलती करता रहा। मैं सब कचरा कर बैठा। और जब मैं छोटा बच्चा था तो मेरे झूले के पास यही वाक्य टंगा हुआ थाः मनुष्य समूचा संसार पा ले, मगर अपनी आत्मा गंवा बैठे, तो भला उसने हासिल क्या किया? भतीजे ने उन्हें ढांढस बंधाने की कोशिश की और कहाः छोड़िए भी, आज आप जिंदा लेखकों में सबसे नामी हैं। आपकी यश-पताकाएं सारी पृथ्वी पर सारी भाषाओं में फहरा रही हैं। ऐसी कोई भाषा नहीं दुनिया की, जिसमें आपकी किताबों के अनुवाद न हुए हों, जहां लोग आपको जानते न हों, जहां आपका सम्मान न हो। इसका कुछ तो अर्थ होगा?
सामरसेट मॉम ने कहाः काश, मैंने एक भी अक्षर न लिखा होता। इस चीज ने बस मुझे दुख ही दुख दिया है। जो भी मेरा परिचित हुआ, अंत में मेरा द्वेषी बन गया। मेरा सारा जीवन विफल रहा है। पर अब बहुत विलंब हो चुका, अब मैं बदल नहीं सकता। अब बहुत देर हो चुकी। और मैं तुमसे फिर कहता हूं कि जब मैं छोटा बच्चा था तो मेरे झूले के पास ही यह वचन टंगा हुआ थाः "मनुष्य समूचा संसार पा ले, मगर अपनी आत्मा गंवा बैठते तो भला उसने हासिल क्या किया?" लेकिन अब बहुत देर हो चुकी, अब बहुत विलंब हो चुका, अब मैं बदल न सकूंगा।
इसके कुछ ही दिन, कोई तीन या चार दिन बाद सॉमरसेट मॉम की मृत्यु हो गई।
... ये सफल आदमियों की कहानियां हैं! ये पद पर पहुंचे हुए लोगों की कथाएं हैं!
नहीं, पद की भाषा बोलो ही मत, नहीं तो अहंकार बड़ा चालबाज है। वह "पद" शब्द पर सवारी कर लेगा। वह उसका घोड़ा बना लेगा। चले तुम! अहंकार ने कहा कि ठीक है, समाधि पाकर रहेंगे, सिद्ध होकर रहेंगे, बुद्ध होकर रहेंगे!
एक युवक ने बुद्ध के चरणों में जाकर सिर रखा और कहा कि मैं कसम लेकर आया हूं कि बुद्ध होकर ही जाऊंगा। बुद्ध ने कहाः मुश्किल हो गई तब, यही बात बाधा बन जाएगी। छोड़ दे, यह बात छोड़ दे। यह कसम किसने खाई है? जिस अहंकार ने यह कसम खाई है, वही तो बाधा है। तू जिस अहंकार से यह संकल्प लिया है, वही तो दीवाल है।
बुद्धत्व तब आता है, जब कुछ भी मन में बनने का भाव नहीं रह जाता। कुछ
भी बनने का भाव नहीं रह जता! बुद्ध बनने का भाव भी नहीं रह जाता! समाधि तब फलती है जब समाधि तक को पाने की आकांक्षा नहीं रह जाती। जब अभीप्सा मात्र समाप्त हो जाती है। जब जो जहां जैसा है वैसे ही राजी हो जाता है, परम राजी, संतुष्ट। जब परितोष इतना सघन होता है कि अब कुछ भी करने की जरूरत नहीं, न कुछ होने की जरूरत है।... उसी घड़ी, उसी शुभ घड़ी में परमात्मा उतर आता है। परितोष की घड़ी में परमात्मा का आगमन होता है। पदाकांक्षी... फिर चाहे
पद संसार के हों और चाहे परलोक के, भेद नहीं है... पदाकांक्षी कभी नहीं पहुंच पाता। पदाकांक्षी भटकता ही रहता है।
तुम पूछते होः "आप इस पद पर कैसे पहुंचे?"
यह पद नहीं है। यहां भीतर मेरे मैं जैसा कुछ नहीं है। पहुंचने वाला समाप्त हो गया तब पहुंचना होता है।
हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराइ। खोजते-खोजते जब खोजने वाला भी खो जाता है, तब मिलन है, तब परम मिलन है।

पांचवां प्रश्नः आप कहते हैं, ध्यान एकाकी यात्रा है। और अकेलेपन से मैं बहुत डरता हूं। मुझे साहस दें।

निश्चित ही ध्यान एकाकी यात्रा है, मगर यह तुमसे किसने कहा कि अकेलापन? परमात्मा साथ होगा। संसार की यात्रा में तुम अकेले हो; परमात्मा साथ नहीं है, यह याद रखना। और जिनका तुमने संग-साथ समझा है, नदी-नाव संयोग है। बस अजनबी इकट्ठे हो गए हैं नाव में। कोई पत्नी बन गई है, कोई पति बन गया है, कोई बेटा बन गया है, कोई भाई बन गया, कोई मित्र बन गया... अजनबी इकट्ठे हो गए हैं नाव में। और नाव में थोड़ी देर को हमने कैसे-कैसे खेल रचा लिए हैं-- मोह के, आसक्ति के, राग के!
यहां तुम बिल्कुल अकेले हो। मगर तुमने भ्रांति यह बना ली है कि सब हैं--भाई है, पत्नी है, बेटा है, मित्र है। सब हैं, परिवार है, प्रियजन हैं।

और बिल्कुल अकेले हो। जरा सोचो, फिर से सोचो। एक बार फिर से पर्दा उठाकर देखो अपने भीतर, तुम बिल्कुल अकेले हो या नहीं? पत्नी बाहर है, पति बाहर है; भीतर तो तुम बिल्कुल अकेले हो।
तो मैं तुमसे एक बेबूझ सी बात कहना चाहता हूं, एक अटपटी बात कहना चाहता हूंः संसार में लोग बिल्कुल अकेले हैं। ध्यान में परमात्मा का साथ मिलता है। लेकिन जो लोग समझते हैं संसार में संग-साथ है, उनसे मुझे कहना पड़ता है कि ध्यान में तुम्हें अकेला होना पड़ेगा। यह संग-साथ यह झूठा है संग-साथ, यह छोड़ना पड़ेगा, तो असली संगी मिले।
तुम्हें थोड़ी देर को तो पति-पत्नी, बाल-बच्चे सब भूल ही जाने चाहिए। थोड़ी देर को तो तुम्हें आंख बंद करके बिल्कुल अकेले हो जाना चाहिए, जैसे कि तुम वस्तुतः हो--न किसी के पति न किसी की पत्नी, न किसी के पिता न किसी की मां तुम--असंग! असंगता ध्यान है। कम से कम चौबीस घंटे में एक घंटे को तो तुम असंग हो जाओ। भूल ही जाओ कि तुम्हारा किसी से कोई नाता है। सारे खेलों के बाहर हो जाओ। थोड़ी देर को तो ये ताश के खेल बंद करो। ये ताश के राजा, रानी थोड़ी देर को तो इन्हें छोड़ो... । थोड़ी देर को तो आंख बंद कर लो और बिल्कुल अकेले रह जाओ।
इसलिए मैं कहता हूं कि अकेले रह जाओगे; इसका मतलब यह मत समझना कि तुम अकेले हो गए, अकेले तुम रह जाओगे, तुम अचानक पाओगेः परमात्मा तुम्हारे साथ मौजूद है। असली संगी, असली साथी तुम्हारे साथ मौजूद है। और उसकी मौजूदगी कुछ ऐसी नहीं है कि वह पराया है। वह तुम्हारा अंतरतम है। वह तुम्हारे भीतर ही जलता हुआ दीया है।
बढ़ अकेला
यदि न कोई संग तेरे पंथ-बेला
बढ़ अकेला
चरण ये तेरे रुके ही यदि रहेंगे
देखने वाले तुझे कह, क्या कहेंगे,
हो न कुंठित, हो न स्तंभित
यह मधुर अभियान-बेला
बढ़ अकेला
श्वास ये संगी-तरंगी क्षण प्रति क्षण और प्रति पद-चिह्न परिचित पंथ के कण शून्य काशृंगार तू
उपहार तू, किस काम मेला
बड़ अकेला
विश्व-जीवन मूक दिन का प्राणमय स्वर
सांद्र पर्वत-शृंग पर अभिराम निर्झर
सफल जीवन जो जगत के
बढ़ अकेला
बाहर खेलो, खेल है। बाहर का मेला--खेलो, जी भर खेलो, उल्लास भर खेलो; मगर याद रखना, भूल मत जाना मेला है और तुम अकेले हो। और उस यात्रा पर भी जाना है।
शून्य काशृंगार तू
उपहार तू, किस काम मेला
बढ़ अकेला
वहां तो अकेले जाना पड़ेगा। भीतर तो किसको साथ ले जा सकोगे, कैसे ले जा सकोगे? सब बाहर हैं, वे तो बाहर ही छूट जाएंगे। भीतर तो तुम अकेले ही जाओगे न? कैसे पत्नी को निमंत्रित करोगे कि आ, मेरे साथ चल।
लेकिन तुम्हारे प्रश्न की संगति मैं समझता हूं। यह तुम्हारा ही भय नहीं है, अनेक का भय है। इसीलिए तो लोग ध्यान से डरते हैं, बचते हैं। क्योंकि ध्यान का मतलब हैः मेले के बाहर जाना। और मेले-ठेले की ऐसी आदत पड़ गई है, जब तक धक्कम-धुक्का न होता रहे, तब तक तुम्हें लगता ही नहीं कि कुछ ठीक चल रहा है। जितना धक्कम-धुक्का हो, तो जितना रेला-पेली हो, जितना ठेला- ठेली हो, उतना ही तुम्हें लगता है कुछ हो रहा है। जैसे ही तुम अकेले रह

जाते हो, प्रश्न उठता हैः मैं कौन हूं और क्या कर रहा हूं? भीड़-भाड़ में भूल जाते हैं, विस्मरण हो जाता है। जीवन के वास्तविक प्रश्न भूल जाते हैं, और झूठे प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाते हैं।
किसी ने जोर से धक्का मार दिया, झगड़ा हो गया। कहां याद रही अपनी? और किसी ने भेंट लिया, गले लगा लिया, प्रेम हो गया--कहां याद रही अपनी? तुम्हारे प्रेम, तुम्हारे झगड़े, तुम्हारी दोस्ती, तुम्हारी दुश्मनियां एक ही काम करती हैं--तुम्हें उलझाए रखती हैं, व्यस्त रखती हैं। तुम्हें अवसर नहीं देतीं कि तुम.जरा भीतर झांक लो। वहां तो अकेला ही बढ़ना पड़ेगा।
बढ़ अकेला
यदि न कोई संग तेरे पंथ-बेला
बढ़ अकेला
डर तो लगता है एकाकी होने में; मगर तभी तक लगता है जब तक तुम हुए नहीं। हुए कि तुम चकित हो जाओगे! शांत, एकांत, मौन... भीतर जब एकाकीपन का अनुभव होता है, तुम चकित हो जाओगे, सारा भय गया! क्योंकि उस एकांत में पता चलता है कि तुम अमृत हो। अमृतस्य पुत्रः! तुम्हारी कोई मृत्यु नहीं, भय कैसे होगा? तुम स्वयं परमात्मा हो--सच्चिदानंदघन! तुम्हें भय क्या? सारा अस्तित्व तुम्हारा है। सब कुछ तुम्हारे साथ है। न तुम कभी अकेले थे, न तुम कभी अकेले हो सकते हो। मगर इस अनुभव के पहले अकेला तो होना पड़ेगा। यह झूठा जो संग-साथ है इससे तो थोड़ी आंख मोड़नी पड़ेगी, इसकी तरफ थोड़ी पीठ करनी पड़ेगी। इस पीठ करने की प्रक्रिया का नाम ही ध्यान है।
और भय मत खाओ। मैं तुमसे कहता हूं, सुंदरदास ने बार-बार कहाः "मान सके
तो मान"! मैं भी तुमसे कहता हूंः मान सको तो मान!
अकेले होकर परमात्मा का साथ मिलता है। फिर कोई अकेला नहीं रह जाता। राह तुम्हें दिखा दी है। कैसे अपने भीतर की सीढ़ियां उतरो, तुम्हें बता दिया है। उतरना तो तुम्हीं को पड़ेगा।
राह पा गया
अब मैं
चलना है
चलता हूं
दिन हो या रात हो
बाधाएं
आएं
अच्छा तो है साथ हो
समझ-बूझ करके
इस ओर आ गया
अब मैं
राह पा गया
अब मैं
चिंता क्या
शंका क्या
बुरा क्या अकेलापन
चलना है
गति बल है
तन-गिरि में निर्झर मन
स्वर से संगीत से
सहाय पा गया
अब मैं राह पा गया
अब मैं।
स्वर से संगीत से
सहाय पा गया।
जरा भीतर तो चलो, भीतर का अनाहद नाद तो सुनो, वही संगीत संगीत हो जाएगा। वही संगीत साथी हो जाएगा। वही संगीत डुबाता चलेगा, डुबाता चलेगा

और एक दिन तुम पाओगे तुम कभी नहीं। तुम्हारे संगी-साथी जैसे झूठ थे वैसे ही तुम भी एक झूठ थे।
मैं भी झूठ है, तू भी झूठ है। सत्य तो वहां है जहां न मैं बचता है न तू बचता है। सुंदरदास के शब्दों मेंः न म्हारो, न थारो।
इस एकांत का अपूर्व सौंदर्य है। इस एकांत में अपूर्व संगीत है। इस एकांत का अनुभव ही सत्य है।
धूप सुंदर
धूप में
जग-रूप सुंदर
सहज सुंदर
व्योम निर्मल
दृश्य जितना
स्पृश्य जितना
भूमि का वैभव
तरंगित रूप सुंदर
सहज सुंदर
तरुण हरियाली
निराली शान शोभा
लाल पीले
और नीले
वर्ण-वर्ण प्रसून सुंदर
धूप सुंदर
धूप में जग-रूप सुंदर
ओस कण के
हार पहने
इंद्रधनुषी
छवि बनाए
शस्य तृण
सर्वत्र सुंदर
धूप सुंदर
धूप में जग-रूप सुंदर
सघन पीली
ऊर्मियों में
बोर
हरियाली
सलोनी
झूमती सरसों
प्रकंपित वात से
अपरूप सुंदर
धूप सुंदर
मौन एकाकी
तरंगें देखता हूं
देखता हूं
यह अनिर्वचनीयता
बस देखता हूं
सोचता हूं
क्या कभी
मैं पा सकूंगा
इस तरह
इतना तरंगी
और निर्मल
आदमी का
रूप सुंदर

धूप सुंदर
धूप में जग-रूप सुंदर
सहज सुंदर
मिलता है, अनंत सौंदर्य मिलता है।
मौन एकाकी
तरंगें देखता हूं
देखता हूं
यह अनिर्वचनीयता
बस देखता हूं
तुमने देखा है जगत का सौंदर्य? इससे बहुत बड़ा सौंदर्य तुम्हारे भीतर छिपा पड़ा है। ये फूल सुंदर हैं, यह धूप सुंदर है, यह आकाश सुंदर है, यह रूप सुंदर है; मगर इस सबसे बड़ा रूप तुम्हारे भीतर छिपा पड़ा है। चेतना का फूल इन सारे फूलों को मात कर जाता है। इसलिए तो हमने उसे सहस्रदल कमल कहा है। जैसे हजार-हजार पंखुड़ियों वाला स्वर्णकमल खिला हो जिसकी आभा अवर्णनीय है और जिसकी सुवास शाश्वत है!
तुम्हारे भीतर क्या है, इसका तुम्हें पता नहीं। इसलिए डरते हो भीतर जाने में। और बाहर कुछ भी नहीं है और भागे चले जा रहे हो। कब, किसने, क्या पाया है बाहर? दौड़-दौड़ लोग गिरते हैं और मरते हैं। दौड़-दौड़ लोग कब्रों तक पहुंचते हैं, और कहां पहुंचते हैं?
फिर क्या फर्क पड़ता है कि गांव के किसी छोटे-मोटे मरघट पर जलाए गए कि दिल्ली के राजघाट पर, क्या फर्क पड़ता है? अगर बहुत कोशिश की तो राजघाट पहुंच जाओगे; और क्या होगा? और फिर चिता में लकड़ियां साधारण थीं कि चंदन की थीं, क्या फर्क पड़ता है? और फिर चिता की राख ऐसा ही किसी मिट्टी के बर्तन में किसी नदी-सरोवर में डूबो दी गई या स्वर्ण के कलशों में ले जाई गई और गंगा में डाली गई, क्या फर्क पड़ता है?
एक बात निश्चित है कि यहां सब जो हम करते हैं मिट जाता है, मिट्टी हो जाता है। फिर भी तुम निर्भय चले जा रहे हो! जहां सब तरह का भय होना चाहिए, वहां तुम निर्भय जा रहे हो और जहां किसी तरह का भय नहीं होना चाहिए, वहां जाने में तुम डरते हो! अपने भीतर जाने में डरते हो! और वहां बैठा है राजाओं का राजा, मालिकों का मालिक। वहां भीतर बैठा है तुम्हारा अंतर्तम, तुम्हारा अमृत स्वरूप!
डरो मत, बढ़ो! कोई साथ वहां जाने को नहीं है, एकाकी ही बढ़ो। लेकिन इतना मैं भरोसा दिलाता हूं, कि पहुंचते ही पाओगे; अकेले नहीं हो, परमात्मा साथ है। और वही असली साथ है, शेष सब साथ के धोखे हैं।

अंतिम प्रश्नः समाज और शासन आपके विरोध में क्यों हैं? निरंतर आपकी आवाज दबाने की कोशिश क्यों की जा रही है?

जैसा होना चाहिए वैसा ही हो रहा है। यही उचित है। यही सदा हुआ है। समाज यदि मेरी बातों का विरोध न करे तो मेरी बातें सत्य न होंगी। समाज मेरी बातों का विरोध करे तो ही प्रमाण है कि बातों में कुछ सचाई होगी। समाज केवल सत्य का विरोध करता है। झूठ से तो समाज सदा राजी है। झूठ समाज का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। झूठ को तो समाज पचा लेता है, अपना अंग बना लेता है; सत्य को नहीं पचा पाता। इसलिए जीसस को सूली लगानी पड़ती है। इसलिए सुकरात को जहर पिलाना पड़ता है। इसलिए बुद्ध पर पत्थर मारने पड़ते हैं।
जो हो रहा है, ठीक हो रहा है। जैसा होना चाहिए, ठीक वैसा ही हो रहा है, नियमानुसार हो रहा है। इससे चिंता न लो। इसमें व्यर्थ समय भी खराब मत करो। मैं जो कह रहा हूं वह ऐसा है कि समाज उसे नहीं सहेगा। उसे तो केवल थोड़े से साहसी व्यक्ति ही सह सकते हैं। समाज तो एक झूठ का समझौता है। समाज की चिंता सत्य की तलाश के लिए नहीं है। समाज सत्य के खोजियों को चाहता भी नहीं, क्योंकि सत्य के खोजी सदा ही समाज के लिए अड़चन पैदा करते हैं; समाज का पाखंड, समाज का झूठ तोड़ने लगते हैं। समाज की सुविधा से चलती हुई जीवन-व्यवस्था को तरंगित कर देते हैं, आंदोलित कर देते हैं।

लोग नाराज होते हैं, जब उनकी मान्यताओं को तुम तोड़ते हो। इसलिए नहीं
कि उनको मान्यताओं से कोई बड़ा लगाव है। तुमने देखा नहीं है यह? --चाहे हिंदू मंदिर नहीं जाता हो, लेकिन अगर उसके मंदिर के खिलाफ कुछ कहो, वह लड़ने को तैयार है। मंदिर पूजा करने नहीं जाता। मंदिर से प्रेम जैसा कुछ भी नहीं है। मगर अगर मंदिर के खिलाफ कुछ कहो तो लड़ने को जरूर तैयार है। यह बड़े मजे की बात है कि जिसको प्रेम नहीं है, वह मारने-मरने को तैयार है। मुसलमान कुरान पढ़ता हो न पढ़ता हो, कुरान उसे समझ आती हो न आती हो, लेकिन कुरान के विपरीत कोई बात, बस बरदाश्त के बाहर हो जाएगी। क्या कारण होगा? कारण यह है कि जब भी तुम किसी की मान्यताओं पर आघात करते हो तो तुम उसके पैर के नीचे की जमीन खींच रहे हो। इसी के हारे वह खड़ा है निश्चिंत, कि सब ठीक है। मंदिर आज नहीं जाता हूं, लेकिन जब भी जरूरत होगी तब चला जाऊंगा। मंदिर वहां है, मौजूद है--मैं निश्चिंत हूं। आज नहीं लिया राम का नाम, कोई हर्ज नहीं; मरते वक्त ले लूंगा। आसरा तो है, सहारा तो है, सुनिश्चिंतता तो है।
और तुमने कह दिया कि राम के नाम लेने से कुछ भी नहीं होगा; राम का कोई नाम ही नहीं है। अब तुमने उसको घबड़ा दिया। तुमने उसको बेचैन कर दिया। उसकी एक सुव्यवस्था थी, एक सुरक्षा थी--तुमने छीन ली। इसी के सहारे वह मजे से चला जा रहा था--ले लेंगे कभी नाम। सोचता था कि पाप बहुत हो जाएंगे, कोई फिकर नहीं, चले जाएंगे, गंगा-स्नान कर आएंगे। और तुमने कह दिया--"पागल" हुए हो! गंगा में स्नान करने से कहीं पाप धुलते हैं। पानी से हो सकता है देह की मैल, देह की धूल धुल जाए, लेकिन आत्मा से पानी कैसे धुले? आत्मा से पानी कैसे पापों को अलग करेगा?" तुमने उसको दिक्कत में डाल दिया। अभी वह पाप निश्चिंतता से किए जा रहा था, चोरी भी करता था, रिश्वत भी लेता था, रिश्वत भी देता था--सब चल रहा था। एक बात पीछे मन में रखी थी कि कभी हो आऊंगा प्रयाग कभी कर लूंगा गंगा में स्नान। गंगा कोई बहुत दूर तो नहीं है। सब निपटारा हो जाएगा। तुमने उससे उसका सहारा छीन लिया, उसकी आशा छीन ली, तुमने उसे दुविधा में डाल दिया। अब क्या होगा! तुमने उसे बेचैन कर दिया, वह नाराज न हो तो क्या करे?
तो अगर लोग मुझ पर नाराज हैं, तो कसूरवार मैं हूं। वे कसूरवार नहीं हैं। मैं ही जो कह रहा हूं वह उन्हें नाराज कर देता है। मेरी भी मजबूरी है। मैं वही कह सकता हूं जो ठीक है। उनकी भी मजबूरी है, वे ठीक को बर्दाश्त नहीं कर सकते, क्योंकि झूठ के साथ उन्होंने काफी दोस्ती कर रखी है। झूठ के साथ उनके बहुत से न्यस्त स्वार्थ जुड़ गए हैं।
कुछ ही दिन पहले एक जोड़ा मुझे मिलने आया--एक युवक और युवती। वे बड़े आनंदित थे। विवाह में बंधने को आतुर थे। बड़े प्रसन्न थे। एक क्षण तो मुझे भी लगा कि कुछ भी न कहूं उनसे, उनकी प्रसन्नता ऐसी थी, हालांकि प्रसन्नता कोई ज्यादा देर टिकने वाली नहीं थी। दिन, दो-चार दिन में वर्षा के झोंके आएंगे, और सब रंग बह जाएगा। लेकिन उनकी प्रसन्नता देख कर मुझे लगा कि कुछ न कहूं। दो चार दिन ही सही, चलो उनको प्रसन्न रह लेने दो। लेकिन वे जिद्द किए थे, कि आप हमें सच-सच कहें। आप हमें बताएं कि हम विवाह में बंधें या न बंधें। विवाह का सत्य क्या है?
मैंने कहा, विवाह का कोई सत्य है ही नहीं। एक खेल है। खेलना हो, खेलो।
और खेल खतरनाक है। ये ऐसी हवाएं आती रहती हैं और जाती रहती हैं। अगर कुछ जीवन का दांव ही लगाना हो तो किसी और बड़ी चीज पर लगाओ, किसी और बड़ी खोज पर लगाओ। अगर घर ही बसाना हो, तो असली घर बसाओ; यह घर बसाने का क्या लाभ होगा? इतने लोगों ने बसा रखे हैं और इतने कष्ट में पड़े हुए हैं, तो इन्हें देख कर तुम्हारी आंखें नहीं खुलतीं?
उस युवक ने कहाः जो सबके साथ हुआ है वह हमारे साथ भी हो यह जरूरी तो नहीं है।
यही मनुष्य की भ्रांति है। प्रत्येक मनुष्य सोचता है कि मैं अपवाद हूं। सबके साथ हुआ होगा। सब मरते हैं, मैं थोड़े ही मरूंगा! सब दुख में पड़े हैं, मैं थोड़े ही पड़ूंगा! सब के प्रेम आज नहीं कल फंदे बन जाते हैं, मेरा प्रेम फंदा नहीं बनेगा।

अब यदि ऐसी बात तुम कहोगे विवाहातुर जोड़े से, तो नाराज तो होगा ही। जो
धन की यात्रा पर निकला है उसको अगर तुम कहोगे कि धन कूड़ा-कचरा है, नाराज तो होगा ही।
एक राजनेता आ गए थे आशीर्वाद मांगने--चुनाव लड़ना है। मैंने उनसे कहाः अगर मेरे दिल की कहो, अगर मेरा आशीर्वाद चाहते हो... । तो कहाः आपका ही आशीर्वाद लेने आया हूं।
"तो मेरे हिसाब से चाहते हो आशीर्वाद कि तुम्हारे हिसाब से?"
वे थोड़े चिंता में पड़े। उन्होंने कहाः इसमें क्या फर्क होगा?
"फर्क बहुत होगा। मेरा आशीर्वाद तो यह होगा कि तुम चुनाव हारो, क्योंकि यहीं बात खत्म हो। नहीं तो यह लंबा सिलसिला है। अगर जीत गए, एम. एल. ए. हो गए, तो फिर डिप्टी मिनिस्टर होना है, फिर मिनिस्टर होना है, फिर चीफ मिनिस्टर होना है, फिर दिल्ली पहुंचना है --और यह यात्रा लंबी है। इसमें तुम भटक जाओगे। हार जाओ, तो हारे को हरिनाम।"
वे कहने लगेः आप ठहरें। ऐसा न कहें। यह बात ही आप न कहें। क्योंकि आप जैसे व्यक्तियों के मुंह से निकले वचन सच हो जाते हैं।
मैंने कहाः मेरे... ।
"आपको आशीर्वाद न देना हो तो मत दें, मगर यह तो मत कहें कि हारे को हरिनाम। "हरिनाम" लूंगा, मगर अभी नहीं।"
तो तुम पूछते होः "समाज और शासन आपके विरोध में क्यों हैं?" होगा ही। राजनीति तो सदा ही धर्म के विपरीत है। और जब राजनीति धर्म के विपरीत न हो तो समझ लेना कि वह धर्म धर्म नहीं है, राजनीति का ही हिस्सा है। जब तक धर्म धर्म होता है, जलती आग होता है, तब तक राजनीति उसके विपरीत होती है। क्योंकि ये दो विपरीत यात्राएं हैं। धर्म की यात्रा है अंतर्यात्रा, राजनीति की यात्रा है बहिर्यात्रा। धर्म की यात्रा है निर-अहंकार की यात्रा और राजनीति की यात्रा है अहंकार की यात्रा। सारा खेल ही अहंकार का है वहां। तो राजनीतिज्ञ तो परेशान होगा, नाराज भी होगा। फिर मेरे जैसे व्यक्तियों से तो बहुत नाराज होगा, क्योंकि मैं उसका किसी भी तरह साथ नहीं देता। और किसी का नहीं देता। ऐसा नहीं कि इस तरह के राजनीतिक का नहीं देता हूं, उस तरह के राजनीतिक का नहीं देता हूं--किन्हीं भी रंग-ढ़ंग के हों राजनीतिज्ञ, राजनीतिज्ञ विक्षिप्त हैं। सारी राजनीति विक्षिप्तता है। और मनुष्य-जाति का सौभाग्य का दिन होगा जिस दिन राजनीति से छुटकारा हो जाएगा।... तो स्वभावतः नाराजगी होगी।
नाराजगी हजार तरह से प्रकट होनी शुरू होती है। ऐसी खबरें आनी शुरू हुई हैं कि सारी दुनिया के राजदूतावासों को खबरें दी गई हैं कि जो व्यक्ति भी मेरे आश्रम आना चाहे, उसको भारत के भीतर न आने दिया जाए। तो जो मित्र जाते हैं वीसा के लिए, अगर उन्होंने मेरा नाम लिया, तत्क्षण सील मार दी जाती है उनके पासपोर्ट पर कि तुम्हें जाने की आज्ञा नहीं है। अब तो मेरे संन्यासियों को आना पड़ रहा है यहां, तो दूसरे नाम ले-ले कर आना पड़ रहा है। कोई कहता है, काशी जा रहे हैं संस्कृत पढ़ने। कोई कहता है, श्री अरविंद आश्रम में जा रहे हैं, पांडिचेरी। कोई कहता है, शिवानंद आश्रम जा रहे हैं, ऋषिकेश। तब उनको आज्ञा मिलती है। इतना ही नहीं, अभी एक मित्र ने हालैंड से आकर खबर दी कि जब उसने मेरा नाम लिया और यहां आने की बात की तो एकदम नाराज हो गया अधिकारी। उसने कहाः वहां तो जाना ही मत। वहां तो हम प्रवेश भी नहीं देंगे। लेकिन अगर तुम हमारी सलाह मानो तो ये आश्रम हैं।
उसने साठ आश्रमों के नाम बताए। लिस्ट दी, इनमें से कहीं भी जा सकते हो। उसमें मुक्तानंद का आश्रम भी है! तो मैंने कहाः यह ठीक ही है, होना ही चाहिए।
अभी कुछ ही दिन पहले मुक्तानंद मोरार जी का सत्संग करने गए थे। जब कोई संत किसी राजनीतिक का सत्संग करने जाए तो समझ लेना कि मतलब क्या हो सकता है! राजनीतिज्ञ आएं संतों के पास, समझ में आता है; लेकिन संत राजनीतिकों के पास जाने लगें तो संत दो कौड़ी के हैं। मुक्तानंद गए मोरार जी का सत्संग करने। सत्संग का लाभ तो होता ही है--यह हुआ। क्या कहा उन्होंने मोरार जी

को? मोरार जी को कहा कि यह हमारा धन्यभाग है, हमारे देश का धन्यभाग है, कि हमारे साधुओं के देश में आप जैसा साधु-पुरुष प्रधानमंत्री है!
मगरूर जी भाई--और साधु-पुरुष! साधु का क्या अर्थ होता है? साधु--और राजनीति में! साधु और राजनीति का क्या संबंध! तो ठीक है कि राजदूतावासों को खबरें दी गई हों। मुक्तानंद कहते हैं कि मोरार जी साधु हैं, अब मोरारजी कहेंगे कि मुक्तानंद असली साधु हैं। ऐसा पारस्परिक लेन-देन चलता है। मुझसे तो कैसे चल सकता है?
मेरे साथ तो किसी तरह का पारस्परिक लेन-देन नहीं चल सकता। मैं निपट अकेला हूं। और जो मुझे कहना है और जैसा मुझे कहना है वैसा ही मुझे कहना है-- उसके जो भी परिणाम हों। भीड़-भाड़ मैं चाहता भी नहीं हूं। यहां कोई मेला थोड़े ही भरना है। मैं चाहता हूं वे ही थोड़े से लोग, जो सच में प्यासे हैं, यहां आ जाएं। उनकी प्यास बुझाने का सार उपाय है। लेकिन जिनको प्यास ही नहीं है, उनकी भीड़ इकट्ठी नहीं करनी है। उनकी भीड़ के कारण जो प्यासे हैं वे भी प्यासे रह जाएंगे।
फिर, मैं जो कह रहा हूं, अपनी गवाही से कह रहा हूं। न तो मैं कहता हूं
कि मैं हिंदू हूं, न मुसलमान, न ईसाई, न जैन। तो कौन मेरे साथ हो! मेरे साथ तो वे ही हो सकते हैं जो सिर्फ धार्मिक हैं, या धार्मिक होने की जिनकी क्षमता है, जिन्होंने सारे विशेषण छोड़ दिए हैं।
कदामद हदें खींचती ही रहेंगी
कदामद की बुनियाद ढाता चला जा
दकियानूसी बातें तो लकीरें खींचती ही रहती हैं।
कदामद हदें खींचती ही रहेंगी
कदामद की बुनियाद ढाता चला जा
जो परचम उठा ही लिया सरकशी का
इसे आसमां तक उड़ाए चला जा
तो मैं तो अपने संन्यासियों से कहता हूं कि तुम्हें तो तोड़ना है-- परंपरा; तुम्हें तो तोड़ना है लकीरें; तुम्हें तो तोड़ना है सारी सीमाएं। और तुम्हें सीमाएं तोड़ने के कारण जो कष्ट आएं, जो पीड़ाएं हों--वे अहोभाव से स्वीकार करनी हैं। यही तुम्हारी साधना है।
लेकिन किसी के रोके सत्य रुकता नहीं। न तो सुकरात को जहर पिला कर रोका
जा सका, न जीसस को सूली पर लटका कर रोका जा सका।
और दबाने से उभरेगी गीतों की गुंजार
चलती आंधी रुक नहीं सकती।
उड़ती बदली झुक नहीं सकती
नन्हीं लहरें रोक से बन जाती हैं तीखी धार
और दबाने से उभरेगी गीतों की गुंजार।
कोई कलम को तोड़ भी डाले
ओठों पर पड़ जाएं ताले
लेकिन फिर भी सांच की होगी, हर सूं जय-जयकार और दबाने से उभरेगी गीतों की गुंजार।
ओ चीखों से डरने वाले
उंगली कान में धरने वाले
उड़ता पंछी कैदी होकर और मचाए रार
और दबाने से उभरेगी गीतों की गुंजार।
लाख मिटा, आबाद रहेंगे
गीत सदा आजाद रहेंगे
पायल चाहे कैद हो लेकिन, कैद नहीं झंकार
और दबाने से उभरेगी गीतों की गुंजार।
इससे कुछ भेद नहीं पड़ने वाला है। समाज हो विपरीत और शासन हो विपरीत, कुछ भेद नहीं पड़ने वाला।
पायल चाहे कैद हो लेकिन कैद नहीं झंकार
और दबाने से उभरेगी गीतों की गुंजार

ये सब अच्छे लक्षण हैं। ये खबरें सुंदर हैं। ये नये उगते सूरज की खबरें हैं। यह नये उगते सूरज के सामने सदा ही इस तरह का उपद्रव खड़ा होता है।
तुम सौभाग्यशाली हो कि तुम किसी एक ऐसे आदमी के साथ हो जिसे जहर दिया
जा सकता है, जिसे सूली पर लटकाया जा सकता है। तुम सौभाग्यशाली हो कि तुम किसी ऐसे आदमी के साथ हो।
आता है सूरज तो जाती है रात
किरणों ने झांका है, होगा प्रभात
नये भाव-पंछी चहकते हैं आज
नये फूल मन में महकते हैं आज
नये बागबां हम नये ढंग से
जगत को रंगेंगे नये रंग से खिलाएंगे नये फल-फूल-पात करोड़ों कदम गम को कुचलेंगे जब खुशी की तरंगों में मचलेंगे जब
तो सूरज हंसेगा, हंसेगी सबा
बदल जाएंगे आग पानी हवा
बढ़ाओ कदम, चलाओ तो हाथ
आता है सूरज तो जाती है रात
किरणों नें झांका है, होगा प्रभात
मैं तुमसे जो कह रहा हूं, वह एक नई किरण है। उस किरण के साथ जुड़ना चुनौती है। उस किरण के साथ जुड़ना एक संघर्ष है। लेकिन संघर्ष में ही आत्मा पकती है, संघर्ष में ही निखार होता है। और आग में पड़ कर ही स्वर्ण कुंदन बनता है।
तो इन क्षुद्र सी बातों की चिंता न लेना और इन व्यर्थ की बातों के विचार में भी न पड़ना। यह जैसा हो रहा है, ठीक। जैसा होना चाहिए वैसा ही है। लाओत्सु ने कहा है कि अगर मूढ़ मेरी बातों पर न हंसे, तो मेरी बातों में सचाई न होगी। और अगर जड़ मेरी बातों के विरोध में खड़े न हो जाएं, तो मेरी बातों में चैतन्य न होगा।
सत्य जब भी जन्मता है तब असत्यों की हजारों-हजारों सालों की दीवालें ढहने लगती हैं। वे सब अपनी सुरक्षा का उपाय करती हैं। यह बिल्कुल स्वाभाविक है इसलिए इसमें मैं कुछ आकस्मिक नहीं देखता हूं। तुम भी आकस्मिक मत देखना। और अगर आकस्मिक न देखोगे तो तुम्हारे मन में इसका भी एक स्वीकार-भाव होगा। यह ठीक है। तुम हंसे जाओ। तुम गाए जाओ। तुम गुनगुनाए जाओ। तुम नाचे जाओ। इस पृथ्वी को नाचते हुए धर्म की एक झलक देनी है।
और ध्यान रहे--
पायल चाहे कैद हो, लेकिन कैद नहीं झंकार
और दबाने से उभरेगी गीतों की गुंजार।

आज इतना ही।

ज्योति से ज्योति जले
पंद्रहवां प्रवचन

हारो और पुकारो

करै हरै पालै सदा, सुंदर समरथ राम।
सबही तैं न्यारौ रहै, सब मैं जिन कौ धाम।।
अंजन यह माया करी, आपु निरंजन राइ।
सुंदर उपजत देखिए, बहुरयौ जाइ बिलाइ।।
सूरति तेरी खूब है कौ करि सकै बखान।
बानी सुनि सुनि मोहिया, सुंदर सकल जिहान।।
प्रीतम मेरा एक तूं, सुंदर और न कोइ।
गुप्त भया किस कारनै, काहि न परगट होइ।
ऐसी तेरी साहिबी, जानि न सक्कै कोइ।
सुंदर सब देखै सुनै, काहू लिप्त न होइ।।
वचन तहां पहुंचै नहीं, तहां न ज्ञान न ध्यान।
कहत कहत यौंहि कहयौ, सुंदर है हैरान।।
लौन-पूतरी उदधि मैं, थाह लैन कौं जाइ।।
सुंदर थाह न पाइए, बिचिही गई बिलाइ।।

माइ हो हरि दरसन की आस।
कब देखौं मेरा प्रान-सनेही, नैन मरत दोऊ प्यास।
पल छिन आध घरी नहिं बिसरौं, सुमिरत सास उसास।
घर बाहरि मोहि कल न परत है, निसदिन रहत उदास।।
यहै सोच सोचत मोहि सजनी, सूके रगत स मांस।
सुंदर बिरहिन कैंसे जीवै, बिरहबिथा तन त्रास।।
धर्म का प्रारंभ, मनुष्य के विसर्जन में है। जब तक मनुष्य है, तब तक परमात्मा नहीं। किसी मनुष्य ने कभी परमात्मा का दर्शन नहीं किया और न कोई मनुष्य किसी परमात्मा का दर्शन कभी करेगा। वह असंभव है। इसलिए असंभव है कि दर्शन की प्राथमिक शर्त यही है कि मनुष्य मिटे, शून्य हो जाए, नकार हो जाए। मनुष्य हटे, द्वार दे, तो परमात्मा का आगमन हो।
जैसे अंधेरे का और प्रकाश का कभी मिलन नहीं होता, वैसे ही मनुष्य का
और परमात्मा का भी मिलन नहीं होता। अंधेरा है तो प्रकाश नहीं और प्रकाश आया कि अंधेरा नहीं।
मनुष्य एक अंधकार है, क्योंकि मनुष्य एक अहंकार है। अहंकार और अंधकार आध्यात्मिक अर्थों में पर्यायवाची हैं। अहंकार आध्यात्मिक अंधकार का नाम है। और जहां अंधकार है वहां अंधापन है। क्योंकि अंधकार में दिखाई नहीं पड़ता, सूझता नहीं। आदमी जीता है, टटोलता-टटोलता। किसी तरह जीता है, जैसे अंधा आदमी जीता है, चलता है। दिखाई कुछ भी नहीं पड़ता। कहां से आते हैं, दिखाई नहीं पड़ता। कहां जा रहे हैं, दिखाई नहीं पड़ता। क्यों आए हैं, दिखाई नहीं पड़ता। क्यों हैं, दिखाई नहीं पड़ता। यही तो विडंबना है कि कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता, फिर भी जीना पड़ता है। यही तो मनुष्य की व्यथा है, पीड़ा है, संताप है। और दिखाई तब तक नहीं पड़ सकता जब तक प्रकाश न हो। लेकिन प्रकाश होते ही अंधकार नहीं बचेगा।
या तो परमात्मा होगा, या मनुष्य होगा। तो जो उसे खोजने चले हैं, एक बात ठीक से समझ लें कि खोज में अगर अपने को गंवाने की तैयारी हो, तो ही खोज पूरी होगी। अगर अपने को बचाया तो तुम व्यर्थ ही खोज रहे हो। जैसे-जैसे बचाओगे, जितना बचाओगे उतनी ही खोज व्यर्थ है, असंभव है। एक शर्त पूरी करनी पड़ेगी-- मिटने की शर्त!
इसलिए तुमसे कहता हूंः धन्यभागी हैं वे जो मिटने को तैयार हैं।
आध्यात्म आत्मघात है। अपने को पोंछ कर मिटा डालना है। कोई बचे ही न भीतर। जरा सी भी आहट न रह जाए तुम्हारी। किसी कोने-कातर में भी तुम दबे न रह जाओ। बस उसी क्षण, तत्क्षण, भीतर शून्य पूरा हुआ कि पूर्ण का आगमन हुआ।

एक तरफ से शून्य का पूरा होना दूसरी तरफ से पूर्ण का आना युगपत घटते हैं, एक ही साथ घटते हैं।
लेकिन मनुष्य की चाह कुछ और है। मनुष्य चाहता है परमात्मा को पा लूं
और और मैं भी रहूं। मनुष्य की चाह असंभव की है। मनुष्य चाहता है अंधेरा भी रहे और रोशनी भी हो जाए; अहंकार भी बचे, और ब्रह्म-बोध भी हो जाए। यह नहीं हो सकता। यह वस्तुओं का स्वभाव नहीं है।
अस्वाभाविक को मत मांगना, अन्यथा धर्म के नाम से तुम कुछ और करते रहोगे। धर्म तो बस अपने को मिटाने की प्रक्रिया है, अपने को गलाने की प्रक्रिया--धर्म अपने को बनाने की प्रक्रिया नहीं है, अपने को सजाने की प्रक्रिया नहीं है। नहीं तो तुम्हारे पुण्य, तुम्हारे दान, तुम्हारे त्याग, व्रत, उपवास, नियम, तुम्हें सजाएंगे, तुम्हें और भारी कर जाएंगे। तुम परमात्मा से और दूर हो जाओगे!
अकसर ऐसा मैंने देखा है कि पापी उससे करीब और पुण्यात्मा उससे दूर; और अज्ञानी उसके करीब, और ज्ञानी उससे दूर; और भोगी उसके करीब, और त्यागी उससे दूर। ऐसा मेरा हजारों व्यक्तियों के जीवन में देखने का परिणाम है, निष्कर्ष है। क्योंकि अज्ञानी को तो अकड़ नहीं होती। अज्ञानी तो कहता हैः "मैं अज्ञानी, मैं कहां जान सकूंगा? मैं कैसे जान सकूंगा? बड़े-बड़े ज्ञानी पड़े हैं, वे नहीं जान पाते, मेरी क्या बिसात! बस इसी में उसकी बिसात है। इसी में उसका बल है। पापी तो रोता है। उसके पास तो आंसुओं के अतिरिक्त और कोई संपदा नहीं है। प्रार्थना कर सकता है, लेकिन पुण्य का कोई दावा नहीं है।" और प्रार्थना रुदन के अतिरिक्त और है क्या? प्रार्थना व्यवस्थित ढंग
से रोना ही तो है। अज्ञात के चरणों में अपने आंसू गिराना ही तो है! लेकिन दावा नहीं हो सकता।
इसलिए अक्सर पापी उसके करीब होता है, पुण्यात्मा से। पुण्यात्मा दावेदार होता है--इतना मैंने किया है! उसके खाते-बही में हिसाब-किताब है। उसके पास गणित है। झुकने की उसकी तैयारी नहीं है। हकदार की तरह मांग करने आया है।
इसलिए जीसस ने ठीक ही कहा हैः जो अंतिम हैं वे प्रथम हो जाएंगे और जो प्रथम हैं वे अंतिम रह जाएंगे!
बेबूझ सा लगने वाला यह वचन बड़ा अर्थपूर्ण है। पापी उसके करीब हो जाते हैं, पुण्यात्मा उससे दूर हो जाते हैं।
और ध्यान रखना, मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि तुम पाप करो। मैं तुमसे कह रहा हूंः पुण्य करो, लेकिन पुण्य का दावा न हो। मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि अज्ञानी रहो। मैं तुमसे कह रहा हूंः जानो, लेकिन जानने को दावा मत बनने दो। जानना तुम्हारे निर्दोषपन को विकृत न कर पाए। ज्ञान तुम्हारी छाती पर बोझ की तरह होकर न बैठ जाए। ज्ञान तुम्हें अकड़ाए न। जीना अलग है
जानकारी के पीपे पर पीपे पीना अलग है
चतुर और पढ़े और लिखे
हमने जिस तरफ देखा
उसी तरफ हमें दिखे
मगर अपने जाने हुए के मुताबिक रहते हुए
याने शरीर के हुकुम पर न बहते हुए कम ही दिखे
इसलिए भाई, पढ़े भाई, लिखे भाई, अकड़ो मत
कोरे शब्दों की फांसी में अपने को जकड़ो मत
शास्त्र सुंदर है; छाती पर नहीं बैठ जाना चाहिए। गीता को पढ़ो एक काव्य
की तरह। वेद को गुनगुनाओ गीतों की भांति। कुरान को उठने दो संगीत की भांति। लेकिन ध्यान रखना, ज्ञान का दावा न आए। ज्ञान का दावा अटकाता है। तुम बंजर हो जाओगे
यदि इतने व्यवस्थित ढंग से रहोगे
यदि इतना सोच-समझ कर
बोलोगे-चलोगे,
कभी मन की नहीं कहोगे

सच को दबा कर झूठे प्रेम के गाने गाओगे
तो मैं तुमसे कहता हूं तुम बंजर हो जाओगे।
ज्ञानी बंजर हो जाते हैं। फिर उनके जीवन में न कोई फूल लगते, न फल। और पुण्यात्मा भी बंजर हो जाते हैं। और तुम्हारे महात्माओं में सिवाय दावे के और कुछ नहीं बचता। एक थोथी अकड़ बचती है।
धर्म की राह पर चलने वाला सच्चा आदमी पापी जैसा विनम्र होगा, अज्ञानी जैसा निर्दोष होगा। और जहां पापी जैसी विनम्रता, अज्ञानी जैसा निर्दोषपन है, वहां मिटने की यात्रा शुरू हो गई। वहां तुम्हारी बर्फ पिघलने लगी, तुम गलने लगे; सूरज उगने लगा, सुबह होने लगी। जल्दी ही तुम पाओगे सूरज सारे आकाश पर छा गया है, और तुम्हारा कहीं कोई पता भी नहीं है।
ऐसे ही एक दिन पाया जाता है कि परमात्मा ने तुम्हें सब ओर से घेर लिया है। इतना घेर लिया कि तुम बचे ही नहीं हो। बाहर भी वही है, भीतर भी वही है, रग-रग, रोएं-रोएं में वही है, श्वास-प्रश्वास में वही है। भक्त जब खो जाता है, इतना खो जाता है, तब भगवान की उपलब्धि है।
आज के सूत्र--
करै हरै पालै सदा, सुंदर समरथ राम।
ये सूत्र तुम्हें मिटाने के लिए हैं। ये सूत्र इशारे हैं, कैसे मिटो?
करै हरै पालै सदा, सुंदर समरथ राम।
सुंदरदास कहते हैं, तुम मुफ्त नाहक ही कर्ता बन बैठे हो। कर्ता अहंकार का भोजन है--मैंने यह किया, मैंने वह किया! तो जो आदमी जितना करने का फैलाव कर लेता है उतना ही अकड़ जाता है। जिसने कुछ भी नहीं किया, जिसके पास कहने को कुछ भी नहीं है कि मैंने यह किया, उसका अहंकार भी उतना ही छोटा होता है। कर्ता का विस्तार ही अहंकार का भाव है। तुमने एक किताब लिखी, कि तुमने एक मंदिर बनाया, कि तुमने उपवास किया, कि तुमने घर त्याग दिया, कि तुमने एक बहुत बड़ा महल खड़ा कर लिया, कि इतना धन कमाया... तुमने कुछ किया और अहंकार भरा! जड़ से काट डालो इसे!
करै हरै पालै सदा, सुंदर समरथ राम।
सुंदरदास कहते हैंः कर्ता भी वही हर्ता भी वही! वही बनाता, वही मिटाता। वही संहारता। तुम बीच में मत आओ। राम परिपूर्ण रूप से समर्थ है। कुछ कमी नहीं है कि तुम्हें कुछ करना पड़े। इसी बात को अलग-अलग फकीरों ने अलग-अलग ढंग से कहा है।
अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम,
दास मलूका कह गए, सबकै दाता राम! एंप्लायमेंट
--मलूक कहते हैंः जरा देखो तो आंख उठा कर! अजगर भी पड़ा रहता है अपनी जगह
पर तो भी भोजन मिल जाता है। पक्षी नौकरी-चाकरी करने नहीं जाते, एंप्लायमेंट-दफ्तर के सामने क्यू लगा कर खड़े नहीं होते, फिर भी भोजन मिल जाता है, फिर भी जीते हैं। तुमसे कुछ कम जीते हैं? सच तो यह है, तुमसे ज्यादा जीते हैं। आदमी जमीन पर सबसे कम जी रहा है। करने-धरने से फुरसत नहीं मिल पाती, जिए कैसे? पहले इंतजाम तो जुटाए, तब जिए। इंतजाम जुटाते- जुटाते ही जिंदगी चूक जाती है। आदमी कहता हैः आज धन इकट्ठा कर लूं, कल जीऊंगा; आज मकान बना लूं, कल रहूंगा। कल आता नहीं। मकान बनते-बनते आदमी के जाने का दिन आ जाता है। किसका मकान कब पूरा बन पाया है? सभी को तो अधूरा छोड़ कर जाना पड़ता है। किसकी यात्रा कब पूरी होती है? सभी को तो बीच से उठ जाना होता है।
तुम देखते नहीं, रोज लोगों को गिरते और मरते! तुम सोचते हो उनका काम पूरा हो गया? तुम सोचते हो उनके मकान पूरे बन गए थे? तुम सोचते हो उनकी दुकान पूरी जम गई थी? तुम सोचते हो वह घड़ी आ गई थी जब वे जीना शुरू कर सकते थे? अभी नहीं आई थी।
इसीलिए तो मृत्यु में इतना दुख होता है। मृत्यु का दुख मृत्यु के कारण नहीं होता है। मृत्यु का दुख तो इसलिए होता है कि जीवन तो जुटाने में बीत गया, जीए तो कभी थे ही नहीं और अब मौत आ गई। जीवन हाथ में था, जिए नहीं, क्योंकि जुटाने में लगे रहे साधन; अब मौत आ गई, अब जीने का कोई समय नहीं बचा।

ऐसे ही समझो कि एक आदमी सदा यात्रा की तैयारी करता हो, बिस्तर बांधता हो, संदूक सजाता हो, बस यात्रा की तैयारी ही करता हो, यात्रा पर कभी भी जाता न हो! और जब यात्रा की तैयारी करीब-करीब पूरी होने को आ जाए तो मौत की घड़ी आ जाए।... तुम्हारी जिंदगी ऐसी ही है। तुम इंतजाम करते हो। लोग कहते हैंः आज मेहनत कर लें, कल भोगेंगे! आज कैसे भोग सकते हैं? आज तो मेहनत कर लेंगे तो कल कुछ बचेगा तो भोगेंगे। फिर कल भी यही होता है और परसों भी यही होता है। क्योंकि जब भी दिन आता है आज की तरह आता है। और तुम्हारी एक आदत बन गई होती है कल पर स्थगित कर देने की। तुम टालते ही चले जाते हो। एक दिन मौत आ जाती है।
आदमी जमीन पर सबसे कम जीता है और सबसे ज्यादा जीने के आयोजन जुटाता है। पशु-पक्षियों को.जरा गौर से देखो, उनसे कुछ सीखो!
जीसस से किसी ने पूछा कि आपके संदेश का सार क्या है? तो तुम चौंकोगे, जीसस ने जो जवाब दिया! जीसस ने कहाः पक्षियों से पूछ लो, पौधों से पूछ लो, मछलियों से पूछ लो। जरा जिंदगी को गौर से देख लो, मेरा संदेश तुम्हारी समझ में आ जाएगा। देखते हो खेत में खिले हुए लिली के फूलों को, न श्रम करते न मेहनत और सम्राट सोलोमन भी अपनी पूरी सजावट में इतना सुंदर नहीं था! सोलोमन भी अपने समग्र वैभव में इतना गरिमापूर्ण नहीं था, जितना ये लिली के फूल हैं। गरीब लिली के फूल खेत में खड़े हैं। न इनके पास धन है, न पद है न प्रतिष्ठा है, कुछ भी नहीं है। मगर इनका सौंदर्य देखते हो! इन्हीं से पूछ लो! पक्षियों से पूछ लो, कि मछलियों से पूछ लो!
जीसस क्या कह रहे हैं? जीसस कह रहे हैं कि.जरा आंख खोलकर प्रकृति को
तो देखो। सारी प्रकृति जी रही है। पौधे भी तुमसे ज्यादा जी रहे हैं, तुमसे ज्यादा रस पी रहे हैं। आदमी सूखता ही चला जाता है। और उसके सूखने की जड़ कहां है? उसे यह अकड़ आ गई है कि मेरे किए कुछ होता है, कि मैं कुछ करूंगा तो होगा।
तुम मां के पेट में थे नौ महीने तक, किसने तुम्हें भोजन दिया था? मां
के पेट में तुम थे, तब तुम श्वास भी नहीं ले सकते थे। किसने तुम्हें श्वास दी थी? कैसे तुम मां के पेट में नौ महीने तक बड़े हुए? कौन तुम्हें बड़ा करता रहा? किसका सहारा था तुम्हें? तुम तो बिल्कुल असहाय थे, फिर कौन तुम्हें गर्भ के बाहर ले आया? और तुम गर्भ के पहले आओ बाहर कि मां के स्तन दूध से भर गए थे। किसने मां के स्तनों को दूध से भर दिया था?
जैसे तुम्हारे आने के पहले तुम्हारे लिए सारा इंतजाम कोई जुटा रहा है--कोई अदृश्य हाथ तुम्हें संभाले हुए है! हाथ तो प्रतीक है। कोई अदृश्य नियम--उस नियम का नाम ही धर्म है--तुम्हें सम्हाले हुए है। प्रेम की भाषा में कहो तो उस नियम का नाम परमात्मा है। उसके हमने चार हाथ बनाए, ताकि चारों दिशाओं से तुम्हें संभाल ले। उसके हमने हजार हाथ बनाए, ताकि ऐसा न हो, हजारों लोग हैं, उसके हाथ कहीं एक जगह उलझे हों और कोई दूसरे को जरूरत पड़ जाए और हाथ खाली न हो!
कल मैं एक कविता पढ़ रहा था।... लोगों के देखने के ढंग! जिनने कविता लिखी है उन्होंने लिखा है कि बेईमानी शुरू से ही हो गई; खुद के तो चार हाथ बना लिए और आदमी को दो दिए। एक महत्वपूर्ण प्रतीक को आलोचना का कारण बना लिया--खुद के चार बना लिए और आदमी को दो दिए। धोखा पहले से ही शुरू हो गया! स्वार्थ की शुरुआत हो गई। ईश्वर भी स्वार्थी है!
उसके हाथ तुम्हारे लिए हैं। तुम्हारे हाथ भी जिस दिन उसके लिए हो जाएंगे उसी दिन मिलन हो जाएगा। उसके हजार हाथ भी तुम्हारे लिए हैं, तुम्हारे दो हाथ भी उसके लिए नहीं हैं। तुम अपनी अलग अकड़ लेकर खड़े हो गए हो। और तुम अलग हो नहीं, इसलिए अकड़ तुम्हारी भ्रांत है। कोई मनुष्य अकेला होकर जी नहीं सकता। मनुष्य को एक व्यक्ति की तरह देखने में ही भूल हो रही है। मनुष्य एक संबंध है--व्यक्ति नहीं! एक रिलेशनशिप, एक व्यक्ति नहीं। और जब मैं कहता हूं कि मनुष्य एक संबंध है तो मेरा मतलब क्या? अगर श्वास न आए तो तुम समाप्त हुए। चारों तरफ जीवन-वायु का सागर चाहिए, तो ही तुम जी सकते हो। सूरज न आए, तुम समाप्त हुए। सूरज से आनेवाली जीवनदायी किरणें होनी चाहिए, तो ही तुम जी सकते हो। पानी न मिले, तुम समाप्त हुए।

आकाश चाहिए, तो ही तुम जी सकते हो। पानी न मिले, तुम समाप्त हुए। आकाश चाहिए, हवाएं चाहिए, सूरज चाहिए, चांद-तारे चाहिए, जल चाहिए, पृथ्वी चाहिए। ये सब हैं, तो तुम जीते हो। इन सबके बीच तुम एक संबंध मात्र हो! इन पांचों तत्वों के तुम एक जोड़ हो, एक संबंध, एक संयोग। इस संयोग के भीतर एक कुछ ऐसा भी है जो संयोग नहीं है। उसको हमने परमात्मा कहा है। वह तुम नहीं हो। तुम तो संयोग-मात्र हो। मिट्टी, आकाश, वायु, अग्नि, इनका जोड़ हो।
लेकिन तुम्हारे भीतर एक है, जो तुम नहीं हो। उसको जानने के लिए तुम जब नहीं हो जाओगे, पूरे तभी संभावना का द्वार खुलेगा!
रूप?
कहा माटी ने
वह तो मेरा ही है।
रंग?
किरण बोली
वह मैं ही सबको देती।
रस?
मैं ही बरसाता सब पर,
बोला बादल।
प्राण?
वात बोली
मुझको ही नहीं जानते?
अति परिचय परिणाम अवज्ञा।
शब्द?
शब्द?
ध्वनि के अपार सागर की
सीमित एक लहर भी
जो कंठस्थल से टकरा कर टूट गई है, तरह-तरह से तुम जिसको जोड़ा करते होः बोला अंबर।
संपुजंन?
संघात?
सिर्फ संग्रह भर मैं हूं?
बोला अज्ञात, नहीं!
तुम वह
जिसने ली "मैं" की संज्ञा
संग्रह तुम हो नहीं, संग्रही;
संग्रह मात्र अगर बन पाते
तो न इस तरह से घबड़ाते,
और न ऐसे प्रश्न उठाते।
एक तुम्हारे भीतर इस सारे संग्रह का साक्षी बैठा है--जो मिट्टी नहीं है; जो आकाश नहीं है; जो अग्नि नहीं। एक चैतन्य का आवास तुम में है। लेकिन उस चैतन्य में तुम्हारा अहंकार बिल्कुल नहीं है। व्यक्ति की तरह तुम वहां नहीं हो, वह चैतन्य तो सच्चिदानंद है। मेरा चैतन्य और तुम्हारा चैतन्य अलग-अलग नहीं है। हम सबका चैतन्य एक ही है। देहें हमारी अलग, आत्मा एक है। वाणी हमारी अलग, शून्य हमारा एक है। बोलें तो हम भिन्न-भिन्न, हमारी बोलियां अलग, लेकिन मौन हो जाएं तो मौन थोड़े ही भिन्न-भिन्न होता है!
यहां कितनी भाषाएं जाननेवाले लोग मौजूद हैं, करीब-करीब दुनिया की सारी भाषाओं को जानने वाले लोग यहां मौजूद हैं। बोलेंगे तो सब भिन्न-भिन्न हो गए। लेकिन सब चुप होकर बैठ जाएं, शांत, मौन, तो क्या जर्मन मौन अलग होगा जापानी मौन से? हिंदुस्तानी मौन अलग होगा चीनी मौन से? मौन तो एक ही होगा!
भीतर शब्द के, रूप के, रंग के पार भी कुछ है। ज्ञात के पार कुछ है। उसका
ही नाम परमात्मा है। वही कर्ता है वही हर्ता, वही लेता वही देता। सारा खेल उसका है। लेकिन तुम व्यर्थ ही बीच में आ जाते हो। और तुम्हारे बीच में आने

से बड़ा उपद्रव हो जाता है। कुछ उसका नुकसान नहीं होता, लेकिन तुम जीवन से वंचित हो जाते हो।
धर्म है जीवन को उसकी विराटता में जीना! और तुम क्षुद्र रह जाते हो! धर्म है जीवन को सागर की भांति जीना! और तुम बूंद ही रह जाते हो। तुम नाहक सीमा में आबद्ध हो जाते हो! तुम अपने कारागृह खुद ही निर्मित कर लेते हो! तुम कारागृह बनाने में इतने कुशल हो कि दीवालें पर दीवालें उठाए चले जाते हो! तुम्हें दीवालों से इतना राग है... पहले दीवाल उठा लोगे कि यह भारत, यह अलग हो गया चीन से, यह अलग हो गया अफगानिस्तान से; फिर भारत में सीमाएं उठा लोगे कि यह हिंदू, यह मुसलमान। फिर हिंदू हजार सीमाएं उठा लेगा कि यह ब्राह्मण, यह शूद्र। फिर अब ब्राह्मण भी सीमाएं उठा लेगा कि कौन कानकुब्ज और कौन कौन है। कोई चतुर्वेदी, कोई त्रिवेदी, कोई द्विवेदी। फिर उठती जाएंगी सीमाएं। और तुम देख रहे हो, तुम क्या कर रहे हो? तुम छोटे होते जा रहे हो। आखीर में बचते हो तुम --एक थोथा अहंकार, जिसमें कुछ भी नहीं बचा। विराट करो अपने को! सीमाएं तोड़ो! नहीं तुम ब्राह्मण हो, नहीं तुम शूद्र, नहीं तुम हिंदू, नहीं तुम मुसलमान। नहीं तुम भारतीय, नहीं तुम अफगानी। छोड़ो सीमाएं, तोड़ो सीमाएं--उठो पार! जितने ही तुम विराट होते चलो, उतने ही परमात्मा के निकट होते चलो।
विराट होने से डरते क्यों हो? क्योंकि विराट होने में एक ही खतरा हैः अहंकार नहीं बचता। अहंकार को बचाना हो तो सीमाएं खड़ी करनी पड़ती हैं। अगर ब्राह्मण हो तो अकड़ सकते हो, हिंदू हो तो अकड़ सकते हो। अगर न हिंदू, न ब्राह्मण; न मुसलमान, न ईसाई; न भारतीय, न पाकिस्तानी, फिर अकड़ोगे कैसे? अकड़ को बचेगा क्या? आधार न रह जाएगा अकड़ का।
इस आधार को तोड़ने के लिए पहला सूत्र--
करै हरै पालै सदा, सुंदर समरथ राम।
सबही तैं न्यारौ रहै, सब मैं जिनकौ धाम।।
और वह सबके भीतर बैठा है, और फिर भी न्यारा होकर बैठा है। मिट्टी भी नहीं है वह, अग्नि भी नहीं है, वायु भी नहीं है; सबके भीतर बैठा है, और सब से भिन्न होकर बैठा है। द्रष्टा है सबका, साक्षी है सबका। देखने वाला है सबका। तुम तो नाटक में भी जाते हो तो भूल जाते हो कि देखने आए हो। फिल्म देखने जाते हो, पर्दे पर कुछ भी नहीं होता, भलीभांति तुम्हें मालूम है कि पर्दे पर कुछ नहीं है, कोरा पर्दा है। धूप-छाया का खेल हो रहा है। लेकिन आंखें गीली हो जाती हैं, आंसू आ जाते हैं, हंसने लगते हो। कभी कोई बहुत उत्तेजक दृश्य आ जाता है तो एकदम कुर्सी पर उठंग हो जाते हो। एकदम रीढ़ सीधी करके बैठ जाते हो। हंस लेते रो लेते, खुश हो लेते, उदास हो लेते, सब कर लेते। और मालूम है कि पर्दे पर कुछ भी नहीं है। धूप-छाया का खेल है।
नाटक में भी भूल जाते हो कि तुम द्रष्टा हो, तो जिंदगी के बड़े नाटक में अगर भूल गए तो कुछ आश्चर्य नहीं! यह बड़ा मंच है। इस पर बड़ा विराट अभिनय चल रहा है। इसमें सब अभिनेता हैं, सबने स्वांग रचा है। कोई राजा बना है कोई भिखारी बना है, कोई आदमी है कोई स्त्री है। अनेक-अनेक रंग हैं, अनेक-अनेक रूप हैं, लेकिन भीतर एक ही निराकार बैठा हुआ है। जब सब पर्दे गिर जाएंगे तब तुम अचानक हैरान होओगे, तब तुम चौंकोगे कि भेद था ही नहीं।
जो इस अभेद को चलते खेल में पहचान लेते हैं, उनको जीवन-मुक्त कहा गया है। जीते-जी मुक्त! और जो जीते-जी मुक्त है, वही मृत्यु में भी मुक्त है। जो जीते-जी मुक्त नहीं हो पाया, वह मृत्यु में मुक्ति को नहीं जान सकेगा। उसे फिर वापस जीवन में आ जाना पड़ेगा। उसने पाठ ही न सीखा। उसको फिर उसी कक्षा में वापस आ जाना पड़ेगा।
जीवन पाठशाला है। पाठ क्या है सीखना? एक ही पाठ सीखने का है, कि जहां
सब अभिनय है और हमारे भीतर द्रष्टा बैठा है जो सिर्फ देखता है!
सब ही तैं न्यारौ रहै, सब मैं जिनको धाम।
अंजन यह माया करी आपु निरंजन राइ। इतने रंग-रूप भरी यह माया बना दी, इतना बड़ा नाटक रचा और आप दूर खड़ा देख रहा है निरंजन।.जरा भी लिप्त नहीं! रंग उस पर लगा नहीं। रंग सब ऊपर-ऊपर है। खूब होली खेली जा रही है। खूब रंग गुलाल उड़ाई जा रही है। फिर घर जाते हो, नहा-धो लिए, सब साफ हो गया। तुम तो

नहीं पाते, तुम तो निरंजन हो। जब तुम पति बने, तब भी तुम पति बने नहीं हो। जब तुम बूढ़े हुए, तब भी तुम्हारे भीतर जो है वह बूढ़ा नहीं हुआ है। जब तुम हारे तब भी तुम्हारे भीतर जो है वह नहीं हारा है। ये सब घटनाएं हैं जो बाहर घट रही हैं। ये रंग होली के हैं; उड़ाओ गुलाल, लगाओ रंग, मगर भीतर बैठा है निरंजन!
अंजन यह माया करी, आपु निरंजन राइ।
सुंदर उपजत देखिए, बहुरयौ जाइ बिलाइ।।
कैसी अदभुत दुनिया बनाई! क्षण में चीजें बनती हैं, क्षण में बिखर जाती हैं! मगर फिर भी हम अंधे हैं; क्षणभंगुर को पकड़ लेते हैं, रोते-चिल्लाते हैं। बबूलों से राग लगा लेते हैं, फिर बबूले फूटते हैं तो पीड़ित होते हैं। सुंदर उपजत देखिए, बहुरयौ जाइ बिलाइ। फिर तुरंत ही तो सब बिला जाता है, देर कहां लगती है! सपने जैसा उठता है और विलीन हो जाता है। कितने लोग आए और कितने लोग गए! हम भी हैं, हम भी चले जाएंगे। हमारे बाद और लोग आते रहेंगे आते रहेंगे। सदियों के बाद किसी को पता भी नहीं होगा कि तुम भी कभी थे। मिट्टी मिट्टी में मिल जाएगी, पानी पानी में खो जाएगा।
लेकिन अभी तुमने कितना शोरगुल मचा रखा है! अभी तुमने कितना बोझ ले रखा है! सब मिट जाएगा और तुम कितने चिंतातुर होकर बैठे हो कि कहीं कुछ मिट न जाए, कि वर्षा आ गई है, कहीं मकान गिर न जाए! सब गिर जानेवाले हैं। किसी ने जरा सी बात कह दी और तुम इतने पीड़ित हो गए कि रात भर सो न सके। न तुम बचोगे न वह बचेगा। कितने लोग इस जमीन पर रहे; लड़े-झगड़े, एक-दूसरे को काटा-पीटा, विदा हो गए! किसी की याद है तुम्हें? क्या तुम सोचते हो तुम्हें ही पहली दफे गाली दी गई है? जिनको गालियां दी गई थीं, अपमान हुए थे, लड़े थे झगड़े थे, वे सब कहां हैं? आज मिट्टी में तलाश करोगे तो पता लगा पाओगे, कि कौन सी मिट्टी हारे हुए की है, कौन सी मिट्टी सिकंदर की है और कौन सी मिट्टी गुलाम की है? मिट्टी तो सब मिट्टी है। राख तो बस राख है।
जहां सब उठता है और गिर जाता है, वहां हम छोटी-छोटी चीजों को कितने जोर
से पकड़ते हैं! उसी जोर से पकड़ने में हम पीड़ित होते हैं, परेशान होते हैं! और जब कोई लहरों को पकड़ेगा तो दुखी होगा ही, क्योंकि लहरें पकड़ में नहीं आतीं। क्षणभंगुर को पकड़ेगा तो बेचैन होगा ही, क्योंकि क्षणभंगुर तुम्हारी पकड़ के कारण शाश्वत नहीं हो सकता! और हमारी यही असंभव चेष्टा चल रही है कि क्षणभंगुर शाश्वत हो जाए। हम क्षण को शाश्वत बनाना चाहते हैं। जहां परिवर्तन ही सत्य है, वहां हम चीजों को थिर करना चाहते हैं, ठहराना चाहते हैं। और यहां कुछ भी ठहरता नहीं। इससे हम इतने दुखी हैं, इतने पीड़ित हैं! आज धन है, कल चला जाएगा। तुम पकड़ रखना चाहते हो कि रहना ही चाहिए। आज तुम सफल हो, कल असफल हो जाओगे। आज तुम्हारे गले में विजय की माला है, कल ये फूल कुम्हला जाएंगे। यह माला किसी और के गले में होगी। तब तुम पीड़ित होओगे, तब तुम दुखी होओगे।
सुंदरदास इशारा क्या कर रहे हैं? वे कह रहे हैंः देखो सब, किसी भी चीज
से जकड़ो मत। जो आए आने दो, जो जाए जाने दो।
यहूदी फकीर झुसिया का बेटा मर गया। तो वह नाचता हुआ उसे मरघट विदा करने गया! लोगों ने समझा, पागल हो गया। लोगों को शक था ही पहले से, कि झुसिया पागल है। क्योंकि जब वह प्रार्थना भी मंदिर में करता था तो बाकी लोगों को मंदिर से हट जाना पड़ता था। क्योंकि इतनी उछल-कूद मचा देता था, टेबल कुर्सियां गिरा देता, सामान तोड़-फोड़ देता। उसकी प्रार्थना क्या थी, पागलपन था! मगर सचाई यह थी कि जब वह प्रार्थना में डूबता था तो वह अपने में रह ही नहीं जाता था। फिर परमात्मा जो करवाता वही होता। लोग भाग कर बाहर हो जाते थे मंदिर के, कि जो उसके बीच में आ जाए वही झंझट में पड़ जाए। और उसमें ऐसी शक्ति आ जाती थी, जब वह प्रार्थना करता था, कि दस आदमियों को अकेला हरा दे। कई बार पकड़ने की कोशिश की थी लोगों ने, तो भीड़ की भीड़ को अकेला हरा दे। लोग सोचते ही थे कि यह पागल है।
अकसर ज्ञानी दीवाने मालूम पड़े हैं। ज्ञान की बाढ़ आती है तो दीवानापन
भी आता है।

और जब बेटे को विदा करने चला, जवान बेटा मर गया, और नाचने लगा, तो लोगों
ने कहाः यह पागल है, हम जानते हैं। लेकिन वह परमात्मा से कह रहा था, कि तूने भेंट दी थी, आज तूने वापस ले ली। इतने दिन जितनी तरह सम्हाल हो सकी, मैंने की। कुछ भूल-चूक हुई हो, तो क्षमा करना। लेकिन तूने मुझे इस योग्य माना था कि इतने दिन के लिए यह अमानत रखने को दी थी, उसका धन्यवाद तो दूं! इसलिए नाचता हूं। तूने मुझे किसी योग्य तो समझा! अपने किसी प्यारे को इतने दिन के लिए मेरे पास भेज दिया था। खुश हूं कि जैसा तूने भेजा था वैसा ही वापस कर रहा हूं, .जरा भी बिगाड़ नहीं हुआ है। और खुश हूं कि जरा भी मेरा लगाव नहीं है। और ऐसा भी नहीं था कि जब बेटा मेरे पास था तो मैंने उसकी चिंता- फिकर न ली हो।
लोग जानते थे, झुसिया का बेटे से बड़ा प्रेम था। शायद कम पिताओं का अपने बेटों से ऐसा प्रेम होता है। उसने इसे बहुत चाहा था, लेकिन चाहत के भीतर एक निरंजन-भाव था, एक साक्षीभाव था। परमात्मा की भेंट है तो चाहा था, लेकिन पकड़ रखने का कोई आग्रह न था। मेरा क्या है, अपना क्या है?
सुंदर उपजत देखिए, बहुरयौ जाइ बिलाइ।
यहां चीजें बनती और गिरती रहती हैं। उठा पानी में बबूला और मिटा।
उठते देखो, गिरते देखो। मजे से देखो! मगर देखने वाले हो, इतना स्मरण रखो।
सूरति तेरी खूब है, कौ करि सकै बखान।
बानी सुनि सुनि मोहिया, सुंदर सकल जिहान।।
सुंदरदास कहते हैंः जब साक्षीभाव को जाना तब तेरी सूरत पहचानी। वही उसकी सूरत है। मूर्तियों में मत खोजो। मूर्तियों में तुम उसे न पाओगे।
उसकी मूर्ति तुम्हारे भीतर छिपी है। उसकी सूरत तुम्हारे भीतर छिपी है।
उसकी सूरत साक्षी भाव है। अगर उसका चेहरा देखना है तो साक्षी हो जाओ।
अच्छा हो तो, बुरा हो तो; सुदिन आएं तो, दुर्दिन आएं तो; सफलता तो, असफलता तो; सुख-दुख, जीवन-मरण, जो भी आए, उसे तुम निसंग भाव से देखते रहो। तुम्हें उसकी सूरत पहचान में आ जाएगी, क्योंकि वह साक्षी-रूप है।
सूरति तेरी खूब है!
और सुंदरदास कहते हैंः जब देखा, कर्तापन से अपना भाव हटाया और साक्षी
पन में डूबा, तब तेरी सूरत पहचानी। और तेरी सूरत खूब है! खूब चमत्कार किया है कि इतने पास बैठा है और ऐसा लगता है कि करोड़ों मील दूर है! और तेरी सूरत खूब है कि न रंग है न रूप है, फिर भी है! तेरा चेहरा खूब है, किसी दर्पण में इसकी छाया नहीं बनती, कोई इसका चित्र नहीं बना सकता!
सूरति तेरी खूब है कौ करि सकै बखान।
आज तक कोई भी उसका वर्णन नहीं कर पाया।
तुम मुझे शब्दार्थ बनाना चाहते हो?
नहीं, यह संभव नहीं, कभी नहीं;
विवश मत करो
लहरों के सीपों में बंद होने के लिए मंत्र तो स्वयंद्रष्टा है
फिर प्रश्नचिन्ह उसकी पूर्णता पर लगाना क्या पराभव नहीं उसकी पवित्रता का?
मुक्तमना सरल विहग से उसका आकाश मत छीनो,
युगों की अनुभूति को पल भर में मत बीनो;
क्या मैं एक संपूर्ण बोधमय क्षण नहीं
जो तुम निर्मम हो त्रिकाल में
बार-बार विभक्त करते हो
और अव्यक्त की गरिमा को खंडित और व्यक्त करते हो। वह अव्यक्त है। उसकी गरिमा की व्यक्त करके खंडित मत करो। और वह आकाश की तरह है। तुम उसे मुट्ठियों में बंद न कर सकोगे।
विवश मत करो।
लहरों के सीपों में बंद होने के लिए
तुम सागर की लहरों को सीपों में बंद नहीं कर सकते। कर भी लोगे तो वे सागर की लहरें न रह जाएंगी। तुम इस विराट आकाश को मुट्ठी में बंद नहीं कर

सकते। जैसे-जैसे मुट्ठी बंधेगी, आकाश बाहर हो जाएगा। परमात्मा पारे जैसा तरल है। बांधोगे, नहीं पकड़ पाओगे!
शब्द-बद्ध
तुमको करने का
मैं दुःसाहस नहीं करूंगा।
तुमने
अपने अंगों से
जो गीत लिखा है--
विगलित लयमय
नीरव स्वरमय
सरस रंगमय
छंद-गंधमय
उसके आगे
मेरे शब्दों का संयोजन--
अर्थ-समर्थ बहुत होकर भी-- मेरी क्षमता की सीमा में एक नई कविता सा केवल
जान पड़ेगा--
लयविहीन
रसरिक्त,
निचोड़ा,
सूखा, भौंडा।
ओ माखन-सी
मानस हंसिनि,
गीत तुम्हारा जब मैं फिर सुनना चाहूंगा, अपने चिर-परिचित शब्दों से
नहीं सहारा मैं मांगूंगा।
कान रूंध लूंगा,
मुख अपना बंद करूंगा,
पलकों में पर लगा
समय आकाश पार कर
क्षीर-सरोवर तीर तुम्हारे
उतर पड़ूंगा
तुम्हें निहारूंगा
नयनों से
जल-मुक्ताहल तरल झड़ूंगा।
शब्दों से उसे कहा नहीं जा सकता। चित्र उसके बनाए नहीं जा सकते।
तुमने किसी नर्तकी को नाचते देखा? उसके नृत्य को तुम कैसे शब्दों में वर्णन करोगे? नहीं, कठिनाई है।
तुमने
अपने अंगों से
जो गीत लिखा है--
विगलित लयमय,
नीरव स्वरमय
सरस रंगमय,
छंद गंधमय--
उसके आगे
मेरे शब्दों का संयोजन--
अर्थ-समर्थ बहुत होकर भी-- मेरी क्षमता की सीमा में
एक नई कविता सा केवल जान पड़ेगा लयविहीन,
रसरिक्त,

निचोड़ा,
सूखा, भौंडा।
ऐसा नहीं है कि मनुष्य ने प्रयास नहीं किया है परमात्मा के संबंध में उसे अभिव्यक्ति देने का। सारे शास्त्र इसी चेष्टा के परिणाम हैं। लेकिन कौन उसे कह पाया? शब्द बहुत छोटे हैं। शब्द अति क्षुद्र हैं। उस विराट को शब्द में लाने की सब चेष्टाएं हारती रही हैं, हारती रहेंगी। कभी मनुष्य समर्थ नहीं हो पाएगा।
सूरति तेरी खूब है कौ करि सकै बखान।
बानी-सुनि-सुनि मोहिया, सुंदर सकल जिहान।।
लेकिन अगर कोई भीतर डुबकी मारे तो देख सकता है।
ओ माखन-सी
मानस हंसिनि
गीत तुम्हारा
जब मैं फिर सुनना चाहूंगा,
अपने चिर-परिचित शब्दों से
नहीं सहारा मैं मांगूंगा कान रूंध लूंगा
मुख अपना बंद करूंगा
पलकों में पर लगा
समय आकाश पार कर
क्षीर सरोवर तीर तुम्हारे
उतर पड़ूंगा
तुम्हें निहारूंगा,
नयनों से
जल-मुक्ताहल तरल झड़ूंगा।
जब उसे जानना हो तो आंखें बंद कर लेना, कान रूंध लेना। बोलना खो जाए। शब्द विदा हो जाएं। मन शून्य हो जाए। और तत्क्षण उसका अनाहद-नाद सुना जाता है। उसका अरूप रूप प्रकट होता है। उसका निराकार आच्छादित कर लेता है तुम्हें। उसका अनिर्वचनीय रूप तुम्हारे प्राणों में रस होकर बरसता है, छंद होकर जगता है। उसे सुना जा सकता, उसे देखा जा सकता। उसकी वाणी भीतर सुनी जा सकती है।
इस भीतर की वाणी को संतों ने "सबद" कहा है। सबद का अर्थ हैः तुम्हारे उपयोग में आने वाले शब्द नहीं। सबद का अर्थ हैः तुम्हारा शब्द नहीं। उसका! उसे ओंकार का नाद कहा है। अगर तुम चुप हो जाओ तो वह बोलो। अगर तुम बिल्कुल नीरव हो जाओ तो उस नीरवता में ही उसके सूक्ष्म स्वर पकड़े जा सकते हैं। उसके संगीत की लहरें इस क्षण भी मौजूद हैं। मगर तुम्हारा कोलाहल इतना है, जैसे कोई बीच बाजार में धीमे-धीमे बांसुरी बजाता हो। किसको सुनाई पड़े? जहां कोलाहल भारी हो, वहां वेणू के स्वर खो जाएंगे! लेकिन अगर कोई सुनना चाहे बीच बाजार में भी शांत होकर तो उतने कोलाहल में भी वेणू के छोटे-छोटे धीमे-धीमे स्वरों को पकड़ पाएगा। तुम्हारा ध्यान जाना चाहिए-- एकाग्र होकर, एक दिशा में।
जो भीतर की दिशा में जाता है वह पाता है। उसकी सूरत भी, उसकी मूरत भी, उसकी वाणी भी, शास्त्रों का शास्त्र उपलब्ध होता है। उस स्वर में स्नान करके ही पवित्रता उपलब्ध होती है। उस स्वर में स्नान किया कि पुण्य हुआ! वही है गंगा असली! क्या करें?
जब जिस क्षन मैं हारा
हारा, हारा, हारा,
मैंने तुम्हें पुकारा
तुम आए
मुस्कराए,
मुझको रहे देखते
मुझको मिला सहारा
जब जिस क्षण मैं

हारा, हारा, हारा,
मैंने तुम्हें पुकारा!
हारो और पुकारो!
जब जिस क्षण मैं
हारा, हारा, हारा
मैंने तुम्हें पुकारा
तुम आए
मुस्काए
मुझको रहे देखते
मुझको मिला सहारा
जब जिस क्षण मैं
हारा, हारा, हारा
मैंने तुम्हें पुकारा
पुकारो उसे हार कर! पुण्य की अकड़ से नहीं। ज्ञान की अकड़ से नहीं। अज्ञान के बोध से, पाप की प्रतीति से। असहाय होकर पुकारो उसे। उसी पुकार में, सारा कोलाहल खो जाएगा! उस पुकार का ही नाम प्रार्थना है।
लेकिन ध्यान रखना, प्रार्थना तभी होती है जब तुम हारकर पुकारते हो। .जरा भी अकड़ न हो, जरा भी दावा न हो, .जरा भी शिकायत न हो, जरा भी आकांक्षा न हो, मांग न हो। सिर्फ इतना ही हो कि मैं भी हूं--यहां दूर परदेस में पड़ा और तेरे अतिरिक्त मेरा कोई सहारा नहीं। मैंने सब करके देख लिया, कुछ होता नहीं। अब तुझे पुकारता हूं।
जैसे कोई डूबता हो सागर में और पुकारे, ऐसे हारे होकर पुकारो!
बानी सुनि सुनि मोहिया सुंदर सकल जिहान।
और जिसने उसकी वाणी सुन ली, सबद सुना--एक ओंकार सतनाम! जिसने उस एक ओंकार को सुना, वह मोह गया! वह सदा के लिए उसका हो गया।
तुमने बीन बजाने वाले के सामने सर्पों को नृत्य करते देखा? वह कुछ भी नहीं है। भीतर की बीन जब बजती है और तुम सुन लेते हो तो जो नृत्य पैदा होता है वह शाश्वत है। समय और आकाश की सब सीमाओं को तोड़ कर बहता जाता है। एक बार शुरू होता है तो फिर उसका कोई अंत नहीं। आदि तो है, अंत नहीं।
प्रीतम मेरा एक तूं, सुंदर और न कोइ।
बस एक बार उसकी शकल झलक जाए, एक बार उसका प्रतिबिंब बन जाए भीतर... ।
प्रीतम मेरा एक तूं, सुंदर और न कोइ।
... फिर बस वही एक प्यारा है, और फिर कोई भी नहीं! फिर सब दृश्य खो जाते हैं, सब दृश्य विदा हो जाते हैं। फिर एक ही भाव सतत पकड़े रहता है।
गुप्त भया किस कारनै, काहि न परगट होइ।
सुंदरदास कहते हैंः मैं तुझसे पूछता हूं कि जैसा तू मेरे सामने प्रकट
हो गया है ऐसा तू सभी के सामने प्रकट क्यों नहीं हो जाता? तू गुप्त होकर क्यों बैठा है?
परमात्मा गुप्त होकर नहीं बैठा है, हम आंख बंद किए बैठे हैं। उसकी तरफ
ही व्यंग्य कर रहे हैं। परमात्मा तो मौजूद है, प्रकट है, मगर हम अंधे हैं। उस पर कोई पर्दा नहीं है, हमने अपनी आंखों पर पर्दा डाल रखा है। उससे मेल हो तो कैसे हो।
तुमने कभी ख्याल किया, अगर कोई व्यक्ति अपनी आंखों पर काला चश्मा लगाकर बात करता हो तो उससे बात करने में कठिनाई होती है। तुमने ख्याल किया इस बात का? राजनीतिज्ञ अक्सर लगा लेते हैं। राजगोपालाचार्य लगाए रखते थे काला चश्मा--दिन में भी, रात भी। वे इस देश के आधुनिक चाणक्य थे। अगर कोई आदमी काला चश्मा लगाए बैठा हो और तुमसे बात करे, तो तुम्हें थोड़ी अड़चन होगी। बात करनी मुश्किल होगी। उसकी आंख नहीं दिखाई पड़ती। आंख बिना देखे पता ही नहीं चलता, वह जो कह रहा है सच में कह रहा है कि नहीं? उसकी आंख के भावों का पता नहीं चलता। वह कह कुछ और रहा हो, सोच कुछ रहा हो।
आंख झूठ नहीं बोलती। ओंठ तो झूठ बोल देते हैं। ओंठों पर आदमी का कब्जा है, आंख पर आदमी का कब्जा नहीं। इसलिए कूटनीतिज्ञ काला चश्मा चढ़ाए रखते हैं। लेकिन अगर कोई आदमी काला चश्मा चढ़ाए बैठा हो तो उससे बात करना

मुश्किल होती है, कुछ अड़चन मालूम होती है। उसका काला चश्मा उतर जाए, बात सुगम हो जाती है।
परमात्मा तुम से बोलना चाहता है, लेकिन तुम्हारी आंखों पर तो बड़ा काला चश्मा है! परमात्मा गुप्त नहीं है, तुम्हारी आंखों पर अंधकार का चश्मा है। और तुम अंधकार को जोर से पकड़े हुए हो। तुमने अंधकार को संपत्ति समझा है। तुमने अहंकार को अपना समझा है। और जब तक तुमने अहंकार को अपना समझा है तब तक परमात्मा की वाणी तुम्हें सुनाई नहीं पड़ सकती। सुन भी लोगे तो कुछ का कुछ अर्थ करोगे।
गुप्त भया किस कारनै, काहि न परगट होइ।
ऐसी तेरी साहिबी, जानि न सक्कै कोइ।।
जब कोई देख लेता है उस मालिक को तब पहचानता है कि ऐ मालिक... ऐसी तेरी साहिबी जानि न सक्कै कोई! भीतर छिपा है। सारा अस्तित्व तेरा है। तू ही फूलों को खिलाता है, तू ही सूरजों को उगाता है। तू ही बनाता है, तू ही मिटाता है।
करै हरै पालै सदा, सुंदर समरथ राम।
और पता नहीं चल रहा है तेरा, किसी को कानों-कान खबर नहीं हो रही कि इतना बड़ा विराट आयोजन तू कर रहा है। लोग तो छोटा-मोटा आयोजन करते हैं तो शोरगुल मचा देते हैं, बैंड-बाजा बजा देते हैं, लाउडस्पीकर लगा देते हैं। अखंड कीर्तन करवा देते हैं! कीर्तन होता है, कीर्तन नहीं। न खुद सोते न मोहल्ले वालों को सोने देते हैं। जरा सा कुछ हुआ कि लोग उपद्रव मचा देते हैं। तू इतना विराट आयोजन कर रहा है और तेरा किसी को पता भी नहीं!
लाओत्सु का प्रसिद्ध वचन है, कि सम्राट अगर सच में सम्राट हो तो लोगों
को पता ही नहीं होता है कि वह है। उसकी मौजूदगी ही पता नहीं चलती। फिर कुछ कम हो, थोड़ा एक कोटि नीचे हो, तो लोगों को पता चलता है कि सब वही कर रहा है। फिर अगर और एक कोटि नीचे हो तो लोगों को शिकायत होती है कि बुरा भी वही कर रहा है। और अगर एक कोटि नीचे हो, तो लोग उसको मारने-मिटाने को राजी, तत्पर हो जाते हैं। बगावतें पैदा होती हैं, क्रांतियां होती हैं।
परमात्मा की मालकियत ऐसी है कि उसका पता ही नहीं चलता। असल में मालकियत दिखानी तभी पड़ती है जब तुम्हें खुद ही शक हो। तुम्हें उसकी घोषणा करनी पड़ती है। नहीं तो कौन मानेगा? जब शक हो ही न अपनी मालकियत में तो घोषणा नहीं करनी पड़ती।
इसलिए जो सच में ही महान व्यक्ति होते हैं उनके पास जाकर तुम्हें ऐसा नहीं लगता है कि तुम छोटे हो; उनके पास जाकर तुमको लगता है तुम भी महान हो। जो झूठे बड़े लोग होते हैं, उनके पास जाकर तुम्हें निरंतर लगेगा कि तुम छोटे हो गए; वे तुम्हें छोटा करने में आतुर होते हैं। तुम्हें छोटा करके ही वे बड़े बने रहते हैं। सच्ची महानता का लक्षण यही है कि ऐसे व्यक्ति की मौजूदगी में, ऐसे व्यक्ति के साथ तुम्हें पता ही नहीं चलेगा कि वह तुमसे विशिष्ट है। वह तुम्हें अपने साथ उठा लेगा--अपनी ऊंचाइयों पर उठा लेगा। वह तुम्हें गौरव देगा, सम्मान देगा, समादर देगा।
परमात्मा ने इस पूरे अस्तित्व को ऊंचाई पर उठाया हुआ है। यहां छोटी
से छोटी चीज का उतना ही सम्मान है जितना बड़ी से बड़ी चीज का है। एक ओस की बूंद की उतनी ही चिंता है जितनी बड़े से बड़े सागर की।
कितनी बार
विचार उठा है
पारावार अगर दुनिया है
तो मैं नन्हीं एक बूंद से
ज्यादा क्या कहूं!
और बड़े जो माने जाते
वे भी छोटी एक बूंद से
क्या ज्यादा हैं!
पर आंखों के आगे
दुनिया का यह रूपक
बहुत देर तक नहीं ठहरता

सागर गायब हो जाता है
बूंदें-बूंदें रह जाती हैं तुलना करती हुई परस्पर
कोई बनती बड़ी,
बड़ी होकर अभिमानी,
कोई छोटी अनुभव करके
शर्माती है।
ओ मेरी चिर-चपल चेतने,
मुझे सर्वदा
इस जगती के सिंधु तीर पर
सुस्थिर रक्खो,
मैं सागर-सापेक्ष दृष्टि से अपने को देखूं,
देखूं प्रत्येक बिंदू को--
नहीं किसी से बड़ा,
न छोटा-हीन किसी से
सजल, तरल, साधारण
सबके साथ बराबर,
सबके प्रति अर्पित संवेदन, स्नेह समादर!
उसकी आंखों में तो सागर और बूंद में भी कोई फर्क नहीं है। और यहां तो कोई बूंद जरा सी बड़ी हो तो छोटी बूंदों के सामने अकड़ कर खड़ी हो जाती है। छोटी बूंदों को छोटा दिखलाने लगती है। यह क्षुद्रता का लक्षण है। परमात्मा की मालकियत ऐसी है, उसकी साहिबी ऐसी है...
ऐसी तेरी साहिबी जानि सक्कै न कोइ।
किसी को पता ही नहीं चलने देता। लोग अकड़ जाते हैं। कर्ता तू है, लोग समझते हैं वे कर रहे हैं। फिर भी तू नहीं कहता कि यह तुम क्या कह रहे हो-- मैंने किया! तू उन्हें अकड़ने देता है। ऐसी तेरी साहिबी! यह तेरी साहिबी का असली रूप!
यही महानता का, यही विराटता का असली अर्थ है।
लाओत्सु के वचन में यह भी कहा गया है कि सच्चा सम्राट करता तो खुद है, लेकिन प्रजा समझती है हम कर रहे हैं। और वह प्रसन्न होता है।
सच्चा सदगुरु करता है बहुत कुछ, लेकिन शिष्यों को अहसास होने देता है
वे ही कर रहे हैं। पता ही नहीं चलना चाहिए! असली साहिबी का पता नहीं चलता।
उसकी कोई बाजार में नुमाइश नहीं करनी होती है।
ऐसी तेरी साहिबी, जानी सक्कै न कोइ।
सुंदर सब देखै सुनै, काहू लिप्त न होइ।।
और तू सब देखता रहता है, सब सुनता रहता है--और किसी बात में लिप्त नहीं होता!
वचन तहां पहुंचै नहीं, तहां न ज्ञान न ध्यान।
वहां वचन तो पहुंचता ही नहीं। जानना भी नहीं पहुंचता वहां। वहां तो प्रीति पहुंचती है, जानना नहीं, ज्ञान नहीं। वहां तो प्रेम पहुंचता है। वहां ध्यान भी नहीं पहुंचता। जब तक ध्यान है तब तक अभी वहां नहीं पहुंचे। वहां पहुंचते ही ध्यान विदा हो जाता है। और ध्यान जहां विदा हो जाता है उस अवस्था का नाम समाधि है।
ख्याल रखना, समाधि न तो जानने का नाम है। समाधि में न कोई जानने वाला बचा, न जाना जाने वाला; न कोई ज्ञाता, न कोई ज्ञेय; न कोई द्रष्टा, न दृश्य! ध्यान में दो होते हैं--ध्यान करने वाला और जिस पर ध्यान कर रहा है। ध्यान में भेद होता है। ज्ञान में भी भेद होता है; कोई जान रहा है।
सुंदरदास कहते हैंः वहां न ज्ञान पहुंचता है न ध्यान। वहां तो सिर्फ प्रेम पहुंचता है, प्रीति पहुंचती है।
कभी-कभी
जब मैं
चुप हो जाता हूं

तो पाता हूं
अनछुई गहराइयों तक
खोलती है
चुप्पी मुझे
पूर्ण विराम तक
बोलती है।
जब तुम्हारे भीतर सब चुप हो जाता है तब पूर्ण बोलता है। और प्रेम में
ही सब चुप होता है। प्रेम मौन की एक अवस्था है। प्रेम को बोलना नहीं पड़ता। प्रेम तो बिना बोले ही अपनी बात कह जाता है। जब दो व्यक्ति प्रेम में होते हैं तो चुपचाप उनका पास बैठना काफी होता है। बात तो तब करनी होती है जब चुपचाप बैठना काटता है। प्रेमी चुप बैठते हैं, पति-पत्नी बात करते हैं। पति-पत्नी बात न करें तो उनको अड़चन होती है कि फिर करें क्या? फिर कुछ न कुछ बात करनी होती है, कम से कम बातचीत में बनी रहती है। अगर बात बीच में न हो तो टूट गए--पति वहां दूर, पत्नी वहां दूर, बीच में कोई सेतु न रहा। प्रेमी चुप बैठते हैं। हाथ में हाथ लिए बैठे होंगे, चुप बैठे रहेंगे घंटों। चुप्पी काफी है। प्रेम चुप्पी में भी बहता है। चुप्पी में ही बहता है!
ऐसे ही भक्त परमात्मा के पास चुप बैठ जाता है। कभी गाता है, मगर उसका गाना भी कुछ कहना तो नहीं है। कभी रोता है, मगर उसका रोना भी कुछ कहना तो नहीं है। क्योंकि वचन तो वहां पहुंचते नहीं।
वचन तहां पहुंचै नहीं तहां न ज्ञान ध्यान।
कहत कहत यौंहि कहयौ, सुंदर है हैरान।।
बड़ी प्यारी बात कही है! सुंदर कहते हैंः मैं ये इतनी बातें कहते-कहते
कह गया, अब मैं हैरान हूं कि काहे को कहीं, किसलिए कहीं! वचन तो वहां पहुंचते नहीं।
कहत-कहत यौंही कहयौ, सुंदर है हैरान।
--अब मैं बड़ा चकित हूं कि मैं क्यों ये बातें कहे जा रहा हूं?
समस्त बुद्धों को यह अनुभव हुआ है। जानते हैं कि कहा नहीं जा सकता और
कह रहे हैं। रोज कह रहे हैं। सुबह कह रहे, सांझ कह रहे, उठते-बैठते कह रहे-- और जानते हैं कहा नहीं जा सकता! क्यों कह रहे हैं? इतना तो पक्का है कि उसे नहीं कहा जा सकता। लेकिन फिर इस कहने का क्या प्रयोजन होगा? इसका प्रयोजन कुछ और है। जिन्हें उसकी कोई खबर नहीं है, उनके कान में भनक ही पड़ जाए, इतना इशारा भी पड़ जाए कि ऐसा कुछ होता है! ऐसी तेरी साहिबी! शब्द भी कान में पड़ जाए, समझ में भी न आए।
करै हरै पालै सदा सुंदर समरथ राम।
बीज की तरह शब्द पड़ा रह जाएगा; कब काम में आ जाएगा, कुछ कहा नहीं जा सकता।
और फिर... कहत-कहत यौंही कहयौ! सुंदरदास कहते हैं कि अब तो मेरा कहने वाला भी मेरे भीतर न रहा, अब तो तू ही है। तूने ही कहलवा दिया होगा, इसलिए मैं हैरान हो रहा हूं कि मामला क्या है! यह कौन मेरे भीतर बोल गया, मुझे बुला गया! जैसी तेरी मर्जी!
"कहत-कहत यौंहीं कहयौ सुंदर है हैरान।"
न सताइश की तमन्ना न सिले की परवाह
गर नहीं है मेरे अशआर में मानी न सही
गालिब के इन प्रसिद्ध शब्दों को समझो। "न सताइश की तमन्ना"... न तो प्रशंसा की कोई इच्छा है, "... न सिले की परवाह", न पुरस्कार की कोई आकांक्षा है। "गर नहीं है मेरे अशआर में मानी न सही।" और अगर मेरे गीतों में कुछ अर्थ भी न हो, तो भी चलेगा। न होने दो अर्थ। मगर अब कोई गा रहा है, कोई भीतर उठा रहा है। मेरे बस के बाहर है। किसी ने तार छेड़े हैं, गीत उठेंगे। न मिले प्रशंसा, न हो पुरस्कार, इतना ही नहीं मेरे शब्दों में अर्थ भी किसी को मालूम न पड़े, तो भी मजबूरी है।
कहत-कहत यौंहीं कहयौ सुंदर है हैरान!
लौन-पूतरी उदधि मैं, थाह लैन कौं जाइ।

सुंदर थाह न पाइए, बिचिही गई बिलाइ।।
सुंदर कहते हैंः मेरी हालत तो उस लोन की पूतरी की तरह है, नमक की पुतली
की तरह है जो सागर की थाह लेने गई थी। मैं भी तेरी थाह लेने चला था। ऐ मेरे मालिक! ऐसी तेरी साहिबी! कि मैं भी तेरी थाह लेने चला था, मैं भी खोजने चला था कि तू कौन है, क्या है, कहां है? मेरी वही दशा हुई जो नमक के पुतले की हुई थी। मैं तो खो ही गया। अब तू मिला है, जब मैं नहीं हूं।
आ गए तुम आज
इतने दिन बिता कर आज
आओ
बहुत दिन मैंने तुम्हारी राह देखी
बहुत दिन मैंने तुम्हारा दिन गिना है
बहुत दिन मुख से प्रेम से चुपचाप मैंने बहुत दिन तन्मय तुम्हारा गुण सुना है राह वह बदली कहां से कहां पहुंची
जहां प्रायः मैं प्रतीक्षा किया करता था दिन गए, आए, गए, आए--अनेक
क्या कहूं--पावस, शरद, ऋतुराज कितने खो गए गुण तुम्हारा इस तरह मैंने गुना
कि मैं केवल तुम्हारा गुण रह गया
आज जब मैं मैं नहीं हूं
आ गए तुम आज
इतने दिन बिता कर आज
आओ!
आता ही परमात्मा तब है, जब भक्त उसके गुण गाते-गाते ही विलीन हो जाता है।
लौन-पूतरी उदधि मैं, थाह लैन को जाइ।
सुंदर थाह न पाइए, बिचिही गई बिलाइ।।
तेरी थाह तो न मिली, खुद ही खो गए। यह भी खूब सौदा हुआ! पाने चले थे। तू
तो जैसा अथाह था वैसा ही अथाह अब भी है। जैसा रहस्यपूर्ण पहले था वैसा ही रहस्यपूर्ण अब भी है। जितना अज्ञात, और अज्ञेय पहले था उतना ही अज्ञात और अज्ञेय अब भी है। और यह सौदा खूब हुआ, बीच में हम खो गए! तू तो पकड़ में आया नहीं, हम भी हाथ से गए। मगर यह घड़ी आनंद की घड़ी है क्योंकि यही उसका तुम्हारे भीतर आने का ढंग है।
आ गए तुम आज
इतने दिन बिता कर आज
आओ
बहुत दिन मैंने तुम्हारी राह देखी
बहुत दिन मैंने तुम्हारा दिन गिना है
बहुत मुख से प्रेम से चुपचाप मैंने
बहुत दिन तन्मय तुम्हारा गुण सुना है। राह वह बदली कहां से कहां पहुंची
जहां प्रायः मैं प्रतीक्षा किया करता था। दिन गए, आए, गए, आए--अनेक
क्या कहूं--पावस, शरद, ऋतुराज कितने खो गए गुण तुम्हारा इस तरह मैंने गुना
कि मैं केवल तुम्हारा गुण रह गया
आज जब मैं मैं नहीं हूं
आ गए तुम आज
इतने दिन बिताकर आज
आओ!
वह आता तभी है
माई हो हरि दरसन की आस!

इसलिए जिन्हें उसको पाने की आकांक्षा हो, वे मिटने के लिए तैयार हो जाएं, इससे सस्ते में मिलन नहीं होता। इतनी कीमत चुकानी ही पड़ेगी और यह कोई बड़ी कीमत नहीं है। क्योंकि तुम हो क्या? तुम्हारे पास खोने को है भी क्या? एक भ्रांति है। एक छाया हो तुम। एक माया हो तुम। मिट्टी-पानी का एक जोड़। यह खो भी जाएगा तो कुछ खोया नहीं। तुम खोकर भी कुछ खोओगे नहीं। तुमने अपने को बचाकर ही सब खो दिया है। तुम अपने को खो दोगे तो सब पा लोगे!
माई हो हरि दरसन की आस।
कब देखौं मेरा प्रान-सनेही, नैन मरत दोऊ प्यास।
प्रार्थना ऐसी हो जानी चाहिए, कि आंखें जलते हुए अंगारे हो जाएं, प्यास की लपटें हो जाएं।
कब देखौं मेरो प्रान-सनेही... वह प्राण प्यारा कब मिले! ... नैन मरत दोऊ प्यास। आंखें धुंधली होने लगें, आंखें मरने लगें, आंखों की ज्योति खोने लगे, उसकी राह देखते-देखते आंखें पथरा जाएं!
ऐ दीदए-गिरयां! क्या कहिए इस प्यार भरे अफसाने को
एक शमअ जली बुझने के लिए इक फूल खिला मुरझाने को
मैं अपने प्यार का दीप लिए आफाक में हरसू घूम गया
तुम दूर कहीं जा पहुंचे थे आकाश पे जी बहलाने को
वो फूल-से लम्हे भारी हैं अब याद के नाजुक शानों पर
जो प्यार से तुमने सौंपे थे आगाज में इस दीवाने को
इक साथ फना हो जाने से इक जश्न तो बरपा होता है
यूं तन्हा जलना ठीक नहीं समझाए कोई परवाने को
ऐसे भी हम जल रहे हैं। ऐसे भी हम चिता पर रखे हैं। ऐसे भी हमारा जीवन लपटों के अतिरिक्त और क्या है?
जलने की कला सीखो! जलना है तो उसके साथ जलो, उसके लिए जलो।
इक साथ फना हो जाने से इक जश्न तो बरपा होता है
उसके साथ जलने से, उसके लिए जल जाने से एक उत्सव तो घटता है।
इक साथ फना हो जाने से इक जश्न तो बरपा होता है
यूं तन्हा जलना ठीक नहीं समझाए कोई परवाने को
ऐसे अकेले-अकेले जलने में कोई सार नहीं है। उसकी ज्योति में मिला दो अपनी ज्योति, उसके साथ जलो।
ऐ दीदए-गिरयां! क्या कहिए इस प्यार भरे अफसाने को
इक समअ जली बुझने के लिए इक फूल खिला मुरझाने को
ये सब फूल मुरझा ही जाएंगे। ये सब शमाएं बुझ ही जाएंगी। मौत तो आनी ही है। इस फूल को चढ़ा दो उसके चरणों पर। इस दीये को चढ़ा दो उसके सागर में। और तुम पाओगे कि चढ़ाते ही फूल अमर हो गया; फिर नहीं कुम्हलाएगा; फिर नहीं मुरझाएगा। और दीए का निर्वाण किया उसके सागर में कि बस दीया शाश्वत हो गया। फिर इसकी ज्योति बुझने वाली नहीं। बिन बाती बिन तेल! फिर वह जलेगी, जलती रहेगी।
माई हो हरि दरसन की आस।
कब देखौं मेरा प्रान-सनेही, नैन मरत दोऊ प्यास।।
पल छिन आध घटि नहीं बिसरौं, सुमिरत सांस उसास।
जब श्वास में प्रश्वास में, आती श्वास में जाती श्वास में उसका ही स्मरण समा जाता है।
जब पल छिन आध घरी नहिं बिसरौं! और जब एक क्षण को भी भूलना नहीं होता, जब भूलना होता ही नहीं, भूलना भी चाहो तो भूलना जब नहीं होता, भूलने की चेष्टा करो तो भी उसकी याद ही आती है... ।
दास्ताने-शबे-गम किस्साए-तूलानी है।
मुख्तसर ये है कि तूने मुझे बरबाद किया।।
हो न हो दिल की तेरे हुस्न से कुछ निसबत है
जब उठा दर्द तो क्यों मैंने तुझे याद किया।।
चौबीस घंटे याद भी उठेगी, दर्द भी उठेगा। और दर्द मीठा है। और दर्द बड़ा प्यारा है। उसके विरह में भी बड़ा सुख है। और संसार के मिलन में बड़ा दुख

है। संसार में सफल हो जाने में भी कुछ नहीं मिलता। और उसके साथ विफल हो जाने में भी सब कुछ मिल जाता है।
सखि, कितने दिन और?
नाचेंगे यों ही--बिना मेघ मोर
सखि, कितने दिन और?
धरती है गूंगी
बहरा आकाश
संशय के द्वारे
बैठा विश्वास
रातों के घर में सोएंगे भोर! सखि, कितने दिन और?
अजगर से पथ के
चंगुल में गांव,
सहमे से मृग के
छौने से पांव,
अधरों की चुप ने गीत लिए चोर! सखि, कितने दिन और?
बैठ गई सर के
गहरे में प्यास
कहती है तट से
लहरें उदास
हम तुम को बांधे किस्मत की डोर!
सखि, कितने दिन और?
नाचेंगे यों ही--बिना मेघ मोर!
सखि कितने दिन और?
प्रतिपल याद सघन होती चले, श्वास-श्वास में समाविष्ट होने लगे!
शेख फरीद के जीवन की प्रसिद्ध घटना हैः स्नान करने नदी जाते थे, एक जिज्ञासु ने राह में पूछ लिया--परमात्मा कैसे मिले? फरीद ने कहाः आ मेरे साथ, नदी पर स्नान करेंगे। जहां तक तो बनेगा स्नान करने में ही बता देंगे, नहीं तो फिर पीछे स्नान के बाद घाट पर बैठ कर समझा देंगे।
आदमी थोड़ा डरा। "स्नान करने में बता देंगे!"--यह आदमी पागल तो नहीं है! फिर सोचा, फकीरों की बातें तो ऐसी ही होती हैं रहस्यपूर्ण, होगा कुछ मतलब। चला गया। दोनों स्नान करने उतरे, जैसे ही उसने डुबकी मारी, जिज्ञासु ने, कि फरीद उसके सिर पर सवार हो गया। उसे दबाए पानी में, उसे निकलने न दे। फरीद तो मस्त फकीर था। मजबूत आदमी था। जिज्ञासु तो जैसा जिज्ञासु होता है वैसा ही होगा! दार्शनिक चित्त का रहा होगा। चिंता-फिकर में वैसे ही दुबला रहा होगा। लेकिन जब जान पर बन आए तो दुबले-पतले आदमी में भी बड़ी ताकत आ जाती है। जीवन-मरण का सवाल था। लगाई पूरी ताकत उसने। और अंततः फरीद को फेंक दिया दूर। जैसे ही बाहर निकला, तमतमाया चेहरा! आंखों में खून क्रोध का! फरीद ने कहाः कुछ समझे? उत्तर समझ में आया?
उसने कहाः कहां का उत्तर? यह उत्तर है? शक मुझे पहले ही हुआ था। तुम हत्यारे मालूम होते हो। लोग समझते हैं तुम पहुंचे हुए परमहंस हो।
फरीद ने कहाः ये बातें पीछे कर लेंगे, पहले यह बता--कहीं भूल न जाए तू--
जब मैं तुझे नीचे पानी में दबाया था तो कितने विचार तेरे भीतर थे?
उसने कहाः कितने विचार! यह कोई मौका है विचार करने का? एक ही विचार था
कि किसी तरह एक श्वास कैसे ले लें!
फरीद ने पूछाः यह विचार भी कितनी देर टिका?
उस आदमी ने कहाः यह भी ज्यादा देर नहीं टिका! फिर यह विचार नहीं रहा,
यह फिर रोएं-रोएं में समा गया! फिर तो सारा प्राण यही बन गया, कि एक श्वास कैसे मिले। और यह सवाल नहीं रहा कि जिसको बैठ कर हल किया जाता है; यह जीवन-मरण की बात थी। पूरी ताकत लग गई। और मैंने लगाई, ऐसा भी नहीं कह सकता--लग गई।

फरीद ने कहाः बस यही मेरा उत्तर है। जिस दिन परमात्मा को पाने की ऐसी आकांक्षा होती है, जैसे कोई पानी में डुबाए और एक श्वास पाने की आकांक्षा उठे... ।
और ख्याल तो करो जरा! मौत तुम्हें ऐसे ही तो पानी में दबा रही है। मौत तुम्हारी छाती पर सवार है। तुम मौत के पंजे में ही। उसका पंजा, उसकी गिरफ्त तुम्हारी गर्दन पर रोज गहरी होती जा रही है। मौत तुम्हें निचोड़ डालेगी। मौत रोज करीब आती जाती है। जब भी कोई अरथी निकलती है, तुम्हारी ही अरथी निकलती है। और जब भी मरघट पर कोई चिता जलती है, तुम्हारी ही चिता जलती है। आज तुम किसी को ले गए हो मरघट, कल कोई और तुम्हें ले जाएगा! जरा सोच लो। यह तुम्हें बोध साफ हो जाए कि जिंदगी मौत से घिरी है, यह जिंदगी क्षणभंगुर है और चारों तरफ मौत ने घेरा डाला है और हार इस जिंदगी की सुनिश्चित है--इसके पहले कि यह जिंदगी हारे, किसी और जिंदगी की जान लेना जरूरी है। यह जीवन इसके पहले कि मौत बुझाए, किसी शाश्वत जीवन की ज्योति को पा लेना जरूरी है।
पल छिन आध घरी नहिं बिसरौ सुमिरत सांस उसास।
घर बाहरि मोहि कल न परत है निस दिन रहत उदास।।
यहै सोच सोचत मोहि सजनी सूके रगत स मांस
सुंदर बिरहिन कैसे जीवै बिरहबिथा तन त्रास।।
मेरा सब सूख गया है। देह अस्थि-पंजर हो गई है। मांस-सज्जा सूख गई है।
सुंदर बिरहिन कैसे जीवै, बिरहबिथा तन त्रास।
शरीर के रोएं-रोएं में विरह की व्यथा छा गई है।
इस जीवन को कैसे जीएं? यहां जीवन तो है ही नहीं। जीवन तो उस प्यारे के साथ है। और मजा यह... ऐसी तेरी साहिबी! ... कि तू भीतर बैठा है। और मजा यह कि तू पास से भी पास है और हमने दूर से भी दूर समझ लिया है। और मजा यह है कि हम व्यर्थ ही चिंतित हो रहे हैं और परेशान हो रहे हैं।... करै हरै पालै सदा सुंदर समरथ राम। और तू सब कर रहा है।
हमारी हालत वैसी ही है जैसे एक सम्राट शिकार करके लौटता था राजमहल को, रास्ते में उसे एक बूढ़ा लकड़हारा मिल गया। दया आ गई सम्राट को। बूढ़ा बिल्कुल थका-मांदा चल रहा था लकड़ी का बोझ लिए। बिठा लिया अपने रथ में। बूढ़ा बहुत सकुचाया। बहुत सम्राट ने कहा कि बैठ जा, घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन स्वर्ण-रथ पर सवार होना... ! उसने कहा कि नहीं-नहीं महाराज, आप कैसी बात करते हैं? आखिर मजबूरी में आज्ञा देनी पड़ी सम्राट को कि चढ़ता है बुड्ढे कि नहीं, नहीं तो गरदन उतरवा दूंगा! तब कहीं वह चढ़ा। मगर चढ़ कर भी बैठा तो भी अपनी गठरी लकड़ियों की, अपने सिर पर रख कर बैठा रहा। रथ चला। सम्राट ने कहा कि यह गठरी नीचे क्यों नहीं रखता? उसने कहा कि नहीं मालिक, मुझे बिठाया वही क्या कम है! अब और गठरी का बोझ भी आपके रथ पर डालूं! नहीं- नहीं, यह मुझसे न हो सकेगा।
तुम बैठे हो, गठरी सिर पर रखे हो, बोझ तो रथ पर पड़ ही रहा है। जो हमें जिला रहा है, जो हमारी श्वास चला रहा है, सब बोझ उसी पर है। तुम नाहक बीच में बोझ लिए बैठे हो। यह गठरी उतार कर रख दो!
करै हरै पालै सदा, सुंदर समरथ राम।
सबही तैं न्यारौ रहैं, सब मैं जिनकौ धाम।।
वही कर रहा है। तुम चिंता न लो। तुम निश्चिंत हो जाओ!
भक्त ही जानता है निश्चिंता का रस।
आज की दुनिया में जो इतनी चिंता दिखाई पड़ती है, उसका कारण तुम देखते हो? उसका कारण सिर्फ एक हैः भक्ति खो गई है, श्रद्धा खो गई है, परमात्मा से नाता खो गया है। बैठे अब भी हम उस के ही रथ में हैं। लेकिन पहले भक्त बैठे थे, वे पोटली नीचे उतार कर रख देते थे। हम भी उसके रथ में बैठे हैं, मगर हम रथ को मानते ही नहीं; पोटली को नीचे उतार कर कैसे रखें? हम अपने सिर पर रखे हुए हैं। पूरब से भी ज्यादा पश्चिम में चिंता और घनी हो गई है, क्योंकि पश्चिम में परमात्मा से संबंध और भी टूट गया है। निश्चिंत तो वही हो सकता है जिसे स्पष्ट यह बोध है कि वह मालिक सब संभाल रहा है। मैं उसकी आज्ञा से जो करवाए किए जाऊं। उठाए तो उठूं, बिठाए तो बैठूं, चलाए तो चलूं। मुझे अपना

भार अपने ऊपर लेने की कोई भी जरूरत नहीं। जो चांद-तारों को चला लेता है, वह मेरी छोटी सी जिंदगी को नहीं चला पाएगा?
इस छोटी सी प्रतीति के सघन होते ही तुम्हारे जीवन में क्रांति घट जाती है, विश्राम आ जाता है, विराम आ जाता है। चिंता गई। चिंता की बदलियां छंट गईं, निश्चिंतता का सूरज निकल आया।
और जो निश्चिंत है वही भोग सकता है जीवन के रस को। चिंता तो खाए जाती है। चिंता चिता बन जाती है। नाच सकता है वही वृक्षों के साथ, तारों के नीचे, सूरज की किरणों में, पक्षियों के साथ। नाच सकता है वही, जिसके ऊपर कोई बोझ नहीं है, जो निर्भार है।
परमात्मा मनुष्य को निर्भार करने की प्रक्रिया है।
धर्म मनुष्य को निश्चिंत करने का विज्ञान है। जैसे-जैसे धर्म खोया वैसे-वैसे आदमी बीमार और रुग्ण हुआ! अब तो उसकी छाती में सिवाय रोगों के और कुछ भी नहीं बचा है। आदमी बिल्कुल खोखला हो गया है। जिम्मेवारी किसी और की नहीं। तुम जरा ऐसे भी तो जी कर देखो--
जब आकाश घिरा हो और भयंकर लगता हो
जब रह-रह कर कंप तुम्हारे मन में जगता हो
पांवों के नीचे धरती खिसक रही सी हो
आसपास की सारी दुनिया सिसक रही सी हो
ऐसे समय अकेले ही तुम गा कर तो देखो
तूफानों पर अपने स्वर को छाकर तो देखो कंठ खोल कर गाने से सब संभव होता है हाहाकार बदल कर बरबस कलरव होता है
जड़ में चेतन में स्वर-अंकुर फूट फैलते हैं
और कि उसके स्वर लद-लद कर टूट फैलते हैं
इतना गलत प्रभात कभी भी उगा नहीं कहीं
जिसकी संध्या में पंछी की स्वर-झंकार नहीं
ऐसे समय अकेले भी तुम गा कर तो देखो
दुनिया तो अधार्मिक है। अब तो तुम्हें गाना होगा तो अकेले गाना होगा। जब आकाश घिरा हो और भयंकर लगता हो
और ऐसा आकाश भयंकर कभी भी नहीं लगता था, जैसा आज लगता है।
जब रह-रह करि कंप तुम्हारे मन में जगता हो।
और आदमी कंपित हो रहा है। आदमी चिंतातुर है, आदमी संतापग्रस्त है।
जब रह-रह कर कंप तुम्हारे मन में जगता हो
जब आकाश घिरा हो और भयंकर लगता हो
पांवों के नीचे की धरती खिसक रही सी हो
जरा गौर तो करो, पैर के नीचे की धरती खिसक ही रही है, खिसक ही गई है। रेत पर तुमने महल बनाए थे, सब गिरने के करीब आ गए हैं।
आस-पास की सारी दुनिया सिसक रही सी हो
जरा गौर से सुनो, सबके हृदय घावों से भरे हैं! सब के चित्त-प्राण दुखी हैं। यहां कौन आज सुखी है? आज किसके कंठ में गीत है, किसके पैरों में नृत्य है? आज कौन है जो उत्सव मना रहा है? गए वे दिन जब उत्सव थे। गए वे दिन जब रास था, रंग था। गए वे दिन! अब आदमी जैसे आखिरी श्वासें गिन रहा है, अपनी मरणशय्या पर पड़ा है।
जब आकाश घिरा हो और भयंकर लगता हो
जब रह-रह कर कंप तुम्हारे मन में जगता हो
पांवों के नीचे की धरती खिसक रही सी हो
आस-पास की सारी दुनिया सिसक रही सी हो
ऐसे समय अकेले ही तुम गाकर तो देखो
तूफानों पर अपने स्वर को छाकर तो देखो
थोड़ा भक्ति का उमगाओ रस। थोड़ी याद करो प्रभु की। थोड़ा भीतर टटोलो। साक्षी का संस्पर्श हो जाए तो क्रांति हो जाती है, इसी पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आता है। इसी देह में बुद्धत्व का अवतरण होता है। इसी देह में! इसी माटी

की देह में, अमृत के दर्शन होते हैं? इसी मृत्यु से भरे जगत में शाश्वत का दीया जलता है।
इस स्वर को उठाओ। इस गीत को जगाओ। इसके बिना जगाए मत जाना--इसको बिना गाए जाना। अन्यथा प्रभु को क्या उत्तर दोगे? कैसे उसके सामने खड़े होओगे? इसके पहले कि मौत आए जीवन में श्रद्धा आ जानी चाहिए! इसके पहले कि मौत तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे, तुम्हारे प्राणों में परमात्मा की दस्तक सुनाई पड़ जानी चाहिए।
किसी भी कीमत पर हो, परमात्मा की तलाश जरूरी है, क्योंकि और सब तलाशें व्यर्थ हैं।
जीसस ने ठीक ही कहा हैः तुम सारी दुनिया के साम्राज्य के मालिक हो जाओ, लेकिन अगर अपनी आत्मा खो दी तो तुमने पाया क्या? और तुमने अगर अपनी आत्मा पा ली और सब भी खो दिया, तो कुछ भी नहीं खोया है।

आज इतना ही।

ज्योति से ज्योति जले
सोलहवां प्रवचन

आत्मा ही परमात्मा है

पहला प्रश्नः ओशो!
जीवन खत्म हुआ तो जीने का ढंग आया।
जब शमा बुझ गई तो महफिल पर रंग आया।।
बुढ़ापे में तन अस्वस्थ परंतु मन स्वस्थ। स्वर्ग, मोक्ष, निर्वाण की इच्छा से दूर... । परंतु इस पृथ्वी पर श्री रजनीश आश्रम, स्वर्ग की तस्वीर, यह उत्सव-लीला देखने की प्रबल इच्छा क्यों और किसलिए?

कमल महाराज! जीवन न तो शुरू होता है और न समाप्त। यह शमा न तो कभी जली
है न कभी बुझेगी। बिन बाती बिन तेल। अनेक-अनेक रूपों में जीवन चलता रहा है, अनेक-अनेक रूपों में चलता रहेगा। ज्योति जलती रही है... दीयों के सहारे बदले हैं--कभी इस देह में कभी उस देह में, कभी इस घर में कभी उस घर में। ऐसा तो भूल कर भी मत सोचना कि जीवन खत्म हुआ तो जीने का ढंग आया।
जो जीवन खत्म हो जाता है, वह तो जीवन ही नहीं है; वह तो जीवन की भ्रांति है। जो खत्म नहीं होता वही जीवन है। और उसी की झलक आनी शुरू हो रही है। इसलिए लग रहा है कि जीने का ढंग आया। झूठा जीवन समाप्त हुआ, सच्चा जीवन शुरू हुआ। झूठे जीवन का बचपन होता है, जवानी होती है, बुढ़ापा होता है; जन्म होता है और मृत्यु होती है। सपने शुरू होते हैं और समाप्त होते हैं। असली जीवन का न तो जन्म न मृत्यु, न बचपन न जवानी, न बुढ़ापा। असली जीवन समयातीत है। उसकी कोई उम्र नहीं होती।
तो एक तरह से तुम ठीक ही कह रहे हो कि जीवन खत्म हुआ तो जीने का ढंग आया। झूठा जीवन खत्म हुआ। सच्चे जीवन की तरफ कदम उठे। आंखों में सच्चे जीवन की थोड़ी सी लाली आई। "जब शमा बुझ गई तो महफिल पर रंग आया।" आता ही महफिल पर रंग तब है! झूठी शमा, जिसे हम अहंकार कहते हैं, उसकी वजह से ही दुर्गंध है। उसकी वजह से ही तो सब बेरंग है, बदमजा है। असली ज्योति जले... जल ही रही है--हमें पता चले, पहचान हो, प्रत्यभिज्ञा हो, हमें उसका स्मरण आए।
रवींद्रनाथ एक बजरे में थे। पूरे चांद की रात... और एक मोमबत्ती जला कर अपने बजरे की, नाव की छोटी सी कोठरी में, बैठे किताब पढ़ते रहे। किताब थी सौंदर्यशास्त्र पर। आधी रात हो गई, तब मोमबत्ती बुझाई। मोमबत्ती बुझाते ही चौंक गए, अवाक हो गए। एक क्षण को तो समझ में ही न आया कि क्या जादू हो गया है! जैसे ही मोमबत्ती बुझी, द्वार-दरवाजे से, खिड़की से, रंध्र-रंध्र से चांद भीतर आ गया। लिखा है अपनी डायरी मेंः एक छोटी सी मोमबत्ती के पीले प्रकाश ने, एक टिमटिमाती मोमबत्ती ने चांद की अमृत-ज्योति को बाहर रोक रखा था; इधर मोमबत्ती बुझी, उधर चांद भीतर आया। मैं सौंदर्यशास्त्र पढ़ रहा था और सौंदर्य बाहर बरस रहा था। मैं किताब में उलझा था और सत्य द्वार पर दस्तक दे रहा था।
बाहर निकल आए। नाचने लगे चांद के नीचे।
ऐसे ही टिमटिमाता यह अहंकार का दीया है। इसकी रोशनी के कारण असली रोशनी बाहर रुकी पड़ी है। द्वार पर दस्तक देती है, मगर इसके शोरगुल के कारण सुनाई नहीं पड़ता।
शुभ घड़ी आई, कमल महाराज! अब सुनाई पड़ने लगा। धीमी-धीमी महक आने लगी। और बुढ़ापे में भी आ जाए तो भी जल्दी है, क्योंकि जन्मों-जन्मों में भी आ जाए तो भी जल्दी है।
और ख्याल रहे, बचपन तो नादान होता है, नासमझी से भरा होता है। बच्चे निर्दोष होते हैं, मगर उनकी निर्दोषता अज्ञान का ही दूसरा नाम है। वे भटकेंगे। उनकी भटकन सुनिश्चित है। अदम को स्वर्ग के बगीचे से निकाला जाएगा। निकलना ही पड़ेगा। हर बच्चे को संसार में उतरना ही पड़ेगा। जाना ही पड़ेगा अंधेरे रास्तों पर। होना ही होगा चालाक। सीखने ही होंगे रंग-ढंग दुनिया के। विकृति आएगी ही, बचाव का कोई उपाय नहीं है। जीवन का यह सहज क्रम

है। बच्चे न भटकें तो कच्चे रह जाएंगी। बच्चे भटकेंगे तो ही पकेंगे, तो ही जीवन की धूप उन्हें पकाएगी।
तो बचपन तो नादान है, क्षम्य है। जवानी मूर्च्छित है, बेहोश है। बड़ा नशा भरा होता है। प्रकृति जवानी का उपयोग करती है जवानी को बेहोश करके। जवान सोचता है मैं कर रहा हूं। भ्रांति में है। प्रकृति करवा रही है। एक युवक एक युवती के प्रेम में पड़ गया, या युवती युवक के प्रेम में पड़ गई; वे सोचते हैं, हम प्रेम कर रहे हैं। और प्रकृति हंसती है! प्रकृति का आयोजन है; तुम उसके फांस में फंसे। प्रकृति को न तो प्रयोजन है तुमसे, न तुम्हारी प्रेयसी से; प्रकृति को प्रयोजन है इतना कि जीवन इस जगत से उठ न जाए। संतति से प्रयोजन है प्रकृति को। बच्चा पैदा होना चाहिए। इसके पहले कि तुम उजड़ जाओ, जीवन की धारा नहीं सूखनी चाहिए।
प्रकृति की एक अंधी प्रक्रिया है कि बच्चे पैदा होने चाहिए। लेकिन .जरा सोचो, अगर प्रेम का मोह न जगे, प्रेम की मूर्च्छा न आए, प्रेम का जादू आंखों को न भरे, तो कौन बच्चों के उपद्रव में पड़ेगा? कौन स्त्री नौ महीने तक बच्चे को गर्भ में ढोएगी, किसलिए? क्यों कष्ट उठाएगी? क्यों प्रसव की पीड़ा झेलेगी? और कोई आदमी क्यों जिंदगी भर धक्के खाएगा दफ्तरों में, गिट्टियां फोड़ेगा सड़कों पर, बच्चों को बड़ा करेगा? किस कारण? क्या लेना- देना है? लेकिन प्रकृति ने एक ऐसी गहरी मूर्च्छा दी है, एक ऐसा सम्मोहन दिया है कि उस मूर्च्छा में आदमी सब कर जाता है।
प्रकृति को पुरुष से इतना ही प्रयोजन है कि तुम्हारे भीतर जो जीवन-ऊर्जा के कोष्ठ हैं वे नष्ट न हो जाएं। इसके पहले कि तुम नष्ट हो जाओ वे जीवन-ऊर्जा के कोष्ठ किसी गर्भ में जाकर अपनी जड़ें जमा लें। बस इतना प्रयोजन है। फिर तुम्हें मरना हो तो मर जाना और पार्लियामेंट के मेंबर होना हो तो पार्लियामेंट के मेंबर हो जाना। जो तुम्हें करना हो करना। प्रकृति की कुल आकांक्षा इतनी है, इससे भिन्न कोई आकांक्षा नहीं।
इसलिए बहुत से कीड़े-मकोड़ों में तो यह घटना घटती है कि पुरुष संभोग करते-करते ही मर जाता है। तुम जान कर चकित होओगे, कुछ मकड़ियां तो संभोग करते-करते ही संभोग करने वाले अपने प्रेमी को खा जाती हैं। गर्भाधान हो गया, बस बात खत्म हो गई। और मकड़ा इतना मोहाच्छन्न होता है कि उसे समझ में ही नहीं आता। वह इतना मदमस्त होता है। संभोग कर रहा है यह और मकड़ी उसे खाना शुरू कर देती है। काम उसका खत्म हो गया। लेकिन जब तक गर्भाधान न हो जाए, तब तक नहीं खाती; जैसे ही गर्भाधान हो गया, वैसे ही खा जाती है। बहुत-से मकोड़े संभोग एक ही बार करते हैं और मर जाते हैं। काम पूरा हो गया। उनसे प्रकृति ने अपना काम ले लिया।
जवानी मूर्च्छा है। प्रकृति के हाथों में आदमी का गला है। बहुत कठिन
है कि कोई जवानी में होश को उपलब्ध हो जाए। हो जाता है कभी-कभी कोई, पर अति कठिन है।
वृद्धावस्था बोध के लिए सर्वाधिक सुगम है। बचपन की नासमझी भी गई, जिंदगी की चालाकियों ने पका भी दिया। धोखे-धड़े भी करके देख लिए और कुछ पाया नहीं। धोखा-धड़ी की व्यर्थता भी जान ली, पहचान ली। अब उसमें कुछ रस न रहा। अब फिर एक नया निर्दोष भाव आना शुरू हुआ। बच्चे का निर्दोष भाव तो स्वभाव-जन्य था, लेकिन अब अनुभव-जन्य निर्दोष भाव आया। जवानी की दौड़धूप तो मूर्च्छित थी। अब पैरों में थोड़ा होश आया।
इसलिए पूरब के देशों में हमने वृद्ध को सम्मान दिया है। और पश्चिम की बड़ी भूल है, वृद्ध का सम्मान वहां खोता जा रहा है। जिस देश में और जिस समाज में और जिस संस्कृति में वृद्ध का सम्मान खो जाता है, समझ लेना उस संस्कृति और समाज में ईश्वर की जगह समाप्त हो गई। वृद्ध का सम्मान तभी समाप्त होता है जब ईश्वर से हमारे नाते टूट जाते हैं। क्योंकि वृद्धावस्था ईश्वर के अनुभव के लिए सुगमतम है। जवानी की मूर्च्छा भी टूट गई; देख लिए राग-रंग, उनकी व्यर्थता, उनके उपद्रव... । दूर के ढोल सुहावने थे; पास जाकर ढोल ही हैं, यह भी जान लिया। बचपन की नासमझी भी गई। वृद्धावस्था में इस बात की संभावना है कि अब आदमी प्रकृति के पार उठ सके। प्रकृति के पार उठने का अर्थ ही शरीर के पार उठना होता है। शरीर यानी

प्रकृति। जवान शरीर के पार नहीं उठ पाता। कठिन है। बहुत कठिन है। अत्यंत संघर्ष की बात है। इसलिए जिन धर्मों ने युवा को मुक्ति का संदेश दिया, उन धर्मों को बड़े संघर्ष से गुजरना पड़ा। उनकी प्रक्रिया संकल्प की हो गई, क्योंकि लड़ना पड़ेगा। जैसे जैनों ने युवा को संन्यस्त होना चाहिए, इस बात की घोषणा की। उसके पीछे अपने कारण हैं। कारण यही है कि युवा के पास बड़ी ऊर्जा है। अगर इतनी सारी ऊर्जा को परमात्मा की तरफ लगा दिया जाए तो गति तीव्रता से होगी, यह बात सच है। लेकिन यह ऊर्जा ऐसी है कि इसको लगाना बहुत मुश्किल है। यह ऊर्जा तो प्रकृति की तरफ लगी हुई है। यह ऊर्जा तो मूर्च्छित है। जवान अभी इतना अनुभवी नहीं है कि जाग जाए। इसलिए जैनों की सारी साधना-प्रक्रिया दमन की है, रिप्रेशन की है।
हिंदुओं की साधना-प्रक्रिया ज्यादा सहज है। हिंदुओं ने चार विभाजन
कर दिए हैं पच्चीस वर्ष के, अगर हम सौ वर्ष उम्र मान लें आदमी की। काल्पनिक उम्र सौ वर्ष मान लें तो पच्चीस वर्ष विद्या-अध्ययन, गुरुकुल में आवास। सारी ऊर्जा जीवन की तैयारी में लगा देनी है। ब्रह्मचर्य। और तुम यह जान कर हैरान होओगे कि विद्यार्थी को ब्रह्मचर्य की शिक्षा इसीलिए देते थे ताकि आने वाले गृहस्थ जीवन में वह भोग की गहरी से गहरी अनुभूति में उतर सके। यह तुम जान कर हैरान होओगे कि ब्रह्मचर्य की शिक्षा ब्रह्मचर्य के लिए नहीं थी विद्यार्थी के लिए। उसका लक्ष्य ब्रह्मचर्य नहीं था; उसका लक्ष्य भोग की चरम पराकाष्ठा पाना था। क्योंकि जिसके पास ऊर्जा होगी, वही भोग की पराकाष्ठा पा सकेगा। और जो भोग की पराकाष्ठा पाता है, वही भोग के पार जा सकता है। नहीं तो भोग अटका रह जाता है। जो भोगा ही नहीं है उसको त्यागोगे कैसे? तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। जिन्होंने भोगा है, वे ही त्याग सके हैं। लेकिन भोगोगे कैसे, अगर ऊर्जा ही पास न होगी?
इसलिए जो पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का आयोजन था, वह कोई ब्रह्मचर्य
की सेवा में नहीं था, वह भोग की सेवा में था। यह जानकर तुम चकित होओगे। तुम्हारे पंडित-पुजारी कुछ उलटा ही समझाते फिरते हैं। उसका लक्ष्य इतना ही था कि पच्चीस वर्ष तक युवा इतनी ऊर्जा इकट्ठी कर ले, कि जब वह भोग में उतरे, तो भोग की चरम अनुभूति का अनुभव हो जाए। और जिस चीज की भी चरम अनुभूति हो जाती है उसी से छुटकारा हो जाता है, क्योंकि फिर उसमें कुछ सार नहीं बचता। अगर अनुभूति आधी-आधी हो, तो सार बचता है--अभी कुछ और होने को है, अभी कुछ और होने को है; थोड़ा और हो जाए, थोड़ा और हो जाए! कौन जाने थोड़ा और शेष हो! मन अटका रहता है, उलझा रहता है। अगर अनुभूति पूरी हो जाए, अगर पच्चीस वर्ष तक कोई ठीक से ब्रह्मचर्य से रहा है तो संभोग का एक अनुभव उसे कामवासना से मुक्त करा सकता है, इस बात की संभावना है। सिर्फ एक अनुभव! देख लिया, जान लिया।
फिर दूसरी अवस्था भी पच्चीस वर्ष की--गृहस्थ की, भोग की। यह बड़ा उल्टा लगेगा कि पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य, फिर भोग! मगर इसके पीछे गहरा विज्ञान है। ऐसा ही होना चाहिए। पहले इकट्ठा करो, तभी तो लुटा सकोगे। हो, तो दे सकोगे। पच्चीस वर्ष गहन भोग--बिना किसी व्यवधान के, बिना किसी रोक के, बिना किसी दमन के। हिंदुओं ने जो व्यवस्था खोजी थी, वह सर्वाधिक वैज्ञानिक व्यवस्था है। और मनुष्य की प्रकृति को सब तरफ से सोच-समझ कर निर्णीत की गई है, एकांगी नहीं है, सर्वांगीण है, समग्र है। पच्चीस वर्ष तक खूब भोगा--धन को, पद को, लोभ को, मोह को, काम को, सब को भोग लो। ठीक से भोग लो ताकि पच्चीस वर्ष विदा होते-होते, जब तुम पचास वर्ष के होने लगो, और तुम्हारे बेटे गुरुकुल से वापिस आने के करीब होने लगें, तब तुम वानप्रस्थ हो जाओ। "वानप्रस्थ" शब्द बड़ा प्यारा है। इसका अर्थ हैः तुम्हारा मुंह जंगल
की तरफ हो जाए। अभी जंगल गए नहीं हो, लेकिन जाने की तैयारी शुरू हो जाए, आयोजन शुरू हो जाए। प्रस्थान की पूर्व-भूमिका बननी शुरू हो जाए-- वानप्रस्थ। बाजार में हो भला अब, लेकिन आंखें जंगल पर लग जाएं। अब पीठ बाजार की तरफ हो जाए। शायद थोड़ी देर और रुकना पड़े, क्योंकि बेटे स्कूल से लौटते होंगे, गुरुकुल से। उनके विवाह करने होंगे, उनको काम-धाम सिखाना होगा, उनको संसार की दुनिया में लगाना होगा। उनके भोग के दिन आ रहे हैं। जब

तुम पचहत्तर वर्ष के होने लगो तो वानप्रस्थ का समय पूरा हुआ। वानप्रस्थ का अर्थ हैः रहना बाजार में, मगर बाजार के होकर मत रहना अब।
और पचहत्तर वर्ष के बाद संन्यास। वह चौथी और अंतिम अवस्था है। सब भोग लिया, सब देख लिया, जीवन में कुछ भी ऐसा नहीं है जो न जाना हो। जानने में मुक्ति है। अब निश्चिंत भाव से, निश्चिंतमना तुम जा सकते हो जंगल की ओर; या तुम जहां जाओ वहीं जंगल है; तुम जहां रहो वहीं जंगल है।
तो कमल महाराज! यही घड़ी है वृद्धावस्था की, जब संन्यास का फूल बड़ी सुगमता से खिलता है। तो ऐसा मत सोचो कि जीवन तो गया, और अब जीने का ढंग आया। ऐसा भी मत सोचा कि शमा बुझ गई, तो महफिल पर रंग आया। अभी कुछ बुझा नहीं, अभी कुछ समाप्त नहीं हुआ। एक श्वास भी शेष रह गई हो तो उस एक श्वास में भी व्यक्ति मोक्ष का परम अनुभव पा सकता है। क्योंकि यह घटना क्षण में घटती है। यह घटना कोई क्रमिक घटना नहीं है कि धीरे-धीरे घटती है, कि एक-एक सीढ़ी घटती है--एक क्षण में घट जाती है। जब त्वरा पूरी होती है, जब प्रार्थना पूरी होती है और प्यास सघन होती है--तो एक क्षण में वर्षा हो जाती है, बाढ़ आ जाती है।
अभी तुम्हारी शक्ति शेष है
अभी तुम्हारी सांस शेष है
अभी तुम्हारा कार्य शेष है
मत अलसाओ, मत चुप बैठो,
तुम्हें पुकार रहा है कोई
अभी रक्त रग-रग में चलता
अभी ज्ञान का परिचय मिलता
अभी न मरण प्रिया निर्बलता
मत अलसाओ, मत चुप बैठो
तुम्हें पुकार रहा है कोई।
इसलिए ही तो तुम्हें पुकारा है। और मैंने सब तरह के लोगों को पुकारा है। सब दिशाओं से यात्रा करनी है। छोटे बच्चों को भी संन्यास दिया है, लेकिन उनके संन्यास का अर्थ और होगा। उनके संन्यास का वही अर्थ होगा जो पहले चरण का होता है--ब्रह्मचर्य का। मैंने युवकों को भी संन्यास दिया है। उनके संन्यास का अर्थ होगा वही, जो दूसरे चरण का होता है गृहस्थाश्रम का। मैं प्रौढ़ों को भी संन्यास दिया हूं, उनके संन्यास का वही अर्थ होगा जो वानप्रस्थ का होता है। मैं वृद्धों को भी संन्यास दिया हूं। उनके संन्यास का वही अर्थ होगा जो संन्यास का होता है।
इसलिए तुम्हें यहां बहुत तरह के संन्यासी दिखाई पड़ेंगे। और इससे लोग अड़चन में भी पड़ जाते हैं, उलझन में भी पड़ जाते हैं। क्योंकि तुम देखोगे कि कोई युवा संन्यासी किसी युवती का हाथ, हाथ में लिए जा रहा है। तुम कहोगेः यह कैसा संन्यास है? इसकी उम्र अभी इसी संन्यास के लिए तैयार है। इससे जबरदस्ती भिन्न हो जाएगी। इससे भिन्न इस पर थोपना इसकी प्रकृति के साथ बलात्कार होगा।
तो मेरे पास तुम्हें चारों तरह के संन्यासी मिलेंगे। छोटा सिद्धार्थ है। फिर सैकड़ों युवा हैं। फिर सैकड़ों प्रौढ़ व्यक्ति हैं। फिर कमल महाराज, तुम जैसे वृद्ध लोग हैं। लेकिन सबके संन्यास का रंग अलग-अलग होगा। सबके संन्यास का रंग वही होगा जो उनके चित्त की दशा होगी।
ढल गया दिन
धूप शीतल हो गई
धूप शीतल हो गई
कुछ रंग बदला
रूप बदला
भाव में
चल चेतना सी खो गई
ढल गया दिन धूप शीतल हो गई भूमि को मैं देखता हूं
ध्यान से सम्मान से

कृषि-कला के फूल-फल से
हरित स्वर्ण अनूप वर्ण-तरंग वाली हो गई ढल गया दिन धूप शीतल हो गई
आज निर्मल नील नभ के
चिर सुषम संपर्क से
पृथ्वी सुनहली स्वर्ण-चंपक
सुघर चर सस्वर सजीले
अचर नीरव से रंगीले
नयन को देती निमंत्रण
धन्य कण-कण को बना कर
दिव्य सुंदरता धरा पर आ गई पुतलियों में ज्योति स्वर्गिक हो गई ढल गया दिन धूप शीतल हो गई
रूप में स्वर में
सुवर्ण तरंग आई
प्राप्त गति में प्रीति
जीवन में मधुर आसक्ति आई
ढल गया दिन धूप शीतल हो गई।
दिन ढल रहा है, कमल महाराज! मगर धूप शीतल हो रही है। जीवन का ताप कम हो रहा है, संध्या करीब आ रही है। और संध्या ही तो प्रार्थना का क्षण है। इसलिए तो हिंदुओं में संध्या का अर्थ ही प्रार्थना हो गया। संध्या ही प्रार्थना का क्षण है।
धन्य कण-कण को बनाकर
दिव्य सुंदरता धरा पर आ गई
पुतलियों में ज्योति स्वर्गिक हो गई
ढल गया दिन धूप शीतल हो गई
शरीर अस्वस्थ हो, शरीर रुग्ण हो, शरीर वृद्ध हो, चिंता मत लेना। यह धूप
के शीतल होने के ढंग हैं।
पूछा तुमने, कि न तो स्वर्ग-मोक्ष की कोई इच्छा है अब... । यही तो मैं चाहता हूं, यही तो मेरी देशना है। स्वर्ग और मोक्ष की कोई इच्छा न रह जाए। उन्हें ही मिलता है स्वर्ग, जिन्हें स्वर्ग की कोई इच्छा नहीं रह जाती। वे ही अधिकारी हैं। मोक्ष के, जिनकी मोक्ष की चाहत नहीं। क्योंकि जब तक चाह है, तब तक संसार है। चाह का दूसरा नाम संसार है। तुमने क्या चाहा, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। तुमने धन चाहा, तो संसार। तुमने पद चाहा, तो संसार। तुमने मोक्ष चाहा, तो संसार। तुमने समाधि चाही, निर्वाण चाहा, तो संसार। तुमने चाहा कि संसार। चाह में संसार का बीज है। चाह, संसार पर्यायवाची हैं। इसलिए मोक्ष तो चाहा ही नहीं जा सकता। जब सारी चाह व्यर्थ होकर गिर जाती है, जैसे पतझड़ में पत्ते गिर जाएं वृक्ष से, ऐसी जब तुम्हारी जीवन-भर की अनुभूति की परिपक्वता में, प्रौढ़ता में सारी चाहों के पत्ते गिर जाते हैं, उस घड़ी में जब कोई चित्त में चाह नहीं होती है, समाधि घटती है। उस घड़ी में तुम मुक्त होते हो।
मुक्त किससे होना है? चाह से मुक्त होना है। इसलिए जो लोग मोक्ष की चाह से भरे हैं उन्हें पता नहीं, वे फिर से नये नाम से संसार में लौटने का उपाय कर रहे हैं। उन्होंने अपनी चाह का विषय तो बदल लिया है, लेकिन चाह नहीं बदली है। विषय के बदलने से क्या होगा? तुम्हारे भीतर का अंतस्तल बदलना चाहिए। पहले धन चाहते थे, अब ध्यान चाहते हैं; मगर चाह वही की वही है, चाहने वाला वैसा का वैसा है।
यही तो मेरी देशना है कि न स्वर्ग की इच्छा हो, न मोक्ष की इच्छा हो।
और इसीलिए तुम्हारा मन यहां लगा रहता है कि यहां आ जाओ, ताकि इस इच्छा- मुक्ति में और पगो, और डुबकी लो।
यह कोई मंदिर नहीं है। यह कोई मुर्दा तीर्थ नहीं है। अभी यहां जीवंत कुछ घट रहा है। अभी मूर्ति पत्थर की नहीं है यहां। अभी किरण उतर रही है ताजी, अभी सुबह हो रही है। इसलिए तुम्हारा मन लगा रहता है। वृद्ध हो गए हो,

आने में कठिनाई होती है, यात्रा... दूर रोहतक से यहां तक आना, अड़चन... । लेकिन यहां कुछ घट रहा है, जिसके तुम संग-साथ होना चाहते हो। जब यह घट जाएगा तुम्हारे भीतर पूरी तरह, तो फिर तुम्हें यहां आने की जरूरत नहीं होगी, मैं ही वहां आ जाऊंगा। जब तक यह पूरी तरह नहीं घटा है तब तक यहां आना पड़ेगा। जैसे ही यह पूरा घट जाएगा, फिर रोहतक रहो कि कहीं भी रहो, कुछ भेद नहीं पड़ता फिर वहीं यह रास चलेगा। फिर वहीं यह लीला चलेगी। फिर तुम्हारी भीतर की आंख के लिए समय और स्थान की दूरियां समाप्त हो जाएंगी।
लेकिन जो हो रहा है, शुभ हो रहा है। ठीक दिशा में कदम पड़ रहे हैं। बसंत
के पहले फूल आने को ही हैं।
नीम में नव फूल आए सुरभिमय वातास
मधुर मंजरियां तरंगित
कर रहीं मधु मौन इंगित
भर रहा ऋतुराज में प्रतिश्वास में विश्वास
सुरभिमय वातास
नवल किसलय नवल गतिलय
नवल वय का नवल परिचय
हरित-रक्तिम रंग सुंदर लहर लेता हास
सुरभिमय वातास
गंध-गुंजित पवन प्रतिपल
लहर चंचल हृदय चंचल
बस गई मन में नयन में रूप की प्रिय प्यास
सुरभिमय वातास
हवाएं जल्दी ही बसंत की सुरभि से भर जाएंगी। कलियां आ गई हैं, जल्दी
ही पंखुड़ियां खुलेंगी। लेकिन सजगता न खोना, होश न खोना। शरीर जाए कि रहे, होश न जाए। यह जो भीतर ज्योति उठनी शुरू हुई है, अभी बहुत मंदिम है। इसमें सारी ऊर्जा डाल दो, ताकि यह आग की बड़ी लपट हो जाए। तुम्हारा दीया जल कर ही जाना चाहिए। यह देह ऐसे ही नहीं छूटनी है। मेरी तरफ से कोशिश पूरी रहेगी, तुम भर असहयोग न करना। तो आखिरी श्वास तक भी... मगर मंजिल आ सकती है।
अभी तुम्हारी शक्ति शेष है
अभी तुम्हारी सांस शेष है
अभी तुम्हारा कार्य शेष है
मत अलसाओ, मत चुप बैठो,
तुम्हें पुकार रहा है कोई
अभी रक्त रग-रग में चलता
अभी ज्ञान का परिचय मिलता
अभी न मरणप्रिया निर्बलता
मत अलसाओ, मत चुप बैठो,
तुम्हें पुकार रहा है कोई

दूसरा प्रश्नः
तू मेरी जन्म-क्षण की तलाश है गहनतम में मृत्यु-क्षण की प्यास है उसी का परिणाम है कि तेरे पास हूं एक ओर, चारों ओर तेरी सुवास हूं
फिर भी भीतर से एक पीड़ा प्रतिपल
कह रही है यह भी कुछ खास नहीं
पूरा जीवन एक फांस है
पुकार उठती है--
कब, कैसे फांस आस बनेगी?

रामस्वरूप! मन बहुत चालबाज है। परमात्मा भी सामने होगा तो भी मन कहेगाः ठीक है, मगर खास क्या?

मन सदा तुम्हें डोलवाता है, चलवाता है--खास के पीछे! क्यों, साधारण होने में बुरा क्या है? यह असाधारण की आकांक्षा क्यों है? असाधारण की आकांक्षा के पीछे अहंकार है। अहंकार असाधारण से ही तृप्त हो सकता है, साधारण से नहीं। और। मैं चाहता हूं कि तुम साधारण हो जाओ। और तुम साधारण जीवन में परितृप्त हो जाओ, परितुष्ट हो जाओ।
एक झेन फकीर से किसी ने पूछा है कि जब तुम्हारा बोध नहीं जगा था, जब तुम बुद्ध नहीं हुए थे, तब तुम्हारी जीवनचर्या क्या थी? उसने कहाः गुरु के आश्रम में लकड़ियां काट कर जंगल से लाता था, कुएं से पानी भरता था। और उस पूछने वाले ने पूछाः अब जब कि तुम बुद्धत्व को उपलब्ध हो गए हो, अब तुम्हारी चर्या क्या है? उसने कहाः जंगल से लकड़ी काटता हूं और कुएं से पानी भरता हूं। पूछने वाला चकित हुआ। तुम होते पूछने वाले रामस्वरूप, तो तुम भी चकित हुए होते। तुम कहतेः इसमें खास क्या है? यह तो वही की वही बात हुई! पहले भी लकड़ी काटते थे, कुएं से पानी भरते थे; अब भी लकड़ी काटते हैं, कुएं से पानी भरते हैं। खास क्या है?
खास यही है कि पहले कुछ चाह थी, अब कुछ चाह नहीं। खास यही है कि पहले कुछ तलाश थी, अब कुछ तलाश नहीं। खास यही है कि अब साधारण होने में मजा है। इस जगत में सबसे असाधारण बात है--साधारण होने का मजा।
झेन फकीर कहते हैंः जब भूख लगे तब भोजन कर लेना और जब नींद आ जाए तो सो जाना। बस इसके अतिरिक्त और कोई साधना नहीं है।
कबीर ने कहा हैः साधो! सहज समाधि भली! सहज समाधि का अर्थ समझे? सहज समाधि का अर्थ होता हैः साधारण में राजी। लेकिन मन कहता हैः असाधारण कुछ करके दिखलाओ। मोरमुकुट बंधे सिर पर, झंडा फहरे, भीड़ गुण-गान करे, यश के गुंजार हों। कुछ खास करके दिखलाओ! क्या, भूख लगी तो भोजन कर लिया? और क्या, नींद आई तो सो गए?
तो मन तुम्हें दौड़ाए रखेगा। और ऐसी कोई घड़ी नहीं है जब मन तुम्हें तृप्त होने देगा। तुम जो भी खास करोगे, करके चुक न पाओगे कि मन कहेगा कि ठीक है, अब खास क्या है? एक बड़ा मकान देखा, लगा कि यह मकान अपना हो। बहुत दिन वर्षों की मेहनत के बाद एक दिन तुम्हारा हो जाएगा, हो सकता है। लेकिन दो-चार दिन के बाद मन कहेगाः खास क्या है? महल और भी बड़े हैं। एक सुंदर स्त्री दिखी, मन कहेगाः स्त्री हो तो ऐसी हो, पत्नी हो तो ऐसी हो, इसके पीछे लग जाओ। लेकिन कितने दिन की मेहनत के बाद पाओगे, और जल्दी ही मन कहेगाः बस ठीक है, और भी सुंदर स्त्रियां पड़ी हैं, खास क्या है?
मन की शाश्वत तरकीबों में एक तरकीब यही है कि वह हर चीज की निंदा कर देता है, यह कहकर कि यह तो साधारण है। इस धोखेबाजी से सावधान हो जाओ।
मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि साधारण में ही परमात्मा छिपा है। तुम्हारे छोटे-छोटे कृत्य में उसका ही आवास है। जगत में छोटा कुछ भी नहीं है, क्योंकि जगत परमात्मा से आपूर है। जगत में छोटा कुछ कैसे हो सकता है, क्योंकि उसी विराट की लीला है। इसीलिए तो कहाः कण-कण में वही है। पल-पल में वही है। क्षुद्र से क्षुद्र में भी वही है। अणु से लेकर विराट तक में उसी का विस्तार है। जिसको भूख लगती है तुम्हारे भीतर, वह भी वही है; और जिसे प्यास लगती है वह भी वही है। प्यास को साधारण मत कह देना--परमात्मा ही प्यासा है, परमात्मा ही भूखा है।
ऐसे जियो कि तुम्हारे सारे साधारण कृत्यों में असाधारण आभा प्रकट हो। कैसे होगी असाधारण आभा प्रकट तुम्हारे साधारण कृत्यों में? साधारण को साधारण मत समझो। अपने समस्त जीवन को उसी को अर्पित कर दो। और मन से सावधान रहना, मन तो सदा कहेगाः खास क्या है?
यहां मेरे पास तो रोज इस बात को कहने वाले लोग आ जाते हैं। एक राजनेता मेरे पास आते थे। कहा उन्होंने कि नींद नहीं आती। यह भी कहा कि मैं कोई ईश्वर की तलाश में आपके पास नहीं आया। मेरी ईश्वर में कोई रुचि नहीं है। न ही मुझे ध्यान सीखना है। इसमें मुझे कोई सार नहीं आता। मैं तो सच्ची बात आपसे कह दूं कि मुझे नींद नहीं आती, मैं थक गया हूं। कुछ ऐसा उपाय बता दो कि मुझे नींद आ जाए। मुझे और कुछ चाहिए ही नहीं; बस नींद मिल गई तो सब मिल गया।

नींद मिल गई तो मुझे जीवन मिल गया। नींद मिल गई तो मुझे परमात्मा मिल गया। ये उनके वचन थे।
मैंने कहाः ठीक, यह तो बड़ी कठिन बात नहीं है। यहां तो कठिन बात हम कर लेते हैं कि जिनको सदा की नींद लगी है, उनको जगा लेते हैं। तो तुम तो सोने की बात कर रहे हो, ठीक है, हो जाएगा, ऐसी कुछ अड़चन नहीं है, यह तो सरल सी बात है। असली कठिन बात तो दूसरी है कि सोए को कैसे जगाओ, सपने में खोए को कैसे जगाओ? तुम तो सोना चाहते हो, यह हो जाएगा।
मैंने ध्यान की एक प्रक्रिया उन्हें कही कि इसे शुरू करो। छह सप्ताह बाद मुझे कहना कि क्या हुआ। छह सप्ताह बाद वह आए, बोले कि नींद तो आने लगी, मगर और कुछ नहीं हुआ। मैंने उनसे पूछा कि और कुछ की चाहत थी? नींद ही मांगी थी, भूल गए कि कह कर गए थे कि नींद मिल जाए तो परमात्मा मिल गया? और अब तुम कह रहे हो किस मुंह से कि नींद ही मिली, और कुछ नहीं मिला? उन्हें याद ही नहीं था कि वह क्या कह गए थे पहली दफा; याद दिलाया तो याद आया। कहाः हां, यह बात तो सच है कि मैं उस वक्त इतना पीड़ित था अनिद्रा से कि मुझे लगता था नींद मिल जाए तो परमात्मा मिल गया। लेकिन अब तो नींद तो आने लगी, इसमें खास क्या है, सारी दुनिया सो रही है?
तुम देखते हो आदमी की अवस्था--जो नहीं होता, वह बहुत महत्त्वपूर्ण मालूम होता है! जिसका अभाव होता है, वह बहुत महत्वपूर्ण मालूम होता है। जब मिल जाता है तभी उसका महत्त्व समाप्त हो जाता है। मिला, कि महत्त्व समाप्त हुआ।
बर्नार्ड शॉ ने कहा हैः दुनिया में दो पीड़ाएं हैं--एक, जो चाहो वह न मिले; और दूसरी जो चाहो, वह मिल जाए। बस दो पीड़ाएं हैं। और मैं तुमसे कहता हूं, दूसरी पीड़ा पहले से बड़ी पीड़ा है--जो चाहो वह मिल जाए। मिलते ही व्यर्थ हो जाता है।
धन्यभागी था मजनू कि लैला नहीं मिली। मिल जाती, तो किसी अदालत में तलाक की दरख्वास लिए खड़े होते। भूल गए होते सब चौकड़ी। जिनको मिल गई है लैला, उनसे पूछो। जब तक नहीं मिलती तब तक सब सुंदर है, मिलते ही अड़चन होती है। मिलते ही सब व्यर्थ हो जाता है।
तुम जो पा लिए हो, वही व्यर्थ हो गया है, अपने अनुभव से देखो न! और जब तक नहीं मिला था तब तक कितना सार्थक मालूम होता था, मन कैसे सपने सजाता था! यह मन की बुनियादी चालबाजी है--तुम्हें सदा असंतुष्ट रखने की।
तुम कहते होः
"तू मेरी जन्म-क्षण की तलाश है।
गहनतम में मृत्यु-क्षण की प्यास है।।
उसी का परिणाम है कि तेरे पास हूं
एक ओर चारों ओर तेरी सुवास है
फिर भी भीतर से एक पीड़ा प्रतिपल
कह रही यह भी कुछ खास नहीं
पूरा जीवन एक फांस है
पुकार उठती है--
कब, कैसे, फांस आस बनेगी?"
आस भी बन जाएगी, फिर भी तुम आकर कहोगे कि ठीक है, फांस न रही, असा हो गई, मगर खास क्या? मन समाधि के अंतिम क्षणों तक भी यही सवाल उठाए चला जाता हैः खास क्या? मन एकदम पागल है खास के लिए। विशिष्टता कुछ होनी चाहिए। क्यों? क्योंकि विशिष्टता अहंकार का भोजन है। कुछ ऐसा होना चाहिए जो किसी के पास नहीं है--तब खास! कुछ ऐसा घटना चाहिए जो किसी को कभी घटा नहीं--तब खास! मगर ऐसा तो तुम्हें भी नहीं घटेगा।
बुद्धत्व बहुतों को घट चुका है तुमसे पहले बहुत बुद्ध हो गए हैं। बुद्धों के पहले भी बहुत बुद्ध हो गए हैं। शाश्वतशृंखला है। सूरज के तले नया क्या है?
हर बार बसंत आता है, हर बार फूल खिलते हैं। हर फूल सोचता होगा मैं पहली बार खिल रहा हूं, ऐसा फूल कभी नहीं खिला। लेकिन सदियां बीत गई हैं, बसंत आते रहे हैं, फूल खिलते रहे हैं। बसंत आते रहे, फूल खिलते रहे... । जब तुम

बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाओगे तब भी सवाल उठेगाः इसमें खास क्या है? गौतम बुद्ध को हुआ था, वर्धमान महावीर को हुआ था, हजरत मुहम्मद को हुआ था, कृष्ण को हुआ, क्राइस्ट को हुआ, खास क्या है? रामस्वरूप! इसमें रखा क्या है? यह तो कई को हो चुका। कुछ ऐसा हो जो तुमको ही हो!
मगर ऐसा तो कुछ हो नहीं सकता। ऐसा कुछ होने का उपाय ही नहीं है। जो तुमको हो सकता है, वह पहले ही कई को हो चुका होगा। तभी तो तुम्हें भी हो सकता है, नहीं तो तुम्हें भी नहीं हो सकता।
खास होता ही नहीं। सारा जगत परमात्मा से व्याप्त है। या तो कहो सभी असाधारण हैं; मन वह भी नहीं कहना चाहता। और ये दो ही उपाय हैं सम्यक। या तो मान लो कि सब असाधारण हैं। झेन फकीरों ने यही मान लिया। इसलिए चाय भी ऐसे पीते हैं जैसे प्रार्थना करते हों। क्योंकि चाय भी असाधारण है। छोटे से छोटा कृत्य है चाय, अब इससे और छोटा कृत्य क्या होगा? उसको भी आराधना की महिमा दे दी।
झेन आश्रमों में चाय-मंदिर अलग होता है, जहां लोग चाय पीने जाते हैं।
वह मंदिर होता है। जूते बाहर छोड़ देने होते हैं। स्नान करके जाना होता है। मंदिर के बाहर ही चुप हो जाना होता है। फिर भीतर जाकर ऐसे बैठते हैं जैसे कोई मस्जिद में बैठता है, कोई मंदिर में बैठता है--बड़े सम्मान से! चाय बन रही है। तुम तो बहुत हैरान होओगे कि खास क्या हो रहा है? रामस्वरूप, तुम कहोगे कि यह मामला क्या है? खास तो कुछ हो नहीं रहा है, चाय बन रही है। लेकिन लोग बैठे हैं, समोवोर में जो चाय की आवाज आ रही है उसको सुन रहे हैं... । क्योंकि वह आवाज भी उसी का अनाहद नाद है। जरा देखते हो, .जरा देखो, समझो! वह जो केटली में आवाज उठ रही है, सनसनाहट हो रही है, चाय के पानी में बुदबुदे उठ रहे हैं, चाय की पत्तियां गीत गा रही हैं, वे शांत बैठ कर सुन रहे हैं। क्योंकि है तो उसी की आवाज--चाहे वृक्षों से गुजरती हो, चाहे चाय के बुलबुलों में फूटती हो, चाहे बुद्धों के कंठों से निकली हो, है तो वही आवाज! शांत बैठे हैं दस-पंद्रह लोग, चाय बन रही है। मौन में बैठे हैं, प्रतीक्षा कर रहे हैं। फिर चाय की गंध उड़ने लगी... । चाय की प्यारी गंध नासापुट भरने लगी, और वे आनंदित होने लगे। सुवास तो सब उसी की है, फिर चाहे कमल की हो और चाहे चाय की। फिर चाय ढाली जाएगी तो ऐसे ढाली जाती है जैसे कोई पुजारी पूजा करता है। फिर चाय ऐसे पी जाती है जैसे कोई प्रसाद ग्रहण करता है। छोटी सी चीज को, साधारण सी बात को, असाधारण महिमा दे दी! यही तो जीवन की कला है। और तुम तो असाधारण से असाधारण बात को छोटा कर देते हो। तुर्गनेव की एक प्रसिद्ध कथा है। एक गांव में एक महामूर्ख था। सभी गांव में होते हैं। एक ही क्यों, अनेक होते हैं। एक ढूंढो, हजार मिलते हैं। सारा गांव उसकी निंदा करता था। महामूर्ख बड़ा परेशान था। वह जो भी करता, उससे गलत ही होता। एक फकीर गांव में ठहरा था, उसने फकीर के चरण पकड़ लिए। उसने कहाः मुझे भी कुछ दे जाओ। यह मेरी महामूर्खता से कैसे मेरा छुटकारा हो? मैं मरा जा रहा हूं। मैं बड़ा शाच्च्मदा हूं। चलता हूं, लोग हंसते हैं; बोलता हूं, लोग हंसते हैं। न बोलूं लोग हंसते हैं। कहीं न जाऊं, लोग हंसते हैं। मेरी फांसी लगी है, मुझे बचाओ। मैं क्या करूं? मैं कैसे कुछ ऐसा करूं कि लोग हंसें न, लोग मुझे मूढ़ न समझें।
उस फकीर ने महामूर्ख की तरफ देखा और कहा कि सीधी-सी बात है, सरल सी बात हैः लोग जो भी कहें, तू तत्क्षण उसका खंडन कर। उसने पूछाः मतलब, आशय? थोड़ा उदाहरण दें।
उसने कहाः जैसे चांद निकला हो और लोग कहेंः कितना सुंदर! तू कहनाः क्या खास?
समझे रामस्वरूप!
क्या खास? कोई सिद्ध नहीं कर सकता कि खास क्या है। वे सकते में आ जाएंगे। कोई कहे कि शेक्सपियर के शास्त्र, कितने सुंदर! कोई कहे, गीता के वचन कितने बहुमूल्य! कोई कहे बाइबिल, कितनी काव्यपूर्ण है! और तू बस एक ही बात याद कर लेः रखा क्या है? शब्द ही तो हैं, शब्दों में धरा क्या है? मुझे तो कुछ नहीं दिखाई पड़ता।

कोई वीणा बजाए और लोग प्रशंसा करने लगें तो कहनाः इसमें मामला क्या है? यह आदमी तार छेड़ रहा है, तारों से आवाज होनी स्वाभाविक है। इसमें इतनी प्रशंसा का क्या है? यह कोई भी कर सकता है, इसमें रखा क्या है?
तू बस निंदा करना शुरू कर दे। तू आलोचक हो जा।
फकीर ने कहाः मैं सात दिन इस गांव में रुकूंगा, सात दिन बाद तू आकर मुझे बता जाना कि हालत क्या है? सात दिन बाद उसको आने की जरूरत नहीं, सारा गांव आकर बता गया, धीरे-धीरे करके--कि वह जो महामूर्ख था महापंडित हो गया! उसने सारे गांव को पराजित कर दिया। कुछ भी कहो, वह फौरन... । कोई कह रहा है गुलाब का फूल, कितना सुंदर! और वह कहेगा, इसमें क्या रखा है? अरे फूल तो खिलते रहे, सदा खिलते रहे। गुलाब का हो कि घास का, है क्या? है तो सब घास ही। क्या घास-पात से सिर मार रहे हो!
कोई सिद्ध न कर सके कि फूल में सौंदर्य है। सौंदर्य को कैसे सिद्ध करोगे? सौंदर्य कोई सिद्ध करने की चीज तो नहीं, भाव प्रवण आदमी की बात है। लेकिन कोई लट्ठ की तरह कह देः क्या रखा है... ?
तुम किसी स्त्री के सौंदर्य की तारीफ कर रहे हो, वह आ जाएगा महामूर्ख,
वह कहेगाः रखा क्या है? जरा नाक लंबी भी हो गई तो हुआ क्या? जरा आंख मछली जैसी भी हो गई तो हुआ क्या? क्या मीनाक्षी लगा रखा है? और रंग जरा सफेद हुआ तो कौन सी खास बात है? मुझे तो शक होता है कि खून की कमी है। रक्तहीनता के कारण यह सफेदी मालूम पड़ रही है। कमनीयता, कोमलता... क्या बकवास लगा रखी है, ये सब कमजोरी के नाम हैं, सुंदर अच्छे नाम! आदमी छिपाता है।
उसने सारे गांव को चुप करवा दिया। जहां निकल आता महामूर्ख, वहीं लोग बात भी करते तो चुप हो जाते। नमस्कार करते, बिठाते उसको कि बिराजें। वह महा आलोचक हो गया।
मूर्ख अक्सर आलोचक हो जाते हैं, क्योंकि आलोचना से सरल और इस जगत में कुछ भी नहीं है। इनकार करने से सरल इस जगत में और कुछ भी नहीं है। नकार करने से सरल इस जगत में और कुछ भी नहीं है। यह कहना कि ईश्वर है, बड़ी कठिन बात है। यह कहना कि ईश्वर नहीं है, बड़ी सरल बात है। ईश्वर है, यह कहने के लिए छाती चाहिए। ईश्वर नहीं है, यह मुर्दा भी कह सकता है। इसको कहने के लिए किसी छाती की जरूरत नहीं है। सौंदर्य है, यह कहने के लिए नाचता हुआ एक हृदय चाहिए। सौंदर्य नहीं है, इसकी घोषणा तो पत्थर भी कर सकते हैं, हृदय की कोई आवश्यकता नहीं है।
मन की यह तरकीब है कि वह हर चीज को गैर-खास कर देता है। जागो! इससे सावधान हो जाओ, नहीं तो मन बहुत भरमाएगा, भटकाएगा। ऐसे भी काफी भटका चुका है। अब तुम गैर-खास में ही खास को खोजने लगो। अब गुलाब के फूल तो सुंदर हों ही, घास के फूल भी सुंदर हो जाएं। होते तो वे भी सुंदर हैं। कोहिनूर तो सुंदर हो ही, राह के किनारे पड़े रंगीन पत्थर भी सुंदर हो जाएं। होते तो वे भी हैं; सिर्फ तुम्हारे पास आंख नहीं, सिर्फ तुम्हारे पास भावपूर्ण हृदय नहीं।
सौंदर्य ही सौंदर्य बरस रहा है। सभी कुछ असाधारण है, मगर तुम यह असाधारण की बात छोड़ दो, तो तुम्हें असाधारण दिखाई पड़ने लगे।
कबीर ने कहा हैः उठूं-बैठूं सो परिक्रमा... । उठना-बैठना परिक्रमा हो गई! अब नहीं जाना पड़ता काशी, कि जाएं और चक्कर लगाएं किसी मंदिर में मूर्ति के, और नहीं जाना पड़ता काबा। उठूं-बैठूं सो परिक्रमा, खाऊं-पिऊं सो सेवा! और अब कुछ परमात्मा को भोग लगा कर सेवा नहीं करनी पड़ती; जो मैं खाता-पीता हूं वह भी उसी को लग गया भोग है। साधो, सहज समाधि भली!
यह खास का पागलपन छोड़ो, और तुम्हारा पूरा जीवन असाधारण हो जाएगा। यह विरोधाभास लगेगा, असाधारण की आकांक्षा छोड़ो और सब असाधारण हो जाता है। और असाधारण की आकांक्षा रखो, और सब साधारण हो जाता है। क्योंकि वह असाधारण की आकांक्षा तुम्हारे भीतर निंदा का स्वर पैदा करती है।

प्रश्नः राजनीति की इतनी प्रतिष्ठा क्यों है? राजनेता सबकी छाती पर
आज क्यों चढ़ बैठे हैं?

आज ही चढ़ बैठे, ऐसा नहीं--सदा से चढ़े बैठे हैं। कसूर राजनेता का नहीं है, कसूर उनका है जो छाती पर चढ़ जाने देते हैं। जब तुम छाती पर किसी को चढ़ने दोगे तो कोई न कोई चढ़ेगा--अ नहीं चढ़ेगा तो ब चढ़ेगा, ब नहीं चढ़ेगा तो स चढ़ेगा।
आदमी गुलाम रहना चाहता है, इसलिए। उसे मालिक चाहिए। आदमी खुद अपने पैर पर खड़ा नहीं होना चाहता। आदमी खुद अपनी दिशा नहीं खोजना चाहता। अनुगमन करना चाहता है, इसलिए। अनुयायी होना चाहता है, इसलिए। अपनी आंख नहीं खोलना चाहता। किसी का सहारा पकड़ कर चलना चाहता है, इसलिए। आदमी पूरा आदमी नहीं है, इसलिए राजनीति महत्वपूर्ण है। और इसलिए भी राजनीति महत्वपूर्ण है कि आदमी के भीतर बहुत सी पशुता शेष है। और जब तक पशुता शेष है, तब तक राजनीति महत्वपूर्ण रहेगी। वह जो आदमी के भीतर पशु है, उसके कारण ही पाशविक बल महत्वपूर्ण मालूम होता है।
राजनेता का बल क्या है? जब तक पद पर होता है तब तक बल होता है; जब पद पर नहीं होता तो बल नहीं होता। लेकिन तुम देखते हो, वह जो राजनेता पद पर बैठा होता है, उसके पद की बनावट क्या है, बुनियाद क्या है? उसके पद के नीचे आधारशिला में रखा क्या है, पत्थर कौन से हैं? संगीनें हैं, बंदूकें हैं, सैनिक हैं, बम हैं। राजनेता की सत्ता क्या है? उसके हाथ में लाठी है। उसके हाथ में हिंसा करने का उपाय है। वही उसका बल है। तुम जानते हो कि वह विध्वंस कर सकता है, वह तुम्हें नुकसान पहुंचा सकता है। तुम उससे डरे हो। तुम उससे कंपे हो।
दुनिया में वह दिन बड़ी क्रांति का दिन होगा जिस दिन राजनीति की प्रतिष्ठा कम हो जाएगी। उसका अर्थ होगा कि मनुष्य अब पशु नहीं रहा और अब पाशविकता से नहीं डरता है, और संगीन से संगीत ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गया है, और सैनिक से संन्यासी ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गया है, और पाशविक बल की बजाय आत्मिक बल ज्यादा मूल्यवान हो गया है। उस दिन राजनीति का प्रवाह कम होगा, नहीं तो प्रभाव उसका कम नहीं हो सकता।
ऊपर से कुछ और दिखाई पड़ता है। राष्ट्रपतियों के महल, प्रधानमंत्रियों
की कुर्सियां, ऊपर से कुछ और दिखाई पड़ती हैंः उनके पीछे बल क्या है? सिपाहियों का बल है, फौजों का बल है, कवायद करते हुए नासमझों का बल है। संगीनों की कतारों पर कतारें हैं, बमों के अंबार लगे हैं--उनका बल है। फिर जिसके पास जितने ज्यादा बम हैं, उतना उसका बल है।
और ऐसा मत कहो कि आज ऐसा क्यों है। ऐसा सदा से रहा है। जब राजा थे तो राजा बलशाली थे। अब राजा नहीं रहे, तो प्रधानमंत्री बलशाली है। मामला वही है, खेल वही है। ऊपर-ऊपर के कपड़े बदलते हैं।
और समझ लेना ठीक से कि राजनीति में जिसको जितने ऊपर जाना हो उतना ही छोटा होना पड़ता है। तो वहां छोटे ही पहुंच सकते हैं। वहा क्षुद्र ही पहुंच सकते हैं। वहां उदारमना नहीं पहुंच सकते। वहां वे ही लोग पहुंच सकते हैं जो अति अमानुषिक रूप से महत्वाकांक्षा के पीछे पड़े हों।
धर्म के जगत में जो जितना गहरा है, जितना उदार है, जितना प्रेमपूर्ण है, उसकी गति है। राजनीति के जगत में ठीक उलटे की गति है।
बाढ़ आ गई है, बाढ़!
बाढ़ आ गई है, बाढ़!
वह सब नीचे बैठ गया है
जो था गरू-भरू,
भारी भरकम,
लोह-ठोस,
टन-मन
वजनदार!
और ऊपर-ऊपर उतरा रहे हैं
किरासिन के खाली टिन,
डालडा के डिब्बे,
पोलवाले ढोल,
डाल-डलिए-सूप

काठ-कबाड़-कतवार!
बाढ़ आ गई है, बाढ़!!
बाढ़ आ गई है, बाढ़!
दिल्ली तक पहुंचना हो तो ख्याल रखनाः किरासिन के खाली टिन अगर हों तो पहुंच सकते हो; डालडा के डिब्बे, तो दिल्ली तक पहुंच सकते हो; पोलवाले ढोल, तो दिल्ली तक पहुंच सकते हो; डाल-डलिए-सूप, तो दिल्ली तक पहुंच सकते हैं; काठ-कबाड़-कतवार, तो दिल्ली तक पहुंच सकते हो। बाढ़ आ गई है, बाढ़!
राजनीति में क्षुद्र की गति है, उपद्रवी की गति है, हिंसक को गति है। इसलिए तुम्हारी संसदों में अगर जूते फिंक जाते हैं, कुर्सियां उठ आती हैं, माइक लेकर लोग एक-दूसरे के पीछे दौड़-पड़ते हैं, घूंसाबाजी हो जाती है। तो तुम चौंका मत करो, यह होना ही चाहिए। यह नहीं होता तब मैं चौंकता हूं कि मामला क्या है, बहुत दिन से घूंसे नहीं चले, बहुत दिन से पार्लियामेंट में कोई मार-पीट नहीं हुई, एक-दूसरे पर दौड़े नहीं, गाली-गलौज नहीं हुई, आखिर मामला क्या है! हो क्या गया! इतना सन्नाटा क्यों है!
यह ठीक ही हो रहा है। जो होना चाहिए वही हो रहा है।
नंगा नाचै, चोर बलैया लेय
भैया, नंगा नाचै।
थोथा मोटी खोल मढ़े दमदार दमामे
कूट रहा है दोनों हाथों मूसल थामे,
झूठ प्रचारक अखबारों की कछनी कांछे।
नंगा नाचै, चोर बलैया लेय,
भैया, नंगा नाचै।
लायक, फायक, नायक डर कर अंदर बैठे;
लंठ, लफंगे, लुच्चे बाहर मूंछें ऐंठे
कूद रहे हैं, फांद रहे हैं मार कुलांचे।
नंगा नाचै, चोर बलैया लेय,
भैया, नंगा नाचै।
तुम्हारी पार्लियामेंट को देख कर जाहिर हो जाता है कि राजनीति क्या है। पागलखाने को देख कर भी इतनी बात साफ नहीं होती जितनी पार्लियामेंट को देख कर बात साफ हो जाती है कि आदमी पागल है। पागलखाने में भी इतना पागलपन नहीं है। पागलों की भी एक व्यवस्था होती है; पार्लियामेंट में वह भी नहीं है।
पहुंचना हो पद पर तो लोगों की सीढ़ियां तो बनानी पड़ेंगी, उनके कंधों पर पैर रखने होंगे। और जिसके कंधे पर पैर रख कर पहुंचोगे, इसके पहले कि तुम और आगे बढ़ो, उसे गिरा देना होगा। क्योंकि जिससे चढ़ कर तुम आए हो, उसी से चढ़ कर कोई दूसरा भी आ सकता है। सीढ़ियां गिरा देनी पड़ती हैं।
चरण सिंह को गिरा देना राजनीति का सीधा-साफ तर्क है, गणित है उसमें। मोरार जी जिस पर चढ़ कर पहुंचे, उस आदमी को बचाए रखना ठीक नहीं है। उस आदमी पर चढ़ कर कोई और भी पहुंच सकता है।
नंबर दो का आदमी राजनीति में हमेशा खतरे में होता है, क्योंकि नंबर एक आदमी को नंबर दो से डर होता है। उसी का डर होता है, और किसी का डर नहीं होता। इसलिए राजनेता कभी भी अपनी योग्यता के लोगों को अपने पास बरदाश्त नहीं करते। छोटी योग्यता के लोग चाहिए, जिनके बीच और राजनेता के बीच काफी फासला हो; जो अगर फासला चलने की यात्रा शुरू करें तो वर्षों लग जाएं। लेकिन नंबर दो का आदमी खतरनाक होता है; वह एक कदम बढ़ाए तो जिसने चढ़ाया है, वह गिरा सकता है।
राजनीति का अपना तर्क है। तर्क बिल्कुल जंगली है। और आदमी चूंकि जंगली है, इसलिए राजनीति प्रभावशाली है। और तुम यह मत सोचना कि तुम्हारे भीतर राजनीति नहीं है। जब तक महत्वाकांक्षा है तब तक राजनीति है, चाहे तुम चुनाव लड़ो या न लड़ो। जब तक तुम चाहते हो मैं किसी दूसरे से बड़ा हो जाऊं, जब तक तुम चाहते हो मैं खास हो जाऊं, विशिष्ट हो जाऊं, तब तक राजनीति है। राजनीति का और क्या अर्थ है?

गैर-राजनीतिज्ञ व्यक्ति बहुत कम हैं दुनिया में। वही व्यक्ति गैर-राजनीतिज्ञ है, जो कहता हैः मैं जैसा हूं वैसा मस्त हूं--न मुझे किसी से आगे होना है, न मुझे किसी से पीछे होने की पड़ी है; कोई मुझसे आगे हो जाए, पीछे हो जाए, कुछ लेना-देना नहीं है। इससे मेरा प्रयोजन नहीं है। इससे मेरा कोई संबंध नहीं है। मैं जैसा हूं, मस्त हूं। मैं जहां हूं, मस्त हूं। मैं अंतिम भी हूं तो भी मस्त हूं। मेरी मस्ती में कुछ फर्क नहीं पड़ता।
जब तक प्रतिस्पर्धा है तब तक राजनीति है।
तो राजनीतियां बहुत तरह की होती हैं। अगर तुम धन के बाजार में लगे हो, चाहते हो तुम्हारे पास ज्यादा धन हो जाए, जितना औरों के पास है, उनसे ज्यादा--तो तुम धन की राजनीति में लगे हो। वह भी राजनीति है--पद नहीं, धन की। जहां भी तुम प्रतिस्पर्धा की भाषा में सोचते हो कि मैं आगे हो जाऊं, दूसरा पीछे हो; मैं खास हो जाऊं, दूसरा गैर-खास हो जाए; मैं शक्तिशाली, दूसरा शक्तिहीन हो जाए--तुम राजनीति की भाषा में ही सोच रहे हो। अगर तुम्हारे मन में यह भी सवाल उठता है कि मोक्ष में मेरा स्थान दूसरों से आगे हो जाए, तो तुम राजनीति की ही बात सोच रहे हो।
जीसस जब विदा होते थे, अंतिम रात। सोचो तुम, आदमी कैसा राजनीतिज्ञ है!
तो जीसस के शिष्यों ने मालूम है क्या पूछा उनसे? उनका गुरु फांसी पर चढ़ने जा रहे हैं और शिष्य क्या पूछ रहे हैं? शिष्यों की चिंता क्या है? शिष्यों ने पूछा कि स्वर्ग के राज्य में ठीक आप तो परमात्मा के बगल में होंगे, फिर आपके बगल में कौन होगा? हम बारह शिष्यों में से कौन आपके बगल में होगा? जीसस की आंख में अगर आंसू आ गए हों तो आश्चर्य नहीं। यह तो राजनीति हो गई। जिंदगी भर यही सिखाया कि दूसरे से तुलना में मत विचार करो, तौलो ही मत। तुलना व्यर्थ है, क्योंकि तुलना से राजनीति का जन्म होता है। तुम तुम हो, मैं मैं हूं। तुम तुम जैसे हो, मैं मैं जैसा हूं। न तुम मुझसे आगे हो, न मैं तुमसे आगे हूं। कोई किसी से आगे नहीं है कोई किसी से पीछे नहीं है। हम कतार में खड़े ही नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय है। प्रत्येक व्यक्ति बेजोड़ है। मगर राजनीति की बड़ी चालें हैं। एक जैन मुनि मुझसे मिलने आए थे। वे पूछने लगे कि आप महावीर का भी नाम लेते हैं, बुद्ध का भी नाम लेते हैं, दोनों में बड़ा कौन? यह राजनीति हो गई। यह तुम अपने को ही राजनीति में डुबाते हो, इतना ही नहीं; तुम अपने महावीर और बुद्धों को भी डुबा देते हो। दोनों में बड़ा कौन!
एक जैन विचारक ने किताब लिखी महावीर और बुद्ध पर। मुझे भेंट करने आए। मुझे भेंट करते वक्त कहा कि आपको जरूर पसंद पड़ेगी। क्योंकि मैं सब धर्मों में समन्वय मानता हूं; सब धर्मों में समन्वय मानता हूं; सब धर्मों में एक ही सत्य है, अभिव्यक्ति अलग-अलग है। वे गांधीवादी थे और "अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम" इत्यादि का जप करते थे। मैंने उनकी किताब हाथ में ली तो मैं चौंका। किताब का नाम थाः भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध। मैंने पूछाः दोनों को भगवान नहीं लिखा? या दोनों को महात्मा लिखते। जरा सा फर्क कर गए। थोड़े झेंपे। कहा कि अब आप से क्या छिपाना! महावीर भगवान हैं। वे परम अवस्था में पहुंच गए हैं। बुद्ध अभी पहुंच रहे हैं, अभी पहुंचे नहीं-- इसलिए महात्मा हैं। महान पुरुष, मगर अभी थोड़ी कमी है। सब धर्मों में समन्वय साध रहा व्यक्ति भी ऐसा बारीक फैसला कर लेता है, भीतर उसकी चालबाजियां चलती रहती हैं।
गांधी ने भी गीता को माता कहा, कुरान को पिता नहीं कहा। और अगर कुरान
को पिता कहते तो कई हिंदू नाराज हो जाते, कि यह क्या मामला है--गीता को माता और कुरान को पिता! गीता को पीछे किए दे रहे हैं! क्योंकि पति हो जाएगा कुरान फिर। और पति तो परमेश्वर है। फिर झंझटें बड़ी खड़ी हो जाती। नहीं, कुरान को पिता नहीं कहा। चुप्पी साधे रहे। कुरान में से भी आयतें चुन ली हैं गांधी ने, जिनका गीता से मेल खाता है, जो गीता का भाषांतर जैसी मालूम पड़ती हैं। वे बातें जो कुरान में गीता के खिलाफ हैं, उनकी चर्चा नहीं उठाई है; उनको एक तरफ छोड़ दिया है।
हमारे मन में तुलना चलती ही रहती है। हम तुलना से बच ही नहीं पाते। और तुलना राजनीति का मूल सूत्र है।

तुम्हें अगर मेरी बात समझ में आती हो तो एक बात ख्याल में रख लोः तुम जैसे बस तुम हो। न तुम्हारे जैसा आदमी पहले कभी हुआ है, और न आगे फिर कभी होगा। तुम अद्वितीय हो। तुम्हारी तुलना किसी से हो नहीं सकती। और न ही किसी और की तुलना तुमसे हो सकती है। परमात्मा ने प्रत्येक को अद्वितीयता दी है। ऐसी जो भाव-दशा है वही राजनीति से मुक्त करती है। राजनीति दौड़ है सिद्ध करने की--कौन बड़ा, कौन छोटा? राजनीति मनुष्य के भीतर छिपी हुई हिंसा का ही विस्तार है। और तुम चूंकि कमजोर हो, तुम चूंकि गहरे में गुलाम होने को उत्सुक हो, तुम किसी का भी हाथ पकड़ लेते हो। कोई भी जोर से शोरगुल मचाए, नारा जोर से लगाए, तुम्हें लगता है कि ठीक ही कह रहा होगा।
मैंने सुना है, एक वकील जिस बड़े वकील के पास वकालत का अध्ययन कर रहा था, जब उससे विदा होने लगा तो उसने पूछा कि कोई आखिरी संदेश हो मेरे लिए? उसके गुरु वकील ने कहा कि ख्याल रखना तीन बातें, जो मेरे गुरु ने मुझसे कही थीं। पहली--जब तुम पाओ कि तुम सत्य के पक्ष में खड़े हो तो शांत भाव से बोलना, प्रसन्न भाव से बोलना, तुम्हारी मुख-मुद्रा आनंदित हो। गवाहियों पर भरोसा रखना। जब तुम पाओ कि तुम संदिग्ध अवस्था में हो, पता नहीं तुम सत्य के पक्ष में हो कि असत्य के, तो सिर्फ गवाहियों पर भरोसा मत रखना तब सारी किताबें और जो तुमने अध्ययन किया है उसका भरोसा करना। तर्क का भरोसा करना। उद्धरण देना किताबों केः पन्नों पर पन्ने पढ़ जाना। अदालत को चकमा दे देना ज्ञान का।
और शिष्य ने पूछाः अगर ऐसा हो कि मुझे पक्का ही हो कि मैं असत्य के पक्ष में खड़ा हूं? तो फिर गुरु ने कहाः तुम एक काम करना। फिर जितने जोर से बोल सको और जितनी जोर से टेबल घूंसे से पीट सको, पीटना। फिर न तो गवाहियों की कोई कीमत है न कानून की कोई कीमत है। फिर तो शोरगुल की कीमत है। क्योंकि जो आदमी जितने जोर से बोलता है और जितने जोर से घूंसा पीटता है टेबल पर, स्वभावतः लोगों को लगता है कि सच ही होनी चाहिए उसकी बात, क्योंकि सच ही इतने जोर से बोलता है, झूठ तो डरता है। बात उक्ति है! जो भी जोर से चिल्लाने वाला मिल जाता है वही तुम्हारा नेता हो जाता है। जो भी तुम्हें झूठे आश्वासन देने वाला मिल जाता है वही तुम्हारा नेता हो जाता है। जो तुम्हारी वासनाओं को फुसलाने वाला मिल जाता है, और सब्जबाग दिखाता है, वही तुम्हारा नेता हो जाता है। जो तुम्हारी वासनाओं को फुसलाने वाला मिल जाता है, और सब्जबाग दिखाता है, वही तुम्हारा नेता हो जाता है।
अंधों की बस्ती में एक बार
एक बहरा आया
बहरे ने अंधों को
एक बहुत मीठा गाना सुनाया
स्वरों की मदद से
उनके सारे दुखों को मार गिराया, झोंपड़ी को फौरन ही महल बनाया गया, अंधों को जितना महान
हो सकता था बताया गया,
शब्दों का नाच
बड़ी देर तक चलाया गया
नाच किसे दिखता था
घुंघरू नारों का
बड़ी लय में बजाया गया,
संक्षेप में
अंधों को
पूरा सब्ज बाग दिखाया गया, बहरे ने अंधों के मन की
सभी बातें बेमिसाल कीं
आखिर में खुश होकर
अंधों ने बहरे के गले में जयमाला डाल दी

फिर सभी अंधे रातोंरात
लगभग कुबेर होने को मचलने लगे, बहरे ने उनके कानों में
कुछ ऐसा रस घोला कि
धीरे-धीरे सभी अंधे
बहरे के बैठाए बैठने
और उसी के चलाए चलने लगे,
बहरे ने अंधों को
जैसा चाहा दौड़ाया
कभी इसे यहां से उखाड़ा
कभी उसे वहां ले जा बैठाया,
किसी के होठों पर सिलाई कर दी
किसी के मुंह में लाउडस्पीकर फिट कराया, किसी बेकार के आदमी के सिर पर
ताज पहना दिया,
और चाहा तो अंधों के राजाओं को
भिखारी बना दिया
बहरे ने बड़े करतब दिखाए
तब अंधे अपनी आदत के खिलाफ घबड़ाए, बहरे! बता दे
क्या हुए तेरे वादे?
अंधों के नारों से धीरे-धीरे आकाश हिला, पर अंत तक
उन्हें कुछ भी नहीं मिला
अंधों का शोर
जब जमीन हिलाए दे रहा था,
बहरा निश्चिंत था
शोर उसे सुनाई ही नहीं दे रहा था।
ऐसी अवस्था है! तुम अंधे हो। तुम्हें कोई भी आश्वासन देता है। कितनी क्रांतियों के आश्वासन! कितनी क्रांतियां हो चुकीं आदमी की जिंदगी में! और क्रांति कभी होती नहीं। अभी-अभी दूसरी क्रांति होकर चुकी है। कोई फर्क नहीं पड़ता। हालतें शायद और भी बिगड़ जाती हैं।
मैंने सुना है, एक वजीर ने अपने सम्राट को बहुत धोखा दिया। लाखों रुपये उड़ा दिए। जब सम्राट को पता चला, सम्राट ने उसे बुलाया। सम्राट का बड़ा प्रेम था उस आदमी पर और बड़ा भरोसा था। सम्राट ने कहा कि सुनो, मैंने तुझ पर इतना भरोसा किया और तूने धोखा किया? वजीर ने कहाः मालिक! जब तक कोई भरोसा न करे, धोखा भी कोई कैसे करे? भरोसा करे कोई, तो ही धोखा किया जा सकता है।
बात तो तर्कयुक्त थी। और किसको धोखा दिया जा सकता है? सम्राट उस कठिन क्षण में भी हंसा वजीर की बुद्धिमानी की बात सुन कर। उसने कहाः ठीक है, लेकिन अब आगे बरदाश्त नहीं कर सकूंगा। और तुमने मेरी सेवा की, यद्यपि धोखा किया, मैं तुम्हें छुट्टी करता हूं। मैं नये वजीर को नियुक्त करूंगा।
उस वजीर ने कहाः इसके पहले कि मेरी छुट्टी करें, एक बात सुन लें। मैंने महल बना लिया, मेरी तिजोरियां अशरफियों से भरी हैं। दूर-दूर देशों के बैंकों में मैंने रुपये जमा करवा दिए। अब नया वजीर आएगा, फिर से शुरू करेगा। मैं तो जो करना था सो कर ही चुका हूं।
सम्राट को बात समझ में आई कि बात तो ठीक है। वजीर ने कहाः मुझको रहने दें अब; जो होना था हो ही चुका है। दूसरा फिर से शुरू से शुरू करेगा। उसको भी महल बनाने पड़ेंगे। उसको भी जाकर स्विट्जरलैंड के बैंकों में धन जमा करवाना पड़ेगा। फिर शुरू से शुरू होगा। नाहक झंझट क्यों खड़ी करते हैं?
एक क्रांति होती है, लोग आश्वासन दे जाते हैं। लेकिन फिर जिनको तुम सत्ता में बिठा देते हो उनको भी वही करना पड़ता है जो पहले के लोग कर रहे थे। अगर उनको सत्ता में रहना है तो वही करना पड़ेगा। अगर फिर सत्ता में आना

है तो वही करना पड़ेगा। फिर स्विट्जरलैंड के बैंकों में धन जमा होगा। फिर वही सब शोषण का जाल चलेगा। फिर वही चालबाजियां, फिर वही दंद-फंद, फिर वही शडयंत्र। दो-चार साल में तुम भूल जाओगे कि क्रांति का क्या हुआ। क्रांति आई ही नहीं।
क्रांति कभी आती ही नहीं। राजनीति कभी क्रांति ला नहीं सकती। क्रांति
तो सिर्फ एक घटती है--वह घटती है चेतना में, व्यक्ति में; समूह में कभी नहीं घटती। रूस की क्रांति हारी। जार इतना खतरनाक कभी भी नहीं था, जितना स्टैलिन साबित हुआ। सारी क्रांतियां हार गई हैं, क्योंकि क्रांति अंततः राजनीतिज्ञ के हाथ में ही बल दे जाती है। और स्वभावतः जिन तरकीबों से उसने पहले राज्य को समाप्त किया है, उन तरकीबों से वह अब अपने को समाप्त नहीं होने देगा। इसलिए वह ज्यादा इंतजाम करता है, व्यवस्थित इंतजाम करता है। जार जिस तरह से समाप्त किया गया था, स्टैलिन ने सारा इंतजाम कर दिया था, उस तरह से उसे कोई समाप्त नहीं कर सकता था।
आज तुम जानकर यह हैरान होओगे कि इस दुनिया में अगर कोई देश क्रांति- प्रूफ है तो रूस है। वहां क्रांति नहीं हो सकती। यह खूब क्रांति हुई कि क्रांति-प्रूफ देश पैदा हुआ। अब वहां क्रांति नहीं हो सकती। अब वहां शुरू से ही आवाज नहीं उठने दी जाती है। वहां गर्दन दबा दी जाती है। पहला ही स्वर मिटा दिया जाता है, आगे बात बनने ही नहीं दी जाती। इसके पहले कि बगावत के बीज फैले, बीज भस्मीभूत कर दिए जाते हैं।
आदमी ने बहुत क्रांतियां कीं, कुछ परिणाम नहीं हुआ--सिर्फ आदमी आशाओं में डोलता रहता है, आशाओं की लहरों में झूलता रहता है।
जागो! राजनीति से तुम्हारे जीवन में कोई सौभाग्य का उदय नहीं होने वाला है। सौभाग्य का उदय तो होने वाला है तुम्हारे भीतर चैतन्य की क्रांति से। तुम्हारे भीतर जो सोया पड़ा है, वह जागे तो तुम्हारे जीवन में तृप्ति की वर्षा हो सकती है। और कुछ फूल खिल सकते हैं आनंद के। समय मत गंवाओ। अभी-अभी दूसरी क्रांति चूक गई, जल्दी ही साल-छह महीने में तीसरी क्रांति आती है। फिर तुम तीसरी में लग जाओगे।
आदमी अजीब अंधा है! एक क्रांति से दूसरी क्रांति में जाने में उसे देर नहीं लगती। आदमी की स्मृति बहुत कम है। दो-तीन साल में भूल ही जाता है, फिर क्रांति करने लगता है। फिर उन्हीं उपद्रवियों के चक्कर में पड़ने लगता है। वे नई-नई शक्लें लेकर आते हैं।
तुम पूछते होः "राजनीति की इतनी प्रतिष्ठा क्यों है?"
तुम्हारे कारण। क्योंकि तुम्हारे मन में अपनी कोई प्रतिष्ठा नहीं। तुम्हारे मन में अपने प्रति कोई सम्मान नहीं। इसलिए दो कौड़ी के राजनेताओं को तुम सम्मान देते फिरते हो। तुम्हारे मन में अपना कोई आत्मगौरव नहीं है। इसलिए तुम कुर्सियों के सामने झुकते रहते हो। "किस्सा कुर्सी का" तुम्हारा है। जहां कुर्सी देखी वहीं तुम एकदम साष्टांग दंडवत लगा देते हो। फिर तुम देर नहीं करते। तुम दीन हो, दया-योग्य हो, इसलिए राजनीति की प्रतिष्ठा है।
यह रुग्ण स्थिति है कि सारे अखबार राजनीति से भरे रहें। यह इस बात की खबर है कि सिवाय बीमारियों के हमारी और किसी बात में कोई उत्सुकता नहीं है। किसी की हत्या करो, अखबार में आ जाएगी। एक पौधे को पानी सींचो, एक सुंदर फूल उगाओ, किसी को कभी पता नहीं चलेगा, किसी अखबार में खबर नहीं आएगी। चोरी करो, बेईमानी करो, अखबार में आ जाओगे। चुपचाप शांति से जीओ, आनंद से जीओ, बैठ कर कभी ध्यान करते रहो, प्रार्थना करो, पूजा करो, दुनिया में किसी को खबर नहीं होगी। यह बड़ी अजीब अवस्था है! यहां शुभ का कोई समाचार ही नहीं होता। यहां सिर्फ अशुभ के ही समाचार होते हैं। और अगर अशुभ के समाचार ही फैलते हैं और अशुभ फैलता हो तो आश्चर्य क्या है?
छोड़ो इस रुग्ण रोग को! भूलो राजनीति के उपद्रवों को। अपने घर आओ। और डरो मत कि तुम्हारे बिना राजनीति न चलेगी। बहुत है चलाने वाले। एक ढूंढो, हजार मिलते हैं। वे चलाते रहेंगे। तुम सरक आओ बाहर। तुम भीड़-भाड़ से निकल आओ। तुम अपने भीतर मंदिर बनाओ। तुम अपने भीतर पूजा का दीप जलाओ। तुम्हारे भीतर क्रांति हो सकती है।

बस एक ही क्रांति है दुनिया मेंः जब कोई व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध
हो जाता है तो वही क्रांति है, और कोई क्रांति नहीं। और तुम बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाओ तो तुम्हारे पास जो आए, उनके जीवन में भी ज्योति उतरे। ज्योति से ज्योति जले!

आखिरी प्रश्नः क्या आप सिद्ध कर सकते हैं कि परमात्मा है?

परमात्मा अगर स्वयं को सिद्ध करना चाहता होता तो उसने कभी का स्वयं
ही कर दिया होता। परमात्मा असिद्ध ही रहना चाहता है। और उसके पीछे कारण है।
परमात्मा अगर सिद्ध हो जाए, जैसे कि पत्थर सिद्ध हैं, तो व्यर्थ हो जाएगा।
कम्युनिज्म के जन्मदाता कार्ल मार्क्स ने कहा है कि जब तक परमात्मा
को प्रयोगशाला में परखनली में न पकड़ा जा सकेगा तब तक मैं नहीं मानूंगा। लेकिन, जरा सोचो तो, परमात्मा को अगर प्रयोगशाला की परखनली में पकड़ लिया गया और वैज्ञानिक ने चीर-फाड़ करके पोस्टमार्टम कर दिया तो परमात्मा तो सिद्ध हो जाएगा; लेकिन पोस्टमार्टम के बाद! मर चुका होगा।
परमात्मा परम जीवन है, इसलिए सिद्ध नहीं हो सकता। हां, तुम चाहो तो अपने को उस परम जीवन के साथ संयुक्त कर सकते हो, सिद्ध करने की बात मन में उठती है, कि सिद्ध हो जाए तो फिर हम श्रद्धा करेंगे। लेकिन तुम समझते हो श्रद्धा का अर्थ क्या होता है? श्रद्धा का अर्थ होता है--इतना साहस, कि जो सिद्ध नहीं है, उसकी तलाश करना। श्रद्धा का अर्थ ही यही होता है।
मेरे पास लोग आकर पूछते हैं, वे कहते हैं परमात्मा सिद्ध हो जाए तो हम श्रद्धा करने को तैयार हैं। लेकिन सिद्ध हो जाए तो श्रद्धा की जरूरत ही नहीं रह जाती। क्या तुम सूरज पर श्रद्धा करते हो? अभी वर्षा हो रही है, इस पर श्रद्धा करते हो? वृक्ष खड़े हैं, इन पर श्रद्धा करते हो? जो सिद्ध हो गया, उसकी श्रद्धा का कारण ही नहीं है। श्रद्धा समाप्त हो गई। इसलिए परमात्मा असिद्ध रहता है, ताकि श्रद्धा को जन्मा सके। श्रद्धा के लिए जरूरी है कि परमात्मा असिद्ध रहे, अदृश्य रहे, अगोचर रहे। जो उसे खोजने का साहस करे, बस उनको मिले।
परमात्मा कोई तर्क का सिद्धांत नहीं है। परमात्मा प्रेम का एक अनुभव है। न तो प्रेम को सिद्ध किया जा सकता है, न परमात्मा को सिद्ध किया जा सकता है। जिस आदमी ने यह निर्णय ले लिया कि प्रेम करने के पहले मैं सिद्ध करवा लूंगा कि प्रेम होता है--प्रेम क्या है? प्रयोगशाला में जांच-परख हो जाएगी, तब मैं प्रेम करूंगा--एक बात निश्चित है, वह आदमी प्रेम नहीं कर पाएगा। प्रेम तो करना होता है--अंधेरे में, टटोलते हुए, खोजते हुए। उस अनिश्चय में ही प्रेम की भूमिका बनती है। उस अंधेरे में ही प्रेम का गर्भ निर्मित होता है।
ध्यान रखना, जड़ें अंधेरे में बढ़ती हैं, जमीन के गहरे अंधेरे में। बच्चे भी मां के पेट के अंधेरे में बड़े होते हैं। ऐसी ही श्रद्धा भी, अंधेरे में। रोशनी कर दो बहुत, जड़ें मर जाती हैं। वृक्ष को उखाड़ कर जड़ों को सूरज दिखा दो, वृक्ष मर जाएगा। बच्चे को मां के पेट के बाहर ले आओ, सूरज की रोशनी में रख दो, मर जाएगा। हां, एक दिन जब बच्चा बड़ा हो जाएगा, योग्य हो जाएगा कि आ सके, संसार के संघर्ष को झेल सके, तो बाहर आएगा गर्भ के। लेकिन इसके पहले कि गर्भ के बाहर आए, नौ महीने गर्भ में रहेगा।
श्रद्धा परमात्मा को गर्भ में रखने का नाम है। नौ महीने। और नौ महीने कितने लंबे होंगे, तुम पर निर्भर है।
कलकत्ता के एक मित्र ने पूछा है, सेठिया ने, कि संन्यास का भाव उठे और संन्यास लें, इसमें कितना फासला होता है? कितना समय लगता है, संन्यास के भाव में और संन्यास के लेने में?
सेठिया, तुम पर निर्भर है। चाहो जन्म-जन्म लगा दो, चाहो क्षण न लगे, आज
ही सही। कल तक क्यों टालो? कल का भरोसा क्या है? नौ महीने तुम पर निर्भर। एक क्षण में भी पूरे हो सकते हैं; अनंत जन्मों में भी पूरे न हों। तुम्हारी

त्वरा, तीव्रता, तुम्हारी गहनता, तुम्हारे समर्पण, तुम्हारे संकल्प पर सब निर्भर है।
पूछा तुमनेः "क्या आप सिद्ध कर सकते हैं कि परमात्मा है?"
हे भगवान!
इस देश में काव्य-कला का विकास हो,
मूर्तिकला, संगीतकला, चित्रकला आदि चौंसठ कलाओं का।
विचित्र कला तक का विकास हो--
ऋद्ध-समृद्ध होने, प्रसिद्ध होने, एक अर्थ में
सिद्ध होने की कला का भी विकास हो।
लेकिन हे भगवान!
इस देश में, फिर इस खोटे जमाने में,
सिद्ध करने की कला का विकास कभी न हो; क्योंकि तब तो, दिन को रात, रात को दिन,
हाथी को चींटी
सींटी को भोंपू
भाले को पिन
लवे को बाज
तवे को परात,
शव-यात्रा को बरात,
और गौरैया को गरुड़ या गिद्ध,
सिद्ध करना भी आसान होगा।
कबिरा तो बड़ा हलाकान होगा!
सो हे भगवान!
और चाहे जो करो--
इस टेढ़े देश और खोटे जमाने में
सिद्ध करने की कला का विकास न होने दो।
सिद्ध करने का अर्थ क्या? कुछ तर्क दिए जाए? तर्क दिए गए हैं। जितने दिए जा सकते थे, सब दिए जा चुके हैं। उन तर्कों से कुछ सिद्ध नहीं हुआ। पांच हजार साल से तर्क दिए गए हैं ईश्वर के होने के। लेकिन उन तर्कों से कुछ सिद्ध नहीं हुआ। कोई कहता है--इसी तरह के सारे तर्क हैं, इसी सरणी के-- कि जैसे कुम्हार ने घड़ा बनाया, तो घड़े को देख कर पक्का हो जाता है कि बनाने वाला होगा। ऐसे ही इतने विराट संसार को बनाया है जिसने, वह होना चाहिए। इस तरह के तर्क हैं। मगर इन तर्कों से क्या कुछ हल होता है? नास्तिक पूछता है, फिर उसको किसने बनाया? घड़ा बनाया कुम्हार ने, मान गए। कुम्हार को किसने बनाया?
वहां तुम्हारी आस्तिकता पोच पड़ जाती है। वहां तुम्हारा तर्क दो कौड़ी
का हो जाता है। वहां आस्तिक कहने लगता है परमात्मा को किसी ने नहीं बनाया। तो नास्तिक कहता है, जब परमात्मा बिना बनाए हो सकता है तो संसार बिना बनाए क्यों नहीं हो सकता? क्या जरूरत फिर? इतनी दूर ले जाने की जरूरत क्या है? फिर संसार ही बिन बनाया हो सकता है, जब कोई भी चीज बिन बनाई हो सकती है और बनाना हर चीज के होने के लिए अनिवार्य नहीं है, तो संसार ही बिन बनाया है। फिर परमात्मा को बीच में क्यों लाते हो? और अगर तुम कहो कि परमात्मा को और बड़े परमात्मा ने बनाया है, तो प्रश्न बढ़ता ही चला जाएगा। फिर तो उसका कोई अंत नहीं होगा। एक परमात्मा को दूसरा बनाएगा, दूसरे को तीसरा, तीसरे को चौथा; कोई अंत न होगा। अंत में थक कर तुम्हें कहना ही पड़ेगा कि बस भाई, अब रुको; इसको किसी ने नहीं बनाया। यह जो है, आखिरी है।
मगर वही प्रश्न फिर वापस लौट आता है। जिन्होंने तर्क दिए हैं वे जानने वाले लोग नहीं थे। अगर जानने वाले होते तो इतने बचकाने तर्क न देते, जिनको बच्चे भी तोड़ सकते हैं, जिनको कोई भी नास्तिक खंडित कर सकता है।
तो मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि आस्तिकों ने तर्क दिए ही नहीं। जिन्होंने दिए हैं, वे भी छिपे हुए नास्तिक थे। उनको भी शक था। वे अपने को समझाने के लिए तर्क खोज रहे थे। अपने को समझाने के लिए दूसरों को भी तर्क दे रहे थे। अकसर ऐसा हो जाता है, अपने को समझाने के लिए आदमी दूसरों को

तर्क देने लगता है। जब दूसरों की आंखों में सहमति देखना है तो उसे खुद भी भरोसा आ जाता है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक सड़क से गुजर रहा था। सांझ का वक्त, कुछ लफंगे उसे सताने लगे। कोई उसकी अचकन खींचने लगा। किसी ने उसके चूड़ीदार पाजामे का नासा खींच दिया। कोई उसके खीसे में हाथ डाल कर देखने लगा। रात का वक्त, सन्नाटा, कौन झंझट करे लफंगों से। उसने कहाः भई तुम्हें मालूम है, मैं कहां जा रहा हूं? उन्होंने पूछाः कहां जा रहे हो? नसरुद्दीन ने कहा कि आज राजमहल में भोज है, सारा गांव आमंत्रित है, तुमको पता नहीं? अरे! उन्होंने कहाः हमें कुछ मालूम ही नहीं। वे एकदम भागे राजमहल की तरफ। जब वे दस-पंद्रह लफंगे राजमहल की तरफ भागने लगे, थोड़ी देर बाद मुल्ला भी उनके पीछे भागा--कहता हुआ कि कौन जाने बात सच ही हो। हालांकि उसने झूठी बात कही थी--सिर्फ उनसे छुटकारा पाने के लिए कि ये राजमहल की तरफ चले जाएं तो मैं अपने घर जाऊं।
लेकिन जब पंद्रह आदमी किसी बात पर भरोसा कर लें तो तुम्हें भी शक उठना शुरू हो जाता है कि कौन जाने बात सच ही हो! जाकर देख ही लेना उचित है। हालांकि तुमने गढ़ी थी। ऐसा अक्सर हो जाता है कि तुम्हारी ही शुरू की गई अफवाह जब लौटकर तुम पर आती है, तुम उस पर भरोसा कर लेते हो।
आस्तिकों ने तर्क नहीं दिए हैं। आस्तिक को एक बात बिल्कुल साफ हो जाती है कि परमात्मा तर्कातीत है। इसलिए मैं तुम्हें कोई तर्क नहीं दे सकता। कोई तर्क नहीं है उसके लिए। परमात्मा है। और जब मैं कहता हूं परमात्मा है, तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि कोई धनुषबाण लिए खड़ा है कहीं या बांसुरी बजा रहा है। जब मैं कहता हूं परमात्मा है तो मैं कहता हूं यह सब जो "है" का विस्तार है, इस सब का एक नाम दे रखा है--परमात्मा। ये पानी की गिरती बूंदें, यह वृक्षों की हरियाली, यह पक्षियों की आवाज, ये लोग, ये नदियां, ये पहाड़, ये चांद-तारे! इस सारे विस्तार का इकट्ठा नाम है परमात्मा। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है कि पकड़ कर तुम्हारे सामने खड़ा कर दिया जाए।
एक स्त्री मरी न्यूयार्क में और अपनी वसीयत कर गई, परमात्मा के नाम,
कई हजार डॉलर छोड़ गई थी। अब बड़ी मुश्किल हो गई अदालत में। कानून के हिसाब से परमात्मा के नाम अदालत को सूचना भेजनी पड़ी कि आप आ जाएं और इतना रुपया, इतने डॉलर, इतनी धन-संपत्ति, यह महिला आपके नाम छोड़ गई, यह सम्हाल लें। अब जब अदालत ने निकाल दी सूचना, तो सूचना ले जाने वालों को ले जानी पड़ी। न्यूयार्क भर में खोजा गया। और फिर आखिर खबर आई--जो आदमी सूचना लेकर गया, उसने खबर दी लिख कर--कि न्यूयार्क में परमात्मा नहीं पाया गया।
ऐसे परमात्मा को खोजने जाओगे तो कहीं पाया जाएगा? ऐसे नहीं पाया जा सकता।
मैंने सुना है, एक छोटे बच्चे ने परमात्मा को चिट्ठी लिखी। छोटे बच्चे ऐसा करें तो चलेगा, मगर बड़े-बड़े जब लिखने लगते हैं, उम्र वाले जब लिखने लगते हैं तो बहुत हंसी आने लगती है। एक छोटे बच्चे ने चिट्ठी लिखी कि मेरे पास किताबें भी नहीं हैं, सिलेट-पट्टी भी नहीं है और अगर पच्चीस रुपये एक तारीख तक न आ गए, तो मैं फीस भी न भर सकूंगा, पिता बीमार हैं, घर में खाने को दाना नहीं है। जल्दी ही पच्चीस रुयया मनीआर्डर से भेज दें। स्वभावतः चिट्ठी तो वहां पहुंची जहां खोई हुई चिट्ठियां पहुंचती हैं, जिनको लेने वाला कोई नहीं मिलता। वहां क्लर्कों ने खोली। पोस्ट मास्टर को दी कि इस चिट्ठी का क्या करें? इसको कहां भेजें? पोस्ट मास्टर को दया आ गई। ... बेचारा बच्चा! उसने कहाः भई, कुछ इकट्ठा करके, सब मिल-जुल कर इसको पच्चीस रुपये भेज दो। इकट्ठे तो किए। बीस ही रुपये इकट्ठे हुए। तो उसने कहाः बीस ही भेज दो, जितने हों, उतने ठीक। बीस रुपये का मनीआर्डर बच्चे को पहुंचा। तीसरे दिन चिट्ठी आई बच्चे की, कि हे परमात्मा, बहुत-बहुत धन्यवाद! लेकिन दुबारा जब रुपये भेजो, तो सीधे भेजना। यह पोस्ट मास्टर पांच रुपया अपनी फीस बीच में खा गया, इसने अपनी दलाली काट ली। अब दुबारा ऐसा मत करना।
लेकिन लोगों की परमात्मा के संबंध में धारणा बस ऐसी ही है। तुम जब हाथ उठाते हो आकाश की तरफ, तब तुम बचकानी धारणा से भरे हुए मत रहना कि वहां कोई

बैठा सुन रहा है। वहां नहीं है परमात्मा--यहां है, अभी है। चारों ओर है। वही है। उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। अब इसको कैसे सिद्ध करें? वृक्ष हैं, हवाएं आ रही हैं, वर्षा हो रही है, पक्षी गीत गा रहे हैं, लोग बैठे हैं। ये सब परमात्मा हैं। अब इसको कैसे सिद्ध करें? तुम परमात्मा हो, पूछने वाला परमात्मा है। इसको कैसे सिद्ध करें? यह तो सिद्ध है ही। इसे सिद्ध जो करे वह नासमझ ही है।
हमें कुदरत ने नहीं क्या-क्या दिया,
किंतु हमने कुछ नहीं उससे लिया,
हम रहे अंधे
किरन भी सूर्य की हमने नहीं पी--
सांस भी पूरी नहीं ली फेफड़ों में,
बंद कमरों में विरस बैठे रहे,
मानकर ऐसा, कि हम हैं सब--
जड़ से शाख तक ऐंठे रहे।
अकड़ो मत। जरा शिथिल हो जाओ और परमात्मा सिद्ध हो जाएगा। तुम जितने अकड़ोगे, उतना परमात्मा असिद्ध हो जाएगा। तुम जितने तरल होओगे, सरल होओगे, उतना परमात्मा सिद्ध हो जाएगा।
और ध्यान रखना, तुम्हारे मानने को मानने से परमात्मा को भेद नहीं पड़ता, तुम्हीं को भेद पड़ता है।
नीत्शे ने घोषणा की थी सौ वर्ष पहले कि परमात्मा मर गया। परमात्मा नहीं मरा, लेकिन घोषणा करने के बाद नीत्शे निश्चित पागल हो गया। पागलखाने में मरा। और उसकी घोषणा धीरे-धीरे इस सदी की घोषणा बन गई। यह पूरी सदी पागल हुई जा रही है। यह पूरी सदी पागल होकर मर सकती है। परमात्मा नहीं मरा उसकी घोषणा से, आदमी मर गया।
हमारे अविश्वास करने से
भगवान मर नहीं पाता।
हम न डरें उससे, तो इससे वह डर नहीं जाता,
बल्कि मर जाते हैं हम उसी क्षण जब
भरोसा उठ जाता है हमारा
प्रकाशित होने में किसी बड़े प्रकाश से।
रोज नये सिरे से जन्म लेने के बजाय
होते हैं हम हर रोज अधिक हताश से
अपने प्रति, अपनों के प्रति
जो देखे थे जान-बूझ कर
उन सपनों के प्रति।
परमात्मा एक प्रकाश है, तुमसे बड़ा। तुमसे कुछ बड़ा है इस जगत में, तुम्हें किसी ने घेरा है--इस प्रतीति का नाम परमात्मा है। तुम पर जगत समाप्त नहीं है, इस बोध का नाम परमात्मा है। तुम्हारे आगे और भी यात्रा है। तुम्हारे आगे और भी मंजिलें हैं। तुम्हारे आगे और भी आसमान हैं। इस बात की प्रतीति है परमात्मा। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है--संभावना है। तुम और भी हो सकते हो; जितने तुम अभी हो, यह कुछ भी नहीं है।
हमारे अविश्वास करने से भगवान मर नहीं पाता,
हम न डरें उससे, तो इससे वह डर नहीं जाता,
बल्कि मर जाते हैं हम उसी क्षण जब
भरोसा उठ जाता है हमारा प्रकाशित होने में
किसी बड़े प्रकाश से।
ज्योति से ज्योति जले! जब तुम्हारा भरोसा होता है अपने से बड़े पर, तुम उसी भरोसे में बड़े होने लगते हो। तुम्हारा जब भरोसा होता है विराट पर, तो उसी भरोसे में तुम फैलने लगते हो, असीम होने लगते हो।
नहीं; मैं परमात्मा को सिद्ध न कर सकूंगा। क्योंकि परमात्मा कोई वस्तु नहीं है जो सिद्ध की जा सके; कोई व्यक्ति नहीं है जिसको खींच कर तुम्हारे सामने लाया जा सके। परमात्मा तुम्हारे होने की अनंत संभावना

है। तुम होओगे, तो ही जानोगे। तुम पाओगे, तो ही जानोगे। पाने की राह बताई जा सकती है। परमात्मा होने का मार्ग बताया जा सकता है।
परमात्मा तुमसे भिन्न थोड़े ही है कि तुम कभी उसका साक्षात्कार लोगे,
कि उससे भेंट-वार्ता होगी। जिस दिन तुम जागोगे अपनी पूरी संभावना में, जिस दिन तुम्हारी पूरी संभावना वास्तविक बनेगी, तुम पाओगे तुम परमात्मा हो। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि तुम पाओगे, तुम परमात्मा हो, और कोई परमात्मा नहीं है। उस क्षण तुम पाओगे कि सब परमात्मा है। परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।
शांति भीतर है, उसे पहले सहेजो,
बिना उसके कुछ नहीं बाहर बनेगा,
बिना भीतर को संवारे अगर मारे फिरे--
चार खूंट विचित्र जग में
तो तुम्हें केवल मिलेगी क्लांति,
भीतर शांति है, समझो उसे, उसको सहेजो।
मैं तुम्हें राह दे सकता हूं भीतर शांत होने की, शून्य होने की। उसी शून्य में अनुभूति के स्वर उठने शुरू होते हैं।
मैं परमात्मा को सिद्ध नहीं कर सकता; लेकिन तुम्हें द्वार दे सकता हूं, जहां से तुम स्वयं सिद्ध कर लोगे कि परमात्मा है। तुम भी किसी और के सामने सिद्ध न कर सकोगे। यह बात सिद्ध-असिद्ध करने की नहीं। परमात्मा के न तो पक्ष में कुछ कहा जा सकता है, न विपक्ष में कुछ कहा जा सकता है। लेकिन जो परमात्मा को खोजने निकलते हैं, वे उसे पा लेते हैं। और जो उसे पा लेते हैं वे ही स्वयं को पाते हैं। क्योंकि स्वयं की आंतरिक सत्ता और परमात्मा एक ही बात के दो नाम हैं।
आत्मा ही परमात्मा है।

आज इतना ही।

ज्योति से ज्योति जले
सत्रहवां प्रवचन

मिटी न दरस पियास

जा घट की उनहारि है, तेसौ दीसत आहि।
सुंदर भूलौ आपुही, सो अब कहिए काहि।।
सुंदर पावन दार कै, भीतरि रहयौ समाइ।
दीरघ मैं दीरघ लगै, चौरे मैं चौराइ।।
सुंदर चेतनि आप यह, चालत जड़ की चाल।
ज्यौं लकरी के अश्व चढ़ि, कूदत डोलै बाल।।
काहू सौं बांभन कहै, काहूं सौं चंडाल।
सुंदर ऐसौ भ्रम भयौं, योंही मारै गाल।।
देह पुष्ट है दूबरी, लगै देह कौं घाव।
चेतनि मानै आपुकौ, सुंदर कौन सुभाव।।
सान्यौ घर मांहे कहै हूं, अपने घर जाउं।।
सुंदर भ्रम ऐसो भयौ, भूलौ अपनौ ठाउं।।
कह्या कछू नाहिं जात है, अनुभव आतम सुक्ख।
सुंदर आवै कंठलौं, निकसित नाहिन सुक्ख।।
सुंदर जाकै बित्त है, सौ वह राखै गोइ।
कौंड़ी फिरै उछालतौ, जो टटपूंज्यौ होइ।।
अंत्यज ब्राह्मण आदि दै, दार मथै जो कोइ।
सुंदर भेद कछू नहीं, प्रकट हुतासन होइ।।
दीपग जोयौ बिप्र घर, मुनि जोयौं चंडाल।
सुंदर दोऊ सदन कौ, तिमिर गयौं तत्काल।।
अंत्यज कै जलकुंभ मैं, ब्राह्मन कलस-मंझार।
सुंदर सूर प्रकाशिया, दुहुंवनि मैं इकसार।।
धर्म सनातन भी है--और नितनूतन भी!
इस विरोधाभास को ठीक से समझें। धर्म सनातन है, क्योंकि सत्य सनातन ही होगा। सत्य समय के अनुसार बदलता नहीं। समय की कोई भी धार सत्य पर रेखाएं नहीं छोड़ती। समय की लहरें उसकी शाश्वतता को नहीं छूती हैं। सत्य तो जैसा है वैसा है। आज भी वैसा है, कल भी वैसा था, कल भी वैसा ही होगा। इसीलिए तो उसे सत्य कहते हैं--जो सदा एकरस है, एक जैसा है।
इसीलिए तो स्वप्न और सत्य का भेद है। स्वप्न अभी है अभी नहीं। अभी उठा, अभी गया। लहर की भांति। सत्य उस सागर की भांति है जिसमें लहरें उठती हैं, गिरती हैं, और जो सदा है।
पहली बातः सत्य सनातन है, शाश्वत है, समयातीत है; लेकिन साथ ही, मौलिक
भी नितनूतन भी। क्योंकि जब भी सत्य की अवधारणा होती है, जब भी कोई प्राण सत्य को अपने भीतर अनुभव करते हैं, तब वह अनुभव किसी और का अनुभव नहीं होता, अपना ही अनुभव होता है; निज अनुभव होता है--इतना निज कि ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वह किसी की पुनरुक्ति है।
बुद्ध ने सत्य को जाना, महावीर ने सत्य को जाना, कबीर ने जाना, नानक ने जाना, सुंदरदास ने जाना। लेकिन जिसने भी जब जाना, तब इतनी निजता में जाना कि उसे किसी और के सत्य की पुनरुक्ति नहीं कहा जा सकता। बुद्ध उसके गवाह हो सकते हैं, लेकिन वह वही अनुभव नहीं है जो बुद्ध को हुआ। सुंदरदास अपने ढंग से जानेंगे! बुद्ध ने अपने ढंग से जाना था। उन ढंगों में भेद है। सुंदरदास की प्रतीति ऐसी है जैसी कभी हुई ही न हो। तुमसे पहले भी बहुत लोगों ने प्रेम किया है; लेकिन जब तुम प्रेम करोगे तो ऐसा थोड़े ही समझोगे कि यही पुनरुक्ति उन सारे प्रेमियों के प्रेम की पुनरुक्ति है। यद्यपि प्रेम का तत्त्व तो एक ही है, लेकिन हर बार नया रंग लेता है, नया ढंग लेता है। प्रेम का स्वर तो एक ही है, लेकिन हर बार नये गीतों में ढलता है। प्रेम की वीणा तो एक ही है, लेकिन हर बार जब कोई संगीतज्ञ उसके तार छेड़ता है, तो उस छेड़ने में नयापन होता है।

सत्य शाश्वत भी है--और सदा नया भी! जैसे सुबह की ताजी-ताजी ओस, इतना नया! और इतना पुराना जैसे सूरज।
इस विरोधाभास को ठीक से न समझा जाए तो बहुत अड़चन होती है। कुछ लोग मान लेते हैं कि सत्य पुराना ही है; इसलिए जो भी पुराना है वह सत्य है। इसलिए पुराने की पूजा शुरू होती है, नये का भय शुरू हो जाता है। इससे पुराणपंथी पैदा होता है, मुर्दा आदमी पैदा होता है--जिसके जीवन में कोई नई उमंग नहीं होती, नये उत्साह की तरंग नहीं होती; जिसके जीवन में सब बासा-बासा होता है। वह तोते की तरह गीता दोहराता है, तोते की तरह कुरान दोहराता है। उसकी वाणी झूठ। उसका व्यक्तित्व झूठ। उसका जीना एक पाखंड।
यह भ्रांति बड़े जोर से हुई है। करोड़ों लोगों को हुई है। तो वे पुराण
की पूजा में ही समाप्त हो जाते हैं। फिर वे उसी सत्य को खोजते रहते हैं जो बुद्ध को हुआ था, कृष्ण को हुआ था, क्राइस्ट को हुआ था, मोहम्मद को हुआ था। और वह सत्य तुम्हें कभी नहीं होनेवाला है, क्योंकि परमात्मा दो व्यक्ति कभी एक जैसे नहीं बनाता। यही तो व्यक्तित्व की गरिमा है कि हर व्यक्ति अनूठा है, अद्वितीय है, बेजोड़ है, अतुलनीय है। उसकी कोई तुलना नहीं हो सकती। बस एक व्यक्ति ही परमात्मा बनाता है, उस जैसे और व्यक्ति नहीं बनाता। नहीं तो व्यक्ति यंत्र हो जाए, जैसे सड़क पर फीएट कारें, बहुत सी एक जैसी, कारखाने से निकलती हैं।
परमात्मा ने आदमी का कोई कारखाना नहीं बनाया है, एक-एक आदमी को गढ़ता है। उसी प्रेम से, उसी आनंद से, जैसे उसने औरों को गढ़ा था। जब तुमको गढ़ा तो उसके प्रेम में जरा भी कमी नहीं थी। और जब तुम्हें नाक-नक्श दिया और तुम्हारी श्वासों में श्वास फूंकी तो जरा भी कम आह्लादित नहीं था। ऐसा नहीं कि बुद्ध को श्वास देते वक्त ज्यादा आह्लादित था और तुम्हें श्वास देते वक्त कम।
यह अस्तित्व सभी के साथ समान व्यवहार करता है। यह सभी को समान सम्मान देता है, समान प्रेम देता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अनूठा है और उसमें सत्य का जो प्रतिफलन बनेगा वह भी अनूठा होगा। इसलिए तुम बुद्ध के सत्य को मत खोजना। वह तुम्हें कभी नहीं मिलेगा। तुम्हें तो अपना ही सत्य खोजना पड़ेगा। कुछ लोग यह सोच कर कि सत्य सनातन है, वेदों की पूजा में लगे हैं और उनके भीतर का वेद सोया ही पड़ा रह जाता है। बाहर के वेद की खोज करोगे तो भीतर का वेद जागेगा कैसे? तुम्हारी ऊर्जा तो बाहर के वेद के आस-पास पूजा और परिक्रमा करती रहती है, तुम्हारे भीतर की ऋचाएं कैसे निर्मित हों? तुम्हारे भीतर सोए हुए स्वर कैसे जगें? तुम्हारी बांसुरी कैसे गुंजार से भरे? तुम तो बाहर के काबा की यात्रा कर रहे हो, भीतर के काबा की यात्रा कौन करेगा?
तो एक भ्रांति यह, जिससे बचना, कि सत्य केवल वही है जो पुराना है।
फिर दूसरी भ्रांति पैदा होती है--इसके विपरीत। हर भ्रांति अपने विपरीत दूसरी भ्रांति को भी जन्म दे देती है। कुछ लोग हैं जो मानते हैं सत्य नया ही है। पुराना हो ही नहीं सकता। इसलिए पुराने को आग लगा दो। इसलिए तोड़ दो मंदिरों और मस्जिदों को। इसलिए जला दो शास्त्रों को। सत्य तो नया है और प्रत्येक व्यक्ति का अपना है। इसलिए क्या प्रयोजन है पुराने की तरफ देखने से? यह दूसरी भूल।
सत्य नया है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना ही होने वाला है। लेकिन ऐसे
ही अनेक व्यक्तियों को पहले भी हुआ है। और उसके ढंग कितने ही भिन्न रहे हों, रंग कितने ही भिन्न रहे हों, उसकी मौलिक आधारशिला तो एक ही है। जैसे आकाश में चांद निकले, फिर तुम्हारे घर की छोटी सी तलैया में उसका प्रतिबिंब बने, और किसी के बड़े सागर में उसका प्रतिबिंब बने, दीन-हीन के घर, और समृद्ध के घर--सब जगह उसके प्रतिबिंब बनेंगे। प्रतिबिंब भिन्न-भिन्न होंगे और नये-नये होंगे, रोज नये होंगे, रोज नये होंगे; लेकिन जिसका प्रतिबिंब है वह तो एक ही है।
तुम्हारे भीतर जब ऋचा का जन्म होगा, तुम्हारी जब अपने भीतर की आयत प्रकट होगी, जब तुम गुनगनाओगे अपना गीत जिसे गाने को तुम आए--तो तुम चकित

रह जाओगे कि यही तो वेद के ऋषियों ने गाया है। यही तो कुरान है। यही तो बाइबिल है।
जिस दिन कोई जगता है अपने सत्य के प्रति, उस दिन एक अनूठा अनुभव होता है--कि मेरा सत्य मेरा ही नहीं है, जिनने भी जाना है सबका है, और जो भी आगे जानेंगे उनका भी है।
तो सत्य न तो सिर्फ नया है। इस भ्रांति में मत पड़ना। वह क्रांतिकारी
की भ्रांति है। और न सत्य सिर्फ पुराना है। उस भ्रांति में भी मत पड़ना। वह प्रतिक्रांतिवादी की भ्रांति है। सत्य तो दोनों है--पुराने से पुराना, नये से नया। पहाड़ों जैसा पुराना और ओस की बूंदों जैसा नया! यही तो सत्य की रहस्यमयता है। अति प्राचीन, नितनूतन!
अगति की, प्रगति की बड़ी धूम, लेकिन
वही लास है, बस कि नट ही नये हैं।
मनुज जन्म लेकर बिना मौत डूबा
न जो खोज पाया सनेही सहारे
दिवस भर तिरी जो तरी जिंदगी थी
कहीं रात को रोज लगती किनारे, शिखर से उदधि तक कि निर्बाध बहती नदी तो वही बस कि तट ही नये हैं। तिमिर अप्सरी ने, मदिर बेसुधी में शिथिल भुज-लता-पाश-बंदी बनाया किरन-सुंदरी ने सुबह गुदगुदा कर सुनहले करों से पलक छू जगाया
भरे जा रहे जागरण स्वप्न में जो वही रंग हैं बस कि पट ही नये हैं। भले ही मुझे तुम पुरातन समझ लो
चिरंतन स्वरों पर उठा जोश हूं मैं
तुम्हें भ्रम हुआ है, अचेतन नहीं हूं
अमर ताल पर झूम मदहोश हूं मैं
जिसे हम पिए औ" जीए जा रहे हैं
सुरा है वही बस कि घट ही नये हैं।
कुछ नया है, कुछ पुराना है। ऐसे ही तो सारा अस्तित्व जुड़ा है।
सुरा है वही, बस कि घट ही नये हैं।
सुंदरदास के ये वचन सारे शास्त्रों का सार हैं, और फिर भी किसी शास्त्र की पुनरुक्ति नहीं। और जब भी तुम किसी सदगुरु के पास बैठोगे तो यही पाओगे। उसके वचनों में सारे शास्त्रों का सार होगा और फिर भी किसी शास्त्र की पुनरुक्ति नहीं होगी। और जहां तुम्हें ऐसा अनुभव हो, वहीं जानना कि सत्य का पुनः पदार्पण हुआ है, सत्य फिर उतरा है, सत्य की किरण फिर जमीन पर आई है, बसंत फिर आया है, कलियां फिर खिली हैं। जहां तुम तोतों की तरह पुराने का उदघोष सुनो--बस पुराने का उदघोष सुनो--वहां से सावधान रहना! और जहां तुम उनके विपरीत सिर्फ नये और नये की ही अर्चना पाओ, वहां से भी सावधान रहना! पुराना और नया जहां एक साथ खड़े हों, जहां पुराने ने पुरानापन छोड़ दिया हो और नये ने नयापन छोड़ दिया हो, जहां दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हो गए हों, वहीं जानना कि सत्य का अवतरण हुआ है।
यह बसंत समीर आया झूम कर
यह कली का लाज बंधन खुल गया!
ऐसा जहां बसंत का समीर आता है वहीं कली टूटती है और फूल बनती है।
यह बसंत समीर आया झूम कर
यह कली का लाज बंधन खुल गया
खेल माटी में हुआ बचपन विदा
हुई वय में किरन से रंगरेलियां
हरित क्षौम पहिन जवानी आ गई
पवन से होने लगीं अठखेलियां फसल के सूरज-सुनहले अंग पर

गगन से यह रंग-केशर ढुल गया! यह बसंत समीर आया झूम कर
यह कली का लाज बंधन खुल गया! बुलबुला ही एक पानी का सही कौन कहता है कि आकर फंस गया जिया मैं जीवन लहर के वक्ष पर
और बीता तो मरण पर हंस गया
स्नेह-रस मैं हूं फसल के अंग पर
जो उभरते रंग में मिल घुल गया।
यह बसंत समीर आया झूम कर
यह कली का लाज बंधन खुल गया!
जहां तुम्हें पुराने और नये का आलिंगन मिले, जहां सनातन और नूतन गलबहियां डाले मिलें, वहीं जाना कि सत्य का पदार्पण हुआ है।
सुंदरदास जो कह रहे हैं वह सब शास्त्रों का सार, फिर भी किसी शास्त्र
की पुनरुक्ति नहीं, उनका निज अनुभव है। उनके वचनों पर ध्यान दो।
जा घट की उनहारि है, तैसो दीसत आहि।
जो जैसा है उसे वैसा दिखाई पड़ता है। यह सूत्र कीमती है। जिसको जैसा दिखाई पड़ रहा है उसके आधार पर समसे लेना, उसकी स्वयं की दशा क्या है। अंधे को प्रकाश दिखाई नहीं पड़ता। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि प्रकाश नहीं है।
इससे बस इतना ही सिद्ध होता है कि अंधा अंधा है, उसके पास आंख नहीं है। बहरे को पक्षियों के गीत सुनाई नहीं पड़ते। इससे ऐसा मत सोच लेना कि प्रकृति गूंगी है, कि अस्तित्व गूंगा है। इससे ही जानना कि तुम्हारे पास सुनने की संवेदना नहीं है, संवेदनशीलता नहीं है। तुम बहरे हो।
पर आदमी का अहंकार इससे उलटी ही बात मनवाने का आग्रह करता है। अगर पक्षियों के गीत सुनाई न पड़ते हों तो अहंकार यही कहता है कि गीत होंगे ही नहीं। और अगर प्रकाश न दिखाई पड़ता हो तो अहंकार यही कहता है प्रकाश है ही नहीं, इसलिए दिखाई नहीं पड़ता है। अहंकार दोष अपने ऊपर नहीं लेता। अहंकार सदा ही दोष को किसी और पर टाल देता है। और जब तक तुम अहंकार की इस चाल से सावधान न होओगे, तुम उसके जाल में गिरते ही रहोगे। अहंकार सदा दोष टाल देता है। और जो दोष टाल दिया वह बना रहता है।
दोष को स्वीकार करो, अंगीकार करो। अगर प्रकाश न दिखाई पड़ता हो, इसके पहले कि प्रकाश का निषेध करने जाओ, इनकार करने जाओ, खूब भीतर टटोल कर देखना कि आंख तुम्हारे पास है या नहीं? सम्यक खोजी पहले भीतर झांकता है। घोषणा नहीं करता कि परमात्मा नहीं है। इतना ही कहता हैः मुझे अनुभव नहीं हो रहा है। तो कहीं मुझ में कुछ चूक होगी। इतने-इतने लोगों को अनुभव हुआ है, इतने- इतने लोगों ने उदघोषणा की है... और इनसे ज्यादा प्रमाणिक आदमी कहां पाओगे? बुद्ध और महावीर और कृष्ण और क्राइस्ट जिसकी गवाही में खड़े हों, और गवाह कहां खोजने जाओगे? इनसे ज्यादा प्रमाणिक गवाह कहां पाओगे? लेकिन फिर भी तुम अपने अहंकार की मान लेते हो। सदियों की गवाही को झुठला देते हो। श्रेष्ठतम की गवाही को झुठला देते हो।
वेदों से लेकर आज तक जिनने भी जाना, उन सबने उसके होने की घोषणा की है। मगर तुम उन सारों को इनकार कर देते हो, अपने अहंकार की मान लेते हो। जरा सोचो तो, किसकी तुम मान रहे हो, अपनी? --जिसे यह भी पता नहीं कि मैं कौन हूं! जिसे यह भी पता नहीं कि मैं कहां से आता हूं! जिसे यह भी पता नहीं कि मैं कहां जाता हूं! जिसे कुछ भी पता नहीं। जिसने भीतर उतर कर कभी देखा भी नहीं कि कौन यहां बसा है! जिसकी अपने से पहचान भी नहीं है, उसकी मान रहे हो! तुम.जरा एक बार अपना विचार तो कर लो! तुम्हारी बात का मूल्य कितना है? मगर नहीं; अहंकार कहता है ईश्वर नहीं है। क्योंकि अहंकार यह स्वीकार नहीं कर सकता कि मैं अंधा हूं। अहंकार यह स्वीकार नहीं कर सकता कि मैं अज्ञानी हूं। अगर ईश्वर है तो मैं अज्ञानी हूं।
फ्रेड्रिक नीत्शे ने ईश्वर के खिलाफ बहुत सी बातों में एक बात यह भी कही है--कि अगर ईश्वर है तो मैं अज्ञानी हूं और यह मैं मानने को राजी नहीं! मतलब समझे? अगर ईश्वर है तो एक बात तो साफ हो गई कि मैंने उसे नहीं जाना

है। तो मैं अज्ञानी हो गया। और अहंकार अपने को ज्ञानी मानना चाहता है, अज्ञानी नहीं। इसलिए अहंकार इनकार देगा ईश्वर को--एक रास्ता। दूसरा रास्ता--दूसरों ने जाना है उनके जानने को ही अपना जानना मान लेगा। वह भी अहंकार का बचने का ही रास्ता है। गीता कंठस्थ कर लेगा और कहेगा कि ठीक है ईश्वर है। और गीता के वचन दोहराओगे तुम। लेकिन वे वचन तुम्हारे नहीं। तुम्हारे भीतर कृष्ण अभी जागा नहीं। तुम्हारे भीतर अभी तो कुरुक्षेत्र का युद्ध भी नहीं हुआ। तुम्हारे भीतर तो अंधेरे और प्रकाश में संघर्ष भी नहीं हुआ! तुम्हारे भीतर अभी प्रकाश की जीत तो अभी बहुत दूर है। अभी वह घड़ी बहुत दूर है। तुम तो अंधेरे में दबे पड़े हो। तुम कृष्ण के शब्द दोहराते हो, वे झूठे हैं तुम्हारे ओठों पर।
सत्य भी असत्य हो जाता है अगर अपना अनुभव न हो। तुम्हारे विश्वास सिर्फ तुम्हारे अज्ञान को छिपाने की व्यवस्था के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। अविश्वास भी अज्ञान को छिपाने का उपाय है कि ईश्वर है ही नहीं तो जानने का कोई सवाल नहीं उठता। और विश्वास भी अज्ञान को छिपाने का उपाय है कि ईश्वर है, हम तो मानते ही हैं, हम तो जानते ही हैं; अब और जानने को क्या बचा?
.जरा तुम देखना गौर से। आस्तिक और नास्तिक में बहुत फर्क नहीं है। जितना गहरा देखोगे उतना ही पाओगे, फर्क बिल्कुल नहीं है। मैंने आस्तिक भी देखे और नास्तिक भी देखे और दोनों को एक जैसा पाया, बिल्कुल एक जैसा पाया। यद्यपि उनकी बातों में बड़ा विरोध है। एक कहता है ईश्वर है, एक कहता है ईश्वर नहीं है। मगर वे सब ऊपर-ऊपर के विरोध हैं। भीतर अगर गौर से देखोगे तो दोनों ने अपने अहंकार को बचाने की अलग-अलग तरकीबें छांट ली हैं। दोनों बच रहे हैं।
धार्मिक व्यक्ति वह है, जो बचता नहीं, जो नहीं चाहता--जो रूपांतरित होना चाहता है। जो अपने को नग्न छोड़ता है सत्य के साथ। मुझे पता नहीं है, इसलिए मैं कैसे कहूं है, मैं कैसे कहूं नहीं है? इतना ही मैं कर सकता हूं, इतना ही मेरे बस में है कि मैं अपने चैतन्य को और जगाऊं, और प्रज्ज्वलित करूं, शायद मेरी चेतना और जागे तो मुझे कुछ पता चले।
तुम थोड़ा सोचो। रात तुम सो जाते हो। तुम्हें अपने कमरे में भी क्या है, इसका पता नहीं रह जाता है। रात घर में चोर घुस जाएं और तुम्हारी तिजोरी ले जाएं, तुम्हें इसका भी पता नहीं चलता। दिन तुम जब जागे होते हो, तब चोर नहीं घुस सकते। तब तुम्हारी तिजोरी नहीं चुराई जा सकती! क्योंकि तब तुम्हें दिखाई पड़ता है तुम्हारे आसपास क्या है।
रात जब तुम सो जाते हो, तुम्हारे पास जो थोड़ी सी चेतना है वह भी खो जाती है। तुम्हें कुछ होश नहीं रहता। दिन तुम जाग आते हो, थोड़ी सी चेतना वापस लौट आती है।.जरा सोचो, क्या चेतना और भी बढ़ सकती है? क्या चेतना और सघन हो सकती है? शायद चेतना और सघन हो जाए, और प्रज्ज्वलित हो जाए, तो जो मुझे अभी नहीं दिखाई पड़ रहा है, वह भी दिखाई पड़ने लगे। चेतना सघन हो सकती है, क्योंकि तुम भी कई बार पाते हो तुम्हारी चेतना सघन होती है। चौबीस घंटे में तुम्हारी चेतना एक जैसी नहीं होती, उसमें उतार-चढ़ाव होते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने गहरे अध्ययन से यह बात अब स्वीकार की है। अब यह वैज्ञानिक प्रमाणों से आधारित, वैज्ञानिक प्रमाणों से सिद्ध भी हो गई है बात, कि चौबीस घंटे तुम्हारी चेतना में बहुत उतार-चढ़ाव आते हैं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, दो तरह के लोग होते हैं। एक तो वे लोग, सुबह जिनकी चेतना बहुत प्रखर होती है और सांझ होते-होते धूमिल हो जाती है। दूसरे वे लोग, सुबह जिनकी चेतना धूमिल होती है और सांझ होते-होते प्रखर हो जाती है। इनमें बड़ा फासला होगा। इनमें तालमेल बिठालना मुश्किल होता है। जिस व्यक्ति की चेतना सजग होती है, वह जल्दी उठ आएगा। ब्रह्ममुहूर्त में उठ आएगा। जितना जल्दी सुबह उठेगा, उतना दिन भर ताजा रहेगा! उसके जीवन की सबसे गहन घड़ी सुबह ही होने वाली है। सूरज को उगते देखेगा, पक्षियों के गीत सुनेगा, वृक्षों की हरियाली देखेगा। प्रभात बाहर ही नहीं होता, उसके भीतर भी होता है। और वह इतना जाग्रत होता है सुबह कि वह उस घड़ी को चूक नहीं सकता। ऐसे ही लोगों ने ब्रह्ममुहूर्त में उठने की बात कही होगी।

लेकिन कुछ लोग हैं, जिनको अगर तुम सुबह जल्दी उठा लो, तुमने उनका दिन
भर मार दिया, दिन भर खराब कर दिया। फिर वे दिन भर उदास और खिन्न मना रहेंगे। उखड़े-उखड़े, टूटे-टूटे, बिखरे-बिखरे, खंड-खंड। दिन भर उन्हें लगेगा कि कुछ चूक गए, कहीं कुछ बात कमी रह गई! सांझ होते-होते ऐसे लोग प्रखर होते हैं चैतन्य में। ऐसे ही लोग सांझ को क्लब-घरों में इकट्ठे होते हैं, नाचते हैं, गाते हैं रात देर तक गपशप करते हैं। आधी रात हो जाए तभी सो सकते हैं, उसके पहले नहीं सो सकते! उनके चैतन्य की घड़ी रात में आती है। संध्या के साथ उनका वास्तविक जीवन शुरू होता है। चांद के उगने के साथ उनके भीतरि कुछ उगता है। या आकाश जब तारों से भर जाता है तब उनकी चेतना सघन होती है।
तुम गौर करना, तुम भी यह पाओगे! और जो सुबह ज्यादा सजग होते हैं, वे सांझ बारह घंटे के याद, ठीक उलटे छोर पर पहुंच जाते हैं। और जो सांझ सजग होते हैं, वे सुबह बारह घंटे के बाद ठीक उलटे छोर पर पहुंच जाते हैं। तुम्हारे भीतर एक वर्तुल है। जब तुम्हारी चैतन्य की घड़ी खूब प्रखर होती है तब तुम जो भी करोगे वह शुभ होगा, तब तुम जो भी करोगे सफल होओगे! क्योंकि तुम्हारी पूरी प्रतिभा उसमें संलग्न होगी।
अभी तो मनोवैज्ञानिकों ने यह कहना शुरू किया है कि सभी विद्यार्थियों
की परीक्षा एक ही समय में नहीं ली जानी चाहिए, यह अन्याय है। अगर सुबह परीक्षा लेते हो तो जो लोग सुबह शिथिल होते हैं, मंद होते हैं, उनके साथ अन्याय हो रहा है। वे नाहक पिछड़ जाएंगे! जो सुबह ताजे होते हैं वे सुविधा से आगे निकल जाएंगे, गोल्ड मैडल उनके होंगे। यह अन्याय है। जो सांझ ताजे होते हैं उनकी सांझ ही परीक्षा होनी चाहिए, सुबह नहीं। तभी उनको ठीक-ठीक मौका मिलेगा। जल्दी ही परीक्षाओं में यह व्यवस्था लागू करनी पड़ेगी। यह तो ज्यादती है। और यह उनके हाथ के बाहर है बात। यह उनके शरीर की रासायनिक प्रक्रिया है, इसको बदला नहीं जा सकता।
इसलिए यह भी तुम ख्याल में ले लो, जिस आदमी को सुबह उठना ठीक न मालूम पड़ता हो, वह जिंदगी भर कोशिश करे तो भी सफल नहीं हो पाएगा। इसको बदला नहीं जा सकता। यह तो तुम्हारे रोएं-रोएं में समाई हुई बात है। यह तुम्हारे मूल कोष्ठों में समाई बात है। अच्छा यही है कि तुम इसके साथ अपने को समायोजित कर लो, बजाय इसके कि इससे व्यर्थ लड़ते रहो।
तुम्हारे चौबीस घंटे में भी जब तुम्हारी चेतना सघन होती है, तब तुम्हारे जीवन में कुछ बातें घटेंगी वे उस समय कभी नहीं घटेंगी जब तुम्हारी चेतना कम सघन होती है--अर्थात जब तुम्हारी चेतना ज्यादा सघन होगी तब तुम पाओगे वृक्ष थोड़े ज्यादा हरे हैं और पक्षियों के गीत ज्यादा मधुर हैं! लोग ज्यादा प्यारे हैं! अस्तित्व में अर्थवत्ता है। तुम्हें गालियां कम और गीत ज्यादा सुनाई पड़ेंगे! तुम मस्त हो तो सारा अस्तित्व मस्ती से भरा मालूम पड़ेगा। तुम्हारे भीतर पुलक है तो तुम वृक्ष के पत्ते- पत्ते में पुलक पाओगे! तुम्हारे भीतर नाच चल रहा है तो जो भी तुम्हें मिलेगा उसके भीतर तुम नाच को झलकता हुआ पाओगे। और जब तुम उदास हो और खिन्नमना और जब तुम्हारी घड़ी बुरी है, तब तुम पाओगे सारा जगत उदास है। वृक्ष रोते से खड़े हैं, फीके से खड़े हैं, फीके से; जैसे रस किसी ने निचोड़ लिया हो। चांद भी निकलता है तो रोता सा; जैसे आंसू टपक रहे हों! गालियां ज्यादा सुनाई पड़ेंगी, गीत मुश्किल हो जाएंगे सुनाई पड़ना। जीवन में शिकायत मालूम होगी। संदेह ही संदेह सघन हो जाएंगे, श्रद्धा मुश्किल हो जाएगी। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी श्रद्धा का क्षण खोजना चाहिए। वही उसकी प्रार्थना का और ध्यान का क्षण है। लोग मुझसे पूछते हैं, हम ध्यान कब करें? ऊपर से कोई चीज थोपी नहीं जा सकती। तुम्हें खोजना होगा! और अगर तुम एक तीन सप्ताह निरीक्षण करोगे तो तुम पा लोगे, तीन सप्ताह डायरी में लिखते चले जाओ--कि चौबीस घंटे में तुम कब अच्छा अनुभव करते हो, कब बुरा अनुभव करते हो। और ध्यान रहे, अक्सर तुम यह सोचते हो कि बुरा मैं इसलिए अनुभव कर रहा हूं कि फलां आदमी ने फलां बात कह दी, या ऐसा हो गया, या पत्नी आज प्रसन्न नहीं है इसलिए मैं जरा उदास हूं, कि बच्चे ने कुछ चीजें तोड़ दी हैं, कि बच्चा फेल हो गया है। नहीं; तुम अगर तीन सप्ताह नियमित रूप से विचार करते रहोगे, तुम पाओगे बाहर से कुछ फर्क नहीं पड़ता। तुम्हारे भीतर

ही कुछ घट रहा है। और जल्दी ही तुम सूत्र पकड़ लोगे और जो घड़ी तुम्हारे भीतर सर्वाधिक चैतन्य की हो, वही प्रार्थना की घड़ी है। सबकी अलग-अलग होगी। प्रत्येक की अपनी-अपनी होगी। और जो घड़ी तुम्हारे भीतर सबसे उदासी की घड़ी हो, सबसे खिन्न होने की घड़ी हो, उस घड़ी में द्वार-दरवाजे बंद करके बिस्तर में पड़ रहना। उस घड़ी में बाहर जाना भी खतरनाक है, किसी से बात करना भी बुरा है। उस घड़ी में कुछ न कुछ बुरा हो जाएगा। तुम कुछ बात कह दोगे जो खटक जाएगी और जिसके लिए तुम पीछे पछताओगे। तुम्हारी खिन्न घड़ी में क्रोध आसान होगा, करुणा कठिन होगी। और तुम्हारी प्रफुल्ल घड़ी में करुणा आसान होगी, क्रोध कठिन होगा।
सूत्र--
जा घट की उनहारि है, तैसो दीसत आहि
जो जैसा है, उसे वैसा दिखाई पड़ता है।
बड़ी गुम सुम दोपहरी है
कि पंछी भी फड़कता तक नहीं है
कि पत्ता भी खड़कता तक नहीं है।

कि चुप का और गाढ़ा रंग हुआ
कहां बोली टिटहरी है?
चिलकती धूप की चादर तनी है भटकता हूं कहां छाया घनी है तपन के एक-एक नवीन क्षण में उभरती प्यास गहरी है!
नदी क्या? एक रेखा जल रही है
सिसकती सांस है, बल चल रही है
नये आषाढ़ की बदली नवेली
न जाने कहां ठहरी है?
बड़ी गुम सुम दोपहरी है!
जब तुम भीतर गुम-सुम हो, सब गुम-सुम है। ध्यान रखना, बाहर दोपहरियां नहीं हैं, दोपहरियां तुम्हारे भीतर हैं। न तो सांझ बाहर है, न सुबह बाहर है। न दिन बाहर है, न रात बाहर है। और न जीवन बाहर है, न मृत्यु बाहर है। सब तुम्हारे भीतर है। जो व्यक्ति कहता है जगत में कोई ईश्वर नहीं है, उस पर दया करना। वह व्यक्ति उदास है, विजड़ित है, उसकी जड़ें टूटी हैं। उसके पास भूमि नहीं है जिसमें अपनी जड़ों को फैलाए और रस मग्न हो, उस पर दया खाना, नाराज मत होना। वह बीमार है, उसे चिकित्सा की जरूरत है।
पश्चिम में एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक कार्ल गुस्ताव जुंग ने अपने जीवन के संस्मरणों में लिखा है--कि जीवन में अनेक-अनेक लोगों की चिकित्सा करने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि चालीस-बयालीस साल के बाद जो लोग भी मेरे पास आते हैं, उनका मौलिक रोग न तो शारीरिक होता है न मानसिक होता है, बल्कि आध्यात्मिक होता है। वे वे लोग हैं जो ईश्वर में श्रद्धा नहीं कर पाए। चालीस-बयालीस साल की उम्र तक तो आदमी किसी तरह खींच लेता है, जवानी का जोश होता है, प्रकृति का प्रवाह होता है, बहा चला जाता है। लेकिन चालीस-बयालीस के बाद मौत दरवाजे पर दस्तक देना शुरू करती है। पैर डगमगाने लगते हैं। जिंदगी उतार पर आ गई। चढ़ाव गया। पैंतीस साल ऊंचाई से ऊंचाई होती है जिंदगी की। अगर सत्तर साल हम औसत उम्र मान लें तो पैंतीस साल में आदमी अपना शिखर छू लेता है, फिर पहाड़ से उतरने लगता है। बयालीस साल के करीब अड़चन आनी शुरू होती है।
जुंग का अनुभव ठीक है। मेरे अनुभव से भी जुंग के अनुभव को स्वीकृति मिलती है, सहारा मिलता है। वे लोग जिन्होंने किसी तरह की श्रद्धा को नहीं जन्माया है, बयालीस साल के बाद अपने को बिल्कुल अकेला पाएंगे; क्योंकि धन भी पा लिया, पद भी पा लिया, दौड़-धूप समाप्त हुई, दोपहरी उतरने लगी, सांझ आने लगी। अब सब बहुत गुम-सुम मालूम होगा। अब पत्नी में भी उतना रस नहीं मालूम होगा, पति में भी उतना रस नहीं है। अब और थोड़ा धन इकट्ठा हो जाएगा तो भी कुछ फर्क नहीं पड़ता। अब एक बात साफ हो गई है कि जवानी का नशा उतर रहा है और अब

आदमी अपने को लुटा-लुटा सा अनुभव करता है। खोया-खोया सा नशा था, चले जाता था। अब नशा टूट रहा है। अब कैसे चले? अब पैर लड़खड़ाने लगते हैं। जो ईश्वर पर श्रद्धा नहीं कर पाया है, जान लेना उसने जीवन की उत्फुल्लता नहीं जानी। उसने जीवन को एक लंबी उदासी बना लिया है। उसने जीवन का उत्सव नहीं जाना! यही है
अपना
मानसरोवर
ये आवाजें
ये थरथराहटें
ये पतन-उत्कर्ष
ये विडंबनाएं
ये संघर्ष!
यहीं किंतु
जीवन;
यहीं ज्योति;
यहीं परमानंद!
उत्सर्ग के सांचे में
यहीं
ढलते हैं
सत्-चित्-आनंद!
यहीं सब है। यहीं है संघर्ष, उपद्रव, युद्ध, हत्याएं-आत्महत्याएं और यहीं है वे नाचते हुए लोग जिनसे ऋचाएं जन्मीं। यहीं कृष्ण की बांसुरी बजी, यहीं तैमूरलंग ने लोगों की हत्याएं कीं। यहीं बुद्ध शांति को उपलब्ध हुए और यहीं लोग पागल हो रहे हैं।
यहीं किंतु
जीवन;
यहीं ज्योति;
यहीं परमानंद!
उत्सर्ग के सांचे में
यहीं
ढलते हैं
सत्-चित्-आनंद!
लेकिन तुम्हारे भीतर जो होगा वही तुम्हें बाहर दिखाई पड़ेगा।
जब कोई कहता है परमात्मा है--मान कर नहीं, जान कर, अनुभव से--तो धन्यभागी है वह व्यक्ति। क्योंकि इसका अर्थ इतना ही होता है, उसके भीतर उत्सव इतना घना हुआ है कि अब उसे चारों तरफ परमात्मा दिखाई पड़ने लगा है। उसके भीतर चेतना इतनी प्रगाढ़ हुई है कि उसे अब पत्थर को चीर कर भी परमात्मा को देखने में अड़चन नहीं है।
जिन्होंने कहा कण-कण में परमात्मा है, वे क्या कह रहे हैं; वे यह कह रहे हैं कि हमारी आंखें इतनी गहरी हो गई हैं अब, कि तुम्हें पदार्थ दिखाई पड़ता है, हमें परमात्मा दिखाई पड़ता है। पदार्थ अंधों को दिखाई पड़ता है। पदार्थ, तुम ऐसा समझो कि जैसे अंधे आदमी ने परमात्मा को टटोल कर देखा
है और उसकी देह भर का उसे पता चला है। अंधा आदमी तो टटोल कर ही देख सकता है। हैलन केलर प्रसिद्ध महिला थी। अंधी भी, बहरी भी, गूंगी भी। अद्भभुत महिला थी। दुनिया के बहुत बड़े-बड़े लोगों से वह मिली। इस जमाने की एक खास प्रतिभा थी। जब जवाहरलाल नेहरू को मिलने आई तो उसने अपने हाथ से उसके चेहरे को छूकर देखा। चेहरा छूकर मालूम है उसने क्या कहा? उसने कहाः ठीक वैसा ही अनुभव होता है जैसा यूनान में संगमरमर की मूर्तियों को छूकर हुआ था।
लेकिन ख्याल करना, तुलना पत्थर से है! प्यारी है तुलना। संगमरमर की यूनान की सुंदर मूर्तियां सुंदरतम हैं। वह यही कह रही कि खूब सुंदर हो तुम; पर फिर भी ख्याल करना, तुलना पत्थर से है। और कितने ही सुंदर होओ,

पथरीलापन है। फिर संगमरमर का ही, क्यों न हो, कितना ही शीतल क्यों न हो, फिर भी कुछ जड़, ठहरा हुआ अवरुद्ध... ।
अंधा आदमी टटोल कर ही देख सकता है। और टटोल कर जो तुम पाओगे वह पदार्थ है, पत्थर है। जागकर, आंख खोल कर जब तुम पाओगे, पदार्थ विलीन हो जाता है। मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं, हैलन केलर ने, अंधी महिला ने जिंदा जवाहरलाल नेहरू के चेहरे को छूकर संगमरमर की प्रतिमाओं का स्मरण किया! इससे उलटा भी होता है, जब आंख वाला आदमी संगमरमर प्रतिमा को देखता है तो भीतर परमात्मा को पाता है। अंधा आदमी जिंदा आदमी को पाकर भी संगमरमर की प्रतिमा पाता है। आंख वाला संगमरमर में भी जिंदा को खोज लेता है।
तुम यह मत सोच लेना कि रामकृष्ण जब अपनी काली की प्रतिमा के सामने नाचते थे तो पत्थर के सामने नाचते थे। भूल कर यह मत सोचना। क्षणभर को भी इस बात को जगह मत देना। रामकृष्ण के लिए वह प्रतिमा पत्थर नहीं थी। रामकृष्ण के पास आंखें थीं वैसी, जो उस प्रतिमा में भी जीवंत को और चिंमय को देख पाती थीं। उनके लिए तो वह जीवंत प्रतिमा थी। उनके लिए पत्थर नहीं था, पाषाण नहीं था।
भक्त के लिए तो पाषाण में भी परमात्मा हो जाता है, लेकिन दूसरों को पत्थर दिखाई पड़ता है। इसलिए मैं कहता हूं जिन मुसलमानों ने हिंदुओं के मंदिर तोड़े और उनकी मूर्तियां तोड़ीं, वे मुसलमान भी नहीं थे। अगर मुसलमान ही होते तो यह संभव नहीं होता। क्योंकि तब वे देख पाते कि पत्थर में भी वही है, प्रतिमा में भी वही है। नहीं; वे केवल अंध-श्रद्धालु थे, विश्वासी थे। उनके पास आंखें नहीं थीं! आंखें होतीं तो कैसे प्रतिमा तोड़ोगे? क्योंकि तुम्हें यह तो दिखाई पड़ जाता है कि यह प्रतिमा होगी सारे संसार के लिए... जब कोई भक्त लेकिन आता है और भाव से भर कर, आनंद-विभोर हो नाचता है, तो प्रतिमा विलीन हो जाती है पत्थर की तरह और प्रतिमा में कुछ प्रकट होता है जो किसी और के सामने प्रकट नहीं होता। देखने की कला चाहिए!
मनसा का दीप
सजग औ विनीत
अगम का अनूप
प्रभा का स्वरूप
कन-कन का दान
अभय प्राणवान!
ज्योति में विशेष
स्नेह में अशेष
नयनों की कोर
काजल की डोर
संयम का पूत
धीरज का दूत!
तमसा का वक्ष
दीपक का कक्ष
निशिभर की जूझ
उज्ज्वल की सूझ
जीए आस-पास
आशा-विश्वास!
विभा के किरीट
लाजभरी दीठ
झिलमिल-अवदात
चेतन की रात
तिमिर के निकुंज
किरनों के पुंज!
सिर का तम भार
उषा के द्वार
हलके से झलके
तमघट से छलके

रवि के आकाश
आभा अविनाश!
तिमिर के निकुंज
किरनों के पुंज!
जिसको दिखाई पड़ता है, उसे तो अंधेरे में भी प्रकाश दिखाई पड़ने लगता है।
तिमिर के निकुंज
किरनों के पुंज
विभा के किरीट
लाजभरी दीठ
झिलमिल-अवदात
चेतन की रात
रात भी दिन हो जाती है, संध्या भी प्रभात हो जाती है। मृत्यु भी महाजीवन का द्वार हो जाती है। लेकिन भीतर दीप जलना चाहिए।
मनसा का दीप
सजग औ विनीत
अगम का अनूप
प्रभा का स्वरूप
कन-कन का दान
अभय प्राणवान्!
सब कुछ तुम पर निर्भर है।
जा घट की उनहारि है, तेसौ दीसत आहि।
सुंदर भूलौ आपुही, सो अब कहिए काहि।।
और सुंदरदास कहते हैंः किसकी तलाश में चले हो, पहले अपनी तो खोज कर लो! सुंदर भूलौ आपुही, तो अब कहिए काहि।
और यह खोज तो तुम्हें ही करनी पड़ेगी, कोई दूसरा तुम्हें न करवा सकेगा।
कोई तुम्हें बता भी न सकेगा। यह तो तुम्हारा अंतर्तम है। वहां तो तुम्हारे अतिरिक्त और किसी की भी गति नहीं है। वहां तो तुम ही आंख बंद करोगे तो पहुंचोगे।
गुरु का काम तो इतना ही है कि इशारे कर दे कि कैसे आंख बंद करो, कि कैसे विचार बंद करो, कि कैसे निर्विचार हो जाओ, कि कैसे बाहर से टूट जाओ, विधि दे दे। लेकिन जाना तुम्हें होगा। वहां तुम अकेले ही पहुंचोगे।
सुंदर भूलौ आपुही... । यह तो देखते ही नहीं कि मैं भूला हूं।
पूछते होः "ईश्वर कहां है! प्रमाण चाहिए! जीवन मृत्यु के बाद बचता है
या नहीं, प्रमाण चाहिए।"
जीवन तुम्हारे भीतर मौजूद है, जिसको कोई मृत्यु न कभी छीन सकी है, न छीन सकेगी। वहीं चलो। वहीं से पहचान होगी। और परमात्मा, जिसको तुम बाहर खोजने चले हो, नहीं मिलेगा, जब तक भीतर न मिल जाए!
भीतर अगर विचारों की छाती में कोयल कुहके
या खिलें फूल
या मिलें वहां दुश्मन मित्र भाव से
तो काफी है; कम से कम मैंने तो यही जाना है
भीतर पाना है उसे पहले
जिसे बाहर अग-जग खिलाना है!
अगर तुम्हें सारे अग-जग को खिला हुआ देखना है, परमात्मा से भरा हुआ देखना है, तो ख्याल रखना--
भीतर पाना है उसे पहले
जिसे बाहर अग-जग खिलाना है!
सुंदर पावक दार कै, भीतरि रहयौ समाइ।
लकड़ी के भीतर आग छिपी है। ऐसे ही तुम्हारे भीतर भी आग छिपी है। शाश्वत अग्नि! उसका ही दूसरा नाम परमात्मा है। अग्नि जीवन का प्रतीक है।
सुंदर पावक दार कै, भीतर रहयौ समाइ।
दीरघ मैं दीरघ लगै, चौरे में चौराइ।।

फिर लकड़ी लंबी हो तो आग की लपट लंबी उठेगी, चौड़ी हो चौड़ी उठेगी, छोटी
हो तो छोटी उठेगी, बड़ी हो तो बड़ी उठेगी। जंगल में आग लग जाए तो भयंकर। लेकिन आग का स्वरूप एक है। और इतना निश्चित है कि प्रत्येक लकड़ी में आग छिपी है। दो लकड़ियों को रगड़ने से पैदा होती है, ऐसा मत सोचना। सिर्फ छिपी थी, प्रकट होती है, पैदा नहीं होती। रगड़ से बाहर आ जाती है।
शिष्य और गुरु के बीच ऐसी ही रगड़ चलती है। ज्योति से ज्योति जले!
दीरघ मैं दीरघ लगै, चौरे मैं चौराइ।।
सुंदर चेतनि आप यह, चालत जड़ की चाल।
ज्यौं लकड़ी के अश्व चढ़ि, कूदत डौले बाल।
छोटे बच्चों को देखा न, लकड़ी के घोड़ों पर सवार हो जाते हैं। खुद ही कूदते हैं और सोचते हैं घोड़ा कूद रहा है। खुद भी कूदते हैं, घोड़े को भी कुदाना पड़ता है, मेहनत दोहरी करनी पड़ती है। अकेले ही कूद लें तो ठीक। घोड़े को भी कुदाना पड़ता है। मगर बड़े मस्त हो जाते हैं। सोचते हैं घोड़ा कूद रहा है और घोड़ा हमें कुदा रहा है।
सुंदर चेतन आप यह चालत जड़ की चाल।
तुम चैतन्य हो और जड़ की चाल चल रहे हो! तुम उन बच्चों जैसे हो... ज्यौं लकड़ी के अश्व चढ़ि, कूदत डौले बाल।
काहू सैं बांमन कहै, काहू सौं चांडाल।
सुंदर ऐसौ भ्रम भयौं, योंही मारै गाल।।
और.जरा मूढ़ता तो देखो, किसी को कहते हो चांडाल है, किसी को कहते हो ब्राह्मण है। किसी को शुद्र बना दिया है, किसी को विप्र बना दिया है। व्यर्थ की मिथ्या बातें--योंही मारै गाल--गप्प लगा रहे हो। यहां सिर्फ एक का वास है। न कोई ब्राह्मण है न कोई चांडाल है। भीतर जो बसा है वह परमात्मा है। भूल कर किसी व्यक्ति को शूद्र मत कहना, क्योंकि तुमने परमात्मा को शूद्र कहा। भूल कर किसी व्यक्ति को पापी मत कहना, क्योंकि तुमने परमात्मा को पापी कहा। भूल कर किसी की निंदा मत करना। तुम कौन हो?
जीसस का प्रसिद्ध वचन हैः दूसरों के न्यायाधीश न बनो। किसी का निर्णय
न लो, कौन भला कौन बुरा। वही सब के भीतर है, वही जाने!
सुंदर ऐसौं भ्रम भयौं, योंही मारै गाल।।
देह पुष्ट ह्व दूबरी, लगै देह को घाव।
चेतनि मानै आपुकौ, सुंदर कौन सुभाव।।
कैसी आदत में पड़ गए! शरीर जवान होता है, तुम सोच लेते हो मैं जवान। शरीर बूढ़ा होता है, तुम सोच लेते हो मैं बूढ़ा। तुम न कभी जवान होते हो न कभी बूढ़े। तुमने एक बात कभी विचार की या नहीं? आंख बंद करके सोचो, तुम्हें भीतर अपनी कोई उम्र मालूम होती है? तुमने कभी इस बात का ख्याल किया कि भीतर उम्र का पता नहीं चलता, कि चालीस साल के हो कि पचास साल के हो कि अस्सी साल के हो। भीतर उम्र है ही नहीं, पता कैसे चले? उम्र तो शरीर की होती है, तुम्हारी नहीं होती!
देह पुट ह्व दूबरी, ...
और अगर देह मजबूत हो तो तुम सोचते हो मैं मजबूत। और देह अगर दुबली हो, कमजोर हो, तो तुम सोचते हो मैं कमजोर!
... लगैं देह कौं घाव।
घाव तो देह को लगते हैं, लेकिन अजीब तुमने आदत बना ली है कि समझ लेते
हो कि मुझे लग गए!
एक सूफी फकीर को घोषणा करने के कारण कि मैं परमात्मा हूं, पकड़ लिया गया। बीच दरबार में खलीफा ने कहा कि क्षमा मांग लो, अन्यथा कोड़े मार-मार कर चमड़ी उतार दी जाएगी! और उस फकीर ने फिर वही घोषणा की--अनलहक! उसने कहा होने दो शुरू। शुरू करो, कहां हैं कोड़े? कौन हुआ माई का लाल जो मुझे मारे! सम्राट समझा नहीं! इतनी बुद्धि सम्राटों में कभी रही भी नहीं। फकीर
कह रहा था--कौन है माई का लाल जो मुझे मारे! वह यह कह रहा था कि मुझे कोई मार सके, यह संभव ही नहीं है। मगर सम्राट ने समझा कि यह मुझे चुनौती दे रहा है; अभी सिद्ध किए देता हूं। उसने कहा कि अभी सिद्ध किए देता हूं! बुला लिए उसने आदमी भयंकर, जल्लाद। लेकर कोड़े लग गए पिटाई करने उसकी। और फकीर है

हंसे जा रहा है। उसकी हंसी बड़ी चोट करने लगी सम्राट को कि बात क्या है? देह से खून बहता है और फकीर हंसे जा रहा है। आखिर उसने कहा कि रुको। उसने फकीर से पूछा कि बात क्या है, तू पागल तो नहीं है? तुझे कोड़े पड़ रहे हैं, चमड़ी उखड़ी जा रही है, खून बह रहा है, तू हंस क्यों रहा है? उसने कहा आप किसी दूसरे को मार रहे हैं। मैं इसलिए हंस रहा हूं कि चुनौती मैंने दी है, मार किसी और को रहे हैं! यह देह मैं नहीं हूं। जिस दिन यह जाना उसी दिन तो यह घोषणा उठी मेरे भीतर--अनलहक--कि मैं परमात्मा हूं! अहं ब्रह्मास्मि! तुम मुझे मार न सकोगे।
कहते हैं सरमद की, फकीर सरमद की, गर्दन काट दी गई थी। इसी कारण, कि वह कहता था--अहं ब्रह्मास्मि! सरमद ने कहा था कि मर कर भी यही कहूंगा! हजारों की भीड़ इकट्ठी हो गई थी देहली में जब सरमद की गर्दन काटी गई। जब उसकी गर्दन काटी गई जामा मस्जिद में और उसकी गर्दन को फेंक दिया गया सीढ़ियों से, तो कहते हैं सीढ़ियों से गर्दन नीचे उतरने लगी, सिर नीचे लुढ़कने लगा, लहू के धारे सीढ़ियों पर छूटने लगे, मगर आवाज जारी रही अहं ब्रह्मास्मि की, अनलहक की। आवाज गूंजती ही रही! यह लाखों ने देखा था। इसके चश्मदीद गवाह थे। जिन्होंने मारा था सरमद को, उन्होंने भी देखा था, वे भी कंप गए थे--कि यह आवाज कहां से आ रही है! सरमद खिलखिला रहा था। मर कर भी!
देह तुम नहीं हो--देहातीत हो। लेकिन कैसा सुभाव पड़ गया!
चेतनि मानै आपुकौ, ...
कुछ भी हो जाए, तुम जल्दी से अपना मान लेते हो। मुझे घाव लगा तो मुझे लगा। बीमार हुआ तो मैं बीमार हुआ।
तुम न कभी बीमार होते, न तुम्हें कभी घाव लगता। न तुम जवान होते न तुम बूढ़े होते। न तुम जन्मते न मरते। तुम शाश्वत हो।
सान्यौ घर मांहे कहै, हूं अपने घर जाउं।।
मजाक कर रहे हैं सुंदरदास। मजाक कर रहे हैं कि बड़े चतुर हो तुम, बड़े सयाने हो! और मैं सयानों को भी यह कहते सुनता कि "सान्यौं घर मांहे कहै, हूं अपने घर जाऊं।।" अपने ही घर में बैठा चतुर आदमी कह रहा है कि अब मैं घर जाऊं!
सुंदर भ्रम ऐसौ भयौ, भूलौ अपनौ ठांव। अपना ही घर भूल गया, वहीं बैठे हो! जो आदमी कहता है, मैं ईश्वर की तलाश करने जा रहा हूं काबा, काशी, कैलाश, चतुर समझ रहा है अपने को।
सान्यौं घर मांहे, कहै, हूं अपने घर जाउं।
खूब चतुर हो तुम! तुम्हारी हालत वैसी है जैसे एक आदमी ने रात शराब पी ली। शराब पीकर घर पहुंचा। किसी तरह पहुंच तो गया टटोलते-टटोलते, लेकिन बड़ा हैरान हुआ, घर पहचान में न आए! नशा खूब चढ़ा था। दरवाजा तो खटखटाया। खटखटाया इसलिए नहीं कि मेरा घर है। दरवाजा खटखटाया इसलिए कि कोई जग आए, किसी का भी हो घर तो उससे पूछ लूं कि भाई मेरा घर कहां है? उसकी मां ने दरवाजा खोला। बूढ़ी मां उसकी राह देखती थी। वह एकदम बुढ़िया के पैर में गिर पड़ा और कहा कि माई, मुझे मेरे घर का पता बता दो मुझे मेरे घर जाना है। मेरी मां मेरी राह देखती होगी।
भीड़ इकट्ठी हो गई। मोहल्ले-पड़ोस के लोग हंसने लगे। हर कोई कहने लगा, यही तेरा घर है। मगर जितना ही लोगों ने जिद की, शराबी भी जिद्दी हो जाता है। शराब में जिद और बढ़ जाती है। वह उतना ही अकड़ गया। उसने कहा कि नहीं, यह मेरा घर नहीं है। मुझे मेरे घर पहुंचाओ, मजाक मत करो। मैंने शराब पी है तो इसका यह मतलब नहीं है कि सारा मोहल्ला मुझ से मजाक करे।
एक दूसरा शराबी लौट रहा था शराब घर से अपनी बैलगाड़ी में बैठा हुआ। उसने भी भीड़ देखी। वह भी रुक गया। उसने कहा कि भाई तू ठीक कहता है। ये लोग मजाक कर रहे हैं। आ मेरी गाड़ी में बैठ, मैं तुझे तेरे घर पहुंचा देता हूं! वह खुश हुआ। उसने कहा कि चलो एक भला आदमी तो मिला!
यह उसका घर है। अब यह शराबी की बैलगाड़ी में बैठ कर जाएगा तो जितनी दूर जाएगा उतने ही दूर घर से निकल जाएगा।
जो तुम्हें काशी काबा और मक्का ले जा रहे हैं, उनसे जरा सावधान रहना।
जो तुम्हें कह रहे हैं हिमालय चलो, उनसे जरा बचना। जो तुमसे कहते हैं कि

तीर्थ-यात्रा को जाओ, उनसे जरा सावधान रहना। तुम जहां हो वहीं तुम्हारा घर है। जो जागे हैं उनसे पूछो! तुम सोए आदमियों के चक्कर में मत पड़ जाना! करोड़ों लोग चक्कर में पड़े हैं और खोज रहे हैं परमात्मा को। और परमात्मा वहीं है जहां तुम हो। ठीक उसी जगह! तुम्हारा होना परमात्मा का होना है। सान्यौ घर मांहे कहै, हूं अपने घर जाऊं।
सुंदर भ्रम ऐसौ भयौ, भूलौ अपनौ ठाऊं।।
बिल्कुल भूल ही गए हो, कैसे भ्रम में पड़े हो! छाया को सत्य समझ लिया है, अपने को झूठ समझ लिया है। अहंकार को सत्य समझ लिया है, आत्मा को झूठ समझ लिया है।
पत्थर पर पत्तियों की छाया,
हिलती, डोलती, थिरकती,
रूप-भार बिखराती!
थिर होती;
काढ़ती कसीदे,
बेलें बुनती,
हंसती, हंसाती,
अनायास खनखना उठती,
फिर चुपि हो जाती;
कुछ सोचती,
अपने में खो जाती!
दूर, बहुत दूर
नजर दौड़ाती
उमगती, झिझकती,
फिर-फिर सिमट जाती
बार-बार देखती है
अपनी ही काया;
पत्थर पर
पत्तियों की छाया!
नग्न, निर्वसन
लोट-लोट जाती;
उलटती, पलटती
लेती अंगड़ाइयां,
पत्थर पर बार-बार
उठ-उठ कर
पांव भी पटकती;
उकताती, झुंझलाती,
मन ही मन
कहती कुछ,
बुदबुदाती;
अपने से रूठ-रूठ जाती;
पत्थर पर
पत्तियों की छाया!
एंठती, बिलखती
रोती, सिर धुनती पछताती--
सूरज का साथ
नहीं पाया!
पत्थर पर
पत्तियों की छाया!
जरा गौर करो। तुमने अपने को अपने भीतर जाकर नहीं देखा। तुमने दूसरे लोगों की आंखों में अपनी तस्वीर देखी है। पत्थर पर पत्तियों की छाया! उसी को तुमने समझ लिया यह मैं हूं।
तुम जरा ख्याल तो करो, तुम्हारा अपने संबंध में जो भी ज्ञान है वह उधार है, दूसरों से है। किसी ने कहा, बड़े सुंदर हैं आप और तुमने मान लिया कि

सुंदर हो। और किसी ने कहा, बड़े बुद्धिमान हैं आप और मान लिया तुमने कि बुद्धिमान हो। और किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ कहा। और यह वक्तव्य बड़े विरोधाभासी हैं, क्योंकि मित्र भी इसमें वक्तव्य देने वाले हैं, शत्रु भी। इसलिए तुम एक विक्षिप्तता हो गए हो। किसी ने कहा सुंदर हैं बड़े आप, और फिर किसी ने कहा कि कुरूप हैं, .जरा शकल तो अपनी आईने में देखो! अब ये दोनों वक्तव्य तुम्हारे भीतर इकट्ठे हो गए। अब तुम मुश्किल में पड़ गए। तुम्हारी दुविधा हो गई, तुम हो कौन? किसी ने कहा बड़े बुद्धिमान हैं, किसी ने कहा बुद्धू। अब तुम मुश्किल में पड़े।
तुम्हें वे लोग अच्छे लगते हैं जो तुम्हारी प्रसंशा करते हैं। तुम्हें वे लोग बुरे लगते हैं जो तुम्हारी निंदा करते हैं। तुम वे बातें याद रखना चाहते हो जो तुम्हारी स्तुति में कही गई हैं। तुम वे बातें भूल जाना चाहते हो जो तुम्हारी आलोचना में कही गई हैं। लेकिन कितना ही भूलो, जब तक तुम्हारे मन में स्तुति का मूल्य है तब तक तुम्हारे मन में गाली का मूल्य भी रहेगा ही। क्योंकि वह विपरीत स्तुति है, उससे तुम बच नहीं सकते। जब तक एक है तब तक उसका विपरीत अंग भी रहेगा। मगर सारी भूल इस बात में हो रही है कि तुम दूसरों से पूछते हो कि मैं कौन हूं। अपने से पूछो। सब करो द्वार-दरवाजे बंद और अपने भीतर उठाओ इस एक प्रज्ज्वलित प्रश्न को कि मैं कौन हूं!
सान्यौ घर मांहे कहै हूं अपने घर जाऊं।
सुंदर भ्रम ऐसौ भयौ भूल्यौ अपनौ ठाऊं।।
कह्या कछु नहिं जात है, अनुभव आतम सुक्ख।
जिन्होंने जान लिया, जो भीतर गए, वे कह भी नहीं पाते कि क्या मिला वहां-- कैसा सुख कैसी शांति! क्या पाया वहां--कैसी आत्मा, कैसा परमात्मा! कह्या कछू नहिं जात है, अनुभव आतम सुक्ख।
इसलिए जिन्होंने जाना है वे भी तुमसे नहीं कह सकते जब तक तुम अपने भीतर न जाओ, क्योंकि वह कहा नहीं जा सकता।
पानी बरस गया!
जीवन विरस हुआ,
जब मन रसकन को तरस गया
बड़ी कृपा की
मेघ, पधारे, पानी बरस गया
गरजे तरजे--
पर सतरंगी
भौंह कमान न खींची
तड़ित कृपाण चली न किसी पर दया दृष्टि ही सींची
माटी महक उठी
जड़ को जब चेतन परस गया!
पानी बरस गया
बीरबहूटी सजी
बजी झिल्ली की मृदु शहनाई
गगन पथे, नव पवन रथे
यह मंगल वेला आई
गोद भरी वसुधा की
अंकुर का मुख दरस गया!
पानी बरस गया!
मगर कहना मुश्किल है कि पानी बरस जाता है, अंकुर का मुख दरस जाता है, माटी में सोंधी सुगंध उठती है, मिट्टी की देह में अमृत का अनुभव होता है, अंधेरी रात में सूरज उगता है। कहना मुश्किल है। जाना जा सकता है। जिया जा सकता है, कहा नहीं जा सकता!
कह्या कछु नहिं जात है, अनुभव आतम सुक्ख!
जिन्होंने जाना नहीं है वे तो अक्सर कहते रहते हैं कि कौन है। उनको कहना सरल है। पूछो किसी से, आप कौन हैं? वह फौरन अपना नाम-पता-ठिकाना बता

देता है; कार्ड छपा कर रखा होता है, निकाल कर पकड़ा देता है कि यह रहा मैं। श्याम हंस रहे हैं, वे कार्ड खीसे में रखे हैं। जल्दी से पकड़ा दिया कि यह रहा मैं! यह मेरा पता-ठिकाना, मैं डाक्टर हूं, इंजीनियर हूं, नेता हूं, यह हूं वह हूं। कितनी सरलता से! बुद्ध से तो पूछो, आप कौन हैं? चुप्पी हो जाती है। बिल्कुल चुप हो जाते हैं! कार्ड नहीं छपा कर रखते, जल्दी से दे दें कि यह रहा मैं!
कथा ऐसी हैः एक ब्राह्मण ने, एक बड़े ज्योतिषि ने बुद्ध को देखा। ऐसा सुंदर व्यक्ति उसने कभी नहीं देखा था! ऐसा शांत, ऐसा सौम्य, ऐसा निर्विकार! मोहित हो गया। ब्राह्मण जाकर चरणों में झुका और उसने पूछा कि आप हैं कौन? एकांत में इस वृक्ष के तले, इस वन में, आप देवता तो नहीं स्वर्ग से उतरे हुए? क्योंकि आप इस पृथ्वी के नहीं मालूम होते। किस लोक के देवता हैं? बुद्ध ने कहा नहीं, मैं देवता नहीं।
"तो कौन हैं? किन्नर हैं?"
बुद्ध ने कहा कि नहीं किन्नर भी नहीं हूं।
"तो कौन हैं? कोई प्रेतात्मा हैं? कोई शुभ प्रेत आत्मा?"
नहीं, बुद्ध ने कहा कि वह भी नहीं हूं। ब्राह्मण पूछता गया और बुद्ध कहते गए, नहीं नहीं नहीं। उसने सारी कोटियां जितनी जीवन की हो सकती थीं, पूछ डालीं। फिर थोड़ा हैरान हुआ। फिर उसने पूछा कि आप हैं कौन? तो बुद्ध ने कहा कि इतना ही कह सकता हूंः जागरण हूं। बुद्धत्व हूं। होश हूं। स्मरण हूं। सुरति हूं। व्यक्ति नहीं हूं। याद आ गई। बस इतना ही कह सकता हूं। जिनको कुछ पता नहीं है वे तो एकदम तत्क्षण राजी हैं बनाने को कि कौन हैं। तुम न भी पूछो तो बताने को राजी हैं। आतुर हैं। जिनको पता है वे कहते हैं--
कह्या कछु नहीं जात है, अनुभव आतम सुक्ख। और इसलिए भी नहीं कहा जा सकता है कि जितना जानो उतना ही पता चलता है--और जानने को है। अंत ही नहीं आता। रहस्य और रहस्य हो जाता है, हल नहीं होता।
मिटी न दरस-पियास, नैन भरि आए
देख कर और आंखें आंसुओं से भर जाती हैं। दरस की प्यास तो मिटने से रही।
मिटी न दरस-पियास, नैन भरि आए।
मधुर पीर के मृदु दंशन में
लपट उठे गीले ईंधन में
धरती जरी, अकास मेघ घिरि आए
मिटी न दरस-पियास, नैन भरि आए।
पग ने मग की बाध न मानी
श्रम की बगिया खिली जवानी
सीरी चले बताए, बुंद ढुरि आए।
मिटी न दरस-पियास, नैन भरि आए।
धूप छांव की खोल किवारी
खेले उजियारी अंधियारी
छिन-धिन बिज्जू-प्रकास, मेह झरि लाए
मिटी न दरस-पियास, नैन भरि आए।
आंखें भर जाती हैं आनंद से--आनंद के आंसुओं से! मगर प्यास बुझती नहीं! परमात्मा में जिसने डुबकी मारी, वह डूबता ही चला जाता है। प्यास बुझती नहीं, प्यास और सघन होती चली जाती है। प्यास और मधुर होती चली जाती है। और नये-नये प्यास के आयाम प्रकट होते चले जाते हैं। प्रार्थना नये-नये पंख उगाती चली जाती है। एक अनंत यात्रा है, जिसका प्रारंभ तो है, लेकिन अंत नहीं! कहे तो क्या कहे? शब्दों में बांधें तो कैसे बांधें?
सुंदर आवै कंठ लौं, निकसित नाहिन मुक्ख।
कह्या कछु नहिं जात है, अनुभव आतम सुक्ख।।
कंठ तक तो आ जाती है बात, मुंह से नहीं निकलती। ऐसा लगता है जबान पर रखी है, मगर मुंह से नहीं निकलती। लगता है अब कही अब कही, अब कह ही दी। और

फिर पाया जाता है कि नहीं, अनकही थी अनकही ही रही। जो कहा उससे कुछ हल न हुआ।
बुद्ध बयालीस वर्षों तक क्या कहते रहे? वही बात। वही-वही बात। फिर कोशिश की, फिर कोशिश की। इधर से बांधना चाहा उधर से बांधना चाहा, इस दिशा से उस दिशा से। हारते चले गए।
झेन फकीर कहते हैंः बुद्ध कुछ बोले ही नहीं। क्योंकि इस बोलने को क्या बोलना मानें? वह बात कही होती तो कुछ बोले। वह तो कही नहीं। और सब बातें कहीं वह तो कही नहीं, तो क्या खाक बोले?
झेन फकीर, जो बुद्ध पर बड़ी श्रद्धा करते, रोज चरणों में सिर झुकाते, कहते हैं; बुद्ध बोले ही नहीं! मैं भी तुमसे कहता हूंः बयालीस वर्ष बोले और बोले भी नहीं।
जगत में इतने संतों की वाणियां हैं, इतने प्यारे वचन हैं, इतने काव्यपूर्ण, इतने अनुभव-सिक्त, फिर भी वह बात अनकही रही, अनकही है और अनकही रहेगी। कही नहीं जा सकती। बात कुछ ऐसी है। बात कुछ इतनी गहरी है कि कोई शब्द उस गहराई को पकड़ नहीं सकता। शब्द ऊपर-ऊपर हैं, सतह पर हैं।
शब्द तो ऐसे हैं जैसे सागर की सतह पर लहरें। सागर की गहराई की खबर लहरें कैसे दें? लहर ऊपर ही होती है, सतह पर ही होती है। गहराई में कोई लहर नहीं होती। और लहर में कोई गहराई नहीं होती। बड़ी मुश्किल हो गई। हालांकि दोनों एक के ही हिस्से हैं, सागर के ही। गहराई भी उसी की है, लहर भी उसी की। परिधि भी उसी की, केंद्र भी उसी का। लेकिन परिधि का केंद्र से मिलना नहीं होता! जो केंद्र पर पहुंच गया है वह कैसे अपने अनुभव को परिधि की भाषा में प्रकट करे? बोले तो भी कुछ नहीं होता, न बोले तो भी कुछ नहीं होता! कह कर भी नहीं कही जाती, चुप रह कर भी नहीं कही जाती। चुप रहा भी नहीं जाता, क्योंकि कंठ तक आए ही जाती है। कंठ तक आ-आ जाती है। बांटने का मन होता है।
सुंदर आवै कंठ लौं, निकसित नाहिन मुक्ख।।
सुंदर जाकै वित्त है, सौ वह राखै गोइ।
कौड़ी फिरे उछालतौ, जो टटपूंज्यो होइ।।
जिनको छोटे-मोटे अनुभव हैं, वे ही टुटपुंजियों की भांति कौड़ियों की तरह उछालते फिरते हैं। जो असली धनी हैं वे तो जानते हैं, कहा भी नहीं जा सकता। टुटपुंजिए तुम्हें मिल जाएंगे। किसी की थोड़ी कुंडलिनी में सरसराहट हो गई, चले बताने सारी दुनिया को, कि कुंडलिनी जग गई! ये टुटपुंजयायी बातें हैं। ये कुंडलिनी इत्यादि के अनुभव सब बचकाने हैं। इनका आध्यात्म से कुछ लेना-देना नहीं। ये तो उस रास्ते पर पड़े हजारों पत्थरों में से एक पत्थर है। उस रास्ते पर पड़े पत्थरों में से! यह वह मंजिल नहीं है। किसी को थोड़ा सा भीतर प्रकाश दिख गया, चले बताने। किसी को भीतर नाद सुनाई पड़ गया, चले बताने। फिर भूल ही जाते हैं इस बात को कि ये तो राह के किनारे उगे हुए घास के फूल-पात हैं। परम फूल तो कहा ही नहीं जा सकता।
सुंदर जाकै वित्त है सौ वह राखै गोइ।
जिनको मिला है, जिन्होंने पाया है, जिनकी बिसात थी पाने की, जिनका वित्त था, जिनकी सामर्थ्य थी--वे तो अपने भीतर ही छिपा कर रह गए। कहा ही नहीं जा सकता, करते भी तो क्या करते? कौड़ी फिरै उछालतै। लेकिन जिन्हें कौड़ियां मिल गईं, वे उछालते फिरते हैं। जो टटपूंज्यौ होइ!
अंत्यज ब्राह्मण आदि दै, दार मथै जो कोइ।
सुंदर भेद कछु नहीं, प्रकट हुतासन होइ।।
जैसे लकड़ी को मथने से आग पैदा हो जाती है, ऐसे ही फिर चाहे शूद्र हो और चाहे ब्राह्मण हो, अगर अपने को मथेगा, मंथन करेगा तो उसके भीतर परमात्मा की अग्नि प्रकट होगी। इससे कुछ भेद नहीं पड़ता कि वह कौन है। शूद्रों ने भी जान लिया उसे। ब्राह्मणों ने भी जाना उसे, क्षत्रियों ने भी जाना उसे। वैश्यों ने भी जाना उसे। पुरुषों ने जाना, स्त्रियों ने जाना। इस देश के लोगों ने जाना, और देश के लोगों ने जाना। हर काल में जाना। जिसने भी अपने भीतर थोड़ी रगड़ की, जिसने भी अपने भीतर थोड़ा मथा, मंथन किया... मंथन यानी ध्यान, मंथन यानी प्रेम, मंथन यानी साधना... जिसने थोड़ी हिम्मत जुटाई और अपने भीतर गया, उसने पाया है।

अंत्यज ब्राह्मण आदि दै, दार मथै जो कोइ।
सुंदर भेद कछु नहीं प्रकट हुतासन होइ।
फिर यह थोड़े ही फर्क पड़ता है कि कौन सी लकड़ी में आग पैदा होती है, सब लकड़ियों में आग पैदा होती है। गरीब से गरीब लकड़ी में और मंहगी से मंहगी कीमती से कीमती लकड़ी में... फिर चाहे वह शीशम हो और चाहे साधारण घर में जलाऊ लकड़ी हो, सब लकड़ियों में आग होती है। और आग ही असली चीज है। आग यानी आत्मा। और जब तक तुम्हारी लपट न पैदा हो जाए, तब तक मथे जाना, तब तक रुकना मत।
देह तो लकड़ी है। उसमें छिपी आग ही परमात्मा है। उससे ही पहचान होगी,
तो तुम्हें अपने स्वरूप का अनुभव होगा। उससे ही पहचान होगी तो जीवन पाया और जीवन का अर्थ पाया, तो बीज फूल बना!
दीपक जोयौ बिप्र धर, पुनि जोयौ चंडाल।
सुंदर दोऊ सदन कौ, तिमिर गयौं तत्काल।
बड़ा प्यारा वचन है! सुंदरदास कहते हैं कि मैंने ब्राह्मण के घर में भी दीया जला कर देखा है और मैंने शूद्र के घर में भी दीया जला कर देखा है। और दोनों के घर का अंधकार तत्क्षण मिटा है।
मैं भी तुम से यह कहता हूंः दीया कहीं भी जलाओ... और जो बात बाहर के दीये के संबंध में सच है वही भीतर के दीये के संबंध में भी सच है, उतनी ही सच है। क्या तुम सोचते हो ब्राह्मण के घर का दीया ज्यादा जल्दी अंधेरे को मिटाता है?
जलाया और अंधेरा मिटा, क्योंकि यह ब्राह्मण का घर है। फिर शूद्र के घर में जलाते हो, जलता ही नहीं पहले तो, लाख-लाख उपाय करो इनकार किए ही चला जाता है कि यह तो शूद्र का घर है, मैं यहां नहीं जलूंगा। और जल भी जाता है तो अंधेरे को नहीं हटाता; शूद्र के घर में इतनी जल्दी थोड़े ही हटा दूंगा, हटाते-हटाते हटाऊंगा। वर्षों लगा देता है। स्थगित ही करता चला जाता है।... दीये को क्या पड़ी कि घर किसका है? देह ब्राह्मण की है कि शूद्र की, यह तो घर है। इससे क्या फर्क पड़ता है--गरीब की कि अमीर की, सुंदर कि कुरूप, कोई फर्क नहीं पड़ता। दीया भर जलना चाहिए। तत्क्षण क्रांति घट जाती है, अंधेरा विलीन हो जाता है।
दीपक जोयो बिप्र घर, पुनि जोयौ चंडाल।
सुंदर दोऊ सदन कौ, तिमिर गयौ तत्काल।।
अंत्यज कै जलकुंभ मैं, ब्राह्मण कलस मंझार।
सुंदर सूर प्रकाशिया, दुहुंवनि मैं इकसार।।
और सुंदरदास कहते हैं कि मैंने यह भी देखा, गरीब शूद्र के मिट्टी के घड़े में जब सूरज की छाया पड़ी तो सूरज प्रकट हुआ--उतना ही जितना ब्राह्मण के बहुमूल्य कलश में, जब उसमें सूरज की किरण पड़ी और सूरज की झलक पड़ी तो वहां भी प्रकट हुआ। सूरज कुछ यह थोड़े ही देखता है कि सोने के कलश में जल्दी प्रकट हो जाए और मिट्टी के घड़े में देर से प्रकट हो। जो भी राजी है लेने को सूरज को उसी में प्रकट हो जाता है। जो भी बुलाता है परमात्मा की उसमें प्रकट हो जाता है।
पुकारो! छोड़ो व्यर्थ की बातें कि तुम ब्राह्मण हो कि तुम शूद्र हो, कि ब्राह्मण हो तो जल्दी आ जाएगा। और तुम शूद्र हो तो देर लगाएगा। मिट्टी के घड़े कि सोने के घड़े, कोई भेद नहीं पड़ता। सूरज को बुलाओ, प्रतिबिंब तत्क्षण बनेगा। तुम सूरज से भर जाओगे।
अंत्यज कै जलकुंभ मैं ब्राह्मण कलस मंझार।
सुंदर सूर प्रकाशिया, दुहुंवनि में इकसार।।
और दोनों में एक सा प्रकट होता है, जरा भी भेद नहीं।
फूल ने पांवड़े बिछाए हैं
कौन यह मेहमान आए हैं
सो रहा था;
जगा के यों बोले
तुमने मुर्दे कभी जगाए हैं
मैं न मैं हूं, न तू है तू साजन नाम तो नाम को बनाए हैं

प्यार विस्तार पा गया इतना कहां अपने, कहां पराए हैं लोचनों में मचल बहे आंसू पूर आए, कहीं समाए हैं
कैसी रंगीनियों का जीवन है रंग पर रंग और आए हैं
छोड़ दे गीत उभर जाएगा
बीन के तार यों मिलाए हैं
प्रान में आन बसी जो मूरत
उसी मूरत में प्रान आए हैं
छेड़ दे गीत, उभर जाएगा
बीन के तार यों मिलाए हैं
बस बीन के तार मिलने चाहिए! तुम जरा अपने भीतर की वीणा को बिठाओ, तार मिलाओ।
कैसी रंगीनियों का जीवन है
रंग पर रंग और आए हैं
लोचनों में मचल बहे आंसू
पूर आए कहीं समाए हैं
प्यार विस्तार पा गया इतना
कहां अपने, कहां पराए हैं
मैं न मैं हूं, न तू है तू साजन
नाम तो नाम को बनाए हैं
ब्राह्मण और शूद्र, हिंदू और मुसलमान, गोरे और काले, सुंदर और कुरूप, स्त्री और पुरुष, सब नाम के भेद हैं, घड़ों के भेद हैं। लेकिन लोगों ने बड़े भेद बना लिए हैं और बड़ा शोरगुल मचाया है।... स्त्रियों का मोक्ष नहीं हो सकता, क्यों? क्या स्त्री के भीतर परमात्मा कुछ कम हो जाता है? क्या परमात्मा भी स्त्री-पुरुष में बांटा जा सकता है? क्या आत्मा भी स्त्री और पुरुष होती है?
देह के भेद घड़े के भेद हैं। तुम्हारा घड़ा कैसा है, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता; सूरज जब उगेगा, प्रतिबिंब बनेगा। तुम्हारा घर कैसा है, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता; दीया जलेगा, अंधेरा मिटेगा।
शूद्रों की मुक्ति नहीं हो सकती, ये मनुष्य के अहंकार की घोषणाएं हैं। ये सारी घोषणाएं मनुष्य को अधार्मिक बनाए रखने का कारण रही हैं। इतने तुम जितनी जल्दी छूट जाओ उतना अच्छा। एक को देखो, अनेक को भूलो। जो अनेक में उलझा, वही अधार्मिक है। जिसने एक को पहचाना, वही धार्मिक है। तुम्हारी भौंह की धनुही
कि जिस पर बिन सधे ही
सरल चितवन-बाण
मुझ पर चल गया है
और मेरा मर्म
मुझको छल गया है
उसी दिन से
ढूंढता हूं--कहां है रे
वह भृकुटि कोदंड
जिसकी शिंजनी;
है परम ज्योतिर्पुंजिनी कि जिस की कोटियां
हैं कोटि सूर्य सम प्रभाएं! उसी के वाण ही तो हैं
गगन में चमकते तारे
उसी के वाण ही तो हैं
तुम्हारे नयन रतनारे!

वही एक जो आकाश में तारों की तरह चमक रहा है, तुम्हारी आंखों में भी चमक रहा है। जरा पहचानो, .जरा सुध जगाओ! वही एक जो फूलों में खिला है, तुम्हारे भीतर भी खिला है।.जरा शांत बैठो। परिचय बनाओ उस एक से। अनेक से तो तुमने बहुत परिचय बनाया। इससे मिले उससे मिले, इससे संबंध बनाया उससे संबंध बनाया; उस एक से कब संबंध बनाओगे? और जब तक उस एक से संबंध नहीं बनाया, तुम्हारा जीवन व्यर्थ है और व्यर्थ ही रहेगा। तुम जान ही न पाओगे कि किसलिए आए थे; पहचान ही न पाओगे कि तुम्हारी नियति क्या थी, तुम्हारी सार्थकता क्या थी? धन इकट्ठा कर लोगे जरूर, पद-प्रतिष्ठा भी पा लोगे जरूर, मगर भिखारी के भिखारी मर जाओगे।
आग्नेय हो तुम, लकड़ी ही नहीं। आत्मा हो तुम, देह ही नहीं। प्रकाश हो तुम, परम प्रकाश हो तुम! प्रकाशों के प्रकाश हो तुम! लेकिन तुम्हें अपने सम्राट होने का पता ही नहीं, तुम भिखारी बने बैठे हो। तुम अपने खजाने को खोजते क्यों नहीं? और तुम व्यर्थ की बातों में उलझ गए हो। धर्म के नाम पर भी तुमने खूब व्यर्थ के जाल खड़े कर लिए हैं। और जाल टूटते ही नहीं। अभी भी शूद्र जलाए जाते हैं। अभी भी शूद्र मारे जाते हैं, हत्याएं की जाती हैं। शूद्र भी भड़क रहे हैं।
अभी ही कल परसों खबर थी कि चार सवर्णों को शूद्रों ने जला दिया। आखिर
कब तक बर्दाश्त करेंगे? हो गया बहुत। लेकिन तुम्हें पता नहीं चाहे तुम ब्राह्मण को जलाओ, चाहे तुम शूद्र को जलाओ, तुमने उसको ही जलाया है।
उस एक को पहचानो। उस एक से संबंध जोड़ो, उस एक के साथ विवाह रचो। उसके साथ सात फेरे डालो। उससे मिलन हो जाए तो सब मिल गया।
पानी बरस गया!
जीवन विरस हुआ
जब मन रसकन को तरस गया
बड़ी कृपा की
मेघ, पधारे, पानी बरस गया
गरजे तरजे--
पर सतरंगी भौंह कमान न खींची तड़ित कृपाण चली न किसी पर दया-दृष्टि ही सींची
माटी महक उठी
जड़ को जब चेतन परस गया
बीरबहूटी सजी
बजी झिल्ली की मृदु शहनाई
गगन पथे नव पवन रथे
यह मंगल वेला आई
गोद भरी वसुधा की
अंकुर का मुख दरस गया।
पानी बरस गया!
मेघ तो तैयार है बरसने को, मगर तुम पुकारते नहीं! अंकुर तो फूटने को कब
से आतुर बैठा है, मगर तुम बीज को भूमि में गिरने नहीं देते, मरने नहीं देते। बीज तो मरे तो ही अंकुर पैदा हो। और प्यास तो सघन है तुम्हारी भी, लेकिन तुम व्यर्थ की दिशाओं में भटकते हो--कभी धन कभी पद, कभी कुछ कभी कुछ। और प्यास सिर्फ उसकी है--उस एक की! जब अपनी प्यास को ठीक दिशा दो। उसके मंदिर के कलश कितने ही दूर दिखाई पड़ते हों, दूर नहीं हैं। जिस दिन तुम अपने भीतर जाओगे, पाओगे मिल गया तीर्थों का तीर्थ! उसी क्षण--
माटी महक उठी
जड़ को जब चेतन परस गया
बीर बहूटी सजी
बजी झिल्ली की मृदु शहनाई
गगन पथे, नव पवन रथे
यह मंगल वेला आई
गोद भरी वसुधा की

अंकुर का मुख दरस गया
पानी बरस गया!

आज इतना ही।

ज्योति से ज्योति जले
अठारहवां प्रवचन

क्रांति मेरा नारा है

पहला प्रश्नः आपकी आवाज मात्र सुन कर मेरे आंसू झरने लगते हैं। फिर क्यों नहीं ऐसी प्रार्थना का जन्म होता कि प्रार्थना ही बचे, मैं नहीं? संसार फिर भी क्यों उतना ही लुभाता है और अपनी ओर बुलाता है? क्या ये आंसू मगरमच्छ के ही आंसू हैं?

अगेह भारती! आंसू प्रार्थना की पहली खबर हैं। आंसू आ रहे हैं तो प्रार्थना भी आती होगी।
आंसुओं को मगरमच्छ के आंसू मत समझ बैठना, अन्यथा वही रुकावट पड़ जाएगी। मगरमच्छ के आंसू तो तब होते हैं जब तुम जबरदस्ती लाओ, जब लाए जाएं, जब चेष्टा हो; जब तुम प्रयोजन से, किसी हेतु से रोओ--दिखावे के लिए। आंसू जब अपने से आते हैं तो मगरमच्छ के नहीं होते। अपने से आए आंसू, आने वाली प्रार्थना की पहली झलक हैं। आंसू आ गए हैं, प्रार्थना भी आती होगी।
ये आंसू शुभ हैं।
इन आंसुओं की उम्र इलाही दराज हो।
ये आ गए तो हिज्र में कुछ दिल बहल गया।।
इस पृथ्वी पर जब भी आंखें प्रेम या आनंद के आंसुओं से भर जाती हैं, या पृथ्वी के वासी नहीं रह जाते; क्षणभर को तुम किसी और लोक में प्रवेश कर जाते हो। यद्यपि क्षण भर के लिए ही होता है यह, मगर क्षण भर भी क्या कम है! और क्षण भी ऐसे शाश्वत का ही अंग है। थोड़े पर फड़फड़ाए पक्षी ने, तो भी आकाश में थोड़ा तो उठा! इतना उठा है तो और भी उठेगा। लेकिन इन आंसुओं की निंदा मत करना। क्योंकि जिसकी भी हम निंदा करते हैं, वही अवरुद्ध हो जाता है। इनका स्वागत करो।
बैठे-बिठाए बज्म में कल रात रो पड़े।
बस याद आ गई थी कोई बात रो पड़े।।
सुनते हो मुझे, कोई भूली-बिसरी याद आ जाती होगी। शायद जन्मों-जन्मों
से विस्मृति का परद पड़ा हो, लेकिन मूलतः तो हम आते परमात्मा से हैं। वही हमारा निवास है, मूल उद्गम है, स्रोत है। याद तो कहीं पड़ी है; जब मैं तुम्हें पुकारता हूं, उसी याद पर चोट पड़ जाती होगी।
रोओ, जी भर कर रोओ! इसमें कृपणता भी न करना। आंसू जितने बहें उतना शुभ है। आंखें उतनी स्वच्छ हो जाएंगी--और बाहर की ही आंखें नहीं, भीतर की आंखें भी। आंसू दोनों को स्वच्छ करते हैं, अगर अंतर से आएं। और अंतर से ही आते हैं, क्योंकि तुम्हारे लाए नहीं आते। मुझे सुनते हो तब आ जाते हैं। मुझे सुनकर किसी रौ में बह जाते होओगे। कोई तरंग जगने लगती होगी। मेरी आवाज तुम्हारे भीतर सोई हुई आवाज को जगाने लगती होगी। ज्योति से ज्योति जले! इस अंधेरी दुनिया में इन आंसुओं के साथ बड़ी आशा जुड़ी है।
यास की बस्ती में इक छोटी सी उम्मीदे-विसाल।
अजनबी की तरह से फिरती है घबराई हुई।।
यह तो अंधेरे की बस्ती है और निराशा की। यहां बाहर तो कुछ भी मिलने को नहीं है। यहां तो सिर्फ एक ही बात अंकुरित हो जाए हृदय में "उम्मीदे- विसाल", परमात्मा से मिलने की आकांक्षा जग जाए तो समझना कि जीवन सार्थक हुआ। बाजार में हंसे भी तो व्यर्थ; मंदिर में रोए भी तो सार्थक। व्यर्थ के साथ प्रसन्न भी दिखाई पड़े, तो व्यर्थ; सार्थक के साथ गमगीन भी हो गए, उदास भी हो गए, आंसुओं से भी भर गए, तो भी सार्थक।
आंसू बड़ी संपदा हैं। अगर ठीक मार्ग पर पड़ें, तो यही बीज हैं। इन्हीं
से फूल भी खिलेंगे। इन्हीं आंसुओं का अंतिम परिणाम वे कमल हैं, जिनकी फकीरों ने सदा बात की है--हजार पंखुड़ी वाले कमल! उनके ही ये बीज हैं।
रोना कठिन तो मालूम होता ही है, अड़चन तो मालूम होती ही है। और फिर, हमारे मनों में आंसुओं का संबंध अनिवार्य रूप से दुख से हो गया है। इस दुनिया में तो हमारी हंसी तक दुख से जुड़ी है। आंसुओं का तो कहना ही क्या,

हमारा हंसना भी दुख से जुड़ा है। इस दुनिया में सभी कुछ दुख है। यहां हमने दुख ही जाना है। रोए हम तभी, जब पीड़ित हुए हैं। इसलिए आंसुओं की एक और भाव-भंगिमा है जिससे हम अपरिचित रह जाते हैं। आनंद के भी आंसू होते हैं। आंसुओं का कोई अनिवार्य संबंध दुख से नहीं है। आंसुओं का अनिवार्य संबंध तो किसी भी भाव-दशा से है, जो तुम्हारे भीतर इतनी सघन हो जाए कि तुम उसे सम्हाल न पाओ।
जैसे मेघ भरे हुए आएं और बरस जाएं, झलक जाएं, छलक जाएं... ऐसे जब तुम्हारे भीतर का घड़ा बहुत भरा होता है--फिर चाहे दुख से भरा हो, चाहे आनंद से, चाहे प्रीति से, चाहे प्रार्थना से--आंसू झलकेंगे। आंसू तो खबर लाते हैं कि कोई चीज बहुत गहन होकर भरी है--इतनी कि अब तुम सम्हाल न पाओगे। मुझे सुनते हो, कोई भूली-बिसरी याद जगती है। कोई स्वप्न जो तुम्हारे भीतर पड़ा है, रूप लेने लगता है। निराकार की थोड़ी सी झलक आने लगती है। मैं तुमसे जो बोल रहा हूं, वे अगर शब्द ही होते तो ऐसा नहीं हो सकता था। शब्दों के साथ मैं भी हूं।
उस दिन तुमने जो कहा था
मानो वे शब्द
नहीं थे
वृक्ष थे
आवास थे
व्यक्ति थे
कभी उनके नीचे
कभी उनमें
कभी उनसे लिपट कर
रहता हूं
विमुख भी हो जाऊं
कभी उनसे
तो उनकी छाया
आ छूती है
सुबह-शाम
तुमने उस दिन जो कहा था
मानो वे शब्द नहीं थे
वृक्ष थे, आवास थे, व्यक्ति थे
मैं तुम्हें जो कह रहा हूं, वह कहना मात्र ही नहीं है। मैं कोई कथा नहीं कह रहा हूं; मैं तुम्हारे जीवन की व्यथा कह रहा हूं। और तुम्हारे जीवन की व्यथा के पार जाने का उपाय कह रहा हूं। और तुम्हारे जीवन की व्यथा के पार एक संपदा है, उसकी तुम्हें स्मृति दिला रहा हूं।
मेरे शब्द आह्वान हैं, एक पुकार हैं--जो तुम्हें विराट की यात्रा पर
ले जाएं, अगर तुम चलने को राजी हो जाओ।
आंसू आने लग गए हैं तो अर्थ हुआः तुम्हारे पैर तैयार हो रहे हैं चलने
को; तुम्हारा हृदय राजी हो रहा है चलने को। और प्रकाश में जाने के लिए अंधेरे से गुजरना पड़ता है। और परम आनंद को पाने के लिए बहुत सी पीड़ाओं के बीच से जाना अनिवार्य है। वे पीड़ाएं निखारती हैं।
आशा के बंदे हम पांसे फेंकते हैं
बोने के बदले सांसें, फेंकते हैं!
इतना न घिरता, सिमटता निदाघ
तो अमलतास कैसे खिलता?
अंधेरे से न गुजरे होते हम
तो प्रकाश कैसे मिलता!
तो कभी-कभी मेरी बातों को सुन कर चित्त एक गहरी उदासी से भी भरेगा। क्योंकि जब तक तुम्हें अपनी संभावनाओं का पता नहीं है तब तक तुम उदास भी क्या होओगे? जब बीज को पता चल जाए कि मैं वृक्ष हो सकता हूं और नहीं हो पाया, तो उदासी घेरेगी, असफलता का बोध होगा, विषाद आएगा, प्राणों में संताप

उठेगा--कि मैं चूक गया, कि मैं चूक रहा हूं? एक गहन मंथन होगा। प्राण कंपेंगे। लेकिन इसी पीड़ा से तो संभव है कि तुम उठ आओ और चल पड़ो।
यह मंजिल दूर है, इसलिए भयाक्रांत भी करेगी कि पहुंच पाओगे कि नहीं! बीज की फूल तक मंजिल लंबी है। ऐसे लंबी नहीं भी है, क्योंकि बीज में ही फूल पड़ा है। दूर भी और पास भी... । चलो तो बहुत पास है, न चलो तो बहुत दूर है। बीज टूट जाए भूमि में तो फूल बहुत दूर नहीं; और बीज बीज की तरह पड़ा रहे, तो कितने दूर हैं!
इसलिए उपनिषद ठीक ही कहते हैंः वह परमात्मा पास से भी पास है और दूर
से भी दूर है। पास उनके, जो चलने की पीड़ा लेंगे। और जितना तुम चलोगे उतनी ही आंखें आंसुओं से भरेंगी। पहले विरह के आंसू, फिर उसकी झलक--उसके मिलन के आंसू।
भक्त का रास्ता आंसुओं से पटा है। आंसुओं का रंग बदल जाता है, ढंग बदल जाता है, अर्थ बदल जाता है--मगर आंसू बहते रहते हैं! मीरा को जब तक नहीं मिला परमात्मा, तब तक भी रोई और जब मिल गया तब भी रोई। जब तक नहीं मिला, इसलिए रोई कि नहीं मिलता है--विरह में रोई। और जब मिल गया तो इसलिए रोई कि मिल गया--आनंद में रोई। हमारे पास आंसुओं के अतिरित्त उसे धन्यवाद देने को भी और क्या है?
आधी रात
कोटरों से झांकते उलूक
आधी रात
श्रमरत कंकालों की हूक
आधी रात
रक्तपान करते वैताल
आधी रात
प्रेत सभी मालामाल!
आधी रात
यहां शमशान
आधी रात
आत्म-ज्ञान भूंकते हैं श्वान!
आधी रात
शेष एक बात
आधी रात
दूर नहीं प्रात!
बस एक बात ख्याल रखना, अभी तो आधी रात है। पर इतना ही सोचो कि अभी आधी रात है तो गलती हो गई।
शेष एक बात
आधी रात
दूर नहीं प्रात!
और जैसे ही रात गहन और काली होती जा रही है वैसे ही सुबह करीब आती जा रही है। रात के गर्भ में ही तो सूरज पकता है। रात के गर्भ के बाहर ही तो सुबह का जन्म होता है।
तो कभी विरह में भी रोओ, विषाद में भी रोओ। और कभी इस आनंद में भी रोओ
कि कम से कम तुम्हें संभावना का सूत्र तो दिखाई पड़ने लगा... । दूर... आती सुबह जो कहीं दिखाई नहीं पड़ती, कम से कम तुम्हारे सपनों में तो झलकने लगी। कहीं तुम्हारे गहराई में तो भरोसा जगने लगा कि सुबह होगी, कि सुबह हुई है, कि सुबह होती रही है। और जैसे-जैसे रात गहरी होती जाएगी, अंधेरी होती जाएगी, वैसे-वैसे सुबह करीब आती जाएगी। सुबह के करीब आते-आते रात अंतिम रूप से गहरी हो जाती है।
... तो रोओ! प्रेम के आंसुओं से चिंतित न हो जाओ।
सिरहाने "मीर" के आहिस्ता बोलो।
अभी टुक रोते-रोते सो गया है।।
प्रेमी तो रोते ही रहे, भक्त रोते ही रहे। लेकिन भूल कर भी इन आंसुओं
को मगरमच्छ के आंसू मत सोच लेना। और तुम्हारे मन में यह विचार कैसे उठा?

इसलिए उठा कि तुम कहते हो कि फिर क्यों नहीं ऐसी प्रार्थना का जन्म होता कि प्रार्थना ही बचे, मैं नहीं? ... उसी का जन्म हो रहा है। यह प्रसव की ही पीड़ा है।
और पूछते हो कि संसार फिर भी उतना ही लुभाता है? और अपनी ओर बुलाता है? जैसे-जैसे तुम जागने लगोगे, तुम पाओगे कि संसार और भी जोर से लुभाता है। संसार और जोर से खींचता है। आखिरी कोशिश करता है, संसार भी ऐसे चुपचाप तुम्हें छोड़ नहीं देता। पुराना संबंध है, कितना गहरा नाता है! ऐसे संबंध ऐसे ही नहीं टूट जाते कि बस "जयराम जी" कर ली और चल दिए। कितना पुराना नाता है! ... जन्मों-जन्मों से तुम संसार से बंधे रहे, संसार तुमसे बंधा रहा। ये जंजीरें भी तुम्हारी आदी हो गई हैं, तुम भी इन जंजीरों के आदी हो गए हो। जंजीरें भी लिपटेंगी, संसार भी पूरी तरह खींचेगा। और जैसे-जैसे पाएगा कि तुम अब दूर जा रहे हो, उतनी ही अपनी पूरी ताकत लगा देगा।
साधक के जीवन में वे घड़ियां आती हैं, जब समाधि करीब होने लगती है तो संसार बड़े जोर से बुलाने लगता है। और इसके पहले कि समाधि घटित हो, प्रार्थना का जन्म हो, संसार अपनी पूरी ताकत लगा देता है। सारी वासनाएं प्रज्ज्वलित हो उठती हैं। आखिरी दांव है, वासनाएं भी हारना नहीं चाहतीं। मन भी अपनी सारी शक्ति लगा देता है खींचने की कि लौट आओ, कहां जा रहे हो? बड़ा द्वंद्व उठेगा। लेकिन जैसे ही द्वंद्व उठे, वैसे ही समझ लेना कि घड़ी करीब आ रही है, इसलिए मन इतने उपाय कर रहा है। अगर घड़ी करीब न होती तो मन इतने उपाय न करता।
तो मैं तुमसे कहता हूं, संसार तुम्हें खींचता, लुभाता, और भी ज्यादा लुभाता मालूम पड़ता है--ये सब अच्छे लक्षण हैं। इन लक्षणों का शुभ पहलू देखो। अपने आंसुओं की निंदा मत करना। अपने आंसुओं का स्वागत करो, सत्कार करो। उन्हें आनंद-भाव से अंगीकार करो। उनके साथ मस्त होओ, डोलो। जल्दी ही प्रार्थना आएगी।
बसंत में एक भी फूल खिल गया, तो समझो कि पूरा बसंत आने के करीब है।

दूसरा प्रश्नः विज्ञान के इस युग में, कहते हैं, कविता अपने आखिरी दिन गिन रही है। लेकिन आपके प्रवचनों में प्रवाहित काव्य-गंगा को देख कर लगता है कि आप धर्म के साथ कविता को भी पुनर्जीवन देने पर तुले हैं।
क्या बताने की कृपा करेंगे कि धर्म, कविता और विज्ञान क्या साथ-साथ चल सकते हैं?

आनंद मैत्रेय! विज्ञान है शरीर, कविता है मन, धर्म है आत्मा। अगर मनुष्य के जीवन में शरीर, मन और आत्मा साथ-साथ चल सकते हैं तो मनुष्य के जीवन में विज्ञान, कविता और धर्म क्यों साथ-साथ नहीं चल सकते? सच तो यह है, साथ-साथ ही चलने चाहिए। न चलें तो कुछ भूल-चूक हो रही है। और आदमी फिर अधूरा होगा।
जिस आदमी को केवल विज्ञान ही सब कुछ मालूम होता है, उसका अर्थ क्या हुआ? उसका अर्थ हुआ कि उसने शरीर के पार नहीं झांका। उसने शरीर पर ही अपनी इतिश्री मान ली। उसने शरीर पर ही पूर्ण विराम लगा दिया। इस आदमी के जीवन में काव्य नहीं होगा, संगीत नहीं होगा, साहित्य नहीं होगा।
भर्तृहरि का प्रसिद्ध वचन तो तुम्हें ख्याल है न, कि जिसके जीवन में साहित्य न हो, काव्य न हो, कला न हो, वह मनुष्य मनुष्य नहीं है; ऐसा ही समझो कि पूंछ के बिना पशु है। उसके भीतर मन ही पैदा नहीं हुआ अभी। और जिसके भीतर मन नहीं पैदा हुआ, उसे मनुष्य क्या खाक कहें! मन से मनुष्य बनता है। मन ही है उसे मनुष्य बनाने वाला, नहीं तो पशु में और मनुष्य में फर्क क्या है? पशु सिर्फ देह है। पशु को अपनी देह के पार और किसी चीज का कोई पता नहीं है। जो मनुष्य भी देह के पार अपने को अनुभव नहीं करता, उसको पशु से भिन्न मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। वह मनुष्य के रूप में है भला, मगर मनुष्य की गरिमा अभी उसे उपलब्ध नहीं हुई।
मैंने सुना है, एक स्कूल में एक अध्यापक, ईसाई स्कूल है, बच्चों को बाइबिल पढ़ा रहा था। और उसने समझाया कि ईश्वर ने मनुष्य को बनाया, स्त्री

को बनाया... कैसे संसार की रचना की। एक छोटा बच्चा खड़ा हो गया। वह एक वैज्ञानिक का बेटा था। उस बच्चे ने कहाः लेकिन मेरे पिता तो कहते हैं कि आदमी का जन्म बंदरों से हुआ है। उस पुरोहित ने कहाः मैं अभी सारी मनुष्य-जाति की बात कर रहा हूं, तुम्हारे परिवार की नहीं। तुम्हारे परिवार के संबंध में तुम्हारे पिता ही ज्यादा जानते हैं।
एक दूसरे बच्चे ने जिसे इस बात से बुरा लगा--क्योंकि उसके पिता एक गणितज्ञ थे--उसने खड़े होकर कहा कि क्षमा करिए, इससे क्या फर्क पड़ता है, अगर हमारे बापदादे बंदर थे तो बंदर थे, इससे क्या फर्क पड़ता है? उस अध्यापक ने कहाः तुम्हें फर्क न पड़े, लेकिन अगर तुम्हारे बापदादे बंदर थे तो तुम्हारी दादियों को बहुत फर्क पड़ता। तुम अपनी दादी की भी तो सोचो! मनुष्य की सारी महिमा एक ही बात में छिपी है कि उसमें कुछ द्वार हैं,
जो पशुओं में नहीं हैं; उसमें कुछ उड़ानें हैं, जो पशु नहीं भर सकते। पशु शरीर पर समाप्त हैं; मनुष्य शरीर से शुरू होता है, समाप्त नहीं होता। शरीर तक तो मनुष्य भी एक पशु है।
तो जो व्यक्ति सिर्फ वैज्ञानिक दृष्टि को ही अंगीकार करता है, उस व्यक्ति में मनुष्य का जन्म नहीं हुआ; वह नाममात्र को मनुष्य है।
मन पैदा होता है काव्य से, कला से, संगीत से, सौंदर्य-बोध से। लेकिन जो मनुष्य मन पर ही समाप्त हो जाता है, वह मनुष्य तो है, लेकिन ईश्वर भी हो सकता था; उससे चूक गया। एक और उड़ान है--आखिरी उड़ान, अंतिम, उसके पार फिर कुछ भी नहीं--जहां मनुष्य अपने को आत्मवान अनुभव करता है; जहां अनुभव करता है अहं ब्रह्मास्मि, कि मैं ब्रह्म हूं! वह मन के भी पार है। वहीं धर्म है। धर्म एक छोर, विज्ञान एक छोर; काव्य या कला उन दोनों के मध्य में है।
जो व्यक्ति भी धर्म की तरफ जाना चाहता है, देह से आत्मा की यात्रा करना चाहता है वह कला के पड़ाव से गुजरेगा। एक पड़ाव आएगा, जो कला का होगा। अगर वैसा पड़ाव न आए, तो समझना कि तुम गलत रास्ते पर हो। इसलिए ठीक-ठीक अर्थों में जो व्यक्ति भी धार्मिक होगा, वह धार्मिक होगा, वह धार्मिक होने के साथ-साथ रस-विमुग्ध भी हो जाएगा। उसे जीवन में सौंदर्य का भी बोध होगा। वह रूखा-सूखा नहीं हो सकता। अगर रूखा-सूखा हो तो समझना कि किसी तरह मन को बचा कर निकल गया है। उसकी आत्मा में थोड़ी कमी रह जाएगी। उसकी समाधि बिना फूलों के होगी। और उसकी समाधि में नाद नहीं होगा; रिक्तता होगी, शून्यता होगी-- पूर्ण का नृत्य नहीं होगा। उसकी समाधि आनंद-उत्सव नहीं होगी। शायद उसकी समाधि इतनी ही कही जा सकती है--दुख-निरोध--कि अब वह दुखी नहीं होगा। अब जीवन की छोटी-छोटी बातें उसे दुखी नहीं करेंगी।
मगर दुखी न होना क्या काफी है? दुखी न होना तो एक तरह की मोटी खाल बना लेना है कि अब कुछ संवेदन नहीं होता। यह तो कोई भी आदमी जो अपने आसपास एक पथरीली दीवाल बना ले, वही सफल हो जाएगा; अगर कोई मर जाए तो उसे फिक्र नहीं, कोई जिए तो फिक्र नहीं, सफलता-असफलता हो, यश-अपयश हो, वह अपनी लोहे की चादर के भीतर छिपा बैठा है। इस तरह का आदमी वस्तुतः विकसित नहीं हुआ। उसने चालाकी करनी चाही। वह एक पड़ाव को बच कर निकल जाना चाहा।
सच्ची समाधि नृत्य और गीत गाती होती है। सच्ची समाधि उत्सवपूर्ण होती है। और सच्ची समाधि में आसपास एक लोहे की दीवाल नहीं होती। सच्ची समाधि बड़ी कोमल होती है, फूल जैसी कोमल होती है। और जब तक इतनी कोमलता न हो, तब तक करुणा नहीं होती।
इसलिए जो लोग कला के जगत से बच कर निकल जाते हैं, तुम पाओगे, उस तरह के साधु-संतों में किसी तरह की करुणा, किसी तरह का प्रेम झलकता नहीं। वे मुर्दे मालूम पड़ते हैं, लाशें मालूम पड़ते हैं--जिंदा लाशें! मैं उस पक्ष में नहीं हूं।
मैं मनुष्य के सर्वांगीण विकास के पक्ष में हूं। मैं मनुष्य को चाहता हूं वह पूरा का पूरा हो। देह के सारे आनंद उसे उपलब्ध हों। मन के सारे आनंद उसे उपलब्ध हों। आत्मा के सारे आनंद उसे उपलब्ध हों। मनुष्य त्रिवेणी है। वह तीर्थ बने। ये तीनों--गंगा, यमुना, सरस्वती--तीनों उसमें गिरें। संगम बने।
तुम पूछते होः क्या यह संभव है... "धर्म, कविता और विज्ञान साथ-साथ?"

अगर देह, मन और आत्मा साथ-साथ संभव है... । यह सारा अस्तित्व इन तीनों
का जोड़ है। इसलिए तो परमात्मा को हम त्रिमूर्ति कहते हैं। वह तीन का जोड़ है। उसके तीन चेहरे हैं। तुम्हारे भी तीन चेहरे हैं। एक ही चेहरे को पहचान कर मत रुक जाना, अन्यथा तुम अधूरे-अधूरे रहोगे। जहां अधूरापन है, वहीं विषाद है। जहां पूर्णता है, वहीं उत्सव है। जहां पूर्णता है, वहां प्राप्ति है। और जहां प्राप्ति है वहां संतुष्टि है।
विज्ञान का प्रभाव जगत में बहुत है। और उसका परिणाम हुआ है एकः धर्म
तो बुरी तरह नष्ट-भ्रष्ट हो गया। वह तो बात सपने की हो गई। उसका तो संबंध कल्पनाओं से जुड़ गया। लेकिन विज्ञान के प्रभाव के अंतर्गत जितना आदमी आया, उतना ही काव्य भी मरने लगा, कविता भी मरने लगी, कला भी मरने लगी। क्योंकि अगर आत्मा नहीं है, अगर दूसरा किनारा ही नहीं है, तो सेतु का क्या होगा? यह किनारा है, वह किनारा है, तो बीच का सेतु सार्थक है। काव्य सेतु है, जो दो किनारों को जोड़ता है--स्थूल और सूक्ष्म को जोड़ता है, दृश्य और अदृश्य को जोड़ता है, गोचर-अगोचर को जोड़ता है।
यह आकस्मिक नहीं है कि समस्त अनुभवियों की वाणी में एक काव्य की लक्षणा है, गुण है। उपनिषद महागीत हैं--वैसा ही कुरान। और गीता तो गीत है ही। और वेद की ऋचाएं। और जीसस के वचन! यद्यपि जीसस ने कविता में वक्तव्य नहीं दिए, मगर पृथ्वी पर जितने लोग बोले हैं उनमें सर्वाधिक काव्यपूर्ण वचन जीसस के हैं। जैसा सहज निष्छल काव्य उनमें है, किसी और के वचनों में नहीं। बुद्ध के वचनों में चाहे बहुत काव्य न हो, लेकिन बुद्ध के उठने- बैठने-चलने में, उनकी आंख की पलक के झपने में भी काव्य है; उनका सारा जीवन काव्य है।
यदि हम रहस्यवादियों के जीवन को परखें-पहचानें, तो तुम सदा ही पाओगेः वहां काव्य की किसी न किसी तरह कोई न कोई झलक मौजूद होगी। उस पार जाने के लिए सेतु से गुजरना ही पड़ता है। और उस सेतु से जो गुजरता है, रंग जाता है। उसके भीतर होली मना ली गई और दीवाली भी। उसके भीतर रंग भी फैले, दीये भी जले।
धर्म के पुनर्जन्म के साथ-साथ काव्य का पुनर्जन्म अनिवार्य है। अगर
वह किनारा है तो सेतु को फिर से सुधारना पड़ेगा, फिर से बनाना पड़ेगा। यद्यपि काव्य अपने में काफी नहीं है, अपने में पूर्ण भी नहीं है; लेकिन फिर भी विज्ञान से तो उसकी गहराई ज्यादा है। वैज्ञानिक जगत को देखता है। अब तराजू की पकड़ में बहुत स्थूल चीजें ही आती हैं, महत्वपूर्ण चीजें खो जाती हैं।
जैसे किसी आदमी में मस्ती है, तुम तराजू पर तौलोगे तो मस्ती का तो वजन नहीं आता। आदमी का जो वजन होगा आ जाएगा। आज आदमी मस्त है तो भी वजन उतना ही होगा तराजू पर और कल आदमी दुखी होगा तो भी वजन उतना ही होगा तराजू पर। तो तराजू तो कह देगा कि मस्ती और दुख होते ही नहीं, क्योंकि उनमें कोई वजन नहीं है। आदमी के जीवन में काव्य होगा तो भी वजन उतना ही होगा। काव्य-शून्य होगा आदमी तो भी वजन उतना ही होगा। तराजू आदमी और बंदर में फर्क नहीं करेगा। तराजू तो एक ही बात जानता हैः वजन।
विज्ञान के पास तराजू है; वह बड़ा स्थूल है। उससे कुछ बातें चूक ही जाती हैं। फूल को तौल लोगे, लेकिन फूल के सौंदर्य को कैसे तौलोगे? उस सौंदर्य को तो कोई देखने वाला भावुक हृदय चाहिए। तराजू पर नहीं तुलता, हृदय पर तौला जाता है। परखनलियों में नहीं जांचा जाता, प्राणों में जांचा जाता है। ऊपर-ऊपर से पहचानने का कोई उपाय नहीं है, फूल के भीतर प्रवेश करना होता है तब पहचान होती है।
वैज्ञानिक बाहर चक्कर लगाता है फूल के, कवि फूल के भीतर प्रवेश कर जाता है--फूल की सुवास में, फूल के सौंदर्य में। लेकिन सुवास और सौंदर्य से भी गहरा कुछ है; कवि की वहां तक पहुंच नहीं हो पाती, वहां ऋषि पहुंचता है। सौंदर्य सुवास... उसके पार फूल की आत्मा है--अदृश्य, अगोचर! वहां ऋषि की गति है।
जीवन के परम रहस्य तो ऋषि को खुलते हैं, लेकिन कवि के भी हाथ कुछ न कुछ जूठन लग जाती है। कवि के हाथ भी कुछ न कुछ सूत्र लग जाते हैं। कवि ऋषि के

बहुत करीब है, वैज्ञानिक बहुत दूर। वैज्ञानिक के हाथ में ऋषि के जगत का कुछ भी नहीं लगता; कवि पर थोड़ी-थोड़ी छाया पड़ती है।
और, धर्म को जताने के लिए, बताने के लिए, काव्य से बेहतर कोई दूसरी प्रक्रिया नहीं है। क्योंकि काव्य शब्दों को तरलता देता है; उनका ठोसपन छीन लेता है, उनकी नोकें छीन लेता है; उन्हें गोलाई देता है। और काव्य शब्दों को अर्थों के जड़ घेरे से मुक्त करता है; उन्हें थोड़ा विनम्र बनाता है; शब्दकोष की अकड़ मिटाता है। शब्दों को ऐसे जमाव देता है कि शब्दों से थोड़ी सी निःशब्द की झलक मिलने लगे।
वही काव्य श्रेष्ठ होता है जिसमें जितना शून्य उतर आता है। जो श्रेष्ठतम काव्य है, वह धर्म की बिल्कुल सीढ़ियों पर खड़ा हो जाता है। जो श्रेष्ठतम कवि है, जैसे रवींद्रनाथ, वे मंदिर के द्वार पर खड़े हैं.जरा और, एक कदम और... वे मंदिर के भीतर प्रविष्ट हो जाएंगे। मंदिर का देवता उनका होगा।
धर्म संसार से गया तो उसके साथ काव्य भी गया। इस सदी ने कोई बड़े कवि पैदा नहीं किए हैं; बड़े वैज्ञानिक पैदा किए हैं, बड़े कवि नहीं। धर्म वापस लौटे, तो उसकी छाया की तरह काव्य फिर वापस लौट आएगा।
तुम जरा लौट कर देखो, दुनिया में जो भी सुंदर घटा है, वह सब धर्म की छाया की तरह घटा है। खजुराहो के मंदिर हों कि पुरी के, कि कोणार्क के; अजंता की गुफाएं हों, कि एलोरा की; बोरोबुदर का मंदिर हो, कि रोम के गिरजे-- ये सब धर्म की छाया में उठे थे। बौद्ध भिक्षुओं ने खोदी थी गुफाएं अजंता- एलोरा की। पत्थर में सौंदर्य को अंकित किया था। पत्थर में फूल उगाए थे! जो गिरजे उठे पश्चिम में, उनकी भाव-भंगिमा देखते हो--आकाश की तरफ उठे हुए हाथ हैं पृथ्वी के! उनकी मीनारें देखते हो--दूर चांद-तारों को छूने के लिए निकली हैं! आदमी की अभीप्साएं हैं आकाश के साथ एकता कर लेने की! मस्जिदें देखते हो--ईरान की और मिस्र की और अरब की--वे मस्जिदें प्रार्थनाओं को स्थापत्य में ढालने का प्रयोग हैं! यह सब काव्य है। ताजमहल देखते हो! यह सब काव्य है। चाहे प्रेम से घटा हो, चाहे प्रार्थना से घटा हो। लेकिन जब प्रार्थना खो जाती है तो प्रेम भी खोने लगता है। और जब प्रार्थना और प्रेम दोनों खो जाते हैं, तब काव्य की भूमि समाप्त हो जाती है, उसकी बुनियाद ढह जाती है।
धर्म वापस लौटे तो काव्य अपने आप वापस लौट आएगा। फिर ताजमहल बनेंगे, फिर अजंता-एलोरा की गुफाएं निर्मित होंगी, फिर खजुराहो के प्यारे मंदिर उठेंगे। फिर आदमी भावाभिभूत होगा। फिर से देखेगा छिपे सौंदर्य को। अभी तो प्रयोगशाला में बैठा तराजू को लिए परखनलियों को गरम करता रहता है। अभी तो मशीनें बनाता है--कुरूप, बेढंगी, बेडौल! नहीं कि व्यर्थ हैं वे मशीनें, लेकिन इतनी मूल्यवान नहीं हैं कि आदमी उन्हीं में समाप्त हो जाए। आदमी उनके ऊपर उठता रहे, वे आदमी के लिए सीढ़ियां बनें, तो शुभ है।
तो मैं विज्ञान-विरोधी नहीं हूं, पूरे विज्ञान के पार भी एक लोक है काव्य का, उसके भी पक्ष में हूं। उस पर भी समाप्त नहीं होता हूं। उसके पार भी धर्म का एक लोक है, उसके भी पक्ष में हूं। यह त्रिमूर्ति पूरी होनी चाहिए मनुष्य में, तो मनुष्य पूर्ण होता है।

तीसरा प्रश्नः आप अपने आश्रम को मधुशाला क्यों कहते हैं?

भाई मेरे! पीओ तो जानो। डूबो तो पहचानो।
मंदिर जब जीवित होता है तो मधुशाला ही होती है। जब मधुशालाएं मर जाती हैं तो मुर्दा मंदिर शेष रह जाते हैं। जहां आज स्वर्ण-मंदिर है सिक्खों का, वहां कभी बैठ कर अगर नानक ने गीत गाया होगा और मरदाना ने अपना सितार छेड़ा होगा तो मधुशाला रही होगी। जब नानक के गीत पर मरदाना संगत दे रहा होगा, तब मंदिर जीवित था, तब मधुशाला थी, रस बह रहा था। और जो आए होंगे वे ही भूल गए होंगे, डूब गए होंगे, मिट गए होंगे। जो मिटा दे, वही मधु।

तुमने सुना तो होगा, पुराने शास्त्र ब्रह्मज्ञान को मधु-विद्या कहते हैं। बुद्ध ने कहा हैः बुद्धों का ज्ञान चखो तो मधुर ही मधुर है। प्रारंभ में मधुर, मध्य में मधुर, अंत में मधुर। मधु ही मधु है।
जगत बहुत कड़वा है। जगत दूर से तो बहुत से आश्वासन देता है मधु के, मगर पास जाने पर सिवाय तिक्तता के और कुछ भी नहीं मिलता। यहां हाथ जलते हैं और हृदय पर घाव बनते हैं। यहां की और कोई उपलब्धि नहीं है। एक और भी लोक है जहां मधु-रस बहता है।
अभी तो यह मधुशाला है। और जब तक यह मधुशाला है, तब तक पी लो। तब तक इसी विचार में मत पड़े रहो कि क्यों मधुशाला कहता हूं। जान ही लो, क्यों कहता हूं। यहां आकर दूर-दूर दर्शक की तरह मत लौट जाओ। जरा बैठो। जरा पास आओ। अगर बातें भी सुनो... अगर कोई शराब की बात भी ठीक से सुन ले, तो नशा छाने लगता है।
बड़े अजाब में है जाने-मय-कशां साकी।
नहीं शराब तो जिक्रे-शराब रहने दे।।
अगर शराब न हो तो जिक्रे-शराब। तुम्हें परमात्मा का तो कुछ पता नहीं है, तो चलो उसका जिक्र करें, उसकी याद करें। जिन्हें उसका पता है, उनके पास बैठ कर थोड़ी उसकी बातें सुनें। उनकी तरंग तुम्हें छुए है तो पड़ा तुम्हारे भीतर भी। छू जाए तरंग तो जग जाए। एक वीणा को बजते देख कर शायद तुम्हारे भीतर पड़ी वीणा का तुम्हें स्मरण आ जाए और वीणा बजने लगे। सत्संग का यही अर्थ है। संत-समागम का यही अर्थ है।
मैंने पूछा था कि है मंजिले-मकसूद कहां।
खिज्र ने राह बताई मुझे मयखाने की।।
"खिज्र" सूफियों की धारणा है कि एक पैगंबर अदृश्य पृथ्वी पर घूमता रहता है। जिनको जरूरत होती है उनको राह दिखा देता है। उस पैगंबर का नाम है खिज्र। वह सदियों-सदियों से भटकता रहता है--उनकी तलाश में जो प्रभु को खोज रहे हैं। जहां भी उसे खबर मिलती है कि कोई प्रभु का खोजी है, खिज्र वहां पहुंच जाता है, उपस्थित हो जाता है--सहारा देने को, सहयोग देने को। यह प्यारी धारणा है। इसका अर्थ केवल इतना ही है कि परमात्मा को खोजने वाले के लिए सारा अस्तित्व साथ देता है--दृश्य भी, अदृश्य भी। लोक से भी, परलोक से भी उसे साथ मिलता है। परमात्मा को खोजने वाला अपने को अकेला न समझे, इतना ही मतलब है इस बात का। परमात्मा को खोजने वाले को परमात्मा ही साथ देता है; अपने को अकेला न समझे। जो उसके विपरीत जा रहे हैं, वे अकेले हैं। जो उसकी तरफ जा रहे हैं, उनके वह साथ है। उनके हाथ में उसका हाथ है।
मैंने पूछा था कि है मंजिले-मकसूद कहां
मैंने पूछा कि आखिरी मंजिल कहां है? मंजिलों की मंजिल कहां है?
खिज्र ने राह बताई मुझे मयखाने की।
खिज्र ने कहाः चले जाओ--जहां पियक्कड़ जुड़े हों; जहां पीने वाले इकट्ठे हों; जहां उस प्यारे की बात होती हो। जहां उस प्यारे के नाम की शराब ढाली जाती हो, पहुंच जाओ वहां। खोजो कोई सत्संग, कोई मैखाना।
इसलिए मधुशाला कहता हूं। खिज्र लोगों को यहां भेज रहा है। कई ने मुझे आकर कहा। पूछता हूंः आए कैसे? वे कहते हैंः खिज्र ने भेजा।
खुश्क बातों में कहां ऐ शेख कैफे-जिंदगी।
वो तो पीकर ही मिलेगा जो मजा पीने में है।।
मगर कोई उपाय नहीं है कि तुम सिद्धांतों से समझ लो, शास्त्रों से समझ लो।
खुश्क बातों में कहां ऐ शेख कैफे-जिंदगी
वह जो जिंदगी का परम आनंद है, वह सिद्धांत और शास्त्र की रूखी-सूखी बातों में नहीं हो सकता। उसके लिए तो सूखी लकड़ियां बटोरते रहो, इससे काम न चलेगा। किसी हरे-भरे वृक्ष के पास जाओ--जहां अभी पत्ते लगते हों, जहां अभी फल लगते हों--उसकी छाया में बैठो।
वो तो पीकर ही मिलेगा जो मजा पीने में है।

और पीओ, डरो मत! डर तो लगता है कि पिए, फिर कहीं होश न खो जाए! होश खो जाएगा, मगर तुम्हारे पास जो होश है, वह होश कहां? यह होश तो खो जाएगा। यह होश ही नहीं है। और जिसको तुम अब तक समझते हो कि बेहोशी, वही असली होश है। परमात्मा में जो बेहोश हैं, वे होश में आ गए। और जो संसार के होश से भरे हैं, बेहोश हैं। संसार का होश भी कोई होश है? दो कौड़ी की चीजें इकट्ठी करते रहते हो, इसको होश कहते हो? होशियार कहते हो इस आदमी को? कोई धन कमा लेता है तो लोग कहते हैं बड़ा होशियार है, बड़ा होश वाला है! मौत आएगी तब इसे पता चलेगा कि जिंदगी व्यर्थ गंवा दी; कुछ करने का अवसर मिला था, न किया; कुछ सार्थक न खोजा। और यहां जो सार्थक खोजता है उसे लोग कहते हैं--पागल है।
यह भीड़ पागलों की है। यहां होश वाले पागल समझे जाते हैं; यहां पागल होशियार समझे जाते हैं। जरा सावधान रहना और इन शब्दों का ठीक-ठीक अर्थ समझ लेना।
नानक के पिता ने काफी परेशान होकर नानक को चाहा कि धंधे में लगा दें, क्योंकि यह चलता ही रहता सत्संग। आखिर कौन पिता चाहेगा कि बेटा सत्संग ही करता रहे! बाप समझाते कि कुछ काम की बात करो! और नानक कहतेः काम की ही बात कर रहा हूं, आप भी कैसी बात कर रहे हैं! दोनों के "काम" का अर्थ अलग-अलग था। बाप कहते, कुछ होश में आओ। और नानक कहते, वही तो कोशिश कर रहा हूं। यह सत्संग में इसीलिए तो जाता हूं। यह साधुओं के चरण इसीलिए तो दबाता हूं कि कुछ होश में आ जाऊं।
बाप सिर पीट लेते कि यह होश नहीं है। कुछ कमाई-धमाई करो! नानक कहते, वही तो कर रहा हूं। बात जब बहुत बिगड़ गई और बाप-बेटे के बीच कुछ संवाद मुश्किल हो गया, तो पिता ने कहा कि बातचीत बंद करो। यह रुपया लो कुछ। जाओ, मेला भरने वाला है। तुम कंबल खरीद लाओ। मेले में कंबल बेचो। लेकिन ध्यान रहे, नुकसान न हो। लाभ होना चाहिए। कुछ भी लाभ करके दिखाओ।
बाप थोड़े हैरान भी हुए कि नानक मस्ती से चल दिए; कहा कि ठीक है लाभ करके दिखाएंगे। पांच-सात दिन बाद वापस आ गए--बड़े प्रसन्न, बड़े मस्त! न तो कंबल, न रुपये। पूछाः "क्या हुआ? कहां हैं कंबल? कहां हैं रुपये? कितना लाभ हुआ?" पिता के चरण छुए और कहाः "लाभ बहुत हुआ।" मैं कंबल खरीद कर जा रहा था मेले की तरफ, कि रास्ते में साधुओं की एक जमात मिल गई। ठंढ पड़ रही है और वे ठिठुर रहे हैं। बांट दिए कंबल। पुण्य ही तो लाभ है। दान ही तो लाभ है। बड़ा आनंद आया। फकीरों को मस्त देख कर, कंबलों में बैठे देख कर, गर्माते देख कर, आत्मा गदगद हो गई। आप देखते तो प्रसन्न हो जाते।
बाप पर जो गुजरी सो बाप जाने। कोई और उपाय न देख कर कि धंधा इससे होगा नहीं, नौकरी लगवा दी। जिसके यहां नौकरी लगवा दी, उसने भी काम ऐसा दिया सरल से सरल, जिसे करने में कोई झंझट न आए। उसके पास हजारों सैनिक थे। सूबेदार था। तो इनको काम मिला था सबको रोज अनाज बांटने का, सिपाहियों को। कुछ दिन तो सब ठीक चलता रहा, लेकिन एक दिन सब गड़बड़ हो गई। वह गड़बड़ होनी ही थी। वह हुई तो अच्छा हुआ। नहीं तो दुनिया नानक से चूक जाती। उस दिन तो अच्छा नहीं लगा पिता को भी, गांव को भी, मालिक को भी; लेकिन आज हम जानते हैं कि अच्छा ही हुआ।
एक दिन अड़चन हो गई। तौलते थे अनाज, किसी को दे रहे थे। गिनती की-- ग्यारह, बारह और जब तेरह पर पहुंचे, तो पंजाबी में "तेरा" और "तेरह" एक से ही हैं। हिंदी में तो तेरह और तेरा में थोड़ा फर्क है मगर पंजाबी में तो तेरह और तेरा में कोई फर्क नहीं है। धुन बंध गई--"तेरा!" याद आ गई परमात्मा की। सब तेरा! फिर तौलते ही चले गए। फिर चौदह नहीं आया। फिर तेरा ही कहते गए और तौलते चले गए। धुन बंध गई। और दोपहर हो गई और सांझ हो गई और हजारों पसेरियों अनाज तौल दिए और तेरह पर ही। और मस्त और आंसू बहे जा रहे हैं, और डोल रहे हैं और कह रहे तेरा और तौलते जा रहे हैं। जो आए ले जाए। फिर फिक्र ही न रही कि कौन सैनिक है, कौन को देना है, किसको नहीं देना है। गांव के लोग भी आने लगे।
लोगों ने कहा कि नानक तो बांट ही रहे हैं, जो जाए कहते हैं--तेरा। शाम
तक मालिक को खबर पहुंची। बुलवाया पकड़ कर। बामुश्किल रुके। उन्हें तो "तेरा" लगी थी धुन, वह तो रात भर लुटाते। और जब मालिक ने पूछा कि यह क्या

पागलपन है, तो वे हंस रहे थे। उन्होंने कहा कि "तेरा" उसकी याद आ गई। सब उसका है मालिक! अपना क्या है? वही देने वाला है। आज याद आ गई। अब तक याद नहीं थी। अब तक मैं सोचता हूं कि "तेरा" शब्द इतनी बार आया, कितनी बार तौला और याद न आई। अब भरोसा ही नहीं आता कि इतनी बार कैसे चूका!
इस तरह के आदमी को तुम बेहोश कहोगे न! इस तरह के आदमी को तुम नशे में कहोगे न! ऐसा ही नशा यहां पीते हैं, पिलाते हैं। इसलिए मधुशाला है। "तेरे" की याद दिलाते हैं, इसलिए मधुशाला है।
आज तो कर दिया साकी ने मुझे मस्त अलस्त।
डालकर खास निगाहें मेरे पैमाने में।।
पास आओ कि मैं तुममें झांक सकूं, कि तुम मुझमें झांक सको; कि जो हुआ है उससे तुम्हारी थोड़ी पहचान हो जाए। फिर तुम भी कहने लगोगे, मधुशाला है।
हालांकि उत्तर तुम भी न दे पाओगे। न ही मैं उत्तर दे रहा हूं। यहां उत्तर दिए ही कहां जाते हैं! यहां तो तुम्हारे प्रश्नों को बहाना बना लिया जाता है और ढालना शुरू हो जाता है।
क्या हमने छलकते हुए पैमाने में देखा।
यह राज है मैखाने का अफ्शां न करेंगे।।
बताएंगे नहीं। यह राज है। यह बताया भी नहीं जा सकता। इसे कहने का कोई उपाय भी नहीं है। लेकिन पिलाया जा सकता है। पिलाएंगे। जिनकी पीने की हिम्मत हो, पिएं।
लेकिन कुछ लोग हैं, वे सोचते हैं स्वर्ग में पीएंगे, यहां कहां! कहते हैं स्वर्ग में बह रही है शराब की नदियां, तो सम्हल कर चलो!
लोग यह भी कह रहे हैं कि यहां सम्हल कर चलो तो वहां पीने को मिलेगा।
बड़ी अजीब बातें कर रहे हो! कुछ लड़खड़ाना सीखो, नहीं तो वहां बड़ी मुश्किल में पड़ोगे।
जनां में पहले-पहल पीएगा तो लड़खड़ाएगा जाहिद।
सरूरे-कौसर की है अगर धुन जहां में पहले शराब पी ले।।
ऐ जाहिद! ऐ विरागी, ऐ त्यागी! जब वहां पहली दफा स्वर्ग में पीने को मिलेगा तो बहुत लड़खड़ा जाएगा। जनां में पहले-पहल पीएगा तो लड़खड़ाएगा जाहिद! जन्नत में, स्वर्ग में मुश्किल में पड़ोगे।
सरूरे-कौसर की है अगर धुन... अगर स्वर्ग को पाने की अभीप्सा है--जहां में पहले शराब पी ले! तो यहां से थोड़ा अयास तो करो। परमात्मा खूब पिलाएगा। यहां सदगुरुओं के पास थोड़ा पीयो तो! थोड़ा चस्का तो लगे। थोड़ी लत तो पड़े। जो बाहर से आ जाते हैं, दूर-दूर खड़े होकर देखते हैं, उन्हें समझ में नहीं आता है यहां क्या हो रहा है। इसलिए वे गलत-सलत खबरें भी बाहर ले जाते हैं। रोज ही अखबारों में इस मधुशाला के संबंध में कुछ न कुछ गलत-सही छपता रहता है। उनकी भी मजबूरी है। बाहर से देख कर यही होने वाला है।
तसव्वर अर्श पर है और सर है पाए-साकी पर।
गरज कुछ और ही धुन में यहां मय-ख्वार बैठे हैं।।
यहां जो पियक्कड़ बैठे हैं, वे किसलिए बैठे हैं, क्या कर रहे हैं? तुम्हें पता भी न चलेगा बाहर से। तसव्वर अर्श पर है... । उनकी कल्पना स्वर्ग में छलांगें ले रही हैं। उनकी कल्पना स्वर्ग में प्रवेश कर रही है। तसव्वर अर्श पर है... । कल्पना आकाश पर है। और सर है पाए-साकी पर। और सिर है साकी के पैरों पर। जो शराब पिलाए, उसके पैरों पर। गरज कुछ और ही धुन में यहां मय-ख्वार बैठे हैं।
बाहर से जो देखेगा उसकी कुछ समझ में न आएगा कि ये पियक्कड़ यहां कर क्या रहे हैं! अब बड़ी मुश्किल है। जो बाहर-बाहर आकर चला जाता है, वह जो खबरें देता है लोग मान लेते हैं और अगर वह यहां पी ले, पियक्कड़ हो जाए, रंग जाए यहां के रंग में, तो फिर लोग उसकी नहीं मानते। वे कहते हैं कि यह तो उनमें ही डूब गया। यह तो पागलों में सम्मिलित हो गया।
अब यह बड़े मजे की बात है। जिसकी बात मानने जैसी है, जिसने भीतर से देखा जाकर कि क्या हो रहा है, जिसे अंतस्तल का पता चला है--उसकी कोई मानता नहीं। वह कहता है कि तुम तो गए काम से। तुम तो उन्हीं में हो। तुम्हारी क्या मानना!

यदि मैं किसी संन्यासी को भेजूं किसी को समझाने, वह कहता है तुम तो संन्यासी हो, तुम तो पक्षपाती हो। गैर-संन्यासी की मान लेते हैं। और गैर-संन्यासी की बात का क्या मूल्य है? वह पास आया नहीं। उसने आंख में आंख डाली नहीं। उसने तो बाहर-बाहर से देखा कि कुछ लोग नाच रहे हैं, कुछ लोग शोर कर रहे हैं, कुछ लोग गीत गा रहे हैं, कुछ लोग वाद्य बजा रहे हैं, कुछ लोग चुपचाप बैठे हैं--पता नहीं क्या हो रहा है! उसे यहां कुछ काम की बात होती दिखाई नहीं पड़ती। और ठीक ही है। वह जिसे काम समझता है, वह यहां नहीं हो रहा है। यहां कुछ और हो रहा है, जिसे हम "काम" समझते हैं। उसकी और हमारी भाषा मेल नहीं खाती। वह मुश्किल में पड़ जाता है। वह बड़ी अड़चन में हो जाता है। वह कुछ का कुछ अर्थ लेकर पहुंच जाता है।
साधना-शिविरों में बड़े बेमन से मुझे रोक लगानी पड़ी कि लोग वस्त्र न उतारें। ऐसी घड़ी आती है जब वस्त्र उतर जाते हैं। एक ऐसी घड़ी आती है आह्लाद की, निर्दोषता की, जब वस्त्र भी बोझ मालूम पड़ते हैं। और मन होता है, गहन मन होता है कि सब परदे गिरा दो! परमात्मा और अपने बीच कुछ भी न रखो। ये हवाएं इस शरीर के साथ खेलें और ये सूरज की किरणें इस शरीर पर नाचें! और इस आकाश और इस शरीर के बीच कोई भी आवरण न हो। ऐसी घड़ी आती है मस्ती की! लेकिन जो बाहर से आकर देख लेता है वह समझता हैः "अरे! यहां नग्नता सिखाई जा रही है।" ये वे ही लोग हैं जिन्होंने महावीर को पत्थर मारे थे, क्योंकि वे नग्न थे; हालांकि अब पूजा कर रहे हैं। और मैं तुमसे कहता हूंः ये ही लोग पूजा करेंगे। लेकिन सदियों बाद ये पूजा करते हैं। इनकी पूजा झूठी। इनकी पूजा मुर्दा। जब कोई मधुशाला मर जाती है, मधु-धाराएं सूख जाती हैं, सिर्फ याददाश्त रह जाती है, तब ये पूजा शुरू करते हैं। लेकिन जब तक मधु-धाराएं बहती रहती हैं, जब तक जीवंत कुछ सत्य मौजूद होता है, तब तक ये दूर-दूर भागे रहते हैं। सत्य से तो ये डरते हैं, क्योंकि सत्य आग्नेय है। उसके पास आओगे, जलोगे, भस्मीभूत हो जाओगे। मगर उसी भस्म से तो नया जीवन पैदा होता है। बहुत मजबूरी में मुझे रोक लगा देनी पड़ी कि कोई कपड़े न उतारे। मजबूरी में! क्योंकि मैं जानता हूं कि कभी वैसी घड़ी आती है, उस घड़ी में किसी को रोकना अमानवीय है। उस घड़ी में किसी को रोकना अशोभन है। लेकिन वे दर्शक इकट्ठे हैं। वे दर्शक कैमरे ले आते हैं। वे किसी का चित्र निकाल लेंगे। वह चित्र महत्त्वपूर्ण हो जाता है।
जर्मनी के एक पत्र ने--"स्टर्न" ने--कुछ दो-तीन चित्र नग्न छाप दिए हैं।... लोगों की उत्सुकता कैसी है! ... उसके चित्र सारी दुनिया के पत्रों में छप गए फिर। करीब-करीब दुनिया की कोई भाषा नहीं है जिसमें वे चित्र नहीं पहुंच गए। डच में पहुंच गए, इटेलियन में पहुंच गए, फ्रेंच में पहुंच गए, स्पेनिश में पहुंच गए। सारी दुनिया के अखबारों में, साल भर हो गए उस अखबार को छपे, मगर वे अभी तक नई-नई भाषाओं में पहुंचते ही जाते हैं। कोई यह नहीं पूछेगा कि किस घड़ी में ये लोग नग्न थे, किस घड़ी में यह नग्नता घटी थी। उस घड़ी से किसी को लेना-देना नहीं है।
ऐसी घड़ियां हैं, जब चित्त बिल्कुल बच्चे की भांति निर्दोष हो जाता है,
जब वापस बचपन लौट आता है। उतनी ही निर्दोषता! लेकिन बाहर से देखने वाला तो समझेगा कि यहा तो यह आदमी पागल हो गया है या नशे में है, कुछ गड़बड़ है। और उसकी बात लोग मान लेंगे; जैसे मानने को बैठे ही थे।
यह मधुशाला है--इन्हीं अर्थों में कहता हूं कि यहां हम एक दूसरी भाषा बोल रहे हैं; एक दूसरी जीवन की शैली को विकसा रहे हैं।
पी लिया करते हैं जीने की तमन्ना में कभी।
डगमगाना भी जरूरी है सम्हलने के लिए।।
थोड़े डगमगाओ! दुनिया "डगमगाना" कहेगी। जानने वाले "सम्हलना" कहेंगे।
थोड़े पीओ और मस्त हो जाओ। दुनिया पागल कहेगी; जानने वाले कहेंगे, पागलपन गया। जानने वाले बहुत थोड़े हैं। जानने वालों का बहुमत नहीं है। इसलिए साहस चाहिए। क्योंकि भीड़ और बहुमत तो न जानने वालों का है। उनकी हंसी झेलने की तैयारी चाहिए।
लोग इतने बेईमान हो गए हैं, चालबाज हो गए हैं, लोग इतने गणित में कुशल
हो गए हैं कि उनकी जीवन की सहजता ही खो गई है, सारी स्वच्छता खो गई है।

तुमने ख्याल किया लोग हर बात को सोच-समझ कर कर रहे हैं। और चूंकि सोच-समझ कर करते हैं, इसलिए करने की जो सहजता है नष्ट हो जाती है; करने की जो सरलता है वह नष्ट हो जाती है। हर चीज में दांव लगा रहे हैं। हर चीज में पहले से ही सारा विस्तार सोच लिया है। सारी चालें बिठा रखी हैं। सब चालबाज हो गए हैं।
शतरंज के खिलाड़ी को देखा? वह पहले से ही सोच लेता है तीन-चार चालें-- मैं ऐसा चलूंगा तो दूसरा कैसा चलेगा। जो बड़े खिलाड़ी हैं शतरंज के, वे पांच चालें पहले से सोच लेते हैं--मैं यह चलूंगा तो दूसरा ऐसा, फिर मैं ऐसा तो दूसरा वैसा--ऐसा पांच चालों का हिसाब लगा लेता है, फिर चलता है। लेकिन इस चाल में मजा चला जाता है। चिंता हो जाती है, तनाव हो जाता है। शतरंज के खिलाड़ी अक्सर पागल हो जाते हैं।
मैंने तो यहां तक सुना है कि इजिप्त का एक सम्राट शतरंज का बड़ा खिलाड़ी था, वह पागल हो गया। जब वह पागल हो गया, उसके बहुत इलाज किए गए लेकिन कोई इलाज काम न आया। फिर किसी एक फकीर ने कहाः इस पर कोई इलाज काम न आएगा, यह शतरंज से पागल हुआ है। यह चालें चल-चल कर होशियारी की, पागल हुआ है। इसका दिमाग बहुत उलझ गया है चालों में। आगे की चालें, और आगे की चालें, और आगे की चालें--इसका चित्त बहुत भारग्रस्त हो गया है। इसको सुलझाने का एक ही उपाय है। दवाएं काम न करेंगी। सलाहें काम न करेंगी। अगर कोई शतरंज का खिलाड़ी इसके साथ एक साल तक शतरंज खेलने को राजी हो जाए तो यह ठीक हो जाएगा। सम्राट का मामला था। कोई राजी तो नहीं था। पागल के साथ कौन शतरंज खेले? वह अनर्गल बकता भी था, शोरगुल भी मचाता था। बीच-बीच में तखता भी उलट देता था शतरंज का। पागल के साथ कौन शतरंज खेले! लेकिन काफी पैसे देने की बात थी। एक खिलाड़ी राजी हो गया। फकीर की बात सच थी। साल भर बाद सम्राट बिल्कुल ठीक हो गया। लेकिन वह खिलाड़ी पागल हो गया।
यह दुनिया शतरंज के खिलाड़ियों से भरी है। अलग-अलग शतरंज बिछाई हैं लोगों ने--किसी ने धन की, किसी ने पद की, किसी ने प्रतिष्ठा की, किसी ने कुछ, किसी ने कुछ।
मैं तुमसे कहता हूंः छोड़ो ये खेल। शतरंज के खेलों ने तुम्हारे जीवन
को नरक बना दिया है। तुम पागल हो गए हो। कुछ जीवन में और भी पाने जैसा है-- जो खेल नहीं है शतरंज का; जहां तनाव से नहीं पहुंचा जाता और चालों से नहीं पहुंचा जाता; जहां चालबाज चूक जाते हैं--जहां सरलता से पहुंचा जाता है।
सहर के वक्त मय पीने से मुझको रोक मत नासेह।
कि सिजदे के लिए दिल में जरा सा सिद्क लाना है।।
--पियक्कड़ कह रहा है धर्मगुरु से, उपदेशक से कि हे उपदेशक! सुबह के वक्त मुझे शराब पीने से मत रोक।
सहर के वक्त मय पीने से मुझको रोक मत नासेह।
कि सिजदे के लिए दिल में जरा सा सिद्क लाना है।।
... कि सिजदा करना है, प्रार्थना करनी है, नमाज पढ़नी है, उसके पहले थोड़ी
सी सच्चाई भी तो लानी जरूरी है! ... कि सिजदे के लिए दिल में जरा सा सिद्क लाना है।... तभी तो सिजदा हो सकेगा। थोड़ी सचाई तो आ जाए। थोड़ी बेईमानी तो गिर जाए। थोड़ी मेरी चालबाजी तो हट जाए। मुझे पीने से मत रोक।
यहां भी पिलाई जा रही है एक शराब--और ऐसी शराब जो अंगूरों से नहीं ढाली जाती, आत्मा से ढाली जाती है। और ऐसी शराब, जो बाजारों में नहीं मिलती--जो मंदिरों में ही मिलती है, जिंदा मंदिरों में मिलती है--और सिर्फ वहीं मिलती है।
मैं जानकर ही इसे मधुशाला कहता हूं। "मधुशाला" सूफियों का सांकेतिक शब्द है। इसका अर्थ होता है--जहां परमात्मा पीया जा रहा है, पिलाया जा रहा है।

चौथा प्रश्नः ओशो! हर दिन आप अमृत की चर्चा करते हो और यह दुनिया है कि आपको जहर लौटाती है। क्या आपको भी कभी लगता होगा कि किन अंधों को मैं प्रकाश दिखाता हूं और किन बहरों को मैं अमृतवाणी सुनाता हूं?

सत्य निरंजन! ऐसा लगने का उपाय नहीं। अंधा अंधा है। और अगर अंधा अंधे
की तरह व्यवहार करता है तो इसमें चकित होने जैसा क्या है? और बहरा बहरा है। और बहरा अगर नहीं सुनता, पुकारे-पुकारे नहीं सुनता, तो इसमें चकित होने की बात क्या है? सुन ले तो चकित होने की बात है। जब कोई सुन लेता है तब मैं चकित होता हूं। जब कोई देख लेता है तब मैं चकित होता हूं। तब चमत्कार घटता है। जब कोई नहीं देखता है, मैं दिखाए चला जाता हूं और नहीं देखता, तो बात सीधी-साफ है। कसूर उसका क्या? कसूर मेरा है।
जब तुम अंधे को कुछ दिखाने की कोशिश कर रहे हो तो कसूर तुम्हारा है। अंधे को न दिखाई पड़े, इसमें नाराजगी क्या? अपेक्षा ही कहां है कि अंधे को दिखाई पड़ना ही चाहिए? यह तो मुझे दिखाई पड़ जाए। यह मेरी मजबूरी है कि जो मुझे दिखाई पड़ा वह मुझे चैन नहीं लेने देता; वह कहता हैः दिखाओ। वह कहता हैः दो। सौ को पुकारोगे तो शायद एक सुन लेगा। हजार को दिखाओगे तो शायद एक को दिख जाएगा। तो भी बहुत है। तो भी पर्याप्त पुरस्कार मिल गया।
उठे स्वर्ण की आभा में ज्वाला सा मन
तन झुलस-झुलस कर भी झूमे आनंद-मगन
हर अंधकार में सिसक रही कोमलता का दुख दीन हो
तम क्षीण अमावस को करने की यह इच्छा प्राचीन न हो
और जब तुम्हारे भीतर भी प्रकाश जागे तो रोक कर मत बैठ जाना।
तम क्षीण अमावस को करने की यह इच्छा प्राचीन न हो।
तुम्हारे भीतर यह अभीप्सा जगाए रखना। यह करुणा बनाए रखना। जब तुम्हारे मेघ भरें तो बरसना। यह मत सोचना कि पृथ्वी पिएगी या नहीं पिएगी? कभी पीती है, कभी नहीं पीती। कभी वर्षा पहाड़ों पर हो जाती है, कभी कंकरीली- पथरीली जमीन पर हो जाती है, कभी रेगिस्तानों में हो जाती है। कभी बंजर भूमि पर होती है और कभी-कभार उपजाऊ भूमि पर भी। पर उतना ही काफी है।
जीसस ने कहा हैः जैसे कोई बीजों को फेंके; रास्ते पर पड़ जाएं, उगते नहीं। रास्ते के किनारे पड़ जाएं, उग भी जाते हैं तो गाय-बैल चर जाते हैं। मेड़ पर पड़ जाएं, उग भी जाते हैं, गाय-बैल नहीं भी चर पाते हैं; लेकिन लोगों के चलने-फिरने में नष्ट हो जाते हैं। लेकिन इससे कोई बीज बोना थोड़े ही बंद कर देता है। कुछ बीज खेत की बीजभूमि पर भी पड़ते हैं। हजार बीज फेंके, एक बीज फल जाए।
और तुम सोच लेना कि परमात्मा भी इससे ज्यादा अपेक्षा नहीं करता। इसलिए तो एक वृक्ष में लाखों बीज लगाता है, कि कम से कम एकाध तो गिर कर सफल हो जाएगा। फिर एक वृक्ष हरा होगा। एक वृक्ष में करोड़ों बीज परमात्मा क्यों लगाता है? करोड़ों बीज की जरूरत नहीं है। अगर हिसाब-किताब करें, पंचवर्षीय योजना बनाए, तो सोचेगा कि यह मैं क्या कर रहा हूं, यह तो फिजूलखर्जी है। एक वृक्ष में हजार-करोड़ बीज क्यों लगाने? कुछ बीज लगा दो। मगर करोड़ों बीज लगाता है, तब कहीं एकाध-दो बीज अंकुरित होते हैं। और क्या- क्या इंतजाम करता है कि बीज पहुंच जाएं भूमि तक!
तुमने सेमर के फूल देखे? तुम जानते हो क्यों सेमर के फूल में कपास होती है? वह जो बीज होता है उसके भीतर, उसको उड़ा कर दूर ले जाने के लिए। क्योंकि सेमर का वृक्ष बड़ा वृक्ष है। अगर बीज उसके नीचे ही गिरेगा तो उतने बड़े वृक्ष के नीचे बीज अंकुरित नहीं हो पाएगा। हो भी जाएगा तो पौधा बड़ा नहीं हो पाएगा। बीज को दूर ले जाना जरूरी है। तुम यह मत सोचना कि तुम्हारे तकिए में भरने के लिए सेमर के फूल में कपास होती है। तुम्हारे तकिए से क्या लेना-देना? वह बीज को ले जाने के लिए होता है। वह बीज का पंख है। वह जो कपास है, हलकी कपास है, वह भारी बीज को अपने में उड़ा ले जाती है। हवा के झोंके पर दूर चला जाता है। मीलों दूर चला जाता है, ताकि किसी निश्चित स्थान पर जहां कोई बड़ा वृक्ष न हो... मगर क्या पता, हवा कहां गिरा देगी, इसलिए एकाध बीज नहीं, लाखों बीज लगाता है।
तुम्हें पता है, एक पुरुष एक बार के संभोग में जितने जीव-कोष्ठ छोड़ता
है अपने शरीर से, उनकी संख्या करोड़ों होती। वैज्ञानिकों ने हिसाब लगाया है कि एक साधारण आदमी, कामवासना से भरा आदमी अपने जीवन में कम से कम चार हजार बार संभोग करता है। और प्रत्येक संभोग में करोड़ों जीवाणु छूटते हैं।

यानी प्रत्येक संभोग में करोड़ों बच्चे पैदा हो सकते थे। चार हजार बार! वैज्ञानिकों ने हिसाब लगाया है कि एक आदमी काफी है सारी पृथ्वी को आबाद कर देने के लिए। अरबों आदमी पैदा कर सकता है एक आदमी। मगर पैदा करेगा दस-बारह, अगर संतति-नियमन न लागू हो। अगर लागू हो तो दो या तीन बस! परमात्मा इतना ज्यादा इंतजाम करता है दो-तीन बच्चों के लिए।
परमात्मा भी इससे ज्यादा अपेक्षा नहीं करता, तो मैं तो कैसे करूं? बोले जाता हूं। पुकारे जाता हूं। कोई न कोई सुनेगा। कुछ ने सुन भी लिया है। इसलिए अब भरोसा भी बढ़ता है कि और भी सुनेंगे। कुछ की आंखों में धीमी- धीमी रोशनी भी दिखाई पड़ने लगी है। इसलिए अब भरोसा भी बढ़ता है कि औरों की आंखों में भी जल्दी ही रोशनी दिखाई पड़ेगी। कुछ बीज अंकुरित भी होने लगे हैं। मगर तुम यह बात सोचना कि इसमें कोई दया है। इसमें एक अंतर्निहित व्यवस्था है। जैसे दीया जलेगा तो रोशनी बिखरेगी। और फूल खिलेगा तो सुवास उड़ेगी। और मेघ घिरेंगे तो वर्षा होगी।
दया और करुणा और ममता
कोई ऐसी चीजें नहीं हैं
जिन्हें हम मुट्ठी में धरे
या जेबों में भरे फिरें
और फेंके जहां-तहां लोगों पर
ये सब तो असल में वर्षा के बादल हैं जो घनते हैं अपने स्वभाव में जरूरत में और भी बरसते हैं
केवल अपने स्वभाव
या अपनी जरूरत में
गिनते नहीं हैं ये कि कहां
कितना हमसे सिंचा
कितना हमसे भरा
कितना हमने बहा, कितनों ने हमको सहा कल्याण किया कितनों का हमने
या कहो ये गंगा की या नर्मदा की धाराएं हैं जो बह रही हैं
जिसे सूझेगा इनके पास जाना
या लाना इन्हें अपने खेतों तक
जाएंगे वे उनके तटों पर
और मांगेंगे
इसीलिए कहा गया है शायद
जो मांगेंगे उन्हें मिलेगा
इतना भी क्या कम है कि कोई अंधा आदमी किसी आंख वाले आदमी के पास आता है पूछने, तलाश करने! दिखाई पड़ेगा उसे कि नहीं पड़ेगा, यह तो भविष्य के अंधकार में है, लेकिन इतना भी क्या कम है कि आकांक्षा जगती है कि मैं भी देखूं। और बहरा भी सुनना चाहता है, उसके भीतर भी अभीप्सा है नाद में उतरने की। फिर उतर पाएगा नहीं उतर पाएगा, हजार बाधाएं हैं, लेकिन यह आकांक्षा शुभ है। तुम यहां मेरे पास आए हो--इसी अभीप्सा के कारण। यही अभीप्सा तुम्हें दूर-दूर से ले आई है। हजार बाधाएं, हजार अड़चनें, उनको पार करके तुम आए हो। इतना भी क्या कम है? मैं प्रफुल्लित होता हूं। मैं आनंदित होता हूं। लोग आतुर हैं, लोग तलाश रहे हैं। लोग टटोल रहे हैं। इतने लोग जब टटोलते हैं तो कुछ होने वाला है। इतने लोग जब तलाशते हैं तो कुछ घटने वाला है। फिर मैं न दूं, ऐसा कोई उपाय नहीं। तुम न आओगे तो भी देना पड़ेगा।
शायद तुम्हें पता न हो, या पता हो--महावीर जब पहली दफा बोले तो सुनने वाला कोई था ही नहीं। वृक्ष थे। दृश्य में तो वृक्ष थे। शास्त्रों को जरा अड़चन मालूम हुई होगी कि लोग क्या कहेंगे, महावीर को पागल कहेंगे? बोले और कोई सुनने वाला था ही नहीं! कम से कम इसका तो पता कर लेते कि सुनने वाला भी कोई है या नहीं! तो शास्त्र तो होशियार लोग लिखते हैं, उन्होंने उसमें होशियारी बता दी। उन्होंने कहा कि देवता, अदृश्य देवता वृक्षों के नीचे

बैठे सुन रहे थे। शक है मुझे, देवता वगैरह कहां सुनने आएंगे! यह जोड़ा होगा शास्त्रकारों ने। लेकिन शास्त्रकारों की मजबूरी भी मेरी समझ में आती है। अगर महावीर को बताएं कि बोल रहे हैं और सुनने वाला कोई भी नहीं है तो उत्तर क्या दोगे? महावीर पागल हैं? देवता आए हों कि न आए हों, मुझे प्रयोजन नहीं; मगर एक बात साफ है जब दीया जलता है तो रोशनी फैलती है, चाहे कोई देखने वाला हो या न हो। मेरे लिए तो यह कहानी इस बात का प्रतीक है कि महावीर के भीतर जब फूल खिला तो सुवास बिखरी, चाहे फिर कोई नासापुट पास हो सुगंध लेने को या न हो, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता।
एकांत में भी फूल खिलता है, दूर जंगल में भी फूल खिलता है तो भी सुवास... । ऐसा थोड़े ही है कि जब तुम्हारे बगीचे में खिलता है तभी सुवास फैलाता है। यह अनिवार्यता है। यह सत्य के साथ जुड़ा हुआ अनिवार्य अंग है। जब भी सत्य पैदा होता है उसके साथ ही आवाहन, पुकार पैदा होती है। उसके साथ ही अपने आप सत्य का गीत शुरू हो जाता है। और ऐसा तो कभी नहीं होता कि पृथ्वी पर सत्य की तलाश करनेवाले लोग न हों। इतनी वंध्या तो पृथ्वी कभी नहीं होती। इसलिए सत्य की तलाश करनेवाले चल पड़ते हैं। चल पड़े हैं, आने लगे हैं।
सत्य निरंजन, तुम्हारा सोचना भी मेरी समझ में आता है। तुम कहते होः "हर दिन आप अमृत की वर्षा करते हो और यह दुनिया है कि आपको जहर लौटाती है।" जो जिसके पास है, वही तो देगा न! जिसके पास गीत हैं गीत देगा; जिसके पास गालियां हैं, गालियां देगा। इससे तुम दुनिया पर नाराज मत होना, दया करना। इससे इतना ही समझना कि बेचारों के पास और कुछ नहीं है, वे करेंगे भी क्या! जो मेरे पास है, मैं देता हूं; जो उनके पास है, वे देते हैं।
एक जैन-कथा है। एक जैन मुनि नदी के किनारे बैठा ध्यान कर रहा है। एक बिच्छू नदी में गिर पड़ा है। मुनि ने जल्दी से हाथ फैला कर बिच्छू को पानी में से हाथ में ले लिया। उठा कर किनारे पर रख दिया, बिच्छू डूब न जाए। लेकिन इस बीच बिच्छू ने डंक मार दिया। मुनि तो बचाने चला है बिच्छू को, मगर बिच्छू भी बेचारा क्या करे, बिच्छू बिच्छू है! डंक उसके पास है। डंक मारने की कला उसे आती है। और जितने हाथों ने उसे कभी छुआ है या उसके पास आए हैं, सब उसे मारने आए हैं, बचाने तो कभी कोई हाथ आया नहीं। अनुभव नहीं है उसे। उसके बापदादों को भी अनुभव नहीं था। पीढ़ी दर पीढ़ी करोड़ों वर्ष का संस्कार उसका यही है कि जब भी कोई हाथ आया है, मारने आया है। मुनियों के हाथ इतनी आसानी से मिलते भी कहां हैं! वैसे ही मुनि कम हैं। कभी-कभार हजार मुनि हों तो उसमें एकाध मुनि मुनि होता है। अगर बिच्छू ने डंक मारा तो ठीक ही किया; मुनि हंसने लगा।
और तुमने देखा, कीड़े-मकोड़ों की एक जिद होती है, अहंकारी होते हैं। चींटे को तुम जरा फेंक दो दूर, वह वापस लौट कर तुम्हारी तरफ आता है। फिर फेंको दूर, फिर वापस लौट कर आता है। जिद बंध जाती है। वह कहता हैः तुमको भी हम दिखा कर रहेंगे। तुमने समझा क्या है? जीवन की बड़ी जिद होती है। चाहे छोटी ही जीवन की किरण क्यों न हो, मगर जिद्दी होती है।
मुनि तो उठा कर रख दिया उसे किनारे पर, वह वापस पानी में गिर पड़ा। उसने
तय ही कर लिया है जैसे। मुनि ने उसे फिर हाथ में उठाया, फिर उसने डंक मारा। और जब तीसरी बार वह फिर पानी में गिरा और मुनि उसे उठाने लगा तो एक मछुआ, जो पास ही मछली मार रहा था, उसने मुनि से कहाः आप पागल हैं? होश गंवा बैठे हैं? क्या कर रहे हैं? वह बिच्छू आपके हाथ में डंक पर डंक मारे जा रहा है। मरने दो उसको। उसको बचाने से सार भी क्या है? मर ही जाए तो अच्छा है। और समझ में नहीं आ रहा कि तीन दफे डंक मार चुका।
मुनि ने कहाः मैं अपना काम कर रहा हूं, वह अपना काम कर रहा है। अगर बिच्छू नहीं हार रहा तो मैं हार जाऊं? अगर बिच्छू जिद पर है तो मैं भी जिद में हूं। बिच्छू कहता है, हम मरेंगे डूब कर, आत्मघात करने की तैयारी किए बैठा है। मैं भी कहता हूं, हम बचाएंगे। और बिच्छू ही है, वह डंक न मारे तो क्या करे? फूल तो बरसाएगा नहीं। अब देखना यह है कि कौन हारता है। मैं उठाता रहूंगा, जब तक होश रहेगा। देखना है उसका जहर पहले चुकता है कि पहले मेरा अमृत चुकता है।

तो सत्य निरंजन, दुनिया मुझे क्या लौटाती है, इससे सिर्फ दुनिया दया
का पात्र हो जाती है। जहर है तो जहर लौटाते हैं। बिच्छू हैं तो डंक मारते हैं। सांप है तो फन फैलाते हैं।
एक फकीर एक गांव में आया। गांव के लोग उसके बड़े विरोध में थे। उन्होंने क्रोध में आकर उसको जूतों की माला पहना दी। वह फकीर खूब खिलखिला कर हंसने लगा। उसने जूते बड़े गौर से देखे। सम्हाल कर माला रख ली। छाती से लगा ली। गांव के लोगों ने कहाः तुम कर क्या रहे हो, ये जूते हैं! फकीर ने कहाः जूते मेरे फट भी गए थे। और प्रार्थना लगता है, सुन ली। कल ही रात मैंने परमात्मा से कहा था कि जूते दिलवाओ। मगर यह नहीं सोचा था कि इतने दिलवा देगा। मैं तो दो की आशा रखता था। वह भी कभी-कभार सुनता है मेरी प्रार्थना। पक्का भी नहीं था कि सुनेगा, मगर सुबह ही इतने जूते! हे मालिक! तेरी बड़ी कृपा है! रही आप लोगों की बात। तो यह जान कर मैं खुश हूं कि जो आपके पास था, आप लाए तो! कुछ गांव तो ऐसे हैं कि लोग कुछ भी नहीं लाते--जूते तक नहीं लाते। उनके पास, ऐसा लगता है, कुछ भी नहीं है। फिर जो जिसके पास है... । मालियों के गांव में जाता हूं तो फूल लाते हैं। लगता है यह बस्ती चमारों की होगी। जाहिर है जूतों की माला से कि बस्ती चमारों की होगी। चमार भाई! तुम्हारी बड़ी कृपा! जो जिसके पास है वही देगा न! चमार भाई! तुम्हारी बड़ी कृपा!
जहर कोई लौटाता है, लौटाने दो। जहर लौटाते-लौटाते कभी तो सम्हलेगा, कभी तो ख्याल आएगा। गालियां देते-देते, कभी तो होश आएगा। कभी तो क्षण भर को रुकेगा।
और फिर एक बात और ख्याल रखनाः जो लोग गालियां देते हैं और जहर फेंकते हैं, इतना तो पक्का है कि मुझसे उनका संबंध हो गया। मेरे संबंध में सोचते हैं, विचार करते हैं। नाता तो जुड़ ही गया। दुश्मनी भी एक नाता है। जैसे दोस्ती एक नाता है। दोस्त की भी याद आती है, दुश्मन की भी याद आती है। अगर उन्होंने मुझे अपना दुश्मन भी समझ लिया है तो अपने हृदय में मेरे लिए थोड़ी जगह तो दे ही दी। वहीं से काम शुरू होगा। उतनी जगह भी काफी है। जरा सा पैर रखने को जगह भर मिल जाए, फिर धीरे-धीरे अंगूठा हाथ में आ गया, तो पहुंचा भी हाथ में आ ही जाएगा।
और जो घृणा से भरे हैं, वे कभी भी प्रेम से भर जाएंगे। क्योंकि घृणा और प्रेम एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। असल में वे नाराज ही इसलिए हैं कि उन्हें भय पैदा हो गया है कि अगर वे नाराज न होंगे तो मुझसे राजी हो जाने का डर है। इसलिए मैं फिर दोहरा दूंः तुम नाराज ही तब होते हो किसी से जब तुम्हें राजी होने का डर पैदा हो जाता है। तुम अपने भय में नाराज हो जाते हो। तुम अपनी सुरक्षा करने लगते हो।
वे मुझे गालियां नहीं दे रहे हैं; गालियों की दीवाल अपने चारों तरफ खड़ी करके सुरक्षा कर रहे हैं, ताकि मेरे पास आने का जो आकर्षण पैदा हो रहा है, वे अपनी गालियों से उस आकर्षण को मंदा कर लेना चाहते हैं। लेकिन गालियों से आकर्षण मंदा नहीं होता। यह तो वैसा ही पागलपन है जैसे कोई आग बुझाने को घी डाले। यह आग बढ़ेगी। जिसने मुझे गाली दी, वह मेरे फंदे में पड़ा।
मैं अहमदाबाद में था। एक मित्र संन्यास लेने आए। जब मैं किसी को संन्यास देता हूं तो उससे कहता हूं, जरा मेरी आंखों की तरफ देखो। उनसे मैंने बार-बार कहा लेकिन वे नीचे ही देखें। मैंने कहाः भई एक दफा मेरी आंख की तरफ तो देखो। उन्होंने कहा कि नहीं देखेंगे। मैंने कहाः तुम एक नये संन्यासी हो! बात क्या है?
उन्होंने कहाः शर्म आती है। लज्जा आती है।
तो मैंने कहाः फिर पूरी कहानी कहो। बात क्या है पीछे?
तो उन्होंने कहाः आपको पता चल गया क्या?
मैंने कहाः तुम पूरी कहानी कहो। तुम्हारे चेहरे पर तो लिखी है।
तब उन्होंने आंख उठाई। उन्होंने कहा कि बात असल में यह है. . .!
उन दिनों मुझ पर अहमदाबाद की अदालत में एक मुकदमा चलता था। किसी ने मुकदमा चला दिया था कि मैं धर्म का दुश्मन हूं और धर्म की हानि हो रही है।

उन सज्जन को बड़ा जोश आ गया। धर्म की हानि हो रही है! . . . तो वे मेरी सभा में छुरा लेकर छुरा फेंक कर मुझे मारने को आए थे। मगर भीड़-भाड़ थी और इतने पास नहीं आ सके जहां से छुरा फेंका जा सके, तो उन्होंने सोचा कि अब आ ही गया हूं तो बैठ कर सुन लूं। बैठ कर सुन तो लिया, लेकिन तब बड़ी ग्लानि से भर गए कि अगर यह बात धर्म की हानि है, तो फिर धर्म की रक्षा क्या होगी! दूसरे दिन संन्यास लेने आए। तो उन्होंने कहाः इसलिए आंख नहीं उठाता हूं कि कल ही तो मैं छुरा लेकर आपको मारने गया था। आंख किस तरह उठाऊं?
मैंने कहाः तुम बेफिकरी से उठाओ। तुम्हारा मुझसे नाता पुराना होगा, नया नहीं है। तो सिर्फ अफवाह सुन कर कोई किसी को छुरा मारने जाए, अपनी जिंदगी दांव पर लगाए... । मेरी जिंदगी जाती-जाती, वह तो ठीक था; तुमने अपनी जिंदगी दांव पर लगाई, यह कोई छोटा मामला है! तुम फंसते, झंझट में पड़ते। इतनी झंझट में पड़ना चाहा जिस आदमी के लिए तुमने... जीवन-मरण का सवाल तुम्हारे लिए भी था। जितनी तुमने उपद्रव उठाने की हिम्मत दिखाई, साफ जाहिर है कि नाता पुराना होगा। और घृणा जल्दी ही प्रेम में बदल जाती है। असली कठिनाई तो उन लोगों के साथ है जिनकी घृणा भी बड़ी कुनकुनी है। कुनकुना प्रेम भी कहीं नहीं पहुंचाता, कुनकुनी घृणा भी कहीं नहीं पहुंचाती। या तो प्रेम चाहिए जलता हुआ, ज्वलंत, सौ डिग्री पर; या घृणा चाहिए ज्वलंत, सौ डिग्री पर। दोनों ही हालत में कुछ क्रांति घटती है। इसलिए सत्य निरंजन, उनकी चिंता न करो। अगर उनकी घृणा मजबूत है तो वे
आज नहीं कल आएंगे। वे चल ही पड़े हैं। उन्होंने जरा यात्रा लंबी शुरू की है। मगर जमीन गोल है। तुम चाहे चलो मेरे विपरीत, मगर चलते रहना, तो आज नहीं कल मुझ तक पहुंच जाओगे।
मैंने सुना है, एक आदमी भागा चला जा रहा था। राह के किनारे बैठे एक आदमी से पूछा कि दिल्ली कितनी दूर है? तो उस आदमी ने कहाः जिस दिशा में आप जा रहे हैं, अगर इसी में चलते रहे तो एक दिन पहुंच जाएंगे। लेकिन कई हजार मील का चक्कर है। अगर आप पीछे लौट पड़ें, तो ज्यादा दूर नहीं है। आप पीछे पांच मील दूर ही दिल्ली छोड़ आए हैं। वैसे आपकी मर्जी, दोनों तरफ से आप दिल्ली पहुंच जाएंगे। सीधे चलते ही रहना, नाक की सीध में, चलते-चलते, चलते- चलते दिल्ली आ जाएगी, मगर सारी पृथ्वी का चक्कर लग जाएगा।
सारी गति चक्राकार होती है। घृणा से जो चलता है वह भी प्रेम पर पहुंच सकता है। और जो प्रेम से चला है वह भी घृणा पर पहुंच सकता है। मित्र शत्रु हो सकते हैं, शत्रु मित्र हो सकते हैं। जीवन बड़ा वर्तुल है।
इसलिए बहुत चिंता न करो। अगर वे जहर दे रहे हैं, आज नहीं कल जहर उंड़ेलते-उंड़ेलते उनका जहर चुक जाएगा। आखिर बिच्छुओं की ग्रंथि में भी एक सीमा होती है जहर की। लेकिन जो अमृत मैं तुम्हें दे रहा हूं वह चुकने वाला नहीं है। अमृत का लक्षण ही यही है कि वह अनंत है, असीम है। और जहर सीमित होता है। जहर और अमृत में लड़ाई हो तो अमृत हार नहीं सकता। जहर उफने, उछले- कूदे, लेकिन एक न एक दिन शांत उसे हो ही जाना पड़ेगा। इसलिए जानने वालों ने कहा हैः सत्यमेव जयते! चाहे देर कितनी ही लग जाए, लेकिन सत्य की विजय होती है।
दर्द को ढालते हैं नग्मों में
सोज को साज में बदलते हैं
दाद दे हमको ऐ गमे-दुनिया!
जख्म खाकर भी फूल उगलते हैं।
मैंने हर गम खुशी में ढाला है
मेरा हर इक चलन निराला है
लोग जिन हादसों से मरते हैं
मुझको उन हादसों ने पाला है
ख्याल करना, यह सारे संतों का अनुभव हैः दर्द को ढालते हैं नग्मों में! पीड़ा आए, तो उस पीड़ा की ऊर्जा से गीत बना लेते हैं।
दर्द को ढालते हैं नग्मों में
सोज को साज में बदलते हैं

दुख को भी वीणा बना लेते हैं। खंडहरों को भी महल बदल देते हैं। सोज को साज में बदलते हैं। दाद दे हमको ऐ गमे-दुनिया! ... ऐ दुख से भरे हुए लोगो! ऐ दुख से भरी हुई दुनिया! हमें दाद दो। जख्म खाकर भी फूल उगलते हैं। यहां कुछ थोड़े से लोग जमीन पर सदा होते हैं, जो जख्म खाते हैं और फूल लौटाते हैं। तुम उनकी तरफ अंगारे फेंको और तुम्हारे अंगारे उनमें बुझ जाते हैं और शीतल फूल होकर लौट आते हैं। जिसके पास ऐसी घटना घटती हो, उसने ही जाना है, उसने ही पाया हैः तुम गालियां फेंको और उसके भीतर आकार गीतों में ढल जाएं। मैंने हर गम खुशी में ढाला है
मेरा हर इक चलन निराला है
लोग जिन हादसों से मरते हैं...
जिन घटनाओं में लोग मर जाते हैं, जिन घटनाओं में लोग उलझ जाते हैं, समाप्त हो जाते हैं--मुझको उन हादसों ने पाला है।
जार्ज गुरजिएफ पश्चिम का एक बहुत अदभुत ज्ञानी, एक बड़ी महत्वपूर्ण बात कहता था। वह कहता था कि जीसस को सूली लगाई गई, यह तो कथा का ऊपरी हिस्सा है। जीसस ने खुद ही आयोजन करवाया था कि मुझे सूली लगा दो। उसने एक पूरी नई कथा जीसस के नाम पर खोज ली है। बड़ी महत्वपूर्ण कथा है। वह यह कहता है कि जुदास, जो जीसस का सबसे प्यारा शिष्य था, उसने धोखा नहीं दिया; उसने सिर्फ जीसस की आज्ञा मानी थी। जीसस की आज्ञा थी कि मुझे पकड़ा दो। मुझे सूली लग जाए तो मैंने जो कहा है, वह सदा के लिए शाश्वत हो जाएगा।
गुरजिएफ की कहानी तो काल्पनिक मालूम पड़ती है, पर बड़ा संकेत गहरा है। इतनी बात तो सच है कि जीसस को लोग भूल गए होते, अगर सूली न लगी होती। सूली ने ही जीसस को याददाश्त में गहरा बिठा दिया--लोगों के प्राणों का हिस्सा बन गए। सूली ने ही उन्हें शाश्वतता दे दी।
सुकरात को जहर न पिलाया होता, सुकरात को लोग भूल गए होते। तो फिकर न करो।
लोग जिन हादसों से मरते हैं
मुझको उन हादसों ने पाला है
अब तक का अनुभव यही है कि संतों को मारे गए पत्थर, उनके चरण-चिह्न बन
गए हैं। उनको मारे गए पत्थर, आने वाले समय के लिए धरोहर बन गए हैं। उन पत्थरों के कारण ही उन संतों की अमिट छाप लोगों के प्राणों पर छूट गई है। तो मुझे गालियां दी जाएंगी, पत्थर भी मारे जाएंगे। और तुम जो मेरे साथ चलने को राजी हुए हो, तुम्हें इन सब बातों के लिए राजी हो जाना चाहिए। और आनंद से, अहोभाव से!
काम है मेरा बगावत, नाम है मेरा शबाब
मेरा नारा इंकिलाबो, इंकिलाबो, इंकिलाब!
क्रांति मेरा नारा है। बगावत को मैं धर्म कहता हूं। विद्रोह मेरे लिए साधना है।

आखिरी प्रश्नः प्रवचन सुनते समय आनंद आता है और समझ भी आता है। थोड़ी देर बाद सब भूल जाता है। इस सूरत में दिए उपदेश पर अमल कैसे हो? राह दिखाएं प्रभु!

प्रेमचैतन्य भारती! तुम्हारी अड़चन मेरे ख्याल में है। तुम्हारे पहले प्रश्न का उत्तर दे रहा हूं; हालांकि तुम प्रश्न तो कम से कम पचास पूछ चुके होओगे जब से तुम यहां आए हो। तुम्हारे प्रश्नों के इसलिए उत्तर नहीं दिए थे। राह देखता था कि तुम संन्यस्त हो जाओ तो तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर दूंगा।
तुम्हारे सारे प्रश्नों से कुछ बातें जाहिर हैं। एकः कि तुम जैन धर्म
से अत्यधिक प्रभावित हो, इसलिए अमल की बात उठती है। मेरे हाथ में तुम पड़ गए हो अब। यहां अमल की बात ही नहीं है। मेरे हिसाब में तो बोध काफी है, समझ काफी है। सुनो मेरी बात, समझो मेरी बात; उसे चरित्र में उतारना है, यह विचार ही मत करना। अगर बात समझ में आ गई तो चरित्र में उतरेगी ही। तुम एक दिन अचानक पाओगे कि अमल हो रहा है, तुम्हें करना नहीं है।

लेकिन तुम पर जैन धर्म की छाया है, छाप है। वहां तो हर चीज अमल में लानी है। और तो कुछ बोध है नहीं, ध्यान की प्रक्रियाएं तो खो गई हैं; आचरण-मात्र रह गया है--थोथा! ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करो... । तो तुम्हारे मन में वही सरक रहा है, कि सुन तो लिया... ।
जैन मुनि लोगों को समझाते हैं कि देखो, हमने जो कहा, भूल मत जाना! एक कान से सुना और दूसरे से निकाल मत देना।
और मैं तुमसे यही कहता हूं कि मैं तुमसे जो कहता हूं, कृपा करके भूल जाना। याद रखने के योग्य जो है, वह याद रहेगा ही; तुम भूलना भी चाहो तो नहीं भूलेगा। और जो भूल जाए वह भूल ही जाना था। वह किसी काम का नहीं था; अभी तुम्हारी समझ का अंग नहीं बना था। कोई परीक्षा थोड़े ही देनी है। यह कोई स्कूल थोड़े ही है कि जो कहा है उसको खूब कंठस्थ कर लो, क्योंकि फिर परीक्षा की कापी में वमन कर देना, उत्तीर्ण हो जाना। जीवन कोई इतनी सस्ती बात नहीं है।
तो मैं तो कहता हूंः सिर्फ सुनो, समझो, पीओ! बिल्कुल भूल जाओ, याद रखने
की जरूरत ही नहीं है। नहीं तो कुछ लोग नोट-बुक ले आते हैं, उसमें नोट करते जाते हैं। तुम्हारी नोट-बुक बता रही है कि तुम्हारी समझ में कुछ नहीं रहा। जिसकी समझ में आ रहा है, नोट-बुक का क्या करेगा? समझ में ही आ गया। और जो बात समझ में आ जाती है शायद उसके शब्द भूल जाएं, लेकिन उसका सार नहीं भूलता। और अगर सार भी भूल जाता हो तो भी मैं यह कहूंगाः और करीब आओ, और गौर से सुनो, और ध्यानपूर्वक डूबो!
मगर अमल की तो बात ही मत उठाना। चरित्र के मैं पक्ष में नहीं हूं; बोध
के पक्ष में हूं। बोध होता है भीतर; चरित्र होता है बाहर। भीतर की बदलाहट हो जाए तो बाहर की बदलाहट अपने से हो जाती है। अंतःकरण बदले तो आचरण अपने आप छाया की तरह बदलता है। लेकिन तुमने उलटी बातें सुनी हैं। तुम जैन मुनियों के पास बैठते रहे हो, उठते रहे हो।
तुमने एक प्रश्न यह भी पूछा है कि अब मैं क्या करूंगा? मैं आपका संन्यासी हो गया और मेरा लगाव जैन मुनियों और साध्वियों से है। मैं उनकी चरण-वंदना को जाऊं या न जाऊं?
तुम्हारी मर्जी है। लेकिन तुम द्वंद्व में पड़ोगे। क्योंकि मैं जो कह रहा हूं, वह बिल्कुल कुछ और है। वह वही है जो महावीर ने कहा था। और जैन मुनि जो कह रहे हैं वह जितना मेरे विपरीत है उतना ही महावीर के विपरीत है। तुम्हारी मर्जी है, जिसकी चरण-वंदना करना हो करना, मगर फिर उलझन में पड़ोगे। क्योंकि मैं कह रहा हूं--बोध, ध्यान; और वे कह रहे हैं--आचरण, चरित्र। मैं कहता हूं--न व्रत, न उपवास। इसका यह मतलब नहीं है कि मैं व्रत-उपवास के विरोध में हूं। लेकिन व्रत की तरह विरोध में हूं।
तुम सिगरेट पीते हो; जैन मुनि कहता है व्रत ले लो कि अब नहीं पीएंगे। मैं कहता हूं कि यह जबरदस्ती होगी। सिगरेट पीना छोड़ दोगे, पान चबाने लगोगे। मुंह चलेगा, कहीं न कहीं चलेगा। और अगर पान भी चबाना बंद करवा देंगे जैन मुनि, तो तुम बकवास करने लगोगे। मुंह चलेगा... अब यह बकवास और खतरनाक है। कम से कम सिगरेट पीते थे, धुआं बाहर ले गए भीतर ले गए, कोई इतना बड़ा नुकसान नहीं है। एकाध साल कम जीते... वैसे भी तुम्हारे जीने से कौन सा बड़ा लाभ है? जरा जल्दी चले जाते, एक जगह खाली होती। अब तो वह और एक साल ज्यादा जीओगे और लोगों की खोपड़ी खा जाओगे।
वैज्ञानिक कहते हैं कि सिगरेट, पान, चूविंगगम, ये सब बकवास करने वाले आदमी के लक्षण हैं। बकवास कर लेता था, बकवास करने को कोई मिलता नहीं; क्या करे? अकेले ही मुंह चलाए, सिर्फ बिना उसके चलाए तो लोग कहेंगेः क्या कर रहे हो, पागल हो? तो चूविंगगम रख ली मुंह में, कि एक बहाना तो है कि हम चूविंगगम चबा रहे हैं, हम पान चबा रहे हैं, हम तंबाकू चबा रहे हैं। अब कोई कुछ नहीं कह सकता।
मैं तुमसे व्रत लेने को नहीं कहता। मैं तुमसे कहता हूं तुम्हारी समझ में आ जाए कि यह क्या मूढ़ता कर रहे हो--धुआं भीतर ले गए, बाहर ले गए! यह कोई धुएं का प्राणायाम कर रहे हो? अगर प्राणायाम ही करना है तो शुद्ध वायु का ही ठीक है; अब यह धुएं का किसलिए करना? इसका सार क्या है, प्रयोजन क्या है?

इससे तो थोड़ी विपस्सना करो! श्वास पर ध्यान रखो बाहर-भीतर, उसका आनंद लो। और तुम चकित हो जाओगे कि इतना रस बहता है, सिर्फ श्वास को देखने से कि तुम क्या सिगरेट पीने की सोचोगे! व्रत नहीं लेना पड़ेगा, सिगरेट जाएगी।
उपवास के भी मैं विपरीत नहीं हूं। लेकिन उपवास कभी हो जाए--मस्ती ऐसी
हो कि भोजन याद ही न आए! ध्यान में डूबे ऐसे कि भोजन भूल ही गया। ऐसा यहां घट जाता है। अभी चार-छह दिन पहले एक संन्यासी ने कहा कि रात को ख्याल आया कि आज भोजन नहीं लिया है, दिन भर ऐसी मस्ती छाई रही। यह उपवास है! यह मस्ती से आया है।
एक उपवास होता है कि थोप लिया कि अब करना है। उपवास करने वाला एक रात पहले डट कर खा लेता है--कल उपवास करना है। ठूंस लेता है जितना ठूंस सकता है। यह और हानि हो गई; इससे तो तुम कल ही भोजन करते उतना ही अच्छा था। और फिर जिस दिन उपवास करता है, दिन भर भोजन की ही सोचता है। उस दिन परमात्मा की याद नहीं आती। उस दिन बस अन्नम ब्रह्म, अन्न ही ब्रह्म है! और क्या-क्या चीजें घूमती हैं मस्तिष्क में... और कैसी-कैसी सुगंधें उठती हैं! कहीं भजिए पकने लगते हैं! कहीं हलवे की गंध आने लगती है! जहां जाओ वहीं... । और सोच रहा है कि कब यह दिन पूरा हो जाए... और क्या-क्या खाना है इसके बाद। यह उपवास हुआ? यह तो भोजन से भी विकृत दशा हो गई। भोजन कर लेते थे, दो दफे भोजन कर लेते थे, झंझट मिटी। हर दो भोजन के बीच आठ घंटे का उपवास तो हो जाता था। अब वह भी नहीं हो रहा है। अब चल ही रहा है भोजन, कर ही रहे हैं कल्पना में। रात भी सपने देखोगे कि चल रहा है भोजन।
कुछ लोग तीर्थ यात्रा पर गए थे। मुल्ला नसरुद्दीन भी साथ था। रास्ते में लुट गए। थोड़े से ही पैसे बचे। चारों भूखे थे। गांव से हलवा खरीदा। मगर हलवा इतना कम था कि एक के ही काम का था। बड़ी झंझट हो गई, अब कौन करे? और चारों बांटें तो किसी का भी मन न भरे। तो उन्होंने सोचा कि हम में जो सबसे ज्यादा कीमती आदमी है, वह भोजन करे; उसका बचना जरूरी है, बाकी मर भी जाएं तो चलेगा। मगर कौन है कीमती, यह कैसे तय हो? चारों दावे करने लगे कि मैं तुमसे ज्यादा कीमती हूं, कि मैं इतना पढ़ा-लिखा हूं; कि किसी ने कहा कि भई मेरे इतने बच्चे हैं, मैं मर जाऊंगा तो इनका क्या होगा? और किसी ने कहाः अभी-अभी मेरी शादी हुई है, पत्नी को घर छोड़ कर आया हूं, बेवा हो जाएगी, उसकी भी तो सोचो! और किसी ने कहा कि मैं धार्मिक हूं, किसी ने कहा कुछ, किसी ने कुछ। सांझ हो गई बकवास करते-करते, मगर वह हलवा कौन खाए? आखिर उन्होंने यह तय किया कि हम चारों सो जाएं, परमात्मा को तय करने दें। रात परमात्मा जिसको भी सुंदरतम स्वप्न देगा, सुबह वही भोजन कर लेगा।
चारों सो गए। सुबह उठे। पहले ने कहा कि रात परमात्मा उपस्थित हुआ, उसने मुझे छाती से लगा लिया। इससे सुंदर और क्या हो सकता है? इससे ज्यादा श्रेष्ठ और क्या हो सकता है?
दूसरे ने कहा, यह कुछ भी नहीं है। परमात्मा ने मुझे कंधे पर बिठा लिया। इससे श्रेष्ठ क्या हो सकता है?
तीसरा भी चूक नहीं सकता था, उसने कहाः तुम बातें क्या कर रहे हो, मुझे देखते ही परमात्मा एकदम साष्टांग दंडवत किया!
तीनों मुड़े नसरुद्दीन की तरफ, जरा चौंके, कि अब यह क्या करेगा, क्योंकि आखिरी हो गई बात! परमात्मा ने एकदम साष्टांग दंडवत कर लिया, बात खत्म हो गई। नसरुद्दीन ने कहाः मुझे तो इतने ये सपने नहीं आए। मुझे तो परमात्मा दिखाई पड़ा उसने कहाः अबे बुद्धू, पड़ा-पड़ा क्या कर रहा है? हलवा खा! तो मैं तो भैया उठ कर और उसी वक्त आज्ञा का पालन किया। हलवा तो खत्म भी हो गया है।
तुम उपवास करोगे तो बस इसी तरह के सपने देखोगे कि बुद्धू! पड़ा-पड़ा क्या कर रहा है? उठ! रेफ्रिजरेटर की तरफ जा!
न तो मैं तुमसे उपवास करने को कहता हूं, न व्रत साधने को। मैं कहता हूंः तुम्हारा बोध जगे, तुम्हारी तल्लीनता बढ़े, तुम्हारा अंतस्तल रसमय हो! ये सब चीजें अपने से हो जाएंगी।
अमल की फिकर छोड़ो--सुनो, गुनो, डूबो!

ज्योति से ज्योति जले
उन्नीसवां प्रवचन

हमारै गुरु दीनी एक जरी

हमारैं गुरु दीनी एक जरी
कहा कहौ कछ कहत न आवै, अंमृतरसहि भरी।
ताकौ मरम संतजन जानत, वस्तु अमोल परी।।
यातें मोहि पियारी लागति, लैकरि सीस धरी।
मन-भुजंग अरन पंच नागनी सूंघत तुरंत मरी।।
डायनि एक खात सब जग कौं, सो भी देस डरी।।
विविधि बिकार ताप तानि भागी, दुरमति सकल हरी।
ताकौ गुन सुनि मीच पलाई, और कवन बपुरी।।
निसबासर नाहिं ताहि बिसारत, पल छिन आध घरी।
सुंदरदास भयो घट निरविष, सबही व्याधि टरी।।
देखौ माई, आज भलौ दिन लागत।
बरिषा रितु कौ आगम आयौ, बैठि मलारहिं रागत।।
रामनाम के बादल उनए, घोरि घोरि रस पागत।
तन मन मांहिं भई शीतलता, गए बिकार जु दागत।।
जा कारनि हम फिरत बिवोगी, निशिदिन उठि-उठि जागत।
सुंदरदास दयाल भए प्रभु सोइ दियौ जोइ मांगत।।

इस गुलशने-हस्ती में लगता नहीं दिल अपना।
आए हैं खुदा जाने हम किससे जुदा होकर।।
इस जिंदगी में किसका दिल कब लगा! थोड़ी देर लग भी जाए तो टिकता कहां! अभी लगा अभी उखड़ा।
यह जिंदगी असली जिंदगी नहीं है। धोखा कोई खाना चाहे खा ले, पर कितनी देर? देर-अबेर जागरण होगा ही। रेत से कोई तेल ही निचोड़े, कब तक निचोड़ता रहेगा? रेत में तेल नहीं है, देर-अबेर बोध आएगा ही।
यह जीवन असली जीवन नहीं है। असली जीवन प्रतीक्षा कर रहा है कि खोजो। इसीलिए यहां किसी का मन लगता नहीं। लाख लगाओ नहीं लगता। लाख उलझाओ भरमाओ, उखड़-उखड़ जाता है। ऐसा तुम्हें प्रतीत नहीं हुआ? कुछ न कुछ कमी मालूम पड़ती है। और ऐसा नहीं है कि जिनके पास कुछ नहीं है उन्हें कमी मालूम पड़ती है। जिनके पास सब कुछ है, उन्हें ज्यादा मालूम पड़ती है। जिस दिन सब मिल जाता है इस जगत का, उस दिन तो बहुत कमी मालूम पड़ती है, आशाएं भी टूट जाती हैं फिर। धनी से ज्यादा दरिद्र नहीं होता। दरिद्र को तो थोड़ी धन की आशा होती है; धनी को वह आशा भी टूटी! दरिद्र तो सोचता हैः कल थोड़ा धन होगा, मकान होगा, जमीन-जायदाद होगी, सुख से रहेंगे, सुख से जीएंगे, जिंदगी मिल जाएगी। अमीर की यह आशा भी गई। धन भी है और निर्धनता वैसी की वैसी अछूती खड़ी है। बाहर धन का ढेर लग जाता है तो भीतर की दीनता और भी प्रकट होती है। बाहर का धन भीतर की दरिद्रता को प्रकट करने के लिए पृष्ठभूमि बन जाता है; जैसे कोई काले तख्ते पर सफेद खड़िया से लिखे। काला तख्ता हो तो ही सफेद खड़िया की लिखावट दिखाई पड़ती है। सफेद तख्ते पर लिखोगे तो दिखाई नहीं पड़ती।
अमीर को दरिद्रता दिखाई पड़ती है। यह आकस्मिक नहीं है कि बुद्ध और महावीर राजपुत्र थे। यह आकस्मिक नहीं है कि हिंदुओं के सारे अवतार राजपुत्र थे, जैनों के सारे तीर्थंकर राजपुत्र थे। इन्हें दरिद्रता दिखाई पड़ती होगी! खूब घनीभूत होकर दिखाई पड़ी होगी। संसार से आशा का दीया बिल्कुल बुझ गया; क्योंकि संसार जो दे सकता है। तब इनकी आंखें भीतर की तरफ मुड़ीं!
कमी तो सभी को लगती है--भिखारी से लेकर सम्राट तक को। लेकिन भिखारी सोचता हैः धन नहीं है इसलिए कमी मालूम पड़ती है; पद नहीं है इसलिए कमी मालूम पड़ती है। होगा पद, होगा धन, भरा-पूरा हो जाऊंगा।
इस संसार में कोई कभी भरा-पूरा नहीं होता। सिकंदर भी खाली हाथ जाते हैं यहां सब पा लो तो भी हाथ खाली के खाली रहते हैं।

इस गुलशने-हस्ती में लगता नहीं दिल अपना।
आए हैं खुदा जाने हम किससे जुदा होकर।।
कहीं किसी गहरे में हमें अब भी याद है उस मूलस्रोत की, जहां से हमारा आना हुआ है। भूल गए हैं बहुत, विस्मृति गहन हो गई है, पर्त पर पर्त जन्मों- जन्मों के अनुभव की जम गई है; लेकिन फिर भी कोई भनक कहीं सुनाई पड़ती हैः यह हमारा घर नहीं है। दबा देते हैं इस आवाज को, क्योंकि और भी तो कहीं कोई घर दिखाई पड़ता नहीं। और इस आवाज की सुनो तो पागल हो जाओ। यह आवाज सुनो तो फिर यहां जियो कैसे?
धर्म की आवाज सभी के भीतर उठती है, लोग उसकी गर्दन दबोच देते हैं। ऐसा आदमी तो खोजना कठिन है इस पृथ्वी पर, जिसे कभी न कभी इस बात की समझ न आती हो कि यहां हम परदेशी हैं। हमारा देश कहीं और। हमारा निज-देश कहीं और। इतना जो दुख हमें अनुभव होता है वह भी इसीलिए कि हमने आनंद जाना है। जरूर जाना है! बिना आनंद को जाने दुख की प्रतीति नहीं हो सकती। बिना आनंद को जाने आनंद की खोज भी नहीं हो सकती है।
और यहां प्रत्येक व्यक्ति आनंद को तलाश रहा है। गलत रास्तों पर तलाशता हो कि सही रास्तों पर, ठीक दिशाओं में तलाशता हो कि गलत दिशाओं में, पर हर व्यक्ति यहां आनंद को तलाश रहा है। तलाश तो उसी की होती है, जो खोया हो। जरूर हमारे पास था और छिटक गया है। हाथ में था और खो गया है। हमने किन्हीं क्षणों में जाना है। बहुत अंतराल हो गया होगा समय का, सदियां बीत गई होंगी, हम न मालूम कितने रूपों में भटक गए होंगे, हमें अपना मूल-स्वरूप खो ही गया है।
जैसे कोई आदमी एक नाटक में अभिनय करे, फिर दूसरे नाटक में, फिर तीसरे नाटक में और नाटक में अभिनय करता रहे--और एक दिन अचानक याद आए कि मैं कौन हूं! इतने नाटकों में काम कर चुका हूं, इतने रूप धर चुका हूं, इतने वेश पहन चुका हूं कि अब याद भी नहीं आती कि मेरा असली चेहरा क्या है? मेरा मूल-स्वरूप क्या है?
नाटक करते-करते आदमी भी नाटक हो जाता है। अभिनय करते-करते आदमी भी अभिनय हो जाता है। धोखा देते-देते हम धोखा हो जाते हैं। झूठ बोलते-बोलते हम झूठ हो जाते हैं। और झूठ ही हमने बोली है। धोखा ही हमने दिया है। मुखौटे ही हमने पहने हैं। अब हमें अपनी असली शकल पहचान में नहीं आती, याद भी नहीं आती। मगर फिर भी कहीं कोई आवाज अब भी झरती है और कहीं कोई झरना अब भी बहता है।
कभी भी जब तुम शांत होकर बैठ जाओगे, तब तुम्हें यह पृथ्वी असली घर मालूम नहीं होगी। इसलिए लोग शांत बैठने में भी डरते हैं, खाली होने में भी डरते हैं। उलझाए रखते हैं अपने को। व्यस्त रखते हैं। काम का काम न हो तो बेकाम का काम ले लेते हैं। छुट्टी का दिन हो, जिसके लिए छह दिन प्रतीक्षा की थी कि आए छुट्टी का दिन तो आराम कर लेंगे, तो कार खोल कर बैठ जाते हैं, घड़ी खोल कर बैठ जाते हैं कि इसको ही सुधार लें! कुछ न कुछ व्यस्तता निकाल लेते हैं।
आदमी अपने को खाली नहीं छोड़ता, क्योंकि खाली छूटा आदमी कि भीतर की आवाज सुनाई पड़नी शुरू होती है कि तुम कर क्या रहे हो! यहां तुम कह क्या रहे हो? तुम्हें अभी यह भी पता नहीं है कि मैं कौन हूं! तुम किस जिंदगी में उलझे हो?
हस्ती का शोर तो है मगर एतिबार क्या।
झूठी खबर किसी की उड़ाई हुई सी है।।
जिसे हमने जिंदगी समझा है, वह झूठी खबर किसी की उड़ाई हुई सी है। एक न
एक दिन एक सपना सिद्ध होती है। और जब मौत दरवाजे पर दस्तक देती है तो सारी जिंदगी सपना सिद्ध होती है। उस दिन तो केवल वे ही मौत को अंगीकार कर पाते हैं जिन्होंने असली जिंदगी का रस पाया हो। उस असली जिंदगी का नाम ही परमात्मा है। और जब तक परमात्मा की वर्षा न हो जाए तब तक तुम प्यासे रहोगे! और जब तक परमात्मा की छाया न मिल जाए तब तक तुम दग्ध रहोगे। धूप और ताप और जीवन की आपा-धापी... ! और जब तक परमात्मा के मंदिर में प्रवेश न हो जाए, तब

तक यात्रा है, व्यर्थ यात्रा है। सार्थक यात्रा तो वही है जो मंदिर तक ले आए।
मंदिर ही हमारा घर है। उससे कम से राजी मत होना।
लोग बड़े जल्दी राजी हो जाते हैं। लोग छोटे बच्चों जैसे हैं, खिलौनों
से राजी हो जाते हैं। बच्चों को पकड़ा दिया लकड़ी का घोड़ा--सुंदरदास ने कल ही तो याद किया था--लकड़ी के घोड़े पर ही उछलने लगते हैं! गुड्डे-गुड्डियों का विवाह रचाने लगते हैं।
तुम भी क्या कर रहे हो? जरा जिंदगी पर गौर करो! गुड्डे-गुड्डियों का विवाह कर रहे हो। लकड़ी के घोड़ों पर सवार। किस्सा कुर्सी का! लकड़ी के घोड़े हैं सब। कुर्सी और लकड़ी के घोड़े में तुम कुछ फर्क समझते हो? लेकिन कुर्सी पर कितने उपद्रव चला रहे हैं। कितने उपद्रव चलते रहेंगे। कुर्सी पर बैठने का मजा उसी छोटे बच्चे की अकड़ है जो घोड़े पर बैठ कर उछल रहा है। छोटे बच्चे तो कचरे के घूरे पर चढ़ जाते हैं और कहते हैं मुझसे ऊपर कोई भी नहीं, मुझसे ऊंचा कोई भी नहीं। पद और धन के भी घूरे हैं। उन पर चढ़ कर जब तुम कहते हो, मुझसे ऊपर कोई भी नहीं, तब तुम्हें पता नहीं, तुम कैसी मूढ़ता की बात कर रहे हो!
कम से कम मौत से ऐसी मुझे उमीद नहीं।
जिंदगी तूने तो धोखे पे दिया है धोखा।।
जिंदगी ने तुम्हें धोखे के अतिरिक्त और दिया ही क्या है? तरह-तरह के धोखे। बचपन के धोखे अलग हैं, जवानी के धोखे अलग हैं, बुढ़ापे के धोखे अलग हैं, लेकिन धोखे पर धोखे। और सबसे आखिरी धोखा प्रतीक्षा कर रहा है--जब गिरोगे और श्वास लौटेगी नहीं! आखिरी धोखा मौत होगी।
जन्म धोखा था। क्योंकि जन्म ने तुम्हें यह भ्रांति दे दी तुम देह हो।
तुम्हारी शिक्षा धोखे की थी, क्योंकि शिक्षा ने तुम्हें यह भ्रांति दे दी है कि तुम मन हो। और अब यह आखिरी धोखा आएगा।
कमर बांधे हुए चलने को यहां सब यार बैठे हैं।
बहुत आगे गए, बाकी जो हैं तैयार बैठे हैं।।
तुम तैयारी क्या कर रहे हो? सब तैयारी मरने की तैयारी है। यह भी खूब मजा है, जिंदगी--और मरने की तैयारी में व्यतीत हो जाती है! जिंदगी में आदमी मरता ही है, और करता क्या है? रोज-रोज मरता है। लेकिन हम बड़े होशियार हैं, एक साल मर जाते हैं तो हम उसको कहते हैं हमारा जन्म-दिन आया! एक साल मौत और करीब आ गई। कहते हो जन्म-दिन? मृत्यु-दिन कहो!
जिस दिन से बच्चा पैदा होता है उसी दिन से मरना शुरू हो जाता है। इस आहिस्ता मौत को तुम जीवन मत समझ लेना। जीवन कुछ और है। और दूर भी नहीं है। कुंजी चाहिए। जीवन बहुत निकट है। जिसके पीछे तुम दौड़ रहे हो वह तो दूर, बहुत दूर, बहुत देर है और जब पहुंचोगे तो पाओगे नहीं है, मृग-मरीचिका है। लेकिन असली जिंदगी बहुत पास है, पास से भी पास है। "पास" शब्द भी ठीक नहीं है, क्योंकि तुम्हारा अंतर्तम है। पास में भी तो दूरी का पता चलता है। पास शब्द भी तो दूरी का ही एक नाम है। नहीं! असली जिंदगी तो पास से भी पास है। क्योंकि असली जिंदगी तुम्हारे मूल केंद्र पर मौजूद है। लेकिन वहां हम जाते नहीं। हम सारे संसार में जाने को उत्सुक हैं। चांद-तारों पर जाने को उत्सुक है आदमी, अपने भीतर जाने को उत्सुक नहीं है। और वहीं जो पहुंचता है, उसके सामने ही चांद-तारों का राज खुलता है।
अगर मुमकिन हो तो सौ-सौ जतन से
अजीजो काट लो यह जिंदगी है।
लोग काट ही तो रहे हैं। समय काट रहे हैं। जिंदगी काट रहे हैं। एक ऐसा जीवन भी है, जो न कटता है न काटा जा सकता है। अविछिन्न! अखंड! शाश्वत! समय के पार! देह में आबद्ध नहीं। मन में सीमित नहीं। और वह चैतन्य तुम्हारे भीतर मौजूद है। वही तुम हो! तत्वमसि! पर भीतर जाओ, तब।
जब तक बाहर की आशा है, तुम भीतर जाओगे नहीं! बाहर की आशा निराशा हो जाए
तो भीतर जाओ।
बुद्ध के बड़े प्यारे वचन हैं कि धन्यभागी हैं वे जो हताश हो गए, जिनका जीवन बाहर से बिल्कुल हताश हो गया है। इसे दुर्दिन मत मानना। इसे सुदिन

मानना। जिस दिन तुम बाहर से बिल्कुल हताश हो जाओगे, उसी दिन ठिठकोगे, उसी दिन रुकोगे, दौड़ बंद होगी। और जो ऊर्जा संसार में छितरी जाती थी, इकट्ठी होगी, सिमटेगी, अंतर्यात्रा शुरू होगी।
ऐ मौजे-बला! इनको भी जरा दो-चार थपेड़े हलके से
कुछ लोग अभी तक साहिल से तूफां का नजारा करते हैं।
और कुछ लोग हैं जो भीतर की बातें बस शास्त्रों में पढ़ते हैं, सद्- उपदेशों में सुनते हैं। दोहराने भी लगते हैं तोतों की भांति। मगर, अगर किनारे पर बैठ कर तूफान को देखा है तो अभी तुमने तूफान नहीं देखा। तूफान तो उसी ने देखा है जिसने तूफान में अपनी नौका छोड़ी। तूफान तो उसी ने जाना है, जो तूफान से जूझा है।
ऐ मौजे-बला! इनको भी जरा दो-चार थपेड़े हलके से
कुछ लोग अभी तक साहिल से तूफां का नजारा करते हैं।
कितने जन्मों से तुम किनारे बैठे-बैठे देख रहे हो, सोच रहे हो, विचार रहे हो! अंतर्यात्रा शुरू कब करोगे? ऐसे भी बहुत देर हो गई है। ये सूत्र अंतर्यात्रा के सूत्र हैं। और सुंदरदास ने बड़ा गहरा इशारा किया है।
पकड़ना।
हमारैं गुरु दीनी एक जरी।
हमारे गुरु ने एक जड़ी-बूटी दे दी।
कहा कहौ कछ कहत न आवै, अंमृतरसहि भरी।
स्वाद अमृत का है उसमें, अमृत रस ही भरा है उसमें। और अब उसे कहने का कोई उपाय नहीं! कोई कभी नहीं कह पाया। जिनके पास है वे पिला देते हैं। कहना तो सिर्फ बुलाना है कि आओ और पियो! कहना तो सिर्फ निमंत्रण है। कहने में जड़ी नहीं है। कहने में अमृत नहीं है। शब्द से सावधान! शब्द बड़े धोखे में डाले हुए हैं। कोई सोचता है "राम" शब्द में राम है। तो ओढ़ लेता है रामनाम की चदरिया; बैठ जाता है लिखने लगता है राम-राम, राम-राम; कि बैठ जाता है दोहराने लगता है राम-राम। शब्द सत्य नहीं है। शब्द तो मात्र इशारा है। मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी बहुत दिन से उसके पीछे पड़ी थी, कि सारे लोग छुट्टियों में पहाड़ जाते हैं--कोई दक्षिण जाता, कोई उत्तर जाता, कोई पूरब जाता, कोई पश्चिम जाता। दूसरे लोग तो विदेश यात्राएं तक करके आ गए हैं। मोहल्ले में एक भी नहीं है ऐसा अभागा आदमी, जो कहीं न गया हो, लेकिन हमारे भाग्य में नहीं कुछ।
मुल्ला एक दिन गुस्से में आया और कहा कि ठीक है, अभी जाकर इंतजाम करके आता हूं! गया और थोड़ी देर बाद वापस लौटा। एक नक्शा लेकर वापस लौटा। नक्शा फैला दिया जमीन पर और कहा कि देख, यह रहा हिमालय पहाड़, कर ले यात्रा; यह बह रही गंगा, ले-ले डुबकी; यह गौरीशंकर... । जाने की जरूरत क्या है नक्शा तो बाजार में मिलता है। पागल हैं जो जाते हैं वहां--उसने कहा--होशियार तो नक्शे से काम चला लेते हैं।
लेकिन ख्याल रखना, हिमालय का नक्शा हिमालय नहीं है। मगर तुम हंसना मत मुल्ला नसरुद्दीन पर, मजाक तुम्हारे ऊपर है। यही तो तुमने किया है। शास्त्रों की पूजा चल रही है।
पंजाब में एक घर में मैं मेहमान था। सुबह उठ कर दंतवन करने जा रहा था
कि जिस कमरे से गुजरा, गुरु ग्रंथ साहब को सजा कर रखा गया था, उनके सामने एक लोटा रखा है चांदी का और दंतवन रखी है। मैंने पूछा कि यह मामला क्या है? यह दंतवन मैं ले लूं? उन्होंने कहा कि नहीं-नहीं, यह तो गुरु ग्रंथ साहब के लिए रखी है।
गुरु ग्रंथ साहब दंतवन कर रहे हैं!
आदमी का पागलपन! पत्थर की मूर्तियों पर भोग लगाए जा रहे हैं! नक्शों में यात्राएं हो रही हैं! शब्दों का कितना मूल्य हमने बढ़ा दिया है! और ऐसा भी नहीं है कि शब्द धोखा नहीं देते; अगर शब्दों को दोहराते रहो, दोहराते रहो तो धोखा दे देते हैं। जैसे बैठ कर विचार करने लगो कि बैठे हो एक नीबू के वृक्ष के नीचे और नीबू ही नीबू और सुगंध नीबुओं की! किसी और चीज की तो ऐसी सुगंध होती नहीं। भर लो नासापुटों को अभी नीबुओं की सुगंध से। फिर तुमने एक बड़ा नीबू तोड़ लिया है। फिर चाकू से काटा है। फव्वारे की तरह उसका

रस उड़ा है। अब तुम नीबू को मुंह में ले लिए हो। अब तुम चूसने लगे हो। और लार बहने लगी! न कुछ नीबू है, न कोई नीबू का वृक्ष है कहीं, सिर्फ बातचीत चल रही है। और लार बहने लगी। शरीर ने मान लिया झूठ। शरीर ने शब्द को असली मान लिया। शब्द "नीबू" नीबू हो गया। शरीर को भला तुम धोखा दे दो, लेकिन फिर भी धोखा धोखा ही है।
ऐसे ही लोग अगर राम-राम को रटते रहें, रटते रहें, जैसे नीबू-नीबू का विचार करते रहें, तो एक तरह की लार बहने लगती है। उस लार को तुम अमृत-रस मत समझ लेना। उस लार से ही बहुत से लोगों ने समझ लिया है पहुंच गए।
न तो "अग्नि" शब्द में अग्नि है और "जल" शब्द में जल है और न "राम" शब्द में राम है। यद्यपि ये सभी शब्द सार्थक हैं, मगर इशारे हैं, नक्शे हैं। अमृत-रस तो सत्य की प्रतीति से बहेगा। लेकिन शब्द सस्ता मिलता है और सत्य की प्रतीति तो मंहगा मामला है।
दूसरों से बहुत आसान है मिलना साकी
अपनी हस्ती से मुलाकात बड़ी मुश्किल है।
यहां दुनिया में हर किसी से मिल लो, बहुत आसान है; बस अपने से मिलना मुश्किल है। दूसरों से मिलने में होता भी क्या है? शब्दों का लेन-देन। तुम जब दूसरों से मिलते हो, करते क्या हो? तुम्हारे संवाद, तुम्हारी बातचीत, तुम्हारी गुफ्तगू क्या है? शब्दों का लेन-देन है। अपने से मिलने चलोगे तो सारे शब्द छोड़ देने पड़ेंगे। वहां तो निःशब्द हो जाओगे, तब पहुंचोगे। वही कठिनाई है। वहां तो बोल खो जाएगा, अबोल हो जाओगे, तब पहुंचोगे!
वही है जड़ी, जो गुरु ने दी! उसे मौन कहो, ध्यान कहो। जो भी नाम तुम देना चाहो, दे दो! लेकिन उसका स्वाद निःशब्दता का है। सारे गुरुओं ने शब्द छीन लेने चाहे, शास्त्र हटा देने चाहे, तुम्हें मौन करना चाहा, तुम्हें शांत करना चाहा। तुम्हारे भीतर विचारों की तरंगें विदा हो जाएं। तुम निस्तरंग हो जाओ। कोई लहर न उठे। बस जहां तुम्हारी लहराती चेतना गैर-लहराती हो गई, जहां तुम्हारी झील चेतना की शांत हो गई, कोई तरंग नहीं, कोई लहर नहीं--बस वहीं अमृत-रस बह उठता है! अमृत-रस तो बह ही रहा है, लेकिन तरंगों में तुम इतने उलझे हो, विचारों में तुम इतने डूबे हो कि तुम्हें सुविधा नहीं, अवकाश नहीं, कि अमृत-रस को चख सको, देख सको।
परमात्मा तुम्हारे भीतर मौजूद है, मगर तुम पीठ किए खड़े हो। तुम्हारे
और परमात्मा के बीच में जो सबसे बड़ी चीन की दीवार है, वह पत्थरों की बनी हुई नहीं है, शब्दों की बनी हुई है। फिर तुम्हारे शब्द हिंदुओं के हैं या मुसलमानों के या सिक्खों के या ईसाइयों के या जैनों के, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता; शब्द तो शब्द हैं। फिर तुम राम-राम दोहरा रहे हो कि नमोकार, इससे फर्क नहीं पड़ता। फिर तुम किस पत्थर के सामने सिर झुका रहे हो, इससे भी फर्क नहीं पड़ता। उसी पत्थर से बुद्ध बन जाते हैं, उसी पत्थर से महावीर बन जाते हैं, उसी पत्थर से गणेश जी बन जाते हैं। तुम किसके सामने सिर झुका रहे हो, इससे फर्क नहीं पड़ता; तुम पत्थर के सामने ही सिर झुका रहो हो। और मजा तो ऐसा है कि उसी पत्थर से मस्जिदें बन जाती हैं जिनमें कोई मूर्तियां नहीं हैं। वहां भी लोग सिर झुका रहे हैं। वे भी पत्थर के सामने ही झुकाए जा रहे हैं। और काबा सिवाय एक बड़े पत्थर के और कुछ भी नहीं है। और मुसलमानों की भ्रांति है कि वे पत्थरों की पूजा नहीं करते। और सबसे बड़े पत्थर की पूजा वही कर रहे हैं। काबा में जितना बड़ा पत्थर उन्होंने पूजा है, उतना बड़ा पत्थर किसी दूसरे धर्म ने नहीं पूजा। और बड़े भाव से पूजा है। काबा के पत्थर को जितने लोगों ने चूमा है, दुनिया के किसी पत्थर को नहीं चूमा गया है। करोड़ों लोग प्रतिवर्ष चूमते हैं। इतना जूठा पत्थर दुनिया में दूसरा नहीं है। पत्थर के खिलाफ चले थे और पत्थर में ही जकड़ गए। एक पत्थर से छूटते हैं, दूसरे पत्थर से जकड़ जाते हैं। लेकिन भ्रांति जाती नहीं।
शब्द तुम कौन से बड़े भाव से पूज रहे हो, इससे भेद नहीं पड़ेगा। निःशब्द होना पड़ेगा। निःशब्द होने में मस्ती है, अमृत-रस है!
जबाने-होश से यह कुफ्र सर.जद हो नहीं सकता।
मैं कैसे बिन पिए ले लूं, खुदा का नाम है साकी।

वह तो पियक्कड़ ही ले सकते हैं खुदा का नाम--मस्त जो हैं! रूखे-रूखे, बुद्धि से भरे लोग, खुदा का नाम भी लेते रहें तो कुछ परिणाम होने वाला नहीं है। हार्दिक होना चाहिए। हृदय से उठना चाहिए और हृदय से तभी उठता है जब बुद्धि की सारी तरंगें बंद हो जाती हैं। भाव का जन्म तब होता है जब विचार शांत हो जाते हैं। और भाव भगति है। और गुरु भगति देता है। भाव को भक्ति देता है। भाव को भक्ति में ढाल देता है। फिर भक्ति ही एक दिन भगवान हो जाती है।
अब यह समझ लो, तुम्हारी स्थितियां ये हैं।... विचार की स्थिति! गुरु के संपर्क में विचार को भाव में बदला जाता है। "रोने" शब्द को आंसुओं में ढाला जाता है। नक्शों को यथार्थ में रूपांतरित किया जाता है। विचार भाव में बदल जाने चाहिए। फिर भाव परमात्मा पर समर्पित। फिर किसी मंदिर-मस्जिद में जाने की जरूरत नहीं; फिर तो तुम जहां हो वहीं समर्पित, क्योंकि परमात्मा सब जगह है। जहां झुके, जहां सिजदा किया वहीं मंदिर हो गया! जहां कोई शांत और मौन होकर बैठ गया वहीं तीर्थ निर्मित हो जाता है।
ऐसे ही तो तीर्थ निर्मित हुए थे। फिर तुम भूल गए। फिर तुमने तीर्थों
की तो पूजा शुरू की, लेकिन तीर्थों का मूल सारा भूल गए। कैसे तीर्थ निर्मित हो गए थे? कहीं कोई बुद्ध वृक्ष के नीचे बैठा शांत! अमृत की धार बही, वह वृक्ष भी तीर्थ बन गया। अब सारी दुनिया से बौद्ध आते हैं बोधगया-- उस वृक्ष को नमस्कार करने! अब यह पागलपन देख रहे हो? मूल बात खो गई। किसी भी वृक्ष के नीचे बैठ जाओ, बुद्ध जैसे शांत हो जाओ, वहीं बोधिवृक्ष प्रकट हो जाएगा। बोधगया जाने की जरूरत नहीं है। और बोधगया का वृक्ष बेचारा क्या करेगा? बोधगया के वृक्ष के कारण थोड़े ही बुद्ध बुद्ध हो गए थे; बुद्ध के कारण यह साधारण वृक्ष अपूर्व महिमा को उपलब्ध हो गया। यह तो सिर्फ याददाश्त है। याद्दाश्त प्यारी है। मगर इसी में जो उलझ जाए वह भटक जाता है।
हमारैं गुरु दीनी एक जरी!
क्या जड़ी बूटी दी, जिससे अमृत-रस की धार बही? मौन दिया। ध्यान दिया।
विचार की ऊर्जा को भाव में रूपांतरित किया। भाव को भक्ति बनाया, फिर भक्ति अपने आप भगवान हो जाती है।
यही जिंदगी मुसीबत, .जदगी मसर्रत।
यही जिंदगी हकीकत यही जिंदगी फसाना।।
ऊर्जा तो यही है। जो तुम्हारे पास है, वही मेरे पास है। जो मेरे पास है, वही सब के पास है। ऊर्जा तो यही है। इसी ऊर्जा से तुम अपना दुख बना लेते हो, नरक ढाल लेते हो, इसी ऊर्जा से स्वर्गों की ईंटें भी रखी जाती हैं। इसी ऊर्जा से मोक्ष के सोपान भी रखे जाते हैं। यही ऊर्जा है।
यही जिंदगी मुसीबत, यही जिंदगी मसर्रत।
यही जिंदगी हकीकत, यही जिंदगी फसाना।।
यही जिंदगी एक कहानी होकर खत्म हो जाए या यही जिंदगी एक सत्य बन कर प्रकट हो। यही जिंदगी आनंद बन जाए या यही जिंदगी सिर्फ एक मुसीबत की लंबी कहानी!
जिससे पूछा मैं कि "दिल खुश है दुनिया में कहीं?"
रो दिया उनने और इतना ही कहा "कहते हैं"।
कहते हैं कि कहीं लोग खुश होते हैं। देखा तो नहीं, सुना तो नहीं। आंख
का अपना तो अनुभव नहीं है, साक्षात्कार तो नहीं हुआ, अफवाह सुनी है। जिससे पूछा मैं कि "दिल खुश है दुनिया में कहीं?"
रो दिया उनने और इतना ही कहा "कहते हैं"।
अफवाहें हैं कि खुश लोग होते हैं। मगर देखे किसने?
जब तुम्हें कोई आनंदित आदमी मिल जाए, जिसने अपनी जीवन-ऊर्जा को अमृत में ढाल लिया हो, तो पकड़ लेना उसके चरण, उसके पास जड़ी-बूटी है। जो उसके भीतर हुआ है वही राज तुम्हें भी दिया जा सकता है। वही सूत्र तुम्हें भी समझाया जा सकता है। गुरु का इतना ही अर्थ है।
गुरु का अर्थ होता हैः जिसने पा लिया और अब निश्चिंत है। और जिसे पाने
को अब कुछ शेष न रहा। जिसके जीवन में अब कोई प्रश्न नहीं है। जिसके जीवन

में उत्तर ही उत्तर है। जिसकी कोई समस्या नहीं है। समाधान के बादल आ गए और बरस गए। समाधि फल गई है। उसके चरण गह लेना। उसके पास उठना-बैठना, समागम करना। उसके पास से कुंजी मिल सकती है। जो पहाड़ों पर आता-जाता हो, उससे पहाड़ों का रास्ता पूछ लेना। जो जंगलों से जाता हो, गुजरता हो, उससे जंगलों का रास्ता पूछ लेना।
गुरु का और कुछ अर्थ नहीं होता--जिसके जीवन में परमात्मा घट गया है। गुरु साक्षी है इस बात का कि तुम्हारे जीवन में भी घट सकता है। और कुंजी बहुत कठिन नहीं है। एक बार हाथ में लग जाए तो बड़ी सरल है। कुंजी न हो तो ताले खोलना बड़ा कठिन है और कुंजी हो तो ताला खोलने से सरल और क्या बात है? कुंजी डाली कि ताला खुला! और कुंजी न हो हाथ तो तुम तालों को ठोकते रहो, पीटते रहो, हथौड़े मारते रहो--खतरा यही है कि कहीं ताला इतना न बिगाड़ लेना कि जिस दिन कुंजी भी हाथ लगे कुंजी भी काम न करे।
अकसर ऐसा हो जाता है, लोग ताले को बिना कुंजी के खोलने की चेष्टा में इतना बर्बाद कर लेते हैं कि कुंजी मिल भी जाए तो ताला नहीं खुलता। इसके पहले कि तुम ताला खोलने लगो, उस आदमी के पास बैठ जाना जिसके द्वार खुल गए हैं। नहीं तो खतरा है।
मेरे पास बहुत से लोग आ जाते हैं, जो किताबों में पढ़-पढ़ कर कुछ कर लेते हैं। उससे और उलझन खड़ी हो जाती है। किताबों से कुंजी नहीं मिल सकती। कुंजी जीवंत दान है। शास्त्रों से मिलती है, शास्त्र से नहीं मिलती। गुरु से मिलती है, गुरुवाणी से नहीं मिलती। गुरुवाणी तो नक्शा है। मैं तुम्हें दे सकता हूं, लेकिन मेरी किताबों से नहीं मिलेगी। हालांकि मेरी किताबों में उसी की चर्चा है, फिर भी तुम्हें उससे नहीं मिलेगी। कुंजी की चर्चा है, उससे कुंजी कैसे मिलेगी? कुंजी का वर्णन है, उससे कुंजी कैसे मिलेगी? कुंजी तो जिसके पास हो, उसके पास ही बैठ कर धीरे-धीरे धैर्यपूर्वक सीखनी पड़ेगी, साधनी पड़ेगी।
लोग अहंकार-वश किताबों से उपाय खोजते हैं। किताब से एक फायदा है, किसी
को पता नहीं चलता कि तुम किसी से सीखने गए। किताब अपने घर में है, पढ़ ली, करने लगे। अक्सर लोग उलझ कर आ जाते हैं।
अभी चार दिन पहले कोई विपस्सना करता हुआ आया! तीन महीने विपस्सना की है, नींद खो गई। अब परेशान है। और विपस्सना करने से जिसकी नींद चली जाए, उस पर कोई ट्रैंक्वेलाइजर काम नहीं कर सकता फिर। सुस्त कर देगा, लेकिन नींद नहीं ला सकता। और या फिर इतनी मात्रा में लेना पड़ेगा कि वह दूसरे दिन भी उठ नहीं पाएगा। अब वे मुश्किल में पड़ गए हैं। उनको देख कर ही मुझे लगा कि विपस्सना का परिणाम होना चाहिए। मैंने उनसे पूछाः विपस्सना तो नहीं कर रहे हो? उन्होंने कहाः हां, तीन महीने से उसी में तो लगा हुआ हूं। तो मैंने कहाः यह उसका फल है। किससे सीखी विपस्सना?
क्यों शास्ता पर जोर दिया जाता है? क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के लिए कुंजी थोड़ी सी भिन्न करनी होती है। कोई व्यक्ति एक जैसे नहीं हैं। सारे व्यक्ति एक जैसे नहीं हैं। किताब में तो एक सामान्य सिद्धांत होता है। सामान्य सिद्धांत औसत की भांति होते हैं। जैसे तुम किसी से पूछो कि पूना में आदमी की औसत ऊंचाई क्या है? तो औसत ऊंचाई का मतलब होता हैः जितने लोग पूना में हैं सबकी ऊंचाई नापो, फिर उनकी संख्या का भाग दे दो। फिर औसत ऊंचाई आ जाएगी! समझ लो चार फीट साढ़े तीन इंच। अब अगर तुम चार फीट साढ़े तीन इंच के आदमी को खोजने निकलो, तुमको शायद ही मिले। और तुम बड़े हैरान होओगे कि यह तो औसत ऊंचाई है। अधिकतम लोग इसी ऊंचाई के होने चाहिए। कोई पांच फीट दस इंच है, कोई पांच फीट नौ इंच है। कोई छोटा बच्चा तीन फीट है, कोई और छोटा बच्चा एक फीट है, सब तरह के लोग मिल जाएंगे। चार फीट साढ़े तीन इंच का आदमी शायद मिले। शायद ही, क्योंकि वह तो सिर्फ औसत ऊंचाई है। गणित का काम है। अस्तित्व में उसकी खोज करना व्यर्थ है।
ऐसे ही सारे सिद्धांत औसत हैं। सूत्र दे दिए गए हैं, लेकिन प्रत्येक
का ताला अलग है। और गुरु के पास कुंजी ढालनी होती है, जो उसके ताले पर काम आएगी। हर किसी की कुंजी तुम्हारे ताले पर काम नहीं आएगी।

अब अगर कोई विपस्सना का प्रयोग करेगा तो विपस्सना का अर्थ होता हैः श्वास पर ध्यान। साधारण प्राकृतिक रूप से श्वास पर ध्यान नहीं होता। यह बड़ी अप्राकृतिक प्रक्रिया है। श्वास चलती रहती है, ध्यान कौन देता है! जब तक कि कोई अड़चन न आ जाए, श्वास में कोई तकलीफ हो, हृदय का दौरा पड़ जाए, खांसी आ जाए, तो श्वास पर ध्यान जाता है, सर्दी-जुकाम हो जाए तो श्वास पर ध्यान जाता है। स्वस्थ तुम रहो तो श्वास का पता ही नहीं चलता। पता चलना भी नहीं चाहिए! श्वास तो चौबीस घंटे चल रही है, इसका पता चलता रहे तो फिर और चीजों का पता कैसे चलेगा? इसमें उलझे रहो तो झंझट हो जाएगी।
विपस्सना का अर्थ होता हैः श्वास पर ध्यान। यह बड़ा महत्वपूर्ण प्रयोग
है और खतरनाक भी। अगर ठीक निरीक्षण में न किया जाए तो श्वास पर ध्यान करने का परिणाम यह होगा कि तुम रात सो नहीं सकोगे। श्वास तो रात भी चलती रहती है। अगर तुमने दिन भर श्वास पर ध्यान किया, श्वास को देखते रहे, रात भी तुम बंध जाओगे, श्वास को देखते रहोगे। और जब तुम श्वास को देखते रहोगे, नींद नहीं आएगी। और नींद नहीं आएगी तो तुम सोचोगे कि चलो विपस्सना ही क्यों न करें, पड़े-पड़े कर क्या रहे हैं?
वही वे सज्जन कर रहे हैं कि अब नींद आ ही नहीं रही तो चलो श्वास को ही देखते रहें। और श्वास को देखने में आनंद भी आएगा, सुख भी मालूम पड़ेगा, शांति भी मालूम पड़ेगी! लेकिन अगर नींद खो गई तो शरीर के लिए दुख शुरू हो जाएंगे। जल्दी ही तुम रुग्ण होने लगोगे। मुश्किल में पड़ जाओगे। विक्षिप्त भी हो सकते हो, अगर ज्यादा दिन नींद न आए। और फिर अगर नींद बिल्कुल खो जाए तो तुम पागल हो ही जाओगे। क्योंकि विश्राम चाहिए ही चाहिए।
यह तो सिर्फ सिद्धांत है श्वास को देखना। फिर कितना देखना, यह गुरु तय करेगा। और किस समय देखना, यह भी गुरु तय करेगा। गुरु तय करेगा कि चालीस मिनट देखना, इससे ज्यादा नहीं देखना एक बार में; या साठ मिनट देखना, इससे ज्यादा नहीं देखना एक बार में। साठ मिनट देखने के लिए साठ मिनट उसके बाद छोड़ देना, देखना ही मत। या सुबह देखना या सांझ देखना, कब देखना? यह प्रत्येक व्यक्ति के ऊपर अलग-अलग होगा। भोजन करने के बाद देखना श्वास कि नहीं देखना, खाली पेट देखना या भरे पेट देखना--यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग-अलग होगा। अगर तुमने भरे पेट श्वास देखी, तुम्हारी पाचन-क्रिया गड़बड़ हो जाएगी। अगर तुमने जितनी तुम्हारे लिए जरूरत है उससे ज्यादा देखी तो तुम्हारे भीतर होश तो आने लगेगा, लेकिन होश के साथ तनाव आ जाएगा! और अगर तनाव आ गया तो बात गड़बड़ हो गई! होश तो शांति लाना चाहिए, तनाव नहीं। यह मैं सिर्फ उदाहरण के लिए कह रहा हूं। इसी तरह सारे सिद्धांत हैं। सिद्धांतों का व्यवहारिक अर्थ तो गुरु के पास मिलेगा!
हमारैं गुरु दीनी एक जरी।
कहा कहौं कहा कहत न आवै, अमृत रसहि भरी।
कहना मुश्किल है। जब गुरु स्वाद दिला देता है तो कहना मुश्किल स्वाभाविक हो जाता है। अमृत का स्वाद हम किस भाषा में कहें? हमारी पूरी भाषा तो मृत्यु के भीतर जीती है, पलती है। हमारी पूरी भाषा मरणधर्मा के लिए बनी है। अमृत को प्रकट करने की उसके पास सामर्थ्य नहीं है। गूंगे का गुड़! अमृत तो गूंगे का गुड़ है। भाषा चुप हो जाती है।
और ध्यान रखना, अमृत तभी तुम्हारे भीतर बहता है जब तुम अभी अपने को जैसा मानते हो वैसे मिट जाते हो, मर ही जाते हो। जो मर गया गुरु के चरणों में समर्पित हुआ, वही अमृत का स्वाद ले पाता है।
एक अदना सा करिश्मा है यह उसके इश्क का
मर गया हूं और मरने का गुमां होता नहीं
गुरु के प्रेम में बहुत चमत्कार घटते हैं। उसमें यह भी एक छोटा सा चमत्कार है। एक अदना सा करिश्मा है यह उसके इश्क का!
छोटा इसे इसलिए कह रहे हैं कि तुम्हारा मरना छोटी बात है। इसके बाद जिसका पता चलता है, अमृत का, वही बड़ी बात है। मर कर पता चलता है कि मरा नहीं हूं। पहली दफा पता चलता है कि असली जीवन क्या है। मर भी जाते हो और मरने का पता नहीं चलता। और साधारण जीवन में तो जीते हो, जीवन का पता कहां चलता है!

अजीब पहेली है! जीते हैं बाजार में और जीने का पता नहीं चलता! गुरु की छाया में मृत्यु घट जाती है, मरने का पता नहीं चलता! बाजार में जिंदगी के नाम पर मौत ही हाथ मिलती है अंत में। गुरु की शरण में मृत्यु से शुरुआत होती है और अमृत मिलता है। जो अपने को मिटाने को राजी हैं वे ही केवल उपलब्ध कर पाते हैं।
ताकौ मरम संतजन जानत, वस्तु अमोल परी।।
तुम्हारे भीतर एक इतना अमूल्य खजाना भरा पड़ा है और तुम्हें उसका पता नहीं। ताकौ मरम संतजन जानत! जो जागे हैं अपने भीतर, जिनका दीया जला है, जिन्होंने अपने भीतर आंख गड़ा कर देखा है, जिन्होंने अपने भीतर खुदाई की है--उन्होंने पा लिया है खजाना! भीतर जाना हो तो बाहर से जरा दूर होना पड़े। और परमात्मा के पास बैठना हो तो संसार से थोड़ा रस, आसक्ति कम करनी पड़े! सारी दुनिया से दूर हो जाए
जो जरा तेरे पास हो बैठे
और उसके पास जरा भी बैठ जाओ, तुम देखते हो यह पास बैठना... "उपनिषद" शब्द का अर्थ होता हैः पास बैठना, गुरु के पास बैठना! उपासना शब्द का अर्थ होता हैः उसके पास बैठना, उप धन आसन, गुरु के पास बैठना! उपवास शब्द का अर्थ होता हैः उसके पास बैठना! उप धन वास। उपासना कहो, उपवास कहो, सत्संग कहो, समागम कहो, उपनिषद कहो... ! यह उपनिषदों का जन्म हुआ, जब कुछ लोग, जिनके दीये बुझे थे, उनके पास बैठ गए जिनके दीये जले थे। उपनिषद जल गए। ज्योति से ज्योति जले!
राजे हस्ती राज है जब तक कोई मरहम न हो।
खुल गया जिस दम तो मरहम के सिवा कुछ भी नहीं।।
राजे हस्ती राज है जब तक... जिंदगी का रहस्य तभी तक रहस्य है... जब तक कोई मरहम न हो, जब तक कोई मर्मज्ञ न हो, जब तक कोई जानने वाला न हो, तभी तक जिंदगी का रहस्य है। खुल गया जिस दम तो मरहम के सिवा कुछ भी नहीं। और जिस समय यह रहस्य खुल जाता है, कोई मर्मज्ञ जागता है, देखता है, आंखें खुलती हैं, तो बड़ी हैरानी हो जाती हैः सब जिंदगी ऐसे खो जाती है जैसे छाया खो गई! जैसे सपना खो गया! और फिर बचता कौन है? सिर्फ मर्मज्ञ बच जाता है। सिर्फ जानने वाला बचता है, जानने के लिए कुछ नहीं बचता। अभी दृश्य सब कुछ है, द्रष्टा बिल्कुल नहीं है। तब द्रष्टा होता है और दृष्य नहीं होता।
और दुनिया में दो ही तरह के लोग हैं। जिनको हम सांसारिक कहते हैं, उनका अगर ठीक-ठीक आध्यात्मिक अर्थ करो, तो अर्थ होगाः जिनके जीवन में द्रष्टा छिपा है और दृश्य सब कुछ हो गया है। जो दिखाई पड़ता है वही सब कुछ है। देखने वाला भूल ही गए हैं वे। और दूसरी तरह के लोग हैं, जिनको आध्यात्मिक कहो, संन्यासी कहो, वे वे लोग हैं जिनके लिए दृश्य अर्थहीन हो गया है और द्रष्टा ही सब कुछ हो गया है।
ताकौ मरम संतजन जानत वस्तु अमोल परी!
दृश्य मिट जाए और द्रष्टा का पता चल जाए तो मिल गया तुम्हें अपने भीतर
का साम्राज्य, पा ली मोक्ष की संपदा! और ऐसा नहीं है कि यह कोई नई चीज है जो तुमने पा ली; यह तुम्हारे भीतर पड़ी थी। पड़ी ही थी जन्मों-जन्मों से! इसे तुम लेकर ही आए थे! यह तुम्हारा पाथेय है, जो परमात्मा ने दिया था। यह तुम्हारे भीतर रख दिया था। यह तुम्हारा कलेवा है, पूरी यात्रा के लिए; यह चुकने वाला नहीं था।
यातें मोहि पियारी लागति, लैकरि सीस धरी।
जब गुरु ने यह औषधि मुझे दी, इतनी प्यारी लगी कि लेकर शीश पर रख ली।
गुरु के वचन जो शीश पर रख लेता है, स्वीकार कर लेता है अहोभाव से, आनंद-भाव से, गहन कृतज्ञता में, झुक जाता है--उसके जीवन में ही कुंजियां उपलब्ध होती हैं। उसके भीतर ही जड़ी-बूटी का रस प्रवेश करता है।
जब तक तुम झुक कर न ले सकोगे तब तक यह रस तुम्हारे भीतर बहेगा नहीं। कुछ लोग अकड़ कर खड़े रहते हैं कि ठीक है अगर कुछ हो तो ठीक है दिखा दें! प्रमाण दे दें! जो सोचेंगे, विचार करेंगे, वे चूक जाएंगे! ये ऐसे लोग हैं जिन्हें प्यास लगी है, नदी भी सामने बह रही है लेकिन वे अकड़ कर खड़े हैं, अंजुली न बांधेंगे। क्योंकि किसी के सामने हाथ फैलाएं, यह उनकी अकड़ के

खिलाफ है, यह उनके अहंकार के खिलाफ है। झुकेंगे भी नहीं। अब नदी तुम्हारे कंठ तक आने से रही, तुम्हें झुकना होगा। तुम्हें हाथ की अंजुली बनानी होगी। तुम्हें नदी के सामने झुकना होगा। तो नदी राजी है तुम्हें तृप्त करने को।
इसलिए पूरब के देशों में, जहां कि गुरु का परम तत्त्व खोजा गया... पश्चिम में गुरु जैसी कोई चीज नहीं है। पश्चिम इन अर्थों में दीन है, दरिद्र है। पश्चिम में ज्यादा से ज्यादा अध्यापक होता है, विद्यार्थी होता है, गुरु जैसी कोई चीज नहीं होती। पश्चिम की भाषाओं में गुरु शब्द के लिए कोई शब्द भी नहीं है। ज्ञान लिया-दिया जाता है तो विद्यार्थी-अध्यापक के बीच हो जाता है। लेकिन यह ज्ञान का लेन-देन नहीं है। गुरु और शिष्य में बड़ा फर्क है--अध्यापक और विद्यार्थी से। अध्यापक सूचनाएं देता है विद्यार्थी को, नक्शे देता है, जानकारियां देता है। गुरु जानकारी नहीं देता, अपना अनुभव देता है, अपने प्राण उंड़ेलता है; अपने को उंड़ेलता है। यह दान बड़ा भिन्न है। इसलिए विद्यार्थी को तो कोई झुकने की जरूरत नहीं है अध्यापक के सामने। इसलिए पश्चिम में चरण छूने का रिवाज पैदा नहीं हुआ; किसी के सामने झुकने की बात ही नहीं उठती। फिर विद्यार्थी क्यों झुके? फीस चुका देता है, बात खत्म हो गई। हमने फीस दे दी, तुमने जानकारी दे दी, नमस्कार! बात यहां समाप्त हो गई। लेकिन इस देश में इतने से काम नहीं हल होनेवाला। अनिवार्य शर्त है अस्तित्वगत ज्ञान को पीने की कि झुको। शिष्य का अर्थ हैः जो झुका; जो झुकने को राजी है; जो समर्पित है।
यातें मोहि पियारि लागति, लैकरी सीस धरी।
मन-भुजंग अरु पंच नागनी सूंघत तुरंत मरी।।
और चमत्कार हुआ। जैसे ही मैं झुका और मैंने गुरु को अपने सिर पर लिया
और मैंने अपने पलक-पांवड़े बिछा दिए और मैंने अपने हृदय के द्वार खोल दिए और कहा कि आओ, न कोई प्रश्न उठाया, न कोई संदेह खड़ा किया, श्रद्धापूर्वक गहनतम प्राणों से एक ही बात कही--हां! राजी हूं! बस यह बात कहते ही चमत्कार घट जाता है।
मन-भुजंग अरु पंच नागनी, सूंघत तुरत मरी।
और जैसे ही यह सुवास गुरु की मेरे भीतर पहुंची और मैं राजी हुआ गुरु
की बात के लिए, मौन हुआ, शांत हुआ, ध्यानस्थ हुआ, अंतर्यात्रा पर चला, उनके हाथ में अपना हाथ दिया, वे जहर भी पिलाएं तो अमृत मान कर पीआ...
मन-भुजंग अरु पंच नागनी, सूंघत तुरत मरी।
वह मन का जो भुजंग था, सांप, और वह जो पांच इंद्रियों की नागनियां थीं, जिन्होंने सारा रास रचाया हुआ था, मन के चारों तरफ नाचती थीं, वे तत्क्षण मर गयीं, तत्काल मर गयीं!
झुकने की कला... झुकने में अहंकार मर जाता है। अहंकार रीढ़ है मन की। रीढ़ टूट जाती है। और जो झुकता है उसके भीतर जीवन-ऊर्जा गुरु की प्रवाहित होती है। जैसे ही जीवन-ऊर्जा प्रवाहित होती है, जैसे बाढ़ आ जाए और सब कूड़ा- करकट वर्ष का बहा ले जाए, ऐसी ही घटना घटती है। ऐसी ही जीवन की धारा है; जो झुकते हैं उनको स्वच्छ कर जाती है।
मन-भुजंग अरु पंच नागनी, सूंघत तुरत मरी।
डायनि एक खात सब जग कौं सौ भी देख डरी।।
और वह जो एक डायनि है, जो सारे जगत को खा रही है... कौन सी डायिनी? आत्म-अज्ञान। अविद्या। बौद्धों की भाषा में कहें--तृष्णा। वह जो अज्ञान है--इस बात का बोध नहीं कि मैं कौन हूं--वही तो भटका रहा है। पता नहीं कि मैं कौन हूं, तो हम द्वार-द्वार भीख मांग रहे हैं--शायद यहां पता चल जाए, शायद वहां पता चल जाए। जैसे ही चित्त स्वच्छ होता है, शांत होता है, तत्क्षण स्मरण आता है कि मैं कौन हूं--आत्म-बोध! डायिनी है आत्म-अज्ञान। और आत्म-अज्ञान से वासना उठती है, तृष्णा उठती है; वे सब उसके ही फल-फूल हैं। जैसे ही गुरु की धारा प्रविष्ट होती है, जैसे ही उसकी ज्योति तुम्हारे बुझे दीये को जलाती है, तो भीतर सब रोशन हो उठता है, अहंकार विदा हो जाता है।
डायनि एक खात सब जग कौं सौ भी देख डरी।
डायन भी भाग खड़ी होती है।

विविध विकार ताप तनि भागी...
छोड़ दिए सब जाल, जो तुम्हारे ऊपर फैला रखे थे--त्रिविध--तुम्हारे शरीर पर, तुम्हारे मन पर, तुम्हारी आत्मा पर, जो सब तरह की जंजीरें फैला रखी थीं वे टूट गईं एक क्षण में!
विविध विकार ताप तनि भागी दुरमति सकल हरी।
और उसी क्षण में सारी दुर्बुद्धि ऐसे विदा हो गई जैसे दीये के जलने पर अंधेरा विदा हो जाता है।
ताकौ गुन सुनि मीच पलाई, और कवन बपुरी।
सुंदरदास कहते हैंः अब तो मैं सोचता हूं, बेचारी कहां गई? आंखें बंद करके ऐसी भागी कि अब मैं तलाशता हूं तो भी पा नहीं पाता। जैसे तुम दीया जला कर अंधेरे को तलाशो, कहीं पाओगे? ऐसे ही आत्म-ज्ञान का दीया जले तो कहां अविद्या, कहां अज्ञान!
लेकिन ख्याल रखना, फिर तुम्हें याद दिला दूं। अक्सर ऐसा हो जाता है, तुम अज्ञान से भरे हो तो तुम सोचते होः उधार ज्ञान से अज्ञान को मिटाने में सफल हो जाएंगे! तो कंठस्थ कर लें वेद, कुरान, बाइबिल। ज्ञान से भर जाओगे, अज्ञान नहीं मिटेगा! यह ज्ञान कूड़ा-करकट ही है। यह ऐसे ही है जैसे अंधेरे घर में तुमने सब जगह दीये की तस्वीरें टांग दीं! इससे कुछ रोशनी नहीं होगी, किसको धोखा दे रहे हो?
चीन में एक सम्राट हुआ। वह अपने राज्य की सील-मोहर बनवाना चाहता था। उसे मुर्गों से बड़ा लगाव था। मुर्गों की तरह अहंकारी वह खुद भी था। मुर्गे की देखी चाल, कैसे अकड़ कर कलगी उठा कर चलता है! कैसी बांग देता है! इसी अकड़ में होता है कि न मैं बांग दूंगा न सूरज निकलेगा। उसने कहा कि एक शानदार मुर्गे की तस्वीर बनाई जाए, लेकिन तस्वीर ऐसी होनी चाहिए कि जिंदा हो! बहुत चित्रकारों ने बनाई। बड़ा पुरस्कार मिलने वाला था। सम्राट को बहुत सी तस्वीरें जंची भी। लेकिन एक बूढ़े चित्रकार को उसने निर्णायक रखा था। वह इनकार करता जाए कि नहीं यह भी नहीं, कि यह भी नहीं। वर्षों बीतने लगे। सम्राट ने कहाः यह तस्वीर बन ही न पाएगी। इतनी सुंदर तस्वीरें आती हैं, तुम बस कह देते हो यह भी नहीं। तुम्हारी कसौटी क्या है? कब तुम हां भरोगे? उसने कहाः कसौटी एक है। आज मैं दिखाऊंगा।
वह ले गया मुर्गों की जितनी तस्वीरें आई थीं, सब उसने कमरे में रख दीं
और फिर एक मुर्गे को भीतर लाया गया। उस मुर्गे ने ध्यान ही नहीं दिया उन तस्वीरों पर। उसने कहा, जब तक यह मुर्गा ध्यान न दे, जब तक यह मुर्गा स्वीकार न करे कि हां, जब तक यह मुर्गा ठिठक कर खड़ा न हो जाए, जब तक यह मुर्गा न डर जाए कि दूसरा मुर्गा मौजूद है--तब तक तस्वीर सही नहीं है।
मगर आखिर यह तस्वीर भी आ गई, जो उसने स्वीकार की। सम्राट ने कहाः मैं देखना चाहूंगा मुर्गे की पहचान, जो तुम बताते थे। तस्वीर भीतर रखी गई, मुर्गे को अंदर ले जाया गया, वह देहली पर खड़ा हो गया। तस्वीर उसने देखी और भागने की कोशिश की। उसे भीतर लाया जाए, वह भीतर न आए। उस चित्रकार ने कहा कि अब मानता हूं कि यह तस्वीर जिंदा है। मुर्गे ने प्रमाण-पत्र दे दिया। अब मुर्गा कह रहा है कि मुझे डर लग रहा है। यह बड़ा बलशाली मुर्गा खड़ा हुआ है अंदर।
यह भी हो सकता है कि मुर्गा भी तस्वीर से धोखा खा जाए। लेकिन अंधेरा
तो नहीं खाएगा तस्वीर से धोखा। आदमी धोखा खा सकता है, मुर्गा भी धोखा खा सकता है। आदमी धोखा खा जाता है तो बेचारे मुर्गे की क्या बिसात! लेकिन अंधेरा धोखा नहीं खा सकता। दीये की तो बात छोड़ो, तुम सूरज की तस्वीर टांग दो, तो भी अंधेरा भाग नहीं जाएगा। अंधेरा तो प्रकाश ही हो तो भागता है।
और तुमने ज्ञान के नाम पर यही किया है, तस्वीरें टांग ली हैं।
सुंदर तस्वीरें हैं! उपनिषद के प्यारे वचन हैं, कि धम्मपद के वचन हैं। अदभुत वचन हैं! जानने वालों ने कहे हैं। मगर वचन वचन हैं। जानने वाला भी कहे दीया, तो भी दीया शब्द ही है, उससे रोशनी नहीं हो जाएगी। तुम्हें तो किसी जलते दीये के पास जाना ही पड़ेगा, जाना ही पड़ेगा।
धर्म उसी दिन मर जाते हैं जिस दिन गुरु की महिमा से ज्यादा शास्त्र की महिमा हो जाती है। सिक्ख धर्म उसी दिन मर गया, जिस दिन गुरुग्रंथ पर पूर्ण

विराम लगा दिया गया और कहा कि बस अब गुरु नहीं होंगे, अब ग्रंथ ही गुरु होगा। उसी दिन सिक्ख धर्म मर गया! तब तक जिंदा था। जब तक गुरु थे तब तक जिंदा था। जब गुरु की जगह किताब ने ले ली तो मर गया। जब तक जैनों के तीर्थंकर होते रहे तब तक जिंदा था। जब जैनों ने कहा कि बस चौबीसवां तीर्थंकर अंतिम है, अब कोई पच्चीसवां तीर्थंकर नहीं होगा, अब कोई जरूरत नहीं है, अब हम किताब से ही काम चला लेंगे--बस उसी दिन से रोशनी बुझ गई। उस दिन से अंधेरा ही अंधेरा है। ख्याल रखना इस बात का।
मुसलमानों ने कह दिया कि बस मोहम्मद आखिरी पैगंबर, अब कोई पैगंबर नहीं होगा--उसी दिन से अंधकार हो गया। अगर रोशनी जिलाए रखनी है तो तुम्हें यह अंगीकार करना होगा कि गुरु आते रहें, आते रहेंगे। तीर्थंकर होते रहें, अवतार होते रहें, दीये जलते रहें। दीये जलते ही रहते हैं, तुम्हारे इनकार करने से बुझ नहीं जाते; सिर्फ तुम वंचित हो जाते हो, सिर्फ तुम चूकते हो। ताकौ गुन सुनि मीच पलाई...
जैसे ही दीये से रोशनी प्रकट होती है कि दुर्मति भाग जाती है। अज्ञान कहां भाग जाता है, पता नहीं चलता। सुंदरदास कहते हैंः और कवन बपुरी। कहां भाग गई बेचारी? खोजता हूं, पाता नहीं हूं।
और जिस प्रकाश की हम बात कर रहे हैं उस प्रकाश के सामने इस सूरज का प्रकाश कुछ भी नहीं। और जिस दीये की हम बात कर रहे हैं उस दीये के समक्ष हजारों सूरज भी फीके हैं।
सूरज की पहली किरन खुशनुमा सही
लेकिन तेरी नजर की तरह दिलनशी कहां?
गुरु की नजर जब प्रवेश करती है तो उसकी नजर के पीछे-पीछे ही परमात्मा
की नजर भी तुममें प्रवेश कर जाती है। इसलिए गुरु को परमात्मा कहा! इतने समादर से पुकारा।
कबीर ने तो कहाः गुरु गोविंद दोई खड़े, काके लागूं पांव। कहा कि बड़ी मुश्किल में पड़ा हूं, दोनों सामने खड़े हैं, किसके पहले पैर लगूं! इतना सम्मान! इतना समादर कि गुरु के पहले पैर लगूं कि परमात्मा के पहले पैर लगूं! कहीं ऐसा न हो कि परमात्मा के पैर छूंऊं पहले तो गुरु का अनादर हो जाए! इसी किरण के सहारे तो सूरज मिला है। इसी द्वार से तो परमात्मा प्रकट हुआ। यही हाथ तो ले आए इस अनंत की यात्रा तक।
निसबासर नाहिं ताहि बिसारत पल छिन आध घरी।
सुंदरदास भयो घट निरविष सब ही व्याधि टरी।।
अब तो निसबासर नाहिं ताहि बिसारत... अब तो एक क्षण को भी भूलना नहीं
होता। अब तो उसकी याद ही याद बनी रहती है। अब तो सुरति जगी ही रहती है।
समझे थे हम तो "मीर" को आशिक उसी घड़ी।
जब तेरा नाम सुन के वो बेताब हो गया।।
आशिक तो याद करता है, प्रेमी याद करता है, भक्त स्मरण से भरा रहता है।
सब्र मुश्किल है आरजू बेताब।
क्या करें आशिकी में क्या न करें।।
बड़ी मुश्किल होती है भक्त की--क्या करें क्या न करें।
सब्र मुश्किल है आरजू बेताब! आकांक्षा पुकारती है कि और-और। अभीप्सा कहती है और-और। अनुभव कहता हैः और डूबो, और पुकारो, और याद करो। जितना रस बहता है उतनी रसाकांक्षा पैदा होती है। भुलाना भी चाहो तो फिर भुलाया नहीं जा सकता। अभी तो याद भी करना चाहते हो तो भूल-भूल जाते हो।
तुमने देखा, कभी बैठे घड़ी दो घड़ी एकांत में प्रभु-स्मरण करने? घड़ी, दो घड़ी तो बहुत दूर की बात है, पल दो पल भी याद नहीं कर पाते, कुछ दूसरी यादें आ जाती हैं। मन संयोग से चलता है। तुम बैठे, आंख बंद की, सोचा भगवान की याद करें, याद आ गई भगवानदास सर्राफ की दुकान, कि वे जो उधार रुपए ले आए थे, वे चुकाने हैं। फिर झकझोरा, फिर याद की भगवान की, फिर कुछ और याद आ गया। याद ही आता जाता है। कुछ का कुछ! मन यहां-वहां भागता है।
गुरजिएफ अपने शिष्यों को कहता थाः हाथ की घड़ी सामने रख लो और जो सेकेंड का कांटा होता है इस पर नजर रखो। और इतना ही ख्याल रखो कि मैं सेकेंड के कांटे को देख रहा हूं, देख रहा हूं, देख रहा हूं। अगर तुम एक मिनट

भी पूरा याद रख पाओ, साठ सेकेंड, तो तुम सौभाग्यशाली हो। और अक्सर ऐसा होता था कि साठ सेकेंड भी कोई शिष्य याद नहीं रख पाता था, जो नया-नया आता था। तुम भी कोशिश करना। तुम चकित हो जाओगे, साठ सेकेंड इतनी सी याद नहीं रहती। ऐसी कमजोर याद्दाश्त है। इतनी सी बात कि मैं सेकेंड के कांटे को देख रहा हूं और कुछ याद न करूंगा, सेकेंड के कांटे को भूलूंगा नहीं! बस पांच-सात सेकेंड भी याद रख लो तो बहुत। पांच-सात सेकेंड में गए तुम, भागे, कुछ का कुछ आ गया। घड़ी देख कर न मालूम कितने घड़ियाल याद आ जाएंगे। जब तुम फिर दुबारा याद करोगे, पाओगे सेकेंड का कांटा, कई सेकेंड सरक गया, इस बीच तुम खो गए थे। इस बीच तुम्हारे मन में कोई विचार एक मेघ की तरह आ गया और छा गया। तुम किसी अंधेरे में डूब गए थे। यह तो गुरु का परस न हो, यह तो पारस-पत्थर से थोड़ा संस्पर्श न हो जाए... तो तुम निसबासर तो कैसे याद करोगे? पल दो पल भी याद करना मुश्किल है।
इक बार तुझे अक्ल ने चाहा था भुलाना।
सौ बार जुनूं ने तेरी तस्वीर दिखा दी।।
लेकिन परस हो जाए, तो फिर अगर अक्ल भुलाना भी चाहे, अक्ल कहे भी कि छोड़ो भी, किस झंझट में पड़े हो, तो भी कुछ काम नहीं आती अक्ल।
इक बार तुझे अक्ल ने चाहा था भुलाना।
सौ बार जुनूं ने तेरी तस्वीर दिखा दी।।
लेकिन तब एक दीवानापन पैदा होता है और दीवानापन तस्वीर दिखाए जाता है। अक्ल भुलाना भी चाहे, अक्ल कहे भी कि बंद करो यह बात, अभी और बहुत काम संसार के करने हैं, अभी धन कमाना है, पद कमाना है, अभी कहां उलझे हो राम-नाम में; अभी तो तुम जवान हो, ये तो बुढ़ापे की बातें हैं--मगर फिर कुछ हल नहीं! एक बार किसी जिंदा गुरु ने तुम्हारी आंखों में झांका हो और एक बार किसी जिंदा गुरु के सामने तुम झुके होओ, उसकी जीवन-ऊर्जा तुममें.जरा भी बही हो, तुम्हारा कूड़ा-करकट थोड़ा भी हटा हो, थोड़ी भी झलक मिली हो, तो फिर ठहर गई बात। तुम भुलाना भी चाहो तो भुला ना सकोगे।
नफस-नफस में फुगां है नजर-नजर में हिरास।
फिर तो श्वास-श्वास में समा जाती है बात।
नफस-नफस में फुगां है, नजर-नजर में हिरास।
कुछ और दिन यही हालत रही तो क्या होगा।
फिर तो बुद्धि कहने लगती हैः बचो, यह तुम क्या कर रहे हो, दीवाने हुए
जा रहे हो! पागल हुए जा रहे हो! अगर यही हालत कुछ दिन और रही तो क्या होगा? लेकिन फिर बचने का कोई उपाय नहीं! बुद्धि कहते-कहते थक जाती है और चुप हो जाती है।
कुछ ये लगता है तेरे साथ ही गुजरा वो भी
हमने जो वक्त तेरे साथ गुजारा ही नहीं।
फिर तो ऐसा लगने लगता है कि चाहे परमात्मा की याद आए न आए, ऊपर-ऊपर से चाहे दूसरे काम करते रहो...
कुछ ये लगता है तेरे साथ ही गुजरा वो भी
हमने जो वक्त तेरे साथ गुजारा ही नहीं।
फिर बाजार में बैठो, दुकान में बैठो--और तुम मंदिर में हो। फिर तो ऐसा लगने लगता है कि तेरी याद करें, या न करें याद बहती ही रहती है, सतत बहती रहती है। उसकी अंतर-धारा चलती रहती है। ऊपर-ऊपर काम चलते रहते हैं। ऊपर-ऊपर अभिनय चलता रहता है। ऊपर-ऊपर सब नाटक का खेल चलता रहता है और नीचे परमात्मा को याद सरकती रहती है।
गुजारी मैंने सारी रात ये कह कर वो अब आए।
.जरा ऐ चश्मे-तर थमना जरा-ऐ दिल, जिगर रहना।।
हे आंसुओं से भरी हुई आंख, जरा ठहर। जरा आंसू रोक! वे आए वे आए!
हसीद फकीर झुसिया उठ-उठ कर बार-बार बाहर आ जाता था अपने दरवाजे पर, दरवाजे खोल लेता था, खिड़की खोल लेता था, बीच-बीच में सत्संग चलता। कहताः रुको। लोग पूछतेः कहां जा रहे हो? वह कहता, शायद वह आए, शायद अपने शिष्यों को जगा कर बिठा देता था कि अगर उनका आना हो तो ऐसा न हो कि मेरी नींद रह जाए, मुझे जल्दी से उठा देना!

गुजारी मैंने सारी रात ये कह कर वो अब आए।
जरा ऐ चश्मे-तर थमना जरा-ऐ दिल, जिगर रहना।।
उनका जिक्र, उनकी तमन्ना, उनकी याद।
वक्त कितना कीमती है इन दिनों।।
और जब यह याद सघन होने लगती है तो तुम्हारे समय में पहली दफा मूल्य
पड़ता है।
उनका जिक्र, उनकी तमन्ना, उनकी याद।
वक्त कितना कीमती है इन दिनों।।
जब तक परमात्मा का स्मरण नहीं बैठ रहा है तुम्हारे भीतर तब तक तुम जो
भी कर रहे हो, सब व्यर्थ है। जितने जल्दी जाग जाओ, उतना अच्छा!
दिल के लिए हयात का पैगाम बन गईं।
बेताबियां सिमट के तेरा नाम बन गईं।।
जब तक तुम्हारी सारी बेताबियां और सारी आकांक्षाएं सिमट कर उसके नाम
पर न लग जाएं, उसका नाम न बन जाएं, ढाल लो उसकी याद को--अपनी श्वास-श्वास से, अपने हृदय की धड़कन-धड़कन से! जिस क्षण भी तुम्हारी सारी श्वासें और धड़कनें उसके प्रति आरोपित समर्पित होती हैं, उस आरोहण पर निकलती हैं, उसी क्षण घटना घट जाएगी।
निसबासर नहिं ताहि बिसारत, पल छिन आध घरी।
सुंदरदास भयो घट निरविष, सबही व्याधि टरी।।
उसकी इस याद में ही याद करते-करते ही यह सारा घड़ा जो कल तक विष से भरा था, निरविष हो गया है। उसकी याद ही करते-करते विष हट गया, अमृत भर गया है।
यही जिंदगी मुसीबत, यही जिंदगी मसर्रत।
यही जिंदगी हकीकत, यही जिंदगी फसाना।।
सब तुम्हारे हाथ में है। अकेले हो, अंधेरे में हो। उसका हाथ गह लो, चल
पड़ रोशनी के पथ पर। अकेले कमजोर हो, नाकुछ हो। उसके साथ सब कुछ संभव है-- असंभव भी संभव है! परमात्मा के साथ अपने को जोड़ो; वही हमारा मूल है। उसके साथ जुड़ते ही हमारी वही दशा हो जाती है जो वृक्ष की जड़ें जब जमीन को जोर से पकड़ लेती हैं तब वृक्ष का हरा हो जाना। और एक वृक्ष की दशा है कि कोई उखाड़ दे और टिका कर रख दे दीवाल से, जड़ें उखड़ गयीं।
आदमी परमात्मा की याद न करे तो जड़ों से उखड़ा हुआ आदमी है। उसमें न फल लगते न फूल लगते--सिर्फ दुर्गंध उठती है, सिर्फ सड़ांध होती है, सिर्फ कीचड़ मचती है।
सुंदरदास भयौ घट निरविष, सबही व्याधि टरी।
व्याधि हमारी जिंदगी की क्या है? हम ज्वरग्रस्त हैं। दौड़ रहे, भाग रहे। यह मिल जाए, वह मिल जाए... । कुछ कभी मिलता भी नहीं। कुछ कभी मिला भी नहीं। मिलेगा भी नहीं। मगर एक सन्निपात है। सन्निपात के मरीज को देखा? दिखता है उसकी खाट उड़ रही है, आकाश में जा रहा है, नीचे-ऊपर बादलों पर चढ़ रहा है। मगर सब सन्निपात है। बुखार उतर जाएगा, न तो खाट उड़ती मिलेगी, न बादलों पर चढ़ता हुआ अपने को पाएगा। न खाट उड़ी थी कभी, सिर्फ सन्निपात था, सिर्फ बेहोशी थी। सिर्फ ज्वर इतना तेज हो गया था कि होश डगमगा गया था। जिंदगी क्या है मुसलसल शौक पैहम इज्तिराब।
हर कदम पहले से तेज रखता हूं मैं।।
जिंदगी क्या है? एक स्थायी आकांक्षा--बस दौड़े जाओ! एक वासना। जिंदगी क्या है? एक निरंतर व्याकुलता। अभी तो नहीं हुआ, थोड़ा और बढ़ूं तो हो जाएगा। अभी तो नहीं मिला, थोड़ा और तेज दौड़ूं तो शायद मिल जाए।
जिंदगी क्या है मुसलसल शौक पैहम इज्तिराब।
हर कदम पहले से तेज रखता हूं मैं।।
और ऐसे ही बुखार बढ़ता जाता है। इसी बुखार में, इसी दौड़ में, इसी गति में एक दिन हम अपनी कब्र में गिर जाते हैं। मगर बुखार में ही मरते हैं तो फिर बुखार में जन्म हो जाता है। बेहोश मरते हैं, फिर किसी बेहोश गर्भ में प्रविष्ट हो जाते हैं। फिर पैदा हुए, फिर चली वही यात्रा। फिर क ख ग से शुरू हुआ वही उपद्रव।

जागो! ऐसे जीवन को व्यर्थ मत करो। यही जीवन की ऊर्जा परम मुक्ति बन सकती है, परम आनंद बन सकती है।
देखौ माई आज भलौ दिन लागत!
ऐसा दिन तुम्हारा भी आए, जब तुम कह सकोः देखौ माई आज भलौ दिन लागत! आज
भला दिन आ गया। सौभाग्य की घड़ी आ गई! कौन सी घड़ी सौभाग्य की घड़ी है?
बरिषा रितु कौ आगम आयौ, बैठि मलारहिं रागत।।
रामनाम के बादल उनए, घोरि घोरि रस पागत।
तन मन मांहि भई शीतलता, गए बिकार जु दागत।।
जा कारन हम फिरत बिवोगी, निशिदिन उठि-उठि जागत।
सुंदरदास दयाल भये प्रभु सोइ दियौ जोइ मांगत।।
जो मांगा था जन्मों-जन्मों में, मिल गया! जो चाहा था अनंत-अनंत रूपों में, मिल गया। भर गया हृदय। प्यासी धरती तृप्त हो गई। मेघ आए और वर्षा कर गए।
देखौ माई, आज भलौ दिन लागत।
और दिन वही है, कल ही जैसा दिन है, मगर आज भला लगता है। परमात्मा के हाथ में हाथ पड़ गया तो नरक भी स्वर्ग हो जाता है तत्क्षण! और तुम अकेले स्वर्ग में भी रहो, परमात्मा के बिना, तो नरक में ही रहोगे!
देखौ माई, आज भलौ दिन लागत।
बरिषा रितु को आगम आयो, ...
आ गई घड़ी वर्षा की, घिर गए मेघ, अब और प्यासे न रहना होगा।
... बैठि मलारहिं रागत।।
अब तो बैठ कर मल्हार राग गाते हैं। अब तो वीणा छेड़ दी है। अब तो उठाते हैं अनाहद। अब तो गाते हैं, अब तो नाचते हैं। वही ऊर्जा जो क्रोध बनती थी, गीत बन गई। वही ऊर्जा जो काम बनती थी, राम बन गई। वही ऊर्जा जो जीवन की आपा- धापी थी, संगीत बन गई।
बैठ मलारहिं रागत! अब तो वर्षा के बादल घिर गए, अब तो मल्हार से स्वागत करें। अब तो गाएं और नाचें और गुनगुनाएं! अहोभाग्य की घड़ी आ गई।
रामनाम के बादल उनये, ...
कौन से बादल घने हो गए हैं, कौन से बादल आ गए? रामनाम के बादल!
यह एक बहुत आंतरिक घटना की ओर इशारा है। समझना। एक तो तुम्हारा राम-राम का स्मरण है, वह तुम्हारा ही है; वह कुछ बहुत काम का नहीं है। लेकिन एक जैसी घड़ी है जब तुम चुप होते हो, बिल्कुल चुप होते हो, राम-राम भी नहीं जपते, क्योंकि जप भी विचार है--अजपा अवस्था में होते हो, जाप भी चला गया; वह भी मन का ही रोग था; वह भी मन का ही बुखार था। मन बकवासी है। कुछ न कुछ बकवास चाहिए। गाली न बको तो मंत्र जपो, मगर कुछ न कुछ बकवास चाहिए। सब गया! रेख भी न बची बकवास की। अब मंत्र का उच्चार भी नहीं है भीतर। अजपा की स्थिति आ गई। मन मौन है। बस उसी क्षण...
रामनाम के बादल उनये! उसी क्षण मंत्र तुम्हें पुकारने नहीं पड़ते, मंत्र तुम पर बरसते हैं। ओंकार का नाद अपने आप उठता है। तुम सुनने वाले होते हो। तुम साक्षी होते हो। ऐसा नहीं कि तुम दोहरा रहे हो--बजता है नाद! बज रहा है नाद। मौन में सुन लिया जाता है, पकड़ लिया जाता है। तुम्हारा मन जब तक ऊहापोह से भरा है, शोरगुल से भरा है, सुनाई नहीं पड़ता! संगीत सूक्ष्म है!
रामनाम के बादल उनये, इसका अर्थ हैः तुम नहीं कर रहे हो रामनाम का स्मरण अब। अब तो बिल्कुल चुप हो, तुम तो खाली पात्र की तरह बैठे हो, शून्य। जब तुम शून्य पात्र की तरह बैठे होते हो, रामनाम की वर्षा होती है, रामनाम के मेघ घिरते हैं। समाधि बरसती है। जैसे मेघ आकाश में घिरते हैं और पृथ्वी पर वर्षा होती है, ऐसे ही उस अनंत के आकाश में समाधि के मेघ घिरते हैं। बुद्ध ने तो उस समाधि को नाम ही दिया--मेघ समाधि!
रामनाम के बादल उनये, घोरि घोरि रस पागत।
और ऐसा रस बरस रहा है, एक-एक बूंद रस में पगी है! एक-एक बूंद अमरस से भरी है।
हमारैं गुरु दीनी एक जरी

कहा कहूं कछु कहत न आवै, अंमृतरसहि भरी!
तन मन माहिं भई शीतलता, ...
सब शीतल हो गया! भीतर शून्य हो जाए तो सब शीतल हो जाता है। यह सारा उत्ताप मन का और तन का है, ये सारी बेचैनियां, बेताबियां, अशांतियां, ये वासनाएं, कामनाएं, एषणाएं, ये तृष्णाएं सब शांत हो जाती हैं। यह सब ज्वर है।
तन-मन माहिं भई शीतलता, गए बिकार जु दागत।
जिन्होंने जाना है उन्होंने दो तरह की समाधि की बात की है--एक सबीज समाधि, एक निर्बीज समाधि! आदमी चेष्टा से मिलती है, वह सबीज समाधि; उसमें बीज तो रह ही जाते हैं, और बीज रह जाएं तो खतरा है। फिर कभी मौका आकर अंकुर हो जाएंगे। आदमी की चेष्टा सबीज समाधि के पार नहीं ले जाती। निर्बीज समाधि का अर्थ है जहां बीज भी दग्ध हो गया। वह तो उसकी कृपा से ही होता है। वह तो जब वही बरसता है तभी होता है।
गए बिकार जु दागत! जल गए, सारे विकार जल गए, जब उनके लौटने का कोई उपाय
ही न रहा। बीज जल गए, अब अंकुरित नहीं हो सकते।
और इसी के लिए तो हम जन्मों-जन्मों से वियोगी बने घूम रहे थे!
जा कारनि हम फिरत बिवोगी, निशिदिनी उठि-उठि जागत।
और जिसके लिए हम रात-रात जाग-जाग कर उठ-उठ कर चेष्टा करते रहे थे! सुंदरदास दयाल भए प्रभु, सोई दियौ जोइ मांगत।।
हमारे मांगने-मांगने खोजने-खोजने से नहीं मिला था, वह आज परमात्मा की सिर्फ कृपा से मिला है।
भक्त का अनुभव यह हैः प्रयास से नहीं मिलता, प्रसाद से मिलता है। और इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रयास मत करना। प्रयास तो पूरा कर लेना! जब तुम्हारा प्रयास पूरा हो जाता है और थक कर तुम गिर जाते हो, उस क्षण प्रसाद की वर्षा होती है।
देखो माई आज भलौ दिन लागत।
"प्रसाद" शब्द को स्मरण रखो! भक्ति के शास्त्र में प्रसाद का अर्थ हैः हमारी चेष्टा से नहीं, उसकी अनुकंपा से, उसकी कृपा से। वह रहीम है, वह रहमान है।
गुनाह गिन के क्यों मैं अपने दिल को छोटा करूं।
सुना है तेरे करम का कोई हिसाब नहीं।।
भक्त कहता हैः मैं क्या गिनती करूं अपने गुनाहों की, यूं तो बहुत किए हैं, मगर गिनती भी क्या करूं, मेरी गिनती छोटी ही होगी! मैंने जितने गुनाह किए हैं, उनका क्या मूल्य? तेरी अनुकंपा के सामने? तेरा करम है। तू करीम है।
गुनाह गिन के क्यों मैं अपने दिल को छोटा करूं।
सुना है तेरे करम का कोई हिसाब नहीं।।
तो कितने ही गुनाह किए हों मैंने और कितना ही कूड़ा-करकट इकट्ठा कर लिया हो, लेकिन तेरी बाढ़ जब आएगी... सुना है तेरे करम का कोई हिसाब नहीं... तो तू सब बहा ले जाएगा।
वह फर्क समझ लेना! योगी कहता हैः हमें चेष्टा करनी होगी, एक-एक कर्म को काटना होगा। जितने बुरे कर्म किए हैं, उनके ठीक मुकाबले तराजू पर दूसरी तरफ दूसरे पलड़े पर अच्छे कर्म करने पड़ेंगे। पाप को पुण्य से काटेंगे, तब कहीं सिद्धि होगी। भक्त कहता हैः अगर हम पाप से पुण्य को काटते रहे तो सिद्धि शायद कभी न होगी, हमारे पाप इतने हैं, हमारे गुनाह इतने हैं! और जिससे इतने गुनाह हुए हैं, वह कैसे पुण्य करेगा? उसके पुण्य में भी गुनाह की छाया होगी! उसके पुण्य में भी पाप का जहर होगा!
समझो, एक आदमी ने खूब पाप किया! चोरी की, चपाटी की, शोषण किया, किसी तरह रुपया इकट्ठा कर लिया, अब घबड़ाया, कि अब यह रुपए का पाप इतना कर लिया, इतना गुनाह कर लिया, चलो मंदिर बनवा दो। लेकिन पाप से मंदिर बनेगा। मंदिर बनेगा कैसे? सोचो कि चलो धन का दान कर दें, मगर दान, चोरी से पैदा हो रहा है दान। चोरी से कहीं दान पैदा हो सकता है!

एक क्रोधी आदमी कसम खा लेता है कि अब मैं क्रोध नहीं करूंगा। उसकी कसम में भी क्रोध होता है। वह क्रोध में ही कसम खा लेता है। इस बात को समझना। आदमी अज्ञानी है। वह जो भी करेगा, उसमें उसके अज्ञान की छाया तो पड़ेगी। हमसे पुण्य कैसे हो पाएंगे? भक्त का कहना यह है कि हमारे किए तो जो भी होगा पाप ही होगा। हमारा किया है तो पाप होगा। क्योंकि अहंकार मौजूद रहेगा। मैंने किया! मेरा उपवास, मेरा व्रत, मेरा त्याग! और अहंकार विष है। नहीं; हमारे किए कुछ भी न होगा। हम असहाय हैं। उसके किए होगा। उसकी मर्जी पूरी होगी! हम इतना ही कर सकते हैं कि छोड़ दें अपने को उसके साथ, उसके बहाव में, उसकी रौ में बह जाएं उसकी लहर में। जहां ले जाए उसकी गंगा। जहां डुबाए तो डूबें और उबारे तो उबरें। ऐसा समर्पण हो तो प्रसाद की वर्षा होती है।
ऐसे भक्त डूबता है और डूब कर जाता है। गिरता है असहाय होकर और परम सहायता उसे उपलब्ध हो जाती है। ऐसे भक्त बेहोशी में डगमगाता है; और ज्ञानियों के होश को भी मात कर दे, ऐसे होश पा लेता है।
खोया हुआ सा रहता हूं अक्सर मैं इश्क में।
या यूं कहो कि होश में आने लगा हूं मैं।।
उसकी बेहोशी में होश का दीया है। उसके लड़खड़ाने में भी गहरी सावधानी है। उसके गिरने में भी उठना है।
भक्त एक विरोधाभास है। वह बिना पाए पाता है। बिना पाने की चेष्टा किए पाता है।
जा कारनि हम फिरत बिवोगी, ...
जिसके लिए हम जन्मों-जन्मों तक वियोगी बने घूमते रहे और न पा सके।
... निशिदिन उठि-उठि जागत।
जिसके लिए हम कितनी चेष्टा करते रहे, उठ-उठ कर जाग-जाग कर और नहीं पाया।
सुंदरदास दयाल भए प्रभु सोइ दियौ जोइ मांगत।।
जो मांगा था, सब दे दिया। सब मिल गया।
देखौ माई आज भलौ दिन लागत।
ऐसा भला दिन तुम्हारा भी आए! आ सकता है। आज का दिन भी भला दिन हो सकता है, क्योंकि सभी दिन भले हैं। जिस दिन लगे उसी दिन भला। जिस दिन अहंकार समर्पित किया, उसी दिन प्रसाद बरसा।
देखौ माई आज भलौ दिन लागत!
बरिषा रितु को आगम आयौ, बैठि मलारहिं रागत!
तुमने अपना मल्हार अब तक गाया नहीं। अब तक तुमने अपना संगीत जमाया नहीं। अब तक तुम नाचे नहीं। नाचो भी कैसे? नाचो भी किसलिए? कोई कारण भी तो दिखाई नहीं पड़ता। शुभ घड़ी ही नहीं आई। परमात्मा को पाए बिना कोई नाच ही नहीं सकता। यही तो फर्क है।
मीरा नाची--परमात्मा को पाकर नाची! नर्तकियां नाचती हैं, लेकिन नर्तकियों के नृत्य में और मीरा के नृत्य में भेद है। नर्तकियों का नृत्य ऊपर-ऊपर है, किसी हेतु से है, किसी प्रलोभन से है। कला होगी, मगर उनका प्राण नहीं है। मीरा प्राण से नाची। पाकर नाची! विभोर हो गई। स्वभावतः कृतज्ञता जगी, धन्यवाद का भाव उठा!
देखौ माई आज भलौ दिन लागत!
बरिषा रितु कौ आगम आयौ, बैठि मलारहिं रागत।।
रामनाम के बादल उनए, घोरि रस पागत।
तन मन माहिं भई शीतलता, गए बिकार जु दागत।।
जा कारनि हम फिरत बिवोगी, निशिदिन उठि-उठि जागत।
सुंदरदास दयाल भए प्रभु, सोइ दियौ जोइ मांगत।।

आज इतना ही।

ज्योति से ज्योति जले
बीसवां प्रवचन

रीते घर पाहुन पग धारे

पहला प्रश्नः जीवंत गुरु सामने होते हुए भी हमारे देश में मुर्दों की पूजा होती है। क्या यह हमारा दुर्भाग्य है या नासमझी या अधोगति?

सत्य प्रेम! न तो दुर्भाग्य, न नासमझी, न अधोगति। ऐसा ही सदा से हुआ है। मनुष्य का यही व्यवहार रहा है। मनुष्य के होने के ढंग में ही यह व्यवहार छिपा है। यह मनुष्य के मूर्च्छा का अनिवार्य हिस्सा है। मुर्दे की ही पूजा हो सकती है, जीवंत के साथ तो रूपांतरित होना पड़ता है। पूजा तो राजनीति है। जिससे बचना हो, उससे बचने का सबसे सुसंस्कृत उपाय है उसकी पूजा। चढ़ा दिए दो फूल चरणों में और मुक्त हुए। और तुम जैसे थे वैसे के वैसे रहे। और तुमने मन में यह मजा भी ले लिया कि कुछ किया। कुछ किया भी नहीं। फूल वृक्षों के थे। फूल परमात्मा पर चढ़े ही थे। वे तोड़ लिए और पत्थर की एक मूर्ति पर चढ़ा दिए या एक शास्त्र पर चढ़ा दिए।
सारे फूल परमात्मा के चरणों में समर्पित हैं। सारे पक्षियों के गीत उसी की प्रार्थनाएं हैं। सूरज उगता है, उसी की आरती उतारता है। लेकिन तुम्हारे मन में एक बेचैनी है, एक अपराध-भाव है। तुम्हें पता है कि तुम जैसे होने चाहिए वैसे नहीं हो। कुछ करना जरूरी है। लेकिन अगर असली कुछ करो तो महंगा काम है, लंबी यात्रा है, दुर्गम मार्ग है। असली कुछ करो तो तुम्हारे न्यस्त स्वार्थों को चोट पड़ती है। असली कुछ करो तो तुम जैसे हो वैसे ही न रह सकोगे। तुम्हारा क्रोध बदलना होगा, तुम्हारा लोभ बदलना होगा, तुम्हारी वासना रूपांतरित होगी। तुम्हें अपने चित्त के रवैए बदलने होंगे। जीवन की शैली बदलनी होगी।
इतना महंगा काम तुम करना नहीं चाहते। इतनी झंझट तुम लेना नहीं चाहते। लेकिन तुम यह भी नहीं चाहते कि अपनी आंखों में अपराधी रहो। तुम अपने को यह भी समझाना चाहते हो--मैंने कुछ किया तो! नहीं हुआ तो मेरा दुर्भाग्य; लेकिन मैंने नहीं किया तो ऐसा नहीं--मैंने कुछ किया तो!
तो तुम सस्ते उपाय खोजते हो। मंदिर में जाकर दीया जला आते हो। अब मंदिर में जलाया दीया कैसे काम आएगा? दीया भीतर जलना चाहिए। भीतर दीया जलाना लंबी साधना मांगता है। मंदिर में दीया जलाना जरा भी अड़चन की बात नहीं। फूल चढ़ा आए... वृक्षों में लगे फूल चढ़ाओगे? अपने भीतर फूल उगाओ! तुम फूल बनो! तुम्हारा कमल खिले, उसे ले जाओ चढ़ाने परमात्मा को, तो कुछ लाए, कुछ भेंट लाए।
लेकिन तुम्हारा कमल खिले, उसके लिए तो काम को राम तक की यात्रा करनी पड़ेगी, तब तुम्हारा कमल खिलेगा। उतनी यात्रा की तैयारी नहीं। और यह भी मानने की तैयारी नहीं है कि मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं। तो आदमी कुछ-कुछ करने का उपाय करता है। लेकिन उपाय ऐसे हैं कि भ्रांति भी बनी रहे कि मैं कुछ कर रहा हूं और कुछ करना भी न पड़े। ऐसे एक मिथ्या धर्म का जन्म होता है-- पूजा का, आराधना का, अर्चना का।
धर्म है साधना; न तो पूजा, न अर्चना, न उपासना। धर्म है साधना। और धर्म
की प्रयोगशाला भीतर है। न तो काशी जाओ, न काबा--जाना हो कहीं तो अपने भीतर जाओ। तीर्थ वहां है। डुबकी कहीं मारनी हो तो गंगाओं को बाहर मत खोजो। बाहर की गंगा आदमी की ई.जाद है। भीतर की गंगा परमात्मा ने बहाई है। उसमें ही उतरो!
लेकिन भीतर जाने में बहुत डर लगते हैं। पहला तो डर, कि भीतर जाते ही आदमी अकेला होने लगता है। न पत्नी होगी साथ, न पुत्र होगा, न मित्र होंगे-- कोई भी नहीं होगा। अकेले हो जाओगे। अकेले में भय लगता है। और भीतर जब उतरोगे तो पहले भयंकर अंधकार पाओगे। अंधेरे में डर लगता है। जब तुम बहुत दिन तक भीतर नहीं गए हो, तो तुम्हारी आंखें भीतर की रोशनी को पहचानने में असमर्थ हो गई हैं।

तुमने कभी ख्याल किया, भरी दोपहरी में मीलों चल कर तुम घर आए हो, तो घर में प्रवेश करते ही अंधकार मालूम होता है। आंखें धूप की आदी हो गई हैं। फिर थोड़े सुसताते हो, आराम कर लेते हो और घर का अंधकार मिटने लगता है। अंधकार था नहीं, तुम्हारी आंखें बहुत प्रकाश की आदी हो गई थीं। इस धीमे से प्रकाश को नहीं देख पाती थीं। इस मंदिम प्रकाश को नहीं देख पाती थीं। अब देखने लगीं। अब इस प्रकाश के लिए राजी हो गई। तुम्हारी आंखों ने समायोजन कर लिया।
ठीक ऐसी ही घटना भीतर घटती है। तुम बाहर और बाहर और बाहर चलते रहे। बाहर की रोशनी से तुम्हारी पहचान है। भीतर की रोशनी बड़ी मंदिम है। बाहर की रोशनी उत्तप्त है। भीतर की रोशनी बड़ी शीतल है। बाहर की रोशनी ऐसी है जैसी भर दोपहरी। भीतर की रोशनी? भीतर की रोशनी ऐसी है जैसे सूरज डूब जाए और रात न हो--बीच का अंतराल, संध्या। या सुबह सूरज न उगा हो और रात जा चुकी हो, आखिरी तारा डूबता हो--अंतराल। भीतर की रोशनी मंदिम है, शीतल है, उत्तप्त नहीं। और तुम जन्मों-जन्मों से भीतर नहीं गए हो, तो तुम्हारी आंख भीतर से समायोजित होने में समय मांगेगी।
तो जब पहली दफा भीतर जाओगे, अंधकार पाओगे। अंधकार से डर लगता है। और अंधकार देख कर तुम्हें लगेगा कि सब संत व्यर्थ की बातें करते रहे, झूठी ही बातें करते रहे। क्योंकि वे तो सब कहते हैं कि भीतर प्रकाशों का प्रकाश है। जैसे हजार सूरज एक साथ उगे हों! और तुम जब भी भीतर जाओगे, अंधकार पाओगे। तुम घबड़ा कर वापस लौट आओगे। बाहर कम से कम रोशनी तो है!
तुम्हें में याद दिलाऊं, सूफी फकीर राबिया की कहानी, जो मैंने बहुत बार कही है, और मुझे बहुत प्यारी है। राबिया को एक सांझ लोगों ने देखा कि अपने झोंपड़े के बाहर कुछ खोजती है। बूढ़ी औरत। उसका लोग समादर भी करते थे। थोड़ा झक्की भी मानते थे। पूछा लोगों ने, पड़ोस के लोगों ने--क्या खो गया? उसने कहा--मेरी सुई खो गई है। सीती थी, गिर गई। वे भी खोजने लगे। तभी एक बुद्धिमान ने पूछा कि सुई गिरी कहां है? रास्ता तो बहुत बड़ा है। हम खोजते रहें, खोजते रहें, रात हो जाएगी। सुई गिरी कहां है? ठीक-ठीक जगह का पता हो तो खोजना आसान होगा। वहीं हम तलाश लेंगे।
राबिया हंसने लगी। राबिया ने कहाः सुई कहां गिरी, यह तो पूछो ही मत। सुई मेरे घर के भीतर गिरी है। लेकिन वहां अंधेरा है और अंधेरे में कोई खोजे तो कैसे खोजे? बाहर रोशनी है इसलिए बाहर मैं खोजती हूं।
वे लोग ठहर गए। उन्होंने कहाः तू तो पागल है, अपने साथ हमें भी पागल बनाया।
राबिया बोली कि नहीं, मैं तो तुम्हारे ही तर्क का अनुसरण कर रही हूं। तुम आनंद को बाहर खोजते हो और तुमने खोया भीतर है। परमात्मा को बाहर खोजते हो और परमात्मा भीतर है। तुम्हारे ही तर्क का अनुसरण कर रही हूं। और तुम्हारा भी कारण यही है, जो मेरा कारण है। भीतर अंधेरा है, बाहर रोशनी मालूम होती है।
जब तुम पहली बार भीतर जाओगे, अंधेरा पाओगे। उससे डर लगता है। और जीवंत गुरु के पास और क्या होगा, अगर भीतर जाना न होगा? जीवंत गुरु के संस्पर्श में एक ही तो घटना घटनी है--अंतर्यात्रा शुरू होगी। भयंकर अंधकार होगा। अमावस की रात से शुरू होती है साधक की यात्रा और पूर्णिमा पर पूरी होती है। लेकिन प्रथम तो अमावस से साक्षात्कार करना होगा।
दूसरी बात--जैसे ही तुम भीतर जाओगे... बुद्धपुरुषों ने कहा है, आत्मा
का दर्शन होगा, परमात्मा का साक्षात्कार होगा। लेकिन तुम्हें नहीं हो जाएगा। तुम तो भीतर जाओगे, तुम्हें सिर्फ वासना का साक्षात्कार होगा; किसी परमात्मा का नहीं। तुम तो न मालूम वासना के कितने कीड़े कुलबुलाते पाओगे। हजार-हजार तरह के सांप-बिच्छू तुम्हारे भीतर सरकते हुए तुम्हें मिलेंगे--क्रोध के, वैमनस्य के, ईर्ष्या के, विध्वंस के, द्वेष के, घृणा के। तुम घबड़ा जाओगे। तुम तो कहोगे, यह किस मवाद-भरी दुनिया में आ गया! चले थे परमात्मा को अनुभव करने। चले थे मोक्ष की तलाश में, यह तो नरक का पता चल रहा है।

तुम्हें पहले नरक से ही गुजरना होगा, क्योंकि यही नरक तुमने अब तक निर्मित किया है। परमात्मा भी भीतर है। जिन्होंने कहा है, गलत नहीं कहा है, जानकर कहा है। मैं तुमसे कहता हूं, परमात्मा भीतर है। जान कर कहता हूं, गवाह की तरह कहता हूं। चश्मदीद गवाह की तरह। लेकिन केंद्र पर परमात्मा है। केंद्र तक पहुंचने में समय लगेगा। तुम्हारी और केंद्र परिधि के बीच में लंबा अंतराल है, लंबा फासला है। उस लंबे फासले में तुमने नरक ठूंस-ठूंस कर भर दिया है। तुमने ही बनाया है। जब क्रोध उठा है, तुमने दबा लिया। जब घृणा उठी, तुमने दबा ली। जब वासना जगी, तुमने दबा ली। वे सब दबे हुए सांप-बिच्छू तुम्हारे भीतर पड़े सरक रहे हैं। तुम जब भीतर जाओगे, उनसे मुलाकात न करोगे? उनसे मुलाकात लेनी ही होगी।
पश्चिम के बड़े विचारक डेविड ह्युम ने लिखा है कि "साक्रेटीज की यह बात मान कर कि अपने को जानो, मैं भी अपने भीतर गया। लेकिन मैंने सिवाय इच्छाओं के, कामनाओं के, स्मृतियों के, कल्पनाओं के, व्यर्थ के कूड़े-कबाड़ के, और कुछ भी नहीं पाया, मुझे कोई आत्मा नहीं मिली।" इतनी जल्दी मिलेगी भी नहीं। जैसे कोई आदमी कुआं खोदता है, तो तुम सोचते हो एकदम से जलधार मिल जाती है? और जलधार न मिले फीट दो फीट की खुदाई के बाद और तुम लौट जाओ और कहो कि भीतर जलधार नहीं है--ऐसी ही भूल ह्युम ने की। कितना ही बड़ा विचारक रहा होगा, मेरे हिसाब से बड़ी जल्दीबाजी की। धीरज नहीं था।
जब कोई जमीन में कुआं खोदता है... और जमीन में हर जगह पानी है। यह बात दूसरी है कि कहीं पचास फीट पर होगा, कहीं पांच फीट पर होगा, कहीं पांच सौ फीट पर होगा, यह बात दूसरी है। मगर ऐसा कोई स्थल नहीं पृथ्वी पर, जहां खोदते ही जाओ तो पानी न मिले। पानी तो है ही। लेकिन खुदाई हर आदमी की अलग-अलग होगी; गहराई अलग-अलग होगी। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अनूठा है। अपने ढंग से जीए हो तुम जन्मों-जन्मों में। तुमने जो भी इकट्ठा कर लिया है, उसी में से खुदाई करनी पड़ेगी। दूसरे ने कुछ और इकट्ठा किया है। तीसरे ने कुछ और इकट्ठा किया है। सबका संग्रह अलग-अलग है। सबकी पर्तें अलग-अलग हैं।
और आदमी तो ऐसे हैं जैसे प्याज! छीलना पड़ेगा, पर्त पर पर्त निकालनी होगी, तब कहीं भीतर का शून्य हाथ लगेगा। उसी शून्य में पूर्ण विराजमान है। कुआं तुम खोदते हो तो पहले तो कूड़ा-करकट हाथ लगता है। डालडा के डिब्बे, कनस्तर, टूटे-फूटे... लोगों के घर का कूड़ा-करकट, चीथड़े। पांच-सात फीट तक तो इसी तरह की चीजें, हाथ लगेंगी। इससे लौट मत आना--कि ये डालडा के डिब्बे, कनस्तर और चीथड़े... कहां जल-स्रोत यहां? फिर और खोदोगे तो कंकड़-पत्थर मिलेंगे। फिर आदमी का कचरा समाप्त हुआ तो कंकड़-पत्थर भी समाप्त हो जाएंगे, तो सूखी जमीन मिलेगी मत सोचना कि अब लौट चलूं, बहुत हो गई खुदाई। खोदे जाना। फिर गीली जमीन मिलेगी। और जब गीली जमीन मिले तो समझ लेना कि जल-स्रोत अब करीब है। मगर अभी भी पीने योग्य जल मिल नहीं जाएगा। अभी गीली जमीन ही मिली है, सिर्फ पानी की हलकी झलकें मिली हैं।
ऐसा ही ध्यान की खुदाई में होता है, अंतर्यात्रा में होता है। और खोदो। फिर गंदा जल मिलेगा--कीचड़ से भरा। कीचड़ मिलेगी। मगर अब तुम करीब आने लगे। घबड़ा मत जाना कि कीचड़ का क्या करेंगे; हम तो जल-स्रोत के लिए निकले हैं, कीचड़ थोड़े ही पीएंगे! घबड़ा मत जाना। और खोदना, और खोदना। तुम करीब आते जा रहे हो। जल्दी ही स्वच्छ जल-स्रोत मिल जाएंगे।
और फिर, जब तक तुम खुदाई जारी रखोगे, तब तक तो कीचड़ मचती ही रहेगी। यह ध्यान और समाधि का फर्क है। ध्यान का अर्थ है--खुदाई। जब तक तुम ध्यान ही करते रहोगे, करते ही रहोगे, तब तक तो कीचड़ मचती ही रहेगी। जब तुम पाओ कि अब गले-गले कीचड़ में खड़े हो गए हैं, जल तो मिल गया है, अब कीचड़ ही कीचड़ जल में भरी है, जब गले-गले कीचड़ में आ जाओ--तो निकल आना बाहर कुएं के। अब प्रतीक्षा करना, बैठ जाना। राह देखना, ताकि कीचड़ धीरे-धीरे बैठ जाए। बैठ जाती है। कीचड़ के कण भारी हैं, जल से, अपने आप बैठ जाएंगे। मगर तुम यह मत सोचना कि तुम वहां खुदाई जारी रखो, अंदर जाकर कीचड़ को हटाने का उपाय करो तो कीचड़ मिटेगी। तुम्हारी मौजूदगी कीचड़ को बढ़ाती रहेगी। खुदाई तक तुम्हारी जरूरत है, फिर तुम बाहर आ जाओ।

इसलिए ध्यान और प्रतीक्षा, दोनों का जब जोड़ हो जाता है, तब समाधि ही फलती है।
तुम पूछते होः "जीवंत गुरु सामने होते हुए भी हमारे देश में मुर्दों
की पूजा होती है।"
तुम्हारे ही देश में ऐसा होता है, ऐसा नहीं; सब देशों में ऐसा होता है। मुर्दों की पूजा में सुविधा है।
ऐसा समझो, अगर दो हजार साल पहले तुम क्राइस्ट के साथ चले होते तो खतरा था। अब क्रिश्चियन होने में कोई खतरा नहीं है। तब तो फांसी लग सकती थी। जिस रात क्राइस्ट पकड़े गए, उनके सारे शिष्यों ने उन्हें छोड़ दिया, भाग गए! कौन इतना खतरा मोल लेगा? सिर्फ एक शिष्य पीछे हो लिया। जीसस ने कहा भी उससे कि तू भी भाग जा। उसने कहा, मेरे चाहे प्राण जाएं, लेकिन आपको कभी नहीं छोडूंगा। और जीसस हंसने लगे। उन्होंने कहाः कहना आसान है, करना मुश्किल है। मैं तुझसे कहता हूं कि मुर्गा बांग दे, उसके पहले तीन बार तू इनकार कर चुका होगा।
फिर जीसस को दुश्मन पकड़ कर ले चले। रात अंधेरी है और मशालें उन्होंने जला रखी हैं और जीसस को बांध रखा है। भीड़ में उन्होंने अपनी देखा कि एक अजनबी सा आदमी है। वही जीसस का शिष्य। उन्होंने पूछाः तू कौन है? हम तुम्हें पहचानते नहीं। तू जीसस का शिष्य तो नहीं?
और उस शिष्य ने कहा कि नहीं, कौन जीसस? मैं तो जानता भी नहीं।
और जीसस ने लौट कर पीछे की तरफ देखा और कहाः अभी मुर्गे ने बांग नहीं
दी है। और ऐसा तीन बार हुआ। मुर्गे के बांग देने के पहले उन थोड़ी सी घड़ियों में शिष्य ने तीन बार इनकार किया कि नहीं, कौन जीसस? मैं तो एक अजनबी आदमी हूं। इस गांव में आया। आप मशालें लिए हैं, इसलिए साथ हो लिया। सिर्फ देखने के लिए... तमाशबीन हूं कि क्या हो रहा है।
जीसस के साथ चलना तो सूली कंधे पर लेकर रख चलना पड़ेगा। लेकिन, फिर जीसस गए, फिर चर्च बने, मूर्तियां बनीं, क्रॉस खड़े हुए। अब जीसस को मानने में क्या अड़चन है? अब पूजा करनी तो बहुत आसान है। पूजा करने वाला मानता नहीं है। जीसस की एक भी शिक्षा मानी नहीं गई है। जीसस ने कहाः जो तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, दूसरा गाल उसके सामने कर देना। कौन करता है? जीसस ने कहा हैः प्रेम परमात्मा है। लेकिन ईसाइयों ने जितने युद्ध जमीन पर किए, किसने किए? जितनी हिंसा उन्होंने की, किसने की? कौन सुनता है? कौन मानता है? लेकिन पूजा जारी रहती है।
बुद्ध के साथ चलते, मुश्किल में पड़ते। आग के साथ खेलना है बुद्ध के साथ चलना। बुद्ध के साथ उठना-बैठना खतरे से खाली नहीं। लेकिन बुद्ध की मूर्ति की पूजा करने में क्या खतरा हो सकता है? मूर्ति तुम्हारी खरीदी हुई, बाजार से लाई हुई; चाहो तो पूजो, चाहो तो न पूजो। कुछ दिन के लिए दरवाजा बंद कर दो, तो भी मूर्ति कुछ नहीं कर सकती। यह भी नहीं कह सकती कि मैं प्यासी हूं। भूखी हूं। मूर्ति के साथ जैसा व्यवहार तुम्हें करना हो, करो। लेकिन बुद्ध के साथ तुम्हें रूपांतरित होना होगा। बुद्ध तुम्हारी मुट्ठी में नहीं होंगे। तुम्हें अपने को बुद्ध की मुट्ठी में छोड़ना होगा। मूर्ति तुम्हारी मुट्ठी में होगी, जैसी मर्जी हो करो।
देखते नहीं हिंदुओं को? बना लेते हैं गणेश जी को। पूजन कर लिया, बड़ा शोरगुल मचा लिया, फिर चले समुद्र में जाकर विसर्जन भी कर आते हैं। गणेश जी कुछ नहीं कर पाते। पूजन करना हो पूजन करो, नदी में डुबाना हो नदी में डुबा दो, जैसी तुम्हारी मर्जी! गणेश जी क्या करें? गणेश जी वहां हैं ही नहीं; तुम्हारा खिलौना हैं। असली गणेश जी को सागर में डुबाओगे, सूंड में फंसा लेंगे। चारों खाने चित्त कर देंगे। फिर भूल कर कभी असली गणेशजी के पास न जाओगे। मगर अपने ही बनाए गणेश जी मिट्टी के हैं, रंगे-पुते हैं। जहां बिठाओ बैठे हैं; जहां चलाओ चलते हैं; शोरगुल मचाओ, शोरगुल सुनते हैं। मुर्दे की पूजा आसान है। मुर्दे की ही पूजा आसान है। और इस देश में ही नहीं, सभी देशों में वैसा है। आदमी सब जगह एक सा है। इस भ्रांति को छोड़ो कि आदमी अलग-अलग है। राजनीति ने तुम्हें बड़ी मूढ़ताएं सिखाई हैं कि तुम भारतीय हो, फलां आदमी चीनी है, फलां आदमी जर्मन है। ये मूढ़ताएं छोड़ो! कौन

जर्मन, कौन चीनी, कौन भारतीय? आदमी बस आदमी है। थोड़ा रंग का फर्क होगा। रंग के फर्क से क्या होता है? तुम्हें पता है? गोरे आदमी में और काले आदमी में चार आने के रंग का फर्क होता है। क्या शोरगुल मचा रखा है? चार आने का रंग! पोत कर काला कर दे। और चार आने के रंग का ही फर्क है। भीतर जो पिगमैंट होते हैं, जिनसे आदमी काला होता है, उनकी कीमत चार आना है। और तुम यह जानकर हैरान होओगे कि काला आदमी चार आना ज्यादा मूल्यवान है; गोरा नहीं। गोरा तो खाली है। चार आने की वह जो कीमती चीज है, वह उसमें नहीं है। अगर नुकसान में है तो गोरा है। काला धनी है। चवन्नी ज्यादा!
इन छोटे-छोटे तर्कों का क्या हिसाब लगा बैठे हो? मगर ये सारे फर्क हमें बड़े महत्वपूर्ण हो गए हैं। छोड़ो यह पागलपन! यहां मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे पूछते हैं, यहां इतने विदेशी क्यों? कौन विदेशी है? किसको विदेशी कह रहे हो? मैं तुम्हारी राजनीति की परिभाषा मानने को राजी नहीं। किसको विदेशी कहते हो? यह सारी पृथ्वी एक है। क्या तुम सोचते हो तुमने हिंदुस्तान-पाकिस्तान की रेखा खींच दी, नक्शे पर, तो पृथ्वी बंट गई? पृथ्वी तो अखंड है। अब यह बड़ा मजा है कि थोड़े ही साल पहले, तीस साल पहले, जो पाकिस्तान में रहता था वह देशी था; अब वह विदेशी हो गया। वही का वही आदमी... ।
मैंने एक कहानी सुनी है। जब हिंदुस्तानी-पाकिस्तानी का बंटवारा हुआ
तो एक पागलखाना था। वह दोनों देशों की सीमाओं पर पड़ता था, वह कहां जाए? और पागलखाने को लेने को वैसे भी कोई उत्सुक नहीं था। न हिंदुओं को फिकर थी, न मुसलमानों को फिकर थी। न गांधी को चिंता थी, न जिन्ना को चिंता थी। लेकिन कहीं तो जाना ही चाहिए, पागलखाना है तो कहीं तो जाना पड़ेगा। फिर यही तय हुआ कि पागलों से ही पूछ लिया जाए कि तुम कहां जाना चाहते हो। पागल तो पागल हैं। उनसे पूछा, तो वे कहने लगे, हमें कहीं जाना नहीं है, हम तो यहीं रहना चाहते हैं। उनको लाख समझाया कि तुम यहीं रहोगे, जाना कहीं नहीं है, मगर तुम जाना कहां चाहते हो, हिंदुस्तान में कि पाकिस्तान में? उन पागलों ने सिर पीट लिया। वे बोले कि हम सोचते थे हम पागल हैं, पागल आप हो! अगर जाना कहीं नहीं है, यहीं रहना है, तो हम जाएं क्यों हिंदुस्तान या पाकिस्तान? तो हम यहीं रहेंगे।
उनको लाख समझाया कि भाई! तुम यहीं रहोगे। बिल्कुल जहां हो, जिस कमरे में हो, जैसे हो वैसे ही रहोगे; मगर जाना कहां है? अब तुम सोचते हो, कभी-कभी तुम्हारी राजनीति की भाषा पागलों से भी ज्यादा पागल होती है।... जाना कहां है? पहुंच गए होंगे राजनेता--चूड़ीदार पाजामा पहन कर, गांधी टोपी पहन कर। पूछने लगे होंगे कि जाना कहां है? आखिर पागलों ने कहा कि हमें कहीं नहीं जाना है। और हमें यह बात नहीं समझ में आती कि रहना भी यहीं और जाना कहां है! ये दोनों बातों में विरोध है। हमें कहीं नहीं जाना है। इस बकवास में हमें पड़ना ही नहीं है। हम मजे में हैं।
आखिर एक ही उपाय समझ में आया कि पागलखाने के बीच में एक दीवार खींच दी जाए--आधा पागलखाना पाकिस्तान में चला जाए, आधा पागलखाना हिंदुस्तान में चला जाए। तो उन्होंने बीच में दीवाल खींच दी। अभी भी पागलखाना वहीं है और पागल कभी-कभी दीवार पर चढ़ जाते हैं और दूसरी तरफ के मित्रों से पूछते हैं कि भाई, बड़ा मजा है, तुम भी वहीं हम भी यहीं, तुम पाकिस्तान में चले गए, हम हिंदुस्तान में चले गए! कुछ भी न हुआ, सिर्फ एक दीवार बीच में खड़ी हो गई। अब तुम्हें इस तरफ आना हो तो पासपोर्ट चाहिए। हमें उस तरफ आना हो तो पासपोर्ट चाहिए। दीवार के बिना सब मजा था, क्यों दीवार खड़ी की है?
आज अगर पाकिस्तान में कोई रहता है, तो वह तुम्हारा मित्र नहीं रहा। कल
तक मित्र था, आज मित्र नहीं है।
.जमीन एक है। यहां कोई विदेशी नहीं है। ये टुच्ची धारणाएं हैं, ये ओछे ख्याल हैं। छोड़ो! आदमी बस आदमी जैसा है। उसमें जो फर्क है, बहुत ऊपरी-ऊपरी है। उसकी बुनियाद में कोई फर्क नहीं है। वही घृणा, वही वैमनस्य, वही द्वेष। और जिस दिन जीवन बदले, तो वही आनंद, वही सच्चिदानंद! अंधेरे में रहो, अज्ञानी रहो, तो जीवन में वैमनस्य है, घृणा है, नरक है। जागो तो जीवन में आनंद ही आनंद है।

क्या तुम सोचते हो कि धर्म पर किसी की बपौती है? इस देश में ऐसा कई लोगों को ख़याल है। मेरे पास लोग आकर कहते हैं कि यह देश तो पुण्य-भूमि है। जैसे और सारे देश पाप-भूमि तो एक हैं! भूमि तो एक है; कैसी पुण्य-भूमि, कैसी पाप-भूमि! भूमियां थोड़े ही पुण्य और पाप की होती हैं; व्यक्तियों के चित्त पाप और पुण्य के होते हैं।
मनुष्य को एक कर के देखना शुरू करो, तो ही मनुष्य की समस्याएं हल की जा सकती हैं, नहीं तो समस्या तो हल होती ही नहीं।
ऐसा ही समझो... जरा सोचो एक ऐसी दुनिया... और ऐसी दुनिया भी हो सकती है, आदमी इतना पागल है इसलिए मैं कल्पना की बात नहीं कर रहा हूं... तुम गए डाक्टर के पास, उसने तुम्हारी जांच की और कहा कि तुमको मुसलमान कैंसर हो गया है, या तुमको हिंदू कैंसर हुआ है, या तुमको ईसाई कैंसर हुआ है। जरा सोचो, ऐसा अगर डाक्टर कहे कि तुमको हिंदुस्तानी कैंसर हुआ है, तुमको हिंदुस्तानी दवा लगेगी; कि तुमको पाकिस्तानी कैंसर हुआ है, तुमको पाकिस्तानी दवा लगेगी--तो तुम उस डाक्टर को पागल समझोगे न! और अगर ऐसा हो जाए कि कैंसर भी देशों में विभाजित हो जाए, देशी-विदेशी हो जाए, औषधियां भी विभाजित हो जाएं, तो फिर मनुष्य की दुनिया से बीमारी का मिटना असंभव है। हम जानते हैं कि कैंसर सिर्फ कैंसर है और द्वेष केवल द्वेष है, घृणा केवल घृणा है, अज्ञान केवल अज्ञान है, उसके कोई विशेषण नहीं हैं। बीमारी-बीमारी है। और इलाज एक ही है। मगर पहले तुम बीमारी को एक समझो तो इलाज एक हो पाए। अगर तुमने बीमारी को अलग-अलग बांट लिया तो इलाज भी अलग-अलग हो जाएंगे। और वहीं से गड़बड़ शुरू हो जाती है।
जरा देखो, विज्ञान एक है सारी दुनिया का। तुम यह नहीं कह सकते कि यह पुण्य-भूमि है, तो यहां सौ डिग्री पर पानी गर्म क्यों हो, यहां अठान्नवे पर होगा! सारी दुनिया में सौ डिग्री पर होता है, पुण्य-भूमि पर इतनी तो कृपा परमात्मा की होनी चाहिए कि दो डिग्री कम पर हो जाए। इतने भक्त यहां हो चुके हैं, इतने ज्ञानी, इतने अवतार... इतनी कृपा न होगी, इतनी विशेष रियायत नहीं होगी?
नहीं, पानी सौ डिग्री पर ही गर्म होगा और स्वर्ग में भी --और पुण्यात्मा करेगा तो भी और पानी करेगा तो भी। विज्ञान एक है। और ठीक से समझो, अगर बाहर का विज्ञान एक है और भीतर का विज्ञान अलग-अलग कैसे हो सकता है? जब बाहर का विज्ञान एक है तो भीतर का विज्ञान अलग-अलग कैसे हो सकता है? जब बाहर तक का विज्ञान एक है जहां कि अनेक का साम्राज्य है, तो भीतर का विज्ञान तो एक होगा ही, अनिवार्यतया एक होगा, क्योंकि वहां तो एक का ही विस्तार है।
जिस दिन पृथ्वी से संकीर्ण परिभाषाएं गिर जाएंगी--हिंदू की, मुसलमान की, ईसाई की, भारतीय की, पाकिस्तानी की, जापानी की--उस दिन जीवन का परम धन्यभाग होगा। उस दिन हम समस्याओं को सीधा-सीधा हल कर पाएंगे। उस दिन समस्या को हम उसकी जड़ में पकड़ जाएंगे। अभी तो हम पत्तों पर उलझे रहते हैं। और पत्तों पर ही विवाद हो जाता है, जड़ पर पहुंच ही नहीं पाते।
मेरी घोषणा है कि आदमी एक है। और यह तुम्हारी नासमझी नहीं, दुर्भाग्य नहीं, अधोगति नहीं। यह भी धारणा है लोगों की, कि पहले का आदमी बहुत ऊंचा था, पहुंचा हुआ था, पवित्र था, धार्मिक था; आज का आदमी पापी, कलयुगी! तुम्हें पहले के आदमी के संबंध में कुछ पता नहीं। तुम्हारे पास कुछ कहानियां आ गई हैं, उन्हीं कहानियों के आधार पर तुम पुराने आदमी का हिसाब लगा लेते हो। जैसे, तुम बुद्ध को जानते हो और बुद्ध के हिसाब से तुम सोचते हो कि सारे लोग बुद्ध जैसे थे! तुम राम को जानते हो, तुम सोचते हो राम जैसे सारे लोग थे! तो फिर रावण कहां से आया? और अगर बुद्ध जैसे ही सब लोग थे तो बुद्ध पर पत्थर किसने मारे? बुद्ध पर पागल हाथी किसने छोड़े? बुद्ध पर चट्टानें किसने सरकाईं? बुद्ध को.जहर किसने दिया?
आदमी सदा ऐसा रहा है, लेकिन कठिनाई यह है कि जैसे ही यह बीसवीं सदी समाप्त हो जाएगी--दो हजार साल के बाद, अ ब स का तो कुछ पता नहीं रहेगा, लेकिन कुछ नाम रह जाएंगे--रामकृष्ण का, रमण का, कृष्णमूर्ति का--नाम रह जाएंगे। और लोग सोचेंगेः आहा... कैसा सतयुग था! बस ऐसा ही आदमी सदा रहा है। पीछे तो

कुछ स्वर्ण नाम याद रह जाते हैं। लेकिन वे स्वर्ण नाम तो इक्के-दुक्के हैं; उनसे समाज नहीं बनता। अभी तक बुद्धों का कोई समाज दुनिया में नहीं पैदा हुआ है। सच तो यह है कि हम हजारों साल बुद्ध की याद ही इसलिए करते हैं कि वे अनूठे थे, अकेले थे। अगर बहुत बुद्ध होते तो कौन याद करता? उनकी याद्दाश्त ही यह बताती है कि वे बिल्कुल अनूठे थे और सारे लोग उनसे विपरीत रहे होंगे।
अंधेरी रात में तारे खूब चमक के दिखाई पड़ते हैं; उजाली रात में उतने नहीं चमकते। तारे वहीं के वहीं हैं। और दिन में भी तारे आकाश में होते हैं, कहीं जाते नहीं। कहां जाएंगे? पाकिस्तान जाएंगे कि हिंदुस्तान जाएंगे? वहीं के वहीं। लेकिन सूरज की रोशनी में खो जाते हैं। रात बड़ी अंधेरी रही होगी, जिसमें बुद्ध का तारा चमका। अगर ऐसा समाज रहा होता, जहां सभी लोग पुण्यात्मा थे, बुद्ध का तारा कैसे चमकता? दिन की तरह होती बात। बुद्ध खो गए होते।
पांच हजार साल हो गए हैं, हम कृष्ण को भूले नहीं हैं। क्यों? इसलिए कि कृष्ण ऐसे होंगे जैसे हजारों-हजारों कांटों में एक गुलाब का फूल खिले। उसे भूला नहीं जा सकता। लेकिन अगर हजारों गुलाब के फूल हों, गुलाब के फूलों की खेती हो रही हो, अगर सबके होठों पर बांसुरी हो जीवन की और सबके पैरों में घुंघरू बंधे हों आनंद के और सबके कंठ से गीत फूट रहा हो--कौन कृष्ण को याद रखेगा? अगर हरेक के पास जीवन नृत्य कर रहा हो, रास रचा हो, कौन कृष्ण को याद करेगा? उनकी याद ही इसीलिए हर गई है! इसलिए यह भूल कर मत सोचना कि तुम कलियुग में रह रहे हो।
एक बड़े मजे की बात है कि दुनिया की पुरानी से पुरानी किताब भी यही कहती है कि पहले के लोग अच्छे थे। दुनिया में एक भी किताब ऐसी नहीं है जो कहती हो, आज के लोग अच्छे हैं। वेद भी यही कहते हैं, पुरखों की याद करते हैं। लाओत्सु ने ढाई हजार साल पहले अपनी किताब में यही लिखा है कि कैसे थे वे दिन, जब पृथ्वी पर धर्म का राज्य था!
रामराज्य सदा अतीत में रहा है। आदमी सदा ही अतीत में देखता रहा है कि
सब सुंदर था, क्योंकि विकृत तो खो जाता है, सुंदर चमकता रह जाता है। फूल-फूल बच जाते हैं, उनकी सुगंध बच जाती है; कांटे मर जाते हैं, मिट्टी में खो जाते हैं। मगर कांटों की भीड़ है। तुम जब आज को देखते हो तो जलता हुआ दीया तो कभी एकाध दिखाई पड़ता है, बाकी तो सब बुझे दीये हैं, कतारों पर कतारें बुझे दीयों की हैं। इन बुझे दीयों में एक जलता हुआ दीया पता भी नहीं चलता। लेकिन बाद में उसी जलते दीये की याद रह जाएगी, बुझे दीये तो खो जाएंगे। इसलिए मनुष्य को बड़ा गलत गणित बैठ गया है। आदमी ऐसा का ही ऐसा है।
आदमी दुनिया में दो तरह के होते हैं--या तो सोए हुए आदमी या जागे हुए आदमी। सोए हुए आदमी हमेशा कलियुग में हैं, जागे हुए आदमी हमेशा सतयुग में होते हैं। तुम जब भी जाग जाओ, तभी सतयुग। जब तक तुम सोए रहे, तब एक कलियुग। तुम्हारे पास बैठा आदमी सतयुग में हो सकता है--अगर जागा हो, अगर होशपूर्वक जी रहा हो। तुम्हारी एक-तरफ सतयुगी बैठा हो सकता है, दूसरी तरफ कलियुग बैठा हो सकता है। और ऐसा ही नहीं, यह भी हो जाता है कि सुबह जब तुम उठते हो तो हो सकता है सतयुग में होओ, सांझ होते-होते कलियुग में पहुंच जाओ। एक क्षण सतयुग, दूसरे क्षण कलियुग हो जाता है। जब तुम क्रोध से भर जाते हो, कलियुग हो गया। जब तुम करुणा से भर जाते हो, सतयुग हो गया।
एक झेन फकीर के पास एक सम्राट मिलने गया। सम्राट ने कहा कि मैंने स्वर्ग-नरक की बहुत चर्चा सुनी है; मैं पूछने आया हूं--यह स्वर्ग क्या, यह नरक क्या? और मैं सिर्फ बात सुनने नहीं आया। बातें तो मैंने बहुत सुनी हैं, मैं कुछ प्रमाण चाहता हूं।
वह फकीर भी मस्त फकीर था। उसने कहा, प्रमाण! जरा अपनी शक्ल भी देखी है आइने में? ऐसी गंदी शक्ल का मैंने आदमी नहीं देखा।
सम्राट से बोलाः मक्खियां भिनभिना रही हैं, स्नान किए हो?
सम्राट तो आगबबूला हो गया। भूल ही गया कि दार्शनिक जिज्ञासा करने आया था। तलवार खींच ली म्यान से बाहर, उठ गई तलवार। बस गिरने ही वाली थी फकीर से सिर पर कि फकीर ने कहाः देख, यह रहा नरक! तलवार वहीं की वहीं रुक गई। आग

से जलती हुई आंखें, क्रोध, अपमान, बदला लेने का भाव... और फकीर ने कहाः देख, आंख बंद कर, देख, यही नरक है! एक क्षण में हाथ शिथिल हो गया। तलवार वापस म्यान में चली गई। सम्राट को होश आया--यह मैं क्या कर रहा हूं! चेहरे से क्रोध विदा हो गया। और फकीर ने हंस कर कहाः देख यही स्वर्ग है! स्वर्ग और नरक समय में बंटे हुए नहीं होते--हमारी मनो-दशाएं हैं, हमारी मनःस्थितियां हैं। तुम दिन में कई बार स्वर्ग से नरक तक की यात्रा करते हो। जैसे मालगाड़ी के डब्बे शंटिंग करते रहते हैं न, ऐसे तुम अक्सर स्वर्ग और नरक के बीच डोलते रहते हो। मगर यह आदत हो गई है। तुम्हें ख्याल में नहीं आता। आदमी सदा से ऐसा है। बस, अगर भेद ही करने हों तो एक ही भेद करने जैसा है, वह है--होश का भेद। और सब भेद व्यर्थ हैं। होश से भर जाओ, तो ही तुम जीवंत गुरु के निकट हो सकते हो। अगर बेहोश रहे तो मुर्दा की पूजा जारी ही रहेगी। और जो मुर्दे को पूजता है वह मुर्दा है। और जो जीवंत के पास सत्संग इकट्ठा होता है, वही जीवित है।

दूसरा प्रश्नः मैं स्वयं परमात्मा पर श्रद्धा नहीं कर पाता हूं। फिर मेरे लिए क्या उपाय है?

फिर उपाय किसलिए पूछ रहे हो? जब मंजिल की श्रद्धा नहीं है तो मार्ग क्यों पूछ रहो हो? श्रद्धा होगी... कहीं छिपी होगी अंतस्तल में, कहीं बीज की तरह पड़ी होगी। वही बीज रास्ता खोज रहा है फूटने का।
तुम्हारी बुद्धि श्रद्धा नहीं कर पाती, सच; लेकिन तुम्हारा हृदय श्रद्धा करना चाहता है। इसलिए तुम्हारे प्रश्न में एक विरोधाभास है। पहले तो कहते होः मैं स्वयं परमात्मा पर श्रद्धा नहीं कर पाता हूं। यह कौन है, जो बोल रहा है? यह तुम्हारा सिर बोला। फिर दूसरी बात तुम पूछते हो कि फिर मेरे लिए उपाय क्या है? यह तुम्हारे हृदय ने पूछा। इस एक छोटे से प्रश्न में तुम्हारे दोहरे ढंग, तुम्हारा द्वंद्व, तुम्हारा द्वैत प्रकट है। अगर ईश्वर है ही नहीं तो उपाय की जरूरत क्या? बात ही समाप्त हो गई। नहीं, लेकिन ऐसा मैंने आदमी ही नहीं पाया है अपने जीवन में, जिसे ईश्वर पर किसी न किसी तल पर भरोसा न हो। नास्तिक से नास्तिक को भी हृदय में श्रद्धा होती है। असल में उसी श्रद्धा को झुठलाने के लिए वह नास्तिक हो जाता है। हजार तर्क इकट्ठा करता है कि परमात्मा नहीं है। अगर परमात्मा नहीं है तो तर्क भी क्यों इकट्ठे करने?
जैसे मेरे कमरे में टेबल नहीं है, तो मैं इसके लिए तर्क इकट्ठे करने नहीं बैठता कि मेरे कमरे में टेबल नहीं है, इसके लिए किताब लिखूं। नहीं है तो नहीं है, बात खत्म हो गई। आज सूरज नहीं उगा, बात खत्म हो गई। अब इसके लिए तर्क क्या इकट्ठा करना है? आज वर्षा हो रही है, हो रही है।
लेकिन नास्तिक जिंदगी भर लगा देता है। अक्सर तो ऐसा होता है, आस्तिक
तो थोड़ा-बहुत समय देता है, वह तो गया भागा, जल्दी से सिर पटका मंदिर में, लौटा। उसने सस्ती तरकीब निकाल ली है परमात्मा से बचने की... कि देखो, याद रखना, आए थे मंदिर, सिर पटका था, फूल चढ़ाए थे। भागा... भूल-भाल गया। नास्तिक तो उलझा ही रहता है। चौबीस घंटे! नास्तिक जितनी ऊर्जा परमात्मा पर व्यय करता है उतनी आस्तिक नहीं करते। मामला क्या है? जिंदगीभर एक ही बात सोचता है।
एक नास्तिक मेरे पास आया। उसने कहाः मैं तीस साल से निरंतर इस कोशिश में लगा हूं कि ईश्वर नहीं है। मैंने कहाः यह भी हद हो गई! तीस साल तो अगर सिद्ध करने में लगते कि ईश्वर है, तो न भी होता तो सिद्ध हो जाता। तीस साल में न होता तो बना लेते, पैदा कर लेते। तीस साल! आधा जीवन, ईश्वर नहीं है, यह सिद्ध करने में लगा दिया। फिर जीओगे कब?
जब वह आदमी आया तो उसकी उम्र ही कोई साठ वर्ष की रही होगी।... तो जीवन तुम्हारा ऐसे ही गया। जरा सोचो तो कैसी मूढ़ता कर ली है। "नहीं" के ऊपर जीवन को निछावर कर दिया! नहीं था तो बात खत्म हो गई थी, इस पर एक क्षण भी व्यय करने जैसा नहीं था। लेकिन तीस साल व्यय किए हैं तो तुम्हारे मनोविज्ञान की खबर मिलती हैः तुम्हारे गहरे अंतस्तल में श्रद्धा का बीज है। तुम

चाहते हो कि हो ईश्वर, लेकिन तुम्हारी बुद्धि स्वीकार नहींं करना चाहती, क्योंकि ईश्वर को स्वीकार करना हो तो अपनी बुद्धि को इनकार करना पड़ता है। ईश्वर को स्वीकार करने में एक ही अड़चन हैः अहंकार मरता है। अगर ईश्वर
है तो मैं नहीं हूं। यह है अड़चन। अगर ईश्वर है तो मुझे मिटना होगा। अगर ईश्वर नहीं है तो फिर मैं हूं। ये दोनों एक साथ नहीं हो सकते।
ईश्वर का अर्थ होता हैः समग्रता, सागर! अहंकार का अर्थ होता हैः सागर में उठी छोटी सी लहर। लहर चाहती है कि सिद्ध कर दे सागर नहीं है, मैं ही हूं। क्योंकि अगर सागर है तो फिर लहर तो क्षणभंगुर है; अभी उठी अभी गिर जाएगी।
अपने को बचाने की आकांक्षा में नास्तिकता पैदा होती है। नास्तिकता का कोई संबंध ईश्वर से नहीं है; अहंकार की सुरक्षा है नास्तिकता। अहंकार के लिए कवच है। अहंकार के लिए ढाल है। अगर ईश्वर नहीं है तो फिर अहंकार निश्चिंत भाव से पल सकता है। अगर ईश्वर है तो मुझे झुकना पड़ेगा। अगर ईश्वर है तो किन्हीं चरणों में मुझे झुकना पड़ेगा। इसलिए तो हम ईश्वर को स्वीकार करने को राजी नहीं होते। कौन झुकना चाहता है! कोई झुकना नहीं चाहता। तुम्हारे झुकने की जिस दिन तैयारी हो जाएगी, उसी दिन ईश्वर है।
अब तुम पूछते हो कि मुझे तो श्रद्धा नहीं है, फिर मेरे लिए क्या उपाय है? तुम्हें तो श्रद्धा नहीं; जिनको श्रद्धा हो उनके पास उठो-बैठो। बस, इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है। तुम्हें तो खबर नहीं है; जिनको खबर हो, उनके पास उठो-बैठो। और एक बात का ख्याल रखना, यदि तुम्हें पता भी नहीं है कि ईश्वर है या नहीं, तो "नहीं" को मत पकड़ लेना, क्योंकि वह भी तुम्हें पता नहीं है। अपने को खुला रखना। श्रद्धा नहीं है, ठीक; लेकिन अश्रद्धा मत बना लेना। इन दोनों बातों में भेद है।
जो आदमी कहता है ईश्वर है--यह श्रद्धा। जो आदमी कहता है ईश्वर नहीं है--यह अश्रद्धा। और हो सकता है दोनों झूठ हों। अक्सर दोनों झूठ होते हैं।
न तो आस्तिक को पता है उसके होने का न नास्तिक को पता है उसके न होने का।
जिज्ञासु रहना! कहना, मुझे पता नहीं है। लेकिन मैं राजी हूं; अगर हो, तो जानने को राजी हूं; अगर हो तो खोजने को राजी हूं। आंखें खुली रखूंगा। आंखें बंद नहीं करूंगा।
शुतुरमुर्ग मत बन जाना, जो आंखें बंद करके रेत में अपना सिर गड़ा लेता है। आंखें खुली रखना और मैं तुमसे कहता हूं आंखें खुली रहें तो श्रद्धा निर्मित अपने-आप हो जाएगी। क्योंकि खुली आंख रहे तो श्रद्धा से बचने का उपाय ही नहीं है। अगर आंख खोल कर देखते रहो, देखते रहो, तो तुम हैरान हो जाओगे--चारों तरफ परमात्मा मौजूद है। वृक्षों में वही हरा है, नदियों में वही तरंगित है। तारों में वही चमकता है। लोगों में वही बोल रहा है। तुम में भी वही है, तुम्हारे पड़ोसी में भी वही है। और आंखें खुली रखने के लिए सबसे ज्यादा सुगम उपाय हैः जिसकी आंखे खुली हों उससे दोस्ती बना लो। इसे संत सुंदरदास ने सत्संग कहा है, संत-समागम कहा है।
वृक्ष की अंधेरी-घनी छाया में
छोटा सा मंदिर है,
मंदिर में छोटी सी प्रतिमा है,
प्रतिमा के समक्ष एक
छोटा सा दीया जलता है,
अनजाने ही बहुत भला लगता है; देश-काल, जाने किन दूरियों का संस्कार जगता है!
मूढ़ मन, कर नमन!
यदि भगवान नहीं,
यहां पड़े पत्थर को, मान कर, किसी अनजान की
यहां जगी
मूक चढ़ी श्रद्धा को ध्यानकर!

कोई आकर मंदिर में एक दीया जला गया है। तुम्हें भगवान पर भरोसा नहीं है। दीया तो भला लगता है? दीये का अंधेरे में जलना तो भला लगता है। तुम्हें भगवान पर भरोसा नहीं, मंदिर का यह सन्नाटा तो भला लगता है? मंदिर की यह शांति तो भली लगती है? यह स्वच्छता तो भली लगती है? इस पर तो भरोसा आता है? और फिर कोई इस दीये को चढ़ा गया है, उसमें श्रद्धा नहीं होगी। उसकी श्रद्धा को ही नमन कर लो। इस दीये के जलते हुए प्रकाश को नमन कर लो। इस मंदिर के सन्नाटे और शांति को नमन कर लो। छोड़ो भगवान को!
मैंने तुमसे कहाः जो लोग नहीं नमन करना चाहते वे लोग भगवान को इनकार करते हैं। जो लोग नमन करने को राजी हैं, उनके सामने भगवान प्रकट हो जाता है। तुम किसी भी भांति नमन तो सीखो! कहीं भी झुकने की कला सीखो। जहां भी तुम्हें कुछ विराट दिखाई पड़े, झुको! हिमालय के उत्तुंग शिखरों को देख कर हिमाच्छादित... झुको! अगर हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों को देख कर भी तुम्हारे भीतर घुटनों पर झुक जाने का भाव नहीं उठा तो तुम आदमी नहीं हो। गए हो दूर जंगल में, वृक्षों की हरियाली, जमीन की सोंधी-सोंधी सुगंध, अगर तुम्हारे मन में यह भाव नहीं उठा कि झुक जाऊं घुटनों पर, तो तुम मनुष्य नहीं हो; तो तुम्हारे जीवन में काव्य नहीं है; तो तुम्हारे पास हृदय नहीं है जो धड़कता हो। तुम एक मशीन हो, एक यंत्र हो।
आकाश तारों से भरा देख कर कभी हाथ जोड़ लेने का मन नहीं होता? तो फिर तुम्हारे भीतर होश ही नहीं है। तुम्हें सौंदर्य का बोध नहीं है। कभी नाचो, जब वृक्ष नाचते हों हवाओं में! देखते... अभी वर्षा हो रही है। कभी हो जाओ खड़े वस्त्र-विहीन, आकाश के तले। गिरने दो वर्षा को। नाचो! मत परमात्मा की बात उठाओ। परमात्मा से क्या लेना-देना है? वर्षा की गिरती बूंदें अपने में परम आनंद हैं। छोड़ो परमात्मा को। मगर उसी नाच में तुम्हें परमात्मा की झलक मिलनी शुरू हो जाएगी।
मैं तुमसे यह नहीं कहता कि परमात्मा हो तभी नाचा जा सकता है। नाचा जा सकता है, उसके और हजार बहाने खोजे जा सकते हैं। प्रेम में नाचो। किसी सुंदर व्यक्ति को देख कर नाचो। किसी की गहरी झील जैसी आंखों को देख कर नाचो। अवाक होना सीखो। चकित होना सीखो। जो चकित होना जानता है, परमात्मा से ज्यादा देर दूर नहीं रह सकेगा। आश्चर्य-विमुग्ध होना सीखो। जिसके जीवन में आश्चर्य जिंदा है उसके जीवन में अपने आप परमात्मा चला आएगा। कब चला आएगा, पग-ध्वनि भी नहीं सुनाई पड़ेगी।
मैं भी परमात्मा की मान कर नहीं चला था, इसलिए तुमसे आश्वस्त होकर कहता हूं कि परमात्मा को मानने की कोई जरूरत नहीं है। मैं नास्तिक की तरह चला था। परमात्मा नहीं है, ऐसा मुझे ज्यादा अहसास होता था, बजाय इसके कि परमात्मा है। लेकिन मैंने आंखें खुली रखीं। और एक बात मुझे पहले से साफ रही--कि नहीं हो तो उसकी चिंता क्या करनी है? उस पर विचार ही क्यों करना? उस दिशा में जाना ही क्यों?
परमात्मा नहीं है... छोड़ो धर्म को, काव्य तो है! कोई कविता तुम्हारे हृदय को गुदगुदाती है। संगीत तो है! वीणा के तार जब छेड़ दिए जाते हैं, तुम्हारे भीतर कोई मल्हार उठती या नहीं? कोई बांसुरी बजाता है, तुम्हारे भीतर कुछ हूक उठती है या नहीं? कोयल बोलने लगती है, तुम्हारे भीतर कुछ हिलता-डुलता या नहीं? ईश्वर नहीं है, बात खत्म हो गई; मंदिर-मस्जिद तुम्हारे लिए नहीं है। लेकिन यह प्रकृति उसका मंदिर है।
मेरे लेखे आश्चर्य परमात्मा की दिशा में सबसे पहला कदम है, श्रद्धा नहीं। क्योंकि श्रद्धा तो तब होगी जब अनुभव होगा। बिना अनुभव के करोगे, झूठी होगी, दो कौड़ी की होगी--विश्वास होगी, श्रद्धा नहीं होगी। और विश्वास का कोई मूल्य नहीं है। श्रद्धा बहुमूल्य है, विश्वास उधार है। तुम्हारे पिता मानते हैं, सो तुमने मान लिया। विश्वास के पीछे डर है, कि कहीं नरक में न सड़ना पड़े। विश्वास के पीछे लोभ है कि मानेंगे तो स्वर्ग में बैकुंठ में जगह मिलेगी। विश्वास चालबाजी है। विश्वास आदमी की राजनीति है। श्रद्धा बड़ी और बात है। विश्वास से श्रद्धा का कोई भी संबंध नहीं। विपरीत हैं दोनों।

अक्सर ऐसा होता है, विश्वासी कभी श्रद्धालु नहीं हो पाता। खोज ही नहीं करता। मानकर ही बैठ रहा। फिर श्रद्धालु कौन होता है? जिसके भीतर आश्चर्यविमुग्ध होने की क्षमता शेष रहती है; जो छोटे बच्चों की भांति विस्मय में डूब जाता है।
छोटे बच्चों को फिर से गौर से देखना। एक तितली उड़ जाती है और बच्चा दौड़ पड़ा। भूल गया सब काम-धाम। तुम लाख चिल्लाओ कि होमवर्क पड़ा है, बच्चे को तितली ने मोहित कर लिया। चला तितली के पीछे। तितली के रंगों ने बच्चे को घेर लिया। एक फूल खिला है और बच्चा ठिठक जाता है। एक पक्षी बोलने लगता है और बच्चे के कान तत्पर हो जाते हैं। शिक्षक कहता है स्कूल मेंः "क्या बाहर ध्यान लगा रहे हो? यहां ब्लैक-बोर्ड की तरफ देखो।" और बाहर कोयल बोल रही है!
मेरे खुद के दिन स्कूल के दिनों में अक्सर बाहर बीते। क्योंकि शिक्षक मुझे नाराज होकर बाहर ही कर दे। बाहर ही खड़े रहो। लेकिन मैं प्रसन्न था बाहर खड़े होने में। क्योंकि बाहर सच में बहुत सुंदर था। मैंने उसे दंड नहीं माना। मैंने उसे पुरस्कार ही माना। एक शिक्षक मुझे निरंतर बाहर कर देते थे तो मैं कक्षा में आने के पहले ही उनसे पूछ लेता, अगर बाहर ही करना है तो मैं बाहर ही रहूं।
बच्चे जैसी विस्मय-विमुग्धता चाहिए, श्रद्धा अपने-आप पक जाएगी। श्रद्धा विस्मय-भाव का ही अंतिम परिणाम है; उसका ही फल है। विस्मय रहे तो जीवन में प्रेम बहता रहता है। सब तरफ बहता रहता है! आकाश में उठे मेघ उस प्रेम को पुकार लेते हैं। सागर में उठी लहरें उस प्रेम को पुकार लेती हैं।
उस प्रेम को निरंतर निमंत्रण मिलते रहते हैं परमात्मा के द्वारा। अनेक-अनेक ढंग से परमात्मा चिट्ठियां लिखता है तुम्हें, प्रेम-पाती लिखता है। मगर उनको ही मिलती हैं वे पातियां जिनका विस्मय-भाव जीवित रहता है। जिनका विस्मय मर गया, उनके हृदय जड़ हो जाते हैं। फिर उनकी जिंदगी दो कौड़ी की है। फिर वे धन इकट्ठा करते हैं, पद इकट्ठा करते हैं, और कुछ भी नहीं पाते। खाली के खाली मर जाते हैं। उनके भीतर वे बिल्कुल खोखले होते हैं। डालडा के खाली डिब्बे--ड़ालडा भी नहीं और डब्बे भी पिचक गए। क्योंकि जब खाली हों तो कितनी देर तक बिना पिचके रह सकते हैं।
एक लघु अणु है,
कि जो साधो उसे--सधता नहीं है;
शक्ति का उद्दाम निर्झर है
कि जो बांधो उसे--बंधता नहीं है
कहां है विश्राम? --श्रम भर है।
एक लघु पल है
कि जो रोको उसे --रुकता नहीं है छूटता है तीर पीछे तीर
पर वह काल का तूणीर है--चुकता नहीं है। एक गति अविराम क्रम भर है।
किंतु श्रम कीशृंखला के
और क्रम की अर्गला के बीच
हैं कुछ प्यार के क्षण भी--
कि जो बीते नहीं होते
अश्रु के ये बिंदु ऐसे सिंधु हैं
रीते नहीं होते
बीतना चुकना कि भ्रम भर है।
कहां है विश्राम? --श्रम भर है।
एक गति अविराम क्रम भर है।
बीतना चुकना कि भ्रम भर है।
जिसके जीवन में प्रेम नहीं है उसके जीवन में बस बीतना और चुकना, आना
और जाना, जन्मना और मरना... । जीवन नहीं घटता। जीवन तो केवल उनके जीवन में घटता है, जहां प्रेम है, जहां विस्मय-विमुग्ध आंखें हैं, जहां चकित हृदय है। चौंका! बच्चे जैसा!

घास के ऊपर जमी हुई ओस को सरकती हुई बूंद पर्याप्त है--श्रद्धा से भर जाने के लिए।
जमीन से फूटता हुआ नया-नया अंकुर पर्याप्त है--श्रद्धा से भरने के लिए।
श्रद्धा के लिए कमियां नहीं हैं आधारों की। अगर कमी कहीं होगी तो तुम्हारे विस्मय-विमुग्ध भाव में होगी। और मनुष्य की सबसे बड़ी मूढ़ता है कि वह ज्ञानी बन जाता है। और जितना ज्ञानी बन जाता है उतना विस्मय मर जाता है। फिर वह हर चीज को जानता है। फिर उससे कुछ भी पूछो उसके पास उत्तर है। ऐसी कुछ जगह खोजो, जहां तुम निरुत्तर हो जाते हो। बस वहीं से श्रद्धा आएगी। वे ही द्वार हैं श्रद्धा के।
प्रेम ऐसी जगह है, जहां से श्रद्धा उमगती है, आती है। क्योंकि प्रेम ज्ञान में नहीं समाता। प्रेम को अब तक जाना नहीं जा सका है। लोग जीए, लोगों ने अनुभव किया; लेकिन जाना नहीं जा सका है। प्रेम की कोई परिभाषा भी नहीं कर सका है कि प्रेम क्या है। अगर तुम्हारी जिंदगी में गणित ही गणित है, तो कहां विश्राम? --श्रम भर है। और अगर तुम्हारी जिंदगी में दौड़ ही दौड़ है... एक लघु पल है
कि जो रोको उसे--रुकता नहीं है
छूटता है तीर पीछे तीर
पर वह काल का तूणीर है--चुकता नहीं है
एक गति अविराम क्रम भर है।
फिर तुम एकशृंखला हो पलों की। एक पल गया, दूसरा पल आया। एक जन्म गया, दूसरा जन्म आया। फिर तुम एक कड़ी मात्र हो पलों की। फिर तुम समय मात्र हो। समय की एक धार मात्र हो। लेकिन तुम्हारे जीवन में कोई अर्थ नहीं। एक अर्थहीन क्रम... ।
किंतु श्रम कीशृंखला के
और क्रम की अर्गला के बीच
हैं कुछ प्यार के क्षण भी--
कि जो बीते नहीं होते
अश्रु के ये बिंदु ऐसे सिंधु हैं
रीते नहीं होते
बीतना चुकना कि भ्रम भर है।
प्रेम के क्षणों में ही परमात्मा का प्रमाण मिलता है। तर्क प्रमाण नहीं देता, प्रेम प्रमाण देता है। प्रेम करो। किसी को भी प्रेम करो। पत्नी को करो, पति को करो। बच्चों को करो, पर प्रेम करो!
यहां लोग मेरे पास आ जाते हैं। वे कहते हैं, यह कैसा आश्रम है, कि यहां लोग एक-दूसरे को गले भेंटते दिखाई पड़ते हैं, आलिंगन करते दिखाई पड़ते हैं! उनकी दृष्टि में आश्रम का अर्थ होता है--रूखे-सूखे, मुर्दा लोग झाड़ों के नीचे बैठे हुए हैं। मर ही गए हैं। कुछ नहीं बचा है उनके भीतर। बस बैठे हैं, राह देख रहे हैं, कब परमात्मा बैकुंठ में बुला ले। और इनको क्या करेगा बैकुंठ में? थोड़ा सोचो तो! कोई बैकुंठ खराब करना है? बैकुंठ की रौनक मिटानी है? तुम्हारे सब महात्मा अगर बैकुंठ में पहुंच जाएं तो बैकुंठ की दुर्दशा हो जाएगी। कोई बिछा लेगा कांटे वहां और लेट जाएगा; कोई जमा लेगा धूनी, कोई लपेट लेगा राख; कोई सिर के बल शीर्षासन करने लगेगा; कोई योगासन करने लगेंगे; कोई उपवास करने लगेंगे; कोई देह को सुखा लेंगे।
तुम्हारे जरा सब महात्माओं को इकट्ठा तो करलो, शिव जी की बारात होगी।
वह शिव जी भी इनको बरदाश्त कर जाते हैं गांजे में, नहीं तो वह भी नहीं कर सकते।... दम मारो दम! वह पिए बैठे रहते हैं। वह शायद इसीलिए पीते हों कि यह बारात से कौन... इसमें एक से एक महात्मा हैं बारात में। जितने इरछे-तिरछे आदमी हो सकते हैं, अस्वस्थ, रुग्ण, विक्षिप्त... ।
यहां लोग आ जाते हैं तो उनको बहुत हैरानी होती है। यहां प्रेम प्रार्थना है। यहां विस्मय-विमुग्ध छोटे-छोटे बच्चों की भांति जीना, साधना है। और मैं किसी भी प्रेम के विपरीत नहीं हूं, क्योंकि मेरी दृष्टि

में सारे प्रेम एक ही इंद्रधनुष के हिस्से हैं। देह का जो प्रेम है वह भी परमात्मा के प्रेम की तरफ ले जाने का एक उपाय है। पहली सीढ़ी, पहला सोपान। प्रेम की बहुत ऊंचाइयां हैं, लेकिन शुरू तो वहां से करना पड़ेगा जहां तुम हो। पति हो, पत्नी को प्रेम करो। पत्नी हो, पति को प्रेम करो। मित्र को प्रेम करो। बेटे को प्रेम करो। मां को प्रेम करो। प्रेम करो! और ऐसा गहन प्रेम करो, इतना उद्दाम प्रेम करो, कि जब तुम अपने बेटे को प्रेम करो, तुम्हारा प्रेम बेटे की देह को पार कर के उसकी आत्मा को देखने लगे। पारदर्शी हो, इतना गहरा हो कि प्रवेश कर जाए उसके अंतर्तम में। तुम्हारे बेटे में तुम्हें परमात्मा मिल जाएगा। तुम्हारी पत्नी में तुम्हें परमात्मा मिल जाएगा। तुम्हारे पति में तुम्हें परमात्मा मिल जाएगा। और जब तक प्रेम में न मिलेगा, तब तक पत्थरों में मिलने वाला नहीं है। और जिसको प्रेम में मिल जाएगा, उसे पत्थरों में मिल जाएगा। जब देह में मिल सकता है, तो देह पत्थर ही तो है, मृत्तिका है, मिट्टी है।
तुम पूछते होः "मैं स्वयं परमात्मा पर श्रद्धा नहीं कर पाता हूं।"
छोड़ो भी परमात्मा को! "फिर मेरे लिए उपाय क्या?" तुम विस्मय करो! तुम ज्ञान को झड़ा दो!
डी. एच. लारेंस एक बगीचे में घूमता था। एक छोटा बच्चा साथ था। लारेंस महत्वपूर्ण व्यक्तियों में से एक था इस सदी में। उन थोड़े से लोगों में, जो कभी भी नहीं समझे जाते! उन थोड़े से लोगों में, जिन्हें हमेशा लोग गलत समझते हैं। उस बच्चे ने... जैसे बच्चों की आदतें होती हैं, बच्चे ही ऐसे अदभुत प्रश्न पूछ सकते हैं। बूढ़े तो कचरा प्रश्न पूछते हैं। उनके प्रश्न भी झूठे होते हैं, किसी किताब में से होते हैं। उस बच्चे ने चकित भाव से चारों तरफ देखा, हरियाली और हरियाली! उसने लारेंस से पूछा कि सुनिए, आप बड़े कवि हैं न! एक बात का उत्तर देंगे? वृक्ष हरे क्यों हैं? वॉय दि ट्री.ज आर ग्रीन?
अब क्या उत्तर दोगे? अच्छा हुआ, लारेंस कवि था। अच्छा हुआ कि लारेंस कोई वैज्ञानिक नहीं था। अच्छा हुआ कि लारेंस कोई प्रोफेसर नहीं था, अच्छा हुआ कि पंडित नहीं था; नहीं तो पंडित तो छोड़ते ही नहीं। वह कहता है कि क्लोरोफिल के कारण वृक्ष हरे हैं। बात खत्म हो जाती है। किस बुरी तरह मर जाती है! और अगर बच्चा रुक जाता वहीं तो बात खत्म हो गई थी। बच्चे आमतौर से रुकते नहीं। अगर तुम कहो कि क्लोरोफिल के कारण वृक्ष हरे हैं, तो बच्चा पूछेगा, क्लोरोफिल हरा क्यों है? अगर बच्चा सच में बच्चा है, तो इतनी जल्दी रुकने वाला नहीं है।
लारेंस थोड़ी देर खड़ा रहा; उसने वृक्ष देखे, बच्चे को देखा और उसने कहा
कि भाई वृक्ष हरे हैं, क्योंकि हरे हैं। बच्चे ने कहाः यह बात ठीक है। बिल्कुल ठीक है। वृक्ष हरे हैं क्योंकि हरे हैं। ट्रीज आर ग्रीन, बीकाज दे आर ग्रीन।
यह कोई उत्तर तो नहीं है। मगर यही उत्तर है! इसमें एक विस्मय-विमुग्ध भाव है। इसमें एक अस्वीकार है रहस्य का। वृक्ष हरे हैं क्योंकि हरे हैं! जिस दिन तुम विस्मय-विमुग्ध भाव से देखोगे जगत को, धीरे-धीरे कब किस अनजान क्षण में बिना द्वार पर दस्तक दिए श्रद्धा हृदय तुम्हारे हृदय में आ जाएगी, तुम्हें पता भी नहीं चलेगा।

तीसरा प्रश्नः आप नित नई-नई बातें कहे चले जाते हैं। इससे बड़ी उलझन होती है--क्या मानें और क्या न मानें?

उलझन तो होगी ही। कसूर मेरा नहीं। कसूर तुम्हारा है। तुम मानने के पीछे पड़े हो।
तुम कहते होः "क्या मानें, क्या न मानें?"
जो मानने के पीछे पड़ा है, वह तो बहुत मुश्किल में पड़ जाएगा, मेरे पास। क्योंकि मैं मानने के तुम्हें आधार ही नहीं दे रहा हूं। मैं तो मानने के सब आधार छीने ले रहा हूं, ताकि जानना घट सके। मैं तो विश्वास खंडित कर रहा हूं, ताकि श्रद्धा जन्मे।

मानना! तो अर्थ हुआ--आप कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे, माने लेते हैं।
लेकिन इस मानने से तुम्हारा हृदय-कमल कैसे खिलेगा? यह तो जबरदस्ती हुई।
यह तो पाखंड हुआ। मानने वाले सब पाखंडी हो जाते हैं। इसलिए तथाकथित विश्वासी--वे हिंदू हों, कि मुसलमान कि ईसाई--सब पाखंडी होते हैं। सिर्फ जानने वाले पाखंडी नहीं होते।
मैं तो जानकर ऐसी बातें कहता रहता हूं, ताकि तुम मान न सको। इसलिए मैं असंगत हूं--जान-बूझ कर। एक दिन कहूंगा कुछ, दूसरे दिन ठीक उससे उलटी बात कहूंगा। क्योंकि मैं जानता हूं तुम्हारी मनो-दशा। तुम जानने में उत्सुक नहीं हो, तुम मानने में उत्सुक हो। मानना सस्ता है, उधार है।
मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैंः "हम ध्यान क्यों करें? अब आप तो पहुंच गए। अब आप जो कहते हैं, ठीक ही कहते होंगे।" लेकिन मेरा देखा तुम्हारा देखा तो नहीं है! और ये वे ही लोग हैं, अगर मैं इनसे कहूं, "तो फिर ठीक, प्यास जब मुझे लगती है, मैं पानी पी लेता हूं, अब तुम मत पीना"--तो राजी नहीं होते! कहते हैं, यह कैसे होगा? मैं पीऊंगा तो मेरे कंठ की प्यास बुझती है; तुम जानोगे तो तुम्हारे हृदय की प्यास बुझेगी। तुम इसको ही तो मान कर न रुक जाओगे, मुझे क्या जरूरत है भोजन की! किसी ने भोजन कर लिया है, इससे क्या होगा? तुम पेट को ऐसे धोखा तो न दे पाओगे! मैं स्नान करूंगा, तो मैं ताजा होऊंगा। और वह तो ताजगी का अंतस में अनुभव होता है, वह तुम मुझे स्नान करते हुए भी देख कर नहीं कर पाओगे। कैसे? वह तो भीतर का अनुभव है। मैं नाचूंगा तो मैं जानूंगा कि भीतर क्या घटता है।
लेकिन यह हमारी सदी, बहुत कुछ दर्शकों की सदी हो गई है। लोग देख रहे हैं। लोग बड़ी अजीब स्थिति में हैं। बस लोग दर्शक हो गए हैं। दो आदमी कुश्ती लड़ते हैं--लाखों लोग देखने पहुंच जाते हैं! कुश्ती का मजा करना हो तो कुश्ती करो, देखने में क्या जाना है! दो आदमी कुश्ती करेंगे, उनके भीतर क्या फलित होगा--तुम्हें तो पता चलेगा नहीं बाहर से। फुटबॉल का मैच हो रहा है, लाखों लोग इकट्ठे हैं। क्रिकेट का मैच हो रहा है, बस चले लोग। लोग दर्शक हो गए हैं। टेलीविजन के सामने बैठे हैं घंटों, जैसे गोंद से चिपका दिए गए हों, उठ ही नहीं सकते। अटके हैं वहीं। आंखें, टकटकी लगी हुईं। फिल्म में बैठे हुए हैं जाकर। कोई अभिनेता प्रेम कर रहा है, वे देख रहे हैं। तुम प्रेम कब करोगे? देखते ही रहोगे? और यह अभिनेता भी झूठा प्रेम कर रहा है, इसको भी पैसे मिले हैं। यह भी कोई सच्चा प्रेम नहीं कर रहा है। यह भी दिखावा कर रहा है। यह मजा तो देखो, कैसा खेल हो रहा है! एक दिखावा कर रहा है। कुछ लेना-देना नहीं है उसे प्रेम से। और तुम देखकर बड़े आनंदित हो रहे हो।
ज्यांपाल सार्त्र के एक उपन्यास में एक आदमी कहता है कि जल्दी ही वे दिन आएंगे, जब लोग प्रेम भी अपने नौकरों से करवा लेंगे। कौन झंझट करेगा! जिनके पास सुविधा है, वे खुद ही प्रेम करने की झंझट उठाएंगे? रख लिया एक निजी सचिव। वह रहा साथ-साथ। मिली पत्नी, उसने जल्दी से आलिंगन कर लिया-- तुम्हारी तरफ से गरीब आदमी खुद करते हैं, अमीर आदमी नौकर रख सकता है। वही चल रहा है। ज्यांपाल सार्त्र का पात्र झूठी बात नहीं कह रहा है। वही हो रहा है। लोग फिल्म देख कर रस ले लेते हैं। लोग दर्शक हो गए हैं।
बुद्ध को ज्ञान हुआ, तुमने कहाः अहा! देख आए, दर्शन कर आए बुद्ध के--हो गया। ऐसे नहीं होगा।
जीवन को जीओ। जीवन को उसकी समग्रता में जियो। मैं नहीं चाहता कि तुम मेरी बातें मानो। तुम्हारी बड़ी उत्सुकता है। मुझसे लोग आकर कहते हैं कि एक छोटी सी गुटिका लिख दें। जैसी ईसाइयों की होती है न, छोटी सी गुटिका। उसमें सब सार की बातें आई होती हैं--क्या मानो, क्या करो, कितनी आज्ञाएं हैं? सब उसमें, छोटी सी गुटिका में आ जाती है। छोटी सी गुटिका लिख दें, जिससे कि सब साफ-साफ पता हो जाए कि आपकी धारणा क्या है।
मेरी कोई गुटिका नहीं हो सकती। गुटिकाएं सब झूठी हो जाती हैं, क्योंकि लोग उनको मानने लगते हैं। मैं तुम्हें मानने के लिए अवसर नहीं देना चाहता। तुम मानोगे, जैसा ही मैं देखूंगा तुमने कोई बात मानी, मैं

तुम्हारे पैर के नीचे की जमीन खींच लूंगा। मैं फिर तुम्हें छोड़ दूंगा अधर में।
मैं चाहता हूं ऐसी घड़ी आए, जिस दिन तुम जानो। इसलिए रोज नई बात कहता हूं। रोज बदलता हूं। संगति की मुझे चिंता नहीं है। मैं कोई दार्शनिक नहीं हूं। यह तुम मेरे पास बैठे हो तो तुम किसी विचारक के पास नहीं बैठे हो। यहां एक प्रयोग चल रहा है। यह एक प्रयोगशाला है।
मुझसे लोग आकर पूछते हैं कि आपके आश्रम में जगह-जगह गॉर्ड क्यों खड़े हैं? मुक्तानंद के आश्रम में तो गॉर्ड नहीं हैं।
वहां कुछ हो ही नहीं रहा है, गॉर्ड की जरूरत ही नहीं है। यह प्रयोगशाला है। यहां जीवन बनाए और बदले जा रहे हैं। यहां बाजार नहीं है कि हर कोई चला आए। जितनी बहुमूल्य बात हो रही है, उतने ही गॉर्ड बढ़ते जाएंगे। जैसे-जैसे यह प्रयोग गहरा होगा, गॉर्ड बढ़ते जाएंगे। क्योंकि तमाशबीनों की यहां कोई जगह नहीं रह जाएगी। तमाशबीन उपद्रव हैं। उनकी मौजूदगी खलल बनती है। कुछ लोग ध्यान कर रहे हैं और पचास आदमी आकर तमाशबीन की तरह खड़े हो गए। ये उनको ध्यान नहीं करने देंगे। इनकी मौजूदगी, इनकी बातें, इनका व्यवहार; उनके ध्यान में बाधा बन जाएगा। गार्ड तो यहां बढ़ते जाएंगे, क्योंकि जैसे- जैसे यह प्रयोग गहरा होगा, और जैसे-जैसे तुम और अंतर्यात्रा पर जाओगे, वैसे-वैसे मैं दुनिया से तुम्हें बिल्कुल तोड़ दूंगा। जब तक तुम प्रयोग के भीतर हो, तब तक दुनिया अलग, तुम अलग, ताकि कोई व्यवधान न हो।
मुक्तानंद के आश्रम में हो क्या रहा है? वहां गॉर्ड की जरूरत क्या है? वहां तो इस बात की फिकर है कि कोई भी आ जाए ऐरा-गैरा-नत्थू-खैरा, आओ! यहां ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरों से बचने का उपाय है। उनको नहीं आने दिया जाएगा। यहां तो जो जीवन को रूपांतरित करने के लिए आतुर हैं, उसको भी बामुश्किल प्रवेश है! उसके लिए भी हर तरह की कठिनाई है। क्योंकि उतनी परीक्षा देने को जो राजी नहीं है, आगे की परीक्षाओं में बहुत मुश्किल हो जाएगी।
पुराने दिनों में तिब्बत के आश्रम में जब कोई प्रवेश होता था तो प्रवेश के पहले ही सारी परीक्षाएं उसे देनी पड़ती थीं।
एक छोटा बच्चा एक आश्रम में प्रवेश होने को गया। उसके पिता चाहते थे-- बचपन से ही उसमें एक प्रतिभा थी, अनूठी प्रतिभा थी, ज्योति थी, चमक थी--कि वह संसार में खो न जाए, उसकी ज्योति बढ़े, उसकी चमक बढ़े, उसकी प्रतिभा निखरे। उसे आश्रम भेजा। उसे आश्रम के द्वार पर बिठा दिया गया और कहा गया, आंख बंद रखो। उसकी उम्र ज्यादा से ज्यादा दस साल है। आंख बंद रखो। आंख खोलना मत, चाहे कुछ भी हो जाए। अगर आंख खोली, तो प्रवेश नहीं मिलेगा। और कितने देर बाद तुम बुलाए जाओगे, कुछ कहा नहीं जा सकता। घंटे लग सकते हैं, दिन भी लग सकते हैं। मगर यह तुम्हारी परीक्षा है--धैर्य की, संतोष की, स्वीकार की।
वह बच्चा आंख बंद करे बैठा है। अब छोटे बच्चे को आंख बंद करके बैठना बड़ी कठिन बात है, बहुत कठिन बात है! सबसे कठिन बात यही है। जैसे बड़े आदमियों को आंख खोल कर बैठना कठिन बात है। हजार चीजें बुलाती हैं। एक कुत्ता निकल गया भौंकता हुआ। अब उसका दिल होता है कि देख तो लें, किसका कुत्ता है! क्या मामला है! कैसा कुत्ता है! सड़क पर झगड़ा होने लगा, पास से लोग गुजर रहे हैं, लोग अंदर-बाहर आ-जा रहे हैं, पर वह आंख बंद किए बैठा है दरवाजे पर। वह हिलता-डुलता नहीं, वह पत्थर की तरह बैठा है। अठारह घंटे बाद बुलाया गया। भूखा-प्यासा वह बैठा है आंख बंद किए। कोई उसको देख रहा है कि वह आंख खोलता नहीं। अठारह घंटे उस बच्चे ने आंख बंद रखी! गहन प्रमाण दे दिया कि कोई साधारण बच्चा नहीं है। फौलाद का बना है। जरूरत पड़ेगी तो आग से गुजर सकेगा। गुरु स्वयं आया और उस बच्चे को हाथों में उठा कर लेकर भीतर गया। स्वीकार हो गया।
यहां तो गार्ड होंगे। यहां कोई बाजार नहीं है, नुमायश नहीं है। यहां
हर किसी के लिए निमंत्रण नहीं है। यहां जीवन की प्रयोगशाला है। क्या तुम सोचते हो, जहां अणुबम बनाए जाते हैं वहां मुक्तानंद के आश्रम जैसी हालत होगी, कि जिसकी मरजी हो भीतर चला जाए, और आ जाए और जिसको जो करना हो करे।... कि लोग घूम रहे हैं तमाशबीन की तरह कैमरे लिए, उतार रहे हैं फोटुएं। जहां

अणुबम बनाए जाते हैं वहां मीलों तक किसी का प्रवेश नहीं हो सकेगा। क्या तुम सोचते हो, आत्मा की कीमत अणु से कम है? क्या तुम सोचते हो आत्मा का विस्फोट अणु के विस्फोट से छोटा विस्फोट है?
मुक्तानंद इत्यादि के आश्रमों में जो रहा है, कूड़ा-करकट है। उसका कोई मूल्य नहीं है। जहां मूल्य की कोई बात घट रही हो, जहां हीरों पर चमक लाई जा रही हो, वहां तो पहरेदार होंगे। वहां हर किसी का प्रवेश नहीं होगा। वहां तो अड़चन होगी।
मैं यहां एक प्रयोग करने को उत्सुक हूं। जो मुझे हुआ है चाहता हूं तुम्हें भी हो जाए। हो सकता है। तुम्हारे भीतर पड़े बीज को देखता हूं। तुम्हारी क्षमता को देखता हूं। तुम्हारी गरिमा को देखता हूं। और यह भी देखता हूं कि तुम्हें इसका कुछ पता नहीं है। तुम मानने को उत्सुक हो।
तुम कहते होः "आप जल्दी से हमें बता दें कि क्या सत्य है, हम मानेंगे।" तुम लकीर के फकीर होना चाहते हो। मेरी उत्सुकता तुम्हें लकीर के फकीर बनाने की नहीं है। मैं तुम्हें अपने अनुयायी नहीं बनाना चाहता। मैं तुम्हें अपने जैसा बनाना चाहता हूं। भेद को तुम ठीक से समझ लेना। मैं नहीं चाहता कि बौद्ध हो जाओ--मैं चाहता हूं तुम बुद्ध हो जाओ। मैं नहीं चाहता कि तुम जैन हो जाओ--मैं चाहता हूं तुम जिन हो जाओ। मैं नहीं चाहता हूं तुम जीसस हो जाओ--मैं चाहता हूं तुम क्राइस्ट हो जाओ।
सिद्ध क्या करना है फिर मुझे? फिर मुझे कुछ सिद्ध भी नहीं करना है। मैं कुछ सिद्ध नहीं कर रहा हूं यहां--कि ईश्वर है या नहीं है, कि आत्मा है या नहीं है? यह सब बातचीत की बातचीत है, हवाओं का खेल है।
सिद्ध क्या करना है मुझेः
जो आज गाता हूं, कल नहीं गाता
आज का गीत कल
कंठ में ही नहीं आता
जिद भी नहीं है कोई
कि दोहराऊंगा नहीं
आज की कही बात या
कल नहीं बैठूंगा आज से ठीक उलटा ही कुछ कल के दिन
आज की बात कही बात या
कल नहीं कह बैठूंगा आज से ठीक उलटा ही कुछ कल दिन के लिए।
सिद्ध कुछ करना नहीं है मुझे
इसलिए सहज है कह देना
अपनी कही हुई किस-किस बात पर अड़ूं कितनी उलटी-सीधी बातें कर चुका हूं
जब से बातें की हैं
मैंने दिनों तक की रातें की रातें की हैं रातें की हैं मैंने दिनों तक की
इसलिए युगों को तो छोड़ो,
छिनों तक की गांठें मैं नहीं बांधता खुश हैं मेरी इस मसलहत से
रात और दिन और सपने
और मैं भी इसीलिए मुक्त हूं
दिन और रात और सपने
रोज नये होकर आते हैं
कल नहीं सुना पाए थे जो वे गाकर
उसे आज गाकर सुनाते हैं!
तुम चिंता ही मत करो कि मैंने कल क्या कहा था। तुम कल से मेरे आज को तौलो मत। तुम मेरा प्रयोजन समझो। ये वक्तव्य तुम्हें कुछ सिद्धांत देने को नहीं हैं। ये वक्तव्य तुम्हारी साधना का अंग हैं। ये तुम पर चोटें हैं। इस तरह तुम्हारे ज्ञान को गिराया जा रहा है, ताकि विस्मय मुक्त हो जाए।

तो कभी मैं आस्तिक के खिलाफ बोलता हूं, क्योंकि आस्तिक हैं यहां लोग।
कभी मैं नास्तिक के खिलाफ बोलता हूं, क्योंकि कुछ नास्तिक भी आ जाते हैं।
तब तुमको लगेगा, मैं एक-दूसरे के विपरीत बातें कह रहा हूं। लेकिन मैं एक ही काम कर रहा हूं।
बुद्ध एक सुबह एक गांव में प्रवेश किए। एक आदमी ने पूछाः क्या ईश्वर है? बुद्ध ने कहा कि नहीं, बिल्कुल नहीं! उसी दिन दोपहर एक दूसरे आदमी ने पूछाः ईश्वर है या नहीं? बुद्ध ने कहाः है, और सिर्फ ईश्वर है! और उसी सांझ एक तीसरे आदमी ने पूछा कि ईश्वर के संबंध में कुछ कहेंगे? और बुद्ध चुप रहे, कुछ न बोले। बोले ही नहीं। आंख बंद कर ली। वह आदमी भी आंख बंद करके थोड़ी देर बैठा रहा फिर चरण छूकर चला गया।
आनंद--बुद्ध का शिष्य--इन तीनों घटनाओं को देखा। उसके भीतर तो धमाचौकड़ी मच गई, जैसी तुम्हारे भीतर मची है। उसने कहाः यह तो हद हो गई कि एक ही दिन में, सुबह कहा "नहीं", दुपहर कहा "है" और सांझ बोले ही नहीं, चुप ही रह गए, न "हां" कहा न "ना" कहा, वक्तव्य नहीं दिया! वक्तव्य न देने का अर्थ है कि अवक्तव्य है। मौन से उत्तर दिया। ये तो तीन बातें हो गईं--बड़ी विपरीत हो गईं! इससे ज्यादा विपरीत और क्या होगा! उसको रात नींद न आए। वह करवट बदले। बुद्ध ने कहाः आनंद! आज तू बड़ी करवट बदलता है, बात क्या है? वह उठ कर बैठ गया। उसने कहाः आप बदलवा रहे हैं। धमाचौकड़ी मची है। मेरे चित्त में बड़ा विभ्रम पैदा हो गया है। फिर ईश्वर है या नहीं?
बुद्ध ने कहाः आनंद! तीनों उत्तरों से कोई भी उत्तर तेरे लिए दिया नहीं गया था, तूने लिया क्यों? वे तीनों प्रश्नों में से कोई भी तेरा प्रश्न था नहीं, तो उत्तर तूने क्यों लिया? बीच से, हाथ से चीजें नहीं झपटनी चाहिए। जिसको दिया गया हो, जिसके लिए दिया हो, उसके लिए है।
मगर आनंद ने कहा कि मैं बहरा नहीं हूं। मैंने कुछ लिया-करा नहीं, लेकिन सुनाई तो मुझे पड़ा ही। मैं मौजूद था। दुर्भाग्य मेरा कि मैं मौजूद था। सुबह भी सुन लिया, दोपहर भी सुन लिया, शाम भी सुन लिया। अब मेरे भीतर यह मुश्किल खड़ी हो गई है कि मामला क्या है? सच्चाई क्या है? वस्तुतः यथार्थ क्या है?
बुद्ध ने कहाः मैंने एक ही उत्तर दिया तीनों को। तेरे समझने में भूल है।
आनंद ने कहाः अब और आप उलझा रहे हैं। एक ही उत्तर दिया था। क्योंकि सुबह जिसने पूछा था, वह आस्तिक था--झूठा आस्तिक, जैसे आस्तिक होते हैं। वह चाहता था मेरी गवाही। वह चाहता था मैं भी स्वीकृति दे दूं उसकी मान्यता को, ताकि अपनी मान्यता पर एक और हीरा जड़ दे, एक और। मोहर लगा दे; जाकर घोषणा करने लगे कि मैं जो कहता हूं वह ठीक है, बुद्ध भी यही कहते हैं। वह अपने अहंकार के लिए समर्थन चाहता था। और मैं उसका दुश्मन नहीं हूं; उसके अहंकार को समर्थन नहीं दे सकता। वह अपने अज्ञान का समर्थन चाहता था। उसे ईश्वर का कोई पता नहीं है, लेकिन मानता है। वह अपनी मान्यता का समर्थन चाहता था। मैं किसी की मान्यता का समर्थन नहीं कर सकता हूं। मान्यता का तो अंत करना है। जहां मानने का अंत होता है वहां जानने का प्रारंभ है। इसलिए मैंने जोर देकर कहा कि ईश्वर? नहीं है! बिल्कुल नहीं है! और दोपहर जो आदमी आया था वह उससे उलटा, आदमी था, वह मानता था कि ईश्वर नहीं है। वह उसकी मान्यता थी कि ईश्वर नहीं है। मैंने उसकी भी मान्यता छीनी। कहा कि ईश्वर है--और ईश्वर ही है! और सांझ जो आदमी आया था, उसकी कोई भी मान्यता नहीं थी। इसलिए उसे उत्तर देने की कोई जरूरत न थी। सत्संग में बैठ गया। वह उत्तर मांगने आया ही नहीं था। वह तो मेरा स्वाद लेने आया था। वह मेरे शून्य का संगीत सुनने आया था। वह चाहता था घड़ी भर को मुझसे जुड़ जाए, तार से तार मिल जाए। उससे मैंने अपने तार मिलाए इसलिए वह पैर छूकर गया। वह अहोभाव से भरा हुआ गया। मैंने उसे यही उत्तर दिया है कि मौन ही उत्तर है। मौन ही परमात्मा है। पूछने-ताछने की बात नहीं, मान्यता की बात नहीं, सिद्धांत की बात नहीं।
मैं जो भी वक्तव्य दे रहा हूं, वे कुछ सिद्ध करने के लिए नहीं हैं-- सिर्फ तुम्हारे भीतर से मान्यताओं को छीन लेने के लिए हैं। मेरे वक्तव्य

फावड़ों की तरह हैं, तुम्हारे भीतर से ज्ञान के कचरे को हटाने में लगे हैं। मैं चाहता हूं तुम्हें शून्य कर दूं, तुम्हारा ज्ञान सब छिन जाए।
रमण महर्षि से एक जर्मन विचारक ने पूछाः मैं आपके पास कुछ सीखने आया हूं। रमण ने कहाः फिर तुम गलत जगह आ गए। कहीं और जाओ। क्योंकि यहां सिखाते नहीं, सीखे को भुलाते हैं। हम तो सीखे हुए जो आते हैं, उनकी सिखावन छीन लेते हैं, ताकि वे खाली हो जाएं, कोरे हो जाएं, बच्चों जैसे निर्दोष हो जाएं। उसी निर्दोषता में अनुभव होता है।
रीते हो जाओ, तो पाहुना आ जाए। घर खाली करो ज्ञान से तो सत्य का अवतरण हो।
अपने जी की बात क्या कहूं!
रीते घर पाहुन पग धारे।
अपनी आज बिसात क्या कहूं!
रीते घर पाहुन पग धारे।
जब तुम्हारा घर बिल्कुल रीता होता है--ज्ञान से, त्याग से--सब से रीता होता है, जब तुम निपट रीतापन होते हो--इसको बुद्ध ने शून्यता कहा है, या पतंजलि ने समाधि कहा है; जब तुम्हारे भीतर कोई विचार की तरंग नहीं होती--न आस्तिक न नास्तिक; जब तुम निस्तरंग होते हो...
अपने जी की बात क्या कहूं!
रीते घर पाहुन पग धारे।
अपनी आज बिसात क्या कहूं!
आतप बीते आंगन में जब
पहिले शीत समीरण आए
मदिर गंध माटी की बिखरी
अंग-अंग अंकुर उकसाए
प्रीतम के इस प्रथम परस को कहो सखी, मैं बात क्या कहूं? सूरज डूबा, किरन सिधारी
तिमिर घिरा, तारे भरमाए
मेघरथी, आकाश-पथी तुम
तड़ित-मुकुट माथे धर आए
इस उजियारी अंधियारी को
रात कहूं? री, रात क्या कहूं! मनभावन उपवन में आए
बरसाए पावन करुना-कण
मैं अपने में रह न सकी री
उमड़ पड़े नैनों में सावन
दृग-कोरों की रस-रिमझिम को
यदि न कहूं बरसात, क्या कहूं!
मैं बरस रहा हूं। इसमें न कोई तर्क है न कोई संगति है। उमड़ पड़े नैनों में सावन
दृग-कोरों की रस-रिमझिम को
यदि न कहूं बरसात क्या कहूं!
अपने जी की बात क्या कहूं!
रीते घर पाहुन पग धारे
अपनी आज बिसात क्या कहूं!
मैं नहीं हूं अब, अब वही है। तुम बीच में मुझे लो ही मत। जितना मेरे करीब आओगे उतना ही पाओगे--मैं नहीं हूं, वही है। और जितने उसको देखोगे, उतना ही पाओगे--तुम भी वही हो। तत्वमसि श्वेतकेतु! श्वेतकेतु, तू भी वही है!
छीनना है लेकिन बहुत कुछ कूड़ा-कचरा। तुम खूब भरे हो। यही भराव तुम्हारी बाधा है। तुम रीते हो जाओ, धन्यभाग का दिन आ जाए! वह परम चाहत का दिन आ जाए!

मानने न मानने की चिंता ही न करो। मुझे जब सुनते हो, तो ऐसे सुनो जैसे संगीत को सुनते हो। मानने न मानने की तो बात नहीं उठती न! तुम वीणा-वादक से यह तो नहीं कहते कि कल कुछ बजाया, आज कुछ बजाया--अब मैं क्या मानूं, क्या न मानूं? तुम वीणा-वाद से यह तो नहीं कहते। तुम कहते होः कल भी बजाया, आज भी बजाया। कल भी रस आया, आज भी रस आया। रसधार बह रही है, रसधार सघन हो रही है। तुम मुझे ऐसे सुनो, जैसे संगीत को सुनते हो।
तुम मुझे ऐसे सुनो, जैसे जल-प्रपात की ध्वनि को सुनते हो, निर्झर को सुनते हो। तुम मुझे ऐसे सुनो जैसे आकाश में बादलों की गड़गड़ाहट को सुनते हो। तुम मुझे शब्दों की भांति मत सुनो। धीरे-धीरे तुम्हें शब्द के भीतर निःशब्द का संगीत अनुभव में आने लगेगा। धीरे-धीरे बोलने में तुम्हें अबोल दिखाई पड़ने लगेगा, दृश्य में अदृश्य का अनुभव होने लगेगा। और वही अनुभव प्रयोजन है। उसके लिए ही यह प्रयोगशाला है।

आखिरी प्रश्नः ओशो! ऐसी कौन सी शक्ति या प्रेरणा है जो मनुष्य को भगवान के करीब लाने में सहायक होती है?

राजेंद भाटिया! जीवन पर्याप्त है।
और जीवन के दो ढंग हैं और दोनों परमात्मा के करीब लाते हैं। जीवन का दुख भी आदमी को परमात्मा के करीब लाता है और जीवन का सुख भी। और जो होशियार हैं वे दोनों पंखों का उपयोग कर लेते हैं। उन्हें दुख भी पास लाता है, सुख भी पास लाता है। जीवन का दुख बताता है कि हम परमात्मा से दूर हैं, इसलिए दुखी हैं।
उसमें कैसा दुख? हम अकड़ गए हैं। हम अहंकारी हो गए हैं। हमने अपने को पृथक मान लिया है। वही हमारे दुख का कारण है। हमारे सारे दुख के मूल में अहंकार है, अस्मिता है। जीवन का दुख बताता है कि हम परमात्मा से छिटक गए हैं दूर हो गए हैं। बीमारी बताती है कि हम प्रकृति से दूर हट गए हैं। स्वास्थ्य बताता है कि हम प्रकृति के पास आ गए।
सुख-दुख मापदंड हैं, संकेत हैं। दुख बताता है कि तुम जो कर रहे हो वह कुछ ऐसा है जो तुम्हें परम प्रकृति से दूर ले जा रहा है। दुख इस बात की सूचना दे रहा है कि तुम दूर हट रहे हो प्रकृति से। धर्म से दूर हट रहे हो। धर्म से दूर हटने वाले को दंड नहीं दिया जाता--दूर हटने में ही दंड मिल जाता है। और जब जीवन में सुख होता है तो जानना कि तुम जाने-अनजाने परम प्रकृति के करीब आ गए हो। परम प्रकृति यानी परम धर्म, या कहो परमात्मा। ये सब नामों के भेद हैं। जो तुम्हें रुचिकर हो, वही कहो। अगर वैज्ञानिक बुद्धि के आदमी हो, कहो परम प्रकृति! अगर धार्मिक बुद्धि के आदमी हो, भत्ति-भाव से भरे, कहो परमात्मा! अगर गणित पर बहुत भरोसा है तो कहो--धर्म, नियम, ताओ! ये सब उसी एक की तरफ इशारे हैं अलग-अलग तरह के लोगों के, अलग-अलग ढंग के लोगों के।
तो पहली तो बात, दुख उसके करीब लाता है।
यह जिंदगी है या कोई तूफान है।
हम तो इस जीने के हाथों मर चले।।
जरा अपनी जिंदगी को गौर से तो देखो! हम तो इस जीने के हाथों मर चले।
तुम्हें दिखाई पड़ता या नहीं दिखाई पड़ता? यहां तुम मर ही रहे हो। तो जरूर यह असली जिंदगी नहीं हो सकती। असली जिंदगी की तलाश करनी होगी। यहां कांटों के सिवा तुम्हें मिला क्या?
है ये दुनिया एक ही अफसाना-ए-नाकामे-शौक।
जिसने जो चाहा अलग तजवीज उंवां कर दिया।।
यह जिंदगी आकांक्षाओं और विफलताओं की एक लंबी कहानी है, और कुछ भी नहीं।
है यह दुनिया एक ही अफसाना-ए-नाकामे-शौक।
यहां सब की आकांक्षाएं भ्रष्ट होती हैं, नष्ट होती हैं, खंडित होती हैं। यहां सभी हारते हैं। यहां जीतता कोई भी नहीं। सिकंदर भी यहां हारते

हैं। मौत खबर दे देती है आखिरी हार की। मौत के आने के पहले कितने उछलो- कूदो, जीत के बहाने कर लो, झंडे फहरा लो, मौत आती है सब झंडे गिर जाते हैं।
है यह दुनिया एक ही अफसाना-ए-नाकामे-शौक।
जिसने जो चाहा अलग तजवीज उन्वां कर दिया।।
फिर तुम शीर्षक कुछ भी दे दो इस जिंदगी को, मगर इस जिंदगी में सिवाय हार के और क्या है? इस जिंदगी में सिवाय दुख के और क्या है? यह जिंदगी का एक पहलू है।
हां खाइयो मत फरेबे-हस्ती।
हरचंद कहें कि है, नहीं है।।
कितना ही भरोसा आंखें दिलवाएं कि है, धोखा मत खा जाना। आंखों से जो दिखाई पड़ता है वह अक्सर सपना है। मन जो कहता है, दौड़ो इसके पीछे-- मृगमरीचिका है।
हयात इक मुस्तकिल गम के सिवा कुछ भी नहीं।
खुशी भी याद आती है तो आंसू बनके आती है।।
यहां तो सब दुख से भरा हुआ है, सब आंसुओं से सना हुआ है।
है "सैफ" बस इतना ही तो अफसाना-ए-हस्ती
आए थे परेशान, परेशान गए हम।।
और कहानी क्या है जिंदगी की? --आए थे परेशान, परेशान गए हम।।
जिंदगी का यह दुख देखो। जिंदगी के इस दुख के घाव को गहन होने दो। यह छाती में भाले की तरह चुभे तो तुम्हें परमात्मा की याद आनी शुरू हो जाएगी।
तुम्हें खोजना ही पड़ेगा असली जीवन को, क्योंकि यह नकली है। नकली नकली की तरह दिखाई पड़ जाए, असली की खोज शुरू होती है। असार असार की तरह समझ में आ जाए, सार की खोज शुरू होती है।
कैदे हस्ती से कब निजात "जिगर"।
मौत आई अगर हयात गई।।
यहां तो छुटकारा ही नहीं उपद्रव से, कारागृह से छूट ही नहीं मिलती। कैदे-हस्ती से कब निजात "जिगर"
यहां अस्तित्व का कारागृह कभी छोड़ता ही नहीं तुम्हें। मौत आई अगर हयात गई। अगर जीवन गया तो मौत आई। मौत गई तो फिर जीवन आया। जीवन गया तो फिर मौत आई। तुम जीवन और मौत के इस चक्कर में घूम रहे हो--जन्म और मरण के चक्कर में, आवागमन में।
तो पहली तो बात यह है कि जिंदगी की व्यर्थता देखो। अभी परमात्मा की बात मत उठाओ। अभी तो तुम जहां हो वहां से ही विचार शुरू करो, जिंदगी का नरक देखो। तुम्हारी जिंदगी में कांटे ही कांटे हैं।
वो चीज ऐ गम गुसार जिसने हर एक इंसां को फूंक डाला।
तुझे शिकायत है मौत थी वो मुझे गुमां है हयात होगी।।
जिंदगी है जिसने लोगों को बर्बाद किया, मौत नहीं। मौत भी तो जिंदगी का आखिरी कदम है, और क्या?
एक तो यह उपाय है, जिससे परमात्मा की तलाश शुरू होती है। एक दूसरा उपाय हैः जीवन का आनंद देखो, जीवन की खुशियां देखो, जीवन का रस देखो। दोनों यहां मिश्रित हैं। कांटे ही कांटे नही हैं, फूल भी खिले हैं।
कोई कली जहां खिल रही है
वहीं एक फूल भी मुर्झा रहा है।
मुर्झाते फूल को देखो, यह भी परमात्मा की याद दिलाएगा, कि मौत जल्दी आने वाली है; उसके पहले कुछ शाश्वत पर पैर जमा लो। जल्दी ही यहां का सब छिन जाएगा।... कुछ और धन कमा लो।
और दूसरी तरफ कलियां भी खिल रही हैं, तारे जगमगा रहे हैं, बच्चे किलकारी मार रहे हैं, कोयल की कूक है, वृक्षों में आनंद-मग्न हवाएं घूम रही हैं। ऐसे क्षण भी हैं। इन क्षणों को भी देखो। ये क्षण इस बात की खबर देते हैं कि जब भी तुम परमात्मा के करीब होते हो तब इन क्षणों का आविर्भाव होता है। सुबह उगते सूरज को देख कर अवाक तुम खड़े रह गए... विस्मय-विमुग्ध... ऐसा सौंदर्य! ऐसा अपार सौंदर्य! विचार थम गए। आंखों ने झपकना बंद कर दिया। खुशी फैल गई। आकाश पर ही लाली नहीं फैली, अंतराकाश पर भी खुशी फैल गई।

ये घड़ियां परमात्मा के करीब होने की घड़ियों में झुक जाओ, याद करो, धन्यवाद दो। नाम भी लेने की कोई जरूरत नहीं कि किसको धन्यवाद दे रहे हैं।
सिर्फ धन्यवाद दो। भेंट तो मिली है सुबह की सुंदर! यह ताजी हवा, ये पक्षियों के गीत, यह उगता सूरज... धन्यवाद दो! किसी अज्ञात हाथ की भेंट है।
नहीं उस हाथ का हमें पता है, लेकिन भेंट तो मिल रही है! तो भी तुम परमात्मा के निकट पहुंचने लगो।
और जो होशियार है, जो समझदार है, वह दोनों पंखों का उपयोग कर लेता है।
वह दुख से भी परमात्मा के पास पहुंचता है, वह सुख से भी परमात्मा के पास पहुंचता है। सुख से अनुगृहीत होता है, दुख से समझदार होता है। दुख से अपने को सम्हालता है, जागरूक होता है, कि अब और दुख में नहीं पड़ना है; अब ऐसी गैल नहीं चलनी है कि जिस पर दुख होता है। अब ऐसे मार्ग नहीं जाना जिस पर दुख मिलता। अब क्रोध से अपने को उठाऊंगा ऊपर। अब लोभ से अपने को जगाऊंगा। अब वासना से अपने को मुक्त करना है। इससे भी लाभ ले लेता है।
और जब कभी जीवन में प्रार्थना की घड़ी आती है, कृतज्ञता की, सौंदर्य की
रस बहता है... तो झुक जाता है धन्यवाद में। इसका भी लाभ ले लेता है। कहता है कि तेरी कृपा! जब भूल होती है तो कहता है मेरी भूल। और जब आनंद होता है तो कहता है, तेरी कृपा!
समझदार दोनों पंखों का उपयोग कर लेता है, उड़ चलता है उस अनंत की तरफ। तुम भी उड़ो। दोनों का उपयोग करो। प्रेरणाएं तो बहुत हैं। जरा आंख खोल कर देखना शुरू करो। परमात्मा बहुत ढंगों से बुला रहा है। सब इशारे उसी के हैं। सब तरफ से तुम्हें खींच रहा है। मगर तुम हो कि पत्थर और जड़ बन कर बैठे हो। तुम हिलते ही नहीं। हमने कसम खा ली है कि हिलेंगे नहीं। फिर हिलोगे नहीं तो अनंत की धार से चूकते रहोगे, उसके साथ बहो। बहाव बनो! रुको मत। अटको मत। जड़ मत बनो। बर्फ की तरह मत बनो, पिघलो!
जो चीज भी पिघला जाए, वही परमात्मा की तरफ ले जाने का उपाय है। पिघलो। हृदय तरल हो। आंखों से आंसू झरें। देह में मस्ती छाए। मन मगन हो! नाचो! गाओ! गुनगुनाओ! पहुंच जाओगे। दूर नहीं है, पास ही बैठा है। बस, प्रेम की कला आनी चाहिए।
जिसको प्रेम आ गया उसको प्रार्थना आ गई। जिसको प्रार्थना आ गई उसके पास परमात्मा अपने आप आ जाता है।
यहूदियों की पुरानी किताब तालमुद एक अपूर्व वचन उदघोषित करती है कि तुम यह मत सोचना कि तुम्हीं परमात्मा को खोज रहे हो, परमात्मा भी तुम्हें खोज रहा है। यह आग दोनों तरफ से लगी हुई है। इसलिए घबराओ मत, कुछ न कुछ होकर रहेगा। चल पड़ो, तलाशने लगो। उसका हाथ तलाशता हुआ आ ही रहा है। तुम भी तलाशने लगो तो आज नहीं कल, कल नहीं परसों, देर-अबेर दोनों हाथों का मिलन हो जाएगा। वह मिलन अपूर्व सौभाग्य का मिलन है।
अपने जी की बात क्या कहूं
रीते घर पाहुन पग धारे
अपनी आज बिसात क्या कहूं।
उस दिन तुम पाओगे, तुम कितने विस्तीर्ण हो गए! उस दिन तुम पाओगे, तुम्हारा सूनापन पूर्ण से भर गया। उस दिन तुम पाओगे, तुम्हारी गागर सागर को समा ली है। तुम्हारी बूंद में समुद्र आ गया है। फिर बूंद सागर में गिरे कि सागर बूंद में गिरे, एक ही बात है।
हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराई।
बूंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाई।।
बूंद गिर गई सागर में, अब उसे कैसे खोजें? मैं ऐसे ही परमात्मा में खो गया। यह पहला अनुभव था समाधि का। जब समाधि और गहरी हुई तो कबीर ने उसके बीस साल बाद दूसरा सूत्र लिखा--
हेरत हेरत है सखी, रह्या कबीर हिराइ।
समुंद समाना बुंद में, सो कत हेरी जाइ।।
बीस साल बाद दूसरी बात लिखी है कि हे सखि, खोजते-खोजते मैं खो गया और सागर बूंद में समा गया है। अब उसको कैसे खोजा जाए? पहले तो बूंद सागर में गिरती है, ऐसा अनुभव होता है; फिर अनुभव होता है सागर बूंद में गिर गया।

पहले तो लगता है मैं परमात्मा में गया, लीन हुआ। फिर पता चलता है परमात्मा मुझमें आ गया और लीन हो गया। ऐसे भक्त और भगवान एक हो जाते हैं। वही घड़ी सौभाग्य की घड़ी है। वही दिन है जिसको सुंदरदास ने कहा--भला दिन!
अपने जी की बात क्या कहूं
रीते घर पाहुन पग धारे
अपनी आज बिसात क्या कहूं
आतप बीते आंगन में जब
पहले शीत समीरण आए
मदिर गंध माटी की बिखरी
अंग-अंग अंकुर उकसाए
प्रियतम के इस प्रथम परस को कहो सखी, मैं बात क्या कहूं! सूरज डूबा, किरण सिधारी
तिमिर घिरा, तारे भरमाए
मेघरथी, आकाश-पथी तुम
तड़ित-मुकुट माथे धर आए
इस उजियारी अंधियारी को
रात कहूं? री, रात क्या कहूं! मनभावन उपवन में आए
बरसाए पावन करुना-कन
मैं अपने में रह न सकी, री, उमड़ पड़े नयनों में सावन
दृग-कोरों की रस-रिमझिम को यदि न कहूं बरसात, क्या कहूं!

अपने जी की बात क्या कहूं रीते घर पाहुन पग धारे
अपनी आज बिसात क्या कहूं!

आज इतना ही।

ज्योति से ज्योति जले
इक्कीसवां प्रवचन

तुमही ठाकुर तुमही दासा

संत चले दिस ब्रह्म की, तजि जगव्यवहारा।
सीधै मारग चालतैं, निंदै संसारा।।
संत कहै सांची कथा, मिथ्या नहिं बौलें।
जगत डिगावैं आइकैं, तो कबहूं ना डोलैं।।
जे-जे कृत संसार के, ते संतनि छांड़।
ताकौ जगत कहा करै, पग आगै मांड़े।।
जे मरजादा बेद की, ते संतनि भेंटी।
जैसे गोपी कृष्ण कौं, सब तजिकरि भेंटी।।
एक भरोसे राम कै, कछ शंक न आनै।।
जन सुंदर सांचै मतै, जग की नहिं मानैं।।
मुझि वेगि मिलहु किन आइ मेरा लाल रे।
मैं तेरै बिरह बिवोग फिरौं बेहाल रे।।
हौं निसदिन रहौं उदास तेरै कारनै।
मुझे बिरह-कसाई आइ लगा मारनै।।
इस पंजर मांहै पैठि बिरह मरोराई।
जैसे बस्तर धोबी ऐंठि नीर निचोरई।
मैं कासनि करौं पुकार तुम बिन पीव रे।
यहु बिरहा मेरी लार दुखी अति जीव रे।।
अब काहे न करहु सहाइ सुंदरदास की।
बाल्हा, तुमसौं मेरी आइ लगी है आसकी।।

आरती कैसैं करूं गुसाईं। तुमही व्यापी रहै सब नईं।।
तुमही कुंभ नीर तुम देवा, तुम ही कहियत अलख अभेवा।
तुम ही दीपक धूप अनूपं, तुमही घंटा नाद स्वरूपं।।
तुम ही पाती पुहुप प्रकासा, तुमही ठाकुर तुमही दासा।
तुम ही जल थल पावक पौना, सुंदर पकरि रहे मुख मौना।।

तमसा का पूर
अगम औ" अकूल
गलबल अपार
डूबे आर-पार
बह गए अधार
ढह गए कगार
शिखर औ" कछार
सभी एक सार
खोए सांझ भोर
मिटे ओर-छोर
दिग्भ्रम रव घोर
कहां, रे, किस ओर?
सघन अंधकार
गहन अहंकार
लहर फनाकार
अतुलित विस्तार
भय का संचार
नाश की कतार
उझ का संहार
आई मझधार!
वक्र भंवरजाल
नक्र की उछाल

करो, रे, सम्हाल
असमय अकाल
टूट रही ताल
ओ, रे, महाकाल!

मनुष्य एक अमावस की रात है। एक गहन अंधकार! और जो मनुष्य रह कर ही समाप्त हो जाता है, उसे ज्योति के दर्शन ही नहीं हो पाते। और ऐसा नहीं था कि अंधकार में ज्योति के बीज नहीं थे--बीज थे! बीज साथ लेकर ही आए थे, लेकिन बीज कभी फूटे नहीं, अंकुरित नहीं हुए। ज्योति जलनी थी, जली नहीं। यही मनुष्य का संताप है।
संताप का एक ही अर्थ होता हैः तुम जो होने को पैदा हुए हो अगर न हो पाए,
तो संताप होगा। और तुम जो होने को पैदा हुए हो अगर हो पाए, तो जीवन में संगीत होगा, उत्सव होगा। और उत्सव हो जीवन में तो ही संतुष्टि है। उत्सव हो जीवन में तो ही प्रार्थना की संभावना है, तो ही धन्यवाद दे सकोगे! सुंदरदास के वचन आरती पर पूरे हो रहे हैं। जीवन में ही आरती पूरी हो, तभी वचनों में भी आरती पूरी हो सकती है, अन्यथा वचन झूठे होंगे, पाखंड होंगे। प्रार्थना तो बहुत लोग करते हैं, लेकिन सच्ची प्रार्थना कभी ही होती है, मुश्किल से होती है। लोगों की प्रार्थना तो मांगना है, भीख है; धन्यवाद नहीं! और जब तक प्रार्थना धन्यवाद न हो, अनुग्रह का उदघोष न हो, तब तक प्रार्थना झूठी है। पर अनुग्रह का उद्घोष कैसे हो? दीया तो जला नहीं, फूल तो खिला नहीं, अमावस तो अमावस ही रही, पूर्णिमा तो आई नहीं! पूर्णिमा तो दूर, दूज का चांद भी नहीं उगा जीवन में। धन्यवाद कैसे हो? धन्यवाद किसको हो? और धन्यवाद दो भी तो सच्चा कैसे होगा?
प्रार्थना तो परितृप्ति का उदघोष है। इसलिए मंदिर-मस्जिदों में जाकर व्यर्थ समय खराब मत करो! भीतर जाओ! एक दिन उठेगी प्रार्थना, दुर्निवार उठेगी! रोकना भी चाहोगे तो रुकेगी नहीं। एक दिन उठेगी सुगंध भीतर, दिन-दिगंत व्याप्त होगा। एक दिन ज्योति जलेगी। उस जलती ज्योति का ही नाम प्रार्थना है।
अंधेरी आत्मा प्रार्थना करेगी कैसे? इसलिए शुभ है कि आज के वचन इक्कीस दिनों की इस यात्रा के बाद पूजा पर हो रहे हैंः आरती कैसैं करौं गुसाईं, तुमही व्यापि रहे सब ठाईं। कहां उतारूं आरती? किस दिशा की करूं आरती? किस मूर्ति की, किस रूप की? सभी मूर्तियां तुम्हारी हैं। सभी दिशाएं तुम्हारी हैं। सभी रूप तुम्हारे हैं। तुम्हारे अतिरिक्त और कुछ है नहीं। तब व्यक्ति की श्वास-श्वास आरती हो जाती है। आरती करनी नहीं पड़ती फिर, जीवन आरती हो जाता है। हृदय की धड़कन-धड़कन उसकी ही पूजा में लीन हो जाती है। जागो कि सोओ, प्रार्थना के स्वर उठते ही रहते हैं।
ऐसा ही तुम्हारे जीवन में भी हो। ऐसा हो सकता है। अगर नहीं हुआ तो स्वयं के अतिरिक्त किसी और को जिम्मेवार मत ठहराना। तुम्हारे अतिरिक्त कोई और इसे होने से रोक सकता है। तुम्हारे शरीर पर जंजीरें डाली जा सकती हैं, बाहर से; लेकिन तुम्हारी आत्मा पर जंजीरें कोई बाहर से नहीं डाल सकता! तुम्हें कारागृह में फेंका जा सकता है; लेकिन देह ही कारागृह में होगी, तुम सदा मुक्त हो। मुक्ति तुम्हारा स्वभाव है। तुम कारागृह की दीवालों में जंजीरों और बेड़ियों में पड़े हुए आकाश में ही विचरण करोगे। तुम्हारी बाहर की आंखें फोड़ी जा सकती हैं, लेकिन तुम्हारी भीतर की आंखों को फोड़ने का कोई उपाय नहीं। लेकिन तुम ही न खोलो तो बात और है। तुम ही डैने न फैलाओ और न ओढ़ो, तो बात और। तुम ही गुलाम रह कर मर जाना चाहो तो बात और।
स्मरण करो इस बात का कि तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारे महोत्सव में और कोई बाधा नहीं है। और तुमने जितने कारण खोज रखे हैं, वे सब भुलावे हैं। कोई कहता है इस कारण नहीं पहुंच पा रहा हूं, कोई कहता है उस कारण नहीं पहुंच पा रहा हूं! मैं तुम्हें बार-बार यह याद दिलाना चाहता हूं कि सब कारण वंचनाएं हैं, मन की तरकीबें हैं। कारण खोज कर तुम निश्चिंत हो जाते हो। दूसरे पर दोष डाल दिया, छुटकारा हो गया! लेकिन जिन्होंने भी इस जगत में जाग कर पाया है, जिन्होंने भी इस जगत में परमात्मा का अनुभव किया है, उन सबकी गवाही एक

है कि तुम्हारे अतिरिक्त और कोई रुकावट नहीं डाल रहा है। इसलिए हटा दो सब कारण। छोड़ो सब झूठे तर्क, और एक ही बात पर सारी जीवन-ऊर्जा को निछावर कर दो, कि जाग कर ही जाना है, जीवन को ज्वलंत प्रकाश बना कर जाना है।
लेकिन लोग गैर-जरूरी में उलझे हैं।
जो काम जरूरी थे,
उन्हें एहतियात से
अलगाता गया--
कभी शांतचित्त से,
एकाग्र मन से,
समय से,
सुविधा से
उन्हें अंजाम दूंगा।
जो गैर-जरूरी थे
उन्हें चटपट निपटाता गया।
अब देखता हूं
कि जीवन
गैर-जरूरी कामों में ही बीत गया है
और सब जरूरी काम
मेरे दूसरे जन्म की
प्रतीक्षा कर रहे हैं।
ऐसा न हो कि मरते घड़ी तुम्हें ये वचन बोलने पड़े। ऐसा ही अकसर होता है। करोड़ में एक को छोड़कर शेष के साथ यही होता है।
जीवन पर पुनर्विचार करो। तुम गैर-जरूरी चटपट निपटा लेते हो। तुम गैर-जरूरी को कल पर नहीं टालते। जरूरी को तुम कहते हो, कल कर लेंगे, परसों कर लेंगे, जल्दी क्या पड़ी है? धन अभी खोज लें, ध्यान फिर कभी खोज लेंगे! पद अभी पा लें, परमात्मा को पाने की जल्दी क्या है? शाश्वत है, समय चुका नहीं जा रहा है। इस जन्म में नहीं, अगले जन्म में होगा। आज नहीं कल, जवानी में नहीं बुढ़ापे में होगा! सब व्यर्थ को निपटा लेंगे, फिर सार्थक को करेंगे।
और ध्यान रखना, व्यर्थ चुकता ही नहीं। व्यर्थ कीशृंखला अनंत है। इस दुविधा में उलझा आदमी कभी ऐसा अवसर नहीं पाता, जब कह सके कि अब सब व्यर्थ काम पूरे हो गए, अब मैं सार्थक करूं! वह भ्रांत दिशा है।
सार्थक करना हो तो अभी करना! अभी या कभी नहीं! टालना ही हो तो व्यर्थ
को टालो। क्रोध आता है, तत्क्षण करते हो। प्रेम उठता है, कल पर छोड़ देते हो। कहते हो अभी तो धन कमाना है, अभी तो प्रतिष्ठा बनानी है। प्रेम प्रतीक्षा करे। होगा धन जब पास तो प्रेम भी करेंगे। होगा धन जब पास, मित्रों से भी मिलेंगे; अभी समय नहीं। लेकिन क्रोध उठता है तो तुम टालते नहीं। घृणा उठती है तो तुम छूरे पर धार अभी रखने लगते हो। हां, पूजा का भाव उठे तो आरती का थाल अभी नहीं सजाते, दीये अभी नहीं जलाते, टाले ही चले जाते हो।
"कल" मनुष्य का सबसे बड़ा दुश्मन है। कल ने मनुष्य को डुबाया है। कल ने मनुष्य को मारा है। आज की भाषा सीखो। इस क्षण के अतिरिक्त और कोई क्षण तुम्हारे पास नहीं है। दूसरा क्षण भी होगा, इसका कुछ पक्का नहीं। दूसरे क्षण के भरोसे मत रहना। उसके भरोसे रहने वाले धोखा खाते गए हैं, सदा धोखा खाते गए हैं। और हम सब उसी के भरोसे बैठे हैं।
सूत्र--
संत चले दिस ब्रह्म की, तजि जग व्यवहारा।
संत वही है जो ब्रह्म की दिशा में चल पड़ा जगत के व्यवहार को छोड़ कर। वचन सीधा-साफ है, अर्थ गहरा है। और अक्सर ऐसा होता है, सीधे-साफ वचन, जो एकदम सुनते ही समझ में आ जाते हैं, इतना गहरा अर्थ लिए रहते हैं उसका हमें स्मरण ही नहीं होता। कठिन वचन को तो हम सोचते-विचारते हैं; कठिन है, इसलिए। सरल को तो हम सोचते हैं समझ ही लिया। अब यह इतना सरल वचन है; इसमें डुबकी लगाओगे तो प्रशांत महासागर की गहराई तुम पाओगे--संत चले दिस ब्रह्म की!

ब्रह्म की दिशा क्या है? दस दिशाएं हैं आकाश की। इन दस में से कोई भी ब्रह्म की दिशा नहीं। पूरब जाओ, पश्चिम जाओ, काशी या काबा--ब्रह्म की दिशा नहीं है। उत्तर जाओर्ं दक्षिण जाओ, कैलाश कि रामेश्वरम, काबा--ब्रह्म की दिशा नहीं है। ऊपर जाओ कि नीचे--काबा--ब्रह्म की दिशा नहीं है। काबा-- ब्रह्म की दिशा ग्यारहवीं दिशा है। और ग्यारहवीं दिशा का कोई उल्लेख भूगोल में नहीं है। भूगोल का ग्यारहवीं दिशा अंग नहीं है। ग्यारहवीं दिशा हैः भीतर जाओ, अपने में जाओ। आकाश दस दिशाओं से बना है, तुम ग्यारहवीं दिशा हो!
मो.जे.ज के प्रसिद्ध नियम हैंः दस आज्ञाएं। जैसे एक-एक दिशा को एक-एक आज्ञा पूरा करती है।
जीसस ने अपने शिष्यों को कहाः मैं तुम्हें ग्यारहवीं आज्ञा देता हूं! वही ग्यारहवीं आज्ञा ग्यारहवीं दिशा में ले जाने वाली है। वह आज्ञा भी बड़ी अनूठी है। शिष्यों ने पूछा कि ग्यारहवीं आज्ञा? हमने तो सुना है कि दस आज्ञाओं में सारा धर्म आ गया। लेकिन जीसस ने कहाः जब तक तुम ग्यारहवीं आज्ञा पूरी न करो, दस तो पूरी होंगी ही नहीं। जिसने दस पूरी कीं और ग्यारहवीं छोड़ दी, उसका कुछ भी पूरा नहीं होगा। और जिसने ग्यारहवीं पूरी कर ली, उसकी दस अपने आप पूरी हो जाती हैं। कौन सी है ग्यारहवीं आज्ञा? तब जीसस ने कहाः प्रेम है ग्यारहवीं आज्ञा! अंतिम रात्रि भी विदा होते समय भी उन्होंने यही कहा, कि मैं जाता हूं, लेकिन मैंने तुम्हें जो कहा है उसे भूल मत जाना।
एक शिष्य ने पूछाः आपने बहुत बातें कही हैं, कौन सी बात को आप याद दिलाना चाहते हैं?
जीसस ने कहाः वही ग्यारहवीं आज्ञा। मैंने तुम्हें जिस तरह प्रेम किया, उसी तरह तुम प्रेम करना! ठीक... "प्रेम करना" उचित नहीं है कहना-- प्रेम हो जाना!
जो भीतर जाता है, वह प्रेम हो जाता है। जो भीतर जाता है वह प्रार्थना
हो जाता है। प्रार्थना प्रेम का ही निचोड़ है। जैसे हजारों फूल से इत्र निचोड़ते हैं, ऐसे हजारों प्रेम के अनुभव से प्रार्थना का इत्र निचुड़ता है। और जिसने प्रेम ही नहीं किया, वह प्रार्थना तो क्या खाक करेगा? और अकसर ऐसा होता है, जो लोग प्रेम करने में असमर्थ हैं, मंदिर चले जाते हैं। और कहते हैं हम प्रार्थना करेंगे। प्रेम अभी किया नहीं, अभी प्रेम का क ख ग भी नहीं सीखा, प्रार्थना करने चल पड़े! जिन्हें जमीन पर चलना नहीं आता, वे आकाश में उड़ने का विचार करने लगे। गिरेंगे, बुरी तरह गिरेंगे! हड्डी- पसलियां तोड़ लेंगे। पहले जमीन पर चलना तो सीखो!
इस पृथ्वी को प्रेम करो! जिस दिन इस पृथ्वी के प्रति प्रेम तुम्हारा बेशर्त हो जाएगा, उस दिन तुम पाओगे तुम्हें पंख लग गए, अब तुम आकाश में उड़ने में असमर्थ हो गए। पृथ्वी उनको ही पंख देती है भेंट, जो अपना सारा प्रेम पृथ्वी पर निछावर कर देते हैं। और उन पंखों का नाम प्रार्थना है। यह पृथ्वी उस परमात्मा की है। इस पृथ्वी को भर दो अपने प्रेम से--और तुम पाओगेः वही प्रेम तुम्हें उठाने लगा आकाश में! चले तुम अनंत की यात्रा पर! लेकिन प्रेम वही कर सकता है जो भीतर जाए। तुम तो प्रेम जब करते हो तो बाहर जाते हो। तुम्हारा प्रेम भी झूठा प्रेम है। तुम सदा किसी और से प्रेम करते हो। और और से जो प्रेम किया जाता है वह सिर्फ प्रेम का बहाना है। उस प्रेम में कुछ और ही छिपा है--वासना छिपी होगी, एषणा छिपी होगी, तृष्णा छिपी होगी, मोह छिपा होगा, लोभ छिपा होगा, महत्वाकांक्षा छिपी होगी, दूसरे के मालिक बनने का अहंकार छिपा होगा, हजार-हजार चीजें छिपी होंगी; प्रेम भर उसमें नहीं होगा।
प्रेम का दूसरे से कुछ भी संबंध नहीं है। प्रेम तो अपने अंतःस्तल में डुबकी लगाने का परिणाम है। तुमने जो प्रेम किया है, उसकी कहानी तो बड़ी छोटी सी है।
किसी के प्यार की इतनी कहानी!
गगन में चांद आया खिल रहा है
उदधि में ज्वार आया मिल रहा है

अभी तो चांदनी में लहर थिरकी अभी फिर हो गई जानी-अजानी किसी के प्यार की इतनी कहानी! तिमिर के घूंट अनगिन पी रहा है अजिर में एक दीपक जी रहा है सुबह की किरण को सर्वस्व देकर रही जो शेष--काजल की निशानी किसी के प्यार की इतनी कहानी! झलकते पल्लवों पर ओसकन हैं छलकते लोचनों अश्रुगन हैं तुम्हारे साथ सुख-दुख झेल पाए मिलाकर कुल यही अपनी-बिगानी किसी के प्यार की इतनी कहानी! अभी फिर हो गई जानी-अजानी
किसी के प्यार की इतनी कहानी!
रही जो शेष--काजल की निशानी
किसी के प्यार की इतनी कहानी!
मिलाकर कुल यही अपनी-बिगानी
किसी के प्यार की इतनी कहानी!
प्यारा तुम्हारा, जिसे तुमने प्रेम कहा है, वही प्रेम नहीं है जिसे मीरा ने प्रेम कहा, कबीर ने प्रेम कहा, सुंदरदास ने प्रेम कहा। तुम्हारा प्रेम तो नाममात्र है। उसके पीछे कुछ और है, जो प्रेम कतई नहीं, ईर्ष्या है, जलन है। प्रेम में और ईर्ष्या? यह तो अमृत में जहर हो गया! यह तो फूल में दुर्गंध हो गई। यह तो दीये से अंधेरा झरने लगा, रोशनी नहीं!
नहीं; एक और प्रेम है, जो अंतर्यात्रा में जितनी गहराई बढ़ती है तब मिलता है। वह प्रेम की दशा है, संबंध नहीं! तब तुम प्रेम होते हो, प्रेम करते नहीं। तब तुमसे प्रेम बहता है, दसों दिशाओं में प्रेम बहने लगता है। ग्यारहवीं दिशा में बीज टूट जाए, दसों दिशाओं में सुगंध बहने लगती है। संत चले दिस ब्रह्मा की, तजि जग व्यवहारा।
ब्रह्म की दिशा में जो चले वह संत! प्रेम ब्रह्मा की दिशा है। और प्रेम अंतःस्तल में पड़ा है। वह अमोलक हीरा--सुंदरदास ने कहा--तुम्हारे भीतर पड़ा है। उस दिशा में चलो!
और भी एक बड़ी महत्वपूर्ण बात कही हैः जगत को छोड़ने को नहीं कहा है, जगत व्यवहार को छोड़ने को कहा है। दोनों में बड़ा फर्क है। जगत को तो छोड़ कर जाओगे कहां? जहां जाओगे वहीं जगत है। हिमालय पर जाओगे, वहां जगत है। गुफा में बैठ जाओगे वहां जगत है। यही हवा, यही सूरज, यही चांद-तारे वहां भी होंगे। और अगर तुम यहां से चले भी गए हिमालय, तो तुम तो कम से कम वही होओगे जो यहां थे। और जो तुम्हारे भीतर यहां था, वही वहां भी तरंगें लेगा। यहां अगर तुमने अपने मकान से मोह बांध लिया था तो वहां किसी वृक्ष के नीचे बैठ कर उसी वृक्ष से मोह बांध लोगे। झगड़े हो जाते हैं जंगल में। एक साधु एक वृक्ष के नीचे दो-चार साल रह गया, वह उसकी बपौती हो गई। दूसरा साधु आकर वहां डेरा रखने लगे, वह कहेगाः उठाओ! चलते बनो! यह वृक्ष मेरा है! यह गुफा मेरी है।
मैं वर्षों तक जबलपुर रहा! वहां एक स्थान है पहाड़ियों में गुप्तेश्वर। गुप्तेश्वर के पीछे एक गुफा में एक साधु वर्षों से रहता है। वह गुफा प्यारी थी! एक दिन मैं भी जाकर वहां बैठ रहा। साधु कहीं बाहर गया था, स्नान करने गया था, लौट कर आया, उसने कहाः आप यहां पर कैसे बैठे हैं? यह गुफा मेरी है!
मैंने उससे पूछाः घर किसलिए छोड़ा, अगर गुफा तुम्हारी हो गई? घर मेरा
था, उसे छोड़ कर आ गए हो; अब कहते हो गुफा मेरी!
महल छूट जाते हैं, इससे फर्क नहीं पड़ता; लंगोटियों पर मोह लग जाता है,
कि लंगोटी मेरी है!

समझदार आदमी था; उसकी आंख में आंसू आ गए। उसने कहाः मुझे क्षमा कर दें!
यह "मेरी" शब्द जाता ही नहीं। आप ठीक ही कहते हैं। सब छोड़कर आ गया हूं, लेकिन यह "मेरा" शब्द नहीं जाता।
जगत छोड़ने से जाएगा भी नहीं। जगत व्यवहार छोड़ने से जाएगा! और वह बड़ी अनूठी बात है--जगत्-व्यवहार छोड़ना! मेरा-तेरा जगत-व्यवहार है। कामचलाऊ है। यहां कौन किसका है! कौन अपना है कौन पराया है! चार दिन का मेला है, मेले में मिलना हो गया है। दोस्तियां बन गई हैं, दुश्मनियां बन गई हैं। कोई अपना हो गया है, कोई पराया हो गया है। यह सब व्यवहार है। इससे व्यवहार की तरह जान लेना, इससे मुक्त हो जाना है। इसको जिसने सत्य मान लिया, वह इसमें उलझ जाता है। इसे व्यवहार ही समझो। व्यवहार है तो कोई अड़चन नहीं है। रास्ते पर नियम है बाएं चलो, वह व्यवहार है। कोई बाएं चलने में धर्म नहीं है, कि बाएं चलते रहे तो स्वर्ग पहुंच जाओगे। अमरीका में व्यवहार है दाएं चलो!
मुल्ला नसरुद्दीन अमरीका जाना चाहता था। बड़ा उत्सुक था, बड़ा आतुर था। कौन नहीं होता आतुर! चूड़ीदार पाजामा वगैरह सब बनवा रखा था! अचकन, गांधी टोपी... बिल्कुल तैयार था। फिर एक दिन आया, बड़ा उदास था। कहने लगा कि नहीं जाऊंगा।
मैंने कहाः बात क्या हो गई? सब तैयारी पूरी हो गई है, अब जाते क्यों नहीं? उसने कहा कि नहीं, जाऊंगा। एक बड़ी झंझट की बात है। अमरीका में दाएं गाड़ी चलानी पड़ती है। मैंने पूना में जाकर दाएं गाड़ी चला कर देखी, बड़ी झंझट में पड़ गया। मैं ऐसी झंझट में नहीं पड़ना चाहता।
पूना में दाएं गाड़ी चलाओगे तो झंझट में पड़ोगे। उसने कहा कि एक आधे ही घंटे में ऐसी मुसीबतें आईं कि जान की मुसीबत हो गई। मैंने तो सोचा था कि दो-तीन महीने अमरीका में गुजारूंगा, तो दो-तीन महीने में जिंदा नहीं लौटूंगा।
अब बाएं चलना या दाएं चलना व्यवहार की बात है। दोनों से काम चल जाता है। इसमें कुछ सिद्धांत नहीं है--व्यवहार है। पत्नी है पति हैं, बेटे हैं, मां है पिता है, भाई है बंधु हैं--सब व्यवहार हैं। इसको जब तुम सिद्धांत मान लेते हो, जैसे इसका कोई पारमार्थिक मूल्य है, तब तुम झंझट में पड़ जाते हो।
धन व्यवहार है। ऐसे तो कागज के नोट हैं; उनमें कुछ भी नहीं, सिर्फ एक समझौता है, कि हमने उनमें मूल्य माना हुआ है। अभी देखे न, हजार के नोट एक क्षण में व्यर्थ हो गए! जब हजार के हो गए तो पांच-दस रुपये की क्या बिसात है!
एक समझौता था, तोड़ दिया सरकार ने, कि अब हम इस पर राजी नहीं हैं। बस समझौते की बात थी, नोट कागज हो गए, कि लोगों ने सड़कों पर फेंक दिए, कि कुछ लोगों ने सिगरेट बना कर पी ली, कुछ लोगों ने नोट बिछा कर उन पर नाश्ता कर लिया। और क्या करना है! कल तक यही नोट बड़े बहुमूल्य थे। बांट दिए लोगों ने, बच्चों के खेल-खिलौने हो गए।
जिन चीजों को हम मूल्य दे रहे हैं जगत में, वे मूल्य सिर्फ समझौते के मूल्य हैं। हमने तय किया है कि मूल्य हैं, इसलिए मूल्य है। हम तय कर लें कि मूल्य नहीं है तो मूल्य समाप्त हो गए। तो हमारे तय करने में मूल्य है। हमारे मानने में मूल्य है। मान्यता ही मूल्य है।
जगत व्यवहार को छोड़ने का अर्थ होता हैः जगत में सारी चीजें व्यवहार-मात्र हैं। यहां कुछ भी पारमार्थिक नहीं है। जगत को छोड़ कर कहीं जाना नहीं है। जहां हो वहीं रहो; सिर्फ व्यवहार को व्यवहार समझो और व्यवहार की तरह पूरा कर दो। और तुम चकित हो जाओगे, व्यवहार पूरा होता है और तुम व्यवहार के बाहर हो गए। जैसे कोई अभिनेता अभिनय करता है, तो राम बन जाता है, धनुषबाण ले लेता है; कोई लक्ष्मण बन जाता है, कोई सीता बन जाता है। पर सब व्यवहार की बात है। जितनी देर को राम राम हैं उतनी देर को राम राम हैं। पर्दा गिरेगा, बात खत्म हो गई। पर्दा उठा था, राम और रावण में बड़ा युद्ध चल रहा था। पर्दा गिर गया, दोनों पीछे बैठ कर चाय पी रहे हैं। बस इतनी ही बात है। पर्दा उठने और पर्दा गिरने की बात है।

अब अगर कोई रामचंद्र जी को यह वहम सवार हो जाए कि वे रामचंद्रजी हो गए, पर्दा गिर गया है, मगर वे अपना धनुष-बाण लिए ही चल रहे हैं--तो अड़चन होगी।
तो उनको पागलखाने में रखना पड़ेगा। उनका इलाज करवाना पड़ेगा। नाटक महंगा पड़ गया।
और यही हालत हो गई है तुम्हारी--नाटक में हो लेकिन नाटक महंगा पड़ गया है।
एक रामलीला हुई एक गांव में। लक्ष्मण बेहोश पड़े हैं। हनुमान संजीवनी- बूटी लेने गए हैं। लेकर आए। नाटक का मामला। रस्सी के सहारे कागज का पहाड़ उठाए हुए चले आ रहे हैं, कि घिर्री में रस्सी अटक गई। अब जनता ताली बजा रही है और सीटी बजा रही है और हनुमान जी लटके हैं। धिर्री अटक गई। वह चले न, रस्सी उतरे न। अब यह बात बिगड़ने लगी। और रामचंद्र जी कह रहे हैंः हे हनुमान, तुम कहां हो? वे अपनी दोहराएं जा रहे हैं, क्योंकि उनको जो पाठ सिखाया गया है वे उसमें से कैसे... । हनुमान आए नहीं, तब तक वे आकाश की तरफ देख कर कहते हैं कि हे हनुमान, तुम कहां हो? और हनुमान सामने हैं। कहां चले गए, बड़ी देर लगा दी, लक्ष्मण का जीवन खतरे में पड़ा हुआ है, हनुमान जल्दी आओ, संजीवनी लाओ।
और जनता ताली पीट रही है। हनुमान तो सामने हैं, पहाड़ी लिए खड़े हैं। हनुमान भी बड़ी मुश्किल में हैं कि अब करें क्या? कुछ सूझ-बूझ नहीं आई। मैनेजर चढ़ा ऊपर और उसने रस्सी खोलने की कोशिश की, नहीं खुली, तो उसने काट दी। हनुमान जी धड़ाम से मय पहाड़ी के नीचे गिरे। अब जब कोई ऐसी अचानक घटना हो जाए तो किसको याद रहती है कि हनुमान हैं। रामचंद्र जी ने कहा कि भले आ गए, जड़ी-बूटी कहां है? हनुमान जी ने कहाः ऐसी की तैसी जड़ी-बूटी की! पहले यह बताओ रस्सी किसने काटी?
बस इतना ही व्यवहार है ऊपर-ऊपर; नीचे तो तुम्हें पता है कि तुम हनुमान
जी नहीं हो; कहां के हनुमान जी, कहां की जड़ी-बूटी! उनके घुटने में चोट लग गई।... रस्सी किसने काटी, यह बताओ! पहली बात, मतलब की बात, असली बात पहले तय हो जानी चाहिए।
तुम्हारा जीवन ऊपर-ऊपर जैसा चल रहा है उसे छोड़ कर भाग जाने की कोई भी जरूरत नहीं। लेकिन जगत व्यवहार-मात्र है, इतनी प्रतीति सघन हो जाए कि बस छूट गया। छोड़ने में कुछ और है नहीं। यहां पकड़ने को कुछ है नहीं तो छोड़ोगे क्या? पकड़ने को कुछ होता तो छोड़ भी देते। पकड़ने को ही कुछ नहीं है! इस बात की प्रतीति और बोध का नाम संन्यास है।
इसलिए मैं अपने संन्यासी को नहीं कहता कि तुम कहीं छोड़कर भाग जाना। पत्नी है, बच्चा है, नौकरी है, बाजार है, दुकान है--सब व्यवहार है। तुम अछूते रहना। तुम दूर-दूर रहना। निपटाए जाना सब। मजे से निपटा देना। परमात्मा ने जो दिया है, उसे पूरा कर देना। भगोड़े मत बनना। भगोड़े ने तो परमात्मा की भेंट को अस्वीकार कर दिया। भगोड़े ने तो जिद की। उसने तो कहा कि मैं अपनी चलाऊंगा। उसने तो परमात्मा भी भेंट की निंदा की।
भगोड़े संत नहीं होते। संत होना इतना सस्ता काम नहीं है जितना भगोड़ा
कर लेता है। संत होना बड़ी आंतरिक क्रांति है। और आंतरिक क्रांति का अर्थ हैः बाहर जो हो रहा है, सब लोक-व्यवहार है। भीतर मैं अलिप्त हूं, अलग हूं, पृथक हूं, साक्षीमात्र हूं, दृष्टा-मात्र हूं। जो दृष्टा हो गया उससे जगत छूट गया--बिना छोड़े! और जो कर्ता रहा, वह छोड़ कर भी भाग जाए तो जगत उससे छूटता नहीं, वह कर्ता ही बना रहता है।
संत चले दिस ब्रह्म की, तजि जग व्यवहारा।
सीधै मारग चालतैं निंदै संसारा।।
और बड़े आश्चर्य की बात यह है कि जब भी कोई सीधा-सीधा चलेगा इस संसार में, सारा जगत उसकी निंदा करेगा। संत सीधे चलते हैं, जगत उनकी निंदा करता है। यह दुर्घटना क्यों घटती है? इसके पीछे कारण साफ है। जगत में लोग इरछे- तिरछे चल रहे हैं। जो आदमी सीधा चलता है, उस आदमी के सीधे चलने के कारण ही लोगों को अड़चन होने लगती है। अगर यह आदमी ठीक है तो हम सब गलत हैं। और कोई यह मानने को राजी नहीं होता कि मैं गलत हूं। तिरछे से तिरछा चलने वाला आदमी भी यही सोचता है कि मेरी चाल सीधी-साफ है। झूठ बोलने वाला आदमी सोचता

है कि मुझसे ज्यादा सच्चा आदमी कौन है! झूठ बोलने वालों के बीच में तुम सच बोलोगे तो मुश्किल में पड़ जाओगे। वे तुम्हें बरदाश्त नहीं कर सकेंगे। इसका तुम्हें जीवन में रोज-रोज अनुभव होगा! इसके लिए कोई महासंत होने की जरूरत नहीं है। थोड़े से जिंदगी में अनुभव करो। दफ्तर में तुम काम करते हो, वहां कोई काम नहीं करता। हिंदुस्तान के किसी दफ्तर में कोई काम नहीं करता। काम करने वाले दफ्तर में बच नहीं सकते। लोग बैठे रहते हैं, पैर पसारे रहते हैं। फाइल यहां से वहां रखते रहते हैं।
एक दफ्तर में एक आदमी की टेबल फाइलों से बिल्कुल खाली रहती थी। सारे लोग हैरान थेः सारा काम निपटा लेता है, दूसरों की तो फाईलें बढ़ती जाती हैं। असल में जितनी ज्यादा फाइलें जिसकी टेबल पर होती हैं वह आदमी उतना ही बड़ा अपने को अनुभव करता है। इतना काम उसके पास! फाइल को निपटाना ही नहीं चाहते लोग, फाइलों को इकट्ठा करते हैं। उससे किसी ने पूछा कि भाई, तुम काम निपटा कैसे लेते हो? हम जो दपतर का काम घर ले जाते हैं तो भी निपटा नहीं; आधी-आधी रात तक काम करते हैं तो भी निपटता नहीं; तुम कैसे निपटा लेते हो? दफ्तर में तुम्हारी टेबल हमेशा साफ, कोई फाइल रुकी नहीं होती है।
उसने कहा कि इसकी एक तरकीब है। अब यहां कोई... सचिवालय में समझो कि हजारों लोग काम कर रहे हैं... तो मैं तो सदा लिख देता हूंः भाईदास भाई को भेजो। अब इतने हजार आदमी बंबई में काम कर रहे हों दफ्तर में तो भाईदास भाई एकाध तो होगा ही। बंबई और भाईदास भाई न हो, यह हो ही नहीं सकता। भाईदास भाई की टेबल पर भेजो, बस इतना लिख कर भेज देता हूं। फिर फाइल मुझ तक लौटती ही नहीं, फिर कहां जाती है भगवान जाने! कोई भाईदास भाई होगा... ।
संयोग की बात, वह आदमी बोला कि महाराज, मैं ही भाईदास भाई हूं! जब ही तो सोच रहा हूं कि मेरे पास फाइलों पर फाइलें इकट्ठी होती जा रही हैं। यह कौन है जो भेज देता है, भाईदास भाई को भेजो!
दफ्तर में कोई काम थोड़े ही करता है। एक टेबल से दूसरी टेबल पर फाइलें सरकती हैं, यहां से वहां घूमती रहती हैं। बस घूमती ही रहती हैं। अगर कोई काम करने वाला आदमी आए दफ्तर में तो सारे लोग उसके खिलाफ हो जाते हैं, क्योंकि उसके काम करने की वजह से यह बात जाहिर होने लगती है कि वे सब निकम्मे बैठे हैं। और यह कोई बरदाश्त नहीं करता।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दफ्तर में काम करता था। मैंने पूछा, कभी छुट्टी नहीं लेते? उसने कहा कि नहीं, मैं छुट्टी ले ही नहीं सकता कभी।
"बात क्या है?" उसने कहा कि छुट्टी अगर मैं लूं तो वहां बात पता चल जाए
कि मेरे बिना काम चल सकता है। मेरी वहां कोई जरूरत ही नहीं है असल में। तो मैं छुट्टी तो ले ही नहीं सकता, क्योंकि छुट्टी लिया कि पता चला। अभी तो मैं बैठा रहता हूं पैर पसारे और ऐसा रूप बनाए रखता हूं कि भारी काम है, माथे पर शिकनें डाले रखता हूं। कोई भी आता है तो अपने को व्यस्त दिखलाता हूं। कुछ न हो तो कागज पर ही गूंथता रहता हूं। दस्तखत अपने ही करता रहता हूं। कोई काम नहीं है, मगर अगर मैं छुट्टी लूं तो कितनी देर लगेगी, लोगों को पता चल ही जाएगा कि हां, इस आदमी के पास कोई काम है ही नहीं।
जहां कोई काम न कर रहा हो वहां अगर तुम काम करो, तो लोग नाराज हो जाएंगे। जहां सारे लोग झूठ बोलने पर जी रहे हों वहां तुम सच बोलो, तो तुम उन सबके पाखंड का भंडा फोड़ कर दोगे। अंधों के बीच अपनी आंख की घोषणा मत करना, नहीं तो अंधे पकड़कर तुम्हारी आंख फोड़ डालेंगे। बहरों के बीच मत कहना कि मुझे संगीत सुनाई पड़ता है।
संत की तकलीफ यही है, इक्के-दुक्के मामलों में नहीं, जीवन की सारी प्रक्रिया में वह सीधा-सीधा चलने लगता है। और यहां सब तिरछे-तिरछे चलनेवाले लोग हैं। यहां कोई सीधा चल ही नहीं रहा है। यहां चलने की प्रक्रिया ही हमें तिरछी समझाई गई है।
जैसे उदाहरण के लिए, बच्चा पैदा नहीं हुआ कि हम उसे समझाते हैं कि तू बुद्ध जैसा हो जा, कृष्ण जैसा हो जा; राम जैसा हो जा, बस तिरछा हमने करना शुरू कर दिया इस बच्चे को। इसका मतलब यह हुआ कि इसको हम कभी वही नहीं होने देंगे जो होने को यह पैदा हुआ है। बस तिरछापन शुरू हो गया।

और दुनिया में कोई आदमी किसी दूसरे जैसा नहीं हो सकता; होने की कोशिश में तिरछा हो जाएगा। होने की कोशिश में पाखंड हो जाएगा। तुम कैसे राम हो सकते हो? राम एक बार ही हुए, दुबारा नहीं होते। दुबारा वैसी परिस्थिति भी नहीं होती! अब तुम जरा सोचो, राम होने के लिए पहले रावण चाहिए, सीता चाहिए, बूढ़ा दशरथ चाहिए। बुढ़ापे में शादी करे किसी से, यह भी चाहिए। कारों इत्यादि में नहीं, रथों पर चले। रथ का पहिया निकलने लगे, उसकी जवान स्त्री रथ के पहिए को गिरता देख कर कील की जगह अंगुली डाले--यह सब उपद्रव जब हो, तब रामचंद्र जी फिर से हों। अब यह उपद्रव हो नहीं सकता!
तुम समझते हो, अचानक कोई व्यक्ति आकाश से कूद पड़ता है? उसका संदर्भ होता है। अब एक दिन अचानक दिन तुम उठो और अपना धनुषबाण लेकर तुम निकल जाओ, तो लोग समझेंगे कि गणतंत्र-दिवस पर कोई आदिवासी दिल्ली जा रहा है। वे भी गणतंत्र-दिवस पर ही तैयारी करके जाते हैं, वैसे वे भी आदिवासी नहीं रहते। तुम इस भूल में मत रहना। वैसे वे भी फिल्म देखते हैं और सिगरेट पीते हैं। मगर जब गणतंत्र-दिवस पर जाते हैं तो लंगोटी लगा कर धनुषबाण लेकर पहुंच जाते हैं।
जिंदगी में सभी चीजें संदर्भ में पैदा होती हैं। संदर्भ के बाहर तो
एक पत्ती भी नहीं पैदा होती, एक फूल भी नहीं खिलता। और राम जैसा फूल खिले, इसके लिए राम का पूरा का पूरा जगत चाहिए, वैसा का वैसा जगत चाहिए। तुम कैसे राम हो सकते हो? तुम कैसे बुद्ध हो सकते हो? बुद्ध कुछ ऐसा थोड़े ही है-- संदर्भहीन टपक गए आकाश से। पृथ्वी में उगते हैं बुद्ध और पृथ्वी की पूरी की पूरी व्यवस्था वैसी की वैसी दुबारा कभी नहीं होगी। अब शुद्धोधन कभी नहीं होंगे, यशोधरा कभी नहीं होगी। अब राज्य बचे नहीं। अब लोकतंत्र के दिन आ गए। अब राजा कभी नहीं होंगे। अब बुद्ध के होने का कोई उपाय नहीं रहा! इसलिए इस जगत में कोई भी व्यक्ति पुनरुक्त नहीं होता! और अच्छा है कि पुनरुक्त नहीं होता, नहीं तो कार्बनकापियां कार्बनकापियां घूमती हुई मालूम पड़ेंगी। झूठे लोग होंगे! तुम तुम ही होने को पैदा हुए हो। लेकिन पैदा भी नहीं हो पाते कि मां-बाप पड़े पीछे, कि बन जाओ कुछ और; स्कूल के शिक्षक पड़े पीछे कि बन जाओ कुछ और; पंडित और गुरु पड़े पीछे तुम्हारे कि बन जाओ कुछ और। तुम तिरछे होने लगते हो। जीवन की सरलता बच सकती है, जब तुम वही होना चाहो जो तुम होने को पैदा हुए हो। जब तुम अपनी निजता से जरा भी नहीं डिगो, तब तुम सरल होओगे। अगर तुम निजता से जरा भी डिगे, कि तुम कपटी हो जाओगे, पाखंडी हो जाओगे, ऊपर कुछ भीतर कुछ हो जाओगे। तुम्हारे भीतर द्वंद्व हो जाएगा। बोलोगे कुछ, करोगे कुछ। तुम्हारे भीतर सब चीजें उलझ जाएंगी। तुम्हारा सुलझाव समाप्त हो जाएगा।
संतत्व का जन्म होता हैः जब कोई व्यक्ति अपनी निजता को स्वीकार कर लेता है।
यहूदी फकीर झुसिया मर रहा था। गांव के किसी बूढ़े ने उससे कहाः झुसिया जिंदगी भर तू उलटा-सीधा काम करता रहा। (दुनिया को लगता था कि उलटे-सीधे काम कर रहा है। अपनी तरफ से तो वह बिल्कुल साफ-सीधा आदमी था। मुश्किल से इतना साफ-सीधा आदमी होता है।)अब तो तू परमात्मा से क्षमा मांग ले। और अब मो.जे.ज का स्मरण कर, कि वही तुझे बचाने वाले होंगे। हमने तुझे कभी मो.जे.ज की प्रार्थना करते नहीं देखा! अब तो प्रार्थना कर ले। अब तो उनसे कह दे कि मैं आ रहा हूं, मेरा ख्याल करना। परमात्मा से मेरे लिए सिफारिश करना, मुझे बचाना। तुम ही मेरे रक्षक हो!
झुसिया मर रहा था, उसने आंख खोली। उसने कहाः बात बंद करो। जब मैं परमात्मा के सामने जाऊंगा तो वह मुझसे यह नहीं पूछेगा कि झुसिया, तू मो.जे.ज क्यों नहीं बना? वह मुझसे इतना ही पूछेगा, झुसिया, तू झुसिया क्यों नहीं बना? मो.जे.ज से मुझे क्या लेना-देना? उसने मुझे मेरे जैसा ही बना कर भेजा है। बस मैं वही होकर उसके सामने पहुंच जाऊं। उसकी मर्जी पूरी हो जाए। मैं सहजता और सरलता से घास का फूल हूं तो घास का फूल सही, मगर खिल कर उसके सामने पहुंच जाऊं। गुलाब का फूल उसने मुझे बनाया नहीं, बनाया होता तो मैं गुलाब का फूल हो जाता। कमल का फूल उसने मुझे बनाया नहीं, बनाया होता तो मैं

कमल का फूल हो जाता। मैं जो हूं, खिल कर पहुंच जाऊं; घास का फूल तो घास का फूल। उसके चरणों में खिल कर गिर जाऊं।
क्या तुम सोचते हो कि घास के फूल से परमात्मा पूछेगा कि तुम गुलाब के फूल क्यों न हुए? या गुलाब के फूल से पूछेगा कि तुम कमल के फूल क्यों न हुए? ये क्या पागलपन की बातें हैं। लेकिन इससे आदमी तिरछा होता है। इससे आदमी धोखेबाज हो जाता है। इससे आदमी मुखौटे ओढ़ लेता है। इससे आदमी जिंदगी में सरल नहीं रह जाता, सीधा नहीं रह जाता। कैसे रहेगा? अपने को दबाता है और जो नहीं है उसको ओढ़ता है।
संत चलै दिस ब्रह्म की, तजि जग व्यवहारा।
सीधै मारग चालतैं, निंदै संसारा।।
लेकिन संसार निंदा करता है उनकी। संतों की सदा संसार ने निंदा की है। हां, मर जाते हैं तब पूजा करता है; जीते हैं जब तक, निंदा करता है। क्योंकि जीते हैं तो संत अड़चन में डालते हैं। उनका व्यवहार, उनके जीवन की शैली तुम सबको झूठा सिद्ध करने लगती है। उनकी प्रार्थना, उनकी पूजा तुम्हारे सारे पूजागृहों को पाखंड सिद्ध कर देती है। उनका परमात्मा से सीधा संबंध, उनकी सरल वाणी, उनका निश्छल व्यवहार, उनके जीवन से उठती हुई सोंधी सुगंध, तुम सब की दुर्गंध साफ कर देती है।
तुम अपने से भले लोग अपने बीच नहीं चाहते। उससे अहंकार को चोट लगती है। कहते हैं ऊंट पहाड़ों के पास नहीं जाता। शायद इसीलिए रेगिस्तानों में रहता है। न जाएगा पहाड़ के पास न कभी पता चलेगा कि मैं छोटा हूं। मनुष्य के मनोविज्ञान का एक अनिवार्य अंग है कि हर आदमी अपने से छोटे आदमियों के साथ रहना चाहता है, जीना चाहता है, क्योंकि छोटों के पास बड़ा मालूम होता है, हर आदमी अपने आसपास समूह इकट्ठा कर लेता है क्षुद्र लोगों का। उन क्षुद्रों के बीच वह महान दिखाई पड़ने लगता है। यह कोई महान होने का ढंग है?
महान होना हो तो महानों से दोस्ती जोड़ो। ऊंचे उठना हो तो उनके पास जाओ
जो ऊंचे उठे हैं। अगर पहाड़ों जैसी ऊंचाई पानी हो तो पहाडों का सत्संग करो। लेकिन आदमी पहाड़ों का सत्संग करने में भयभीत होता है। वहां जाकर पता चलता है कि मैं कितना छोटा हूं! यह बात दिल को चोट करती है। कोई अपने को छोटा नहीं मानना चाहता। अहंकार अपने को बड़ा मान कर जीता है।
संतों की निंदा इसीलिए होती है, क्योंकि अचानक वे पहाड़ की भांति तुम्हारे बीच खड़े हो जाते हैं; गौरी शंकर के शिखर की भांति, हिमाच्छादित, वे आकाश में उठ जाते हैं। सूर्य की किरणों में चमकता है उनका रूप, उनका सौंदर्य उनकी सरलता, उनकी सहजता। तुम सब नाराज हो जाते हो। भीड़ पहाड़ को गिराने को तत्पर हो जाती है।
साक्रेटीज को इसीलिए जहर दिया गया, क्योंकि साक्रेटीज की मौजूदगी एथेंस के लोगों को अखरने लगी; क्योंकि साक्रेटीज ने पूरे एथेंस के लोगों को एक बात का अहसास करवा दिया कि तुम सब झूठे हो। साक्रेटीज जिससे बात करता उसी को पता चल जाता कि मैं झूठा हूं। साक्रेटीज की प्रक्रिया ऐसी थी। उसके प्रश्न ऐसे थे कि वह जल्दी ही तुम्हारे झूठ को तुम्हारे सामने प्रकट करवा देता। तुमसे पूछेगा कि ईश्वर को मानते हो? अब आमतौर से आदमी कहेगा कि हां, मैं ईश्वर को मानता हूं, पूजा भी करता हूं।
वह कहेगा, "तुमने देखा?"
अड़चन शुरू हुई।
तुम कहते हो, नहीं मेरे पिता ने मुझे बताया।
"तुम्हारे पिता ने देखा?"
तुम कहते हो, उनके पिता ने उन्हें बताया!
"उनने देखा था?"
और उसने तुम्हारे पैर के नीचे की जमीन खींचनी शुरू कर दी! कौन जाने उनमें कोई झूठ बोल रहा हो, फिर? किसी ने न देखा हो, फिर? अफवाह हो, फिर? चिंदी के सांप बन जाते हैं। तुमने कैसे अपने जीवन को आधारित कर लिया है एक परमात्मा पर, जिसका तुम्हें कोई अनुभव नहीं है? तुम्हारी पूजा झूठी। अब भूल कर मंदिर मत जाना! नहीं तो तुम पाखंडी हो।

अब तुम डरे, अब दूसरे दिन मंदिर जाओगे तो बच कर निकलोगे कि कहीं साक्रेटीज रास्ते में न मिल जाए, नहीं तो वह कहेगाः तुम पाखंडी हो। तुम्हारे पास कोई उपाय भी नहीं सिद्ध करने का कि तुम पाखंडी नहीं हो। अदालत ने साक्रेटीज से कहा था कि हम तुझे क्षमा कर सकते हैं। एक बात का वचन दे दे कि चुप रहेगा, बोलेगा नहीं, लोगों को परेशान नहीं करोगे, सड़कों, रास्तों और गलियों पर खड़े लोगों को छेड़-छाड़ नहीं करोगे! यह सत्य बोलने की बात अगर तुम छोड़ दो तो अदालत तुम्हें मुक्त कर सकती है, तुम अभी जी सकते हो।
लेकिन साक्रेटीज ने कहा कि अगर सत्य ही नहीं बोलूंगा तो मेरे जीने का प्रयोजन क्या? यही तो मेरा धंधा है। लोग नाराज होते हों तो यह उनकी गलती है। वे भी सत्य की तलाश में लगें। मैं उन्हें सत्य की तलाश में ही लगाना चाहता हूं!
ऐसे आदमी बरदाश्त नहीं किए जा सकते। साक्रेटीज को जहर देकर मार ही डालना पड़ा। हमने सभी बच्चे लोगों के साथ यही व्यवहार किया है। महावीर नग्न खड़े हो गए थे। नग्नता का अपना आनंद है, अपनी सहजता है, अपना सौंदर्य है। मनुष्य को छोड़ कर कोई पशु-पक्षी को देख कर तुम्हें यह ख्याल आता है कि नंगा है? तुम्हें ख्याल आता है कि कुछ अशोभन हो रहा है? तुम्हें ख्याल आता है कि कुछ अश्लील हो रहा है? आदमी नग्न होता है तो क्यों ख्याल आता है कि अश्लील हो रहा है, अशोभन हो रहा है? आदमी ने अपने को इतना छिपाया है कि अब वस्त्र तक उतारने में कुछ गलत हो रहा है, ऐसा मालूम पड़ता है।
अब तुम मजा देखते हो, एक तरफ आदमी वस्त्रों में अपने को छिपाए चला जाता है और फिर प्ले-बॉय जैसी पत्रिकाएं निकलती हैं, जिनमें नग्न स्त्रियों की तस्वीरें देखने के लिए खरीदता है; या फिल्मों में जाता है कि नग्न तस्वीरें देख सके। आदमी का उलटापन देख रहे हो? पहले छिपाता है, फिर जब छिपा लेता है अपने को तो फिर देखने की उत्सुकता पैदा होती है कि पता नहीं कपड़ों के भीतर क्या छिपा हुआ है! और जो चीज जितनी ही छिपी होती है उतना ही उघाड़ने को मन होता है।
आदिवासी हैं अब भी जमीन पर कुछ, जो नग्न रहते हैं। उनको तुम प्ले-बॉय पत्रिका दिखाओ वे बड़े हंसेंगे, कहेंगे--मामला क्या है? इसमें बात ही क्या है? इतना छिपाया ही नहीं है तो प्रकट होने का कोई सवाल नहीं है। अब तुम चकित होओगे यह बात जान कर कि तुम्हारे पंडित-पुजारियों का हाथ है जो प्लेबॉय जैसी पत्रिकाएं दुनिया में चलती हैं। और तुम्हारे पंडित-पुजारियों का हाथ है कि दुनिया में नग्न तस्वीरें बिकती हैं, नग्न फिल्में बनती हैं। और ये उसके विपरीत हैं। बड़ा मजा यह है, ऊपर से देखने में ऐसा लगता है सब पंडित-पुजारी इनके विरोध में हैं कि यह नहीं होना चाहिए। इनके विरोध के कारण ही इन बातों में रस है। निषेध से रस पैदा होता है।
मैं रायपुर में कुछ दिनों तक रहा। मेरे पास में एक वकील रहते थे। वकील आदमी, सोचने का ढंग वकील का। रायपुर अब भी थोड़ा सा असय है। लोग कहीं भी पेशाब करते हैं, लोग कहीं भी पाखाने के लिए बैठ जाते हैं। तो उनकी दीवाल के पास लोग पेशाब करते हैं। तो वे वकील थे तो उन्होंने बड़े-बड़े अक्षरों में दीवाल पर लिखवा दिया कि यहां पेशाब करना मना है। जब से उन्होंने लिखवा दिया, तब से तो वह अड्डा ही हो गया लोगों का पेशाब करने का। मैं एक दिन उनके पास बैठा था। वे कहने लगेः हम बड़े परेशान हुए जा रहे हैं, अब और क्या करें? लिखवा भी दिया कि यहां पेशाब करना मना है, तब से हालत और बिगड़ गई है। मैंने उनसे कहा कि तुम लिखो कि यहां पेशाब करना अनिवार्य है।
उन्होंने कहाः उससे क्या होगा?
मैंने कहाः तुम लिखो तो।
"तो और-और लोग करने लगेंगे, अगर अनिवार्य है?"
मैंने कहाः कोई नहीं करेगा, तुम लिखो तो। जैसे ही लोगों को लगेगा कि अनिवार्य है, हम किसी के नौकर हैं या किसी के गुलाम हैं? तुमने लिखा यहां पेशाब करना मना है। जो आदमी अपने काम से चला जा रहा है, उसको भी पढ़ कर एकदम ख्याल आ जाता है कि अरे, तो कर ही लो! और यहां लोग करते होंगे, तभी तो लिखा है कि मना है। नहीं तो कोई काहे के लिए लिखेगा?

भोपाल में मैं एक घर में बैठा था, घर के भीतर, बैठक खाने में लिखा है-- यहां पान थूकना मना है। मैंने कहाः तुम पागल हो गए हो? इसका मतलब ही यह हुआ कि यहां लोग थूकते हैं। उसने कहाः थूकते हैं, तभी तो लिखा है। मगर इसको भी कोई पढ़ता नहीं। लोग थूकते ही हैं। भोपाल का अलग ही रिवाज है। वहां लोग बस मुंह में पान चबाएंगे, पिचकारी वहीं चला देंगे।
सहज तख्ती लगाओ, उससे क्या फर्क पड़ता है? तख्ती से सिर्फ इतना ही सिद्ध होता है कि ऐसे काम यहां किए जाते हैं। तुमने जितने निषेध लगाए हैं, उतनी ही मुश्किल हो गई है।
फिल्म आ जाती है गांव में कि "सिर्फ व्यस्कों के लिए" और छोटे-छोटे बच्चे भी चले, दो आने की मूंछ खरीद कर लगा लेते हैं। मगर देखना तो पड़ेगा ही। सिर्फ व्यस्कों के लिए है तो बच्चों की उत्सुकता जग जाती है, बहुत जग जाती है--जरूर कुछ मजा होगा! कुछ बात देखने जैसी है!
जहां निषेध है वहां निमंत्रण है।
संतों की मौजूदगी तुम्हें अड़चन में डाल देती है। महावीर नग्न खड़े हो गए, तुम बड़ी अड़चन में पड़ गए। महावीर अत्यंत निर्दोष व्यक्ति थे। छोटे बच्चे की भांति थे। छोटे बच्चे की भांति ही खड़े हो गए थे, लेकिन उन्होंने सब कपड़े पहने लोगों को मुश्किल में डाल दिया। उनको खदेड़ा, गांव से निकाला, भगाया, मारा। लोग जितना दुर्व्यवहार कर सकते थे किया और अब पूजा कर रहे हैं! पूजा भी तुम समझ लेना, अपराध-भाव के कारण पैदा होती है। किसी व्यक्ति के साथ बहुत ज्यादा दुर्व्यवहार कर लेते हो, अंततः उसे मार ही डालते हो; फिर तुम्हारे मन में बड़ा अपराध पैदा होता है कि यह हमने क्या किया! यह तो करना उचित नहीं था। तो अब अपराध-भाव से बचने के लिए उसका मंदिर बनाओ। मूर्ति बनाओ, पूजा करो।
एक सज्जन के पिता मर गए। मैं उन्हें जानता हूं वर्षों से। पिता जब तक जिंदा थे उन्होंने सिवाय दुर्व्यवहार के पिता के साथ कुछ भी नहीं किया। मार-पीट भी करते थे पिता की। अब मर गए तो उन्होंने पिता की मूर्ति बनवाई है। और जब मुझे खबर भेजी कि मैंने पिता की मूर्ति बनवाई है, आप आकर उदघाटन कर दें। मैंने कहाः मैं तुम्हें भलीभांति जानता, तुम इन्हीं की पिटाई करते रहे। पिता को आमतौर से नहीं पीटते लोग। पीटना चाहें तो भी नहीं पीटते। अब तुमने मूर्ति बनाई है, किसलिए मूर्ति बनाई है? अब पश्चात्ताप पड़ रहा है मन में कि यह मैंने ठीक नहीं किया। अब इस पश्चात्ताप को कैसे भरें, तो मूर्ति बना कर रख दी!
बंबई में मेरे एक मित्र हैं। उनकी पत्नी मर गई। पत्नी मरी ही जहर खाकर। और मरी ही इसलिए कि जब तक वह जिंदा रही तब तक वे कभी इस स्त्री कभी उस स्त्री... पैसे वाले हैं, सुविधा है। जब मर गई तो उन्होंने उसकी तस्वीरें पूरे कमरे में टांग लीं और एकदम वियोगी होकर बैठ गए। उनकी बहन मेरे पास आई, उसने कहा कि भाई तो कहते हैं कि मैं विवाह तो कभी करूंगा ही नहीं, कभी नहीं करूंगा! बस एक को प्रेम किया। बस आंसू चढ़ाते हैं। फूल चढ़ाते हैं पत्नी की फोटो को।
मैं उनसे मिलने गया। मैंने कहा कि बंद करो वह बकवास! जब वह जिंदा थी... ! वह मरी कैसे, मुझे तुम यह तो बताओ। वह मरी क्यों? अब तुम फूल चढ़ा रहे हो! अब यह तुम क्या ढोंग कर रहे हो? अब तुम्हें पश्चात्ताप हो रहा है! आदमी ऐसा ही पागल है। अब तुम सम्मान दे रहे हो! अब तुम कहते हो मैं कभी विवाह न करूंगा! तुम किसको धोखा देने चले हो?
मगर ऐसा ही हमने सदियों-सदियों में किया है। ऐसी मनुष्य की आदत है।
सीधे मारग चालते, निंदै संसारा।
संत तो सीधा-सीधा चलने लगता है और संसार उसकी निंदा करने लगता है। निंदा इसलिए करने लगता है कि उसकी वजह से तुम्हारी चाल तिरछी मालूम पड़ती है। जहां सब शराब पीकर चल रहे हों और डगमगाते हों, वहां एक आदमी बिना डगमगाता चले, सब शराबी नाराज हो जाएंगे कि तुम भी डगमगाओ; जैसे सब चलते हैं वैसे चलो!
तुमने देखा, छोटी छोटी बातों में लोग नाराज हो जाते हैं। अगर सब लोग
एक तरह के कपड़े पहनते हों और तुम उस तरह के कपड़े न पहनो, तो लोग नाराज हो

जाते हैं। वे कहते हैं, जैसे सब लोग रहते हैं वैसे तुम भी रहो। सब इस तरह के बाल कटाते हैं, तुम भी ऐसे ही कटाओ। सब इस तरह से उठते-बैठते हैं, तुम भी इसी तरह से उठो-बैठो!
लोग बरदाश्त नहीं करते भिन्न आदमी को, क्योंकि भिन्न आदमी उनके भीतर संदेह पैदा करता है कि कहीं हम गलत तो नहीं हैं! लोग चाहते हैं सब हमारे जैसे हों, तो यह विश्वास बना रहता है कि जब इतने लोग हमारे जैसे हैं तो हम ठीक ही होंगे--इतने लोगों का संग-साथ है, गलत कैसे हो सकते हैं? इतने लोग गलत कैसे हो सकते हैं?
जार्ज बर्नार्ड शॉ ने एक बहुत अदभुत बात कही है। उसने कहा हैः जिस बात
को बहुत लोग मानते हों, सोच ही लेना कि वह बात ठीक नहीं हो सकती, इतने लोग सही कैसे हो सकते हैं?
आम आदमी की धारणा है, इतने लोग गलत कैसे हो सकते हैं? इसलिए हम भीड़ के साथ राजी होते हैं। हम सदा भीड़ के साथ राजी हो जाते हैं। भीड़ जहां जाती है वहीं हम चल पड़ते हैं। संत भीड़ का रास्ता छोड़ देता है, अकेला चल पड़ता है। उसके अकेले चल पड़ने से ही हमें अड़चन शुरू होती है। उसकी मौजूदगी अखरने लगती है। हम उसकी हजार बहानों से निंदा करते हैं। और स्वभावतः, जिसको निंदा करनी है वह बड़े तर्कयुक्त बहाने खोज लेता है। और ऐसी तो कोई भी बात नहीं है जो तर्क से सिद्ध न की जा सकती हो। हर चीज तर्क से सिद्ध की जा सकती है। तर्काभास होते हैं वे, रेशनेलाइजेशन होते हैं; लेकिन तर्क जैसे मालूम पड़ते हैं।
तुम तर्काभास से सावधान रहना! पहले इस बात को खोज लेना कि ऐसा मैं क्यों सिद्ध करना चाहता हूं। क्या कारण है? किस वजह से मेरे भीतर चोट पड़ रही है? मैं क्यों तिलमिला गया हूं? मेरी बेचैनी कहां है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि इस आदमी की मौजूदगी ने मेरे अहंकार को चोट पहुंचा दी है, मेरी धारणाओं को डगमगा दिया है। और मैं अपने को फिर सम्हालने की कोशिश में ये सारे तर्क खोज रहा हूं।
यहां लोग आते नहीं। मेरी निंदा में हजार तरह की बातें करते हैं। उनको अगर कहो कि यहां आते क्यों नहीं, तो वे कहते हैं वहां हम आएंगे नहीं क्योंकि वहां सम्मोहित कर लिए जाते हैं। अब यह बड़ा मजा है! यहां आएंगे नहीं, उसके लिए एक तरकीब खोज ली है कि वहां गए तो सम्मोहित हो जाते हैं। क्योंकि वहां जो गया वह उन्हीं के पक्ष में बात करने लगता है। इसलिए यहां तो आ ही नहीं सकते। वह तो बात ही खत्म हो गई। अब बाहर से ही निंदा करेंगे, बिना जाने निंदा करेंगे, बिना समझे निंदा करेंगे। कि बात को समझ तो लो। इसके पहले कि निर्णय करो, ठीक से परख तो लो! कुछ प्रयोग करके तो देख लो! क्या यहां घट रहा है, उसमें थोड़ा प्रवेश तो करो! थोड़ा रस तो लो!
मगर वे कहते हैं कि अगर रस लिया तो फिर सम्मोहित हो जाएंगे! रस ले लिया
तो फिर हम भी दीवाने हो जाएंगे! हम तो बाहर ही से रह कर निंदा करेंगे?
मगर यह तो बात बड़ी बेईमानी की हो गई। अगर मेरे गैरिक संन्यासी उनको कुछ कहते हैं तो कहते हैंः तुम तो उनके पक्ष में हो गए, तुम्हारी बात हम न मानेंगे। निष्पक्ष आदमी चाहिए। निष्पक्ष कौन है? --जो यहां आया ही नहीं! जिसने यहां पर नहीं मारा, वह निष्पक्ष है! जो यहां आया, वह पक्षपात का हो गया!
यह तो बड़ा अजीब तर्क हुआ। इसका तो अर्थ हुआ, चश्मदीद गवाह गवाह नहीं है; जो मौजूद ही न रहा हो, वही गवाह है, उसी की गवाही मानी जाएगी, क्योंकि वह मौजूद नहीं था वहां। कौन अदालत इस बात को मानेगी? लेकिन लोगों के मन में इसी तरह की बातें चलती हैं।
संत कहै सांचि कथा, मिथ्या नहिं बोलैं। संत तो वैसा का वैसा कह देता
है जैसा है।
संत कहै सांचि कथा, मिथ्या नहिं बोलैं।
जगत डिगावै आइकैं तौ कबहूं ना डोलैं।
और जगत बहुत कोशिश करता है कि तुम भी हमारे जैसे डोलो; तुम भी हमारे जैसे बोलो; तुम भी हमारे जैसे उठो, हमारे जैसे बैठो; तुम हम से भिन्न होने की चेष्टा न करो। तुम्हारी भिन्नता हमें बेचैन करती है। तुम्हारी

भिन्नता से हमारी सुरक्षा छिनती है। तुम्हारी भिन्नता से हमारे पैर के नीचे की जमीन डगमगाती है। तुम भी हम जैसे रहो।
लेकिन जिसको सच का रस लग गया, वह अपना जीवन भला दे दे, लेकिन झूठ बोलने
को राजी न होगा!
जे-जे कृत संसार कै, ते संतनि छांड़े।
वे जो-जो संसार के कृत्य हैं, सांसारिक, उनकी संत चिंता नहीं करता, उनकी चिंता ही छोड़ देता है। संसार के कृत्य क्या हैं? महत्वाकांक्षा से भरे कृत्य हैं। संत महत्वाकांक्षा छोड़ देता है।
संसार की दौड़ क्या है? दूसरे से आगे हो जाना! संत कहता हैः हम सबसे पीछे भले हैं।
जीसस ने कहा हैः जो पीछे हैं वे ही प्रभु के राज्य में आगे हो जाएंगे!
और जो यहां आगे हैं, सावधान, प्रभु के राज्य में पीछे पड़ जाएंगे।
संत कहता हैः हम पीछे भले, हम सबसे पीछे खड़े, हम दौड़ेंगे नहीं। हम स्पर्धा न करेंगे। हम किसी से प्रतियोगिता न लेंगे! क्योंकि तुम तुम हो, मैं मैं हूं, प्रतियोगिता का कारण कहां है? तुम ऐसे हो, मैं ऐसा हूं, प्रतियोगिता का कारण कहां है?
संत स्वीकार कर लेता है, अपनी जैसी स्थिति है उसको वैसा ही। और जहां प्रतियोगिता नहीं, वहां प्रतिहिंसा नहीं पैदा होती। संत राजनीति के बिल्कुल बाहर हो जाता है। राजनीति का जगत महत्वाकांक्षा का जगत है, प्रतिस्पर्धा का; दूसरे को पीछे करना है, स्वयं को आगे करना है। चाहे फिर किसी भांति हो, किसी तरह दूसरे के पैर खींचना है और उसे कुर्सी से नीचे उतार देना है। और कुर्सी पर खुद चढ़ जाना है।
राजनीति कुर्सी पर चढ़ने की दौड़ है। संत वही है जो कहता हैः हम जहां बैठे हैं वहीं हमारा सिंहासन।
एक फकीर एक सभा में गया! वहां एक पंडित बोल रहा था। फकीर पीछे बैठ गया, जैसी फकीरों की आदत, पीछे बैठ गया! जहां लोगों ने जूते उतारे थे वहीं बैठ गया। लेकिन फकीर की मौजूदगी, उसकी तरंग, उसका आभामंडल... जो लोग उसके पास बैठे थे, वे मुड़ कर उसकी तरफ बैठ गए। उसकी तरफ पीठ करना उन्हें अड़चनदायी मालूम पड़ा! उन्होंने उसकी तरफ मुंह कर लिया! जब देखा उसका प्यारा रूप, उससे झरते हुए संगीत और सुवास को, तो और लोग भी मुड़ गए। धीरे-धीरे हालत यह हो गई कि पंडित की तरफ सबकी पीठ हो गई, फकीर की तरफ सब का मुंह हो गया। तब पंडित घबड़ाया। पंडित ने फकीर को कहा कि आप यहीं आ जाइए। यहां आइए, यहीं पर बैठिए! फकीर ने कहाः हम जहां बैठते हैं वहीं गद्दी है। हम गद्दी पर नहीं बैठते। हम जहां बैठते हैं वहीं गद्दी!
एक जीवन की ऐसी दशा भी है कि तुम जहां होते हो वहीं सम्राट होते हो! भीख मांगता हुआ संत भी सम्राटों से ज्यादा गरिमावान होता है। सम्राट सिंहासनों पर बैठे हुए भी भिखमंगे होते हैं, क्योंकि अभी और मिल जाए और मिल जाए, और मिल जाए... ।
सूफी फकीर बायजीद के पास एक सम्राट आया। उसने हजारों स्वर्ण-मुद्राएं चढ़ाईं। बायजीद ने कहाः एक बात पूछूं? यह किसी गरीब को दे दो तो ठीक। सम्राट ने कहाः आप बिल्कुल गरीब हैं। मैंने तो सुना है, कई दिन आपको फाकामस्ती करनी पड़ती है। खाना भी नहीं मिलता! इसीलिए तो ले आया कि यह पड़ा रहेगा यहां, जब आपको जरूरत होगी तो भूखा तो नहीं मरना पड़ेगा। मेरे मन में आपके प्रति बड़ी श्रद्धा है।
नहीं; फकीर ने कहाः तुम किसी गरीब को दे दो! मैं कहता हूं, सुनो मेरी, किसी गरीब को दे दो। सम्राट ने कहाः तो किसी गरीब को दे दूं, आप ही बता दें? जैसी आपकी आज्ञा! फकीर ने कहा कि बेहतर तो यह है कि तुम ही रख लो! तुमसे बड़ा गरीब इस गांव में दूसरा नहीं है। तुम्हारे पास इतना है, फिर भी अभी और की दौड़ नहीं मिटी, यही तो गरीबी है।
स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे। एक गांव में एक फकीर था। लोग पैसे चढ़ा जाते थे। ऐसे पैसे इकट्ठे होते रहे, होते रहे, होते रहे, जब वह मरने के करीब आया तो काफी इकट्ठा हो गया था धन। उसने कहाः भई मरने के पहले इसका कुछ निपटारा कर देना चाहिए। लोग डालते ही गए हैं, डालते ही गए हैं, काफी इकट्ठा

हो गया है। यह किसी गरीब को दे देना चाहिए। बहुत गरीब आए। दावेदार आए कि हम गरीब हैं। हम से ज्यादा गरीब कोई भी नहीं, हमको दे दें! पर उसने कहा कि रुको, आने दो सबसे बड़े गरीब को। और एक दिन सम्राट की सवारी निकली और उसने कहा कि रुक, यह सारा धन उठा कर ले जा! सम्राट ने कहाः मैंने तो सुना था कि आप किसी गरीब को देना चाहते हैं।
उस फकीर ने कहा कि गरीब की प्रतीक्षा करता था। तेरी सवारी की राह थी।
इस गांव में और गरीब हैं, लेकिन तुझसे बड़ा गरीब कोई भी नहीं। तेरे पास इतना है, फिर भी चैन नहीं; फिर भी तू बेचैन है--और मिल जाए! अभी भी तेरी फौजें लड़ रही हैं और राज्य बढ़ाने के लिए। तेरी गरीबी कभी न मिटेगी। तू ले जा। शायद थोड़ा-बहुत इससे तुझे राहत मिले। शायद एकाध रात तू आराम से सो सके। ले जा! क्योंकि मैंने तो सुना है तू रात-रात भर सोता भी नहीं!
तो फकीर संसार की जो मौलिक आधारशिला है, महत्वाकांक्षा, उसे छोड़ देता है।
जे-जे कृत संसार के ते संतनि छांड़े।
पाखंड छोड़ देता है। मिथ्या आचरण छोड़ देता है। जैसा है, वैसा ही, वैसा
ही अपने को प्रकट कर देता है। संत अपने और परमात्मा के बीच किसी तरह के आवरण नहीं रखता। बुरा है तो बुरा, भला है तो भला। सब उसका है। छुपाता नहीं!
ताकौ जगत कहा करै, पग आगै मांड़े।।
और जगत बड़ी मुश्किल में पड़ जाता है। ऐसे आदमी के रास्ते में हर तरह के अड़ंगे डालता है।
जे मरजादा बेद की, ते संतनि भेंटी।।
वेद की मर्यादा, वेदों की जो मर्यादा है, वह भी संत छोड़ देते हैं। वेद कहते हैंः ऐसा करो, यज्ञ करो, हवन करो। संत कहता हैः सब पागलपन है। शास्त्र कहते हैंः ऐसा व्यवहार करो। संत कहता है मैं तो व्यवहार भीतर से करूंगा, किसी शास्त्र के अनुसार नहीं। मेरा शास्त्र मेरे भीतर है। मेरा वेद मेरे भीतर है। मेरी किताब मेरी आत्मा है। मैं वहीं कुरान पढ़ लूंगा, वहीं उपनिषद जन्मा लूंगा। मैं तो अपने भीतर जाऊंगा! मैं तो परमात्मा की आवाज सीधी ही सुन लूंगा! अगर ऋषियों ने परमात्मा की आवाज सुनी थी, कहां से सुनी थी? भीतर गए, वहीं सुनी थी। अगर ऋषि भीतर गए और ऋचाओं का जन्म हुआ, तो मैं भी हड्डी- मांस-मज्जा का वैसा ही बना हूं जैसे ऋषि बने थे; मैं भी अपने भीतर जाऊंगा, आवाज सुनूंगा। अगर परमात्मा उनसे बोला, मुझसे भी बोलेगा। उसकी करुणा अपार है। वह उनसे ही बोलकर चुप नहीं हो गया है। उसे मेरी उतनी ही चिंता है जितनी उनकी थी। अगर परमात्मा मोहम्मद पर उतरा कुरान की तरह, मुझ पर भी उतरेगा। इस श्रद्धा का नाम धर्म है कि परमात्मा ने आदमी को त्याग नहीं दिया है, कि परमात्मा ने आदमी के प्रति आशा नहीं खो दी है, कि तुम बेसहारे नहीं हो, कि मालिक तुम्हारे पीछे कभी भी उतने ही काम में रत है। जैसे मोहम्मद को गड़ा था वैसे तुम्हें भी गढ़ेगा। एक बार श्रद्धापूर्वक, निष्ठापूर्वक अपने भीतर तलाशो। इसलिए संत तो भीतर के वेद से जीता, भीतर के कुरान से जीता, भीतर की बाइबिल से जीता है।
जे मरजादा बेद की, ते संतनि भेंटी।
वह तो सब छोड़ देता है।
जैसे गोपीकृष्ण कौं, सब तजकरि भेंटी।
जैसे गोपियों ने सब छोड़ दिया था--वेद, शास्त्र, कुरान, पुराण--सब छोड़ दिए थे, एक कृष्ण के आसपास नाचने लगी थीं--ऐसे ही भीतर तुम्हारे कृष्ण बैठा है। तुम्हारे भीतर परमात्मा का वास है, तुम उसी के आस-पास नाचो। गोपियों जैसे सर्वस्व उसी पर निछावर कर दो!
एक भरोसे राम कै, कछ शंक न आनै।
संत को तो एक ही भरोसा है--न शास्त्र का, न समाज का--एक ही भरोसा है राम का।
एक भरोसे राम कै कछु शंक न आनै।
उसके जीवन में शंकाएं नहीं हैं। उसके जीवन में श्रद्धा है
जन सुंदर सांचै मतैं, जग की नहिं मानैं।

वह जग की नहीं मानता; अपने भीतर जो बैठा है उनकी मानता है। किसी और की नहीं मानता, अपनी मानता है। संत घोषणा है व्यक्तित्व की। संत विद्रोह है, बगावत है। संत इस जगत में सबसे ज्यादा दुस्साहसी आदमी है। लेकिन उतना जिनका साहस है, वे ही परमात्मा के पाने के हकदार भी हैं। सब दांव पर लगा देता है।
तुम तो परमात्मा को याद भी करते हो तो बस यूंही--
जब कोई ताजा मुसीबत टूटती है ऐ हफीज
एक आदत है, खुदा को याद कर लेता हूं मैं
--आदत की तरह। निष्ठा नहीं है, श्रद्धा नहीं है, अनुभव नहीं है, स्वाद नहीं है--बस एक आदत है। आदत--और परमात्मा की? तो तुम चूकते रहोगे। आदत की तरह तुम मंदिर भी हो आते हो। आदत की तरह तुम झुक भी जाते हो। यहां मुझे रोज यह अनुभव होता है, क्योंकि दोनों के ढंग में भेद होता है। मेरे पास ऐसे भी लोग आकर झुक जाते हैं जो प्रेम से झुके; और ऐसे लोग भी मैं पाता हूं झुकते हुए जो सिर्फ आदत से झुक रहे हैं। जब कोई प्रेम से झुकता है तो उसकी पुलक, उसका उल्लास, उसका आनंद, उसका अहोभाव... । और जब कोई आदत से झुकता है तो न उसके चेहरे पर कोई भाव होता है, न उसकी आंखों में कोई रस होता; उसे पता ही नहीं वह क्या कर रहा है। एक तरह की कवायद... उसको आदत हो गई है। कोई साधु-संत हो, झुक जाना है। कोई भी हो, झुक जाना है। झुकना यांत्रिक है। न उसमें समर्पण है, न चैतन्य है, न होश है।
मुझि बेगि मिलहु किन आइ मेरा लाल रे।
जो साहस करेंगे भीतर की आवाज सुनने का, उसके जीवन में धीरे-धीरे जैसे- जैसे रस बढ़ेगा, बूंद-बूंद, वैसे-वैसे बड़ी प्यास उठेगी, ज्वलंत प्यास उठेगी।
मुझि बेगि मिलहुं किन आइ मेरा लाल रे।
तब तो एक ही आकांक्षा जगती है भीतर, एक ही अभीप्सा--लपटों की तरह--कि मेरा प्यारा मुझे कब मिल जाए!
अब ये जाना, कि इसे कहते हैं आना दिल का
हम हंसी-खेल समझते थे लगाना दिल का
लोग सोचते हैंः परमात्मा को खोजना हंसी-खेल नहीं दिल में आग लगती है।
अब ये जाना कि इसे कहते हैं आना दिल का
हम हंसी-खेल समझते थे लगाना दिल का
... हालांकि दिल लग जाए तो सब हो जाता है।
मोहब्बत रंग दे जाती है जब दिल से दिल मिलता है
मगर मुश्किल तो ये है दिल बड़ी मुश्किल से मिलता है।
हम तो बाहर के ही व्यापार में इतने उलझे हैं कि पता भी नहीं चलता कि भीतर दिल जैसी कोई चीज भी है। डाक्टरों से मत पूछना दिल के संबंध में। वह जिसको दिल का दौरा कहते हैं वह दिल का दौरा नहीं है। फेफड़े फुफ्फस में कुछ गड़बड़ हुई होगी। दिल का दौरा तो सिर्फ भक्त को ही पड़ता है। वह तो सौभाग्यशालियों को पड़ता है दिल का दौरा। जिसको तुम दिल का दौरा कहते हो, हार्ट-अटैक वह हार्ट-अटैक नहीं है। हार्ट का तो तुम्हें पता ही नहीं है। तुम तो यह जो श्वास को चलाने वाला पंप है, यह जो धुकधुकी है, इसी को तुम समझते हो। यह जो धौंकनी है लुहार की, जिससे देह चल रही है, श्वास आती-जाती है, खून साफ होता है--इसी को तुम दिल समझते हो? यह दिल नहीं है। दिल तो कभी सौभाग्यशाली को होता है। दिल तो जिनके पास होता है उनको परमात्मा से मिलने में देर नहीं लगती। दिल का दौरा तो ऐसा ही समझो परमात्मा का ही दौरा है। वही आता है तब पड़ता है। इस भौतिक दिल के पीछे एक आध्यात्मिक दिल भी छिपा है। इस धक्-धक की आवाज के पीछे एक और आवाज छिपी है।
नहीं मालूम कि वो खुद हैं कि मोहब्बत उनकी
पास ही से कोई बेताब सदा आती है।
जब सुनना शुरू करोगे तो पता चलेगा भीतर से ही, बहुत करीब से अपने ही के भीतर से उसकी आवाज आती है। और जिस दिन इस दिल का पता चल जाता है उसी दिन भक्त के जीवन में समर्पण की शुरुआत है।
अब तेरा ऐ दिले-बेताब खुदा हाफिज

कर चुके हम तो मोहब्बत में हिफाजत तेरी
बस उस समय तक तुम्हें हिफाजत करनी होती है... । और जिस दिन पता चल गया दिल का, फिर तो तुम कह सकते हो कि अब खुदा हाफिज! अब तेरा ऐ दिले-बेताब खुदा हाफिज! हे व्याकुल हृदय! अब परमात्मा तेरी सम्हाल करे। हम तो जहां तक कर सकते थे कर चुके।
तुम श्रद्धा जगाओ, शेष सब परमात्मा कर लेता है।
मोहब्ब्त क्या है? तासीरे-मोहब्बत किसको कहते हैं?
तेरा मजबूर कर देना, मेरा मजबूर हो जाना!
तुम जरा झुको तो, तुम जरा भीतर तलाशो तो!
मोहब्बत क्या है? तासीरे-मोहब्बत किसको कहते हैं?
तेरा मजबूर कर देना, मेरा मजबूर हो जाना!
मुझि बेगि मिलहु किन आइ मेरा लाल रे।
मैं तेरे विरहबिवोग फिरौं वेहाल रे।।
मैं तेरे विरह में, वियोग में बेहाल फिरता हूं!
हौं निसदिन रहौं उदास तेरे कारनै।
तेरे कारण उदास हूं। जब तक तू न मिले तब तक कैसी खुशी, तब तक कैसी हंसी,
तब तक कैसे गीत?
मुझे बिरह-कसाई, आइ लगा मारनै।
और यह विरह तो मुझे ऐसे काट रहा है जैसे कसाई किसी पशु को काट रहा हो।
इस पंजर मांहैं पैठि बिरह मरोरई।
और मेरे भीतर हृदय को ऐसा मरोड़ रहा है...
जैसे बस्तर धोबी ऐंठि नीर निचोरई।
जैसे कि कपड़े को धोकर धोबी पानी को निचोड़ता है।
हम तेरे इश्क से वाकिफ नहीं हैं लेकिन।
सीने में जैसे कोई दिल को मला करे है।।
एक चौबीस घंटे के लिए जैसे कोई हृदय को मथ रहा हो, मल रहा हो!
मैं कासिनी करौं पुकार तुम बिन पीव रे।
और अब मैं कहूं तो किसे कहूं, कौन मेरी समझेगा? तुम्हारे सिवाय और कोई समझेगा भी नहीं!
गुजरती है जो दिले-इश्क पर कुछ न पूछ जिगर
ये खास राजे-मोहब्बत है राज रहने दे!
यह किसी से कहा ही नहीं जा सकता। यह तो उसी से निवेदन किया जा सकता है क्योंकि यहां किससे कहो? यहां किसी ने मोहब्बत की नहीं। यहां किसी ने आशिकी जानी नहीं। यहां तो लोग रुपये-पैसे से प्रेम करते हैं, या बहुत हुआ तो शरीरों से प्रेम करते हैं। यहां आत्मा की झलक तो लोगों को मिलती नहीं। यहां अंधों से प्रकाश की बात कैसे करें? जिनने रोशनी देखी हो उन्हीं से बात हो सकती है। इसलिए संत-समागम का अर्थ होता है, जहां तुम अपने दिल की बातें कह सको; जहां कोई अपने दिल की बातें तुम से कह सके; जहां दिल दिल से मिलें, बात कर सकें, संवाद हो सके; जहां सत्संग हो सके। पियक्कड़ बैठे जहां, तो ही मदहोशी की बात हो सकती है। बीच बाजार में तुम अपने प्रेम की बात मत करना, अपनी प्रार्थना की बात मत करना। लोग समझेंगे तो नहीं, लोग तुम्हें पागल समझेंगे! जो उनका अनुभव नहीं है उसे समझने का उनके पास कोई उपाय भी नहीं है।
मोहब्बत में एक ऐसा वक्त भी आता है इंसा पर।
सितारों की चमक से चोट पड़ती है रंगे जां पर।।
और जब हृदय तैयार होने लगता है तो फिर हर तरफ से चोट पड़ने लगती है।
सितारों की रोशनी बहुत दूर है, मगर वह भी चोट करती है। पपीहा बुलाता है पी- कहां--और भक्त के भीतर अपने पिया की रटन शुरू हो जाती है। फूल खिले हैं--और भक्त रोने लगता है, क्योंकि उसका फूल कब खिलेगा!
मैं कासनि करौं पुकार तुम बिन पीव रे।
यहु बिरहा मेरी लार दुखी अति जीव रे।।
मेरा एक ही संगी-साथी है अब--यह विरह!
आशिकी सब्र-तलब, और तमन्ना बेताब।

दिल का क्या रंग करूं खूने-जिगर होने तक।।
प्रेम कहता हैः धीरज रखो! आशिकी सब्र-तलब... प्रेम कहता हैः धीरज रखो, प्रतीक्षा करो। और तमन्ना बेताब... और अभीप्सा कहती हैः अभी मिलो, इसी क्षण मिलो! दिल का क्या रंग करूं खूने-जिगर होने तक! इसके पहले कि तू मुझे मार ही डाले अपने प्रेम में और डुबा ही ले मुझे अपने में, मैं अपने दिल का क्या रंग करूं खूने-जिगर होने तक! इसके पहले कि तू मुझे मार ही डाले अपने प्रेम में और डुबा ही ले मुझे अपने में, मैं अपने दिल का क्या रंग करूं? किससे कहूं? कौन समझेगा? यह मेरा दुख कोई भी नहीं समझ सकता। यह मेरा सुख भी कोई नहीं समझ सकता। यह दुख भी है और सुख भी। यह बड़ी मीठी पीड़ा है।
अब काहे न करहु सहाइ सुंदरदास की।
अब और कितनी देर करोगे? अब और कितना असहाय करोगे? अब और कितना रुलाओगे?
बाल्हा, तुम सौं मेरी आइ लगी है आसकी।
अब तो सब छोड़ कर सारा प्रेम तुम्हारी तरफ गतिमान हुआ है। अब तो तुमसे
ही आशिकी लग गई है। तुम्हीं से इश्क लगा है। अब कब तक और मुझे प्रतीक्षा करनी पड़ेगी?
यह तेरा बैत मुकद्दस तेरी रफअत का मजार
किसकी मनहूस निगाहों का बना आज शिकार
क्या हुए वह मेरे मनसूबे वह ख्वाबे-फरदा
जल गया मेरा चमन लुट गई मेरी सब बहार
मेरी बरबत में कोई तार नहीं अब साबित
मेरी चीखों में कोई दर्द नहीं अब बाकी
अब और क्या करूं?
मेरी बरबत में नहीं कोई तार अब साबित! मेरी वीणा के सब तार टूट गए।
मेरी चीखों में कोई दर्द नहीं अब बाकी। अब मैं रो चुका जितना रो सकता था।
पुकार चुका, जितना पुकार सकता था।
अब काहे न करहु सहाइ सुंदरदास की।
बाल्हा, तुमसौं मेरी आइ लगी है आसकी।।
मगर इतना प्रेम हो, इतनी पुकार हो तो मेघ आते हैं उसके और वर्षा होती है। इतना जिसने पुकारा है उसने जरूर पाया है। पुकार जब पूर्ण होती है तो मिलन होता ही है। यह इतना ही स्पष्ट है जैसे दो और दो चार होते हैं।
निरपवाद रूप से ऐसा हुआ है।
इसलिए इसके बाद का पद प्रार्थना का पद है, पूजा का पद है। घटना घट गई।
प्यारा आ मिला! पुकारा खूब, बहुत रूपों में पुकारा!
तुम्हारी याद के जब जख्म भरने लगते हैं
किसी बहाने तुम्हें याद करने लगते हैं।
ऐसी हालतें भी आ जाती हैं।
उठते नहीं हैं अब तो दुआ के लिए भी हाथ।
इस दर्जा नाउमीद है परवरदिगार से।।
कभी तो इतना थक जाता है भक्त कि हाथ भी नहीं उठते। इतना रोता है कि
आंसू सूख जाते हैं।
उठते नहीं हैं अब तो दुआ के लिए भी हाथ।
इस दर्जा नाउमीद है परवरदिगार से।।
ऐसी हताशा हो जाती है--पुकार, पुकार और पुकार और मिलन के कोई आसार नहीं! सब आशा टूट जाती है। मगर क्रांति घटती है तभी, जब सब आशा टूट जाती है।
जब तक आशा है तब तक तुम्हारा मन है। जब तक तुम्हारा मन है तब तक अहंकार है।
जब आशा गई, मन भी गया, अहंकार भी गया। तुम गिर पड़े, जैसे मिट्टी में मिट्टी गिर जाए।
मेरी बरबत में कोई तार नहीं अब साबित
मेरी चीखों में कोई दर्द नहीं अब बाकी।।
उस घड़ी में, बस उसी घड़ी में तत्क्षण उतर आता है अनंत, असीम!

आरती कैसैं करौं गुसाईं! उतर आया! ... उसकी बात ही नहीं की। अपनी पुकार
तक की बात की। अपनी चीख तक की बात की। अपने प्राणों की पूरी लपटें उठा दीं! हो गई वर्षा।
आरती कैरौं कैसैं गुसाईं!
अब तुम सामने खड़े हो। अब तुम सब तरफ खड़े हो! अब मैं आरती भी उतारूं तो कैसे उतारूं? पहले नहीं उतार सकता था कि पता नहीं था तुम कहां हो!
अब कैसे उतारूं क्योंकि तुम सब कहीं हो!
आरती कैसैं करौं गुसाईं। तुम ही ब्यापि रहै सब ठांई।।
तुमही कुंभ नीर तुम देवा। तुमही कहियत अलख अभेवा।।
तुम ही तो हो आरती। तुम ही हो आराध्य। तुम ही मेरे भीतर, तुम ही मेरे
बाहर! तुम्हीं हो भक्त, तुम्हीं हो भगवान।
तुमही कुंभ नीर तुम देवा। तुमही कहियत अलख अभेवा।।
तुम ही दीपक धूप अनूपं। तुम ही घंटा नाद स्वरूपं।
तुम ही पाती पुहुप प्रकासा!
तुम्हीं फूल, तुम्हीं फूल की पत्ती, तुम्हीं प्रकाश, तुम्हीं दीया, तुम ही सब कुछ!
तुम ही ठाकुर तुम ही दासा! ... अब बड़ी मुश्किल हुई! पहले मुश्किल थी कि तुम दिखाई न पड़ते थे, आरती तैयार थी। अब मुश्किल है कि तुम दिखाई पड़ गए, लेकिन अब तो आरती भी तुम हो। अब तो मैं भी तुम हो। अब तो मैं-तू में कोई फासला न रहा! अब कौन किस की आरती उतारे, अब कैसे आरती हो! तुम ही ठाकुर तुम ही दासा! तुम ही मालिक, तुम ही गुलाम।
तुम ही जल थल पावक पौना...
तुम्हीं हो हवा, तुम्हीं हो जल, तुम्हीं हो थल।
सुंदर पकरि रहै मुख मौना।
अब तो बस एक ही बात रह गई कि अब अपना मुंह पकड़ कर चुप हो जाऊं। वही चुप्पी होगी आरती! गूंगे का गुड़! अब कुछ कहूं ही न। अब जगमगा उठे तुम सब तरफ। बाहर-भीतर प्रकाश ही प्रकाश है। अब कहूं तो किससे, कहूं तो क्या! कहूं तो किस जबान से! कौन से शब्द काम आएंगे! कौन सी वीणा तुम्हें प्रकट कर सकेगी! अब असंभव है। तुम अव्याख्या हो, अनिर्वचनीय हो। तुम सर्वव्यापी हो! अब तो एक ही उपाय बचाः सुंदर पकरि रहे मुख मौना! अब तो मैं चुप हो जाऊं। अब तो मुंह बंद कर लूं!
ऐसा जब किसी को अनुभव हो जाए, उसके पास भी बैठ जाओगे तो तुम्हारे बुझे दीये जल जाएंगे। जो उस मौन में पहुंच गया परमात्मा को जान कर, उसकी आंख तुम्हारी आंख में झांक लेगी तो दीये जल जाएंगे!
एक दीप से अनेक दीप जल गए
एक ज्योति के अनेक ग्रह उजल गए
कौन कह सका कि क्यों विभावरी जी
कौन जानता कि कहां बांसुरी बजी
एक धुन उठी अनेक स्वर मचल गए!

दुर्वासा-शाप-भृता-सी शकुंतला यामिनी मिलन-पथ पर मुक्त-कुंतला एक छांह में अनेक ताप पल गए!

एक ही अरूप विविध रूप आप में
एक किरण सप्त बरन इंद्र चाप में एक शरण में अनेक मरण गल गए!
एक दीप से अनेक दीप जल गए
एक ज्योति के अनेक ग्रह उजल गए

कौन कह सका कि क्यों विभावरी सजी कौन जानता कि कहां बांसुरी बजी एक धुन उठी अनेक स्वर मचल गए!

पर धुन उठती तब है जब कोई उस जगह पहुंच जाता है जहां बोलने को उपाय नहीं बचता। जहां वाणी मौन हो जाती है, जहां स्वर शांत हो जाते हैं, वही उठता है अनाहद का स्वर! ऐसे किसी व्यक्ति से संबंध जोड़ लो, किसी जले दीये के पास आ जाओ, तो तुम्हारा बुझा दीया भी जल उठे! ज्योति से ज्योति जले!

आज इतना ही।